ॐ श्रीपरमात्मने नमः

कल्याण

श्रीराधामाधव-अङ्क

[जनवरी सन् २०११ ई०]

वर्ष : ९३ संख्या : १

गीताप्रेस, गोरखपुर
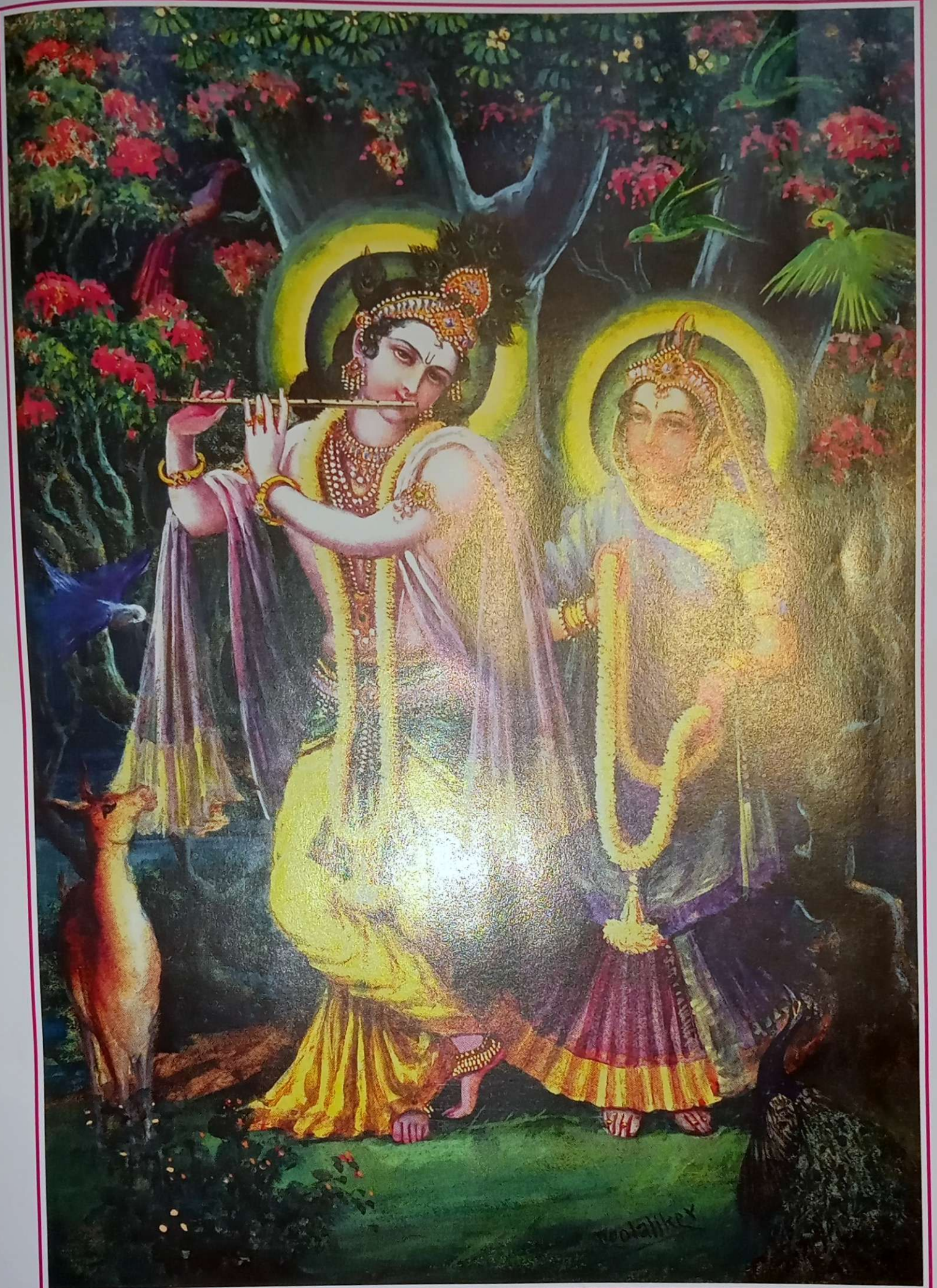
श्रीराधामाधव युगल छवि

भगवती श्रीराधा

भगवान् श्रीकृष्ण
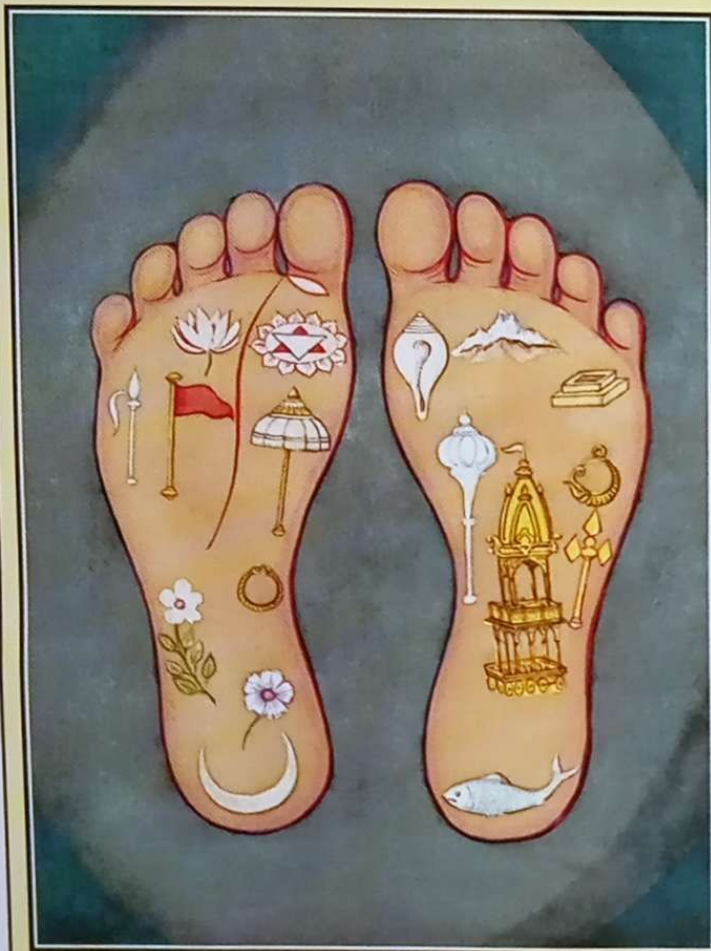
श्रीराधाके चरणकमल
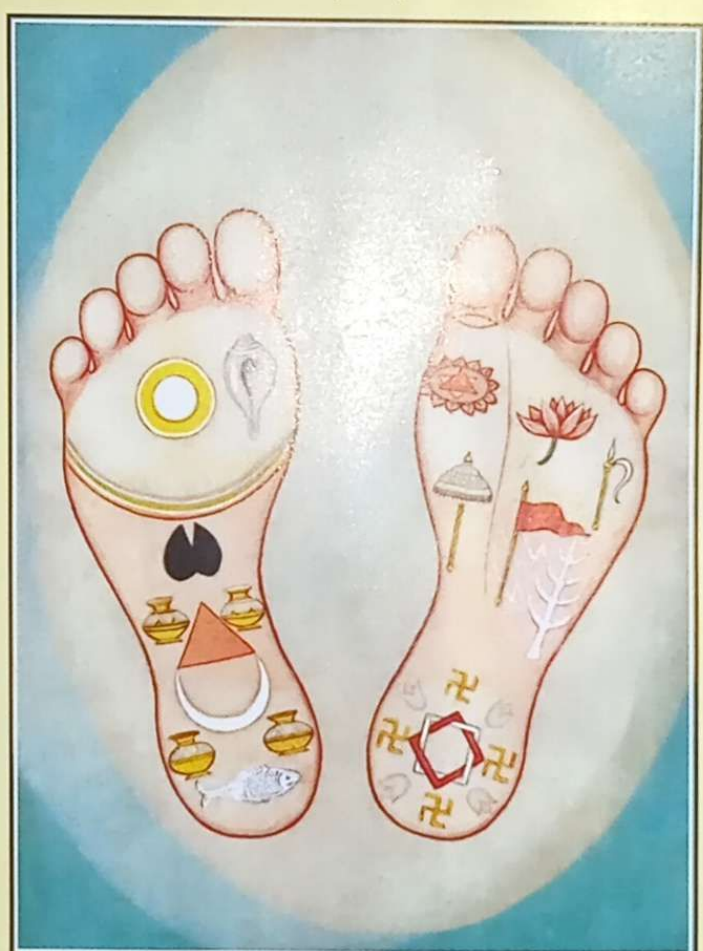
श्रीकृष्णके चरणकमल

कान्ह ह्वै भानुलली बनि आईं
[कृष्णवेषमें श्रीराधा]

कान्ह बर धर्‌यौ बिनोदिनि रूप
[राधावेषमें श्रीकृष्ण]

महारास-मण्डलके मध्य श्रीराधामाधव
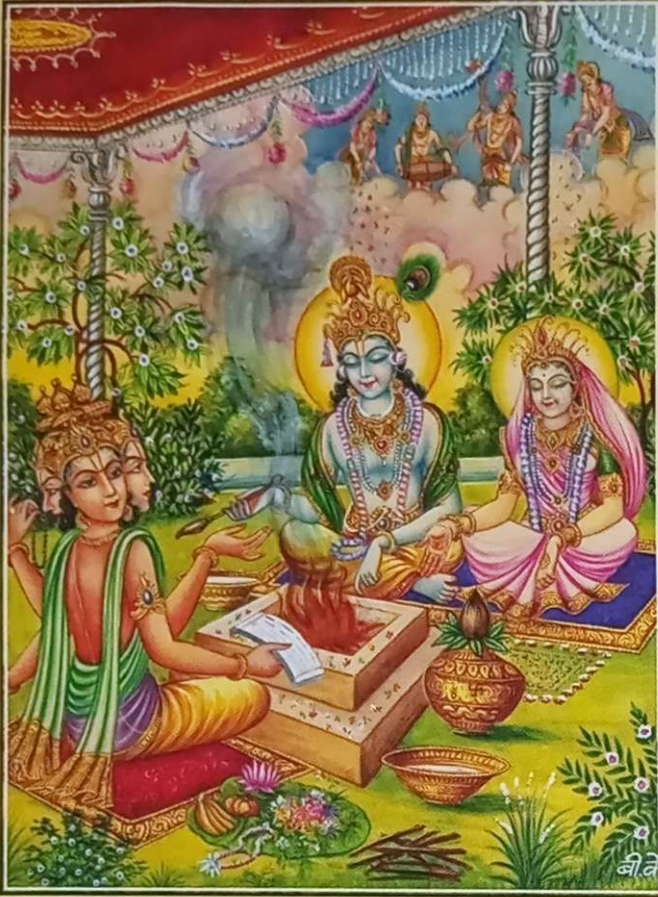
ब्रह्माजीद्वारा श्रीराधामाधवका विवाह-संस्कार
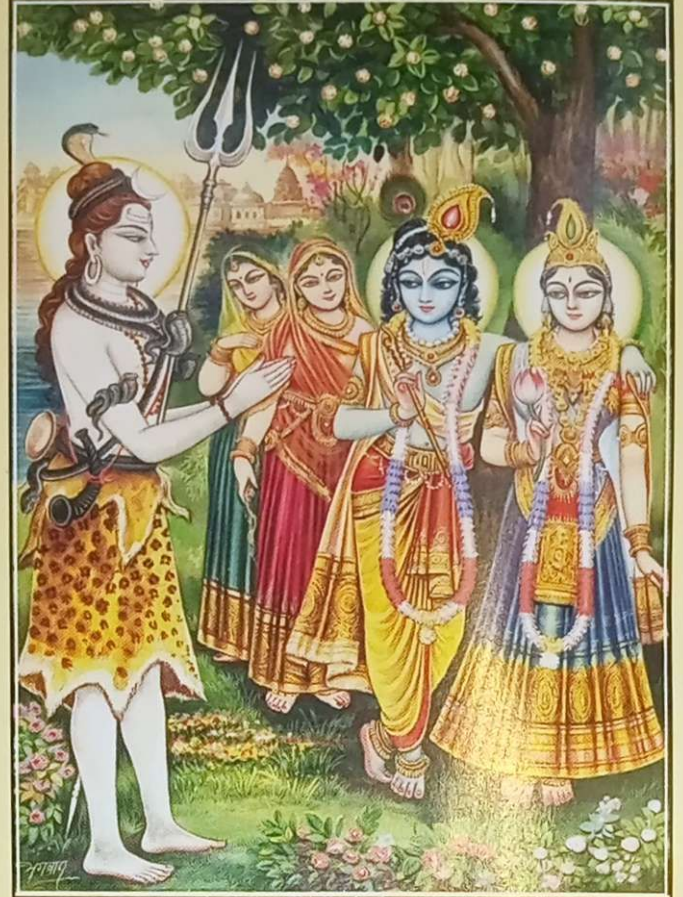
भगवान् शिवको युगलस्वरूपके दर्शन
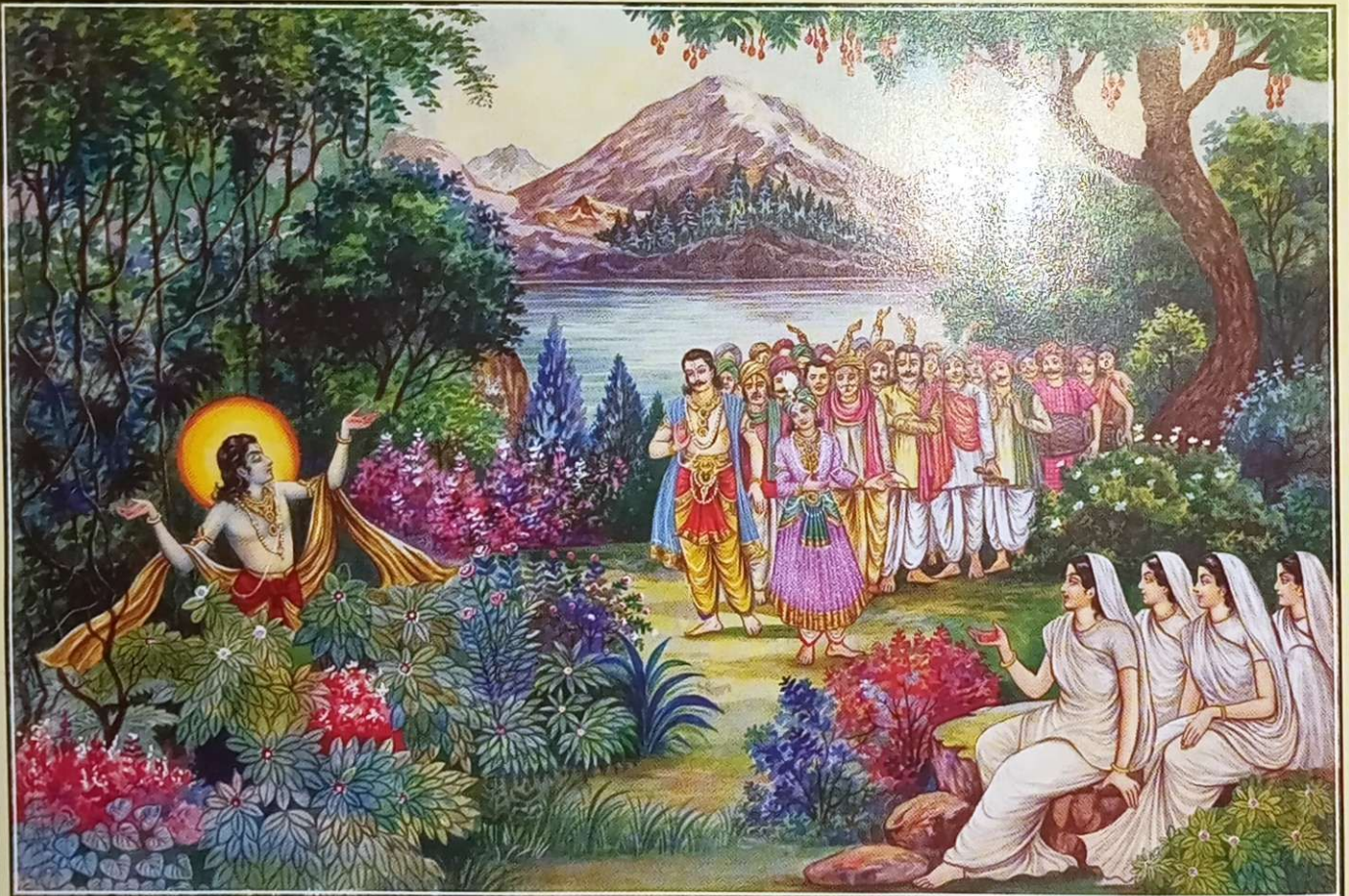
वृन्दावनके कुंजोंमें श्रीउद्धवजीका प्राकट्य

देवर्षि नारदको 'श्रीराधादर्शन'
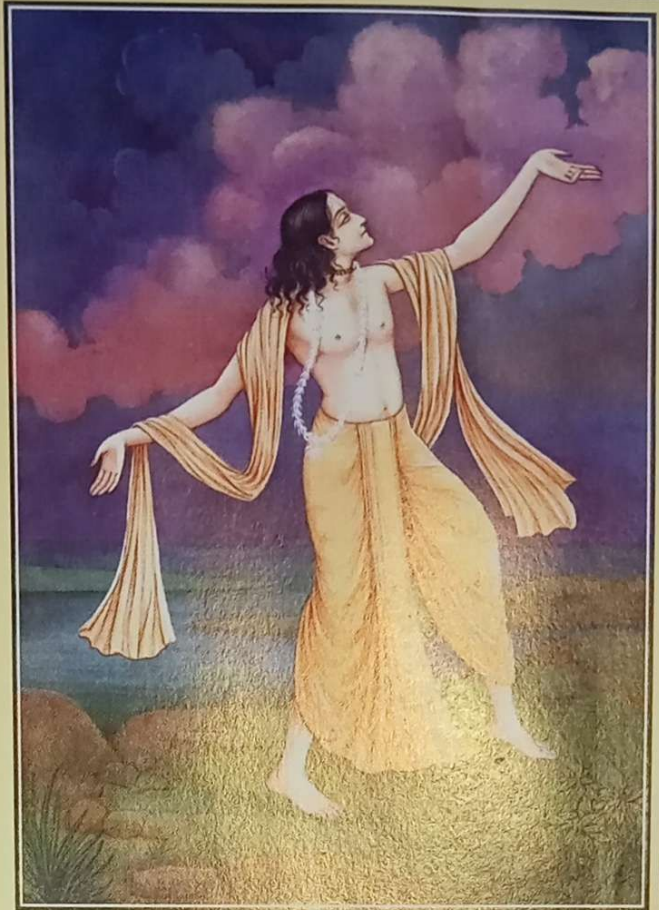
'राधामाधव' भाव-भावित श्रीचैतन्यदेव
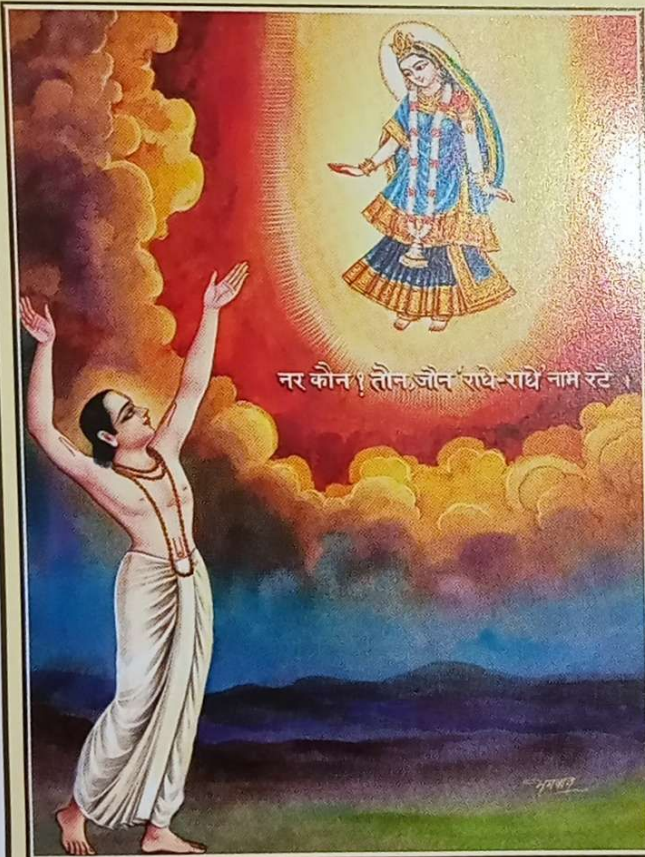
श्रीहठीजीकी 'राधा' नाम-निष्ठा
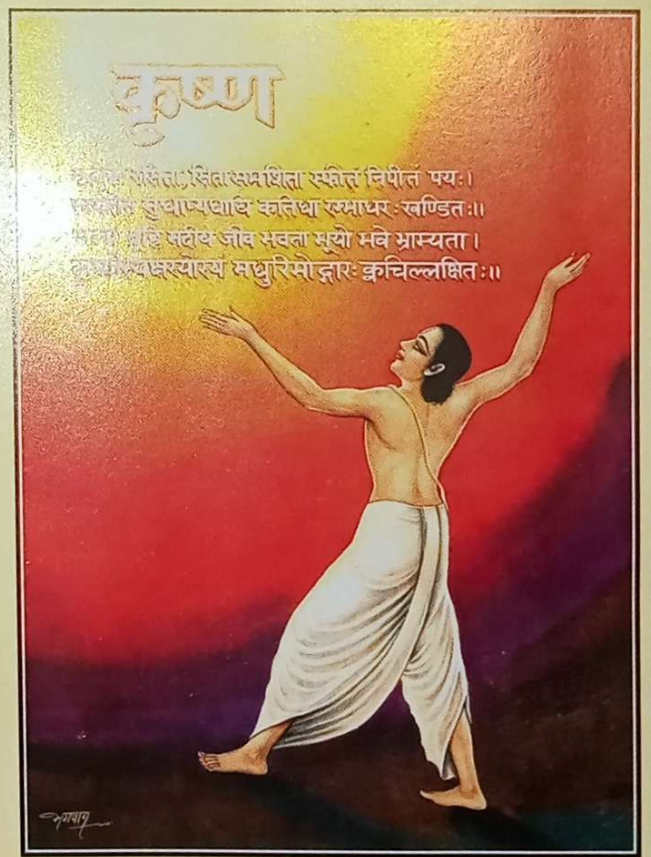
'कृष्ण' नाम-माधुरी

व्रजमण्डलस्थित श्रीराधामाधवके कतिपय प्रमुख तीर्थस्थान
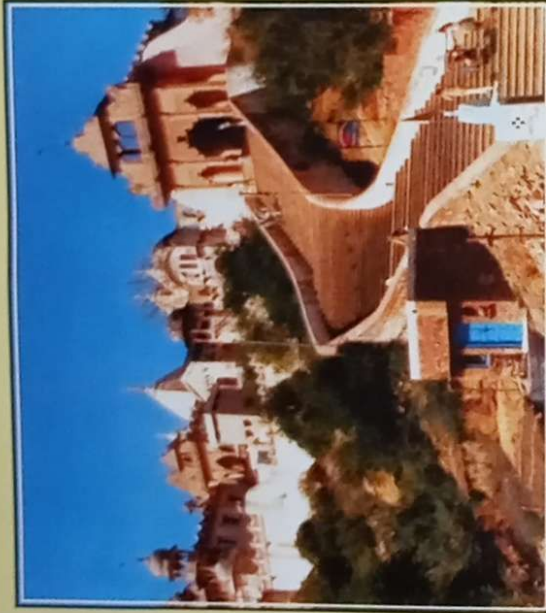
श्रीजीका मन्दिर, बरसाना
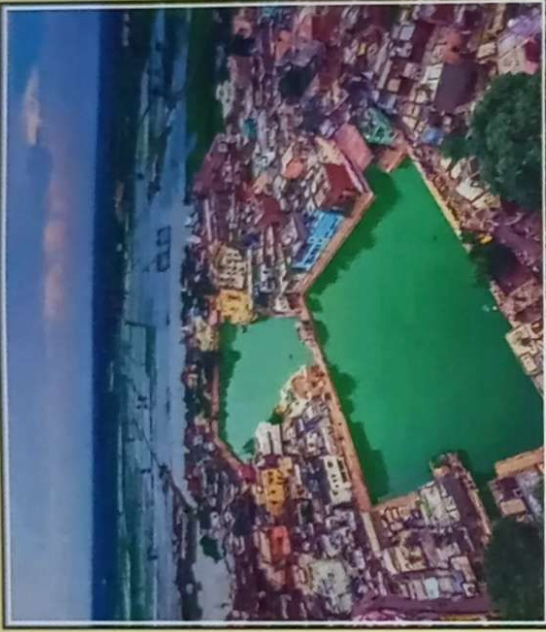
श्रीराधाकुण्ड एवं श्रीकृष्णकुण्ड

कुसुमसरोवर, गोवर्धन
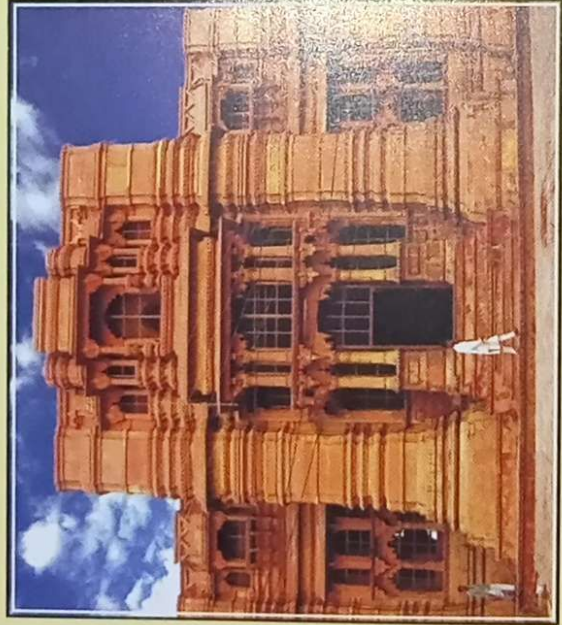
श्रीगोविन्ददेवजी मन्दिर, वृन्दावन
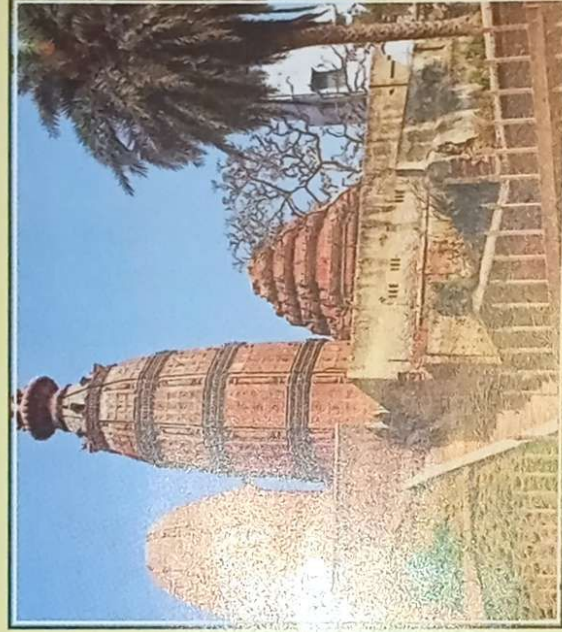
श्रीमदनमोहनजी मन्दिर, वृन्दावन

निधिवन, वृन्दावन

श्रीराधामाधवके कतिपय प्रमुख विग्रह

श्रीराधारमणजी, वृन्दावन
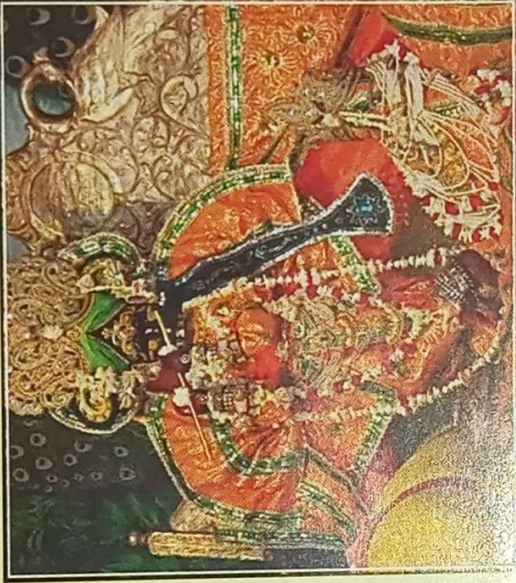
श्रीराधावल्लभजी, वृन्दावन

श्रीबाँकेबिहारी, वृन्दावन

श्रीगोविन्ददेवजी, जयपुर
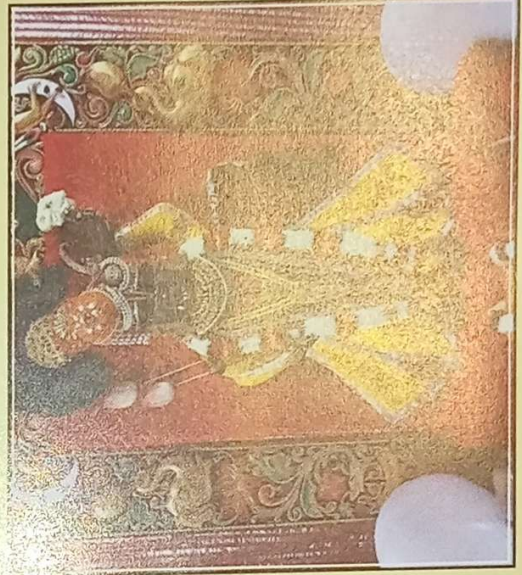
श्रीनाथजी-नाथद्वारा, उदयपुर
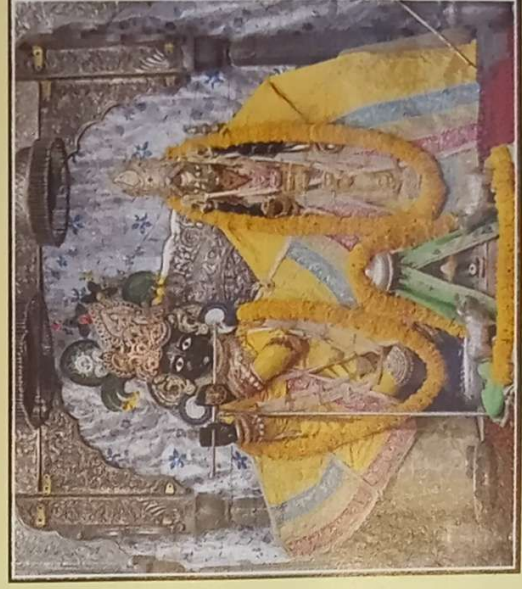
श्रीराधामाधव-श्रीनिम्बार्कतीर्थ, अजमेर

दोउ चकोर, दोउ चन्द्रमा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

यज्जापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम्॥

वर्ष ९३ | गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, जनवरी २०१९ ई० | संख्या १
पूर्ण संख्या ११०६

श्रीराधा-माधवकी वन्दना

दोउ चकोर, दोउ चंद्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ।
दोउ चातक, दोउ मेघ प्रिय, दोउ मछरी, जल दोउ॥
आस्त्रय-आलंबन दोउ, बिषयालंबन दोउ।
प्रेमी-प्रेमास्पद दोउ, तत्सुख-सुखिया दोउ॥
लीला-आस्वादन-निरत, महाभाव-रसराज।
बितरत रस दोउ दुहुन कौं, रचि बिचित्र सुठि साज॥
सहित बिरोधी धर्म-गुन जुगपत नित्य अनंत।
बचनातीत अचिन्त्य अति, सुषमामय श्रीमंत॥
श्रीराधा-माधव-चरन बंदौं बारंबार।
एक तत्त्व दो तनु धरैं, नित-रस-पारावार॥

[पद-रत्नाकर]

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' के सम्मान्य सदस्योंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ९३वें वर्ष—सन् २०१९ का यह विशेषाङ्क—'श्रीराधामाधव-अङ्क' आपलोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४८२ पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ६ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं। डाकसे सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क-प्रेषणमें लगभग एक माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एवं प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) उचित व्यवस्थाके लिये यहाँ भेज देना चाहिये अथवा उक्त वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-संख्या एवं पता छपा है, उसे कृपया जाँच लें तथा नोट कर लें। पत्र-व्यवहारमें सदस्य-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है।

४-कल्याणके मासिक अङ्क सामान्य डाकसे भेजे जाते हैं। अब कल्याणके मासिक अङ्क नि:शुल्क पढ़नेके लिये kalyan-gitapress.org पर उपलब्ध हैं।

५-*'कल्याण'* एवं *'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग'* की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक—**'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)**

'कल्याण' के उपलब्ध पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹
1184	श्रीकृष्णाङ्क	२००	1133	सं० श्रीमद्देवीभागवत	२६५	1132	धर्मशास्त्राङ्क	१५०
41	शक्ति-अङ्क	२००	789	सं० शिवपुराण	२००	1131	कूर्मपुराण—सानुवाद	१५०
616	योगाङ्क-परिशिष्टसहित	२८०	631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	२३०	1044	वेद-कथाङ्क-परिशिष्टसहित	२००
627	संत-अङ्क	२६०	1135	श्रीभगवन्नाम-महिमा और		1980	ज्योतिषतत्त्वाङ्क	१५०
604	साधनाङ्क	२५०		प्रार्थना-अङ्क	१६०	2066	भक्तमाल अङ्क	२३०
1773	गो-अङ्क	१९०	572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	२२०	1189	सं० गरुडपुराण	१७५
44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२८०	517	गर्ग-संहिता	१६५	1985	लिङ्गमहापुराण-सटीक	२२०
539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	१००	1113	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद	१००	1592	आरोग्य-अङ्क	
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१४०	1362	अग्निपुराण	२२५		(परिवर्धित संस्करण)	२२५
43	नारी-अङ्क	२४०		(मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)		1610	(महाभागवत) देवीपुराण	
659	उपनिषद्-अङ्क	२००	1432	वामनपुराण-सानुवाद	१५०		सानुवाद	१३०
518	हिन्दू-संस्कृति अङ्क	३००	557	मत्स्यमहापुराण-सानुवाद	३००	1793	श्रीमद्देवीभागवताङ्क-पूर्वार्द्ध	१००
279	सं० स्कन्दपुराण	३५०	657	श्रीगणेश-अङ्क	१७०	1887	श्रीमद्देवीभागवताङ्क-उत्तरार्ध	
40	भक्त-चरिताङ्क	२३०	42	हनुमान-अङ्क-परिशिष्टसहित	१५०		[अजिल्द]	७५
1183	सं० नारदपुराण	२००	1361	सं० श्रीवाराहपुराण	१२०	1875	सेवा-अङ्क	१३०
667	संतवाणी-अङ्क	१००	791	सूर्याङ्क	१५०	2035	गङ्गा-अङ्क	१३०
587	सत्कथा-अङ्क	२००	584	सं० भविष्यपुराण	१८०	2125	श्रीशिवमहापुराणाङ्क-पूर्वाध	१४०
636	तीर्थाङ्क	२३०	586	शिवोपासनाङ्क	१५०	2154	श्रीशिवमहापुराणाङ्क-	
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ	१८०	653	गोसेवा-अङ्क	१३०		उत्तरार्ध	१४०

सभी अङ्कोंपर डाक-व्यय ₹ ३० अतिरिक्त देय होगा। गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभागसे प्राप्य हैं।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)**

श्रीहरिः

'श्रीराधामाधव-अङ्क' की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

[ख] रासलीला एवं रासतत्त्व

[ग] गोपीतत्त्व

राधामाधव-उपासना

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

श्रीराधामाधवतत्त्व—आध्यात्मिक दृष्टि

बिखरे विविध-प्रसंग

[लीला-प्रसंग एवं अन्य रचनाएँ]

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या

बिखरे काव्य-सुमन

चित्र-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या

(रंगीन चित्र)

(सादे चित्र)

श्रुतियोंमें श्रीराधा-माधव

कृष्णो ह वै हरिः परमो देवः षड्विधैश्वर्यपरिपूर्णो भगवान् गोपीगोपसेव्यो वृन्दाराधितो वृन्दावनाधिनाथः, स एक एवेश्वरः।

भगवान् हरि श्रीकृष्ण ही परम देव हैं, वे (ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, ज्ञान और वैराग्य—इन) छहों ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण भगवान् हैं। गोप-गोपियाँ उनकी सेवा करती हैं, वृन्दा (तुलसीजी) उनकी आराधना करती हैं, वे वृन्दावनके स्वामी हैं, वे ही एकमात्र परमेश्वर हैं।

तस्य शक्तयस्त्वनेकधा। आह्लादिनीसंधिनी-ज्ञानेच्छाक्रियाद्या बहुविधाः शक्तयः। तास्वाह्लादिनी वरीयसी परमान्तरङ्गभूता राधा। कृष्णेन आराध्यत इति राधा, कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका।

उन श्रीकृष्णकी आह्लादिनी, संधिनी, ज्ञान, इच्छा, क्रिया आदि बहुत प्रकारकी शक्तियाँ हैं। इनमें आह्लादिनी सबसे श्रेष्ठ है। यही परम अन्तरंगभूता 'श्रीराधा' हैं, जो श्रीकृष्णके द्वारा आराधिता हैं। श्रीराधा भी श्रीकृष्णका सदा समाराधन करती हैं, अतः वे राधिका कहलाती हैं।

'येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत्।' एषा वै हरेः सर्वेश्वरी सर्वविद्या सनातनी कृष्णप्राणाधिदेवी चेति विविक्ते वेदाः स्तुवन्ति, यस्या गतिं ब्रह्मभागा वदन्ति।

ये श्रीराधा और रस-सागर श्रीकृष्ण एक ही शरीर हैं, लीलाके लिये ये दो बन गये हैं। ये श्रीराधा भगवान् श्रीहरिकी सम्पूर्ण ईश्वरी हैं, सम्पूर्ण सनातनी विद्या हैं, श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। एकान्तमें चारों वेद इनकी स्तुति करते हैं। ब्रह्मवेत्ता इन्हींकी प्राप्तिका निरूपण करते हैं। **[ऋग्वेदीय श्रीराधोपनिषत्]**

देवकी ब्रह्मपुत्रा सा या वेदैरुपगीयते। निगमो वसुदेवो यो वेदार्थः कृष्णरामयोः॥ स्तुवते सततं यस्तु सोऽवतीर्णो महीतले। वने वृन्दावने क्रीडन्गोपगोपीसुरैः सह॥ गोप्यो गाव ऋचस्तस्य यष्टिका कमलासनः। वंशस्तु भगवान्रुद्रः शृङ्गमिन्द्रः सगोसुरः॥ गोकुलं वनवैकुण्ठं तापसास्तत्र ते द्रुमाः। लोभक्रोधादयो दैत्याः कलिकालस्तिरस्कृताः॥

ब्रह्मविद्यामयी वैष्णवी माया ही देवकीरूपमें प्रकट हुई। निगम (वेद) ही वसुदेव हैं, जो सदा नारायणके स्वरूपका स्तवन करते हैं। वेदोंका तात्पर्यभूत ब्रह्म ही श्रीबलराम और श्रीकृष्णके रूपमें इस महीतलपर अवतीर्ण हुआ। वह मूर्तिमान् वेदार्थ ही वृन्दावनमें गोप-गोपियों और देवताओंके साथ क्रीडा करता है। ऋचाएँ उस श्रीकृष्णकी गौएँ और गोपियाँ हैं। ब्रह्मा लकुटीरूप धारण किये हुए हैं और रुद्र वंश अर्थात् वंशी बने हैं। देवराज इन्द्र शृंगीवाद्य बने हैं। गोकुल नामक वनके रूपमें साक्षात् वैकुण्ठ है। वहाँ द्रुमोंके रूपमें तपस्वी महात्मा हैं। लोभ-क्रोधादिने दैत्योंका रूप धारण किया है, जो कलियुगमें केवल भगवान्‌का नाम लेनेमात्रसे तिरस्कृत (नष्ट) हो जाते हैं।

[अथर्ववेदीय श्रीकृष्णोपनिषत्]

एको वशी सर्वगः कृष्ण ईड्य एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति। तं पीठस्थं येऽनुभजन्ति धीरास्तेषां सिद्धिः शाश्वती नेतरेषाम्॥ नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्। तं पीठगं येऽनुभजन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥

एकमात्र, सबको वशमें रखनेवाले, सर्वव्यापी भगवान् श्रीकृष्ण सर्वथा स्तवन करनेयोग्य हैं। वे एक होकर भी बहुत रूपोंमें प्रकाशित हो रहे हैं। जो धीर भक्त उन पीठस्थ भगवान्‌को भजते हैं, उन्हींको सनातनी सिद्धि मिलती हैं, दूसरोंको नहीं।

जो नित्योंके भी नित्य है, चेतनोंके भी परम चेतन हैं, जो एक ही बहुतोंकी कामना पूर्ण करते हैं, उन पीठस्थ भगवान्‌को जो धीर भक्तजन भजते हैं, उन्हींको सनातन सुख मिलता है, दूसरोंको नहीं।

[अथर्ववेदीय श्रीगोपालपूर्वतापिन्युपनिषत्]

श्रीराधा-माधव-ध्यान-मंजरी

श्रीराधा-ध्यान

ध्यान-१

हेमाभां द्विभुजां वराभयकरां नीलाम्बरेणावृतां
श्यामक्रोडविलासिनीं भगवतीं सिन्दूरपुञ्जोज्ज्वलाम्।
लोलाक्षीं नवयौवनां स्मितमुखीं बिम्बाधरां राधिकां
नित्यानन्दमयीं विलासनिलयां दिव्याङ्गभूषां भजे॥

जिनके गोरे-गोरे अंगोंकी हेममयी आभा है, जो दो भुजाओंसे युक्त हैं और दोनों हाथोंमें क्रमशः वर एवं अभयकी मुद्रा धारण करती हैं, नीले रंगकी रेशमी साड़ी जिनके श्रीअंगोंका आवरण बनी हुई है, जो श्यामसुन्दरके अंकमें विलास करती हैं, सीमन्तगत सिन्दूरपुंजसे जिनकी सौन्दर्यश्री और भी उद्भासित हो उठी है; चपल नयन, नित्य नूतन यौवन, मुखपर मन्द-हासकी छटा तथा बिम्बफलकी अरुणिमाको भी तिरस्कृत करनेवाला अधर-राग जिनका अनन्य साधारण वैशिष्ट्य है, जो नित्य आनन्दमयी तथा विलासकी आवासभूमि हैं, जिनके अंगोंके आभूषण दिव्य (अलौकिक) हैं, उन भगवती श्रीराधिकाका मैं चिन्तन करता हूँ।

ध्यान-२

श्यामामण्डलमौलिमण्डनमणिः श्यामानुरागस्फुर-
द्रोमोद्भेदविभाविताकृतिरहो काश्मीरगौरच्छविः।
सातीवोन्मदकामकेलितरला मां पातु मन्दस्मिता
मन्दारद्रुमकुञ्जमन्दिरगता गोविन्दपट्टेश्वरी॥

(राधारससुधानिधि १२१)

'अहो! जो श्यामा गोपांगनागणकी शिरोभूषणमणि-स्वरूपा हैं, जिनके अंग श्यामानुरागहेतु विकसित रोमांचद्वारा विभावित हैं, जिनकी कान्ति कुंकुमगौर है एवं जो उन्मादिनी विलासलीलासे विह्वल-सी हो रही हैं, कल्पकुंजमन्दिरगता वे मन्द मुसकानवाली गोविन्द-पट्टेश्वरी श्रीराधा मेरी रक्षा करें।'

श्रीकृष्ण-ध्यान

ध्यान-१

शिखिमुकुटविशेषं नीलपद्माङ्गदेशं
विधुमुखकृतकेशं कौस्तुभापीतवेशम्।
मधुररवकलेशं शं भजे भ्रातृशेषं
व्रजजनवनितेशं माधवं राधिकेशम्॥

(गर्गसंहिता १०।५९।१३)

जिनके मस्तकपर मोरपंखका मुकुट विशेष शोभा देता है, जिनका अंगदेश (सम्पूर्ण शरीर) नील-कमलके समान श्यामल है, चन्द्रमाके समान मनोहर मुखपर कुंचित केश सुशोभित हैं, कौस्तुभमणिकी सुनहरी आभासे जिनका वेश कुछ पीतवर्णका दिखायी देता है (अथवा जो पीताम्बरधारी हैं), जो (मुरलीकी) मधुर ध्वनिरूपी कलाके स्वामी हैं, कल्याणस्वरूप हैं, शेषावतार बलराम जिनके भाई हैं तथा जो व्रजवनिताओंके वल्लभ हैं, उन राधिकाके प्राणेश्वर माधवका मैं भजन करता हूँ।

ध्यान-२

अंसालम्बितवामकुण्डलधरं मन्दोन्नतभ्रूलतं
किञ्चित्कुञ्चितकोमलाधरपुटं साचिप्रसारीक्षणम्।
आलोलाङ्गुलिपल्लवैर्मुरलिकामापूरयन्तं मुदा
मूले कल्पतरोस्त्रिभङ्गललितं ध्यायेज्जगन्मोहनम्॥

(श्रीलीलाशुक २।१०३)

जो कन्धेतक लटकते हुए मनोहर कुण्डल धारण किये हुए हैं, जिनकी भ्रूलता [धनुषकी भाँति] खिंची हुई है, जिनके अधरपल्लव अति कोमल, सुन्दर और किंचित् कुंचित हैं, जिनके नेत्र बाँके और विशाल हैं और जो कल्पतरु (या कदम्ब)-के नीचे मनहरण त्रिभंगरूपसे खड़े आनन्दके साथ चंचल कोमल अंगुलियोंको वंशीके छिद्रोंपर फिराते हुए उसे बजा रहे हैं, ऐसे जगन्मोहन मनमोहन श्यामसुन्दरका ध्यान करना चाहिये।

श्रीराधाष्टकम्

नमस्ते श्रियै राधिकायै परायै नमस्ते नमस्ते मुकुन्दप्रियायै।
सदानन्दरूपे प्रसीद त्वमन्तःप्रकाशे स्फुरन्ती मुकुन्देन सार्धम्॥ १॥

स्ववासोऽपहारं यशोदासुतं वा स्वदध्यादिचौरं समाराधयन्तीम्।
स्वदाम्नोदरं या बबन्धाशु नीव्या प्रपद्ये नु दामोदरप्रेयसीं ताम्॥ २॥

दुराराध्यमाराध्य कृष्णं वशे त्वं महाप्रेमपूरेण राधाभिधाऽभूः।
स्वयं नामकृत्या हरिप्रेम यच्छ प्रपन्नाय मे कृष्णरूपे समक्षम्॥ ३॥

मुकुन्दस्त्वया प्रेमदोरेण बद्धः पतङ्गो यथा त्वामनुभ्राम्यमाणः।
उपक्रीडयन् हार्दमेवानुगच्छन् कृपा वर्तते कारयातो मयेष्टिम्॥ ४॥

व्रजन्तीं स्ववृन्दावने नित्यकालं मुकुन्देन साकं विधायाङ्कमालम्।
सदा मोक्ष्यमाणानुकम्पाकटाक्षैः श्रियं चिन्तयेत् सच्चिदानन्दरूपाम्॥ ५॥

श्रीराधिके! तुम्हीं श्री (लक्ष्मी) हो, तुम्हें नमस्कार है, तुम्हीं पराशक्ति राधिका हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम मुकुन्दकी प्रियतमा हो, तुम्हें नमस्कार है। सदानन्दस्वरूपे देवि! तुम मेरे अन्तःकरणके प्रकाशमें श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके साथ सुशोभित होती हुई मुझपर प्रसन्न होओ॥ १॥

जो अपने वस्त्रका अपहरण करनेवाले अथवा अपने दूध-दही, माखन आदि चुरानेवाले यशोदानन्दन श्रीकृष्णकी आराधना करती हैं, जिन्होंने अपनी नीवीके बन्धनसे श्रीकृष्णके उदरको शीघ्र ही बाँध लिया था, जिसके कारण उनका नाम 'दामोदर' हो गया; उन दामोदरकी प्रियतमा श्रीराधा-रानीकी मैं निश्चय ही शरण लेता हूँ॥ २॥

श्रीराधे! जिनकी आराधना कठिन है, उन श्रीकृष्णकी भी आराधना करके तुमने अपने महान् प्रेमसिन्धुकी बाढ़से उन्हें वशमें कर लिया। श्रीकृष्णकी आराधनाके ही कारण तुम राधानामसे विख्यात हुईं। श्रीकृष्णस्वरूपे! अपना यह नामकरण स्वयं तुमने किया है, इससे अपने सन्मुख आये हुए मुझ शरणागतको श्रीहरिका प्रेम प्रदान करो॥ ३॥

तुम्हारी प्रेमडोरमें बँधे हुए भगवान् श्रीकृष्ण पतंगकी भाँति सदा तुम्हारे आस-पास ही चक्कर लगाते रहते हैं, हार्दिक प्रेमका अनुसरण करके तुम्हारे पास ही रहते और क्रीडा करते हैं। देवि! तुम्हारी कृपा सबपर है, अतः मेरे द्वारा अपनी आराधना (सेवा) करवाओ॥ ४॥

जो प्रतिदिन नियत समयपर श्रीश्यामसुन्दरके साथ उन्हें अपने अंककी माला अर्पित करके अपनी लीलाभूमि-वृन्दावनमें विहार करती हैं, भक्तजनोंपर प्रयुक्त होनेवाले कृपा-कटाक्षोंसे सुशोभित उन सच्चिदानन्दस्वरूपा श्रीलाड़िलीका सदा चिन्तन करे॥ ५॥

मुकुन्दानुरागेण रोमाञ्चिताङ्गीमहं व्याप्यमानां तनुस्वेदविन्दुम्।
महाहार्दवृष्ट्या कृपापाङ्गदृष्ट्या समालोकयन्तीं कदा त्वां विचक्षे॥ ६॥

पदाङ्कावलोके महालालसौघं मुकुन्दः करोति स्वयं ध्येयपादः।
पदं राधिके ते सदा दर्शयान्तर्हृदीतो नमन्तं किरद्रोचिषं माम्॥ ७॥

सदा राधिकानाम जिह्वाग्रतः स्यात् सदा राधिकारूपमक्ष्यग्र आस्ताम्।
श्रुतौ राधिकाकीर्तिरन्तःस्वभावे गुणा राधिकायाः श्रिया एतदीहे॥ ८॥

इदं त्वष्टकं राधिकायाः प्रियायाः पठेयुः सदैवं हि दामोदरस्य।
सुतिष्ठन्ति वृन्दावने कृष्णधाम्नि सखीमूर्तयो युग्मसेवानुकूलाः॥ ९॥

॥ इति श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रविरचितं श्रीराधाष्टकं सम्पूर्णम्॥

श्रीराधे! तुम्हारे मन-प्राणोंमें आनन्दकन्द श्रीकृष्णका प्रगाढ़ अनुराग व्याप्त है, अतएव तुम्हारे श्रीअंग सदा रोमांचसे विभूषित हैं और अंग-अंग सूक्ष्म स्वेदविन्दुओंसे सुशोभित होता है। तुम अपनी कृपा-कटाक्षसे परिपूर्ण दृष्टिद्वारा महान् प्रेमकी वर्षा करती हुई मेरी ओर देख रही हो; इस अवस्थामें मुझे कब तुम्हारा दर्शन होगा?॥ ६॥

श्रीराधिके! यद्यपि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण स्वयं ही ऐसे हैं कि उनके चारु-चरणोंका चिन्तन किया जाय, तथापि वे तुम्हारे चरण-चिह्नोंके अवलोकनकी बड़ी लालसा रखते हैं। देवि! मैं नमस्कार करता हूँ। इधर मेरे अन्तःकरणके हृदय-देशमें ज्योति-पुंज बिखेरते हुए अपने चिन्तनीय चरणारविन्दका मुझे दर्शन कराओ॥ ७॥

मेरी जिह्वाके अग्रभागपर सदा श्रीराधिकाका नाम विराजमान रहे। मेरे नेत्रोंके समक्ष सदा श्रीराधाका ही रूप प्रकाशित हो। कानोंमें श्रीराधिकाकी कीर्ति-कथा गूँजती रहे और अन्तर्हृदयमें लक्ष्मीस्वरूपा श्रीराधाके ही असंख्य गुणगणोंका चिन्तन हो, यही मेरी शुभ कामना है॥ ८॥

दामोदरप्रिया श्रीराधाकी स्तुतिसे सम्बन्ध रखनेवाले इन आठ श्लोकोंका जो लोग सदा इसी रूपमें पाठ करते हैं, वे श्रीकृष्णधाम वृन्दावनमें युगल-सरकारकी सेवाके अनुकूल सखी-शरीर पाकर सुखसे रहते हैं॥ ९॥

वन्दे राधापदाम्भोजं ब्रह्मादिसुरवन्दितम्।
यत्कीर्तिकीर्तनेनैव पुनाति भुवनत्रयम्॥

[ब्रह्मवैवर्तपुराण]

[श्रीउद्धवजी कहते हैं—] मैं श्रीराधाजीके उन चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा वन्दित हैं तथा जिनकी कीर्तिके कीर्तनसे ही तीनों भुवन पवित्र हो जाते हैं।

युगलाष्टकम्

कृष्णप्रेममयी राधा राधाप्रेममयो हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ १ ॥
कृष्णस्य द्रविणं राधा राधाया द्रविणं हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ २ ॥
कृष्णप्राणमयी राधा राधाप्राणमयो हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ ३ ॥
कृष्णद्रवमयी राधा राधाद्रवमयो हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ ४ ॥
कृष्णगेहे स्थिता राधा राधागेहे स्थितो हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ ५ ॥
कृष्णचित्तस्थिता राधा राधाचित्तस्थितो हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ ६ ॥
नीलाम्बरधरा राधा पीताम्बरधरो हरिः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ ७ ॥
वृन्दावनेश्वरी राधा कृष्णो वृन्दावनेश्वरः।
जीवने निधने नित्यं राधाकृष्णौ गतिर्मम ॥ ८ ॥

॥ इति श्रीमज्जीवगोस्वामिविरचितं युगलाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

राधाजी कृष्णप्रेममयी हैं और श्रीकृष्ण राधाप्रेममय हैं—ऐसे वे राधा और कृष्ण मेरे जीवनमें तथा जीवनके बाद भी सदा-सर्वदा मेरा [एकमात्र] आश्रय हैं ॥ १ ॥ श्रीकृष्णका सर्वस्व श्रीराधा हैं और श्रीराधाका सर्वस्व श्रीकृष्ण हैं—ऐसे वे राधा और कृष्ण मेरे जीवनमें तथा जीवनके बाद भी सदा-सर्वदा मेरा [एकमात्र] आश्रय हैं ॥ २ ॥ श्रीकृष्णकी प्राणरूपा श्रीराधा हैं और श्रीराधाके प्राणस्वरूप श्रीकृष्ण हैं—ऐसे वे राधा और कृष्ण मेरे जीवनमें तथा जीवनके बाद भी सदा-सर्वदा मेरा [एकमात्र] आश्रय हैं ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णके प्रेमरससे आप्लावित श्रीराधा हैं और श्रीराधाके प्रेमरससे आप्लावित श्रीकृष्ण हैं—ऐसे वे राधा और कृष्ण मेरे जीवनमें तथा जीवनके बाद भी सदा-सर्वदा मेरा [एकमात्र] आश्रय हैं ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णके [हृदयरूप] मन्दिरमें श्रीराधा स्थित हैं और श्रीराधाके [हृदयरूप] मन्दिरमें श्रीकृष्ण विराजमान हैं—ऐसे वे राधा और कृष्ण मेरे जीवनमें तथा जीवनके बाद भी सदा-सर्वदा मेरा [एकमात्र] आश्रय हैं ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णके चित्तमें श्रीराधा शोभायमान हैं और श्रीराधाके चित्तमें श्रीकृष्ण विराज रहे हैं—ऐसे वे राधा और कृष्ण मेरे जीवनमें तथा जीवनके बाद भी सदा-सर्वदा मेरा [एकमात्र] आश्रय हैं ॥ ६ ॥ श्रीराधाने नीलाम्बर धारण कर रखा है और श्रीकृष्ण पीताम्बरसे शोभा पा रहे हैं—ऐसे वे राधा और कृष्ण मेरे जीवनमें तथा जीवनके बाद भी सदा-सर्वदा मेरा [एकमात्र] आश्रय हैं ॥ ७ ॥ श्रीराधा वृन्दावनकी अधीश्वरी हैं और श्रीकृष्ण वृन्दावनके अधीश्वर हैं—ऐसे वे राधा और कृष्ण मेरे जीवनमें तथा जीवनके बाद भी सदा-सर्वदा मेरा [एकमात्र] आश्रय हैं ॥ ८ ॥

मधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ १॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ २॥
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ३॥
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ४॥
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं स्मरणं मधुरम्।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ५॥
गुंजा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ६॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम्।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ७॥
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ ८॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यकृतं मधुराष्टकं सम्पूर्णम्॥

श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है। उनके अधर मधुर हैं, मुख मधुर है, नेत्र मधुर हैं, हास्य मधुर है, हृदय मधुर है और गति भी अति मधुर है॥ १॥ उनके वचन मधुर हैं, चरित्र मधुर हैं, वस्त्र मधुर हैं, अंगभंगी मधुर है, चाल मधुर है और भ्रमण भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सब कुछ मधुर है॥ २॥ उनकी वेणु मधुर है, चरणरज मधुर है, करकमल मधुर हैं, चरण मधुर हैं, नृत्य मधुर है और सख्य भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ३॥ उनका गान मधुर है, पान मधुर है, भोजन मधुर है, शयन मधुर है, रूप मधुर है और तिलक भी अति मधुर है, श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ४॥ उनका कार्य मधुर है, तैरना मधुर है, हरण मधुर है, स्मरण मधुर है, उद्‌गार मधुर है और शान्ति भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ५॥ उनकी गुंजा मधुर है, माला मधुर है, यमुना मधुर है, उसकी तरंगे मधुर हैं, उसका जल मधुर है और कमल भी अति मधुर हैं; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ६॥ गोपियाँ मधुर हैं, उनकी लीला मधुर है, उनका संयोग मधुर है, वियोग मधुर है, निरीक्षण मधुर है और शिष्टाचार भी मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ७॥ गोप मधुर हैं, गौएँ मधुर हैं, लकुटी मधुर है, रचना मधुर है, दलन मधुर है और उसका फल भी अति मधुर है; श्रीमधुराधिपतिका सभी कुछ मधुर है॥ ८॥

श्रीराधा-माधव-कीर्तन

ॐ जय श्री राधा, जय श्री कृष्ण,
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥
चंद्रमुखी चंचल चितचोरी। (राधा)
सुघर साँवरा सूरत भोरी॥ (कृष्ण)
श्यामा-श्याम एक-सी जोरी। (राधाकृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्री राधा, जय श्री कृष्ण,
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥
पचरँग चूनर केसर क्यारी। (राधा)
पट पीतांबर कामर कारी॥ (कृष्ण)
एकरूप अनुपम छबि प्यारी। (राधाकृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्री राधा, जय श्री कृष्ण,
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥
चंद्र-चंद्रिका चमचम चमकै। (राधा)
मोरमुकुट सिर दमदम दमकै॥ (कृष्ण)
युगल-प्रेम रस झमझम झमकै। (राधाकृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्री राधा, जय श्री कृष्ण,
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥
कस्तूरी-कुंकुम जुत बिंदा। (राधा)
चंदन चारु तिलक ब्रज चंदा॥ (कृष्ण)
सुहृद-लाड़ली लाल सुनंदा। (राधाकृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्री राधा, जय श्री कृष्ण,
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥
घूँमघुमारो घाँघर सोहै। (राधा)
कटिकछनी कमलापति सोहै॥ (कृष्ण)
कमलासन सुर-मुनि-मन मोहै। (राधाकृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्री राधा, जय श्री कृष्ण,
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥
रत्नजटित आभूषण सुंदर। (राधा)
कौस्तुभमणि कमलांकित नटवर॥ (कृष्ण)
रणत्क्वणत् मुरली-ध्वनि मनहर। (राधाकृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्री राधा, जय श्री कृष्ण,
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥
मंद हँसन मतवारे नैना। (राधा)
मनमोहन मन हारे सैना॥ (कृष्ण)
मृदु मुसुकावनि मीठे बैना। (राधाकृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्री राधा, जय श्री कृष्ण,
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥
श्रीराधा भव-बाधा-हारी। (राधा)
संकट-मोचन कृष्ण मुरारी॥ (कृष्ण)
एक शक्ति, एकहि आधारी। (राधाकृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्री राधा, जय श्री कृष्ण,
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥
जगज्ज्योति जगजननी माता। (राधा)
जगजीवन, जग-पितु जग-दाता॥ (कृष्ण)
जगदाधार, जगद्विख्याता। (राधाकृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्री राधा, जय श्री कृष्ण,
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥
राधा राधा कृष्ण कन्हैया। (राधा)
भव-भय सागर पार लगैया॥ (कृष्ण)
मंगल-मूरति, मोक्ष-करैया। (राधाकृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्री राधा, जय श्री कृष्ण,
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥
सर्वेश्वरी सर्व-दुख-दाहन। (राधा)
त्रिभुवनपति, त्रयताप-नसावन॥ (कृष्ण)
परम देवि, परमेश्वर पावन। (राधाकृष्ण)
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्री राधा, जय श्री कृष्ण,
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥
त्रिसमय युगलचरण चित ध्यावै।
सो नर जगत परमपद पावै॥
राधाकृष्ण 'छैल' मन भावै।
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

ॐ जय श्रीराधा, जय श्रीकृष्ण,
श्रीराधाकृष्णाय नमः॥

श्रीराधा-माधवसे प्रार्थना

(१)

स्याम-स्वामिनी राधिके! करौ कृपा कौ दान।
सुनत रहैं मुरली मधुर मधुमय बानी कान॥
पद-पंकज-मकरन्द नित पियत रहैं दृग-भृंग।
करत रहैं सेवा परम सतत सकल सुचि अंग॥
रसना नित पाती रहै दुर्लभ भुक्त प्रसाद।
बानी नित लेती रहै नाम-गुननि-रस-स्वाद॥
लगौ रहै मन अनवरत तुम में आठौं जाम।
अन्य स्मृति सब लोप हों सुमिरत छबि अभिराम॥
बढ़त रहै नित पलहिं-पल दिब्य तुम्हारौ प्रेम।
सम होवैं सब द्वंद पुनि, बिसरैं जोग-च्छेम॥
भुक्ति-मुक्ति की सुधि मिटै, उछलैं प्रेम-तरंग।
राधा-माधव सरस सुधि करै तुरत भव-भंग॥

(२)

श्रीराधा-माधव! यह मेरी सुन लो विनती परम उदार।
मुझे स्थान दो निज चरणोंमें, पावन प्रभु! कर कृपा अपार॥
भूलूँ सभी जगतको, केवल रहे तुम्हारी प्यारी याद।
सुनूँ जगतकी बात न कुछ भी, सुनूँ तुम्हारे ही संवाद॥
भोगोंकी कुछ सुध न रहे, देखूँ सर्वत्र तुम्हारा मुख।
मधुर-मधुर मुसकाता नित उपजाता अमित अलौकिक सुख॥
रहे सदा प्रिय नाम तुम्हारा मधुर दिव्य रसना रसखान।
मनमें बसे तुम्हारी प्यारी मूर्ति मंजु सौन्दर्य-निधान॥
तनसे सेवा करूँ तुम्हारी, प्रति इन्द्रियसे अति उल्लास।
साफ करूँ पगरखी-पीकदानी सेवा-निकुंजमें खास॥
बनी खवासिन मैं चरणोंकी करूँ सदा सेवा, अति दीन।
रहूँ प्रिया-प्रियतमके नित पद-पद्म-पराग-सुसेवन-लीन॥

(३)

हे राधा-माधव! तुम दोनों दो मुझको चरणोंमें स्थान।
दासी मुझे बनाकर रक्खो, सेवाका दो अवसर-दान॥
मैं अति मूढ़, चाकरीकी चतुराईका न तनिक-सा ज्ञान।
दीन, नवीन सेविकापर दो समुद उडेल सनेह अमान॥
रज-कण सरस चरण-कमलोंका खो देगा सारा अज्ञान।
ज्योतिमयी रसमयी सेविका मैं बन जाऊँगी सज्ञान॥
राधा-सखी-मंजरीको रख सम्मुख मैं आदर्श महान।
हो पदानुगत उसके, नित्य करूँगी मैं सेवा सविधान॥
झाड़ू दूँगी मैं निकुंजमें, साफ करूँगी पादत्रान।
हौले-हौले हवा करूँगी सुखद-व्यजन ले सुरभित आन॥
देखा नित्य करूँगी मैं तुम दोनोंकी मोहनि मुसकान।
वेतन यही, यही होगा बस, मेरा पुरस्कार निर्मान॥

(४)

राधा-माधव-पद-कमल बंदौं बारंबार।
मिल्यौ अहैतुक कृपा तैं यह अवसर सुभ-सार॥
दीन-हीन अति, मलिन-मति, बिषयनि कौ नित दास।
करौं बिनय केहि मुख, अधम मैं, भर मन उल्लास॥
दीनबंधु तुम सहज दोउ, कारन-रहित कृपाल।
आरतिहर अपुनौ बिरुद लखि मोय करौ निहाल॥
हरौ सकल बाधा कठिन, करौ आपुने जोग।
पद-रज-सेवा कौ मिलै मोय सुखद संजोग॥
प्रेम-भिखारी पर्‌यौ मैं आय तिहारे द्वार।
करौ दान निज-प्रेम सुचि, बरद जुगल-सरकार॥
श्रीराधा-माधव-जुगल हरन सकल दुखभार।
सब मिलि बोलौ प्रेम तैं तिनकी जै-जै-कार॥

श्रीराधा-माधवके प्रेमोद्गार

श्रीकृष्णके प्रेमोद्गार

[श्रीराधाके प्रति]

हे प्रियतमे राधिके! तेरी महिमा अनुपम, अकथ, अनन्त।
युग-युगसे गाता मैं अविरत, नहीं कहीं भी पाता अन्त॥
सुधानन्द बरसाता हियमें तेरा मधुर वचन अनमोल।
बिका सदाके लिये मधुर दृग-कमल, कुटिल भ्रुकुटीके मोल॥
जपता तेरा नाम मधुर अनुपम, मुरलीमें नित्य ललाम।
नित अतृप्त नयनोंसे तेरा रूप देखता अति अभिराम॥
कहीं न मिला प्रेम शुचि ऐसा, कहीं न पूरी मनकी आश।
एक तुझीको पाया मैंने जिसने किया पूर्ण अभिलाष॥
नित्य तृप्त निष्काम नित्यमें मधुर अतृप्ति, मधुरतम काम।
तेरे दिव्य प्रेमका है यह जादूभरा मधुर परिणाम॥

हे प्रियतमे राधिके! तेरी महिमा उपमारहित, अवर्णनीय और अनन्त है। मैं युग-युगान्तरसे बिना विराम लिये उसका गान करता आ रहा हूँ, तब भी उसका कहीं अन्त—ओर-छोर नहीं मिलता॥ १॥ तेरे मधुर अनमोल बोल मेरे हृदयमें आनन्दामृत बरसाया करते हैं। तेरे मधुर कमल-से नेत्र तथा बाँकी भौंहोंके मोल मैं सदाके लिये बिक चुका हूँ॥ २॥ अपनी मुरलीमें मैं तेरे उपमारहित मधुर एवं श्रेष्ठ नामकी रात-दिन रट लगाया करता हूँ और अतृप्त नेत्रोंसे तेरे अत्यन्त मनोहर रूपको नित्य निहारता रहता हूँ॥ ३॥ तेरे-जैसा निर्मल पवित्र प्रेम मुझको कहीं नहीं मिला, कहीं भी मेरे मनकी आशा पूर्ण नहीं हुई। एकमात्र तू ही मुझको ऐसी मिली है, जिसने मेरी अभिलाषा पूरी की है॥ ४॥ मैं (अपने ही आनन्दसे) नित्य तृप्त रहनेवाला और सदा निष्काम—कामनाहीन हूँ। ऐसे मुझमें मधुर अपरिमित अतृप्ति और अत्यन्त मधुर अपरिमित कामना जगा देना—यह तेरे अलौकिक प्रेमका ही जादूभरा मधुर फल है॥ ५॥

श्रीराधाके प्रेमोद्गार

[श्रीकृष्णके प्रति]

सदा सोचती रहती हूँ मैं, क्या दूँ तुमको, जीवनधन!
जो धन देना तुम्हें चाहती, तुम ही हो वह मेरा धन॥
तुम ही मेरे प्राणप्रिय हो, प्रियतम! सदा तुम्हारी मैं।
वस्तु तुम्हारी तुमको देते पल-पल हूँ बलिहारी मैं॥
प्यारे! तुम्हें सुनाऊँ कैसे अपने मनकी सहित विवेक।
अन्योंके अनेक, पर मेरे तो तुम ही हो, प्रियतम! एक॥
मेरे सभी साधनोंकी, बस एकमात्र हो तुम ही सिद्धि।
तुम ही प्राणनाथ हो, बस, तुम ही हो मेरी नित्य समृद्धि॥
तन-धन-जनका बन्धन टूटा, छूटा भोग-मोक्षका रोग।
धन्य हुई मैं, प्रियतम! पाकर एक तुम्हारा प्रिय संयोग॥

मेरे जीवनधन! मैं सदा सोचती रहती हूँ कि तुमको क्या दूँ। जो धन मैं तुमको देना चाहती हूँ, मेरा वह धन तो तुम ही हो॥ १॥ तुम्हीं मुझको प्राणोंसे प्यारे हो और हे प्रियतम! मैं सदा तुम्हारी हूँ। तुम्हारी ही वस्तु तुमको देती हुई मैं पल-पल तुमपर बलिहारी—न्योछावर हूँ॥ २॥ हे प्यारे! मैं अपने मनकी बात विवेकपूर्वक—होश-हवासमें तुमसे कैसे कहूँ? औरोंके तो अनेक हैं, परंतु मेरे तो हे प्रियतम! तुम एक ही हो॥ ३॥ अधिक क्या कहूँ, मेरे सम्पूर्ण साधनोंकी सिद्धि—सफलता एकमात्र तुम्हीं हो। तुम ही मेरे प्राणनाथ हो और तुम्हीं मेरा नित्य ऐश्वर्य—स्थिर सम्पत्ति हो, केवल इतनी बात मैं जानती हूँ॥ ४॥ देह, धन और परिवारका बन्धन टूट गया; भोग और मोक्षका रोग भी मिट गया। एक तुम्हारा प्यारा संयोग—मिलन पाकर हे प्रियतम! मैं धन्य-धन्य हो गयी॥ ५॥

श्रीराधा-माधव-महिमा-गान

'राधा' शब्दोच्चारणसे मुक्ति

'रा' शब्दोच्चारणाद्भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभाम्।
'धा' शब्दोच्चारणाद्दुर्गे धावत्येव हरेः पदम्॥
'रा' इत्यादानवचनो 'धा' च निर्वाणवाचकः।
यतोऽवाप्नोति मुक्तिं च सा च राधा प्रकीर्तिता॥

[भगवान् शिव कहते हैं—] हे पार्वती! 'रा' शब्दके उच्चारणसे भक्त परम दुर्लभ मुक्ति-पदको प्राप्त करता है और 'धा' शब्दके उच्चारणसे निश्चय ही वह दौड़कर श्रीहरिके धाममें पहुँच जाता है। 'रा' का अर्थ है 'पाना' और 'धा' का अर्थ है निर्वाण—मोक्ष; भक्त उनसे निर्वाण मुक्ति प्राप्त करता है, इसलिये उन्हें 'राधा' कहा गया है। **[ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड]**

श्रीराधा—कृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवी

यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा॥
प्राणाधिष्ठातृदेवी या राधारूपा च सा मुने।

जैसे श्रीकृष्ण ब्रह्मस्वरूप हैं तथा प्रकृतिसे सर्वथा परे हैं, वैसे ही श्रीराधा भी ब्रह्मस्वरूपा, मायाके लेपसे रहित तथा प्रकृतिसे परे हैं। श्रीकृष्णके प्राणोंकी जो अधिष्ठातृदेवी हैं; वे ही श्रीराधा हैं। **[नारदपांचरात्र]**

कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति॥

श्रीराधा श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवी हैं। कारण, परमात्मा श्रीकृष्ण उनके अधीन हैं। वे रासेश्वरी सदा उनके समीप रहती हैं। वे न रहें तो श्रीकृष्ण टिकें ही नहीं। **[देवीभागवत]**

श्रीराधा-माधवमें भेदबुद्धि करना पाप

ये राधिकायां मयि केशवे हरौ
कुर्वन्ति भेदं कुधियो जना भुवि।
ते कालसूत्रे प्रपतन्ति दुःखिता
रम्भोरु यावत् किल चन्द्रभास्करौ॥

'इस पृथ्वीपर जो कुबुद्धि मानव राधिकामें और मुझ केशवमें—हरिमें भेद-बुद्धि करते हैं, वे जबतक चन्द्र-सूर्यका अस्तित्व है, तबतक कालसूत्र नामक नरकमें पड़े हुए दुःख भोगते रहते हैं।'

श्रीराधा ही विश्वधात्री, ईश्वरी मूलप्रकृति

'रा' शब्दश्च महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु।
विश्वप्राणिषु विश्वेषु धा धात्री मातृवाचकः॥
धात्री माताहमेतेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी।
तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुरा बुधैः॥

[श्रीराधारानीजी कहती हैं—] 'रा' शब्दका अर्थ है—जिनके एक-एक रोमकूपमें सम्पूर्ण विश्व भरे हैं, वे महाविष्णु तथा (उनके अन्दर निवास करनेवाले) विश्वके प्राणी और सम्पूर्ण विश्व। एवं 'धा' शब्द धात्री तथा माताका वाचक है। अतएव मैं ही महाविष्णु, विश्वके सम्पूर्ण प्राणी तथा समस्त विश्वकी धात्री माता ईश्वरी मूलप्रकृति हूँ। **[ब्र० कृ० १११। ५७-५८]**

श्रीराधा-माधवका युगलरूप ही सुखकारी

विना राधां कृष्णो न खलु सुखदः सा न सुखदा
विना कृष्णं द्वाभ्यामपि बत विनान्या न सरसाः।
विना रात्रिं नेन्दुस्तमपि न विना सा च रुचिभाग्
विना ताभ्यां जृम्भां दधति कुमुदिन्योऽपि नितराम्॥

'श्रीराधाके बिना श्रीकृष्ण सुखद नहीं हैं और श्रीकृष्णके बिना राधा सुखदा नहीं हैं। और इन दोनोंके बिना अन्य सखियाँ भी रसमयी नहीं हैं—जैसे रात्रिके बिना सुधांशु शोभायुक्त नहीं और सुधांशुके बिना रजनी शोभामयी नहीं है और इन दोनोंके बिना कुमुदिनी प्रमुदित नहीं होती।'

श्रीराधा-आश्रयसे ही श्रीकृष्ण-प्राप्ति

यो मामेव प्रपन्नश्च मत्प्रियां न महेश्वर।
न कदापि स चाप्नोति मामेवं ते मयोदितम्॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मत्प्रियां शरणं व्रजेत्।
आश्रित्य मत्प्रियां रुद्र मां वशीकर्तुमर्हसि॥

[भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—] 'हे महेश्वर! (युगल-स्वरूपकी कृपा चाहनेवाला) जो पुरुष मेरे शरण होता है, परंतु मेरी प्रिया श्रीराधिकाजीके शरण नहीं होता, वह मुझको (युगलस्वरूपमें) वस्तुतः नहीं

प्राप्त होता—यह मैं आपसे सत्य कहता हूँ। अतएव पूरे प्रयत्नसे मेरी प्रिया (श्रीराधिकाजी)-की शरण ग्रहण करो। मेरी प्रियाका आश्रय ग्रहण करनेवाला मुझे अपने वशमें कर लेता है। [**पद्मपुराण, पातालखण्ड**]

श्रीकृष्णकी प्राप्ति एकमात्र प्रेमसे ही

गोपालाङ्गणकर्दमेषु विहरन् विप्राध्वरे लज्जसे
ब्रूषे गोकुलहुङ्कृतैः स्तुतिशतैर्मौनं विधत्से सताम्।
दास्यं गोकुलपुंश्चलीषु कुरुषे स्वाम्यं न दान्तात्मसु
ज्ञातं कृष्ण तवाङ्घ्रिपङ्कजयुगं प्रेमैकलभ्यं मुहुः॥

'श्रीकृष्ण! तुम गोपालोंके कीचड़से भरे आँगनमें तो विहार करते हो, पर ब्राह्मणोंके यज्ञमें प्रकट होनेमें तुम्हें लज्जा आती है। एक बछड़ेकी या छोटे-से गोपशिशुकी हुंकार सुनकर 'हाँ, आया'—बोल उठते हो; पर सत्पुरुषोंके सैकड़ों स्तुतियाँ करनेपर भी मौन रह जाते हो। गोकुलकी ग्वालिनियोंकी तो गुलामी स्वीकार करते हो, पर इन्द्रिय-संयमी पुरुषोंके द्वारा प्रार्थना करनेपर भी उनके स्वामी बनना तुम्हें स्वीकार नहीं है। इससे पता लगता है कि तुम्हारे चरण-कमल-युगलकी प्राप्ति एकमात्र प्रेमसे ही सम्भव है।'

प्रेमरसका विचित्र आस्वादन

एकस्य श्रुतमेव लुम्पति मतिं कृष्णेति नामाक्षरं
सान्द्रोन्मादपरम्परामुपनयत्यन्यस्य वंशीकलः।
एष स्निग्धघनद्युतिर्मनसि मे लग्नः परो वीक्षणात्
कष्टं धिक् पुरुषत्रये रतिरभून्मन्ये मृतिं श्रेयसीम्॥

[**श्रीराधाजी कहती हैं—**]'एकके—'कृष्ण' इस नामके अक्षर कानोंमें पड़ते ही मेरे मनको लूट लेते हैं, दूसरेकी वंशी-ध्वनि घनीभूत उन्माद-परम्पराकी प्राप्ति करा देती है और स्निग्ध मेघश्याम कान्तिवाला पुरुष तो एक बारके दर्शनमात्रसे मेरे हृदयमन्दिरमें आ बसा है। छिः! कितने कष्टकी बात है कि तीन पुरुषोंमें मेरा प्रेम हो गया। इस अवस्थामें तो मर जाना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है।' [**विदग्धमाधव, अंक २। ९**]

श्रीकृष्ण पूर्ण परात्पर सनातन ब्रह्म

कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चात्ययः।
कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरम्॥
एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातनः।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात् पूज्यतमोऽच्युतः॥

[**भीष्मपितामह कहते हैं—**] 'श्रीकृष्ण ही सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति और प्रलयके स्थान हैं, इस चराचर विश्वकी उत्पत्ति इन्हींके लिये हुई है। ये ही अव्यक्त प्रकृति और सनातन कर्ता हैं, ये ही अच्युत सर्वभूतोंसे श्रेष्ठतम और पूज्यतम हैं।'

[**महा०, सभा० ३८। २३-२४**]

श्रीयमुनातटविहारी श्रीकृष्ण ही परमतत्त्व

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किञ्चन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं महो धावति॥
वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

ध्यानाभ्याससे मनको स्ववश करके योगीजन यदि किसी प्रसिद्ध निर्गुण निष्क्रिय परमज्योतिको देखते हैं तो वे उसे भले ही देखें; परंतु हमारे लिये तो श्रीयमुनाजीके तटपर जो [कृष्णनामवाली] वह अलौकिक नील ज्योति दौड़ती फिरती है, वही चिरकालतक लोचनोंको चकाचौंधमें डालनेवाली हो। जिनके करकमल वंशीसे विभूषित हैं, जिनकी नवीन मेघकी-सी आभा है, जिनके पीत वस्त्र हैं, अरुण बिम्बफलके समान अधरोष्ठ हैं; पूर्णचन्द्रके सदृश सुन्दर मुख और कमलके-से नयन हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्णको छोड़कर अन्य किसी भी तत्त्वको मैं नहीं जानता। [**श्रीमधुसूदनसरस्वती**]

कृष्णभक्तिका आनन्द अनन्त है

ब्रह्मानन्दो भवेदेष चेत् परार्धगुणीकृतः।
नैति भक्तिसुखाम्भोधेः परमाणुतुलामपि॥

'ब्रह्मानन्दको यदि परार्धगुना कर दिया जाय, तब भी वह श्रीकृष्णभक्तिसुधा-समुद्रकी तुलनामें एक परमाणुके समान भी नहीं ठहरता।' [**भक्तिरसामृतसिन्धु**]

भगवान् युगलकिशोरकी आरती

आरति जुगलकिसोरकी कीजै, तन मन धन न्योछावर कीजै॥
गौर स्याम मुख निरखन कीजै, प्रेम स्वरूप नयन भर पीजै।
रबि ससि कोटि बदनकी सोभा, ताहि देखि मेरो मन लोभा॥
मोर मुकुट कर मुरली सोहै, नटवर वेष निरख मन मोहै।
ओढ़ें पीत नील पट सारी, कुंजन ललना-लालबिहारी॥
श्रीपुरुषोत्तम गिरिबरधारी, आरति करत सकल ब्रजनारी।
नँदनंदन बृषभानु-किसोरी, परमानँद प्रभु अबिचल जोरी॥

श्रीराधा-माधव—एक चिन्तन

राधां कृष्णस्वरूपां वै कृष्णं राधास्वरूपिणम्।
कलात्मानं निकुञ्जस्थं गुरुरूपं सदा भजे॥

श्रीराधा श्रीकृष्णस्वरूप हैं एवं श्रीकृष्ण श्रीराधा-स्वरूप हैं, दोनों अनन्त कलाओंका साकाररूप हैं, उन नित्यस्वरूप निकुंजस्थित श्रीराधा-माधवका मैं सर्वतोभावेन नवनवायमान लीलाओंके समुपदेशकरूपमें चिन्तन करता हूँ। ये दोनों स्वरूप शरीर और छायाके समान परस्पर भिन्न-अभिन्न हैं।

ऋग्वेदीय श्रीराधोपनिषद्में श्रीराधा-माधव

ऋग्वेदीय श्रीराधोपनिषद्में एक आख्यान है—एक समय बालब्रह्मचारी सनकादि ऋषियोंने भगवान् ब्रह्माजीकी उपासना करके उनसे पूछा—'हे देव! परमदेवता कौन है? उनकी शक्तियाँ कौन-कौन हैं, उन शक्तियोंमें सबसे श्रेष्ठ, सृष्टिकी हेतुभूता कौन शक्ति है?' सनकादिके प्रश्नको सुनकर श्रीब्रह्माजी बोले—'पुत्रो! सुनो, यह अत्यन्त गुप्त रहस्य है, जिस किसीके सामने प्रकट करनेके योग्य नहीं है और देनेयोग्य भी नहीं है। जिनके हृदयमें रस हो, जो ब्रह्मवादी हों, गुरुभक्त हों, उन्हींको इसे बताना है, नहीं तो किसी अनधिकारीको देनेसे महापाप होगा। भगवान् हरि श्रीकृष्ण ही परम देव हैं, वे (ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, ज्ञान और वैराग्य—इन) छः ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण भगवान् हैं। गोप-गोपियाँ इनकी सेवा करते हैं। वृन्दा (तुलसीजी) उनकी आराधना करती हैं। वे भगवान् ही वृन्दावनके स्वामी हैं। वे ही एकमात्र परमेश्वर हैं। इनकी आह्लादिनी शक्ति अन्तरंगभूता श्रीराधा हैं, वे श्रीकृष्णके द्वारा आराधिता हैं। श्रीराधा भी श्रीकृष्णका सदा समाराधन करती हैं, अतः वे राधिका कहलाती हैं। ये श्रीराधा और रससागर श्रीकृष्ण एक ही शरीर हैं, लीलाके लिये ये दो बन गये हैं। ये श्रीराधा श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। एकान्तमें चारों वेद इनकी स्तुति करते हैं। इनकी महिमाका मैं (ब्रह्मा) अपनी समस्त आयुमें भी वर्णन नहीं कर सकता। जिनपर इनकी कृपा होती है, परमधाम उनके करतलगत हो जाता है। इन राधिकाको न जानकर जो श्रीकृष्णकी आराधना करना चाहता है, वह मूढ़तम है—महामूर्ख है।

अथर्ववेदीय श्रीकृष्णोपनिषद्में श्रीराधा-माधव

अथर्ववेदीय श्रीकृष्णोपनिषद्में एक महत्त्वपूर्ण बात आयी है—सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वांगसुन्दर भगवान् महाविष्णुको श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें वनमें भ्रमण करते देख वनवासी मुनिगण विस्मित हो गये। वे उनसे बोले—'हे प्रभो! हमें आपके आलिंगनकी उत्कण्ठा है।' तब श्रीरामजीने कहा—'आप लोग अन्य जन्ममें मेरे कृष्णावतारमें गोपिका होकर मेरा आलिंगन प्राप्त करोगे। इसी प्रकार कृष्णावतारसे पूर्व देवताओंसे भगवान्ने उन्हें पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके लिये कहा, तब वे बोले—'भगवन्! हम देवता होकर पृथ्वीपर जन्म लें, यह हमारे लिये बड़ी निन्दाकी बात है, परन्तु आपकी आज्ञा है, इसलिये हमें वहाँ जन्म लेना ही पड़ेगा, फिर भी इतनी प्रार्थना है कि हमें ऐसे रूपमें वहाँ उत्पन्न न करें, जिससे आपके अंग-स्पर्शसे वंचित रहना पड़ता हो, ऐसा मनुष्य बनकर हममेंसे कोई शरीर धारण नहीं करेगा। हमें सदा अपने

अंगोंके स्पर्शका अवसर दें, तभी हम अवतार ग्रहण करेंगे।' रुद्रादि देवताओंका यह वचन सुनकर स्वयं भगवान्ने कहा—'देवताओ! मैं तुम्हें अंग-स्पर्शका अवसर दूँगा, तुम्हारे वचनोंको अवश्य पूरा करूँगा।'

भगवान्का यह आश्वासन पाकर वे सब देवता बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'अब हम कृतार्थ हो गये।'

भगवान्का परमानन्दमय अंश ही नन्दरायजीके रूपमें प्रकट हुआ, नन्दरानी यशोदाके रूपमें साक्षात् मुक्तिदेवी अवतीर्ण हुईं। ब्रह्मविद्यामयी वैष्णवी माया ही देवकीके रूपमें प्रकट हुईं। निगम (वेद) ही वसुदेव हैं, जो सदा मुझ नारायणके स्वरूपका स्तवन करते हैं, वेदोंका तात्पर्यभूत ब्रह्म ही श्रीबलराम और श्रीकृष्णके रूपमें इस महीतलपर अवतीर्ण हुआ। वह मूर्तिमान् वेदार्थ ही वृन्दावनमें गोप-गोपियोंके साथ क्रीडा करता है। ऋचाएँ उन श्रीकृष्णकी गौएँ और गोपियाँ हैं। ब्रह्मा लकुटीरूप धारण किये हुए हैं और रुद्र वंश अर्थात् वंशी बने हैं। देवराज इन्द्र सिंगी (वाद्य) बने हैं। गोकुल नामक वनके रूपमें साक्षात् वैकुण्ठ है। वहाँ द्रुमोंके रूपमें तपस्वी महात्मा हैं। लोभ-क्रोधादिने दैत्योंका रूप धारण किया है, जो केवल भगवान्का नाम लेनेमात्रसे नष्ट हो जाते हैं।

श्रीशेषनाग श्रीबलराम बने हैं और सनातन ब्रह्म ही श्रीकृष्ण बने हैं, सोलह हजार एक सौ आठ—रुक्मिणी आदि भगवान्की रानियाँ वेदकी ऋचाएँ तथा उपनिषद् हैं। उनके सिवा जो वेदोंकी ब्रह्मरूपा ऋचाएँ हैं, वे गोपियोंके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं। रोहिणीमाताके रूपमें दयाका अवतार हुआ है, पृथ्वीमाता ही सत्यभामा बनी हैं, महाव्याधि ही अघासुर है और साक्षात् कलि राजा कंस बना है। श्रीकृष्णके मित्र सुदामा शम हैं, अक्रूर सत्य हैं, और उद्धव दम हैं। दूध-दहीके भण्डारमें जो भगवान्ने मटके फोड़े और उनसे जो दूध-दहीका प्रवाह हुआ, उसके रूपमें उन्होंने साक्षात् क्षीरसागरको ही प्रकट किया है और उस महासागरमें वे बालक बने पूर्ववत् क्रीडा कर रहे हैं। शत्रुओंके संहार तथा साधुजनोंकी रक्षामें वे सम्यक्रूपसे स्थित हैं। समस्त प्रणियोंपर अहैतुकी कृपा करनेके लिये तथा अपने आत्मजरूप धर्मकी रक्षा करनेके लिये श्रीकृष्ण प्रकट हुए हैं, यूँ जानना चाहिये। भगवान् शिवने श्रीहरिको अर्पित करनेके लिये जिस चक्रको प्रकट किया था, भगवान्के हाथमें सुशोभित वह चक्र ब्रह्मस्वरूप ही है।

धर्मने चँवरका रूप ग्रहण किया है, वायुदेव ही वैजयन्तीमालाके रूपमें प्रकट हुए हैं, कश्यपमुनि नन्दजीके घरमें ऊखल बने हैं और माता अदिति रज्जुके रूपमें अवतरित हुई हैं। शंखचक्रादि उनके आयुध हैं, भगवान्के हाथकी गदा सारे शत्रुओंका नाश करनेवाली साक्षात् कालिका हैं। गरुड़ने भाण्डीरवटका रूप ग्रहण किया है और नारदमुनि सुदामा नामसे सखा बने हैं, भक्तिने वृन्दाका रूप धारण किया है, सब जीवोंको प्रकाश देनेवाली जो बुद्धि है, वही भगवान्की क्रियाशक्ति है, अत: ये गोप-गोपी आदि सभी भगवान्से भिन्न नहीं हैं और विभु—परमात्मा श्रीकृष्ण भी इनसे भिन्न नहीं हैं। उन्होंने (श्रीकृष्णने) स्वर्गवासियोंको तथा सारे वैकुण्ठधामको भूतलपर उतार लिया है।

जो इस प्रकार जानता है, वह सब तीर्थोंका फल पाता है और देहके बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

राधिकातापनीयोपनिषद्में श्रीराधा-माधव

अथर्ववेदीय राधिकातापनीयोपनिषद्में यह वर्णन आता है कि एक बार ब्रह्मवेत्ताओं (वेदज्ञों)-ने परस्पर यह विचार करना प्रारम्भ किया कि श्रीराधिकाजीकी उपासना किसलिये होती है, इस विचारमें प्रवृत्त होनेपर उनपर भगवान् आदित्य अत्यन्त कृपालु हुए अर्थात् प्रकाशस्वरूप वैदिक ज्ञान उनमें प्रकट हुआ। उन्होंने श्रीराधिकाजीकी उपासनाके सम्बन्धमें श्रुतियोंको इस प्रकार बातचीत करते हुए पाया—श्रुतियाँ कहती हैं—सम्पूर्ण देवताओंमें जो देवरूपता (शक्ति) है, वह श्रीराधिकाजीकी ही है। समस्त प्राणी श्रीराधिकाजीके द्वारा ही अवस्थित हैं अर्थात् देवतासे लेकर क्षुद्र

प्राणियोंतक सभी जीव श्रीराधिकाजीकी शक्तिसे स्थित हैं, एवं चेष्टायुक्त हैं और उन्हींसे अभिव्यक्त हुए हैं। इसलिये हम सब श्रुतियाँ उन राधिकाजीको नमस्कार करती हैं।

श्रीरासमण्डलमें जिनकी रासक्रीडा देखकर चन्द्रमा एवं देवपत्नियोंको अपने शरीरका भी भान नहीं रह जाता एवं वृन्दावनके समस्त जड़ एवं जंगम भी अपने स्वरूपको भूल जाते हैं, अर्थात् जड़—पाषाण-तरु प्रभृति स्रवित होने लगते हैं और जंगम (चर) प्राणी विमुग्ध—स्थिर हो जाते हैं; श्रीरासमण्डलमें भावावेशयुक्ता उन श्रीराधिकाजीको हम (श्रुतियाँ) नमन करती हैं।

जिनका इस उपनिषद्में वर्णन हुआ है, वे श्रीराधिकाजी और आनन्दसिन्धु श्रीकृष्णचन्द्र वस्तुतः एक ही शरीर एवं परस्पर नित्य अभिन्न हैं, केवल लीलाके लिये वे दो स्वरूपोंमें व्यक्त हुए हैं, जैसे शरीर अपनी छायासे शोभित हो। अतएव जिस लीलाके लिये उन परम रस-सिन्धुका विग्रह दो रूपोंमें शोभित हुआ—उनकी इस लीलाको जो सुनता और पढ़ता है, वह उन परमप्रभुके विशुद्ध धाम (गोलोक)-में जाता है।

पद्मपुराणमें श्रीराधा-माधव

पद्मपुराणमें श्रीशंकरजीने देवर्षि नारदजीसे श्रीराधा-

कृष्णकी उपासना, उनके स्वरूप और मन्त्रादिके विषयमें बहुत रहस्यकी बातें कही हैं। उनमेंसे कुछका दिग्दर्शन यहाँ करते हैं—

एकबार भगवान् शंकरने नारदजीसे कहा—'देवर्षि! मैं भगवान्‌के मन्त्रका जप और उनका ध्यान करता हुआ बहुत समयतक कैलासपर रहा। तब भगवान्‌ने प्रकट होकर मुझे दर्शन दिये और वर माँगनेको कहा। मैंने बारम्बार प्रणाम करके उनसे प्रार्थना की—'कृपासिन्धो! आपका जो सर्वानन्दमय समस्त आनन्दोंका आधार नित्य मूर्तिमान् रूप है, जिसे विद्वान् लोग निर्गुण, निष्क्रिय, शान्त ब्रह्म कहते हैं, हे परमेश्वर! मैं उसी रूपको अपनी आँखोंसे देखना चाहता हूँ।

भगवान्‌ने कहा—'आप यमुनाजीके पश्चिम तटपर मेरे वृन्दावनमें जाइये, वहाँ आपको मेरे स्वरूपके दर्शन होंगे। इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। मैंने उसी क्षण मनोहर यमुनातटपर जाकर देखा—समस्त देवताओंके ईश्वरों-के-ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण मनोहर गोपवेश धारण किये हुए हैं, उनकी सुन्दर किशोर-अवस्था है, श्रीराधाजीके कन्धेपर अपना अति मनोहर बायाँ हाथ रखे वे सुन्दर त्रिभंगीसे खड़े मुसकरा रहे हैं। आपके चारों ओर गोपियोंका मण्डल है, शरीरकी कान्ति सजल जलदके सदृश स्निग्ध श्यामवर्ण है। आप अखिल कल्याणके एकमात्र आधार हैं। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने अमृतोपम मधुर वाणीमें मुझसे कहा—शंकरजी! आपने अब मेरा यह परम अलौकिक रूप देखा है, सारे उपनिषद् मेरे इस घनीभूत निर्मल प्रेममय सच्चिदानन्दघनरूपको ही निराकार, निर्गुण, सर्वव्यापी, निष्क्रिय और परात्पर ब्रह्म कहते हैं। मुझमें प्रकृतिसे उत्पन्न कोई गुण नहीं है और मेरे गुण अनन्त हैं—उनका वर्णन नहीं हो सकता। मेरे ये गुण तात्त्विक दृष्टिसे सिद्ध नहीं होते। इसीलिये ये सब मुझको निर्गुण कहते हैं। महेश्वर! मेरे इस रूपको चर्मचक्षुओंके द्वारा कोई देख नहीं सकता, इसलिये वेद इसको अरूप या निराकार कहते हैं। मैं अपने चैतन्यांशके द्वारा सर्वव्यापी हूँ। इसलिये विद्वान् लोग मुझको ब्रह्म कहते हैं और मैं इस विश्वप्रपंचका रचयिता नहीं हूँ, इसलिये पण्डितगण

मुझको निष्क्रिय बतलाते हैं। शिव! वस्तुतः सृष्टि आदि कोई भी कार्य मैं स्वयं नहीं करता, मेरे अंश (ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र) ही मायागुणोंके द्वारा सृष्टि-संहारका कार्य किया करते हैं।

देवर्षि! भगवान्‌के इस प्रकार कहने और कुछ अन्य उपदेश करनेपर मैंने उनसे पूछा—'नाथ! आपके इस युगलस्वरूपकी प्राप्ति किस उपायसे हो सकती है, इसे कृपा करके बतलाइये।' भगवान्‌ने कहा—हम दोनोंके शरणापन्न होकर जो गोपीभावसे हमारी उपासना करते हैं, उन्हींको हमारी प्राप्ति होती है, अन्य किसीको नहीं—

गोपीभावेन देवेश स मामेति न चेतरः।

एक सत्य बात और है—वह यह है कि पूरे प्रयत्नके साथ इस भावकी प्राप्तिके लिये श्रीराधिकाकी उपासना करनी चाहिये। हे रुद्र! यदि आप मुझे वशमें करना चाहते हैं तो मेरी प्रिया श्रीराधिकाजीकी शरण ग्रहण कीजिये—

आश्रित्य मत्प्रियां रुद्र मां वशीकर्तुमर्हसि॥

गोपीभाव

अब प्रश्न होता है कि गोपीभाव क्या है? और श्रीराधाकी शरणागति कैसे प्राप्त हो सकती है?

श्रीकृष्ण-सुखके लिये सर्वत्याग—यही गोपीकी विशेषता है और यही गोपीभाव है। निजसुखके लिये लोग बहुत कुछ त्याग करते हैं, परंतु केवल कृष्ण-सुखके लिये सर्वत्याग करना केवल गोपीमें ही सम्भव है। वस्तुतः यह 'कृष्ण-सुख' गोपीप्रेमका स्वरूप-लक्षण है।

निजसुखकामना को प्रीतिरसकी उपाधि कहा गया है, गोपीप्रेममें यह उपाधि नहीं है—इसीसे गोपी-प्रेमको 'निरुपाधि' प्रेम कहते हैं। वस्तुतः श्रीकृष्ण-सुख ही गोपीका सुख है। स्वतन्त्र सुख-अनुसन्धानकी उसमें कल्पना भी नहीं है।

गोपीका वस्त्राभूषण धारण करना, शृंगार करना, खाना-पीना, जीवन धारण करना—सभी सहज ही श्रीकृष्णसुखके लिये है। श्रीकृष्णने स्वयं कहा है—

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढप्रेमभाजनम्॥

हे पार्थ! गोपियाँ अपने अंगोंकी रक्षा या देखभाल भी इसीलिये करती हैं कि उनसे मुझे सुख मिलता है। गोपियोंको छोड़कर मेरा निगूढ़ प्रेमपात्र और कोई नहीं है, गोपियाँ अपने देहकी रक्षा, सार-सँभार तथा शृंगार-सज्जा करती हैं—यह सत्य है। अवश्य ही यह साधन-राज्यमें एक नयी बात है, सभी साधन-क्षेत्रोंमें शरीरकी इतनी देखभाल साधनमें बाधक मानी जाती है। सभी देहको तुच्छ समझकर देहकी सेवा छोड़ देनेकी सम्मति देते हैं। यह अनोखी प्रणाली तो गोपीभावकी ही है, जिसमें देहकी सेवा भी भजनमें सहायक होती है।

पुजारी प्रतिदिन पूजाके प्रत्येक पात्रको माँजकर उज्ज्वल करता है और सजाता है, गोपियोंका यह विश्वास तथा अनुभव है कि श्रीकृष्णकी सेवामें जिन-जिन उपचारोंकी आवश्यकता है, उनमें उनका शरीर भी एक आवश्यक उपचार है, इसीलिये वे शरीररूप इस पात्रको नित्य उज्ज्वल करके श्रीकृष्णपूजाके लिये सुसज्जित करती हैं। पूजाका उपचार वस्तुतः पुजारीकी सम्पत्ति नहीं होती, वह तो भगवान्‌की ही सम्पत्ति है। पुजारी तो उसकी देख-रेख, सँभाल, सजावट करनेवाला है। इसी प्रकार गोपियोंके शरीर श्रीकृष्णकी सम्पत्ति हैं। गोपियोंके ऊपर तो उनके यथायोग्य यत्नपूर्वक सँभाल करनेका भार है। गोपियोंके तन-मन—सभीके स्वामी श्रीकृष्ण हैं। शरीरको धो-पोंछकर वस्त्राभूषणोंसे सजानेपर उसे देखकर श्रीकृष्ण सुखी होंगे, इस कृष्णसुख-कामनाको लेकर ही ये प्रातःस्मरणीय व्रजदेवियाँ श्रीकृष्णके सेवोपचारके रूपमें अपने शरीरकी सावधानीके साथ सेवा करती हैं। यह शरीर-सेवा श्रीकृष्ण-सेवाके लिये ही है। अतः यह भी एक परम साधन है, प्रेमका लक्षण है।

सामान्यतः एक सिद्धान्त है—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** जिस प्रकारकी कामना, भावना भक्तकी होती है, भगवान् उसे वही वस्तु प्रदान करते हैं।

परंतु यहाँ गोपियोंके सम्बन्धमें भगवान्‌के इस सिद्धान्त-वाक्यकी रक्षा नहीं होती है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

एक तो गोपीकी कोई कामना नहीं है, अतएव श्रीकृष्ण उसे क्या दें? दूसरा गोपीको कामना है, श्रीकृष्ण-सुखकी, श्रीकृष्ण इस कामनाकी पूर्ति करने जाते हैं, तो उनको स्वयं अधिक सुखी होना पड़ता है। अत: इस दानसे ऋण और बढ़ता है।

तीसरा गोपियोंने सर्वत्याग करके अपनेको श्रीकृष्णके प्रति समर्पित कर दिया है, परंतु श्रीकृष्णका अपना चित्त बहुत जगह बहुत-से प्रेमियोंके प्रति प्रेमयुक्त है, इस प्रकार कृष्णप्रेम अपेक्षाकृत विभक्त और खण्डित है, परंतु गोपीप्रेम अनन्य और अखण्ड है। इसीसे गोपीके भजनका बदला उसी रूपमें श्रीकृष्ण नहीं दे सकते। इसीसे वे अपनी असमर्थता भी प्रकट करते हुए कहते हैं—गोपियो! मैं सदा तुम्हारा ऋणी हूँ, तुम अपने सौम्य स्वभावसे तथा प्रेमसे ही मुझे उऋण कर सकती हो, परंतु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ।

प्रेममार्गी भक्तको चाहिये कि वह अपनी समझसे तन-मन-वचनसे होनेवाली प्रत्येक चेष्टाको श्रीकृष्ण-सुखके लिये ही करे। जब-जब मनके प्रतिकूल स्थिति प्राप्त हो, तब-तब उसे श्रीकृष्णकी शुभेच्छाजनित स्थिति समझकर परम सुखका अनुभव करे। यों करते-करते प्रेमी भक्तका केवल श्रीकृष्णसुखकाम अनन्यतापर पहुँच जाता है, तब श्रीकृष्णके मनकी बात भी उसे मालूम होने लगती है। गोपियोंके श्रीकृष्णानुकूल जीवनमें यह प्रत्यक्ष है।

श्रीराधा-माधवकी अभिन्नता

इन गोपियोंमें सर्वशिरोमणि हैं—वृषभानुदुलारी श्रीराधाजी। गोपियाँ श्रीराधाजीकी कायव्यूहरूपा हैं। गोपियोंका परम आदर और परम सेव्य श्रीराधामें ही निहित है। श्रीराधारूपी दर्पणमें ही कृष्णका पूर्ण दर्शन प्राप्त होता है और वह दर्शन भी श्रीकृष्णको ही होता है।

'राधा' वास्तवमें कोई एक मानवी नारीविशेष नहीं हैं, वे भगवान्‌की साक्षात् अभिन्ना शक्ति हैं। इनके संगसे ही भगवान्‌में सर्वशक्तिमत्ताका प्रकाश होता है। भगवान् श्रीकृष्णने एक जगह कहा है—

राधा बिना अशोभन नित मैं रहता केवल कोरा कृष्ण।
राधा संग सुशोभित होकर बन जाता हूँ मैं 'श्री' कृष्ण॥
राधा मेरी परम आतमा, जीवन-प्राण नित्य आधार।
राधा से मैं प्रेम प्राप्तकर, करता निज जनमें विस्तार॥
मैं राधा हूँ, राधा मैं है, राधा-माधव नित्य अभिन्न।
एक सदा ही बने सरस दो, करते लीला ललित विभिन्न॥

राधाके बिना मैं नित्य ही शोभाहीन केवल-निरा कृष्ण रहता हूँ, पर राधाका संग मिलते ही सुशोभित होकर 'श्री' सहित श्रीकृष्ण बन जाता हूँ। राधा मेरी परम आत्मा है, मेरा जीवन है, मेरी प्राणभूता है। राधासे ही प्रेम प्राप्त करके मैं उस प्रेमका अपने प्रेमीजनोंमें प्रसार-विस्तार करता हूँ। वास्तवमें मैं ही राधा हूँ और राधा ही मैं है। हम राधा-माधव दोनों सदा अभिन्न हैं, हम सदा एक ही दो बने हुए विभिन्न प्रकारकी रसमयी ललित लीलाएँ किया करते हैं।

इतना ही नहीं राधा मुझे इतनी अधिक प्रिय है—

राधासे भी लगता मुझको अधिक मधुर प्रिय राधा नाम।
राधा शब्द कान पड़ते ही खिल उठतीं हिय कली तमाम॥

उन राधासे भी उनका 'राधा' नाम मुझे अधिक मधुर और प्यारा लगता है। राधा शब्द कानमें पड़ते ही मेरे हृदयकी सम्पूर्ण कलियाँ खिल उठती हैं। कोई भी ऐसा प्रेमपरिपूर्ण राधा नाम सुनाकर मुझे खरीद ले सकता है। नारायण, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती सब मेरे ही रूप हैं। ये सभी मुझे प्राणोंके समान प्रिय हैं और इन सबका भी मुझमें बड़ा अनुपम भाव है, परन्तु राधा तो मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारी है। वह समस्त प्रिय प्रेमीजनोंकी मुकुटमणि है। राधाके सदृश प्राणाधिक प्रिय दूसरा कहीं कोई भी नहीं है। ये अन्यान्य सभी देव-देवियाँ नित्य मेरे समीप रहती हैं, पर मेरी प्रियतमा राधा तो सदा मेरे वक्ष:स्थलपर ही निवास करती है।

ब्रजवासीजन कहते हैं कि ब्रजमें आकर भी जिसने राधा-राधा नहीं कहा, राधा नाम नहीं जाना, उससे ज्यादा अभागा कोई नहीं है।

कई लोग कहते हैं—'श्रीशुक महाप्रभुने भी साक्षात् गुरुस्वरूपा परम प्रेममयी महादेवी 'श्रीराधा' का नाम श्रीमद्भागवतमें स्पष्टरूपसे नहीं लिया। वस्तुतः श्रीमद्भागवतमें जैसा राधाचरित्रका वर्णन तथा जैसा राधा-लीलाका गान हुआ है, वैसा अन्य किसी ग्रन्थमें नहीं है। जैसे कोई पुत्र अपने माता या पिताके पास जाता है तो उनका नाम नहीं लेता है, गुरुजीका नाम लेकर कोई उन्हें सम्बोधित नहीं करता। ये एक प्रेमकी विधा है तथा मर्यादा है।

रसिकोंने बताया है कि श्रीजीके चरणोंके नूपुरोंसे शब्दब्रह्मका प्रकाश होता है—***'श्रीराधापदपद्ममें नूपुर-कलरव होय।'*** नूपुर ध्वनिके आगे वंशीध्वनि भी चुप हो जाती है। ***'झंकारनूपुरवतीं बत कर्हि राधाम्।'*** जब वे चलती हैं तो ऐसी अद्‌भुत झंकार ध्वनि उत्पन्न होती है कि उस सुन्दरता, मधुरताके आगे 'शब्द-ब्रह्म', अनेक मन्त्र, वीणा, वंशी आदि सब शान्त हो जाते हैं। जिस समय श्रीराधारानी गातीं हैं तो उस गानकी मधुरताके आगे श्रीकृष्ण भी मौन हो जाते हैं।

भावुकजन कहते हैं—'बिना राधिकाके जो श्रीकृष्णकी उपासना करता है, उसे तो अमावस्याके चन्द्रमाका उपासक समझो, वस्तुतः श्रीकृष्णतत्त्वकी प्रकाशिका तो वृषभानुजा ही हैं।'

श्रीराधा-माधव देखनेमें भले ही दो प्रतीत होते हों परन्तु वास्तवमें तो एक ही हैं, जैसे—चन्द्र-चन्द्रिका, पुष्प-सुगन्ध, जल-तरंग, पृथ्वी-गन्ध, जल-रस, अग्नि-रूप (दाहकता), शब्द-अर्थ आदि देखनेमें दो-जैसे होनेपर भी एक ही हैं।

उन भगवान् श्रीराधामाधवके उपवेशनार्थ आसन एक ही है, दोनोंकी विचारवृत्ति (बुद्धि) भी एक ही है। दोनोंका मन भी एक ही है, दोनोंका ज्ञान भी समान ही है, दोनोंका पद भी एक ही है और तो क्या श्रीराधा-माधवकी आकृति-प्रकृति-संस्कृति-प्रवृत्ति भी एक ही है। उनमें भेद नहीं है—**श्रीराधाकृष्णयोः एकमासनं, एका बुद्धिः, एकं मनः, एकं ज्ञानं, एकम् आत्मा, एकं पदम्, एका आकृतिः एकं ब्रह्म। अतएव तयोर्न भेदः॥**

एक बार मनकी चंचलताको छोड़कर एकाग्रतापूर्वक जरा ध्यानसे देखा जाय तो राधा-माधव दो नहीं एक ही दीखेंगे; क्योंकि वे दो हैं ही नहीं, एक ही हैं। श्रीमाधव ही राधा हैं। बिम्ब-प्रतिबिम्बके समान श्रीराधा ही माधव हैं। ये श्रीराधा-माधव ही साक्षात् सच्चिदानन्दघन, परमामृतस्वरूप परब्रह्म हैं। यही इनका युगल स्वरूप है। प्रेमी साधक इन्हीं श्रीराधा-माधव युगलकी उपासना किया करते हैं।

युगलोपासना

साधक अपनी रुचि तथा स्थितिके अनुसार श्रीकृष्णके या श्रीराधाके एकरूपकी भी उपासना कर सकते हैं; क्योंकि श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा नित्य एक हैं और वे एक-दूसरेमें सदा समाये हुए हैं। अतएव एककी ही उपासनासे दोनोंकी उपासना हो जाती है। तथापि साधक चाहें तो एक साथ

'युगलस्वरूप'की उपासना कर सकते हैं। युगलस्वरूपकी उपासना साधक अपनी-अपनी रुचिके अनुसार श्रीलक्ष्मी-नारायण, श्रीगौरी-शंकर, श्रीसीता-राम, श्रीराधा-माधव आदि किसी भी युगल-स्वरूपकी कर सकते हैं। भगवान् तथा भगवती—जैसे शक्तिमान् तथा शक्तिके रूपमें सदा एक हैं, वैसे ही भगवान्‌के सभी लीलारूप तथा भगवतीके सभी लीलारूप भी एक ही परम तत्त्वके विभिन्न स्वरूप हैं, पर स्मरण रखना चाहिये कि युगल स्वरूपके उपासकको उपासनासे पूर्व कायिक, वाचिक, मानस—तीन व्रतोंसे युक्त होना चाहिये।

देवर्षि नारदजीने राजा अम्बरीषसे कहा—'राजन्! दिनभरमें एकबार जो कुछ मिल जाय उसे खा लेना और रातको उपवास करना अर्थात् जीभको वशमें रखना—यह कायिक व्रत कहलाता है। वेदका (वेदमूलक शास्त्रोंका, संतवाक्योंका) अध्ययन, भगवान्‌के नाम-गुणोंका कीर्तन-कथन, सत्य (अनुद्वेगकारक प्रिय मधुर और हितकारक)-भाषण और किसीकी भी निन्दा-चुगली न करना, वाचिक व्रत है। किसीकी वस्तुपर मन न चलाना, मनमें भी ब्रह्मचर्यका पालन करना तथा कपट-दम्भ न करना मानस-व्रत है।

काम और प्रेममें अन्तर

समस्त संसारके प्राणी भोगसुखकी कामना करते हैं, सभीके मन सदा भोग-लालसासे भरे रहते हैं। मनुष्य दिन-रात इसी चिन्तामें रहते हैं कि उनकी भोग-लालसा पूरी हो। इस भोगकामको लेकर ही जगत्‌के प्राणी निरन्तर दु:ख-सागरमें डूबते-उतराते रहते हैं। यह भोगकाम मनुष्यके ज्ञानको ढके रखता है। मनुष्य भूलसे भोगकामको ही प्रेम मान लेता है, वस्तुत: प्रेम और काममें महान् अन्तर है, जैसे—काँच और हीरा देखनेमें एक-से दिखायी देते हैं, पर दोनोंमें महान् भेद होता है। कामसे आत्माका अध:पतन होता है और प्रेमसे दिव्य भगवदानन्दका दुर्लभ आस्वादन मिलता है, अत: काम तथा प्रेम परस्पर अत्यन्त विरुद्ध हैं।

मनुष्यकी कामना शरीरमें केन्द्रित होती है, तब उसका नाम होता है काम, और जब वही कामना श्रीकृष्णमें केन्द्रित होती है, तब वही प्रेम बन जाती है।

यह निजेन्द्रियतृप्तिकी इच्छा, भोगसुख-कामना जिसकी जितनी कम है, वह उतना ही महान् है, जो निज भोग-सुखको सर्वथा भूलकर सर्वथा परसुखपरायण हो जाते हैं, वे सच्चे महापुरुष हैं और जिनका आत्मसुख सदा-सर्वदा सर्वथा श्रीकृष्ण-सुखमें परिणत हो जाता है, वे तो महापुरुषोंके द्वारा भी परमवन्दनीय हैं। उनकी तुलना जगत्‌में कहीं किसीसे होती ही नहीं। श्रीगोपांगनाएँ ऐसी ही कृष्णसुखप्राणा और सहज कृष्णसुखस्वभावा थीं। वे ही सच्ची प्रेमिकाएँ थीं। इसीसे वे सर्वत्याग करके सदा श्रीकृष्णका सहज भजन करती थीं। जबतक मनमें जरा भी लोक-परलोक, भोग-मोक्ष आदिकी कामना रहती है, तबतक सर्वत्याग हो ही नहीं सकता।

गोपियोंको अपने दु:खका भी अनुसन्धान नहीं है, उनका महान् दु:ख भी यदि कृष्णके सुखका साधन है तो वह उनके लिये ब्रह्मानन्दसे बढ़कर सुखरूप है। श्रीकृष्ण थोड़ी ही दूरपर मथुरामें रहे, पर उनकी इच्छाके प्रतिकूल गोपियोंके मनमें कभी मथुरा जाकर श्रीकृष्णसे मिलनेकी कल्पना भी नहीं आयी। असह्य दु:खमें भी श्रीकृष्ण-सुखकी कामना वे कैसे करती हैं, इसका एक उदाहरण यहाँ देखनेयोग्य है—

ब्रजसे मथुरा जाते समय श्रीराधाने हँसकर उद्धवसे कहा—'उद्धव! यद्यपि श्रीकृष्णके गोष्ठमें पधारनेसे हमें बड़ा सुख होता, तथापि यदि इसमें उनकी जरा भी क्षति हो तो वे कभी भी न पधारें, दूसरी ओर उनके मथुरा नगरीसे यहाँ न आनेसे यद्यपि हमें बड़ी भारी पीड़ा होती है, फिर भी यदि इससे उनके चित्तमें सुखका उदय होता हो, तो वे वहीं निवास करें।*

इससे सिद्ध है कि गोपीमें निज सुखकामका सर्वथा

---

* स्यान्नः सौख्यं यदपि बलवद् गोष्ठमाप्ते मुकुन्दे यद्यल्पापि क्षतिरुदयते तस्य मागात् कदापि।
अप्राप्तेऽस्मिन् यदपि नगरादार्तिरुग्रा भवेन्नः सौख्यं तस्य स्फुरति हृदि चेत्तत्र वासं करोतु॥

ही अभाव है, कृष्णसुख ही उनका स्वभाव है, जीवन है।

श्रीकृष्णके प्रिय सखा ज्ञानियोंमें शिरोमणि श्रीउद्धवजीको भगवान् श्रीकृष्णने ज्ञानसंदेशके साथ गोकुल भेजा। वृन्दावनमें प्रवेश करते ही और गोपियोंके सम्पर्कमें आते ही श्रीउद्धवजीकी ज्ञानगठरी गोपियोंकी प्रेमगंगामें तिरोहित हो गयी। वे सुध-बुध खो बैठे। नयनोंसे निर्झरके समान प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे। मनमें यह भाव आया कि वृन्दावन-जैसी प्रेमस्थलीमें मुझे गुल्म, लता, वृक्ष अथवा पाषाण बनकर भी वास करना चाहिये।

श्रीमद्देवीभागवत आदि विभिन्न पुराणोंमें तथा निम्बार्क, वल्लभ, गौड़ीय आदि विभिन्न सम्प्रदायोंमें राधा-माधवकी उपासना, महिमा एवं दिव्य झाँकीके दर्शन प्रस्तुत हुए हैं। प्राचीन एवं अर्वाचीन संतों-महात्माओं, भक्तोंने अपनी साधना-उपासना एवं अनुभवके आधारपर श्रीराधा-माधवके स्वरूप एवं उनकी लीलाका वर्णन किया है। भक्तिमती मीराबाई, भक्त नरसी मेहता, भक्तकवि विद्यापति एवं सूरदास, नन्ददास आदि अष्टछापके कवियोंके द्वारा तथा रसखान आदि मुसलिम भक्त कवियोंके द्वारा भगवान् श्रीराधाकृष्णकी रसपूर्ण लीलाओंका और उनके रूप-माधुर्यकी छविका दिग्दर्शन प्राप्त होता है। प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य भगवान्‌की लीला-माधुरीसे आप्लावित है।

मूर्तिमान् सौन्दर्य—श्रीराधा-माधव

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें एक कथा आती है कि नन्दजी एक दिन वनमें श्यामसुन्दरको लिये हुए थे। उस समय श्रीराधाजी उनके समीप आयीं। नन्दजीने दिव्य दृष्टिसे यह समझ लिया कि ये इनकी नित्य शक्ति हैं। अतः बालकृष्णको राधाजीकी गोदमें दे दिया। वे उन्हें लेकर वनमें गयीं। तब भगवान्‌ने बालरूप त्यागकर नित्य किशोररूप धारण किया। ब्रह्माजीने उसी समय आकर दोनोंका वैदिक विधिसे विवाह कराया। फिर भगवान् पुनः बालक बन गये। श्रीराधाजी उन्हें नन्दजीको दे गयीं। इससे यह स्पष्ट होता है कि ये दोनों नित्य किशोर हैं। एक-दूसरेके प्राण हैं। ये कभी विलग नहीं हो सकते।

एक स्थानमें भगवान् श्रीकृष्णके सौन्दर्यके वर्णनमें मणिस्तम्भ-लीलाका वर्णन आता है—

एकबार माता यशोदाने मणिस्तम्भके निकट दधि-मन्थन करके अपने प्रिय पुत्र कृष्णके लिये नवनीत निकालकर एक भाण्डमें रखा और किसी कार्यसे अन्यत्र चली गयीं। इसी बीच कृष्णने आकर उस भाण्डसे नवनीत लेनेके लिये अपना हाथ बढ़ाया, झुकते समय उनकी दृष्टि मणिस्तम्भमें प्रतिफलित अपने प्रतिबिम्बपर पड़ी। चकित होकर उसको कोई अपरिचित बालक समझकर बोले—'मित्र! मैयासे न कहना, तुम्हें भी एक लोंदी मक्खनकी दूँगा, किंतु उस सुन्दर प्रतिबिम्बका उत्तर न पाकर बोले—'अच्छा तुम इससे सन्तुष्ट नहीं हो तो आधी मटकी मक्खनकी तुम्हें दूँगा,' पुनः बोले—'अच्छा पूरी मटकी ही ले लेना, पर मुझसे मित्रता कर लो।' तभी वहाँ यशोदा दबे पाँव आकर कृष्णकी बातें सुनकर बोलीं—'कृष्ण! किससे बात कर रहे हो?' कृष्ण बोले—'माँ! यह जो बालक मणिस्तम्भमें छिपा बैठा है, उसीसे बात कर रहा हूँ, किंतु यह तो अपने सौन्दर्यके गर्वमें चूर है, मुझसे बात ही नहीं करता है, तू मेरी इससे मित्रता करा दे।' तब यशोदाने प्रेमसे कृष्णको उठाकर कहा—'मेरे लाल! यह तेरी ही प्रतिच्छवि है।' आश्चर्यचकित होकर बालकृष्ण बोले—'माँ! मैं इतना सुन्दर हूँ?'

कौस्तुभ आदि अलंकारोंसे भगवान्‌के श्रीअंगकी शोभा नहीं बढ़ती, किंतु उनके श्रीअंगके समाश्रयणसे अलंकार ही अलंकृत होते हैं। भगवान्‌का शंखके समान सुन्दर कण्ठ कौस्तुभमणिको भी अलंकृत करता है। इसीलिये वे अपने स्वयंके प्रतिबिम्बको देखकर विस्मयमुग्ध हो जाते हैं—***'रूप रासि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी॥'*** अपने इसी सौन्दर्यके समास्वादनके लिये भगवान् स्वयंको दो भागोंमें विभक्त करते हैं और यही श्रीराधा-माधव हैं।

—राधेश्याम खेमका

भगवान् शिवद्वारा श्रीराधाकृष्ण-उपासनारहस्य-निरूपण

पद्मपुराणमें भगवान् श्रीशंकरने देवर्षि नारदजीसे श्रीराधाकृष्णकी उपासना, उनके स्वरूप और मन्त्रादिके विषयमें बहुत रहस्यकी बातें कही हैं—उनमेंसे कुछ यहाँ उद्धृत की जाती हैं। भगवान् शिवजी कहते हैं—

श्रीकृष्णके 'मन्त्रचिन्तामणि' नामक दो अत्युत्तम मन्त्र हैं—एक षोडशाक्षर है और दूसरा दशाक्षर। षोडशाक्षर मन्त्र है— **गोपीजनवल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये**। और दशाक्षर है— **नमो गोपीजनवल्लभाभ्याम्**। —इन मन्त्रोंके अधिकारी सभी वर्णोंके, सभी आश्रमोंके और सभी जातिके वे स्त्री-पुरुष हैं, जिनकी सर्वेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति है—'''**भक्तिर्भवेदेषां कृष्णो सर्वेश्वरेश्वरे**'। श्रीकृष्णभक्तिसे रहित याज्ञिक, दानशील, तान्त्रिक, सत्यवादी, वेद-वेदांगपारग, कुलीन, तपस्वी, व्रती और ब्रह्मनिष्ठ—कोई भी इनके अधिकारी नहीं हैं। इसलिये ये मन्त्र श्रीकृष्णके अभक्त, कृतघ्न, दुरभिमानी और श्रद्धारहित मनुष्योंको नहीं बतलाने चाहिये।

दम्भ, लोभ, काम और क्रोधादिसे रहित श्रीकृष्णके अनन्यभक्तको ही ये मन्त्र देने चाहिये। इनका यथाविधि न्यास करके श्रीकृष्णकी पूजा करनी चाहिये। फिर उनका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

'सुन्दर वृन्दावनमें कल्पवृक्षके नीचे सुरम्य रत्नसिंहासनपर भगवान् श्रीकृष्ण श्रीप्रियाजीके साथ विराजमान हैं। श्रीकृष्णका वर्ण नवजलधरके समान नील-श्याम है, पीताम्बर धारण किये हुए हैं, द्विभुज हैं, विविध रत्नोंकी और पुष्पोंकी मालाओंसे विभूषित हैं, मुखमण्डल करोड़ों चन्द्रमाओंसे भी सुन्दर है। तिरछे नेत्र हैं, ललाटपर मण्डलाकृति तिलक है, जो चारों ओर चन्दनसे और बीचमें कुंकुमबिन्दुसे बनाया हुआ है। कानोंमें सुन्दर कुण्डल शोभायमान हैं, उन्नत नासिकाके अग्रभागमें मोती लटक रहा है। पके बिम्बफलके समान अरुणवर्ण अधर हैं, जो दाँतोंकी प्रभासे चमक रहे हैं। भुजाओंमें रत्नमय कड़े और बाजूबंद हैं और अँगुलियोंमें रत्नोंकी अँगूठियाँ शोभा पा रही हैं। बायें हाथमें मुरली और दाहिनेमें कमल लिये हुए हैं। कमरमें मनोहर रत्नमयी करधनी है, चरणोंमें नूपुर सुशोभित हैं। बड़ी ही मनोहर अलकावली है, मस्तकपर मयूरपिच्छ शोभा पा रहा है। कानोंमें कनेरके पुष्पोंके आभूषण हैं। भगवान्की देहकान्ति नवोदित कोटि-कोटि दिवाकरोंके सदृश स्निग्ध ज्योतिर्मय है, उनके दर्पणोपम कपोल स्वेदकणोंसे सुशोभित हैं, चंचल नेत्र श्रीराधिकाजीकी ओर लगे हुए हैं। वामभागमें श्रीराधिकाजी विराजित हैं, तपे हुए सोनेके समान उनकी देहप्रभा है, नीले वस्त्र धारण किये हैं, मन्द-मन्द मुसकरा रही हैं। चंचल नेत्रयुगल स्वामीके मुखचन्द्रकी ओर लगे हुए हैं और चकोरीकी भाँति उनके द्वारा वे श्याम-मुख-चन्द्र-सुधाका पान कर रही हैं। अंगुष्ठ और तर्जनी अँगुलीके द्वारा वे प्रियतमके मुखकमलमें पान दे रही हैं। उनके गलेमें दिव्य रत्नोंके और मुक्ताओंके हार हैं। क्षीण कटि करधनीसे सुशोभित है। चरणोंमें नूपुर, कड़े और चरणांगुलियोंमें अंगुरीय आदि शोभा पा रहे हैं। उनके अंग-प्रत्यंगसे लावण्य छिटक रहा है। उनके चारों ओर तथा आगे-पीछे यथास्थान खड़ी हुई सखियाँ विविध प्रकारसे सेवा कर रही हैं।'

श्रीराधिकाजी कृष्णमयी हैं, वे श्रीकृष्णकी आनन्दरूपिणी ह्लादिनी शक्ति हैं। त्रिगुणमयी दुर्गा आदि शक्तियाँ उनकी करोड़वीं कलाके करोड़वें अंशके समान हैं। सब कुछ वस्तुतः श्रीराधाकृष्णसे ही भरा है। उनके सिवा और कुछ भी नहीं है। यह जड-चेतन अखिल जगत् श्रीराधाकृष्णमय है—

चिदचिल्लक्षणं सर्वं राधाकृष्णमयं जगत्।

परंतु वे इतने ही नहीं हैं—अनन्त अखिल ब्रह्माण्डोंसे परे हैं, सबसे परे हैं, सबके अधिष्ठान हैं, सबमें हैं और सबसे सर्वथा विलक्षण हैं। यह श्रीकृष्णका किंचित् ऐश्वर्य है।

बहुत दिनोंसे विदेश गये हुए पतिकी पतिपरायणा पत्नी जैसे एकमात्र अपने पतिका ही संग चाहती हुई दीनभावसे सदा-सर्वदा स्वामीके गुणोंका चिन्तन, गान और श्रवण किया करती है, वैसे ही श्रीकृष्णमें आसक्तचित्त होकर साधकको श्रीकृष्णके गुण-लीलादिका चिन्तन, गायन और श्रवण करते हुए ही समय बिताना चाहिये। और बहुत लम्बे समयके बाद पतिके घर आनेपर जैसे पतिव्रता स्त्री अनन्यप्रेमके साथ तद्गतचित्त होकर पतिकी सेवा, उसका आलिंगन आदि तथा नयनोंके द्वारा उसके रूपसुधामृतका पान करती है, वैसे ही साधकको उपासनाके समय शरीर, मन, वाणीसे परमानन्दके साथ श्रीहरिकी सेवा करनी चाहिये।

एकमात्र श्रीकृष्णके ही शरणापन्न होना चाहिये और वह भी श्रीकृष्णके लिये ही, दूसरा कोई भी प्रयोजन न रहे। अनन्यमनसे श्रीकृष्णकी सेवा करनी चाहिये। श्रीकृष्णके सिवा न किसीकी पूजा करनी चाहिये और न किसीकी निन्दा। किसीका जूठा नहीं खाना चाहिये और न किसीका पहना हुआ वस्त्र ही पहनना चाहिये। भगवान्‌की निन्दा करनेवालोंसे न तो बातचीत करनी चाहिये और न भगवान् और भक्तोंकी निन्दा ही सुननी चाहिये।

जीवनभर चातकीवृत्तिसे मन्त्रके अर्थका विचार करते हुए युगलमन्त्रकी उपासना करनी चाहिये। चातक जैसे सरोवर, नदी और समुद्र आदि सहज ही मिले हुए जलाशयोंको छोड़कर एकमात्र मेघजलकी आशासे प्याससे तड़पता हुआ जीवन बिताता है, प्राण चाहे चले जायँ पर मेघके सिवा किसी दूसरेसे जलकी प्रार्थना नहीं करता, उसी प्रकार साधकको एकाग्र मनसे एकमात्र श्रीकृष्णगतचित्त होकर साधना करनी चाहिये।

परम विश्वासके साथ श्रीयुगलसरकारसे निम्नलिखित प्रार्थना करनी चाहिये—

संसारसागरान्नाथौ पुत्रमित्रगृहाकुलात्।
गोप्तारौ मे युवामेव प्रपन्नभयभञ्जनौ॥
योऽहं ममास्ति यत्किंचिदिह लोके परत्र च।
तत्सर्वं भवतोरद्य चरणेषु समर्पितम्॥
अहमस्म्यपराधानामालयस्त्यक्तसाधनः।
अगतिश्च ततो नाथौ भवन्तावेव मे गतिः॥
तवास्मि राधिकाकान्त कर्मणा मनसा गिरा।
कृष्णकान्ते तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम॥
शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानिकराकरौ।
प्रसादं कुरुतं दास्यं मयि दुष्टेऽपराधिनि॥

(पद्मपुराण, पातालखण्ड ८२। ४२—४६)

'नाथ! पुत्र, मित्र और घरसे भरे हुए इस संसारसागरसे आप ही दोनों मुझको बचानेवाले हैं; आप ही शरणागतके भयका नाश करते हैं। मैं जो कुछ भी हूँ और इस लोक तथा परलोकमें मेरा जो कुछ भी है, वह सभी आज मैं आप दोनोंके चरणकमलोंमें समर्पण कर रहा हूँ। मैं अपराधोंका भंडार हूँ। मेरे अपराधोंका पार नहीं है। मैं सर्वथा साधनहीन हूँ, गतिहीन हूँ। इसलिये नाथ! एकमात्र आप ही दोनों प्रिया-प्रियतम मेरी गति हैं। श्रीराधिकाकान्त श्रीकृष्ण! और श्रीकृष्णकान्ते राधिके! मैं तन-मन-वचनसे आपका ही हूँ और आप ही मेरी एकमात्र गति हैं। मैं आपके शरण हूँ, आपके चरणोंपर पड़ा हूँ। आप अखिल कृपाकी खान हैं। कृपापूर्वक मुझपर दया कीजिये और मुझ दुष्ट अपराधीको अपना दास बना लीजिये।

जो भगवान् श्रीराधाकृष्णकी सेवाका अधिकार बहुत शीघ्र प्राप्त करना चाहते हैं, उन साधकोंको भगवान्‌के चरणकमलोंमें स्थित होकर इस प्रार्थनामय मन्त्रका नित्य जप करना चाहिये।

भगवान् शंकरने फिर नारदजीसे कहा कि—

'देवर्षि! मैं भगवान्‌के मन्त्रका जप और उनका ध्यान करता हुआ बहुत दिनोंतक कैलासपर रहा, तब भगवान्‌ने प्रकट होकर मुझे दर्शन दिये और वर माँगनेके लिये कहा। मैंने बारंबार प्रणाम करके उनसे प्रार्थना

की—'कृपासिन्धो! आपका जो सर्वानन्ददायी, समस्त आनन्दोंका आधार नित्य मूर्तिमान् रूप है, जिसे विद्वान् लोग निर्गुण निष्क्रिय शान्तब्रह्म कहते हैं, हे परमेश्वर! मैं उसी रूपको अपनी आँखोंसे देखना चाहता हूँ।'

भगवान्ने कहा—'आप श्रीयमुनाजीके पश्चिम तटपर मेरे वृन्दावनमें जाइये, वहाँ आपको मेरे स्वरूपके दर्शन होंगे।' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। मैंने उसी क्षण मनोहर यमुनातटपर जाकर देखा—समस्त देवताओंके ईश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण मनोहर गोपवेष धारण किये हुए हैं। उनकी सुन्दर किशोर-अवस्था है। श्रीराधाजीके कन्धेपर अपना अति मनोहर बायाँ हाथ रखे वे सुन्दर त्रिभंगीसे

खड़े मुसकरा रहे हैं। उनके चारों ओर गोपियोंका मण्डल है। उनके शरीरकी कान्ति सजल जलदके सदृश स्निग्ध श्यामवर्ण है। वे अखिल कल्याणके एकमात्र आधार हैं।

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने अमृतोपम मधुर वाणीमें मुझसे कहा—

यदद्य मे त्वया दृष्टमिदं रूपमलौकिकम्।
घनीभूतामलप्रेमसच्चिदानन्दविग्रहम् ॥
नीरूपं निर्गुणं व्यापि क्रियाहीनं परात्परम्।
वदन्त्युपनिषत्संघा इदमेव ममानघ॥
प्रकृत्युत्थगुणाभावादनन्तत्वात् तथेश्वर।
असिद्धत्वान्मद्गुणानां निर्गुणं मां वदन्ति हि॥
अदृश्यत्वान्ममैतस्य रूपस्य चर्मचक्षुषा।
अरूपं मां वदन्त्येते वेदाः सर्वे महेश्वर॥
व्यापकत्वाच्चिदंशेन ब्रह्मेति च विदुर्बुधाः।
अकर्तृत्वात्प्रपञ्चस्य निष्क्रियं मां वदन्ति हि॥
मायागुणैर्यतो मेंऽशाः कुर्वन्ति सर्जनादिकम्।
न करोमि स्वयं किंचित् सृष्ट्यादिकमहं शिव॥

(पद्मपुराण, पातालखण्ड)

'शंकरजी! आपने आज मेरा यह परम अलौकिक रूप देखा है। सारे उपनिषद् मेरे इस घनीभूत निर्मल प्रेममय सच्चिदानन्दघन रूपको ही निराकार, निर्गुण, सर्वव्यापी, निष्क्रिय और परात्पर ब्रह्म कहते हैं। मुझमें प्रकृतिसे उत्पन्न कोई गुण नहीं है और मेरे गुण अनन्त हैं—उनका वर्णन नहीं हो सकता। मेरे वे गुण प्राकृत दृष्टिसे सिद्ध नहीं होते, इसलिये सब मुझको निर्गुण कहते हैं। महेश्वर! मेरे इस रूपको चर्मचक्षुओंके द्वारा कोई देख नहीं सकता, इसलिये वेद इसको अरूप या निराकार कहते हैं। मैं अपने चैतन्यांशके द्वारा सर्वव्यापी हूँ, इसलिये विद्वान् लोग मुझको ब्रह्म कहते हैं और मैं इस विश्वप्रपंचका रचयिता नहीं हूँ, इसलिये पण्डितगण मुझको निष्क्रिय बतलाते हैं। शिव! वस्तुतः सृष्टि आदि कोई भी कार्य मैं स्वयं नहीं करता। मेरे अंश (ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र) ही मायागुणोंके द्वारा सृष्टि-संहारादि कार्य किया करते हैं।'

देवर्षि! भगवान्के इस प्रकार कहने और कुछ अन्य उपदेश करनेपर मैंने उनसे पूछा—'नाथ! आपके इस युगल-स्वरूपकी प्राप्ति किस उपायसे हो सकती है, इसे कृपा करके बतलाइये।' भगवान्ने कहा—हम दोनोंके शरणापन्न होकर जो गोपीभावसे हमारी उपासना करते हैं, उन्हींको हमारी प्राप्ति होती है, अन्य किसीको नहीं—

गोपीभावेन देवेश स मामेति न चेतरः।

'एक सत्य बात और है—वह यह है कि पूरे प्रयत्नके साथ इस भावकी प्राप्तिके लिये श्रीराधिकाकी उपासना करनी चाहिये।'

'हे रुद्र! यदि आप मुझे वशमें करना चाहते हैं तो मेरी प्रिया श्रीराधिकाजीकी शरण ग्रहण कीजिये।'

आश्रित्य मत्प्रियां रुद्र मां वशीकर्तुमर्हसि।

देवर्षि नारदद्वारा श्रीराधाका महिमा-प्रतिपादक-स्तवन

एक समय नारदजी यह जानकर कि 'भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें प्रकट हुए हैं' वीणा बजाते हुए गोकुल पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने नन्दजीके गृहमें बालकका स्वाँग बनाये हुए महायोगीश्वर दिव्य-दर्शन भगवान् अच्युतके दर्शन किये। वे स्वर्णके पलंगपर, जिसपर कोमल श्वेत वस्त्र बिछे थे, सो रहे थे और प्रसन्नताके साथ प्रेमविह्वल हुई गोपबालिकाएँ उन्हें निहार रही थीं। उनका शरीर सुकुमार था; जैसे वे स्वयं भोले थे, वैसी ही उनकी चितवन भी बड़ी भोली-भाली थी। काली-काली घुँघराली अलकें भूमिको छू रही थीं। वे बीच-बीचमें थोड़ा-सा हँस देते थे, जिससे दो-एक दाँत झलक पड़ते थे। उनकी छविसे गृहका मध्यभाग सब ओरसे उद्भासित हो रहा था। उन्हें नग्न बालरूपमें देखकर नारदजीको बहुत ही हर्ष हुआ।

उन्होंने नन्दजीसे कहा—'तुम्हारे पुत्रके अतुलनीय प्रभावको, जो नारायणके भक्तोंका परम दुर्लभ जीवन है, इस जगत्‌में कोई नहीं जानता। शिव, ब्रह्मा आदि देवता भी इस विचित्र बालकमें निरन्तर अनुराग रखना चाहते हैं। इसका चरित्र सभीके लिये आनन्ददायी है। अचिन्त्य प्रभावशाली तुम्हारे शिशुमें स्नेह रखते हुए जो लोग इसके पुण्य-चरित्रका सहर्ष गान, श्रवण तथा अभिनन्दन करेंगे, उन्हें कभी भव-बाधा न होगी। गोपवर! तुम परलोककी इच्छा छोड़ दो और अनन्यभावसे इस दिव्य बालकमें अहैतुक प्रेम करो।'

यह कहकर मुनिवर नारदजी नन्दभवनसे निकले। नन्दने भी विष्णु-बुद्धिसे मुनिको प्रणाम करके उन्हें बिदा दी। इसके बाद महाभागवत नारदजी यह विचारने लगे—'भगवान्‌की कान्ता लक्ष्मीदेवी भी अपने पति नारायणके अवतीर्ण होनेपर उनके विहारार्थ गोपीरूप धारण करके कहीं अवश्य ही अवतीर्ण हुई होंगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। अतः व्रजवासियोंके घरोंमें उन्हें खोजना चाहिये।'

ऐसा विचारकर मुनिवर व्रजवासियोंके घरोंपर अतिथिरूपमें जा-जाकर उनके द्वारा विष्णु-बुद्धिसे पूजित होने लगे। उन्होंने भी गोपोंका नन्दनन्दनमें उत्कृष्ट प्रेम देखकर मन-ही-मन सबको प्रणाम किया।

तदनन्तर वे नन्दके मित्र महात्मा भानुके घरपर गये। उन्होंने इनकी विधिवत् पूजा की। तब महामना नारदजीने उनसे पूछा—'साधो! तुम अपनी धार्मिकताके कारण विख्यात हो। क्या तुम्हें कोई सुयोग्य पुत्र अथवा सुलक्षणा कन्या है, जिससे तुम्हारी कीर्ति समस्त लोकोंको व्याप्त कर सके?'

मुनिवरके ऐसा कहनेपर भानुने पहले तो अपने महान् तेजस्वी पुत्रको लाकर उससे नारदजीको प्रणाम करवाया। तदनन्तर अपनी कन्याको दिखलानेके लिये नारदजीको घरके अन्दर ले गये। गृहमें प्रवेशकर उन्होंने पृथ्वीपर लोटती हुई नन्हीं-सी दिव्य बालिकाको गोदमें उठा लिया। उस समय उनका चित्त स्नेहसे विह्वल हो रहा था।

कन्याके अदृष्ट तथा अश्रुतपूर्व अद्भुत स्वरूपको देखकर श्रीकृष्णके अत्यन्त प्रिय भक्त नारदजी मुग्ध हो गये। वे एकमात्र रसके आधार परमानन्दमय समुद्रमें गोते लगाते हुए दो मुहूर्ततक पत्थरकी भाँति निश्चेष्ट बने रहे, फिर उन्होंने आँखें खोलीं और महान् आश्चर्यमें पड़कर वे मूकभावसे ही बैठे रहे।

अन्ततोगत्वा महाबुद्धिमान् मुनिने मनमें इस प्रकार विचारा—'मैंने स्वच्छन्दचारी होकर समस्त लोकोंमें भ्रमण किया, परंतु इसके समान अलौकिक सौन्दर्यमयी कन्या कहीं भी नहीं देखी। ब्रह्मलोक, रुद्रलोक और इन्द्रलोकमें भी मेरी गति है; किंतु इस कोटिकी शोभाका एक अंश भी मुझे कहीं नहीं दीखा। जिनके रूपसे चराचर जगत् मोहित हो जाता है, उन महामाया भगवती गिरिराजकुमारीको भी मैंने देखा है। वे भी इसकी शोभाको नहीं पा सकतीं। लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति और विद्या आदि देवियाँ इसकी छायाका भी स्पर्श कर सकती हों—ऐसा भी नहीं देखा जाता। अतः इसके तत्त्वको जाननेकी शक्ति मुझमें किसी तरह नहीं है। अन्य जन भी प्रायः इस हरिवल्लभाको नहीं जानते। इसके दर्शनमात्रसे गोविन्दके चरण-कमलोंमें मेरे

प्रेमकी जैसी वृद्धि हुई है, वैसी इसके पहले कभी नहीं हुई थी। अस्तु, अनन्त वैभव दिखानेवाली इस देवीकी मैं एकान्तमें वन्दना करूँ। इसका रूप भगवान् श्रीकृष्णके लिये परमानन्दजनक होगा।'

ऐसा विचारकर मुनिने गोपप्रवर भानुको कहीं अन्यत्र भेज दिया और एकान्तस्थानमें वे उस दिव्यरूपिणी बालिकाकी स्तुति* करने लगे—

'देवि! अनन्तकान्तिमयी महायोगेश्वरि! तुम्हारा अंग मोहन एवं दिव्य है, उससे अनन्त मधुरिमाकी वर्षा होती रहती है। तुम्हारा हृदय महान् अद्भुत रसानन्दसे पूर्ण रहता है। तुम मेरे किसी महान् सौभाग्यसे आज नेत्रोंकी अतिथि बनी हो। देवि! तुम्हारी दृष्टि अन्तःकरणमें निरन्तर सुखदायिनी प्रतीत होती है। तुम अपने अन्दर महान् आनन्दसे तृप्त-सी दीख पड़ती हो। तुम्हारा यह प्रसन्न, मधुर तथा सौम्य मुखमण्डल हृदयको सुख देनेवाले किसी महान् आश्चर्यको व्यक्त कर रहा है। अत्यन्त शोभामयि! तुम रजोगुणकी कलिका और शक्तिरूपा हो। सृष्टि, पालन और संहाररूपमें तुम्हारी ही स्थिति है। तुम विशुद्ध-सत्त्वमयी और विद्यारूपिणी पराशक्ति हो तथा परमानन्द-संदोहमय वैष्णवधामको धारण करती हो। ब्रह्मा और रुद्रके लिये तुम्हारी एक कलाको भी जानना कठिन है। तुम्हारा वैभव आश्चर्यमय है। तुम योगीश्वरोंके भी ध्यान-पथका कभी स्पर्श नहीं करती। मेरी बुद्धिमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति—ये सब तुम्हारी अंशमात्र हैं।

मायासे ही विशुद्ध रूप धारण करनेवाले परमेश्वर महाविष्णुकी जो अचिन्त्य विभूतियाँ हैं, वे सभी तुम्हारी अंशांशमात्र हैं। ईश्वरि! तुम निस्संदेह आनन्दमयी शक्ति हो, अवश्य ही वृन्दावनमें तुम्हारे साथ श्रीकृष्णचन्द्र

* × × × । अयि देवि महायोगमायेश्वरि महाप्रभे॥
महामोहनदिव्याङ्गि महामाधुर्यवर्षिणि । महाद्भुतरसानन्दशिथिलीकृतमानसे ॥
महाभाग्येन केनापि गतासि मम दृक्पथम् । नित्यमन्तर्मुखा दृष्टिस्तव देवि विभाव्यते॥
अन्तरैव महानन्दपरितृप्तेव लक्ष्यसे । प्रसन्नं मधुरं सौम्यमिदं सुमुखमण्डलम्॥
व्यनक्ति परमाश्चर्यं कमप्यन्तःसुखोदयम् । रजःसम्बन्धिकलिका शक्तिस्तत्त्वातिशोभने॥
सृष्टिस्थितिसमाहाररूपिणी त्वमधिष्ठिता । तत्त्वं विशुद्धसत्त्वासु शक्तिर्विद्यात्मिका परा॥
परमानन्दसन्दोहं दधती वैष्णवं परम् । कलयाश्चर्यविभवे ब्रह्मरुद्रादिदुर्गमे॥
योगीन्द्राणां ध्यानपथं न त्वं स्पृशसि कर्हिचित् । इच्छाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिस्तवेशितुः॥
तवांशमात्रमित्येवं मनीषा मे प्रवर्तते । मायाविभूतयोऽचिन्त्यास्तन्मायार्भकमायिनः ॥
परेशस्य महाविष्णोस्ताः सर्वास्ते कलाकलाः । आनन्दरूपिणी शक्तिस्त्वमीश्वरि न संशयः॥
त्वया च क्रीडते कृष्णो नूनं वृन्दावने वने । कौमारेणैव रूपेण त्वं विश्वस्य च मोहिनी॥
तारुण्यवयसा स्पृष्टं कीदृक्ते रूपमद्भुतम् । कीदृशं तव लावण्यं लीलाहासेक्षणान्वितम्॥
हरिमानुषलोभेन वपुराश्चर्यमण्डितम् । द्रष्टुं तदहमिच्छामि रूपं ते हरिवल्लभे॥
येन नन्दसुतः कृष्णो मोहं समुपयास्यति । इदानीं मम कारुण्यान्निजं रूपं महेश्वरि॥
प्रणताय प्रपन्नाय प्रकाशयितुमर्हसि। ××× ॥

(पद्मपुराण, पातालखण्ड ७१। ४७—६१)

क्रीड़ा करते हैं। कुमारावस्थामें ही तुम अपने सुन्दर रूपसे विश्वको मुग्ध कर रही हो, न जाने यौवनका स्पर्श होनेपर तुम्हारा रूपलावण्य तथा हास-विलासयुक्त निरीक्षण कैसा विलक्षण होगा। हरिवल्लभे! तुम्हारे उस पूजनीय दिव्य स्वरूपको मैं देखना चाहता हूँ, जिससे नन्दनन्दन श्रीकृष्ण मुग्ध हो जायँगे। महेश्वरि! माता! मुझ शरणागत तथा प्रणत भक्तके लिये दया करके तुम अपना स्वरूप प्रकट कर दो।'

यों निवेदन करके नारदजीने तदर्पित चित्तसे उस महानन्दमयी परमेश्वरीको नमस्कार किया और भगवान् गोविन्दकी स्तुति करते हुए वे उस देवीकी ओर ही देखते रहे। जिस समय वे श्रीकृष्णका नाम-कीर्तन कर रहे थे, उसी समय भानुसुताने चतुर्दशवर्षीय, परम लावण्यमय अत्यन्त मनोहर दिव्य रूप धारण कर लिया। तत्काल ही अन्य व्रजबालाओंने, जो उसीकी समान अवस्थाकी थीं तथा दिव्य भूषण एवं सुन्दर हार धारण किये हुए थीं, उस बालाको चारों ओरसे आवृत कर लिया। उस समय बालिकाकी सखियाँ उसके चरणोदककी बूँदोंसे मुनिको सींचकर कृपापूर्वक बोलीं—

'महाभाग मुनिवर! वस्तुतः आपने ही भक्तिके साथ भगवान्‌की आराधना की है; क्योंकि ब्रह्मा, रुद्र आदि देवता, सिद्ध, मुनीश्वर तथा अन्य भगवद्भक्तोंके लिये जिसका दर्शन मिलना कठिन है, उसी अद्भुत वयोरूपसम्पन्ना विश्वमोहिनी हरिप्रियाने किसी अचिन्त्य सौभाग्यवश आज आपके दृष्टिपथपर पदार्पण किया है। ब्रह्मर्षे! उठो, उठो, शीघ्र ही धैर्य धारणकर इसकी परिक्रमा तथा बार-बार इसे नमस्कार करो। क्या तुम नहीं देखते कि इसी क्षणमें यह अन्तर्धान हो जायगी, फिर इसके साथ किसी तरह तुम्हारा सम्भाषण नहीं हो सकेगा।'

उन प्रेमविह्वला सखियोंके वचन सुनकर नारदजीने दो मुहूर्ततक उस सुन्दरी बालाकी प्रदक्षिणा करके साष्टांग प्रणाम किया। उसके बाद भानुको बुलाकर कहा—'तुम्हारी पुत्रीका प्रभाव बहुत बड़ा है। देवता भी इसका महत्त्व नहीं जान सकते। जिस घरमें इसका चरण-चिह्न है, वहाँ साक्षात् भगवान् नारायण निवास करते हैं और समस्त सिद्धियोंसहित लक्ष्मी भी वहाँ रहती हैं। आजसे सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित इस सुन्दरी कन्याकी महादेवीके समान यत्नपूर्वक घरमें रक्षा करो।' ऐसा कहकर नारदजी हरि-गुण गाते हुए चले गये।

'आए मुनि भानु-भौन नारद बरसानें'

आए मुनि भानु-भौन नारद बरसानें। गावत हरिनाम मधुर पावन रस-साने॥
मिले बृषभान आय बोले मृदु बानी। 'हरिपुर तैं आए हम सुनि कैं, सुखदानी—॥
प्रगट भई कीरति-कूख कुँवरी श्रीराधा। पूरन सब आस, हरन त्रास सकल बाधा॥
दरस करवाऔ हमैं कुँवरी के अबहीं।' दीने पठाय भानु भीतर महल तबहीं॥
देखत ही भए मगन, तन-मन सब भूले। महा आनंद-रस छायौ, हिए फूले॥
भाँति-भाँति करे स्तवन, फेरी तब दीनी। चरन-रेनु कुँवरी की सिर चढ़ाय लीनी॥
बाहिर आय बोले—'बृषभानू बड़भागी! तुम पै दुरलभ अपार कुँवरि-कृपा जागी॥
प्रगट भईं आय घर तुम्हरे जो स्वामिनि। सच्चिदानंदमई ह्लादिनि हरि-भामिनि॥'
मृदुल सुर बजाय बीन, मधुर-मधुर गावन। लगे रस-भरे दृगन आँसू ढरकावन॥
सरस रस-प्रमत्त फेर नृत्य करन लागे। बोले—'मैं धन्य आज, भाग्य भव्य जागे॥'

श्रीउद्धवजीद्वारा गोपीप्रेम-महिमाका मार्मिक वर्णन

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य॥

'इस पृथ्वीपर केवल इन गोपियोंका ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ है; क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रेममय दिव्य भावमें स्थित हो गयी हैं। प्रेमकी यह स्थिति संसारके भयसे भीत मुमुक्षुजनोंके लिये ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े मुनियों—मुक्त पुरुषों तथा हम भक्तजनोंके लिये भी अभी वाञ्छनीय ही है। हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। सत्य है, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथाका रस नहीं मिला, तो अनेक महाकल्पोंतक बार-बार ब्रह्मा होनेसे ही क्या लाभ?

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षा-
च्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः॥

कहाँ ये वनचरी आचार, ज्ञान और जातिसे हीन गाँवकी गँवार ग्वालिनें और कहाँ सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णमें यह अनन्य परम प्रेम! अहो, धन्य है। इससे सिद्ध होता है कि यदि कोई भगवान्के स्वरूप और रहस्यको न जानकर भी उनका भजन करे, तो वे स्वयं अपनी कृपासे उसका परम कल्याण कर देते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे कोई अनजानमें भी अमृत पी ले तो वह अपनी वस्तुशक्तिसे ही पीनेवालेको अमर बना देता है।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम्॥

भगवान् श्रीकृष्णने रासोत्सवके समय इन व्रजांगनाओंके गलेमें अपनी भुजा डाल-डालकर इनके मनोरथ पूर्ण किये। इन्हें भगवान्ने जिस कृपा-प्रसादका वितरण किया, इन्हें जैसा प्रेमदान दिया, वैसा प्रेम भगवान्की परम प्रेयसी, नित्यसंगिनी लक्ष्मीजीको भी प्राप्त नहीं हुआ। कमलकी-सी सुगन्ध और कान्तिसे सम्पन्न देवांगनाओंको भी वह नहीं मिला, फिर अन्यकी तो बात ही क्या है?

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

मेरे लिये सबसे श्रेष्ठ यही होगा कि मैं इस वृन्दावनमें कोई क्षुद्र झाड़ी, लता या ओषधि ही बन जाऊँ—जिससे इन व्रजांगनाओंकी चरणधूलि मुझे निरन्तर मिलती रहे। इन गोपियोंकी कैसी महिमा है! जिनका त्याग अत्यन्त कठिन है, उन स्वजनोंका तथा आर्यपथ—लोक-वेदकी श्रेष्ठ मर्यादाका सहज परित्याग करके इन्होंने भगवान्की पदवीको—उनके परम प्रेमको प्राप्त कर लिया है, जिसको श्रुतियाँ नित्य ढूँढ़ती रहती हैं, पर पाती नहीं (नेति-नेति पुकारकर रह जाती) हैं।

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-
र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम्।
कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम्॥

स्वयं भगवती लक्ष्मीजी जिनकी पूजा करती रहती हैं, ब्रह्मा, शंकर प्रभृति परम समर्थ देवता तथा पूर्णकाम, आत्माराम एवं बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदयमें जिनका चिन्तन करते रहते हैं, भगवान् श्रीकृष्णके उन्हीं दुर्लभ चरणारविन्दोंको रासलीलाके समय गोपांगनाओंने अपने वक्षःस्थलपर धारण किया और उनका आलिंगन करके अपने हृदयके विरह-तापको शान्त किया!

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्‌गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥

जिनका हरिकथामय गान तीनों लोकोंको पवित्र करने-वाला है, उन नन्दबाबाके व्रजमें रहनेवाली गोपांगनाओंकी चरणधूलिको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।'

[श्रीमद्भा० १०। ४७। ५८—६३]

श्रीराधामाधवकी लीलाएँ और धाम

(गोलोकवासी श्रीउड़ियाबाबाजीके उपदेश)

भगवान् श्रीकृष्णने माखन चुराकर खाया, उन्होंने गोपियोंके साथ रासलीला की। उनकी इन लीलाओंका रहस्य प्रत्येक मनुष्य नहीं समझ सकता—

जानहिं यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी॥

भगवान् श्रीकृष्ण लीला-पुरुषोत्तम हैं। उनकी बड़ी ही अलौकिक और दिव्य लीलाएँ हुआ करती हैं। उन्हें कोई विरले भाग्यवान् प्रेमीजन ही देख पाते हैं। वे भगवान् हमारे पास भी बैठे हुए हैं! 'मैं तो भक्तोंका ऋणी हूँ। सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य आदि मुक्तियाँ तो उन्हें मैं ब्याजमें दे देता हूँ। उनका मूल तो मेरे पास जमा ही रहता है। किंतु वे प्रेमी भक्त इन चारों मुक्तियोंको मेरे द्वारा दिये जानेपर भी स्वीकार नहीं करते'—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

श्रीरघुनाथजीके चरित्रमें शंका मत करो, इस सम्बन्धमें कुछ भी न कहो। वे जो कुछ करते हैं, ठीक ही करते हैं। बेठीक कर ही नहीं सकते। श्रीरघुनाथजीको जब हम ईश्वर समझ चुके हैं तो उनके कार्योंमे तर्क करनेकी क्या आवश्यकता है। महान् पुरुष जो करते हैं, उसे आदर्शरूप नहीं मानना चाहिये। उनके उपदेशको आदर्श मानना चाहिये।

'**काशीमरणान्मुक्तिः**'—इस शास्त्र-वाक्यमें कोई सन्देह नहीं—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

—ये सब भगवान्के धाम हैं। इन धामोंमे रहकर शुभ कर्म करनेसे अवश्य मुक्ति होगी। यदि धामका महत्त्व न हो तो उसे कौन मानेगा? काशी, वृन्दावन, गंगा, यमुना आदि सब मुक्तिके धाम हैं।

रासलीला नित्यलीला है। वह एक क्षणके लिये भी बन्द नहीं होती। किंतु उसे सब देख नहीं सकते हैं। जिनकी दिव्य दृष्टि होती है, वे ही देख सकते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णकी माखनचोरी-लीला अथवा वस्त्रहरण-लीला तो ऐसी ही लीला है, जैसी आजकलके एक छोटेसे पाँच-छः वर्षके बच्चेकी हो। भगवान् श्रीकृष्ण कुछ चपल थे। आज भी बच्चे खाने-पीनेकी चीजोंको अपने और अपने अन्य मित्रोंके घरोंमेंसे चपलतापूर्वक निकालकर खा-पी जाते हैं। उनका यह कार्य क्या चोरीकी सजा पानेयोग्य समझा जाता है? यह बालककी चपलता ही है तथा चपल बालक अपने माता-पिता एवं अन्य सब लोगोंको भी अच्छा ही लगता है। चीरहरण-लीला आदि भी ऐसी ही हैं। इनमें दोष देखनेवालोंको कम-से-कम उस समयकी भगवान्की आयुका ध्यान तो रखना ही चाहिये। क्या पाँच वर्षकी अवस्थाके बालकके ऐसे कार्य दण्डनीय समझे जाते हैं?

इसी प्रकार यदि उन्हें केवल मनुष्य या योगिराज मानें तो भी उनकी इन लीलाओंमें किसी प्रकारका दोष देखना उचित नहीं है। योगियोंको कौन सिद्धि प्राप्त नहीं होती? फिर भी क्या वे किसी बुरी नीयतसे माखन-मिसरी चुराकर खायेंगे? अथवा किसी दूषित विचारसे कुमारी कन्याओंके वस्त्र उठाकर ले जायँगे और माँगनेपर उन्हें तत्काल दे देंगे? और यदि उन्हें साक्षात् परब्रह्म समझो, तब तो उनसे किसीका परदा या परायापन हो ही क्या सकता है? ऐसी अवस्थामें उनसे भिन्न है ही कौन, जिसकी वे चीज चुरायेंगे? तब तो सब चीजें उन्हींकी होंगी और वे अपनी चीजोंकी यथोचित व्यवस्था करेंगे। जिस दृष्टिसे भी देखें, भगवान् कृष्णके चरित्रमें कोई दोष दिखायी नहीं देता। परंतु उनका महत्त्व और वास्तविकता ही किसीकी समझमें आना कठिन है। जब साधारण खिलाड़ी भी रंगभूमिपर आकर अपनी वास्तविकताको ऐसा छिपाता है कि वह किसीपर प्रकट ही नहीं होती तो फिर जब साक्षात् विश्वेश्वर लीला करने लगें तो उन्हें कौन पहचान सकता है? जब पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जीवित थे तो बंगालके एक प्रसिद्ध नाट्यकारने उन्हें एक नाटक देखनेके लिये आमन्त्रित किया। परंतु विद्यासागरजी समयाभावके कारण उनका अभिनय देखनेके लिये नहीं

जा सके। एक दिन उन्हें समय मिला और वे नाटक देखनेके लिये गये तो उस दिन 'नीलके व्यापारका नाश' इस नाटकका अभिनय दिखाया जा रहा था। विद्यासागरजी एक ऊँचे दर्जेमें बैठे खेल देख रहे थे। उन्होंने देखा कि एक गोरा नीलकी खेती करनेवाले एक भारतीय किसानकी स्त्रीपर अत्याचार कर रहा है। बस, यह देखकर वे ऐसे उत्तेजित हुए कि उन्होंने अपने पैरसे चप्पल निकालकर उस गोरेपर खींच मारी। सब लोग देखते रह गये। परंतु नाट्यकारने झट मंचपर खड़े होकर अपने अभिनयकी सराहना की कि 'आज मेरा अभिनय दिखाना सफल हुआ, जो विद्यासागरजी-जैसे महान् पुरुषको भी यह लीला सच्ची घटना जान पड़ी।' यह अवस्था तो हमारे चतुर अभिनयकर्ताओंकी है। फिर भला जब स्वयं जगदीश्वर एक बच्चेका अभिनय करनेके लिये संसारमें आयें और साधारण सांसारिक पुरुष उनकी वास्तविकताको पहचान ले तो उनका अभिनय कच्चा ही कहलायेगा। इसलिये हर किसीकी समझमें उनकी लीला नहीं आ सकती।

जो लोग श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाओंका आध्यात्मिक अर्थ लगाते हैं और कहते हैं कि 'उन्होंने वस्त्रहरण नहीं किया, किंतु भक्तोंके मनको चुराया था, माखन नहीं चुराया था, गोपियोंका हृदय चुराया था।' ऐसा कहकर उन मधुर लीलाओंको केवल रूपकमात्र सिद्ध करते हैं, उनका यह मत यथार्थ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वेदों और दर्शनोंके पारगामी, महान् पण्डित भगवान् व्यासजी कोई कच्ची बुद्धिके बच्चे नहीं थे, जो मन चुरानेकी बातको सीधे-सीधे न लिखकर लोगोंको भ्रममें डालते। क्या उन्होंने भक्तोंका मन चुरानेकी बात नहीं लिखी? फिर इसी जगह वे उसे इस प्रकार क्यों दिखाते? यह झूठा अध्यात्मवाद भक्तोंको अच्छा नहीं लगता, वरन् उनके कोमल चित्तको ठेस पहुँचाता है।

रासलीला आदि देखनेका अधिकारी वही हो सकता है, जिसने अपने चित्तको लीन करके उसपर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली हो, अन्यथा उसमें लौकिक बुद्धि हुए बिना नहीं रह सकती।

जो दिव्य वृन्दावन है, वह तो महापुरुषोंको ही दीख पड़ता है। सामान्य पुरुष उसे कुछ नहीं जान सकते।

राधा और कृष्ण दोनों ही चिन्मय हैं। वस्तुतः ये दो नहीं, एक ही तत्त्व हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा और उसकी किरण दो नहीं, एक ही वस्तु हैं, उसी प्रकार राधा-कृष्ण भी एक ही चिन्मय तत्त्व हैं। केवल लीलारसके प्राकट्यके लिये ये दो हो जाते हैं।

उपास्य देवविग्रहमें तीन प्रकारकी दृष्टियाँ होती हैं—लौकिक, शास्त्रीय और दैवी। (१) यह पत्थर है—इसे लौकिक (पदार्थ) दृष्टि कहते हैं। (२) यह भगवान्‌का स्वरूप है—इसका नाम शास्त्रीय दृष्टि है। (३) यह साक्षात् चिन्मय है—इसको दैवी दृष्टि कहते हैं। इसी प्रकार स्त्रीमें भी यह अस्थि-मांसका थैला है—इसे लौकिक (पदार्थ) दृष्टि समझना चाहिये।

व्रजवास तीन प्रकारसे होता है—शरीरसे, वाणीसे और मनसे। पहले तो शरीर व्रजमें रहना चाहिये। फिर वाणीद्वारा व्रजरसका आस्वादन किया जाय। महावाणी अथवा अष्ट सखाओं या व्रजरसिकोंके पदोंका गान और आस्वादन वाणीसे व्रजवास करना है तथा मन भी व्रजमें ही लगा रहे—यह मनसे व्रजमें रहना है। यदि कोई तीनों प्रकारका व्रजवास करे तो अति उत्तम है।

भक्तको भगवान्‌का प्रसाद सर्वदा पाना चाहिये। उसमें ऐसा विचार कभी नहीं करना चाहिये कि यह रोटी है या पूड़ी अथवा अच्छा है या बुरा। यदि ऐसा विचार रहेगा तो भक्तको इस जन्ममें तो भक्ति या प्रेम प्राप्त हो नहीं सकेगा। प्रसादमें विशुद्ध प्रसादबुद्धि ही रहनी चाहिये। जैसा कहा है—

जगन्नाथका भात। जगत पसारे हाथ॥

श्रीवृन्दावन तो नित्य और चिन्मय धाम है। जो जीव वृन्दावनमें पहुँच जाता है, वह नित्यानन्दमें मस्त रहता है तथा श्रीसरकारके नित्यलीलास्वरूप रासका सुख भोगता है। परंतु इस वृन्दावनतक तो सिद्ध पुरुषोंकी ही पहुँच होती है। साधकका वहाँ प्रवेश नहीं है। साधकके लिये तो यही अच्छा है कि कुछ दिनोंतक वृन्दावनमें रहे और दर्शन करके लौट आये। साधक और सब तीर्थोंमें तो रह सकता है, किंतु वृन्दावनमें रहना कठिन है। इसका कारण यह है

कि वृन्दावनके चारों ओर सत्त्व, रज और तमोगुणकी तीन खाइयाँ बहुत चौड़ी हैं। वृन्दावन जानेवाले अधिकांश यात्री इनमेंसे ही किसी खाईमें पड़े रहते हैं। असली वृन्दावनतक तो उनकी पहुँच ही नहीं होती। जो इन तीनों गुणोंको पार कर लेता है, वह त्रिगुणातीत पुरुष ही उस दिव्य वृन्दावनमें पहुँच सकता है। वृन्दावनमें आज भी ऐसे सिद्ध पुरुष हैं, जो निरन्तर नित्यधामके आनन्दमें ही डूबे रहते हैं और छः-छः महीनेतक श्रीबाँकेबिहारीजीके दर्शनोंको भी नहीं जा पाते।

खाँड़के खिलौनेके प्रत्येक अंगमें परिपूर्णरूपसे खाँड़ मौजूद है। इसी प्रकार इस मूर्तिके प्रत्येक अंगमें चिदानन्द परिपूर्णरूपसे विद्यमान है।

श्रीराधाजीका प्रेमवैचित्त्य

प्रेमवैचित्त्यका लक्षण बतलाते हुए श्रीरूपगोस्वामी कहते हैं—

प्रियस्य संनिकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्षस्वभावतः।
या विश्लेषधियाऽऽर्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्यमुच्यते॥

'प्रेमकी उत्कृष्टताके कारण प्रियतमके समीप रहनेपर भी उसके न रहनेके निश्चयसे होनेवाली पीड़ाका अनुभव होना 'प्रेमवैचित्त्य' कहलाता है।'

श्रीराधाजीके इसी प्रेमवैचित्त्यके दो सुन्दर उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१)

रासलीलाके समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र समस्त गोपियोंको छोड़कर श्रीराधाजीको साथ लेकर एकान्तमें चले गये। वहाँ जब श्रीराधाने कहा—'मुझे कंधेपर चढ़ा लो' और ज्यों ही भगवान् उन्हें कंधेपर चढ़ाने लगे कि बस, उसी क्षण प्रेमकी अत्यन्त उत्कृष्टतावश श्रीराधाको 'प्रेमवैचित्त्य' हो गया। वे गिर पड़ीं तो प्रियतम श्रीकृष्णने उन्हें अपने अंकमें सुला लिया। उस समय श्रीराधाको ऐसा लग रहा था कि श्रीकृष्ण मुझे छोड़कर अन्तर्धान हो गये हैं और वे रो-रोकर पुकारने लगीं—

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय संनिधिम्॥

'हा नाथ! हा रमण! हा प्रियतम! हा महाबाहो! तुम कहाँ हो? कहाँ हो? मैं तुम्हारी दासी हूँ। प्यारे! तुम्हारे चले जानेसे मैं अत्यन्त दुखी हो रही हूँ। मेरे पास आकर मुझे तुरंत दर्शन दो।' (श्रीमद्भागवत)

(२)

श्रीयमुनाजीके तटपर श्रीराधा-माधव विहार कर रहे हैं। वृन्दादेवी कर्णभूषणके योग्य दो कमल श्रीमाधवको लाकर देती हैं। श्रीकृष्ण सहर्ष उनको लेकर श्रीराधाके कानोंमें पहनाने लगते हैं। इतनेमें ही देखते हैं कि कमलमें एक भ्रमर बैठा है। भ्रमर उड़ा, श्रीराधाके मुखको कमल समझकर उसकी ओर चला, श्रीराधाने श्रीहस्तके द्वारा उसको हटाना चाहा, भ्रमर श्रीकरतलको एक कमल समझकर उसकी ओर उड़ा। ढीठ भ्रमर जा नहीं रहा है, इससे डरकर श्रीराधा अपनी ओढ़नीका आँचल फटकारने लगीं। मधुमंगलने छड़ी मारकर भ्रमरको बहुत दूर हटा दिया और लौटकर कहा—'मधुसूदन (भ्रमर) चला गया।'

इतना सुनते ही 'मधुसूदन' शब्दसे भगवान् श्रीकृष्ण समझकर श्रीराधाजी 'हाय-हाय! मधुसूदन कहाँ चले गये'**—पुकारकर रोने लगीं।** 'यदिह सहसा मामत्याक्षीद्वने वनजेक्षणः।'—**'अकस्मात् कमलनयन श्रीकृष्ण इस वनमें मुझको त्यागकर क्यों चले गये?' यों कहकर वे आर्तनाद करने लगीं। अपने समीप ही प्रियतमाके इस मधुरतम प्रेमवैचित्त्य-जनित विरहको देखकर श्रीकृष्णने संकेतसे सबको चुप हो जानेके लिये कहा और स्वयं मधुर हास्य करने लगे। ये प्रेमवैचित्त्यके उदाहरण हैं।** (विदग्धमाधव)

रसराज शृंगाररससे समुद्भूत श्रीराधा-माधवचन्द्र

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

आप कई बार सुन चुके हैं कि जो सच्चिदानन्द परब्रह्म है, उसका विलास है 'रस'। ब्रह्मका परिणाम तो होता नहीं, लेकिन विलास मान्य है। यह सारा प्रपंच चिद्विलास है। परात्पर परब्रह्म अखण्ड सच्चिदानन्दका सर्वोत्कृष्ट विलास है 'रस'। रसके कई भेद हैं, उनमें सर्वोत्कृष्ट है 'शृंगार'। वही अंगी (शेषी)—प्रधान है और सब अंग (शेष, गौण) हैं। शृंगाररसके दो भेद हैं—(१) संयोगात्मक और (२) विप्रयोगात्मक। संयोगको संप्रयोग ओर वियोगको विप्रयोग भी कहते हैं। श्रीकृष्ण-मूर्ति प्राकृत पुरुषोंके समान अस्थि, चर्म, मांसमय नहीं है, अपितु उभयविध शृंगाररसमय है। वे उभय रस भी उद्बुद्ध हैं, पूर्णरूपेण अभिव्यक्त हैं। वैसे तो जिस समय संयोगात्मक शृंगार अनुभूयमान होता है, उस समय वियोगात्मक शृंगारका अनुभव नहीं होता, विप्रयोगात्मक शृंगाररसानुभवकालमें सम्प्रयोगात्मक शृंगाररसका अनुभव नहीं होता; परंतु भगवान् श्रीकृष्णमें यही विशेषता है कि यहाँ उभयविध शृंगाररसका एककालावच्छेदेन पूर्ण प्राकट्य है। दोनोंका अनुभव भी एक ही कालमें हो रहा है। इस तरह सम्प्रयोगात्मक-विप्रयोगात्मक उभयविध-शृंगाररसार्णव श्रीकृष्ण भाटावाले समुद्रतुल्य नहीं, ज्वारवाले समुद्रतुल्य हैं।

इस तथ्यको यों समझो कि संप्रयोगात्मक (संयोगरूप)-विप्रयोगात्मक (वियोगरूप) उभयविध (दोनों प्रकारके) शृंगाररसार्णव (शृंगाररससिन्धु)-से श्रीराधाकृष्ण-तत्त्वका प्रादुर्भाव हुआ है। श्रीराधा-कृष्ण क्या हैं? संयोग-वियोगरूप शृंगाररससिन्धुसे प्रादुर्भूत निर्मल-निष्कलंक चन्द्र। श्रीराधाके मन-रूप कुमुदके चन्द्र हैं श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णके मन-रूप-कुमुदकी चन्द्र हैं श्रीराधा। अथवा यों समझो—श्रीवृन्दावनधाम एक पूर्णानुराग-रससार-सरोवर-समुद्भूत-सरोज (कमल) है। सामान्य सरोवरमें मिट्टीके पंकसे उत्पन्न पंकजमें लोकोत्तर आभा-प्रभा-शोभा, शीतलता-मधुरता-पवित्रता होती है। उसका वर्णन करते-करते कवीन्द्रगण अघाते नहीं। कदाचित् दुग्धके सरोवरमें मक्खन (नवनीत)-के पंकसे कोई पंकज प्रादुर्भूत हो तो उसकी आभा, प्रभा, शोभा, शीतलता, मधुरता, पवित्रता कितनी अनुपम होगी! यहाँ तो पूर्णानुराग-रस-सार-सरोवरमें पूर्णानुराग-रस-सार-सर्वस्वरूपी पंकसे प्रादुर्भूत पंकज श्रीवृन्दावनधाम मान्य है। उसकी आभा-प्रभा-शोभा, शीतलता-मधुरता-पवित्रताका क्या कहना! जिनके दृष्टिगोचर हो, उनके सौभाग्यका क्या कहना! उसमें जो पीली-पीली केसरें हैं, गौरांगी गोपांगनाएँ हैं, जो कि श्रीराधारानीकी परम पवित्र अन्तरंगा ललिता, विशाखादि सखियाँ हैं। उसमें जो पराग है, वह श्रीकृष्णचन्द्र परमानन्दकन्द हैं। परागोंमें जो मकरन्द है, वह श्रीराधारानी वृषभानुनन्दिनी हैं। इस प्रकार श्रीवृन्दावनधाम कितनी अद्भुत अन्तरंग वस्तु है! श्रीराधारानी कृपा करें, तब उसके सम्बन्धमें कुछ जानकारी हो, कहने-सुननेकी बात और है। इस तरह उत्कर्षकी पराकाष्ठा है। दुनियामें सबसे उत्कृष्ट है ब्रह्म। ब्रह्मशब्द '**बृहि वृद्धौ**' धातुसे बनता है। अत: ब्रह्मशब्दका 'बृहत्' या 'महान्' अर्थ होता है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि किसी बृहत् या महान् वस्तुको ब्रह्म कहते हैं। अब यह विवेचन करना है कि ब्रह्मकी वह बृहत्ता सापेक्ष है या निरपेक्ष, सातिशय है या निरतिशय? जब किसी प्रकारका संकोचक प्रमाण नहीं है और निरतिशय महत्तामें कोई अनुपपत्ति नहीं है, तब सर्वप्रकार एवं सर्वाधिक निरतिशय महान्‌को ब्रह्म कहना चाहिये। महत्ताकी अतिशयताकी कल्पना जहाँ विरत हो जाय, जिससे अधिक बृहत्ताकी कल्पना हो ही नहीं सके, उसीको ब्रह्म कहते हैं।

'**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' (तैत्तिरीयो० २।१) इस श्रुतिमें 'अनन्त' पद प्रयुक्त है, जिससे निरतिशय बृहत्ताकी और भी पुष्टि हो जाती है। इस तरह सर्व प्रकारसे सिद्ध हुआ कि निरतिशय महान्‌को ही ब्रह्म कहते हैं। जिसके समान अतिशय कोई नहीं, उन अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक प्रभुके न कोई बराबर है

और न कोई उनसे बड़ा ही।

जेहि समान अतिसय नहिं कोई।

(रा०च०मा० ३।६।८)

निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः॥

(श्रीमद्भा० २।४।१४)

'जिनके समान किसीका ऐश्वर्य नहीं है, फिर उनसे अधिक तो हो ही कैसे सकता है? ऐसे ऐश्वर्यसे युक्त होकर जो निरन्तर ब्रह्मस्वरूप अपने धाममें विहार करते रहते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।' उन्हीं प्रभुका सर्वोत्कृष्ट विलास है 'रस'। उसका परम सार है—श्रीराधातत्त्व। पूर्णानुराग-रससार-सरोवरसमुद्भूतसरोजस्थ-मकरन्दरूपा हैं श्रीराधा; उत्कर्षकी पराकाष्ठा। इस दृष्टिसे भी श्रीराधारानीके अंग परम दिव्य परिगणित होते हैं—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः॥

(श्रीमद्भा० १०।४७।६०)

कई लोगोंका कहना है कि स्वर्गकी जो अंगनाएँ हैं, उनके अंगका सौगन्ध्य कमलके समान दिव्य होता है। मनुष्योंमें किसीके अंगकी गन्ध भैंसे-जैसी, किसीके अंगकी गन्ध मत्स्य (मछली)-जैसी, लेकिन अप्सराओंके अंगका आमोद तो नलिन-जैसा होता है। फिर अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डके ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री देवी भगवती महालक्ष्मीके श्रीअंगका सौगन्ध्य तो कैसा अद्भुत होगा! फिर गोपांगनाओंके अंगके सौगन्ध्यका तो कहना ही क्या! श्रीलक्ष्मीजीसे भी गोपांगनाओंका अंग-सौगन्ध्य अत्यद्भुत है। ब्रह्माने साठ हजार वर्षोंतक अखण्ड तप किया, गोपांगनाओंकी पादाब्जरेणु प्राप्त करनेके लिये—

षष्टिवर्षसहस्राणि मया तप्तं तपः पुरा।
तथापि न मया प्राप्तास्तासां वै पादरेणवः॥

(बृहद्वामनपुराण)

आपने सुना ही होगा—श्रीभगवान्‌की आज्ञासे बदरिकाश्रममें तप करनेवाले श्रीउद्धवजी क्या कहते हैं—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

(श्रीमद्भा० १०।४७।६१)

कुलांगनाओंके लिये दुस्त्यज आर्यपथका त्यागकर मुकुन्दभगवान्‌का सेवन करनेवाली वृन्दावनधामकी जो गोपांगनाएँ हैं, उनके पाद-पंकज-रजका स्पर्श करनेवाले तृण, लता, गुल्म, औषधियोंमें मैं कोई एक हो जाऊँ तो धन्य-धन्य हो जाऊँ! अपने जीवनको सफल मानूँ! इस तरहसे—

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्‌गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥

(श्रीमद्भा० १०।४७।६३)

'श्रीनन्दजीके व्रजमें रहनेवाली गोपांगनाओंकी चरणधूलिको मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ। उसे सिरपर धारण करता हूँ। अहा! इन गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथाके सम्बन्धमें जो कुछ गान किया है, वह तीनों लोकोंको पवित्र कर रहा है और सदा-सर्वदा पवित्र करता रहेगा।'

अनन्तब्रह्माण्डकी महाधिष्ठात्री भगवती लक्ष्मी गोपांगनाजनोंके पाद-पंकज-रजका स्पर्श करनेके लिये व्रज आयीं। बेलवन*में विराजमान हुईं। तपस्या करने लगीं। भीतर तो तब आवें, जब आज्ञा हो! आयी थीं गोपांगनाजनोंके पाद-पंकज-रज-स्पर्श करनेके लिये। देखा (जाना) कि गोपांगनाएँ तो श्रीकृष्णकी सेवा कर रही हैं। जिन श्रीकृष्णके पाद-पंकज-रजके लिये गोपांगनाएँ लालायित हैं, वे स्वयं श्रीराधारानीके पादारविन्दरजके लिये लालायित हैं। तब उन्होंने (श्रीलक्ष्मीने) सोचा श्रीराधारानीकी आराधनामें उनकी (श्रीकृष्णसहित गोपांगनाओंकी) आराधना हो जायगी। तबसे श्रीलक्ष्मीजी श्रीराधारानीकी सेवामें लग गयीं।

* श्रीवृन्दावनस्थ यमुनाजीके पार समीपस्थ वनविशेष।

गोपियोंके विशुद्ध प्रेमका रहस्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान् श्रीकृष्णके प्रति गोपियोंका विशुद्ध माधुर्यका भाव है। उस विशुद्ध प्रेमके कारण ही आज संसारमें गोपियोंकी इतनी प्रशंसा की जाती है। गोपियोंमें श्रीराधिकाजीका स्थान सबसे ऊँचा है, रासलीलामें प्रधान गोपीके नामसे इन्हींका संकेत है। ये भगवान्की आह्लादिनी शक्ति हैं। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके नायक भगवान् श्रीकृष्णको सुख पहुँचाना, उनको प्रसन्न एवं आनन्दित करना, यह ही उनका काम था। इनकी सखी गोपियोंका भी यही काम था। श्रीकृष्णलीला-सम्बन्धी जितने भी ग्रन्थ हैं, उन सबमें हम श्रीमद्भागवतको प्रधान समझते हैं, किंतु भागवतमें यत्किंचित् कहीं जो जारभाव-सा दिखता है, उसे हमारा मन स्वीकार नहीं करता। यह चीज हमारे कामकी नहीं, हमें तो विशुद्ध प्रेमभाव ही देखना चाहिये। भगवान् प्रेम और आनन्दके पुंज हैं। उनका प्रेम पूर्ण विशुद्ध था। भगवान्की जितनी भी क्रियाएँ होती थीं, केवल गोपियोंको आह्लादित करनेके लिये होती थीं। रासलीलामें जो उनका नृत्य, गान, वंशीवादन आदि होता था, सब गोपियोंको सुख पहुँचानेके लिये, उनका प्रेम बढ़ानेके लिये ही होता था। इसी प्रकार गोपियोंकी जितनी क्रियाएँ होती थीं, केवल भगवान्को आह्लादित करनेके लिये ही थीं।

भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म परमात्मा थे, प्रेम-प्रचारके लिये ही इन्होंने मनुष्यरूपमें अवतार धारण किया था, न कि कामोपभोगके लिये और वास्तवमें इन्होंने विशुद्ध प्रेमका प्रचार किया भी। मेरी एक लोकोक्ति सुनी हुई है, वह इस प्रकार है। एक समय नारदजीकी कामसे भेंट हुई, तब नारदजीने कहा—'अरे मदन! तुमने तो मेरे मनमें भी काम-विकार पैदा कर दिया।' इसपर कामने नारदजीसे बड़े अहंकारपूर्ण वचन कहे। वह बोला—'तुम तो चीज ही क्या हो, मैं ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशको भी काममोहित करके नचा सकता हूँ, मेरे सम्मुख कोई भी खड़ा नहीं रह सकता।' तब नारदजी भगवान् विष्णुके पास गये एवं कामदेवके वचन उन्होंने ज्यों-के-त्यों उन्हें कह सुनाये। भगवान् विष्णुने नारदजीसे कहा, 'जाओ—कामसे कह दो कि मैं द्वापरमें मनुष्यरूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय मुझसे तुम किलेकी लड़ाई करना चाहोगे या मैदानकी।' तब नारदजीने कामके पास आकर उससे यह बात पूछी। काम बोला—'मुझे किलेकी लड़ाईमें[१] भी कोई नहीं जीत सकता, फिर मैदानकी लड़ाईमें[२] तो जीत ही कौन सकता है?'

फिर नारदजीने भगवान्के पास जाकर सारी बातें कह दीं। तब भगवान्ने नारदके द्वारा कामको सूचित कर दिया कि 'तुम्हारे साथ मैदानकी लड़ाई करनेके लिये मैं श्रीकृष्णरूपमें अवतार लूँगा।' भगवान्की तो बात ही क्या, भगवान्के साथ रासलीला करनेवाली गोपियोंने ही मदनके मदको चूर कर दिया।

रासमें तो विशुद्ध प्रेमसे नृत्य, गीत, वंशीवाद्य आदि कलाका प्रकाश होता है, न कि भोग-विलासका। भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंमें विशुद्ध प्रेमकी वृद्धि करते थे, रासमें भगवान् गोपियोंके साथ नृत्य करते थे, इससे गोपियोंको बड़ी प्रसन्नता होती थी एवं विशुद्ध प्रेमका संचार होता था। उस समय उनको एक-दूसरेके सिवा कुछ भी सुधि नहीं रहती थी। कामकी सामर्थ्य नहीं कि उनकी ओर ताक भी सके। देखिये, गोपियोंमें कैसा विशुद्ध प्रेम था। भगवान्ने गोपियोंको बुलानेके लिये बड़े ही मधुर स्वरसे वंशी बजायी थी। वंशीकी तान सुनते ही गोपियाँ सब काम छोड़कर श्रीकृष्णके पास चली आयीं। उस समय भगवान्ने उनसे कहा—'गोपियो! रातके समय घोर जंगलमें स्त्रियोंको नहीं रुकना चाहिये।

१-किलेकी लड़ाईका अर्थ यह है कि गिरि-गुहा आदि एकान्त निर्जन स्थानमें जहाँ कि काम-क्रोधादिका प्रायः अवसर ही नहीं आता, वहाँ ब्रह्मचर्यसे रहकर कामको जीतना।

२-मैदानकी लड़ाईका अर्थ यह है कि गृहस्थमें स्त्रियोंके समूहमें रहकर कामको जीतना।

तुम्हें न देखकर तुम्हारे माँ-बाप, पति-पुत्र और भाई-बन्धु ढूँढ़ रहे होंगे, उन्हें भयमें न डालो। कल्याणी गोपियो! स्त्रियोंका परमधर्म यही है कि वे पति और उसके भाई-बन्धुओंकी निष्कपटभावसे सेवा करें और सन्तानका पालन-पोषण करें। गोपियो! मेरी लीला और गुणोंके श्रवणसे, रूपके दर्शनसे, उन सबके कीर्तन और ध्यानसे मेरे प्रति जैसे अनन्य प्रेमकी प्राप्ति होती है, वैसे प्रेमकी प्राप्ति पास रहनेसे नहीं होती। इसलिये तुमलोग अभी अपने-अपने घर लौट जाओ।'

इसपर गोपियाँ बोलीं—'प्यारे श्रीकृष्ण! तुम घटघटव्यापी हो। हमारे हृदयकी बात जानते हो। तुम्हें इस प्रकार निष्ठुरताभरे वचन नहीं कहने चाहिये। हम सब कुछ छोड़कर केवल तुम्हारे चरणोंमें ही प्रेम करती हैं। प्यारे श्यामसुन्दर! तुम सब धर्मोंका रहस्य जानते हो। तुम्हारा यह कहना कि 'अपने पति, पुत्र, भाई-बन्धुओंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका स्वधर्म है'—अक्षरशः ठीक है, परंतु इस उपदेशके अनुसार हमें तुम्हारी ही सेवा करनी चाहिये; क्योंकि तुम्हीं सब उपदेशोंके पद (चरम लक्ष्य) हो, साक्षात् भगवान् हो। तुम्हीं समस्त शरीरधारियोंके सुहृद् हो, आत्मा हो और परम प्रियतम हो।'

तदनन्तर भगवान्ने बड़े ही प्रेमसे सबके साथ रासलीला आरम्भ की। योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण दो-दो गोपियोंके बीचमें प्रकट हो गये। इस प्रकार एक गोपी और एक श्रीकृष्ण, इस क्रमसे मण्डल बनाकर भगवान् रासलीला करने लगे। रासमण्डलमें सभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्यामसुन्दरके साथ नृत्य करने लगीं। यमुनाजीकी रमणीय वालुकापर व्रज-सुन्दरियोंके बीचमें भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी ही अनोखी शोभा हुई। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो बहुत-से श्रीकृष्ण तो साँवले-साँवले मेघमण्डल हैं और उनके बीच-बीचमें चमकती हुई गौरवर्णा गोपियाँ बिजली हैं।

उदारशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार गोपियोंका सम्मान किया, तब गोपियोंके मनमें ऐसा भाव आया कि संसारकी समस्त स्त्रियोंमें हमीं सर्वश्रेष्ठ हैं। जब भगवान्ने देखा कि इन्हें कुछ गर्व हो गया है, तब वे उनका गर्व दूर करनेके लिये अपनी प्रधान सखी (राधिकाजी)-को लेकर अन्तर्धान हो गये। भगवान्के अन्तर्धान होते ही गोपियाँ अत्यन्त व्याकुल हो गयीं और वनमें श्रीकृष्णको खोजने लगीं। जब बहुत खोजनेपर भी भगवान् नहीं मिले, तब वे परस्परमें ही भगवान्की लीलाओंका अनुकरण करने लगीं। कोई श्रीकृष्ण बन गयी और कोई गोपी; इस प्रकार रासलीला करने लगीं।

इधर जब भगवान् राधाजीको साथ लेकर वनमें जा रहे थे, तब राधाजीके मनमें यह अभिमान आया कि मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ, इसीलिये चलते-चलते राधाजीने कहा कि 'मैं थक गयी हूँ, मुझसे अब चला नहीं जाता। इसलिये आप मुझे अपने कन्धेपर बिठाकर ले चलिये।' भगवान् बोले—'ठीक है।' ऐसा कह भगवान् बैठ गये और जब राधिकाजी भगवान्के कन्धेपर बैठने लगीं, तब भगवान् झट अन्तर्धान हो गये। भगवान्को अन्तर्धान हुए देखकर राधिकाजी भी विलाप करने लगीं।

उधर गोपियाँ भी भगवान् श्रीकृष्ण और राधिकाजीको खोजनेके लिये वनमें घूमने लगीं। घूमते-घूमते उनको विलाप करती हुई राधिकाजी मिल गयीं। गोपियोंने राधिकाजीसे पूछा—'श्रीकृष्ण कहाँ हैं?' राधिकाजीने कहा—'भगवान् मेरे साथमें यहाँतक आये थे, किंतु मैंने कुटिलतावश उनका अपमान किया; इसलिये वे मुझे भी छोड़कर चले गये।'

तब विरहमें व्याकुल हुई सभी गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णको आर्तभावसे पुकारने और उनके गुणोंका गान करने लगीं। उनको अत्यन्त व्याकुल देखकर भगवान् सहसा सबके बीचमें प्रकट हो गये तथा बोले—

'तुम सब मेरी प्यारी हो और मैं तुम्हारा प्यारा हूँ। मुझसे तुम्हारा यह मिलन सर्वथा निर्मल और निर्दोष है। यदि मैं अमर शरीरसे अनन्त कालतक तुम्हारे प्रेमका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं तो तुम्हारा ऋणी हूँ।' ऐसा कहकर वे गोपियोंके साथ पुनः रासलीला करने लगे।

गोपियोंमें कामकी गन्ध भी नहीं थी। भगवान् श्रीकृष्णमें तो काम था ही नहीं, बल्कि उनके प्रभावसे गोपियोंमें भी कामभाव सर्वथा नष्ट हो गया था।

इसपर भी यदि कोई भगवान्‌में गोपियोंके साथ व्यभिचारके दोषकी कल्पना करता है तो मैं तो यही कहता हूँ कि उसे नरकमें भी ठौर नहीं। कामकी सामर्थ्य नहीं कि वह भगवान् और गोपियोंमें प्रवेश कर सके, उनके तो प्रभावसे ही काम दूर हो जाता है। गोपियोंकी चर्चासे ही काम दूर भाग जाता है। गोपियोंमें ऐसी शक्ति है कि उनके दर्शनसे दर्शकका कामभाव नष्ट हो जाता है, फिर भगवान्‌की तो बात ही क्या? उन परब्रह्म परमात्माने तो श्रीकृष्णरूपमें प्रकट होकर कामदेवका मद चूर्ण किया और सबको आदर्श शिक्षा दी।

ध्यान देकर सोचना चाहिये कि यदि भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ व्यभिचार करते तो व्यभिचारी और अधर्मी कहलाते; किंतु जिस समय परीक्षित् मृतक-अवस्थामें उत्तराके गर्भसे निकला तो उसको जीवित करनेके लिये भगवान्‌ने यह प्रतिज्ञा की कि 'यदि मैंने जीवनभर सत्यका पालन किया है, यदि मुझमें सत्य और धर्म नित्य स्थित हैं तो उत्तराका यह सुपुत्र जीवित हो उठे।' यह कहते ही बालक जी उठा। इससे यह समझना चाहिये कि यदि उनमें कुछ भी दोष होता तो क्या वे ऐसा कहते; कदापि नहीं। यदि उनमें इस विषयका कुछ भी दोष होता तो शिशुपाल तथा दुर्योधन अन्य गालियोंके साथ यह भी कहते कि तुमने गोपियोंके साथ व्यभिचार किया है; किंतु उन्होंने ऐसा नहीं कहा। इसके सिवा, रासलीलाके समय भगवान् श्रीकृष्णकी दस वर्षकी आयु थी—दस वर्षके बालकमें स्त्री-सहवासका दोष घटना सम्भव नहीं, अतएव भगवान् श्रीकृष्णमें व्यभिचार-दोषकी गन्धकी भी कल्पना नहीं करनी चाहिये।

भगवान्‌का प्रेम, प्रेमास्पद एवं प्रेमी—तीनों एक ही हैं। वे चेतन, दिव्य और अलौकिक हैं। अत: उन भगवान्‌से प्रेम करनेपर प्रेमी उनके परम दिव्य चिन्मय धामको चला जाता है।

बहुत-से लोग कहते हैं कि श्रुतियाँ ही गोपियोंके रूपमें होकर आयी थीं, कई कहते हैं कि बालखिल्य आदि ऋषिगण ही गोपियोंके रूपमें होकर आये थे, कई लोग यह भी कहते हैं कि जो भक्त भगवान्‌के परम धाममें उनकी सामीप्यमुक्तिको प्राप्त हो गये थे, वे ही गोपियोंके रूपमें भगवान्‌के परिकर होकर आये थे। अत: समझना चाहिये कि गोपियाँ कितनी अद्भुत और उच्च कोटिकी थीं।

यह गोपियोंका आदर्श प्रेम है। जिन गोपियोंके स्मरण करनेमात्रसे भी स्मरण करनेवालेका कामभाव नष्ट हो जाता है, उनमें काम-वासनाकी कल्पना करना महान् मूर्खता है।

श्रीराधिकाजीके प्रेमका तो कहना ही क्या है, वह तो बिलकुल विशुद्ध था ही, कामकी तो उनमें गन्ध भी नहीं थी। वे तो भगवान्‌की प्रेममयी शक्ति थीं। वे भगवान्‌को आह्लादित करनेके लिये ही प्रकट हुई थीं। उनका परस्पर आमोद-प्रमोद एवं प्रेमका व्यवहार लीलामय था। दोनों एक ही थे। दोनों परस्पर एक-दूसरेको आह्लादित करते रहते थे।

वात्सल्य, माधुर्य, दास्य, सख्य और शान्त आदि जितने भी भाव हैं, उन सबसे बढ़कर विशुद्ध प्रेमभाव है, यह परम आदर करनेके योग्य है। विशुद्ध प्रेमका जो भाव है, वह सबसे ऊँचा है। भक्तिसे भी यह भाव ऊँचा है, यह भक्तिका ही फल है। यहाँ प्रेम और प्रेमास्पदमें इतनी एकता है कि उसके लिये कोई उदाहरण ही नहीं है। यहाँ तो जातिसे वास्तवमें एक होते हुए भी प्रेमास्पद और प्रेमी स्वरूप से अलग-अलग रहते हैं।

उपर्युक्त श्रीकृष्ण और श्रीराधाजीके जैसे परम प्रेमको प्राप्त होनेपर फिर वहाँ प्रेमी और प्रेमास्पदमें कोई छोटा-बड़ा नहीं रहता। दास्यभावमें भगवान् सेव्य और भक्त सेवक होता है, किंतु इस परम प्रेममें यह बात नहीं है; यहाँ तो दोनों एक हैं। इस परम प्रेममें सब भावोंसे ऊपर उठकर प्रेमी एकीभावको प्राप्त हो जाता है। भगवान्‌के प्रति जो दास्यभाव होता है, उसमें दोनों समान नहीं हैं, स्वामी-सेवक-भाव है। किंतु उक्त प्रेमभावमें इस प्रकारसे छोटा-बड़ा नहीं है। यह तन्मयताप्रधान अवस्था है। इसमें दोनों एक-दूसरेको आह्लादित करते हैं।

उक्त स्थिति माधुर्यभावसे भी ऊँची है; क्योंकि स्त्री कान्ता है, स्वामीके प्रतिकूल कार्य न हो, इसका वह पूरा ध्यान रखती है। उसमें पतिकी आज्ञाके पालनका भाव है तथा पतिके साथ उसका सत्कार, मान और आदरका व्यवहार होता है; किंतु जब सब भावोंसे ऊपर उठकर परम

प्रेम हो जाता है, वहाँ न तो आज्ञापालनका भाव है और न एक-दूसरेके साथ सत्कार, मान और आदरका भाव रहता है; क्योंकि दोनोंका वहाँ समान भाव है। यह प्रेमावस्था तीनों गुणोंसे अतीत है। यहाँ सात्त्विक गुण और प्रभावको लेकर प्रेम नहीं है, स्वाभाविक प्रेम है; क्योंकि यह गुण और प्रभावसे ऊपर उठी हुई केवल चिन्मय स्थिति है।

उक्त स्थिति वात्सल्यभावसे भी ऊँची है। वात्सल्यभावमें जैसे यशोदामैया श्रीकृष्णको लाठी दिखाकर डराती हैं और वे भी डरते हैं; किंतु प्रेमकी इस निर्भय अवस्थामें उस प्रकार एक-दूसरेसे भयका व्यवहारमें भी अत्यन्त अभाव है। जब दोनों एक हो जाते हैं, तब फिर कौन किसका भय करे?

सख्यभावमें भी कहीं भय और आदरका भाव देखा जाता है। भगवान्ने अर्जुनको अपना विराट् स्वरूप दिखलाया, वह उस रूपको देखकर डर गया और स्तुति-प्रार्थना करने लगा।

किंतु जो सख्यभावसे ऊपर उठ जाता है और परम प्रेमको प्राप्त कर लेता है, उसमें आदर, सत्कार, मान, भय, लज्जा आदि कुछ भी किंचिन्मात्र भी नहीं रहते। वहाँ दोनों प्रेमस्वरूप ही हो जाते हैं। वहाँ भेदभावकी कल्पना करना मूर्खता है। वास्तवमें भक्त एवं भगवान् दोनों प्रेमके एक ही रूप हैं। केवल देखनेमें पृथक्‌की-भाँति दिखलायी पड़ते हैं।

इस श्रेणीमें पहुँचे हुए प्रेमियोंमें सबसे ऊँचा स्थान श्रीराधिकाजीका है। ये भगवान्‌की उच्चकोटिकी प्रेमिका हैं। भगवान् एवं राधिकाजी दोनों गुणोंसे ऊपर उठे हुए हैं। गुणोंके द्वारा राधाजी प्रभावित नहीं हो सकतीं। यह विशुद्ध प्रेम आनन्दमय सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका साक्षात् स्वरूप है।

कितने ही लोगोंका कहना है कि प्रेम ही दो भावोंमें विभक्त है—एक शक्तिमान् एवं दूसरा शक्ति। राधिकाजी शक्ति एवं भगवान् शक्तिमान् हैं; किंतु उपर्युक्त परम प्रेम तो इससे भी ऊँचा है। सब भावोंको लाँघकर जो एक परम प्रेम-भाव है, वहाँ दोनोंमें अभेद है; क्योंकि वहाँ फिर शक्ति और शक्तिमान्‌का भेद नहीं रहता, एक ही चीज रहती है। केवल देखनेमें दो रूपसे प्रतीत होते हैं। वस्तुत: श्रीराधिकाजी तथा श्रीकृष्ण एक ही हैं। गोपियोंका भी भगवान्‌में इसी प्रकारका प्रेम था। इस प्रेममें यदि कोई विलासिताकी कल्पना करे तो कल्पना करनेवालेकी भूल है। इस प्रेममें लज्जा, संकोच, भय, कामका नाम-निशान भी नहीं है।

गोपियोंका उपर्युक्त परम विशुद्ध प्रेमभाव था, जिनके प्रेमको देखकर उद्धव भी गोपियोंकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हैं। यदि उन गोपियोंका भगवान् श्रीकृष्णमें विशुद्ध प्रेम न होता तो उद्धवजी गोपियोंकी इतनी प्रशंसा नहीं करते; किंतु गोपियोंका पवित्र एवं विशुद्ध भाव था, जिसको देखकर उद्धवजी भी चकित एवं विस्मित हो गये।

अतएव हमलोगोंको भगवान्‌में उपर्युक्त विशुद्ध प्रेम करनेके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

'नाचैं नन्दलाल याकी भौंहके इशारे पै'

(साकेतवासी श्रीनारायणदासजी भक्तमाली 'मामाजी')

जौ लौं वृषभानुजा विराजमान बाम-अंग,
तौ लौं बाम बैरिनकी परै दृष्टि बंक ना।
जौ लौं संग राधा तौ लौं बाधा सारी दूरि रहैं,
राधाकी कृपा तें कोई परसै कलंक ना।
न्यारे होत राधा जू ते आधा रहि जावैं कृष्ण,
सूनो जैसे शून्य संग होवै यदि अंक ना।
गोवर्द्धन धारैं चाहै असुर संहारैं श्याम,
'नारायण' श्यामाकी कृपा ते कोई शंक ना॥

मोरपंख धारे वंशी वारे प्यारे यशुदाके,
जनके रखवारे तिहुँ लोकनि ते न्यारे पै।
मधुकर काकपक्ष कोकिल केकी कामरी ये,
कारे कारे सारे वारे नन्दके दुलारे पै।
शिव-सनकादि जाको चाहें कृपा कोर, सोई,
दीन ह्वै निहोरे भानु नन्दनीके द्वारे पै।
भृकुटि-विलास पै जो विश्वको नचावै सोई,
नाचैं नन्दलाल याकी भौंहके इशारे पै॥

रासतत्त्व-विमर्श

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

संस्कृतमें नृत्यके लिये '**लास्य**' शब्द प्रयुक्त है। साथ ही वहाँ '**रलयोरभेदः**'—**र** और **ल**-में अभेद मानते हैं। अतः व्रजभाषामें इस लास्यका ही '**लास**' और फिर '**रास**' हो गया। यह '**रास**' '**लास्य**' है। यह भगवत्तत्त्वकी आनन्दात्मक स्फूर्ति है।

रास—दार्शनिक विवेचन—जब '**सत्**' तत्त्वका प्रधानतासे वर्णन करते हैं तो आकृतियोंकी सृष्टि कैसे होती है, इसपर बहुत अधिक दृष्टि रखी जाती है। जब '**चित्**' तत्त्वका प्रधानतासे निरूपण करते हैं तो सम्पूर्ण प्रपंचको स्थूलात्मक बतलाया जाता है। योगवासिष्ठ आदि ग्रन्थोंमें '**स्फुरण**' शब्दका विशेष प्रयोग है। कहा जाता है कि यह प्रपंच क्या है? चित्तत्त्वका स्फुरण है। ये आकृतियाँ क्या हैं? सत् तत्त्वमें कल्पित हैं। जब उसी तत्त्वका आनन्दकी प्रधानतासे वर्णन करते हैं तो '**आकृतियोंकी सृष्टि**' या '**स्फुरणा**' के स्थानपर '**लीला-विलास**' शब्द प्रयुक्त होता है। यही अद्वितीय सच्चिदानन्द ब्रह्म है। भगवान् वेदव्यास कहते हैं—'**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**'—कैवल्य नहीं, लीला-दृष्टिसे भगवान्‌का जो वर्णन है, उसमें परमात्माका यही रास या लास्य आता है।

रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कुतश्चन।

रसानां समूहो रासः—यहाँ रस तरंगित हुआ करता है। थिरकता रहता है। रसकी इस थिरकनका ही नाम '**रास**' है। चित्‌की थिरकनका नाम है 'स्फुरणा' तो सत्‌की थिरकन है 'विविध आकृतिरूप प्रपंच।'

वस्तुतः सत्, चित्, आनन्द तीन वस्तुएँ नहीं, एक ही हैं। यदि चित् 'सत्' न हो तो उसे '**क्षणिक विज्ञान**' कहेंगे। सत् यदि 'चित्' न हो तो वह 'जड़' कहा जायगा। सत्‌से पृथक् होकर चित् 'क्षणिक' बन जाता है तो चित्‌से पृथक् सत् 'जड़'। फिर सत्-चित् अपनी आत्मासे पृथक् हों तो 'अप्रिय' हो जाते हैं। अपनी आत्मासे अभिन्न रहें, तभी वे प्रिय और आनन्दरूप रह सकते हैं।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।

इस श्रुतिमें **यतः** और **येन** इन सर्वनामोंसे पंचमी और तृतीया दोनों विभक्तियोंका प्रयोगकर सूचित किया गया है कि वह तत्त्व अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। केवल पंचमी विभक्ति होती तो वह निमित्तकारण ही ठहरता और केवल तृतीया होती तो उपादान-कारण।

वह ब्रह्म कैसा है? श्रुति इसका उत्तर देती है—

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।

अर्थात् प्रथम श्रुतिमें **यतः** तथा **येन**-से जो वस्तु सूचित की गयी थी, वह आनन्द ही है। उसीका सारा विलास सृष्टि, स्थिति और प्रलयमें प्रसृत है।

अब प्रश्न उठता है कि यह आनन्द अभिव्यक्त कैसे हो? बात यह है कि लौकिक शास्त्रमें, निरूपणमें धनुर्वेद अत्यन्त बहिरंग साधन है। वह आन्तरिक एवं बाह्य शत्रुओंसे रक्षाकर उन्हें परास्त करनेके लिये होता है। स्थापत्यवेद उसकी अपेक्षा अधिक अन्तरंग है, क्योंकि मकान बनाकर उसमें रहना उससे अपेक्षाकृत अन्तरंग है। आयुर्वेद उससे भी अन्तरंग है, क्योंकि शरीरको वह ठीक रखता है, किंतु इन सबसे अन्तरंग 'गान्धर्ववेद' है। वह अपने हृदयमें छिपे आनन्दको अभिव्यक्त करता है। सम्पूर्ण प्रतिबन्धोंके निवारणपूर्वक चित्तवृत्तिको अत्यन्त अन्तर्मुखकर वह आत्मानन्द अभिव्यक्त करता है।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि संसारमें सत्‌की प्रधानतासे वस्तुका निरूपण होता है। चित्‌की प्रधानतासे और आनन्दकी प्रधानतासे वस्तुका निरूपण होता है तथा सच्चिदानन्दके ऐक्यकी दृष्टिसे भी वस्तुका निरूपण होता है।

'रास' का प्रसंग आनन्दकी प्रधानताका निरूपण है। कहते हैं, चित्‌का एक अखण्ड समुद्र है। 'समुद्र'

उसे कहते हैं, जिसमें सम्यक् उद्रेक हो, खूब तरंगें उठ रही हों, ज्वार आ रहा हो; किंतु हो अद्वितीय, उसके अतिरिक्त कोई वस्तु न हो। उस आनन्द, आह्लाद या प्रेमके समुद्रमें जो दो तरंगोंका परस्पर मिलना, खेलना है—भिन्न-भिन्न तरंगोंका उदय होना, टकराना है, वही लीला या शान्ति है। भावोंका विभिन्न अवस्थाओंमें विलास-भावोदय, भावशाबल्य, भावसन्धि और भावशान्ति जो दूसरे शब्दोंमें 'अनन्त सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन ब्रह्मके रामराज्यमें चल रहा रसका उल्लास' है—यही **रास** कहा जाता है।

इसलिये व्रजवासी जब कभी इसका वर्णन करते हैं, तो लौकिक दृष्टि नहीं रखते। वे कहते हैं—

सदा एकरस एक अखंडित आदि अनादि अनूप।
कोटिकल्प बीतत नहिं जानत विहरत जुगल स्वरूप॥

कोटिकल्प—संकल्प-विकल्प, सृष्टि-संहार व्यतीत हो गया, यह युगलस्वरूप विहार कर रहा है। उसे पता ही नहीं कि कब सृष्टि बनी और कब बिगड़ी? वे कहते हैं—

न आदि न अन्त विहार करें दोऊ, लाल प्रिया में भई न चिन्हारी॥

दोनोंका अनादि-अनन्त विलास चल रहा है, पर परस्पर परिचय नहीं हुआ। लालजीका दृश्य राधारानी नहीं हुईं और राधारानीके दृश्य लालजी नहीं हुए। दोनों ही चिन्मात्रस्वरूप हैं—

एक स्वरूप सदा द्वै नाम!
आनन्दकी आह्लादिनी श्यामा, आह्लादिनीके आनन्द श्याम॥

रासकी बात सुनानी हो तो थोड़ी व्रजवासियोंकी बातें भी जाननी चाहिये। उनके यहाँ परम्पराएँ हैं, मान्यताएँ हैं कि रास कैसे होता है। परम्परासे कुछ बातें चली आ रही हैं। वे रासको चार कक्षाओंमें बाँटते हैं।

ब्राह्मी लीला इतिहासका विषय नहीं—वैसे '**ऋक् परिशिष्ट**'में आया है—

राधया माधवो देवो, माधवेन च राधिका विभ्राजन्ते जनेष्वा।

यह श्रुति है। वेदोंमें और भी कई स्थानोंपर व्रजका नाम लेकर, गायोंका नाम लेकर बड़ा सुन्दर निरूपण है। तन्त्रमें तो पूछिये ही नहीं। उसमें राधाकृष्णका इतना वर्णन है कि देखकर आश्चर्य होता है।

भले ही इतिहासके विद्वान् ऐतिहासिक पद्धतिसे अनुसन्धान करें कि विश्वकी किस जाति, किस देश और किस कालमें सर्वप्रथम रासलीला प्रारम्भ हुई, किंतु यह दृष्टि व्यापक और अबाधित नहीं है। भारतके नित्यसिद्ध, अनादि सांस्कृतिक तत्त्वोंके निर्णयमें आध्यात्मिक मीमांसादृष्टि ही विशेष उपयोगी होती है। इसी मीमांसा-पद्धतिसे इसपर विचार करना चाहिये कि हमारे जीवनकी किस भूमिकामें रास-पदार्थकी स्थिति है? आध्यात्मिक दृष्टिसे हमारे जीवनकी किस उन्नतावस्थाका इसके साथ सम्बन्ध है? रासलीला धर्मका साधन है या साध्य? यह समाधिका साधन है या साध्य? इस प्रकार विचार करनेपर स्पष्ट है कि यह कोई साधारण स्त्री-पुरुषकी पाशविक क्रीड़ा नहीं है। अधिदैव, अधिभूत तथा अध्यात्मकी कल्पनाओंके मिट जानेपर होनेवाली एक सहज स्वाभाविक ब्राह्मी लीला है।

रासेश्वर—जाग्रत् ब्रह्म—श्रीमद्भागवतमें जो रासका प्रसंग है, कहते हैं कि नित्य निभृत निकुंजकी लीला नहीं। वह नित्य रासमण्डलकी लीला नहीं और न गोलोकधामकी ही लीला है। व्रजके साथ उसका सम्बन्ध है। हमारे काम तो वे ही श्रीकृष्ण आते हैं, जो व्रजमें प्रकट हों। '**व्रज**' शब्दका अर्थ जगत् भी है और ब्रह्म भी। दोनों ही धातु गत्यर्थक हैं—'**गमनात् जगत्, व्रजनात् व्रजः, व्रजनं व्याप्तिः, अतः व्यापनाद् व्रज उच्यते।**' गति-शब्दके चार अर्थ होते हैं—गमन, ज्ञान, मोक्ष और प्राप्ति। इस दृष्टिसे सर्वव्यापक परमात्माको '**व्रज**' कहते हैं।

प्रासंगिक रूपमें संक्षिप्त, पर मार्मिक इस विवेचनसे विद्वान् श्रोताओंके ध्यानमें आ गया होगा कि यह रासतत्त्व अपनेमें कितना गूढ अर्थ सँजोये हुए है।

स्पष्ट है कि यहाँ सुषुप्त परमात्माका वर्णन नहीं है। एक परमात्मा वह है, जो निष्क्रिय, निर्विकार, निराकार, निर्वृत्तिक, निर्धर्मक, निर्विशेष, अपने स्वरूपमें स्थित है। दूसरा है जाग्रत् परमात्मा—

क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः।

(श्रीमद्भा० १०।८७।१४)

कहीं वे राधाके साथ विहार करते हैं तो कहीं स्वयं अपनेमें ही विहार करते हैं। इनमें जो श्रीराधाके साथ विहार करनेवाले परमात्माका वर्णन है, उसे '**रास**' कहते हैं। इसमें श्रीराधाके श्रीकृष्ण-प्रेमकी बात कल सुनायी जा चुकी है।

गोपी और प्रेमतत्त्व—अब गोपियोंके प्रेममें जो विशेष बातें हैं, उन्हें भी देख लेना चाहिये। टीकाकारने कहा है—

गोपिपदार्थो गोपानामङ्गनेति स्फुटः किंतु श्रुति-नाडीरूपवृत्त्यन्वयोऽप्यवधार्यताम्।

अर्थात् गोपी शब्दका अर्थ है, गोप-अंगना, यह तो स्पष्ट ही है। पर गोपीका अर्थ श्रुति, इडा, पिंगला आदि नाड़ियाँ और वृत्तियाँ भी होता है। श्रुतियाँ और वृत्तियाँ भी किस प्रकार परब्रह्म परमात्माके साथ विलास करती हैं, उनके विलासकी पद्धति भी इस रास-लीलाद्वारा अभिव्यक्त की जाती है।

एक दिन ललिता सखीने राधारानीसे प्रश्न किया—'सखी, तुम्हारा तो श्रीकृष्णके साथ बहुत प्रेम है, तुम प्रेमकी मूर्ति हो। बात भी ठीक है, गोपी प्रेमकी ध्वजा हैं, प्रेमकी पताका हैं। प्रेमका झण्डा किसने ऊँचा किया है? तो गोपियोंने ही।'

न क्षोदीयानपि सखि मम प्रेमगन्धो मुकुन्दे।

राधारानी बोलीं—'सखि, मुकुन्दके प्रति मेरे हृदयमें प्रेमकी गन्धतक नहीं। फिर पूर्वप्रेमकी चर्चा ही क्या?'

ठीक ही तो है, प्रेममें अभिमान नहीं होता कि मैं प्रेमी हूँ। तत्त्वज्ञान या ब्रह्मात्मैक्य-बोध होनेपर कोई 'ज्ञानी' नहीं बनता, जैसे कि दण्डवाला पुरुष दण्डी बनता है। कारण, ज्ञानका कोई धर्मी नहीं होता। अपरिच्छिन्न ब्रह्मके साथ आत्माकी एकताका बोध होते ही अपनी परिच्छिन्नताका भ्रम भी सर्वथा मिट जाता है। '**अहं ब्रह्मास्मि**' तो ठीक, पर '**अहं ब्रह्म**' यह ठीक नहीं। इसी प्रकार जहाँ सच्चे प्रेमका उदय होता है, वहाँ 'मैं प्रेमवाला प्रेमी हूँ' यह अभिमान ही नहीं रहता।

इसपर ललिताने कहा—'तब श्रीकृष्णके वियोगमें इतनी रोती-कलपती क्यों हो? दुखी क्यों होती हो?'

क्रन्दन्तीं मां निजसुभगताख्यापनाय प्रतीहि।

श्रीराधाने कहा—'विश्वास करो कि मैं जो क्रन्दन करती हूँ, सो अपने सौभाग्यका विज्ञापन करनेके लिये ही। लोग जानें कि राधिका बड़ी प्रेमिका है, इसलिये रोती-चिल्लाती और कलपती हूँ। नहीं तो बोलने, रोनेकी आवश्यकता ही क्या?'

ललिता—'इसपर तो विश्वास ही नहीं होता?'

खेलद्वंशीवलयिनमनालोक्य वक्त्रारविन्दम्
ध्वस्तालम्बा यदहमहहः प्राणकीटान् बिभर्मि॥

श्रीराधाने कहा—'जिसपर बाँसुरी खेलती रहती है, उस श्रीमुखका अब दर्शन नहीं तो कोई सहारा नहीं रहा। आलम्ब ध्वस्त हो गया। फिर प्रतिक्षण दुःख देते हुए काटनेवाले अपने इन प्राण-कीटोंको सँजोती हुई किसी तरह जी रही हूँ श्रीकृष्णके विरहमें। भला, यह भी कोई प्रेमका लक्षण है? यह बात तो युक्ति-सिद्ध ही है कि यदि मैं प्रेमी होती तो श्रीकृष्णके विरहमें कभी जीवित न रहती।'

कैतवरहितं प्रेम न भवति मानुषे लोके।
यदि चेन्न तस्य विरहो विरहे सत्यपि को जीवति॥

सच्चा निष्कपट प्रेम संसारमें होता ही नहीं। यदि कहीं होता है तो उसमें विरह नहीं हो सकता। यदि उसमें विरह हो जाय तो कौन जीवित रहेगा?

वस्तुतः यही प्रेम है। जहाँ प्रेम अभिमानका भूषण बन जाता है, वहाँ प्रेम सच्चा नहीं होता। 'हम तुम्हारे बड़े प्रेमी हैं' यह जो अपनेमें प्रेमीपनका आरोप है, वस्तुतः वह अपनी प्रेमहीनताका ही निदर्शन है। यदि तुम अपने प्रियतमसे कुछ पाना नहीं चाहते तो उसे यह बतानेकी आवश्यकता ही क्या है कि हम प्रेमी हैं?

एक बार उद्धवने गोपियोंसे कहा—'मैं अभी मथुरा जाता हूँ और श्रीकृष्णको ले आता हूँ। तुम लोगोंके वियोग-दुःखको अभी दूर कर देता हूँ।'

गोपियोंने कहा—'यह ठीक है कि मुकुन्दके यहाँ आनेसे हमें प्रसन्नता होगी, सुख मिलेगा। फिर भी यहाँ

आनेसे उनकी किंचिन्मात्र भी कोई हानि होती हो तो वे कभी न आयें।'

स्यान्नः सौख्यं यदपि बलवद् गोष्ठमाप्ते मुकुन्दे।

प्रेम देनेमें ही, पानेमें नहीं—प्रेमी मृत्युपर्यन्त स्वयं दुःख सहन करके भी प्रियतमको लेशमात्र दुःख देना नहीं चाहता। यही उसका परम सुख है। वह बताता नहीं कि हम प्रेमी हैं, क्योंकि यदि अपने प्रियतमको पता लग जाय कि वह हमारा सच्चा प्रेमी है तो बात विपरीत हो जाती है। तब वह प्रियतम नहीं रहता, अपने प्रेमीका प्रेमी बन जाता है। प्रियतम तो प्रेमी और प्रेमी प्रियतम हो जाता है। यदि प्रियतम ही बननेका शौक हो तो उसे बताइये कि हम तुम्हारे बहुत प्रेमी हैं। पर जब केवल प्रेम देना ही देना है, तो उसमें प्रेमके विज्ञापनकी कोई आवश्यकता नहीं।

दूसरी बात यह कि प्रेम कहनेकी वस्तु नहीं होती।

प्रेमाद्वयो रसिकयोरपि दीप एव
हृद्वेश्म भासयति निश्चलमेष भाति।
द्वारादयं वदनतस्तु बहिर्गतश्चेत्
निर्वाति शान्तिमथवा तनुतामुपैति॥

हृदय-मन्दिरमें प्रेमका एक दीपक जल रहा है। यह यदि मुखके द्वारसे बाहर निकाल दिया जाय तो बाहरकी हवा लगनेसे बुझ जायगा या लड़खड़ा जायगा।

जब हम रास-लीलाका प्रसंग देखते हैं तो वहाँ स्वयं श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ प्रेमकी महत्ता स्वीकार करते हैं—

एवं मदर्थोज्झितलोकवेद-
स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः।

श्रीकृष्णके लिये गोपियोंने लोक, वेद और स्वजनोंका भी परित्याग कर दिया। उनके त्यागकी इस विशेषताके कारण ही महाकवि जयदेवने यहाँतक कह दिया 'यदि श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ रासलीला न करें तो उनका व्रजमें अवतार, उनकी किशोरावस्था ही विफल हो जाय।'

कैशोरं सफलीकरोति कलयन् कुञ्जे विहारं हरिः।

हरिवंश और विष्णुपुराणमें आया है—

सोऽपि कैशोरकवयो मानयन् मधुसूदनः।

अपनी किशोरवयका सगौरव सम्मान करनेके लिये ही भगवान्‌ने रासक्रीड़ा की।

क्या रासमें भगवत्तासे च्युति?

अब प्रश्न उठता है कि इस तरह क्या भगवान् अपनी भगवत्तासे च्युत हो गये? रासलीलाका प्रारम्भ ही इसके उत्तरसे है।

गोवर्धन-धारणके प्रसंगमें इन्द्र श्रीकृष्णसे पराजित हुए, वत्सहरणके प्रसंगमें ब्रह्मा पराजित हुए और नन्दबाबाके वरुण-लोकगमनके प्रसंगमें वरुण पराजित हुए। सम्पूर्ण ग्वालबालोंके सामने उन्होंने अपना गोलोकेश्वर-रूप प्रकट किया—

ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः।

इस तरह सब प्रकारसे श्रीकृष्णकी भगवत्ता प्रकट हो गयी। साथ ही उन्होंने सर्वत्र व्रजमें शुद्धि कर दी। मृद्भक्षणद्वारा पृथिवीका, कालिय नागके निर्वासनद्वारा जलका, दावाग्निपानद्वारा अग्निका, तृणावर्तवधद्वारा वायुका, व्योमासुर-वधसे आकाशका और अरिष्टासुरके वधसे कर्मका शोधन कर दिया; क्योंकि अरिष्टासुर कर्मका दोष, कल्मष है। धर्मका रूप वृषभ है। उसमें अभिमान मिल जानेसे वह कल्मष हो जाता है। '**कर्मणि स्यत्**' से '**कल्मष**' शब्द बना है। इस तरह वृषभासुर कर्मका दोष था, उसका भी निवारण कर दिया। अब गोपियोंके भावमें कोई दोष हो तो उसका भी निवारण हो गया। जब वे उनके सामने उपस्थित हुईं तो प्रभुने उन्हें मना किया—'लौट जाओ।'

इस तरह सर्वप्रकारसे शुद्धिके कारण जब सत्त्व अपने समग्र रूपमें उद्रिक्त हो गया, तब; रास-लीलाके प्रारम्भपर थोड़ा विचार करें। श्रीशुकाचार्य कहते हैं—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।१)

एक अभिप्राय यह है कि कोई वस्तु भगवान्‌के सामने आ गयी, जिससे निष्काम, पूर्णकाम, आत्माराम

भगवान्‌के मनमें भी विरहका संकल्प उदित हुआ, उस वस्तुने उनको भी अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। आखिर वह कौन-सी वस्तु है? भागवताचार्य कहते हैं—

भक्तिरेवैनं दर्शयति भक्तिरेवैनं गमयति भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेव भूयसी।

यह और कुछ नहीं, भगवान्‌के प्रति गोपियोंका प्रेम है। उसीमें यह सामर्थ्य है।

भगवान् योगमायाके आश्रय, आश्रित

भगवानपि—भगवान् अनन्त ऐश्वर्य, ज्ञान, वैराग्य, धर्म, लक्ष्मी और यश इन सबके आश्रय हैं। फिर भी उनको खींचनेवाली, आकृष्ट करनेवाली कोई वस्तु वृन्दावनमें, व्रजमें है—जिसे देख वे आकृष्ट हो गये।

योगमायामुपाश्रितः—बात उलट ही गयी। वे स्वयं मायाके आश्रय हैं, उनके सहारे योगमाया जीती है, लेकिन आज श्रीकृष्णको योगमायाका आश्रित होना पड़ा। देवि योगमाये, बिना तुम्हारी सहायताके रासक्रीड़ा हो ही कैसे सकती है?

भगवान् अपि—यहाँ '**अपि**' का अर्थ यही है कि इस रासक्रीड़ासे भगवान्‌की भगवत्तामें कोई अन्तर नहीं पड़ता। आप सबको गीताका श्लोक स्मरण होगा—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

(गीता ४।६)

अपनी प्रकृतिका आश्रय ले अपनी मायासे वे जन्म लेते हैं तो क्या उनके अजन्मापनेमें कोई अन्तर पड़ता है? नहीं। उनके अजत्वमें कोई व्याघात नहीं पड़ता, क्योंकि परमात्माको एक कक्षामें निक्षिप्त कर देना परमात्माके पूर्ण स्वरूपका वर्णन नहीं है। परमात्मा अज ही है, जायमान नहीं। यदि आपके मनमें अपरिच्छिन्न ब्रह्मकी जिज्ञासा हो तो जायमानताका अपवादकर उसमें अजत्वका अध्यारोप कर लें। अजत्व भी अध्यारोप दृष्टिसे ही है, वस्तुतः नहीं, यह श्रीगौडपादाचार्यने स्पष्ट रूपसे कहा है—

अजः कल्पितसंवृत्या परमार्थेन नाप्यजः।

जायमान होनेसे भगवान्‌के अजत्वका व्याघात नहीं होता और न अजत्वसे जायमानत्वका व्याघात होता है। जो अजत्व और जायमानत्व दोनोंका अभाव, दोनोंका अधिष्ठान, दोनोंका अधिकरण है, उसमें जायमानत्व और अजत्व दोनों ही कल्पित होते हैं। प्रपंचके मिथ्यात्व-साधनार्थ वेदान्तियोंने युक्ति ही यह दी है—'**स्वभावाधिकरणे भासमानत्वम्**'—जायमानरूपमें भी वही है और अजरूपमें भी वही है। इसलिये वह भगवान् ही योगमायाका आश्रय हैं और आश्रित भी।

योगमाया क्या है?

योगमाया शब्दका अर्थ भी विलक्षण है—'**योगाय या माया, योगमाया**'। योगमायाका सीधा-सादा अर्थ है कि जो जीव मानते हैं कि हम भगवान्‌से बिछुड़ गये हैं और मिलना चाहते हैं, उनको मिलनेका उपाय। बिछुड़े जीवोंपर कृपाकर भगवान् साधनाकी माया फैलाते हैं—हमारी रासलीलाका श्रवण करो, स्मरण करो, ध्यान करो, इससे तुम्हारा ईश्वर-वियोगका दुःख निवृत्त हो जायगा, यह बतलाते हैं। इस प्रकार जीवको अपना संयोग देनेके लिये भगवान्‌ने जो लीला की, उसीको योगमाया कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें यह भगवान्‌की कृपाशक्ति है—'**मुख्यं तु तस्य कारुण्यम्।**'

श्रीमद्भागवतकी एक टीका रामनारायणकी है '**भाव-विभाविका**'। केवल व्याकरणका चमत्कार देखना हो तो वही टीका देखनेयोग्य है। '**योगमाया**' इन चार अक्षरोंकी चौंसठ व्युत्पत्ति की है। वे कहते हैं—योगमाया शब्दका अर्थ है वंशी। कैसे?

योगाय माया शब्दो यस्यां, सा योगमाया वंशी। योगमायामुपाश्रितः वंशीमुपाश्रितः।

रासलीला करनेके लिये भगवान्‌ने वंशी उठा ली। योगमाया है भगवान्‌की अचिन्त्यशक्ति, जो रासलीलाकी सारी व्यवस्था करती है। थोड़ेसे देशको बड़ा बना देती है, जिसमें सहस्र-सहस्र गोपियाँ आ जायँ। थोड़े-से कालको बड़ा बना देती है। एक रात्रि कल्पपर्यन्त रात्रि हो जाय अथवा कल्परात्रि एक रात्रिके बराबर हो जाय। वहाँ मृदंग आदि वाद्य, ताम्बूल तथा वस्त्राभूषण आ जायँ। इसके लिये अघटित-घटना-पटीयसी योगमायाको

भगवान् स्वीकार करते हैं।

योगमाया शब्दका अर्थ है, भगवान्‌की आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा। जब गोपियोंके संग रास करना है तो श्रीमती राधारानीकी अनुमतिके बिना वह आनन्दपूर्वक सम्पन्न नहीं हो सकता। कहीं वे बीचमें रूठ जायँ कि तुम हमारे होकर भी इन गोपियोंके साथ नृत्य क्यों करते हो? तो उन्हें मनानेमें ही सारी रात बीते और रासका आनन्द ही किरकिरा हो जाय। इसलिये '**योगमाया-मुपाश्रितः**' का अर्थ है, पहले जाकर श्रीराधारानीको मनाया—'श्रीमतीजी! अनुकूल हो जाओ। गोपियोंके साथ रास करना है। बिना आपकी प्रसन्नताके इस रासलीलाका होना सम्भव नहीं है।'

'अपि' के अपार भाव

'**भगवानपि**' में जो '**अपि**' शब्दका प्रयोग किया, उसका एक अर्थ यह भी है कि गोपियोंका संकल्प पहलेसे था ही, अब भगवान्‌ने भी संकल्प किया, क्योंकि चीर-हरणके सम्बन्धमें यह बात स्पष्ट हो चुकी है—

सङ्कल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम्।

गोपियाँ तो चाहती थीं कि रासलीला हो। अब '**भगवानपि रन्तुं मनश्चक्रे**'—भगवान्‌ने भी विहारका संकल्प किया।

श्रीधर स्वामीने एक दूसरा ही भाव निकाला है। एक तो यह कि '**शरदोत्फुल्लमल्लिका**' रात्रिको देखकर भगवान्‌के मनमें भी संकल्प हो गया। दूसरे, भगवान् अपनी भगवत्ताको सुरक्षित रखते हुए रासक्रीड़ा करते हैं। तीसरे, गोपियाँ तो चाहती ही थीं, भगवान्‌ने भी संकल्प किया। चौथे, भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्मा, इन्द्र, वरुणको पराजित कर ही दिया। अब कामके मनमें भी आया कि ये तो हमारे ही समान योद्धा मालूम पड़ते हैं। काममें अभिमान होता है, पर प्रेममें नहीं। अन्तिम विजय निरभिमानताकी ही होती है। अभिमान कभी विजयी नहीं होता। अपरिच्छिन्न अनन्त ब्रह्मतत्त्वमें अभिमानका कोई मूल्य ही नहीं है। आखिर कामको किस बातका अभिमान है? श्रीधरस्वामीने कहा—

ब्रह्मादिजयसंरूढदर्पकन्दर्पदर्पहा।
जयति श्रीपतिर्गोपीरासमण्डलमण्डनः॥

ब्रह्मा आदिपर विजय प्राप्त करनेके कारण कन्दर्प संरूढदर्प हो गया था। उसे अभिमान हो गया था कि हमारी समताका कोई नहीं। श्रीकृष्णने कहा—'हम तो आसुरी शक्तिके निवारणके लिये ही आये हैं। क्या काम देवता होकर भी असुर हो गया? हमारी सेवामें नहीं रहा, युद्ध करने आता है? इन्द्रादि देवताओंका काम मेरी सेवा करना ही तो है। फिर भी वह युद्ध चाहता है तो आ जाय।' यहाँ '**भगवानपि**' का अर्थ है, कामने तो पहलेसे संकल्प कर ही रखा था, अब भगवान्‌ने भी संकल्प किया।

वीक्षण—दिव्यतापादन

शरदोत्फुल्लमल्लिका—शरद् ऋतुके कारण मल्लिका पुष्प खिले हुए थे। संस्कृतमें '**यूथिका च मल्लिका च**' ऐसा पाठ था। किसी विद्वान्‌ने यूथिकाके आगे जो '**च**' था, उसे '**मल्लिका**' के साथ जोड़ दिया तो वह '**चमल्लिका**' हो गया और यह '**चमल्लिका**' लोकभाषामें '**चमेली**' बन गया। मल्लिका पुष्पोंमें मल्ल है अर्थात् सबकी सुगन्धको पछाड़ देती है, साथ ही कोमलतर भी। सब सुगन्धोंको पछाड़ देनेसे तो यह मल्ल है, साथ ही कोमलतर होनेसे उसे '**मल्लिका**' कहते हैं।

शरदोत्फुल्लमल्लिका—काल भगवान्‌की सेवा करने आया और उसने पृथिवीका सारा भाग मल्लिकाके रूपमें भगवान्‌के सामने प्रकट कर दिया। इसे इस प्रकार कहते हैं—'**ताः वीक्ष्य, रात्रीर्वीक्ष्य, शरदोत्फुल्ल-मल्लिका वीक्ष्य**'—गोपियोंको, रात्रियोंको और शरदोत्फुल्ल मल्लिकाको देखकर। देखकर नहीं, '**वीक्ष्य**'। वेदान्तके विद्वान् जानते हैं कि '**वीक्षण**' शब्दका अर्थ साधारण दर्शन नहीं होता।

स ऐक्षत एकोऽहं बहु स्याम् प्रजायेय।

'**वीक्षण**' शब्दका अर्थ होता है, बहुत बनानेका संकल्प—जब भगवान्‌को लीला करनी हुई, लीला करनेका संकल्प उदय हुआ तो उन्होंने गोपियोंका वीक्षण किया, रात्रियोंका वीक्षण किया और शरदोत्फुल्ल-मल्लिकाका वीक्षण किया अर्थात् अपने संकल्पसे भगवान्‌ने गोपियोंको दिव्य किया, रात्रियोंको दिव्य किया और मल्लिकाओंको दिव्य किया। लौकिक कालमें लौकिक व्यक्तियोंसे, लौकिक उपकरणोंद्वारा यह भगवत्-

रमण नहीं है। भगवान्ने सबको सजातीय, अपना स्वरूप बना लिया। स्वरूपत्वेन उनका वीक्षण किया। ये रात्रियाँ मुझसे भिन्न नहीं हैं, ये गोपियाँ मुझसे भिन्न नहीं हैं, ये शरदोत्फुल्लमल्लिका मुझसे भिन्न नहीं है, ये सब मेरा स्वरूप हैं।

स्वयं समना—गोपियाँ अमना

वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे—इसका सीधा अर्थ होता है रमणका संकल्प किया, किंतु भगवान् हैं '**अमना**'। उपनिषद्ने कहा—**अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः**। भगवान्में प्राण, मन और माया कुछ नहीं। **शुभ्रः** पदका अर्थ है अमायिक—माया, अविद्या नहीं। '**अप्राणः**' का अर्थ है क्रिया-शक्ति नहीं और '**अमनाः**' का अर्थ है ज्ञानशक्ति नहीं। वह गोपियोंके साथ विहार कैसे करेगा? तब कहते हैं—'**रन्तुं मनश्चक्रे, मनःकर्मभूतं चक्रे निर्मितवान्**।' '**भगवान् अपि**', '**अमना अपि**' भगवान्ने लीला करनेके लिये '**मनःचक्रे**' मनका निर्माण किया; क्योंकि बिना मनके लीला नहीं हो सकती। इसलिये स्वयं तो '**अमना**' से '**समना**' बने और गोपियोंके पास मन रहेगा तो उन्हें पाप-पुण्यका स्पर्श होगा, इसलिये उन्हें अमना बनाया—

मा भूदासां अणुरपि अधर्मसंस्पर्श इति मत्वा सुकृतासुकृतनिदानं मन एवादौ जहार।

अपने संगीतद्वारा गोपियोंके मनकी चोरी कर ली, क्योंकि मन ही सुकृत-असुकृतका निदान है। धर्म-अधर्मकी उत्पत्ति मनसे ही होती है। इनको कणमात्र भी अधर्म स्पर्श न करे, यह सोचकर वंशी-वादनद्वारा गोपियोंका मन हर लिया और स्वयं समना बनकर योगमायाका आश्रय ले भगवान्ने रासलीलाका प्रारम्भ किया।

'प्रीति पुरातन लखै न कोई'

[श्रीराधा-माधवकी बाल्यप्रीति]

एक बार श्रीरामकृष्ण परमहंस श्रीमद्भागवत के एक विद्वान् पण्डितके साथ बैठे बातचीत कर रहे थे। अन्य भक्तगण भी समीप ही बैठे हुए थे। श्रीरामकृष्णने उन पण्डितजीसे पूछा—'योगमाया क्या है?'

पण्डितजीने योगमायाकी अपने अनुसार शास्त्रोक्त व्याख्या प्रस्तुत की।

इसपर श्रीरामकृष्णने पूछा—'क्या राधिका योगमाया थीं?'

परंतु पण्डितजी इस प्रश्नका संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाये।

तब श्रीरामकृष्ण परमहंसने ही बताया—'योगमायाके भीतर तीनों गुण हैं—सत्त्व, रज और तम। परंतु राधिकाके भीतर विशुद्ध सत्त्वके सिवा और कुछ है ही नहीं।'

वहीं बैठा हुआ एक भक्त बोला—'आप सही कह रहे हैं। हमें भी ईश्वरसे किस प्रकार प्रेम किया जाय, इसकी शिक्षा अगर लेनी हो तो राधिकाजीसे लेनी चाहिये।'

श्रीरामकृष्णने समझाया—'राधिका कृष्णका ही अंश थीं। कृष्णने प्रेमका रसास्वादन करनेके लिये ही राधिकाकी सृष्टि की थी।'

उन्होंने राधा-कृष्णके जन्मके समयका एक दृष्टांत सुनाया—'वैष्णव ग्रन्थोंमें लिखा है कि राधाने जन्म लेनेके बाद भी अपनी आँखें नहीं खोली थीं। उनका भाव यह था कि इन आँखोंसे कृष्णके सिवा और किसे देखूँ?' फिर जब यशोदा मैया राधिकाके जन्मकी बधायी देने नन्हे कृष्णको लेकर राधाके घर गयीं, तब राधाने कृष्णको देखनेके लिये अपनी आँखें खोल दीं और कृष्णने खेलके बहाने राधिकाकी आँखोंपर हाथ फेर दिया।

वे मुसकराते हुए आगे बोले—'तभी आप लोगोंने देखा ही होगा कि छोटे बच्चेसे नवजात शिशुकी आँखोंपर हाथ फिरवाया जाता है।'

राधा-कृष्णकी अभिन्नता तथा राधा-प्रेमकी विशुद्धता

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं, परमात्मा हैं, भगवान् हैं। वे सगुण, निर्गुण, निराकार और साकार हैं। वे ब्रह्मकी प्रतिष्ठा हैं, वे ही आश्रयतत्त्व हैं। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं—'**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।**'

वे ही द्विभुज मुरलीमनोहर श्यामसुन्दर नराकृति, परब्रह्म, लीलामय, लीलापुरुषोत्तम, भुवनमोहन-श्रीविग्रह हैं। वे अचिन्त्यानन्त विरुद्ध-धर्माश्रय और अपार करुणामय हैं। वे साक्षात् मन्मथ-मन्मथ हैं। वे आनन्द-चिन्मय-रस-समुद्र, रसस्वरूप, आस्वाद्य और आस्वादक, रसिकशेखर हैं। वे अपने असमोर्ध्व नित्य परिवर्धनशील सौन्दर्य-माधुर्यके द्वारा विश्वविमोहन—सर्वचित्ताकर्षक हैं, सर्वचित्तहर हैं, यहाँतक कि अपने स्वरूप-सौन्दर्यको देखकर स्वयं ही मुग्ध हो जाते हैं—

विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः
परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्।

(श्रीमद्भा० ३। २। १२)

अपने ही इस नित्य सौन्दर्य-माधुर्य-रसका समास्वादन करनेके लिये वे स्वयं अपनी ह्लादिनी शक्तिको अथवा आनन्दस्वरूपको सदा-सर्वदा श्रीराधारूपमें अभिव्यक्त किये हुए हैं। श्रीराधारानी भगवान् श्रीकृष्णकी ही स्वरूपाशक्ति हैं। वे श्रीकृष्णकी ही अभिन्न स्वरूपा हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण श्रीराधाके अभिन्न स्वरूप हैं। इनकी यह रसमधुर लीला सत्य और नित्य है। वस्तुतः लीला तथा लीलामय भी अभिन्न ही हैं। तत्त्व और लीला एक ही स्वरूपकी दो दिशाएँ हैं। तत्त्वमें जो अव्यक्त है, वही लीलामें परिस्फुट है। तत्त्वमें जो बीज है, वही लीलामें विशाल विशद वृक्ष है। दूसरे शब्दोंमें, तत्त्व लीलारूप अक्षय सरोवरका एक जलबिन्दु है। लीला तत्त्वका प्रकट विग्रहरूप है, तत्त्वकी समग्रता ही लीला है। लीलाका निगूढ रहस्य ही तत्त्व है। एक ही परम नित्यानन्द रसब्रह्म-तत्त्व नित्य अखण्ड रहकर ही आस्वाद्य और आस्वादकरूपसे दो रूपोंमें अभिव्यक्त होकर लीलायमान है—एक व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण और दूसरी वृषभानुदुलारी श्रीराधा। श्रीकृष्ण रसमय हैं और श्रीराधा भावमयी हैं।

रतिकी दृष्टिसे श्रीराधारानी मूर्तिमान् अधिरूढ़ महाभावरूपा या मधुरा रतिकी सजीव प्रतिमा हैं। मदीया रति यानी 'श्रीकृष्ण मेरे हैं' यह भाव ही गोपीभाव है। इसी भावकी चरम परिणति महाभावस्वरूपिणी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानी हैं। मदीया रतिकी इस चरम और परम पूर्णतम परिणतिमें शक्तिमान् श्रीकृष्ण निज स्वरूपाशक्ति श्रीराधारानीके प्रति सोल्लास आत्मसमर्पण करते हैं—'**धेहि पदपल्लवमुदारम्।**' कायव्यूहा-शक्तिरूपिणी व्रजदेवियोंके सहित शक्ति और शक्तिमान्का यह नित्य मधुर लीलाविलास ही नित्य महारास है। इस मधुरातिमधुर अनन्त विचित्र महारासकी आत्मा, अखिल आनन्द-चिन्मय-रसामृतरूपिणी श्रीराधारानी हैं।

श्रीराधाभावकी साधना जगत्के कामराज्यकी वस्तु तो है ही नहीं, उसकी अत्यन्त विरोधिनी है। श्रीराधारानीके स्वरूपतत्त्वका अध्ययन और श्रीराधाभावका साधन कामके कलुषको सदाके लिये धो डालनेवाला है। कामरूप अन्धकारका प्रभाव वहींतक है, जहाँतक दिव्य गोपीभाव या राधाभावका निर्मल भास्कर उदय नहीं होता। राधाभावके परमोज्ज्वल रस-साम्राज्यमें कलंकी कामका प्रवेश ही नहीं है। अतुलनीय सौन्दर्य-माधुर्यराशि, रोम-रोम-मधुर श्रीकृष्ण जब अपने स्वरूप-सौन्दर्यको देखकर विस्मित और विमुग्ध होते हैं, उस समय उस मुग्धतासे उनकी रक्षा करनेकी सामर्थ्य श्रीराधारानीमें ही है। इसीसे श्रीकृष्णदास कविराजने कहा है—

राधासङ्गे यदा भाति तदा मदनमोहनः।
अन्यथा विश्वमोहेऽपि स्वयं मदनमोहितः॥

ये श्रीराधारानी अनादि हैं, इनका प्राकट्य स्वयं भगवान्के प्राकट्यकी भाँति ही दिव्य रूपमें हुआ करता है। श्रीराधारानीके प्रेम-राज्यमें प्रवेश करनेवाले परम भाग्यवान् लोग ही इसका अनुभव कर सकते हैं। श्रीराधारानी, उनकी कायव्यूहरूपा किन्हीं व्रजदेवी अथवा

श्रीराधारानीके अभिन्नस्वरूप, उनके नित्य आराध्य और नित्य आराधक श्रीकृष्णकी कृपासे ही उसमें प्रवेश पाया जा सकता है और उनकी कृपासे ही अनुभूति भी हो सकती है।

समस्त संसारके प्राणी भोग-सुखकी कामना करते हैं। यह भोग-काम मनुष्यके ज्ञानको ढके रखता है। मनुष्य भूलसे भोग-कामको ही प्रेम मान लेते हैं और कामके कलुषित गरल-कुण्डमें निमग्न रहकर प्रेमके पवित्र नामको कलंकित करते हैं। वस्तुतः काम और प्रेममें महान् अन्तर है। कामसे आत्माका अध:पात होता है और प्रेमसे दिव्य भगवदानन्दका दुर्लभ आस्वादन मिलता है। अतएव काम तथा प्रेम परस्पर अत्यन्त विरुद्ध हैं। 'काम' और 'प्रेम' का भेद बतलाते हुए श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—

कामेर तात्पर्य निज संभोग केवल,
कृष्णसुख-तात्पर्य प्रेम तो प्रबल।
लोकधर्म, वेदधर्म, देहधर्म, कर्म,
लज्जा, धैर्य, देहसुख, आत्मसुख मर्म॥
सर्वत्याग करये, करे कृष्णेर भजन,
कृष्णसुख हेतु करे प्रेमेर सेवन।
अतएव कामे प्रेमे बहुत अन्तर—
काम अन्धतम प्रेम निर्मल भास्कर॥

मनुष्यकी कामना जब शरीरमें केन्द्रित होती है, तब उसका नाम होता है 'काम' और जब श्रीकृष्णमें केन्द्रित होती है, तब वही 'प्रेम' बन जाती है।

जो निज-भोग-सुखको सर्वथा भूलकर सर्वथा पर-सुखपरायण हो जाते हैं, वे सच्चे महापुरुष हैं; और जिनका आत्मसुख सदा-सर्वदा सर्वथा श्रीकृष्णसुखमें परिणत हो जाता है, वे तो महापुरुषोंके द्वारा भी परम वन्दनीय हैं। श्रीगोपांगनाएँ वेदधर्म, देहधर्म, लोकधर्म, लज्जा, धैर्य, देहसुख, आत्मसुख, स्वजन एवं आर्यपथ—यों 'सर्वत्याग' करके सदा श्रीकृष्णका सहज भजन करती थीं। जबतक मनमें जरा भी लोक-परलोक, भोग-मोक्ष आदिकी कामना रहती है, तबतक 'सर्वत्याग' हो ही नहीं सकता। श्रीकृष्णसुखके लिये सर्वत्याग—यही गोपीकी विशेषता है। निजसुखके लिये लोग बहुत कुछ त्याग करते हैं, परंतु केवल कृष्णसुखके लिये 'सर्वत्याग' करना केवल गोपीमें ही सम्भव है। वस्तुतः यह 'कृष्णसुख' गोपीप्रेमका स्वरूप-लक्षण है और 'सर्वत्याग' तटस्थ लक्षण है।

निज-सुख-कामनाको प्रीतिरसकी 'उपाधि' कहा गया है। गोपीप्रेममें यह उपाधि नहीं है, इसीसे गोपीप्रेमको 'निरुपाधि' प्रेम कहते हैं।

प्रश्न हो सकता है—तो क्या श्रीकृष्णके दर्शनकी भी गोपीजनोंको इच्छा नहीं है? और क्या उनका दर्शन प्राप्त करके भी वे सुखी नहीं होतीं? इसका उत्तर यह है कि निश्चय ही श्रीगोपांगनाएँ श्रीकृष्णदर्शनके लिये नित्य-नित्य समुत्सुका रहती हैं और निश्चय ही श्रीकृष्णके दर्शनसे उनके मुखमण्डलपर, उनके अंग-प्रत्यंगमें, उनके रोम-रोममें प्रफुल्लताकी बाढ़ आ जाती है। गोपीकी इस परम मधुर आनन्दज्योतिप्रसरित मुखश्रीपर श्यामसुन्दरके नेत्र निर्निमेष होकर गड़ जाते हैं और उनके अन्तरके सुख-समुद्रमें विपुल रूपमें आनन्दकी तरंगें लहराने लगती हैं। श्रीकृष्णका यह परम सुख गोपियोंको पुनः-पुनः श्रीकृष्णके सुख-दर्शनके लिये प्रेरित करता है। '**श्रीकृष्णसुखत्वे गोपीसुखत्वं तत्सुखत्वेन पुनः श्रीकृष्णसुखत्वम्।**' वस्तुतः श्रीकृष्णसुख ही गोपीका सुख है, स्वतन्त्र सुखानुसन्धानकी उसमें कल्पना भी नहीं है। श्रीकृष्ण-आस्वादनजनित सुख भी उसको स्वतन्त्ररूपसे नहीं होता; श्रीकृष्ण-सुख-परतन्त्र ही होता है।

गोपीका वस्त्राभूषण धारण करना, शृंगार करना, खाना-पीना, जीवन धारण करना—सभी सहज ही श्रीकृष्ण-सुखके लिये है। श्रीकृष्णने स्वयं कहा है—

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढप्रेमभाजनम्॥

'अर्जुन! गोपियाँ अपने अंगोंकी रक्षा या देखभाल भी इसीलिये करती हैं कि उनसे मेरी सेवा होती है। गोपियोंको छोड़कर मेरा निगूढ़ प्रेमपात्र और कोई नहीं है।'

सभी साधन-क्षेत्रोंमें शरीरकी इतनी देख-भाल साधनमें बाधक मानी जाती है। यह अनोखी प्रणाली तो

गोपी-भजनकी ही है, जिसमें देहकी सेवा भी भजनमें सहायक होती है। पुजारी प्रतिदिन पूजाके प्रत्येक पात्रको माँजकर उज्ज्वल करता है और सजाता है। गोपियोंका यह विश्वास तथा अनुभव है कि श्रीकृष्णकी सेवामें जिन-जिन उपचारोंकी आवश्यकता है, उनमें उनका शरीर भी एक आवश्यक उपचार है; इसलिये वे शरीररूप इस पात्रको नित्य उज्ज्वल करके श्रीकृष्ण-पूजाके लिये सुसज्जित करती हैं। पूजाका उपचार वस्तुतः पुजारीकी सम्पत्ति नहीं होती, वह तो भगवान्‌की ही सम्पत्ति है। पुजारी तो उसकी देख-रेख, सँभाल-सजावट करनेवाला है। इसी प्रकार गोपियोंके शरीर श्रीकृष्णकी सम्पत्ति हैं, गोपियोंके ऊपर तो उनके यथायोग्य यत्नपूर्वक सँभाल करनेका भार है। गोपियोंके तन-मन—सभीके स्वामी श्रीकृष्ण हैं। शरीरको धो-पोंछकर वस्त्राभूषणोंसे सजानेपर उसे देखकर श्रीकृष्ण सुखी होंगे, इस कृष्ण-सुख-कामनाको लेकर ही ये प्रातःस्मरणीया व्रजदेवियाँ श्रीकृष्णके सेवोपचारके रूपमें अपने शरीरोंकी सावधानीके साथ सेवा करती हैं। यह शरीर-सेवा श्रीकृष्ण-सेवाके लिये ही है। अतः यह भी परम साधन है, प्रेमका एक लक्षण है।

अपने पृथक् सुखसे तो गोपियोंकी सहज ही विरक्ति है। एक दिन एक गोपी श्रीकृष्णकी सेवामें लगी थी, इससे उसे बड़ा आनन्द मिला और उस आनन्दके कारण उसमें प्रेमके विकार—अश्रुपात, कम्प, जडता आदि उत्पन्न हो गये। इस प्रेमानन्दसे क्षणकालके लिये सेवानन्दमें बाधा आ गयी। बस, गोपीको बड़ा क्रोध आ गया। आनन्दपर क्रोध! यहाँ यह क्रोध वस्तुतः उस सेवानन्दजनित प्रेमानन्दपर नहीं है, यह आनन्दजनित विकारपर है; क्योंकि इस प्रेमविकारने सेवानन्दमें बाधा उपस्थित कर दी।

गोविन्दप्रेक्षणाक्षेपिबाष्पपूराभिवर्षणम् ।
उच्चैरनिन्ददानन्दमरविन्दविलोचना ॥

'कमलनयना गोपीने आँसू बरसानेवाले प्रेमानन्दकी उच्चस्वरसे निन्दा की।' शरीर, मन, वचनकी सारी चेष्टाएँ और संकल्प श्रीकृष्णसुखके लिये ही होते हैं; इसीसे उनका 'सर्वत्याग' स्वाभाविक है। गोपियोंमें 'सर्वत्याग' की भी विचार-बुद्धि नहीं है। हमारे सर्वत्यागसे श्रीकृष्ण सुखी होंगे—इस प्रकारके विचारसे वे सर्वत्याग नहीं करतीं। उनमें श्रीकृष्णसुखकामनाकी कर्तव्य-बुद्धि भी नहीं है। श्रीकृष्णके प्रति सहज अनुराग ही यह सर्वत्याग कराता है; यह तो गोपियोंका सहज स्वभाव है, उनका स्वरूपभूत लक्षण है। उनकी प्रत्येक क्रिया सहज ही श्रीकृष्णसुखके लिये होती है।

भगवान्‌ने उद्धवजीसे कहा है—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः॥

'मेरा मन ही गोपियोंका मन है, मेरे ही प्राणोंसे वे अनुप्राणित हैं और मदर्थ—मेरे लिये उन्होंने देहके सारे लौकिक कार्य त्याग दिये हैं।'

इसी प्रकार गोपियोंको अपने दुःखका भी अनुसन्धान नहीं है। उनका महान् दुःख भी यदि श्रीकृष्णके सुखका साधन है तो वह उनके लिये ब्रह्मानन्दसे भी बढ़कर सुखरूप है। श्रीकृष्ण थोड़ी ही दूरपर मथुरामें रहे, पर उनकी इच्छाके प्रतिकूल गोपियोंके मनमें कभी मथुरा जाकर श्रीकृष्णसे मिलनेकी कल्पना भी नहीं आयी। असह्य दुःखमें भी श्रीकृष्ण-सुखकी कामना वे कैसे करती हैं—इसका एक उदाहरण देखिये। व्रजसे मथुरा जाते समय श्रीराधाने हँसकर उद्धवसे कहा—

स्यान्नः सौख्यं यदपि बलवद् गोष्ठमाप्ते मुकुन्दे
यद्यल्पापि क्षतिरुदयते तस्य मागात् कदापि।
अप्राप्तेऽस्मिन् यदपि नगरादार्तिरुग्रा भवेन्नः
सौख्यं तस्य स्फुरति हृदि चेत्तत्र वासं करोतु॥

'उद्धव! यद्यपि श्रीकृष्णके गोष्ठमें पधारनेसे हमें बड़ा सुख होता, तथापि यदि इसमें उनकी जरा भी क्षति हो तो वे कभी न पधारें। दूसरी ओर, उनके मथुरा नगरीसे यहाँ न आनेसे यद्यपि हमें बड़ी भारी पीड़ा होती है, फिर भी यदि इससे उनके चित्तमें सुखका उदय होता हो तो वे सदा वहीं निवास करें।'

इससे सिद्ध है कि गोपीमें निज-सुख-कामका सर्वथा सहज ही अभाव है। श्रीकृष्ण-सुख ही उनका सर्वस्व है, स्वभाव है, जीवन है।

इसीसे श्रीकृष्ण गोपियोंके नित्य ऋणी हैं। भगवान्

श्रीकृष्णने अपना यह सिद्धान्त घोषित किया है—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'** (जो मुझको जैसे भजते हैं, उन्हें मैं वैसे ही भजता हूँ।) इसका यह तात्पर्य समझा जाता है कि भक्त जिस प्रकारसे तथा जिस परिमाणके फलको दृष्टिमें रखकर भजन करता है, भगवान् उसको उसी प्रकार तथा उसी परिमाणमें फल देकर उसका भजन करते हैं—सकाम, निष्काम (मुक्तिकाम), शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य आदिकी जिस प्रकारकी कामना-भावना भक्तकी होती है, भगवान् उसे वही वस्तु प्रदान करते हैं; परंतु यहाँ गोपियोंके सम्बन्धमें भगवान्के इस सिद्धान्त-वाक्यकी रक्षा नहीं हो सकी। इसके प्रधान कारण तीन हैं—१. गोपीकी कोई भी कामना नहीं है, अतएव श्रीकृष्ण उसे क्या दें। २. गोपीको कामना है केवल श्रीकृष्ण-सुखकी, श्रीकृष्ण इस कामनाकी पूर्ति करने जाते हैं तो उनको स्वयं अधिक सुखी होना पड़ता है। अतः इस दानसे ऋण और भी बढ़ता है। ३. जहाँ गोपियोंने सर्वत्याग करके केवल श्रीकृष्णके प्रति ही अपनेको समर्पित कर दिया है, वहाँ श्रीकृष्णका अपना चित्त बहुत जगह बहुत-से प्रेमियोंके प्रति प्रेमयुक्त है। अतएव गोपीप्रेम अनन्य और अखण्ड है, कृष्णप्रेम विभक्त और खण्डित है। इसीसे गोपीके भजनका बदला उसी रूपमें श्रीकृष्ण उसे नहीं दे सकते और इसीसे अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए वे कहते हैं—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥

(श्रीमद्भा० १०।३२।२२)

'गोपियो! तुमने मेरे लिये घरकी उन बेड़ियोंको तोड़ डाला है, जिन्हें बड़े-बड़े योगी-यति भी नहीं तोड़ पाते। मुझसे तुम्हारा यह मिलन, यह आत्मिक संयोग सर्वथा निर्मल और सर्वथा निर्दोष है। यदि मैं अमर शरीरसे, अमर जीवनसे अनन्त कालतक तुम्हारे प्रेम, सेवा और त्यागका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं सदा तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने सौम्य स्वभावसे ही, प्रेमसे ही मुझे उऋण कर सकती हो। परंतु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ।'

प्रेममार्गी भक्तको चाहिये कि वह अपनी समझसे तन, मन, वचनसे होनेवाली प्रत्येक चेष्टाको श्रीकृष्णसुखके लिये ही करे। जब-जब मनके प्रतिकूल स्थिति प्राप्त हो, तब-तब उसे श्रीकृष्णकी सुखेच्छाजनित स्थिति समझकर परम सुखका अनुभव करे। यों करते-करते जब प्रेमी भक्तका केवल श्रीकृष्णसुख-काम अनन्यतापर पहुँच जाता है, तब श्रीकृष्णके मनकी बात भी उसे मालूम होने लगती है। गोपियोंके 'श्रीकृष्णानुकूल जीवन' में यह प्रत्यक्ष है। उनके जीवनको श्रीकृष्ण अपना सब कुछ बना लेते हैं। श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

सहाया गुरवः शिष्या भुजिष्या बान्धवाः स्त्रियः।
सत्यं वदामि ते पार्थ गोप्यः किं मे भवन्ति न॥
मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः॥

'गोपियाँ मेरी सहायिका, गुरु, शिष्या, भोग्या, बान्धव, स्त्री हैं। अर्जुन! मैं तुमसे सत्य ही कहता हूँ कि गोपियाँ मेरी क्या नहीं हैं अर्थात् सब कुछ हैं। अर्जुन! मेरी महिमाको, मेरी सेवाको, मेरी श्रद्धाको और मेरे मनके भीतरी भावोंको गोपियाँ ही जानती हैं, दूसरा कोई नहीं जानता।'

श्रीकृष्णसुखजीवना, श्रीकृष्णप्राणा, श्रीकृष्णपरि-निष्ठितमति गोपियोंके सम्बन्धमें श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—

निजेन्द्रिय-सुख हेतु कामे तात्पर्य।
कृष्णसुखेर तात्पर्य गोपीभाव वर्य॥
निजेन्द्रिय-सुख-वाञ्छा नहे गोपीकार।
कृष्ण-सुख हेतु करे संगम-विहार॥
आत्मसुख-दुःख गोपी ना करे विचार।
कृष्ण-सुख हेतु करे सब व्यवहार॥
कृष्ण बिना आर सब करि परित्याग।
कृष्ण-सुख हेतु करे शुद्ध अनुराग॥

यह गोपीस्वरूपकी एक छोटी-सी झाँकीकी छायामात्र है। इन गोपियोंमें सर्वशिरोमणि हैं वृषभानुदुलारी श्रीराधाजी। गोपियाँ श्रीराधाकी कायव्यूहरूपा हैं। गोपियोंका परम आदर्श और परम सेव्य श्रीराधामें ही निहित है।

प्रेमका स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं—

सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे।
यद् भावबन्धनं यूनोः स प्रेमा परिकीर्तितः॥

ध्वंसका कारण समुपस्थित होनेपर भी जो ध्वंस नहीं होता, जो कभी रुकता, घटता और मिटता नहीं, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, उसे 'प्रेम' कहते हैं। प्रेमकी ज्यों-ज्यों प्रगाढ़ता होती है, त्यों-त्यों उसमें नये-नये रूपोंका आविर्भाव होता रहता है। रसशास्त्रमें उन्हींको विभिन्न नामोंसे बतलाया गया है। प्रेम प्रगाढ़ होते-होते क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभावका स्वरूप प्राप्त करता है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुरा रतिमें भी उत्तरोत्तर उत्कृष्टता और पूर्णता है। मधुरा रति अत्युत्कृष्ट है। इसमें अनुरागकी बड़ी वृद्धि होती है। यही अनुराग प्रगाढ़ होकर 'भाव' तथा 'महाभाव' बन जाता है। जैसे मधुरा रतिमें शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य—चारों रतियोंका समावेश रहता है, वैसे ही 'महाभाव' में भी स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग तथा भाव सम्मिलित रहते हैं।

तीव्र प्रेमपिपासाके कारण इष्ट वस्तुमें होनेवाली परमाविष्टताका नाम ही 'राग' है। इसी रागकी परिपक्वता होनेपर 'अनुराग' होता है।

अनुरागकी पूर्ण परिणति या निस्सीमता—महाभावकी समीपवर्तिनी प्रेमकी स्थितिका नाम 'भाव' है। भावकी पराकाष्ठा ही 'महाभाव' है। महाभाव सूर्यके सदृश है। सूर्यके दो स्वभाव हैं—जिसके साथ सूर्यका सम्पर्क होता है, उसके अन्धकारका नाश कर देना और अपनी शुभ किरणमालासे उसे स्नान करा देना। इसी प्रकार 'महाभाव' भी भगवान् श्रीकृष्णकी असीम कृपासे जिसके हृदयमें उदित हो जाता है, उसके हृदयमें अनादिकालसे स्थित 'स्वसुखतात्पर्य'-रूप अन्धकारको वह सदाके लिये हर लेता है और निज सम्बन्धी जनमात्रके भीतर-बाहरको नित्य परमानुरागमय बना देता है।

महाभावकी 'रूढ़' और 'अधिरूढ़'—दो अवस्थाएँ हैं। महाभावकी जिस अवस्थामें सात्त्विक भाव उद्दीप्त हो उठते हैं, उसे 'रूढ़' महाभाव कहते हैं। गोपी-प्रेममें इस रूढ़ महाभावकी अभिव्यक्ति होती है। यह 'रूढ़ महाभाव' श्रीकृष्णकी पटरानियोंके लिये अति दुर्लभ है। यह तो केवल व्रजदेवियोंके द्वारा ही संवेद्य है, व्रजसुन्दरियोंमें ही सम्भव है।

मुकुन्दमहिषीवृन्दैरप्यसावतिदुर्लभः।
व्रजदेव्येकसंवेद्यो महाभावाख्ययोच्यते॥

जिसमें रूढ़भावोक्त समस्त अनुभावोंसे सात्त्विक भाव किसी विशिष्ट दशाको प्राप्त हो जाते हैं, उसे 'अधिरूढ़' महाभाव कहते हैं। श्रीराधा इस अधिरूढ़ महाभावकी घनीभूत प्रत्यक्ष मूर्ति हैं। श्रीराधाके प्रेमका नाम ही 'अधिरूढ़ महाभाव' है। इस अवस्थामें श्रीकृष्णके मिलन और विरह-जनित सुख और दुःखोंका साथ-ही-साथ अतुलनीय रूपमें उदय होता है।

इस अधिरूढ़ 'महाभाव' के दो प्रकार हैं—'मोदन' और 'मादन'। 'मोदन' महाभाव श्रीकृष्णमें भी होता है। श्रीराधारानीकी विरह-व्याकुल स्थितिको भी 'मोदन' या 'मोहन' कहते हैं। 'मोहन' अवस्थाको दिव्योन्माद भी कहा जाता है। 'मादन' महाभाव श्रीराधाकी ही एकमात्र सम्पत्ति है। ह्लादिनी शक्तिकी परिपूर्ण परिणति ही 'मादन' है। इसमें श्रीराधारानी नित्य अनवच्छिन्न मिलनानन्दका अनुभव करती हैं।

श्रीकृष्णके नित्य नवीन माधुर्यके प्रादुर्भावका कारण श्रीराधा ही हैं। श्रीराधाका दुर्लभ प्रेम श्रीकृष्णकी अप्रतिम माधुर्यराशिको सर्वतोभावसे केवल ग्रहण ही नहीं करता, ग्रहण करके वह उस माधुर्यको और भी विशेषरूपसे उज्ज्वल तथा अनवरत उज्ज्वलतर करता रहता है। श्रीकृष्णमाधुर्यके नित्य नवीनत्वकी प्रकाशभूमि है श्रीराधाकी नित्यवर्धनशील उत्कण्ठा। श्रीराधाका प्रेम विभु होकर भी नित्य वर्धनशील है और श्रीकृष्णका माधुर्य नित्य वस्तु होकर भी नित्य नवायमान है। श्रीकृष्णका सांनिध्य ही श्रीराधा-प्रेमकी वर्धनशीलता है और श्रीराधाका सांनिध्य ही श्रीकृष्णमधुरिमाकी नित्य नवायमानता है। यह महाभावकी लीला अनन्तकालतक चलती ही रहती है। श्रीकृष्णनिष्ठ मधुरिमा और श्रीराधानिष्ठ उत्कण्ठा—दोनों ही असीम और अनन्त हैं। श्रीराधारानी श्रीकृष्ण-माधुरीका आस्वादन

नित्य-निरन्तर सम्पूर्णरूपसे करती रहती हैं, तो भी उस माधुर्यका कहीं अन्त तो आता ही नहीं, वह उत्तरोत्तर अपने मधुर स्वरूपमें तथा परिमाणमें बढ़ता ही रहता है और श्रीराधाकी माधुर्यास्वादनकी पिपासा भी उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है।

यह 'राधा-कृष्ण' का नित्य विहार अनादिकालसे अनन्तकालतक नित्य-निरन्तर चलता ही रहता है। श्रीराधाभाव दिव्यातिदिव्य प्रेम-माधुर्य-सुधारसका एक अगाध अनन्त असीम महासमुद्र है। उसमें नित्य नयी-नयी अनन्त दिव्य अमृतमयी मधुरिमा तथा महिमामयी अनन्त वैचित्र्यमयी महातरंगें उठती रहती हैं।

यों श्रीराधा श्रीकृष्णकी ही अभिन्नस्वरूपा हैं। भगवान्‌का आनन्दस्वरूप ही श्रीराधाके रूपमें अभिव्यक्त है। श्रीराधा-श्रीकृष्ण नित्य एक और अभिन्न हैं। श्रीराधा अनिर्वचनीय हैं, श्रीराधा अचिन्त्य हैं—

'मेरे एक राधा नाम अधार॥'

श्रीराधारानीकी महान् उदारता

श्रीराधाका श्याम-प्रेम सीमित नहीं है। वह अनन्त है और वे उसका वितरण करके परम सुखी होती हैं। वे हर समय सचेत और सचेष्ट रहती हैं कि उनकी सखियाँ भी उन्हींकी भाँति प्रियतमसुखका आस्वादन करें। प्रत्येक क्षेत्रमें उनका यह सहजउदार स्वभाव क्रियाशील रहता है।

झूलन-लीला हो रही है। प्रियतम श्रीकृष्ण और उनकी आत्मस्वरूपा श्रीराधिकाजी एक हेमोज्ज्वल हिंडोलेपर विराजमान हैं। सखियाँ झुला रही हैं। इतनेमें राधाजीके मनमें आता है कि यह सुख मेरी सखियोंको भी मिले। मनमें क्या आता है, हमारी श्रीराधाका यह नित्यव्रत ही है। श्रीराधाजी प्रेम-कल्पलता हैं और सखियाँ सब उस लताकी पल्लव-पुष्प-स्वरूपा हैं। अतएव प्रतिपल अपना रस देकर वे उनको प्रफुल्ल और पुष्ट करती रहती हैं। वे अपनी सखियोंको सुखी किये बिना सुखी नहीं हो सकतीं। इसलिये वे प्रियतम श्रीकृष्णको नेत्रोंके द्वारा इंगित करती हैं कि मैं जिस प्रकार प्रियतमकी बायीं ओर विराजमान हूँ, इसी प्रकार एक-एक करके सभी सखियोंको अपनी दायीं ओर बैठाकर उन्हें सुख प्रदान करें। और इस इंगितके अनुसार ही श्यामसुन्दरके द्वारा सखियोंके सुखदानकी मधुर एवं उदार लीला आरम्भ हो जाती है।

राधाप्राणप्रियतम रसिकशिरोमणि श्यामसुन्दर पहले श्रीमती ललिताको अपनी दाहिनी ओर बैठाते हैं और अपनी दक्षिण भुजा उसके कंधेपर रखकर राधाकी भाँति ही उसे सुख देने लगते हैं। यह देखकर सखी कुन्दलता मृदु मुसकानके साथ कहती है—'देखो-देखो, सखियो! आज यह कलंकहीन पूर्ण चन्द्र अपनी प्रियतमा राधा और अनुराधाको अपने वाम और दक्षिणमें लिये ज्योतिर्मण्डलके साथ आकाशसे पृथ्वीपर उतर शोभा-विस्तार करता हुआ झूला झूल रहा है।'

तदनन्तर इसी प्रकार विशाखा आदि जितनी प्रमुख सखियाँ वहाँ थीं, एक-एक करके सबको प्रियतम श्यामसुन्दर अपनी दाहिनी ओर बैठाकर और उन्हें सुख प्रदानकर रासेश्वरी निजप्राणेश्वरी श्रीराधाकी इच्छा पूर्ण करने लगे। श्रीराधाको श्यामसुन्दरकी इस लीलासे बड़ा ही सुख मिल रहा है, पर सखियोंके स्नेहसे सनी विश्वानन्ददायिनी श्रीराधाकी कामना इससे पूर्ण नहीं हुई। उनके मनमें सखी-सुखकामनाका एक नया स्वरूप उत्पन्न हो गया—

वे चाहने लगीं कि 'मेरी प्राणप्रिया ये सखियाँ प्रियतम श्यामसुन्दरके दोनों ओर हिंडोलेपर विराजित हों और मैं हिंडोलेसे उतरकर इनको झुलाऊँ।' अतएव वे स्वयं नीचे उतर गयीं। राधाके सुखसे ही परम सुखी प्रियतम श्यामसुन्दर राधाके इंगितके अनुसार दो-दो सखियोंको दोनों ओर बैठाकर उन्हें सुख देने लगे और स्वयं श्रीराधा उन्हें झुलाने लगीं। सखियोंने भी निज-सुख-कामनासे नहीं, प्राणप्रियतम श्रीकृष्ण और अपनी आधाररूपा श्रीराधारानीकी इच्छा पूर्ण हो और वे सुखी हों, इसी हेतुसे इस लीलाको स्वीकार किया।

जगज्जननी श्रीराधाजीकी दिव्य लीलाएँ

(गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

श्रीराधिकाजीके तत्त्व तथा उनकी दिव्य लीलाका विस्तारके साथ वर्णन भला कौन कर सकता है? श्रीकृष्णके चरित्रोंका पार तो सम्भव है, श्रीकृष्णको पा भी लें; किंतु श्रीराधाजीके चरित्रोंका पार तो श्रीकृष्ण भी नहीं पा सकते।

रमण एकाकी नहीं होता और असमान शीलवालोंमें भी नहीं होता, अत: जब भगवान्‌को क्रीड़ा करनेकी कामना होती है तो एकके दो हो जाते हैं; क्योंकि बिना शक्तिके कभी भी किसीका कार्य होता नहीं। शक्तिहीनका ही नाम शव है। शक्तिसहित ही शिव शिव हैं।

भगवान्‌की शक्तिका ही नाम राधा है। साधारणतया जैसा शक्तिमान् होता है, वैसी ही उसकी शक्ति भी हुआ करती है। भगवान्‌का रूप जगन्मोहन है तो उनकी शक्ति भी जगन्मोहिनी है। भगवान् रासेश्वर हैं तो उनकी शक्ति रासेश्वरी हैं। भगवान् अचिन्त्य लीलावाले हैं तो श्रीराधाजीकी महिमा अचिन्त्य है। भगवान् आनन्दस्वरूप हैं, तो वे भी आनन्दकी वर्षा करनेवाली हैं। इस प्रकार संसारमें जितनी लीलाएँ हैं, सब श्रीराधाजीका ही लीला-विलास है। वे श्रीकृष्णसे भिन्न नहीं, केवल रसास्वादन करनेके लिये एक होकर भी दो होते हैं। एक कथा ऐसी है कि गोलोकमें जब श्रीकृष्णको रास करनेकी इच्छा हुई तो उनकी इच्छा ही मूर्तिमती किशोरी बनकर वामपार्श्वसे प्रकट हो गयी। रासमें उत्पन्न होकर अपने शक्तिमान्‌की सेवाके निमित्त आरम्भिक अर्घ्य देनेके हेतु पुष्प-चयनके लिये उन्होंने धावन—गमन किया, इसीलिये उनका नाम राधा पड़ा अथवा श्रीकृष्ण इनके आराधक हैं और ये श्रीकृष्णकी आराधिका हैं, इस हेतु भी इन्हें राधा कहते हैं। इनका प्राकट्य रास-विलासके ही निमित्त हुआ, अत: ये रासेश्वरी हैं। इनका प्रादुर्भाव क्रीड़ाके ही निमित्त हुआ, अत: ये क्रीड़ा-प्रिया हैं, नित्य नूतन-नूतन लीलाएँ ये अपने शक्तिमान्‌के साथ रचती रहती हैं। प्रधान शक्तिमान्‌की प्रधान शक्तिके द्वारा ही समस्त शक्तियोंका विकास होता है, श्रीराधिकाजीके रोमकूपोंसे···· अल्पशक्तिसे ही···· अन्य असंख्य गोपियोंका प्राकट्य हुआ। यह सब लीलाओंमें ही प्रादुर्भाव-तिरोभाव है, वास्तवमें तो शक्ति-शक्तिमान् सदा अभिन्न हैं, नित्य हैं, शाश्वत हैं, उनका आविर्भाव नहीं, तिरोभाव नहीं। उत्पत्ति नहीं, विनाश नहीं, ह्रास नहीं, उल्लास नहीं। सभी जानते हैं कण-कण जलसे छोटी-छोटी जलकी राशि बनती है। गड्ढा, कूप, तालाब तथा नदी—सभीमें जल होता है, सभीसे प्यास बुझती है, सभी जीवोंका जीवन है, किंतु यह समस्त जल, जलकी महाराशि समुद्रसे आती है, अन्तमें किसी-न-किसी मार्गसे वहीं चली जाती है। इसी प्रकार संसारमें जो हमें यह आनन्द-रस अथवा प्रेम दिखायी देता है, यह सब श्रीराधा-कृष्णमहासागरके कुछ कण हैं, वह दिव्य आनन्द दिव्य लोकमें निरन्तर उमड़ता रहता है, उसका आदि, अन्त, अवसान नहीं। ऐसे ही वह हिलोरें लेता है।

एक समयकी बात है कि दिव्य लोकमें निरन्तर रास-विलास करते-करते श्रीराधाजीके मनमें एक पुत्र पैदा करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। 'समस्त इच्छाओंसे परिपूर्ण श्रीराधिकाजीके मनमें इच्छा क्यों उत्पन्न हुई जी?' बस, तुम क्योंका प्रश्न मत किया करो। क्रीड़ा केवल आनन्दके ही निमित्त होती है, इसका कोई अन्य उद्देश्य नहीं होता। क्रीड़ा-ही-क्रीड़ामें इच्छा हो गयी। इच्छा होते ही पुत्र हुआ। परम सुन्दरीका पुत्र भी परम सुन्दर हुआ। एक दिन उसने जम्हाई ली। उसके पेटमें पंचभूत, आकाश, पाताल, वन, पर्वत, वृक्ष, महत्तत्त्व, अहंकार, प्रकृति, पुरुष सभी दिखायी दिये। उसके मुखमें ऐसी अलाई-बलाई देखकर सुकुमारी राधिकाजीको बड़ा बुरा लगा। कैसा विराट् छोकरा हुआ। उन्होंने नार—जलमें उसे रख दिया। वही विराट् पुरुष हुआ। उसीसे समस्त ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति हुई। राधाजीके इस व्यवहारसे खिन्न होकर श्रीकृष्णने उन्हें शाप दिया—'अब कभी भी तुम्हें सन्तानलाभ न होगा। तुम अनपत्या रहोगी।' तभीसे राधिकाजीका नाम कृशोदरी पड़ा।

रूठनेकी दिव्य लीला

एक दिन श्रीराधाजी श्रीकृष्णचन्द्रजीसे रूठ गयीं। 'रूठी क्यों जी?' अजी, रूठना भी एक लीला है। प्रेमके

रूठनेमें बड़ा आनन्द आता है। श्रीकृष्ण उन्हें पैर पकड़कर मनाने लगे। नहीं मानीं, नहीं मानीं। तब श्रीदामा गोपने समझाया—'क्यों इतनी अकड़ रही हो, हो गया सो हो गया। अब मान जाओ।' इसपर श्रीराधाने श्रीदामाको शाप दिया—'तू भरतखण्डमें जाकर असुर हो जा।' बदलेमें उसने भी कहा—'तुम भूमिपर गोप-कन्या हो जाओ।' तभी श्रीराधिकाजी वृषभानु गोपके यहाँ कीर्तिदेवीसे प्रकट हुईं।

श्रीकृष्णजीसे एक वर्ष पंद्रह दिन पूर्व भाद्र शुक्ला अष्टमीको वृषभानुनन्दिनीका गोकुलके समीप रावलमें प्रादुर्भाव हुआ। बिना राधेके श्रीकृष्ण तो आधे भी नहीं, देवर्षि नारदजी जब श्रीकृष्ण-जन्मके अवसरपर भगवान्के दर्शन करने आये थे, तब उन्होंने स्वयं ही सोचा था—'जब व्रजमें गोलोकविहारीका जन्म हुआ तो उनकी शक्ति गोलोकविहारिणीने भी अवश्य ही यहीं कहीं किसी गोपके यहाँ जन्म ग्रहण किया होगा, अत: वे वृषभानुजीके भवनमें गये। वहाँ श्रीराधिकाजीको गोलोकविहारिणी समझकर स्तुति की। तब उन्होंने अपने नित्य-किशोरी-रूपसे दर्शन

दिये। वे चौदह वर्षकी दिव्य सुकुमारी अलौकिक शोभायुक्त सुन्दरी देवी बन गयीं। इससे यही सिद्ध होता है कि ये जन्म लेना, शिशु-क्रीड़ा करना, केवल लोगोंके सम्मुख जवनिकामात्र है। उनमें न घटाव है, न बढ़ाव, दोनों ही नित्य किशोरावस्थापन्न रहते हैं। निरन्तर रास-विलासमें मग्न रहना ही उनका काम है। सृष्टि, स्थिति तथा संहार आदिके कार्य त्रिदेव करते रहते हैं। असुरादिकोंका संहार भी विष्णुका कार्य है। श्रीकृष्णका तो एकमात्र कार्य अपनी शक्तिके सहित निरन्तर क्रीड़ा-लीला करते रहना ही है। कभी-कभी वह दिव्य लोककी लीला इस मर्त्यलोकमें भी होने लगती है। वही लोक ज्यों-का-त्यों यहाँ प्रकट हो जाता है। वह प्रकट-लीला भी दो प्रकारकी होती है, बाह्य और आन्तरिक। बाह्य लीलाके भी दो भेद हैं, गोष्ठलीला, और वनलीला। आन्तरिक लीला निकुंजलीला है। उसमें सब सखियोंका भी प्रवेश नहीं। कुछ अत्यन्त अन्तरंग सखियाँ ही सम्मिलित हो सकती हैं। जिन्हें मंजरी कहा जाता है। शेष गोष्ठ और वनकी लीलाओंमें महाभाग्यशाली गोपोंका तथा गोपियोंका प्रवेश है, वे जगत्के आनन्दकी वृद्धि करनेवाली हैं।'

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें एक कथा आती है कि नन्दजी एक दिन वनमें श्यामसुन्दरको गोदमें लिये हुए थे, उस समय श्रीराधाजी उनके समीप आयीं। नन्दजीने दिव्य दृष्टिसे समझ लिया, यह इनकी नित्य-शक्ति हैं, अत: बालक कृष्णको श्रीराधाजीकी गोदमें दे दिया। वे उन्हें लेकर वनमें गयीं। तब भगवान्ने बालरूप त्यागकर नित्य-किशोररूप धारण किया। ब्रह्माजीने आकर दोनोंका वैदिक विधिसे ब्याह कराया। फिर भगवान् बालक बन गये। श्रीराधाजी उन्हें नन्दजीको दे गयीं। इससे यह स्पष्ट होता है कि ये दोनों नित्य-किशोर हैं, एक-दूसरेके प्राण हैं। ये कभी विलग नहीं हो सकते। किंतु कुछ कालमें दोनों ही इन बातोंको भूल गये। 'सर्वशक्तिमान् होकर भूल क्यों गये जी?' अपनी शक्तिसे ही भूल गये, भूल भी तो उन्हींकी शक्ति है, उसका भी तो उपयोग होना चाहिये। योगमायाको उन्होंने बीचमें खड़ी कर रखा है। जो भी लीला करते हैं, योगमायाका आश्रय लेकर करते हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र नन्दभवनको आलोकित करने लगे और सर्वेश्वरी श्रीराधा वृषभानुजीके भवनको आलोकित करने लगीं।

श्रीकृष्ण बड़े चंचल हैं, माखन चुरा-चुराकर खाते हैं, गोपियोंको छकाते हैं, यह बात व्रजमें सर्वत्र फैल गयी। श्रीराधाजी भी इन सब बातोंको सुनतीं। न जानें क्यों, श्रीकृष्णका नाम सुनते ही, उनके अंग-अंगमें सिहरन उठने लगती। वह नाम उन्हें अत्यन्त ही प्यारा लगता।

श्रीकृष्णकी जहाँ चर्चा चलती, वहाँ उनके लोभी कान मधुलोलुप भ्रमरकी भाँति चिपक जाते। 'कृष्ण-कृष्ण' कितना सुन्दर, कितना मधुमय, कितना श्रुतिप्रिय सुखदायी नाम है। कभी-कभी वे कदम्बके ऊपरसे वंशीकी मधुर ध्वनि सुनतीं। सयानी-सयानी गोपिकाएँ कहतीं—'यह नन्दका लाला वंशी बजा रहा है।'

श्रीराधाजीके हर्षका ठिकाना नहीं रहता। 'हाय! जिसका इतना सुन्दर मधुमय नाम है, वह इतनी सुन्दर वंशी भी बजा लेता है क्या! इस प्रकार उनका प्रेम वंशीध्वनिको सुनकर और भी अधिक बढ़ता गया। स्वाभाविक प्रेममें अवगुण दिखायी ही नहीं देते। प्रेमकी यह मोटी पहचान है, जिसमें भी अवगुण दिखायी दे, उसमें प्रेमका अभाव ही समझना चाहिये। यही नहीं; प्रेममें अवगुण भी गुण दिखायी देते हैं। गुणोंकी तो बात ही क्या? किसी कृष्णभक्तने किन्हीं रामभक्त सन्तसे कहा—'आप श्रीकृष्णकी उपासना क्यों नहीं करते? श्रीकृष्ण तो सोलह कलासे परिपूर्ण अवतार हैं। श्रीरामचन्द्रजी तो बारह कलाके ही अवतार हैं। यह सुनकर वे सन्त चौंककर बोले—'क्या कहा! श्रीरामचन्द्रजी बारह कलाके अवतार भी हैं क्या? हम तो अबतक कौसलकिशोर दशरथनन्दन मानकर ही उनकी भक्ति करते थे। अब आपके मुखसे अवतार सुनकर हमारी भक्ति और भी दृढ़ हो गयी।' सारांश यह है कि मदनमोहन मुरली बजाते हैं, इसलिये राधाजीका उनकी ओर आकर्षण हुआ हो, सो बात नहीं, उनका उनके प्रति स्वाभाविक सहज स्नेह हो गया था, नाम-श्रवणसे वह बढ़ गया था और मुरलीध्वनिसे वह पराकाष्ठाको पहुँच गया था।

एक दिन यमुना-किनारे राधाजी आयीं। छोटी-सी, भोरी-सी, गोरी-सी, बड़ी सुन्दर, अर्धस्फुटित कलिकाके समान, नीली साड़ी पहने हुए सकुचाती हुई अपने ही अंगोंमें सिमटी-सी वे बड़ी ही भली लगती थीं। संयोगकी बात कि वे अकेली ही थीं। सहसा श्यामसुन्दर आ गये। दोनों ही सुध-बुध भूल गये। श्यामसुन्दरने पूछा—'लली! तुम कहाँ रहती हो?'

'हम बरसाने रहती हैं जी।' वीणा-विनिन्दित स्वरमें किशोरीजीने कहा।

'मैंने पहले तो तुम्हें कभी नहीं देखा था, तुम्हारे पिताका नाम क्या है?' श्यामसुन्दरने पूछा।

सकुचाती हुई चकित दृष्टिसे मदनमोहनके मुखारविन्द-मधुका अपनी आँखोंसे पान करती हुई वृषभानुलली बोलीं—'मैं अपने पिताका नाम नहीं लूँगी। वे वहाँके राजा हैं। बैल और सूर्यपर उनका नाम है।'

आश्चर्य प्रकट करते हुए श्रीकृष्ण बोले—'ओहो, तुम वृषभानुनन्दिनी हो, तुम्हारा नाम राधा है!'

एक अजनबी किंतु आकर्षक छोकरेके मुखसे अपना नाम सुनकर उनके हृदयमें गुदगुदी-सी होने लगी। सम्भ्रमके साथ उन्होंने कहा—'तुम कौन हो जी, मेरा नाम तुम कैसे जानते हो?'

श्यामसुन्दरका अन्तःकरण ही नहीं खिल रहा था, मुखमण्डल भी मोदके कारण विकसित हो रहा था। अपनी मन्द-मन्द मुसकानकी किरणोंको उनके कपोलोंपर पड़ी कानोंके कुण्डलकी आभामें मिलाते हुए मदन-मोहन बोले—'तुम्हारे रूपकी ख्याति तो समस्त व्रज-मण्डलमें फैली हुई है, तुम्हारा नाम भला ऐसा कौन होगा जो न जानता होगा? मेरा नाम कृष्ण है, मैं नन्दरायजीका पुत्र हूँ।'

राधाजीका हृदय बाँसों उछल रहा था। वे एक हाथसे उसे कसकर थामे हुई थीं। अपने आन्तरिक भावोंको छिपानेका वे सतत प्रयत्न कर रही थीं। वे बिना ही विचारे आप-से-आप कह उठीं—'ओहो! मैं भी सुना करती थी, श्यामसुन्दर बड़े चोर हैं!' हँसकर श्यामसुन्दर बोले—'तुम्हारा मैंने क्या चुराया जी? बड़े घरकी बेटी होकर ऐसी बुरी बात अपने मुखसे निकालती हो? मुझे चोर बताती हो?'

भोरी-भारी सुकुमारी राजकुमारी डर गयीं, उन्हें अपनी भूलपर पश्चात्ताप हुआ—'हाय, मेरे मुखसे यह क्या निकल गया! चोर तो ये हैं ही, प्रथम दृष्टिमें ही मेरा मन चुरा लिया, किंतु अप्रिय सत्यको भी प्रकट न करना चाहिये।' वे कुछ कह न सकीं। उन्होंने कहा—'मैं जाती हूँ।'

श्यामसुन्दर सिटपिटा गये। अरे, यह तो रंगमें भंग हुई। उन्होंने सम्पूर्ण ममता बटोरकर कहा—'जाती क्यों हो, तनिक ठहरो। बुरा मान गयी क्या? मैंने तो हँसीमें कह दी। हाँ, सब लोग मुझे 'माखन-चोर' कहते हैं, यद्यपि मैं किसीका चुराता-फुराता नहीं, किंतु जिनका नाम निकल जाय। तुमसे भी किसीने कह दिया होगा। थोड़ी देर यमुना-किनारे मिलकर खेलें।'

राधिकाजीने मनमें सोचा—'यह नन्दका छोरा जितना ही आकर्षक है, उतना ही ढीठ है। कितने प्यारसे बोलता है, इसकी वाणीमें कितनी मोहकता है!' किंतु वे लज्जावश श्यामकी बातोंका उत्तर न दे सकीं। वे बोलीं—'मेरी माँ नाराज होगी, इसलिये अब मुझे जाने दो, फिर मैं कभी आऊँगी।'

श्यामने इधर-उधर देखकर उनकी नीली रेशमी चूनड़ी पकड़ ली और बोले—'मेरी शपथ खाओ कि फिर आओगी।'

राधिकाजीने ओढ़नी छुड़ानेका प्रयत्न नहीं किया। अपने बड़े-बड़े विशाल कजरारे नयनोंसे शंकित दृष्टिसे इधर-उधर देखकर बोलीं—'छोड़ दो, छोड़ दो। हाँ, मैं अवश्य आऊँगी।'

'कल आओगी, इसी समय' श्यामने बातपर बल देकर कहा।

शंकित चित्तसे वृषभानुनन्दिनीने कहा—'अब कलकी तो नहीं कह सकती। मैं तुम्हारी भाँति छोरा तो हूँ नहीं, छोरी हूँ। मातासे पूछकर, किसीको साथ लेकर, कोई बहाना बनाकर; तब आना होता है।'

श्यामसुन्दर बोले—'तुम्हारा खिरक और हमारा खिरक पास तो है, मातासे कह देना गौओंको दुहाने जाती हूँ।' शीघ्रतासे किशोरीजी बोलीं—'अब तुम मुझे छोड़ दो। तुम्हें यह सब सिखाना न होगा, मैं सब अपने-आप कोई युक्ति सोच लूँगी।'

श्यामने झटककर उनकी नीली चूनड़ी खींच ली। नागिनकी भाँति उनकी चोटी फहराने लगी। वे कुपित होकर बोलीं—'तुम बड़े नटखट हो जी! ऐसे छेड़-छाड़ करोगे तो मैं फिर न आऊँगी।' आपने तुरन्त भूलमें अपना पीताम्बर उन्हें उढ़ा दिया। यद्यपि वे मुखसे तो बातें कर रही थीं, किंतु उन्हें तन-मनकी सुध-बुध नहीं थी। उन्हें यह पता ही न चला कि यह नीली चूनड़ी है या पीताम्बर। इधर श्रीकृष्णने भी जान-बूझकर ऐसा नहीं किया था। किशोरी लैयाँ-पैयाँ गोष्ठकी ओर भाग गयीं। श्यामसुन्दर लुटे व्यापारीकी भाँति खड़े-खड़े उनकी शोभाको निहारते रहे। जब वे आँखोंसे ओझल हो गयीं, तो सब कुछ खोये हुए व्यापारी-जैसे लौटकर घर आये। आते ही मैयाने कहा—'अरे कनुआ! तू यह किसी छोरीकी ओढ़नी ओढ़ आया रे! अरे, पगले! अब तू छोरासे छोरी हो गया? अपने शरीरपर राधाजीकी ओढ़नी देखकर माताके सामने श्याम सिटपिटा गये। बात बनाते हुए बोले—'मैया! आज एक बड़ी भारी घटना हो गयी।'

माताने आश्चर्यके साथ पूछा—'क्या घटना हो गयी बेटा?'

आप भोली सूरत बनाकर बोले—'देख मैया! अपनी जो मरखनी गैया है, वह बिदक गयी। वह एक छोरीकी ओढ़नी सींगमें लेकर भाग गयी और छोरी रोने लगी, तो मैंने उसे अपना पीताम्बर उढ़ा दिया। गौसे छुड़ाकर मैं यह उसकी चूनड़ी लाया हूँ। खोनेका डर नहीं है। मैं तो उसे जानता हूँ। कल मैं उसकी चूनड़ी उसे दे आऊँगा।'

इसी प्रकार जब देर होनेके कारण डरती हुई कीर्तिकिशोरीने घरके भीतर पैर रखा तो उसी समय बड़ी देरसे क्रुद्ध बैठी हुई माताने डाँटकर कहा—'कौन, राधा! अब तू बड़ी स्वतन्त्र हो गयी। लोकलाज, सब खो दी है। बड़े घरकी बेटीको ऐसे अकेले घूमना चाहिये? कोई क्या कहेगा, मेरे यहाँ सेवक नहीं, सेविकाएँ नहीं? तू कहाँ गयी थी? कितनी देर हो गयी। अभीतक कुछ खाया भी नहीं। इस प्रकार न जाने मैया क्या अंटसंट बहुत देरतक बकती रहीं। जब उन्होंने श्रीजीके सिरपर पीतपट देखा, तब तो वे और क्रुद्ध हुईं और डाँटने लगीं।

उस समय बड़े-बड़े नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए कोपमें भरकर कीर्तिललीने कहा—'मैया! तू मेरी तो कुछ सुनेगी नहीं। अपनी ही कहती जायगी। मुझे पता नहीं था कि मुझे

कारावासकी भाँति सदा घरमें बन्द रहना चाहिये। अभी कुछ देर हुई, ललिताके साथ मैं खिरक देखने गयी थी। गौओंको देखा, न कोई दुहता है, न गोबर उठाता है। गौओंके नीचे घोटू-घोटू कीच हो रही है। वहाँसे मैं यमुना चली गयी। वहाँ बहुत-सी गोपियाँ थीं, कोई नहा रही थी, कोई जल भर रही थी। मैं भी नहाने लगी। नहाकर ज्यों-ही मैं निकलकर अपना लहँगा पहनने लगी, त्यों-ही वहाँ एक भयंकर काला सर्प आया। आते ही उसने मेरे पासकी एक गोपीको चटसे डँस लिया। मैं डरकर भागी तथा मैं तनिक-सी ही बच गयी, नहीं तो वह मुझे भी काट लेता। उसी हड़बड़में मेरी ओढ़नी यमुनाजीमें बह गयी। वह गोपी मूर्च्छित होकर गिर गयी।'

माताका सब रोष कपूरकी भाँति उड़ गया। वे बोलीं—'हाय! बेटी! भगवान्‌ने ही तुझे बचाया। वह गोपी मर गयी या जीती रही?'

मन-ही-मन प्रसन्न होकर लाडिलीजी कहने लगीं—'सुन तो सही मैया! उसी समय एक कोई कारो-सो छोहरा वहाँ आ गया। मैं तो उसे जानती नहीं थी, उसने बाबाका नाम ले लिया और मुझे खुले सिर देखकर यह पीला कपड़ा ओढ़नेको दे दिया। मैं लेती नहीं थी, किंतु सबने कहा—'ले ले, ले ले, कोई बात नहीं। यह तो नन्दकुमार है।' अम्मा! छोरा बड़ा जादूगर है, उसने उस गोपीके कानमें ऐसा मन्त्र फूँका कि वह तुरन्त उठकर खड़ी हो गयी और हँसने लगी। मैं तो नारायणकी ही कृपासे बच आयी।

यह सुनकर मैयाने राधाको पकड़कर छातीसे चिपटा लिया। गोदमें बिठाकर मुख चूमकर सिरपर हाथ फेरती हुई बोलीं—'भगवान्‌ने बड़ी कृपा की बेटी! मैं तो डर रही थी कि तू कहाँ चली गयी!'

मैयाको अपने अनुकूल देखकर श्रीजीने कहा—'मैया! यह कारो-सो छोहरा किनका है, वह बार-बार मुझसे कहता था, हमारे घर खेलने आना, मैंने तो कुछ कहा नहीं।'

मैयाने कहा—'बेटी! वह नन्दरायका ढोटा है, उसका नाम है कृष्ण! वह बड़ा नटखट है। यशोदारानीसे मेरा भायेला है। उनके यहाँ जानेमें कोई बात नहीं। वह तो अपना घर ही है। अब इस पीताम्बरको तैंने ओढ़ लिया है। कल एक नया उनके यहाँ दे आना।' यहींसे श्रीकृष्ण और राधाके प्रेमका आरम्भ होता है। वैसे तो इन दोनोंमें सनातन प्रेम है, उसमें न आरम्भ है न अन्त, किंतु लौकिक दृष्टिसे इसका नाम पूर्वानुराग है।

अब दोनों ओरसे नित्यप्रति मिलनकी उत्कट इच्छा बनी रहने लगी। दोनों ही निरन्तर मिलनके अवसर खोजनेमें लगे रहते। जब भी अवसर मिलता, किसी भी बहानेसे मिल जाते। कभी श्रीकृष्ण अनेक रूप रखकर राधाजीके अन्तःपुरमें चले जाते, कभी राधाजी अनेक रूप रखकर श्रीकृष्णको सम्भ्रममें डालतीं। स्नेह बढ़ने लगा, उसने मानका रूप धारण किया। फिर वही प्रणय-रूपमें परिणत हो गया और वे दोनों एक-दूसरेसे अभिन्न हो गये।

राधा मम प्राण!

(माँ श्रीआनन्दमयीका प्रिय एक प्राचीन बांग्ला गीत)

राधा मम प्राण, राधा मम ज्ञान।
राधा मम ध्यान, राधानाम सार।
प्रेममयी राधा राधा, अंगे आधा।
राधानाम साधा बाधा, नाहि तार।
आमि दिवस रजनी, राधानाम ध्वनि।
करि, मात्र जानि, राधा मूलाधार।

राधा आद्या शक्ति, राधा भक्ति-मुक्ति।
राधा अनुरक्ति, भक्त श्रीराधार।
श्रीराधिका यन्त्रे, दीक्षा राधा मन्त्रे।
करि बाँशी यन्त्रे, नय रन्ध्रे फूत्कार।
से तन्त्रे सा-रे-गा-मा पा-धा-नि सप्तमा।
आलाप संयमे, बाजे सहस्त्रार॥

श्रीराधामाधवकी एक झाँकी

[व्रजभाषामें]

(गोलोकवासी सन्त श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

देखौ प्राण-प्रियतम ठाढ़े हैं। नख सौं शिखतककी कैसी अपूर्व शोभा है। श्रीमुखारविन्द, हस्त-कमल और पाद-पद्मन कौ तौ कहनौं ही का? सर्वांग कौ सौन्दर्य ऐसौ अपूर्व है कि जहाँ हू एक बार दृष्टि परि जाय है, वहीं अटकी ही रह जाय है। फिर हटनौं ही नहीं चाहै है। नवीन जलधरके समान श्यामगात पै पीताम्बरकी अद्भुत शोभा मानौ श्यामघन बिजली सौं ओत-प्रोत होय। माथे पै रतन-जटित मुकुट, जापै मोर-पंख कैसौ झोटा लै रह्यौ है? उन्नत ललाट पै मैयानें कितनौं सुन्दर श्रृंगार कियौ है। फिर धनुषाकार भृकुटीनकी शोभा, आकर्ण विस्तृत, कमल-दलके समान विशाल, सुन्दर-मनोहर नयन।

अमी, हलाहल, मद-भरे सेत स्याम, रतनार।
जियत, मरत, झुकि-झुकि परत, जिहिं चितवत एक बार॥

अहा हा! नासिका कौ माधुर्य। नासाग्रमें बेसर हालि रह्यौ है। शान्त, गम्भीर नील-समुद्र-जैसे सुन्दर कपोल, फिर दोऊ समतुल्य बराबर शंखके सदृश घुमावदार कर्णनमें मकराकृत दिव्य कुण्डलनकी दिव्य छटा, दिव्य कपोलन पै देदीप्यमान है रही है। तामें मनोहर कौस्तुभ मणिनकी माला और वैजन्ती माला तथा पारिजात, कमल, कुन्द, तुलसी, मन्दार आदिक सुगन्धित पुष्पन सौं बनी भई, कबहूँ ना मुरझायबे वारी माला, विशाल वक्ष:स्थल पै अति सुशोभित है रहीं हैं। मनोहर पीताम्बरकी फहरान, जाके दर्शनमात्र सौं ब्रज-बनितन कौ मन उनके हाथन सौं निकरि कैं भागि जाय है, कैसौ प्यारौ लगि रह्यौ है। लम्बी-लम्बी भुजन पै अंगदकी शोभा, हस्तकमलनमें वलयकी शोभा और छोटी अँगुरियन सौं पकरिकैं, अपनी त्रिभुवन कूँ मोहिबे वारी, प्राण-प्यारी अलौकिक रागन सौं भरी भई बाँसुरी कूँ लाल-लाल अधरन पै धरिकैं, अपनी त्रिभंगीमें ठाढ़े है कैं, अपनी मस्तीमें कैसे बजाय रहे हैं? तिरछी चितवन तौ रसिकनकी जान ही निकारे दै रही है और वंशीकी ध्वनि तौ मानौ काननमें अमृत-रस ही घोरि-घोरि कैं भरे दै रही होय।

श्रीमुखारविन्द कौ सौन्दर्य और माधुर्य नैंन भरिकैं निहारि लीजौं? और कर्णन सौं वंशी कौ अमृत-रस हू पान करि लीजौं? तौ अब श्रीचरणनकी शोभा निरखौ?

श्रीजीवनधन राज-सिंहासन पै विराजि रहे हैं। सहस्त्र-सहस्त्र कमल-दलन पै श्रीचरणकमल ऐसे सुशोभित है रहे हैं कि मानौ कमलनके ढ़ेर पै द्वै विशेष कमल अलौकिक शोभा पाय रहे हौयँ। अहा हा। कैसे दिव्य, अप्राकृतिक, चिन्मय हैं ये श्रीचरणकमल। जिनके स्पर्शमात्र सौं अष्ट सात्त्विक सम्पदा **(अश्रु, कम्प, पुलक, स्वेद, स्वरभंग, स्तम्भ, वैवर्ण्य, प्रलय)** स्वयमेव उदय है रही हैं। श्याम रंगके आकाशरूपी श्रीचरणनमें तेजोदीप्त नखमणिरूपी चन्द्रिका छटकि रही है। मानौ दस चन्द्रमा एक ही साथ उदय है रहे हौयँ। नख सौं ऐड़ीतक एकदम सुरख लाल श्रीचरणतल, कैसी अलौकिक शोभा है या लालीकी? प्राकृतिक जीव तौ महावर और महँदी लगाय कैं अपने पावँनके एड़ी तरुआ लाल करै है, बेरि-बेरि रचाबै है, परंतु फिर हू, वो लाली स्थायी नहीं रह पावै है और यह लाली तौ नित्य सहज एकरस, अमिट, अपरिवर्तित, अविचल ही रहबे वारी है।

परम प्रेमका मूर्त रूप—' राधा'

(महर्षि श्रीअरविन्द)

'राधा' व्यक्त और सजीव मूर्ति हैं—भगवान्‌के प्रति परम प्रेमकी ('अनन्य भक्ति' की); उस परम प्रेमकी, जो चरम 'अध्यात्म' से लेकर 'अधिभूत' तक जीव-सत्ताके अंग-अंगमें पूर्ण और अखण्ड हो; उस परम प्रेमकी, जो प्रेम अनन्य 'आत्मसमर्पण' और सत्तामात्रका अर्थात् समस्त जीवनका पूर्ण 'त्याग' कराकर शरीरमें और जड़-से-जड़ प्रकृतिमें परमानन्द उतार लावे।

रासलीला—प्रतिक्षण वर्धमान प्रेम

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भगवान् अनन्त हैं, इसलिये उनका सब कुछ अनन्त है—*'हरि अनंत हरि कथा अनंता'* (रा०च०मा० १।१४०।५)। उनका प्रेम भी अनन्त है। इसलिये प्रेममें अनन्तरस है। अनन्तरसका तात्पर्य है कि प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान है। प्रतिक्षण वर्धमान होनेके लिये प्रेममें विरह और मिलन—दोनोंका ही होना आवश्यक है। कारण कि विरहके बिना रसकी वृद्धि नहीं होती और मिलनके बिना रसकी अनुभूति नहीं होती, उसका आस्वादन नहीं होता। संसारमें तो संयोगका रस भी नहीं रहता और वियोगका रस भी नहीं रहता; क्योंकि संसारका नित्यवियोग है। परंतु मिलन (योग)-का रस भी नित्य रहता है और विरह (वियोग)-का रस भी नित्य रहता है; क्योंकि भगवान्का नित्ययोग है। संसारके नित्यवियोगके अन्तर्गत संयोग-वियोग होते हैं और भगवान्के नित्ययोगके अन्तर्गत मिलन-विरह होते हैं। जैसे, माता कौसल्या सुमित्रासे कहती हैं कि 'हे सुमित्रे! यदि रामजी वनमें चले गये हैं तो फिर मेरेको दीखते क्यों हैं? और यदि वनमें नहीं गये हैं तो सामने दीखनेपर भी हृदयमें जलन क्यों होती है? अत: प्रेममें मिलन और विरह दोनों साथ-साथ रहते हैं—

अरबरात मिलिबे को निसिदिन,
मिलेइ रहत मनु कबहुँ मिलै ना।
'भगवतरसिक' रसिक की बातें,
रसिक बिना कोई समुझि सकै ना॥

'अरबरात मिलिबे को निसिदिन मिलेइ रहत'—यह मिलन है और *'मनु कबहुँ मिलै ना'*—यह विरह है। राधाजी सखीसे कहती हैं कि तुम धन्य हो जो श्रीकृष्णको देखती हो! मैंने तो आजतक श्रीकृष्णको देखा ही नहीं! कारण कि जब श्रीकृष्ण सामने आये तो राधाजीकी दृष्टि उनके कर्णकुण्डलमें ही अटक गयी, स्थिर हो गयी, उससे आगे बढ़ी ही नहीं! फिर वे श्रीकृष्णको कैसे देखें?

भगवान्का मिलन और विरह दोनों ही नित्य हैं, अनिर्वचनीय हैं, दिव्य हैं, जिनसे प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान होता है। मिलनमें प्रेमीको अपनेमें प्रेमकी कमी मालूम देती है कि जैसे भगवान् हैं, वैसा (भगवान्के लायक) मेरेमें प्रेम नहीं है और विरहमें प्रेमीको कभी प्रेमास्पदकी विस्मृति नहीं होती, प्रत्युत निरन्तर स्मृति (तल्लीनता) बनी रहती है। यह मिलन और विरह—दोनों भगवान् देते हैं और दोनों भगवत्स्वरूप ही होते हैं। वे 'विरह' इसलिये देते हैं कि भक्त अपनेमें प्रेमकी कमीका अनुभव करे और कमीका अनुभव होनेसे प्रेम बढ़े। वे 'मिलन' इसलिये देते हैं कि भक्त प्रेमका अनुभव करे, आस्वादन करे।

भक्तका भगवान्में दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य आदि कोई भी भाव हो, भक्तकी अपनी अलग सत्ता नहीं होती; क्योंकि प्रेममें भक्त और भगवान् एक होकर दो होते हैं और दो होकर भी एक ही रहते हैं। इसलिये प्रेमी और प्रेमास्पद—दोनोंमें कभी सेवक स्वामी हो जाता है, कभी स्वामी सेवक हो जाता है। शंकरजीके लिये कहा भी है—*'सेवक स्वामि सखा सिय पी के'* (रा०च०मा० १।१५।४)। दक्षिण भारतमें एक मन्दिर है, जिसमें शंकरजीने नन्दीको उठा रखा है! कभी नन्दीके ऊपर शंकरजी हैं, कभी शंकरजीके ऊपर नन्दी हैं। कभी भगवान् भक्तके इष्ट बन जाते हैं, कभी भक्त भगवान्का इष्ट बन जाता है—**'इष्टोऽसि मे दृढमिति'** (गीता १८।६४)। कभी श्रीकृष्ण राधा बन जाते हैं, कभी राधा श्रीकृष्ण बन जाती हैं।

ज्ञानका अखण्डरस तो शान्त है, पर प्रेमका अनन्तरस प्रतिक्षण वर्धमान है। प्रतिक्षण वर्धमान कहनेका अर्थ यह नहीं है कि प्रेममें कुछ कमी रहती है और उस कमीकी पूर्तिके लिये वह बढ़ता है। वास्तवमें प्रेम कम या अधिक नहीं होता। जैसे, समुद्र भीतरसे शान्त रहता है, पर बाहरसे उसपर लहरें उठती हैं और चन्द्रमाको देखकर उसमें उछाल आता है, परंतु लहरें उठनेपर, उछाल आनेपर भी समुद्रका जल कम-ज्यादा नहीं होता,

उतना-का-उतना ही रहता है। ऐसे ही प्रेमके अनन्तरसमें लहरें उठती हैं, उछाल आता है, पर वह कम-ज्यादा नहीं होता। जब प्रेम शान्त रहता है, तब प्रेमी और प्रेमास्पद एक अर्थात् अभिन्न होते हैं और जब प्रेममें उछाल आता है, तब प्रेमी और प्रेमास्पद दो होते हैं। प्रेमी और प्रेमास्पद एक होते हुए भी दो होते हैं—यह विरह है और दो होकर भी एक ही रहते हैं—यह मिलन है।

इस प्रकार प्रतिक्षण वर्धमान रस (प्रेम)-का ही नाम '**रास**' है। कल्पना करें कि किसीको ऐसी प्यास लगे, जो कभी बुझे नहीं और जल भी घटे नहीं तथा पेट भी भरे नहीं तो ऐसी स्थितिमें जलके प्रत्येक घूँटमें नित्य नया रस मिलेगा। इसी तरह प्रेममें भी श्रीकृष्णको देखकर श्रीजीको और श्रीजीको देखकर श्रीकृष्णको नित्य नया रस मिलता है और उन दोनोंके रसका अनुभव गोपियाँ करती हैं! प्रेमकी इस वृद्धिका नाम ही '**रासलीला**' है।

माधव-विरहिणी राधाके उद्गार

(श्रीजसवंतजी रघुवंशी)

[भगवान् कृष्ण जबसे मथुरा गये, तभीसे सभी गोप-गोपियाँ विरहाग्निसे व्याकुल हो, शोक-सन्तप्त रहकर विलाप करते थे। इसी क्रममें उनके प्रिय सखा मनसुखकी विरह-पीड़ाको कविने 'मनसुख-विरह-शतक' के रूपमें निबद्ध किया है। इसके जिन अंशोंमें राधाजीने मनसुखके सम्मुख अपनी कृष्णविरहजनित पीड़ाको अभिव्यक्त किया है, वे अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं। उनमेंसे दो पद यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—सम्पादक]

(१)

बिछुड़कर माधवसे हो गयी
मनसुखा बीरन! दशा विचित्र।
बदलते रहते पल-छिन हाय!
हृदय-पटपर भावोंके चित्र॥
कभी लगता है—जैसे देख
मुझे हँसती है सारी सृष्टि।
और फिर ऐसा लगता कभी,
कर रही है आँसूकी वृष्टि॥
हँसाते कभी, रुलाते कभी,
विहँसते मुरझाते-से फूल।
विकल करती है जिनकी चुभन,
कभी प्यारे लगते वे शूल॥
कभी लगती है इतनी मधुर
विरहकी दहकी-दहकी आग।
कि जिसमें डूबी-डूबी साँस
बढ़ाया करती है अनुराग॥
और फिर कभी जहर-से लगें
उसीके लाल-लाल अङ्गार।
सजाते जब श्वासोंको पुलक,
मिलनके स्वप्न, बने शृङ्गार॥

(२)

झूमता है मेरा हर रोम,
कभी जब बनता ऐसा चित्र।
कि जैसे घूम रहा है संग,
मनसुखा भैया! तेरा मित्र॥
और फिर हाय! नहीं जब पास
दीखता है वह जीवनमूर।
भटकते रहते व्याकुल नैन
क्षितिज-सीमाओंमें अति दूर॥
कभी काटा करती है कुञ्ज,
कभी मिलता उनमें आवास।
कभी भरती उरमें उन्माद,
कभी तड़पाती है बरसात॥
कभी ये काले-काले मेघ
मिलनके सुखका देते स्वाद।
कभी भरते प्राणोंमें व्यथित
विरहकी पीड़ाका अवसाद॥
हाय! यह आँखमिचौनी नहीं
कभी क्या हो पायेगी बन्द।
सतायेंगे कबतक यों, अरे!
बिछुड़ने-मिलनेके ये छन्द॥

श्रीकृष्ण और श्रीराधा—एक तत्त्व

(सन्त श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)

अक्रूरजी रथको तैयार करके आँगनमें ले आये हैं। गोपियोंने सुना है, गोपियाँ यशोदाजीके आँगनमें आयी हैं। श्रीराधाजी भी आज आयी हैं। श्रीराधाजीने जब सुना है कि श्रीकृष्ण मथुरामें जानेवाले हैं—श्रीराधाजीको मूर्च्छा आयी है। छः-सात वर्षकी अवस्था है, सादा शृंगार है, श्रीराधाजी मूर्च्छामें पड़ी हैं। कितनी ही गोपियाँ श्रीराधाजीकी सेवा करती हैं। कितनी ही गोपियाँ रथको घेर करके खड़ी हैं। कितनी ही गोपियाँ अक्रूरके साथ बातें करती हैं। अक्रूर! तुम क्यों आये? श्रीकृष्ण-वियोगमें तुम मुझे क्यों मारते हो? श्रीकृष्णके वियोगके जैसा कोई दुःख नहीं है। एक क्षण श्रीकृष्णका वियोग मुझे सहन होता नहीं है। अरी सखी! किसने इसका नाम अक्रूर रखा है? इसको जरा भी दया नहीं आती है, कैसा क्रूर लगता है? मुझे तो ऐसा लगता है कि यहाँसे मथुरामें जानेके बाद वे जल्दी नहीं आयेंगे। मथुराकी स्त्रियाँ बहुत पढ़ी-लिखी हैं, अति सुन्दर हैं। श्रीकृष्णकी ऐसी सेवा करेंगी कि वे मुझे भूल जायँगे। मैं तो मूर्ख हूँ, मुझे कुछ ज्ञान नहीं है। सेवा कैसे करनी चाहिये, मैं कुछ समझती नहीं। मैं तो मूर्खके जैसी कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण कीर्तन करती हुई रोती हूँ। मथुराकी स्त्रियाँ अति सुन्दर हैं। ऐसी सेवा करेंगी कि मुझे भूल जायँगे, जल्दी नहीं आयेंगे। आज मेरा भाग्य प्रतिकूल है। विधाताकी करनी ही ऐसी है। दो प्रेमियोंको वियोगमें मारता है और हँसता है। विधाता निष्ठुर है। मैं श्रीकृष्णको नहीं जाने दूँगी।

सखीने कहा—तुम्हारी कौन मानता है! नन्दबाबा जानेवाले हैं, सभी तैयारी है।

यशोदामाताने श्रीकृष्ण-बलरामको भोजन कराया है। श्रीकृष्ण-बलराम बाहर आये हैं। श्रीकृष्णने देखा है—श्रीराधाजी मूर्च्छामें पड़ी हैं। श्रीराधाजीके मस्तकके ऊपर हाथ रखा है, श्रीराधाजीके कानमें कहा है—श्रीराधे! तुम और मैं दोनों एक ही हैं। श्रीराधा ही श्रीकृष्ण हैं, श्रीकृष्ण ही श्रीराधा हैं। दोनों एक हैं। लीला करनेके लिये दो स्वरूप प्रकट किये हैं।

आजतक श्रीराधाजीको प्रसन्न करनेके लिये मैं खेलता था, नाचता था। श्रीराधाजीको प्रसन्न करनेके लिये मैं बाँसुरी बजाता था। आज मेरा देश दुखी है, मुझे मथुरामें जाना पड़ रहा है। श्रीराधे! मेरे प्राण तुम्हारेमें ही हैं, मेरे प्राणोंको सँभालना। मैं तुम्हें क्या दूँ? ये बाँसुरी मुझे प्राणोंसे भी प्यारी लगती है…। श्रीराधाजीके हाथमें बाँसुरी दी है। श्रीकृष्णने श्रीराधाजीके कानमें कहा है—अब मैं बाँसुरी नहीं बजाऊँगा। मेरी प्यारी गोपियों और गायोंको प्रसन्न करनेके लिये मैं बाँसुरी बजाता था। मैं खेलता था, मैं नाचता था, अब जगत्को नचाऊँगा। अब बाँसुरी नहीं बजाऊँगा, अब शंख बजाऊँगा। पृथ्वीपर पाप बढ़ गया है। अनेक दुष्ट राजा प्रजाको त्रास देते हैं। मुझे मथुरामें जाना पड़ता है। श्रीराधे! अब तू बाँसुरी बजा। तू जब बाँसुरी बजायेगी, मैं दौड़ता हुआ तुमसे मिलनेके लिये आऊँगा। श्रीराधाजी एक अक्षर बोल नहीं सकीं।

फिर तो गोपियोंको समझाया है—मैं प्रेमको जानता हूँ, क्यों रोती हो? मैं आनेवाला हूँ, रोना नहीं। आँखसे आँसू निकलें तो मेरे प्रयाणमें अपशकुन होता है। कोई रोये नहीं, प्रभुकी आज्ञा हुई है। गोपियाँ आँखके आँसू रोक करके खड़ी हैं, उनको अपशकुन न हो।

मैं आनेवाला हूँ, गोपियोंको आश्वासन दिया है।

कोई गोपी मनाती है—मेरा नियम है, माखन-मिसरी मैं अर्पण न करूँ, तबतक मैं पानी नहीं पीती। मैंने प्रातःकालमें माखन-मिसरी तैयार रखा है। दो मिनटके लिये मेरे घरमें आओ। मेरे सामने माखन खाना, फिर मथुरामें जाना, मैं आपको ज्यादा नहीं रोकूँगी। दो मिनट मेरे घरमें आओ। कोई गोपी मनाती है, आपका वियोग मुझे सहन नहीं होता है। दिनभर मैं आपको अब याद करके रोऊँगी। सायंकालमें जब आप आते हैं, तब मैं आरती करती हूँ, मेरा नियम है। आरतीके समयमें दो मिनट मुझे दर्शन दो। अपने हाथसे मैं तिलक करूँ, मेरे प्यारेकी मैं आरती उतारूँ। फिर मथुरा चले जाना। मैं आपको ज्यादा नहीं रोकूँगी। आरतीके समयमें दो मिनट मुझे दर्शन दो। मुझे आनन्द होगा।

गोपी-प्रेमका वर्णन कौन कर सकता है! शुकदेवजी महाराज कथा करते नहीं हैं, दर्शन करते हुए बोलते हैं। गोपियोंको आश्वासन दिया है। मैं आनेवाला हूँ।

राधा-माधवकी विलक्षण प्रीति

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

व्रजमें दिन-रात नित-नव-रसकी वर्षा होती रहती है। एक बार मेरे मनमें यह बात आयी कि श्रीकृष्णके प्रेमकी प्राप्तिका उपाय क्या है? तो मुझे एक ऐसा चरित्र सुननेको मिला, बहुत ही ऐसी दशामें कि अकस्मात् एक आदमीने कहा कि तुम अमुक जगह चले जाओ। मैंने सोचा, वहाँका रास्ता जानता नहीं, साथमें भी कोई है नहीं। किंतु दैवयोगसे पहुँच गया। वहाँ एक बड़ा ही सुन्दर श्रीकृष्ण-चरित्र देखा। श्रीकिशोरीजी अपनी सखियोंके साथ और श्यामसुन्दर अपने सखाओंके साथ वन-विहार कर रहे हैं। श्रीकिशोरीजी कहती हैं—हे प्यारे! यह वन कितना सुन्दर है! श्यामसुन्दर कहते हैं—हे श्रीकिशोरीजी! यह आपहीसे सुन्दर है। बोली—'नहीं-नहीं। हे प्यारे! इसमें आपहीका सौन्दर्य है।' अब आप देखिये कि दृष्टिमें प्रभु हैं, दोनों ही ऐसी बातें करते हैं। ऐसा वन-विहार करते-करते किशोरीजीके मनमें एक बात आयी कि हे प्यारे! आओ हम खेल खेलें। क्या खेलोगी? बोलीं, हम छिपेंगे और तुम ढूँढ़ना। किशोरीजी छिप गयीं और श्यामसुन्दर ढूँढ़ने लगे। जब नहीं ढूँढ़ पाये तो अत्यन्त व्याकुल होकर, अधीर होकर बैठ गये। 'हाय ललिते! प्यारी न जाने कहाँ चली गयी। अब मुझको प्यारीके बिना एक पल भी चैन नहीं है।' बड़े व्याकुल! ललिताजीने कहा, 'हे प्यारे! आपकी प्यारीको रास बहुत प्रिय है। आओ हम-तुम मिलकर रास करेंगे। शायद प्यारी आ जाय।' दोनोंने मिलकर रास किया। अब प्रयत्न चल रहा है। फिर भी प्यारीजू नहीं आयीं। अब तो श्यामसुन्दर बहुत व्याकुल हो गये। कहने लगे—'हे ललिते! अब तो मुझसे प्यारीजूका वियोग किसी प्रकार भी सहन नहीं होता।' ललिताजी विवेक-शक्ति हैं। उन्होंने कहा—'हे प्यारे! आप अधीर न हों, मैं अभी आपकी प्यारीजूको लाती हूँ।'

देखिये, इस प्रेमके पथमें बड़ा रहस्य है। प्यारीके पास प्यारेका मन और प्यारेके पास प्यारीका मन! और वह जो सखी है न, उसके पास दोनोंका मन। वह दोनोंका मन लिये रहती है। इसीलिये जो ये प्रेमी होते हैं न! प्रिया-प्रीतम दोनोंको लाड़ लड़ाते हैं। ललिताजीने कहा कि हे प्यारे! आप अधीर न हों, मैं अभी आपकी प्यारीको लाती हूँ और जाकर एक स्थानपर मूक होकर बैठ गयीं। मूक-सत्संग करने लगीं। देखती हैं कि किशोरीजी वहाँ मौजूद हैं। अप्रयत्न हो गयीं, अहंकृति नाश हो गयी, प्रयत्न नाश हो गया। देहाभिमान गल गया; अब दूरी कैसी! अब जब प्यारीजू प्रकट हो गयीं तो ललिताजीने कहा—'हे प्यारीजी! आप शीघ्र ही पधारो।' किशोरीजी बोलीं—'क्या सखी, क्या कहा?' ललिताजीने कहा—'आपके प्यारे आपके वियोगमें बड़े ही अधीर हैं।' बोलीं—'हे ललिते! मेरे प्यारे मेरे वियोगमें अधीर हैं। हाय, हाय ललिते! मैं तो वैसे ही प्यारेके वियोगमें बेचैन थी और तू कहती है कि मेरे प्यारे मेरे वियोगमें अधीर हैं। अब मुझमें तो बिल्कुल सामर्थ्य नहीं है। तू जा और प्यारेसे कह कि वे ही मुझे दर्शन दें।' अब ललिताजी श्यामसुन्दरके पास आयीं, कहने लगीं—'हे प्यारे! मुझे आपकी प्यारी मिल गयी, मैंने कहा आपके प्यारे आपके वियोगमें बड़े दुखी हैं, आप चलो।' तो आपकी प्यारीने कहा कि एक तो मैं वैसे ही प्यारेके वियोगमें दुखी हूँ। हाय! मेरे प्यारे मेरे वियोगमें दुखी हैं। अब मुझमें तो बिल्कुल सामर्थ्य नहीं है। तो हे प्यारे! आप ही चलकर उन्हें दर्शन दें। श्यामसुन्दर कहने लगे—'हे ललिते! तुम तो जानती ही हो कि मैं प्यारीके वियोगमें दुखी हूँ। हाय! मेरी प्यारी और मेरे वियोगमें अधीर हैं। अब मुझमें तो बिल्कुल सामर्थ्य नहीं है। तुम जाकर उनसे कहो कि वे ही दर्शन दें। ललिताजी इधरसे उधर आयीं, वहाँ देखती हैं कि प्यारी वहाँ नहीं हैं। उधर देखती हैं कि प्यारे नहीं हैं। यह देख ललिताजी अप्रयत्न होकर मूर्छित हो गयीं। अब यह कुछ पता नहीं चलता कि प्यारीसे प्यारे मिले कि प्यारेसे प्यारी मिलीं। दोनोंका मिलन हो गया। अब दोनोंने जब ललिताजीको देखा मूर्छित दशामें, तो श्यामसुन्दरने कहा—हे किशोरीजी! ललिताजी कितनी

दुखी हैं। आप शीघ्र ही कृपा करो। उन्होंने कहा—हे प्यारे! आप ही कृपा करो। किंतु ललिताजी प्रकट हो गयीं और कृपा किसने की, वही जानें। खेल समाप्त हो गया। श्यामसुन्दरने कहा—हे प्यारी, आप कहाँ छिप गयी थीं। मैं तो आपको बिलकुल ढूँढ़ नहीं पाया। बोलीं—'हे प्यारे! मैं तो आपमें ही छिपी थी।' प्रीति और प्रीतममें भेद नहीं है, दूरी नहीं है। प्रीतिमें ही प्रीतमका निवास है, प्रियतममें ही प्रीति विद्यमान है। इस प्रकार नित-नव रसकी लीला ब्रजमें होती रहती है।

आप जानते हैं, प्रीतिकी वृद्धि वियोगसे होती है। जब श्यामसुन्दरने देखा कि मिलनमें जो प्रीति है, वह तो है ही, पर उससे और बढ़नी चाहिये; क्योंकि प्रीतिकी कभी—पूर्ति तो होती नहीं।

तो श्यामसुन्दर कहने लगे—'भैया! हम तो मथुरा जायँगे। हमारे काका—अक्रूरजी आये हैं न, हमारे मामाने यज्ञ किया है, हम यज्ञ देखनेके लिये मथुरा जायँगे।' अब मैया यशोदाने जब सुना कि कन्हैया मथुरा जायगा तो अत्यन्त अधीर हो गयीं कि हाय! हाय! क्या ब्रजमें कोई ऐसा नहीं है, जो जाते हुए कन्हैयाको रोक सके। प्रेमियोंको अपने गुणका भास होता ही नहीं। कन्हैया कहने लगा—'अरी मैया! हमने तुम्हारा बहुत दही खाया, दूध खाया, माखन खाया, हम तो अब जायँगे। अब बाबा! अपनी गैयाँ सम्हाल लो। हम तो जायँगे।' नन्दने जब यह सुना तो अधीर होकर कहने लगे—'हाय लाला! तू जायगो। ये सारी गैयाँ तो तेरी हैं। हमारी कहाँ हैं लाला!' यह समाचार जब सखाओंने सुना, एकदम बेचैन, अधीर हो गये। गोपियाँ तो रथके सामने आकर लेट गयीं। पहियोंके साथ लिपट गयीं। श्यामसुन्दरने कहा—अरे सखी! हम आयँगे परसों आयँगे, परसों। इसी नामसे ब्रजमें परसों (पलसों) नामक एक गाँव है! ***'परसोंकी पिया जो आवन कहीं, कब आयेगी बैरिन परसों।'*** यानी ब्रजमें कोई परसों शब्द नहीं कहता पल्ला दिन कहते हैं। उनको परसों शब्द कहनेमें डर लगता है। तो, गोपियाँ जहाँकी तहाँ खड़ी रह गयीं।

वियोगमें मिलन, मिलनमें वियोग, नित्य ही प्रेमियोंके जीवनमें रहता है। आपने सुना ही होगा, परकीयाभाव क्या है? उसका ठीक चित्रण कब होता है? एक बार नारदजीको एक विनोद सूझा और उन्होंने श्रीरुक्मिणीजीसे कहा कि हे रुक्मिणीजी! तुम श्रीश्यामसुन्दरको इतना प्रेम करती हो और वे जब देखो तब राधे-राधे ही रटते रहते हैं। रुक्मिणीजीने कहा—बात तो ठीक है, नारद बाबा! एक बार हम प्राणनाथकी चरणसेवा कर रही थीं। प्राणनाथको दूध दिया पीनेको तो क्या देखती हूँ कि मुखमें छाले पड़ गये हैं। हमने पूछा, क्या बात हुई महाराज! तो प्राणनाथ कहने लगे कि मालूम होता है कि राधाको किसीने गरम दूध दे दिया पीनेको, इसलिये छाले पड़ गये। यह कहावत है ना कि—***'इश्क में तासीर है, पर दर्द कामिल चाहिए।'***

आप यह जानते हैं कि स्त्रीके मनमें अगर बात आ जाय कि मेरे पतिको कोई और प्रेम करता है या मेरे पति किसी औरको प्रेम करते हैं तो यह बात उसे सुहाती नहीं, अच्छी नहीं लगती। रुक्मिणीजीका चित्त उदास हो गया। पर यह है प्रेमका भोग ही। तो जब रुक्मिणीजीका चित्त उदास हो गया तो प्रेममें शिथिलता आ गयी; क्योंकि वहाँ अपना अधिकार आ जाता है। रुक्मिणीजीका चित्त इधर उदास हुआ उधर श्यामसुन्दरके मनमें पीड़ा आरम्भ हुई। अब श्यामसुन्दरके सिरमें पीड़ा होने लगी तो उदास हो गये। रुक्मिणीजीने देखा कि प्राणनाथ आज बड़े उदास हैं तो बोलीं कि हे प्राणनाथ! आज क्या बात है, आज आप कैसे उदास हो गये? जब पूछती हैं तो और अधीर होते हैं—'कुछ बात नहीं है रुक्मिणीजी।' कुछ तो है महाराज? आज आपका चित्त प्रसन्न नहीं है। 'कुछ बात नहीं है रुक्मिणीजी, सिरमें पीड़ा हो रही है!' अब प्राणनाथकी सिरकी पीड़ा सुनकर रुक्मिणीजी बड़ी आकुल हो गयीं, व्याकुल हो गयीं। है तो प्रेम ही न! कहिये महाराज, कोई उपचार! जो उपचारकी बात सुनी तो श्यामसुन्दर और अधीर हो गये। और कहने लगे—अरे रुक्मिणीजी! इस द्वारिकापुरीमें उपचार कहाँ? रुक्मिणीजी कहने लगीं—महाराज! जिस द्वारकापुरीमें

अष्टसिद्धि, नव-निधि वास करती हैं, वहाँ उपचार नहीं हो सकता? बोले 'रुक्मिणीजी! यहाँ वह औषधि ही नहीं मिलेगी।' बोलीं—आप बताओ तो सही, कौन-सी ऐसी औषधि है? बोले—औषधि तो कुछ नहीं। यदि हमारा कोई प्रेमी होता और अपने चरणकी रज लगा देता तो पीड़ा दूर हो जाती। रुक्मिणीजी सोचने लगीं—प्रेमी तो हम भी हैं, चरण भी हैं और रज भी है। पर ये हमारे पति हैं, हम इनकी पत्नी हैं, भला पत्नी पतिके सिरपर अपनी चरणरज लगाये तो नरक भोगना पड़ेगा। तो महाराज रुक्मिणीजीका साहस नहीं हुआ। अब पीड़ा तो हो ही रही है। इतनेमें नारद बाबा आये। नारद बाबाने पूछा—रुक्मिणीजी! आप उदास कैसी हैं? रुक्मिणीजी बोलीं कि 'दण्डवत् महाराज, उदास क्या हैं, प्राणनाथके सिरमें बड़ी पीड़ा हो रही है।' ये भी तो भक्त हैं। वे गये श्यामसुन्दरके पास। कहा—महाराज! आज कैसी उदासी छायी है? बोले—'कुछ नहीं—बाबा, दण्डवत्, आओ विराजो। उदासी क्या छायी है बाबा, आज सिरमें बड़ी पीड़ा हो रही है।' ब्रह्मर्षिजी बोले कोई उपचार नहीं है? बोले—'उपचार तो है बाबा, पर दवाई नहीं मिलती।' तो बोले, कौन-सी ऐसी दवाई है? श्यामसुन्दर बोले कि दवाई तो और कुछ नहीं, कोई हमारा प्रेमी होता और अपने चरणोंकी रज लगा देता तो सिरकी पीड़ा दूर हो जाती। नारद बाबा सोचने लगे—प्रेमी तो हम भी हैं, चरणकी रज भी है, पर हमारा दास्य-भाव है। ये स्वामी हैं, हम दास हैं। भला दास स्वामीके मस्तकपर चरणरज लगाये तो नरक भोगना पड़ेगा। नारद बाबाका भी साहस नहीं हुआ।

और आप जानते हैं जब प्रेमीपर आपत्ति आती है तो प्रेमियोंकी ओर दौड़ते हैं। नारद बाबा दौड़े-दौड़े ब्रजमें आये। अब यहाँ देखते हैं कि सब प्रेम-समाधिमें डूबे हुए हैं। किसीको तन-मनकी सुध तो है नहीं। तो वहाँ कोई दण्डवत् ही न करे। कोई पूछे ही नहीं—कहाँ ते आयो, कौन बाबा है। क्योंकि बेमनके लोग कैसे सोचें? नारद बाबा सोचने लगे, क्या उपाय करें? यह नियम है न कि जो जैसा है, उसको उसकी रुचिकी बात कहो तो उसमें चेत आता है। तो नारद बाबा बड़े जोर-जोरसे 'श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण' कहने लगे। तो अपने प्यारेके नामकी भनक जब ब्रज-गोपियोंके कानमें पड़ी तो प्यारेकी हर चीज अपनेको प्यारी होती है। प्यारेका नाम भी तो उनको अत्यन्त प्रिय है। तो प्रियके नामकी भनक जब ब्रज-गोपियोंके कानमें पड़ी तो पलकें ऊपरको उठ गयीं। देखती हैं कि ब्रह्मर्षि श्रीनारद बाबा खड़े हैं। तो आप जानते हैं प्रेमियोंको प्रेमियोंके मिलनके समान तो और कोई सुख नहीं है। तो नारद बाबाको खड़ा हुआ देख—दण्डवत् बाबा, दण्डवत् बाबा। अरे बाबा! कहाँसे आये हौ? बाबा दण्डवत्। क्योंकि सब जानती हैं कि ये विचरते रहते हैं। अब बाबा बोले ही नाय। अरे बाबा! तू सुने नायँ! बताये नायँ! तेरे कान नायँ बाबा! जब संकल्प पूरा नहीं होता तो और चेतना आती है। पूछने लगीं—कहाँ ते आयो है बाबा? बता बाबा! तो बोले—आवत तो मैं द्वारिकापुरी ते हूँ। तो जो प्यारेके धामकी बात सुनी तो और चेत हो गया और चारों ओरसे यही आवाज आने लगी—हमारे प्यारे अच्छे तो हैं? हमारे प्यारे अच्छे तो हैं? अब बाबा—बोले ही नायँ। प्रेममें बड़ा अनन्य चिन्तन बना रहता है। अरे बाबा! तू सुने नायँ, बोले नायँ। बता! हमारे प्यारे अच्छे तो हैं। नारदजी बोले—अच्छे तो हैं, पर उनके सिरमें पीड़ा हो रही है। अब जो गोपियोंने सुना कि श्यामसुन्दरके सिरमें पीड़ा हो रही है तो एकदम व्याकुल होकर कहने लगीं—'हाय! हाय! उस द्वारिकापुरीमें कोई उपचार करनेवाला नहीं है। यदि वे ब्रजमें होते तो उनकी मैया उपचार करती।' अपने प्रेमपर भरोसा नहीं है। अपनी योग्यतापर भरोसा नहीं है। अरी गोपियो! उपचार करनेवाले तो वे ही बड़े चतुर वैद्य हैं, पर औषधि ही नहीं मिलती। अरे बाबा! कौन-सी ऐसी औषधि है जो नहीं मिल रही? जल्दी बता बाबा। औषधि तो यह है गोपियो! यदि कोई उनका प्रेमी होता और अपने चरणकी रज दे देता तो उनके सिरकी पीड़ा दूर हो जाती। अरे बाबा, जा जल्दी जा, जितनी चाहे उतनी ले जा। 'अरे गोपियो! तुम बावरी हुई हो। तुम नहीं जानती

हो कि श्यामसुन्दर ब्रह्म, सच्चिदानन्दघन हैं। भला तुम उनके मस्तकपर अपनी चरणरज लगा करके नरकको भोगोगी।' बोलीं—बाबा, तुम नायँ जानो, हम तो भलीभाँति जानती हैं। हम भलीभाँति जानती हैं कि वे पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्दघन हैं। पर बाबा तू नायँ जानें। तो बोले—क्या बात हम नायँ जानें? तुम ये नायँ जानो कि हम एक जन्म नहीं, अनेक जन्मोंतक नरककी यातना सह सकती हैं, पर प्यारेकी पीड़ा नहीं सह सकतीं। यह है गोपीप्रेम! गोपीप्रेम!

तात्पर्य कहनेका यह था कि यह गोपी-प्रेम हम सबका अपना प्रेम है, यह मनुष्यमात्रको प्राप्त हो सकता है। जैसा कि आरम्भमें निवेदन किया था कि इस प्रेममें तीन बातें हैं—वे अपने हैं, मुझे उनसे कुछ चाहिये नहीं, अपने पास अपना कुछ नहीं है, उनकी आत्मीयतामें ही अगाधप्रियता है। यह प्रेम मनुष्यमात्रको प्राप्त हो सकता है। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है।

श्रीराधाके अप्रतिम माधुर्यका एक विलक्षण प्रभाव

एक बार वसन्तकालमें श्रीकृष्ण गोवर्धनपर समस्त श्रीगोपसुन्दरियोंके साथ रास-विहार कर रहे थे। इसी समय श्रीकृष्णके दिव्य मनमें गोपीसमूहकी मूलस्वरूपा श्रीराधाजीके साथ एकान्त विहार करनेकी स्वरूपमयी स्फुरणा हुई। वे श्रीराधाको अपना अभिप्राय बताकर रासस्थलीसे सहसा अन्तर्धान हो गये और एक निभृत निकुंजमें जाकर राधाकी प्रतीक्षा करने लगे। इधर गोपांगनाओंने जब श्रीकृष्णको वहाँ नहीं देखा, तब वे आकुल होकर उन्हें ढूँढ़ने चलीं। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसी निकुंजके अंदर जाकर दूरसे देखा तो एक कुंजमें उन्हें श्रीकृष्ण बैठे दिखायी दिये। इधर श्रीकृष्णने गोपियोंको देखा, तब वे सोचने लगे कि 'मैं सबको छोड़कर रासस्थलीका परित्याग करके इस निभृत निकुंजमें अकेला क्यों बैठा हूँ—गोपियोंके इस प्रकार पूछनेपर मैं क्या उत्तर दूँगा?' और गोपांगनाएँ इतनी निकट आ गयी थीं कि दूसरे कुंजमें जाकर छिपनेका भी उनके लिये अब अवकाश नहीं रह गया था। तब वे सोचने लगे कि 'यदि मेरे दो हाथ और होते तो मैं चतुर्भुज होकर अपनेको छिपा सकता; पर दो हाथ कहाँसे आयें?'

इस प्रकार सोचनेका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि भगवान्‌में वहाँ स्वरूपभूत ऐश्वर्यका अभाव हो गया था। वहाँ भी पूर्ण ऐश्वर्य है और उसकी वहाँ अनुभूति भी है; किंतु विशेषता यही है कि वहाँ वह ऐश्वर्य माधुर्यकी आड़में छिपा है। प्रियतम श्रीश्यामसुन्दर व्रजेन्द्रनन्दन व्रजमें स्वयं तो प्रायः प्रत्यक्षरूपमें ऐश्वर्यको अंगीकार नहीं करते, पर उनकी ऐश्वर्यशक्ति ऐसे अवसरपर सेवाका लाभ उठानेसे नहीं चूकती। यहाँ भी वह भगवान्‌के संकल्पाभासका ही सुयोग पाकर क्रियाशील हो गयी और उसने उसी क्षण भगवान् श्रीकृष्णको शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज बना दिया।

इसी समय गोपांगनाएँ वहाँ आ पहुँचीं और आते ही वे कुंजमें अपने प्राणवल्लभ नवीन-नीरद-कान्ति द्विभुज मुरलीमनोहरको न देखकर हताश-उदास हो गयीं। उन्होंने चतुर्भुज नारायणको देखा, इससे तुरंत ही उनका उछलता हुआ कान्ताभाव संकुचित हो गया एवं वे हाथ जोड़कर श्रीनारायणकी स्तुति-विनती करके श्रीकृष्णको खोजनेके लिये दूसरे निकुंजकी ओर चली गयीं। इसके पश्चात् पूर्वसंकेतानुसार श्रीराधाजी वहाँ पहुँचीं। श्रीकृष्ण निर्विघ्न-निर्बाध एकान्तमें राधाको देखकर प्रफुल्लित हो गये और 'मैं आज चार हाथोंसे श्रीराधाके साथ विनोद करूँगा'—यह विचार आनेपर उन्हें और भी आनन्द आया। परंतु वे यह देखकर आश्चर्य करने लगे कि श्रीराधा जितना ही समीप आ रही हैं, उतनी ही शीघ्रतासे उनके दोनों हाथ विलुप्त हुए जा रहे हैं। उन्होंने चतुर्भुज बने रहनेका प्रचुर प्रयास भी किया, पर स्पष्टरूपसे श्रीराधाकी दृष्टि पड़नेसे पूर्व ही उनके दोनों हाथ अन्तर्धान हो गये और वे पूर्ववत् द्विभुज ही रह गये।

यह महाभावस्वरूपा श्रीराधाके अप्रतिम माधुर्यका ही एक विलक्षण प्रभाव है कि उसके सामने भगवान्‌की ऐश्वर्य-शक्ति किसी प्रकार भी अपनेको प्रकटरूपमें नहीं रख सकती।

राधा-माधवकी नौका-विहार-लीला

(गोलोकवासी श्रद्धेय श्रीराधाबाबाजी)

हंसके आकारकी उजली छः नावें श्रीराधाकुण्डके चमकते हुए जलपर तैर रही हैं। नावके बीचमें पीले रंगकी रेशमी गद्दीसे जड़ा हुआ एक सिंहासन है। वह सिंहासन ऐसा है कि बैठे-ही-बैठे इच्छानुसार पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण किसी भी दिशाकी ओर उसका मुँह किया जा सकता है। छः नावोंपर सखियाँ चढ़ी हुई हैं। श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण भी चढ़े हुए हैं; पर प्रत्येक नावकी सखियोंको यही अनुभव हो रहा है कि मैं तो श्रीराधा एवं श्रीकृष्णकी नावपर ही चढ़ी हुई हूँ। नाव टेढ़ी-मेढ़ी घूमती हुई पूर्वकी ओर बह रही है। दो सखियाँ नावकी डाँड़ खे रही हैं।

नावके मुँहवाले सिरेके पास श्रीकृष्ण दक्षिणकी ओर मुँह किये हुए खड़े हैं। उनके पास ही श्रीप्रिया हाथमें सोनेका कटोरा लेकर दक्षिणकी ओर मुँह किये खड़ी हैं। राधाकुण्डके पूर्व एवं दक्षिणके कोनेसे कुछ हंस बड़े सुन्दर ढंगसे कलरव करते हुए जलमें तैरते हुए नावोंकी ओर बढ़ रहे हैं। आकाशमें मेघ छाये हुए हैं। रिमझिम-रिमझिम शब्द करती हुई कुछ वर्षा हो रही है। राधाकुण्डके जलपर पानीकी बूँदोंके गिरनेसे बुलबुले उठ रहे हैं। राधारानीके निकट रूपमंजरी हाथमें सोनेकी बड़ी झारी लटकाये खड़ी हैं। झारीमें दूध भरा हुआ है।

अब नावके पास हंस पहुँच जाते हैं। हंसोंके पास पहुँचते ही श्रीकृष्ण बैठ जाते हैं। उनके बैठते ही राधारानी भी बैठ जाती हैं। राधारानीके हाथमें जो कटोरा है, उसमें रूपमंजरी दूध भर देती हैं। राधारानी उसे श्रीकृष्णके हाथमें देकर बायें हाथसे श्रीकृष्णका कन्धा पकड़ लेती हैं एवं दाहिने हाथको नीचे टेककर हंसोंकी ओर देखने लगती हैं। हंस आनन्दमें मग्न हुआ अपनी चोंचको श्रीकृष्णके कटोरेमें डालकर दूध पीता है। एक बार थोड़ा पीकर फिर उठाता है तथा मधुर कलरव करके फिर पीने लगता है। इस प्रकार बार-बार थोड़ा-थोड़ा पीकर सिर उठाता है। राधारानी छोटी सरला बालिकाके समान हंसका दूध पीना देखकर बीच-बीचमें खिलखिलाकर हँस पड़ती हैं। हंसोंके बारी-बारीसे दूध पीनेके बाद जब हंसिनी पीनेके लिये आती है तो श्रीकृष्ण बायें हाथसे राधारानीके दाहिने कपोलको धीरेसे स्पर्श करके कहते हैं—अब तू पिला।

राधारानी कटोरेको हाथमें ले लेती हैं तथा हंसिनीको संकेत करके कहती हैं—हंसिनी! इधर आ। मैं तुम्हें प्यारे श्यामसुन्दरके अधरामृतका पान कराती हूँ।

हंसिनीको ऐसा कहनेके बाद राधारानी पीछे मुड़कर विशाखाको कुछ संकेत करती हैं। विशाखा एक दूसरे कटोरेमें दूध भरकर राधारानीके हाथोंमें पकड़ा देती हैं। राधारानी पहलेवाला कटोरा नावपर रख देती हैं तथा दूसरे कटोरेको श्रीकृष्णके होठोंकी ओर बढ़ाती हुई कहती हैं—अब थोड़ा तुम्हें पीना पड़ेगा, नहीं तो मैं झूठी हो जाऊँगी। मैंने हंसिनीको तुम्हारे अधरामृत-पानका निमन्त्रण दिया है।

श्रीकृष्ण कटोरेको पकड़कर थोड़ा पीनेके लिये जैसे ही मुँह बढ़ाते हैं कि वैसे ही मधुमंगल घाटपर आ पहुँचता है तथा पुकार करके कहता है—अरे कान्हूँ! ठहरना, ठहरना।

ठहरनेके लिये कहकर मधुमंगल पानीमें छपाकसे कूद पड़ता है। श्रीकृष्ण उसे लानेके लिये एक नावपरकी सखियोंको संकेत करते हैं, पर मधुमंगल तीव्र गतिसे तैरता हुआ चला आता है तथा श्रीकृष्णकी नावपर तुरन्त चढ़कर हँसता हुआ कहता है—अरे, तुमने मुझे अच्छा ठगा था, पर मैं ठीक समयपर आ गया। दूधका कटोरा चल रहा है; पर सुन लो मेरी बात, दूध पीना मत। आज षष्ठी है। षष्ठी देवीकी पूजा माँ यशोदा करेंगी। उन्होंने कहा है कि श्रीकृष्णको आज पूजा होनेके पहले दूध नहीं पीना चाहिये।

श्रीकृष्ण कटोरा रखकर मन्द-मन्द मुसकराते हुए कहते हैं—राधे! अब तो कैसे पीऊँ?

विशाखा हाथमें एक रूमाल उठा लेती हैं। एक बड़ी परातमें बूँदिया-मिठाई भरकर नावमें ही रखी थी। विशाखा उस मिठाईमें-से थोड़ा-सा रूमालमें बाँधकर मधुमंगलके हाथमें पकड़ा देती हैं तथा कहती हैं—

मधुमंगल! तू तो ब्राह्मणका लड़का है। शास्त्र तुमने पढ़े ही हैं। तू ही कोई उपाय बता कि जिससे श्रीकृष्ण दूध पी सकें; क्योंकि वे नहीं पीयेंगे तो हमारी सखी राधारानीकी बात झूठी हो जायगी। राधाने हंसिनीको श्रीकृष्णके अधरामृतपानके लिये निमन्त्रित किया है।

मधुमंगल आँखें बन्द करके कुछ क्षण सोचता है तथा फिर कहता है—एक उपाय तो है। स्त्रीके शरीरमें षष्ठी देवीका निवास है। इसलिये यदि राधा पहले पी लें तथा उसमेंसे फिर श्रीकृष्ण पीयें तो व्रतका नियम नहीं टूटेगा; क्योंकि वह दूध प्रसाद हो जायगा।

मधुमंगलकी बात सुनकर श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! अब लो, यदि तुम्हें हंसिनीको दूध पिलानेकी इच्छा हो तो पहले तुम्हें पीना पड़ेगा। नहीं तो, मैं यदि पहले पीऊँगा तो यह मधुमंगल बड़ा पाजी है, मैयासे जाकर कह देगा और मैया अप्रसन्न होंगी।

राधारानी मुसकराती हुई विचारने लगती हैं कि मैं तो अच्छी फँस गयी। राधारानी सोच ही रही थीं कि वर्षा होने लग जाती है और वर्षाका जल दूधके कटोरेमें भी आकर गिरने लगता है। श्रीकृष्ण मुसकराते हुए कहते हैं—देखो, अब देरी मत करो! यदि तुम्हें हंसिनीको दूध पिलाना हो तो स्वयं पी लो, फिर मैं भी पी लूँ। नहीं पिलाना हो तो नाव आगे बढ़ाऊँ।

हंसिनियोंकी मण्डली उसी समय सिर उठा-उठाकर बड़े सुन्दर ढंगसे इस प्रकारकी मुद्रा बनाती है मानो राधारानीसे प्रार्थना कर रही है—श्रीकृष्णप्रियतमे! हमें अपने दोनोंका अधरामृत पिलाकर ही नाव आगे बढ़ाना।

श्रीराधा कुछ सकुचायी-सी होकर अपना मुँह पश्चिमकी ओर करके कटोरेके दूधको अपने होठोंसे किंचित् छू देती हैं। छूते ही श्रीकृष्ण कटोरेको ले लेते हैं। वे दो-तीन घूँट पी जाते हैं तथा कहते हैं—बेचारे हंस तो यों ही रह गये। उन्हें तो तुम्हारा प्रसाद मिला ही नहीं। एक कटोरा और प्रसाद बना दो तो फिर हंस भी पी लें।

केवल संकेतकी देर थी कि विमलामंजरीने एक और कटोरा भरकर राधाके होठोंसे लगा दिया। इस कटोरेसे भी श्रीकृष्ण एक-दो घूँट पी लेते हैं। अब एक कटोरेमें श्रीराधा हंसिनीको एवं दूसरे कटोरेमें श्रीकृष्ण हंसको दूध पिलाते हैं। हंस-हंसिनी आनन्दमें डूबकर पंख फुला-फुलाकर दूध पीते हैं।

इधर मधुमंगल विशाखाकी दी हुई बूँदियोंको थोड़ा चखता है तथा श्रीकृष्णसे कहता है—अरे कान्हूँ भइया! ऐसी बढ़िया बूँदियाँ हैं कि क्या बताऊँ? थोड़ा तुम भी खाओ।

बूँदियाँ खिलानेके लिये मधुमंगल श्रीकृष्णके मुँहके सामने रूमालको अपनी अंजलिमें भरकर रख देता है। श्रीकृष्ण दाहिने हाथमें कटोरा पकड़े हुए थे और बायें हाथसे हंसीके सिरपर हाथ फेरते जा रहे थे। अत: उन्होंने कहा—तुम्हीं थोड़ा खिला दो।

मधुमंगल बायें हाथमें रूमालको झोलीके रूपमें बनाकर टाँग लेता है तथा दाहिने हाथसे बूँदियाँ निकालकर श्रीकृष्णके मुँहमें देता है। श्रीकृष्ण धीरे-धीरे पाँच-सात दाने खाते हैं। इधर वर्षा कभी अधिक और कभी धीमी होती जा रही है, जिससे श्रीकृष्णका पीताम्बर एवं श्रीराधारानी तथा सखियोंकी नीली साड़ी सर्वथा भीग गयी है। वर्षाके जलकी धारा लिलारपरसे बह-बहकर श्रीकृष्ण, श्रीराधा एवं सखियोंके कपोलोंपर आ रही है।

हंस जब दूध पी चुकते हैं, तब मधुमंगल रूमालवाली बूँदियोंको परातमें डाल देता है तथा विशाखासे कहता है—तू बड़ी धूर्त है। मुझे थोड़ी-सी बूँदियाँ देकर ठगने आयी है। मैं ठगानेका नहीं। अभी-अभी तेरे कुंजमें जाकर देखता हूँ कि आज कौन-कौनसे नये फल लगे हैं। तू चाहती है कि मैं इन बूँदियोंमें भूलकर तुम्हारे कुंजमें जाना भूल जाऊँ। क्यों यही बात है न?

सखियाँ हँसती हैं। मधुमंगल धड़ामसे पानीमें कूदकर तैरने लगता है। तैरते हुए उत्तर-पूर्व दिशामें विशाखाके कुंजकी ओर बढ़ने लगता है तथा श्रीकृष्णकी नाव पूर्वकी ओर चलने लगती है। नावका मुँह पूर्वकी ओर होते ही बत्तक-पक्षियोंका एक झुण्ड 'कों-कों' करता हुआ बहुत शीघ्रतासे नावकी ओर बढ़ता है। श्रीकृष्ण खड़े होकर पूर्वकी ओर मुख करके उन्हीं

पक्षियोंको देखने लग जाते हैं। श्रीराधा भी उनके दाहिनी ओर खड़ी होकर पक्षियोंको देखती हैं। नाव कुछ ही आगे बढ़ी थी कि बत्तक-पक्षियोंका झुण्ड वहाँ आ जाता है। श्रीकृष्ण नावके मुखको उत्तरकी ओर करनेका संकेत करते हैं। दाहिनी ओरवाली सखी डाँड़को दबाकर नावको उधर घुमा देती है। श्रीकृष्ण एवं श्रीराधा बड़े प्यारसे बत्तक-पक्षियोंको छू-छूकर उनका स्वागत करते हैं। लवंगमंजरी बूँदियोंवाली परातको पीछेसे लाकर राधा एवं श्रीकृष्णके बीचमें रख देती हैं। श्रीराधा श्रीकृष्णके हाथमें अपनी अंजलियोंसे भर-भरकर बूँदियाँ देती हैं। श्रीकृष्ण अपनी अंजलिको आगे बढ़ाते हैं तथा बत्तक उनकी अंजलिमें चोंच डालकर बूँदियाँ खाते हैं। एक बत्तक उछलकर नावपर चढ़ जाता है। राधारानी हँसती हुई, पर कुछ डरी-सी होकर श्रीकृष्णके पीछे जाकर उनका कन्धा पकड़ लेती है। बत्तक बड़े प्यारकी मुद्रा बनाकर अपना सिर कभी नीचे करता है, कभी ऊपर उठाता है तथा बीच-बीचमें बोलता जाता है। श्रीकृष्ण हँसते हुए अपना सिर दाहिनी ओर घुमाते हैं। फिर ऊपर उठाकर राधासे मुसकराते हुए कहते हैं—मैं समझ रहा हूँ कि तू बत्तकसे डर गयी है। क्यों, मैं ठीक कह रहा हूँ न?

राधारानी लजायी-सी होकर कहती हैं—नहीं, डरूँगी क्यों? देखो, मैं अभी इस बत्तकको खिलाती हूँ।

राधारानी अपने दाहिने हाथकी अंजलिमें बूँदियाँ भरकर बत्तकको खिलाने लगती हैं। नावपर जो बत्तक था, वह खाने लगता है। उसे खाते देखकर पाँच-सात बत्तक एक साथ ही नावपर चढ़ जाते हैं तथा राधारानीके हाथोंमें चोंच डालकर बूँदियाँ खाना चाहते हैं। राधारानी बूँदियोंको नावपर गिरा देती हैं तथा तुरन्त उठकर श्रीकृष्णका कन्धा पकड़कर हँसने लगती हैं।

श्रीकृष्ण खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं तथा कहते हैं—मैंने कहा था न कि तुझे डर लगता है, पर तू अपना डर छिपानेके लिये साहस करके गयी थी। कहो, भाग क्यों आयी?

राधारानी मुसकराती हुई खड़ी हो जाती हैं। फिर बैठकर श्रीकृष्णके कानोंमें कुछ कहती हैं; श्रीकृष्ण 'ठीक है' कहकर बत्तकको खिलाने लग जाते हैं।

ललिता उसी समय पीछेसे आकर श्रीकृष्णके पीताम्बरके एक छोरको खींचकर उसे पहले निचोड़ती हैं; क्योंकि वह वर्षाके कारण पूर्णत: भीग गया था। उसे निचोड़कर उसमें थोड़ी बूँदियाँ बाँध देती हैं। शेष बूँदियोंको कमलके पत्तोंके दोनोंमें भर-भरकर श्रीकृष्णके हाथमें देती जाती हैं। वहीं चार-पाँच सखियाँ नीचेसे कमलके पत्तोंको तोड़-तोड़कर और दोने बना-बनाकर ललिताको देती जा रही हैं। श्रीकृष्ण बूँदियोंसे भरे दोनोंको पानीमें छोड़ते जाते हैं। वे दोनोंको जैसे ही पानीपर छोड़ते हैं कि बड़ी-बड़ी मछलियाँ उन्हें उलट देती हैं तथा बूँदियाँ बिखरकर पानीमें गिर पड़ती हैं और मछलियाँ इन्हें खाती हैं। इस प्रकार हंस, बत्तक एवं मछलियोंको खिलानेके बाद श्रीकृष्ण उठकर खड़े हो जाते हैं तथा नावको फिर पूर्वकी ओर घुमानेका संकेत करते हैं।

अब अत्यधिक वर्षा होने लगती है। पानीकी बड़ी-बड़ी बूँदें नावपर एवं राधाकुण्डके जलपर गिरने लगती हैं। आकाशमें और भी घने मेघ छा जाते हैं तथा ऐसा ढंग हो जाता है कि लगातार अब कुछ देरतक वर्षा होगी। अत: श्रीकृष्ण, श्रीराधा एवं सखियोंमें इस बातका विचार होने लगता है कि नावसे उतरकर कुंजमें चलें या इसी वर्षामें नाव चलानेकी होड़ लगाकर खेलें। श्रीराधा श्यामसुन्दरसे कहती हैं—लक्षण ऐसे हैं कि वर्षा तो बहुत अधिक होगी और देरतक होगी, इसलिये कुंजमें चले चलें।

तभी ललिता कहती हैं—श्यामसुन्दर! आज खेलते तो मैं देखती कि तुम हारते हो या मैं हारती हूँ।

श्यामसुन्दर खुलकर हँसते हुए कहते हैं—ठीक। चल, चल। आज मैं तेरे फन्देमें आनेका नहीं। तू चाहती है कि कलवाले दाँवको सस्ते-सस्ते चुका दूँ, पर यह होनेका नहीं।

ललिता मुसकराती हैं, नावकी डाँड़पर स्वयं बैठकर खेने लग जाती हैं तथा कहती हैं—नहीं जी, मैं ऐसी-वैसी नहीं हूँ कि तुम्हें धोखा देकर दाँव चुका दूँ। मैं तो चाहती हूँ कुछ देर नाव चलाकर देख लो। आज पानीमें मैं तुम्हें हराकर दिखाऊँ।

श्रीकृष्ण—तो कलका दाँव इसमें नहीं गिना जायगा।

ललिता—नहीं, सर्वथा नहीं।

श्रीकृष्ण—तब क्या हानि है? चल देख।

फिर श्रीकृष्ण बायीं डाँड़को पकड़ लेते हैं। ललिता डाँड़ चलाना छोड़कर दूसरी-दूसरी नावोंपर जो सखियाँ हैं, उन्हें कुछ संकेत करती हैं। संकेत पाते ही सब नावें घूमकर पूर्वकी ओर मुँह करके एक पंक्तिमें खड़ी हो जाती हैं। खेल आरम्भ होनेका संकेत देनेके लिये तथा खेलमें हार-जीतका निर्णय करनेके लिये श्रीकृष्णके द्वारा रूपमंजरी चुनी जाती हैं और खेल प्रारम्भ हो जाता है।

श्रीराधामाधवकी मधुर झाँकी

(गोलोकवासी श्रद्धेय श्रीराधाबाबाजी)

(१)

राजत लाड़िलि गृह-फुलवारी।
संग साँवरी भगिनि, परसपर रूप लखत निज सरबस वारी॥
साँझ समय सुरझावत भीजी अलकन लामी कुंचित कारी।
नीलम हेम जंबु सरि बिरचित चित्र हिलत जनु परसि बयारी॥
उछलित उर अनुरागु-उदधि जब बूड़न लगीं दोउ धृति हारी।
ढूँढ़हिं कोउ बचावनहारौ नैन पुतरियन बिकल बिचारी॥
ततछिन आइ निहारहिं छबि दुरि नंद सदन बन कुंजबिहारी।
प्रीतम थिर ह्वै रहियो चहहु जु मरम सुनन पिरीति गति सारी॥

श्रीराधाकिशोरी अपनी गृहवाटिकाकी फुलवारीमें विराजित हैं। उनके संग उनकी कनिष्ठा बहन मंजुश्यामा हैं। वे दोनों ही परस्पर सौन्दर्य अवलोकन करके अपना सर्वस्व न्यौछावर कर रही हैं। सन्ध्याकाल है तथा वे स्नानोपरान्त अपनी लम्बी, घुँघराली भीगी कृष्ण केशराशिको सुलझा रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मंजुश्यामा तो नीलमणि-निर्मित तथा श्रीराधा जाम्बूनद स्वर्णद्वारा विरचित दो चित्र हैं, जो समीरके स्पर्शसे हिल रहे हैं। उन दोनोंके हृदयोंमें प्रेम-समुद्र उमगने लगा और वे धैर्य त्यागकर उसी भावोदधिमें निमग्न होने लगीं। उनकी व्याकुल निरुपाय नेत्र-पुतलियाँ किसी बचानेवालेको ढूँढ़ रही हैं। तत्क्षण ही नन्दसदन एवं वनकुंजोंमें विहार करनेवाले श्रीकृष्ण वहाँ आ पहुँचते हैं तथा छिपे-छिपे उनकी शोभा निहारने लगते हैं। इस दिव्य लीलाको निहारनेवाली बड़भागिनी सारिका कह उठती है—'हे प्रियतम! यदि आप इनके मर्मवचनोंके श्रवणोत्सुक हैं तथा निष्कलुष प्रीति-रीतिका अवलोकन चाहते हैं तो अचंचल भावसे ही स्थित रहिये।'

(२)

बूझत साँवरि बहिन! बता री।
हेरि-हेरि अचरज निसिदिन अति होउँ अधीर न समुझि गँवारी॥
हौं रचि-रचि कच तोर सँवारत, बेनि निहारि जाउँ बलिहारी।
पलक परत नहिं परत देत तुम जानि-अजानि कँपाइ बिथारी॥
सुनत लाड़िली लोचन छल-छल बिहबल गदगद गिरा उचारी।
मोर कीर जनि कहिय सबहिं तन कन-कन पूरि रहहिं गिरिधारी॥
अलक न यह पिय कौ बंधन लखि सपन हुँ सूल परत उर भारी।
तुम उन मुकुत सुखी नित निरखउँ, चाह परान पिरोवत सारी॥

श्यामवर्णी मंजुश्यामा श्रीराधाकिशोरीसे पूछ रही हैं—अरी बहिन! यह तो मुझे बता। मैं रात्रि-दिन देख-देखकर अति आश्चर्यमें भरकर व्याकुल हो जाती हूँ। मुझ गँवारीको समझमें ही नहीं आता। मैं बड़े परिश्रमसे तेरे केशोंको सँवारती हूँ तथा सुरचित वेणीका अवलोकन कर-करके न्यौछावर होती हूँ। तुम पलक पड़ते-न-पड़ते जाने-अनजाने हिल-डुलकर सुरचित वेणीको बिखरा देती हो। यह सुनकर लाडिली श्रीराधाकिशोरीके नेत्रोंमें अश्रु भर आते हैं तथा वे आतुर होकर गद्‌गद वाणीसे कहने लगती हैं—'मेरा शुक समझ-बूझकर ही यह कहता है कि मेरी सम्पूर्ण देहके कण-कणमें गोवर्धनधारी श्रीकृष्ण ही परिपूरित रहते हैं। मेरी यह केशराशि भी मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण ही हैं। उन्हें वेणीरूपमें सपनेमें भी बँधे हुए अनुभव करती हूँ तो हृदयमें विषम पीड़ा होती है। तुम उन्हें उन्मुक्त ही रहने दो। उन्हें मैं नित्य सुखी देखना चाहती हूँ।' 'इस दिव्य लीलाका दर्शन करनेवाली बड़भागिनी सारिका श्रीराधिकाकी इस अभिलाषामें अपने प्राणोंको पिरो देना चाहती है।' [प्रेषिकाः सुश्री शैवालिनीजी]

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें श्रीराधा-माधवकी उपासना

(गोलोकवासी जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी 'श्रीजी' महाराज)

वृन्दावने नित्यनिकुञ्जभागे
कदम्बजम्बूविटपान्तराले ।
सार्धं मुकुन्देन विराजमानं
स्मरामि राधापदकञ्जयुग्मम्॥

श्री, सनकादिक, रुद्र और ब्रह्मा—ये चारों वैष्णव-सम्प्रदायोंके आद्यप्रवर्तक माने जाते हैं। इन्हीं चारोंके द्वारा निर्धारित की हुई सरणि (पद्धति)-के प्रचारकोंमें सनकादि-सम्प्रदायके प्रचारक श्रीसुदर्शनावतार भगवान् श्रीआद्यनिम्बार्काचार्य भूतलपर प्रकट हुए। अत: वह हंस एवं सनकादिका सम्प्रदाय आगे चलकर 'श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय' नामसे प्रख्यात हुआ। सम्प्रदायमें प्रचलित आचार्य- परम्परा-वन्दनाओंसे यह आशय स्पष्ट ज्ञात होता है[१]।

यद्यपि विक्रमकी ११ वीं, १२ वीं शताब्दीतक रचित प्राचीन सम्प्रदायाचार्योंके ग्रन्थोंमें नामत: उल्लिखित प्रपत्तिचिन्तामणि, सदाचारप्रकाश, गीताभाष्य, उपनिषद्भाष्य आदि श्रीनिम्बार्काचार्यकृत बहुतसे ग्रन्थ-रत्न आज उपलब्ध नहीं हो रहे हैं, तथापि वेदान्तपारिजात-सौरभ (ब्रह्मसूत्रोंकी सूक्ष्मवृत्ति), वेदान्तकामधेनु (दशश्लोकी), रहस्यषोडशी, प्रपन्नकल्पवल्ली, प्रात:स्तवराज आदि जो कुछ थोड़े-से ग्रन्थ उपलब्ध हो रहे हैं, उनमें भी श्रीनिम्बार्काचार्यकी परम्परा, उपासना, सिद्धान्त आदिका स्पष्ट संकेत मिल रहा है।

भूमाधिकरणकी वृत्तिमें उन्होंने स्पष्ट कहा है—हमारे परमाचार्य श्रीसनकादि कुमारोंने हमारे दीक्षागुरु श्रीनारदजीको जिस भूमातत्त्वका उपदेश दिया था, वह प्राण नहीं, प्राणसे भी बढ़कर परम ब्रह्म पुरुषोत्तम ही है[२]। परम ब्रह्म, पुरुषोत्तम, रमाकान्त आदि शब्दोंका अभिप्राय युगलकिशोर श्रीराधाकृष्णसे ही है। अतएव जिज्ञासाधिकरण (ब्र० सू० १।१।१) की वृत्तिमें प्रयुक्त 'पुरुषोत्तम' शब्दका तात्पर्य उन्होंने 'वेदान्त-कामधेनु'के चतुर्थ और पंचम श्लोकोंमें स्पष्ट करके छठे श्लोकमें मुमुक्षुजनोंको यह आदेश दिया कि 'श्रीराधाकृष्ण-युगलकिशोरात्मक परात्पर परब्रह्मकी ही निरन्तर उपासना करते रहना चाहिये। अखिल तत्त्वोंके ज्ञाता श्रीनारदजीको उनके गुरुदेव श्रीसनकादिकोंने यही उपदेश दिया था। श्रीगुरुदेव (श्रीनारदजी)-ने वही उपदेश हमें दिया है।'

उपासनीयं नितरां जनैः सदा
प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं
श्रीनारदायाखिलतत्त्वसाक्षिणे ॥

(वेदान्तकामधेनु ६)

श्रीनिम्बार्काचार्यकी भाँति ही श्रीसनकादिकोंने भी उपासना और उसकी प्राप्ति इसी प्रकार गुरुपरम्परासे बतलायी है—'हे देवर्षि नारद! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो श्रीराधामाधव गोविन्द प्रभुकी शरण लो। यह हमने अपने गुरुदेव श्रीहंसभगवान्के मुखारविन्दसे सुना है। वही बात हमने तुमसे कही है।[३]'

विभिन्न साधक-उपासकोंकी अभिरुचि भिन्न-भिन्न हुआ करती है, उसीके अनुसार देशिक आचार्य शरणागत मुमुक्षुजनोंको आराधनाका उपदेश देते हैं। सनकादिकोंने भी इसी लक्ष्यसे वाराह, कूर्म, श्रीराम आदि

---

१. श्रीहंसं च सनत्कुमारप्रभृतीन् वीणाधरं नारदम्। निम्बादित्यगुरुं च द्वादशगुरून् श्रीश्रीनिवासादिकान्॥ (इत्यादि सायं-स्तुति)

२. परमाचार्यैः श्रीकुमारैरस्मद्गुरवे श्रीमन्नारदायोपदिष्टो भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः, इत्यत्र भूमा प्राणो न भवति, किंतु श्रीपुरुषोत्तमः, कुतः प्राणादुपरि भूम्नः उपदेशात्। (ब्र० सू० १।३।८ की वृत्ति)

३. यथा हि हंसस्य मुखारविन्दाच्छ्रुतं मया तत्कथितं रहस्यम्। गोविन्दमाद्यं शरणं शरण्यं भजस्व भद्रं यदि चेच्छसि त्वम्॥
(सनत्कुमारीय-योगरहस्य उप० २ श्लोक ११)

'मया श्रुतं हंसमुखारविन्दात्तथा विधानं कथयामि साम्प्रतम्।' (स० यो० २।१९)

यह ग्रन्थ अमुद्रित है। इसका पूर्वार्द्ध १८ उपदेशोंमें पूर्ण हुआ है। इसमें ६०० विविध छन्द हैं। अनुष्टुप्-मानसे उनकी संख्या ७३०के लगभग बैठती है। इसकी एक प्रति श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ (सलेमाबाद) एवं श्रीनिकुंज, वृन्दावनमें सुरक्षित है।

अवतारोंके तथा देवी आदिके चरित्रोंका वर्णन किया है और सबके अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका दिग्दर्शन कराके उनकी उपासना करनेका उपदेश दिया है। इस सम्बन्धमें उनका 'सनत्कुमारीय परमगुणरहस्य' ग्रन्थ द्रष्टव्य है*। इसमें श्रीराधाजीके प्रादुर्भाव, बालचरित्र, विवाह आदिका विशेष वर्णन उपलब्ध होता है।

कुछ सज्जन श्रीराधाके सहित श्रीकृष्णकी उपासनाको अर्वाचीन बतलाते हैं और उसके प्रवर्तक केवल श्रीनिम्बार्काचार्यको ही बतलाकर श्रीनिम्बार्क का समय अनुमानतः विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दी ठहराते हैं। किंतु गम्भीर अनुसन्धानसे ये दोनों ही धारणाएँ भ्रान्त सिद्ध होती हैं। श्रीराधाकी उपासना श्रीनिम्बार्काचार्यसे पूर्व भी प्रचलित थी और उन्हें परम्परागतरूपसे ही प्राप्त हुई थी, जिसका फिर इनके द्वारा विशेष प्रचार हुआ। श्रीनिम्बार्काचार्यका प्रादुर्भाव भी विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीसे बहुत पूर्व हुआ था। श्रीनिम्बार्ककृत 'वेदान्तपारिजात-सौरभ' आदि ग्रन्थोंके आधारपर अन्वेषकोंने यह प्रमाणित कर दिया है।

श्रीराधासहित श्रीकृष्णकी उपासनाका उपदेश जो सनकादि कुमारोंने श्रीनारदजीको दिया था—

त्रिकालं पूजयेत्कृष्णं राधया सहितं विभुम्।

(सनत्कुमारीय योगरहस्यो० ३। ५)

—उसी आशयको '**उपासनीयं नितरां जनैः सदा**' (वे० का० ६)—इन शब्दोंमें श्रीनिम्बार्काचार्यजीने व्यक्त किया है। अतः श्रीराधा और उनकी उपासनाको आधुनिक एवं अर्वाचीन बतलाना विचारविहीनता ही कहा जायगा।

श्रीनारदजीके पूछनेपर सनत्कुमारोंने श्रीराधाजीका जो परिचय दिया था, वह इस प्रकार है—

प्रेमभक्त्युपदेशाय राधाख्यो वै हरिः स्वयम्।
वेदे निरूपितं तत्त्वं तत्सर्वं कथयामि ते॥
उत्सर्जने तु रा शब्दो धारणे पोषणे च धा।
विश्वोत्पत्तिस्थितिलयहेतू राधा प्रकीर्तिता॥
वृषभं त्वादिपुरुषं सूयते या तु लीलया।
वृषभानुसुता तेन नाम चक्रे श्रुतिः स्वयम्॥
गोपनादुच्यते गोपी गो भूवेदेन्द्रियार्थके।
तत्पालने तु या दक्षा तेन गोपी प्रकीर्तिता॥
गोविन्दराधयोरेवं भेदो नार्थेन रूपतः।
श्रीकृष्णो वै स्वयं राधा या राधा स जनार्दनः॥

(सनत्कुमारीय योगरहस्यो० ७। ४—८)

'आदर्श प्रेम तथा भक्तिका अपनी जीवनचर्याद्वारा उपदेश देनेके लिये श्यामसुन्दर श्रीहरि स्वयं ही 'राधा' नामसे प्रसिद्ध हुए। वेदमें इनके तत्त्वका जिस प्रकार निरूपण हुआ है, वह सब मैं तुमसे कहता हूँ। 'रा' शब्द उत्सर्ग या त्यागके अर्थमें प्रयुक्त होता है और 'धा' शब्द धारण एवं पोषणके अर्थमें। इसके अनुसार श्रीराधा इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन तथा लयकी हेतुभूता कही गयी हैं। आदिपुरुष विराट् ही वृषभ है, उसको निश्चय ही वे लीलापूर्वक उत्पन्न करती हैं; अतः स्वयं श्रुतिने उनका नाम 'वृषभानुसुता' रख दिया है। वे सबका गोपन (रक्षण) करनेसे 'गोपी' कहलाती हैं। 'गो' शब्द गौ, भूमि, वेद तथा इन्द्रियोंके अर्थमें प्रसिद्ध है। राधा इन 'गो' शब्दवाच्य सभी पदार्थोंका पालन करनेमें दक्ष हैं, इसलिये भी 'गोपी' कही गयी हैं। इस प्रकार गोविन्द तथा श्रीराधामें केवल बाह्य रूपका अन्तर है, अर्थतः उनमें कोई भेद नहीं है। श्रीकृष्ण स्वयं राधा हैं और जो राधा हैं, वे साक्षात् श्रीकृष्ण हैं।'

इसी प्रकारका आशय '**एकं ज्योतिरभूद् द्वेधा राधामाधवरूपकम्।**' इत्यादि अनेक तन्त्रग्रन्थोंके वाक्योंमें मिलता है। श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें इन्हीं श्रीराधाकृष्णकी समानता—एकात्मताकी भावनासे उपासना की जाती है।

अचिन्त्य अगोचर अनन्त-ब्रह्माण्डनायक श्रीराधा-सर्वेश्वर प्रभुका चाक्षुष प्रत्यक्ष दुर्लभ है। अतः चेतनाचेतनात्मक इस दृश्यमान विश्वको उन्हींका रूप समझकर इसकी उपासना करनेका भी श्रीनिम्बार्काचार्यजीने आदेश दिया है। तदनुसार ही श्रीगोपाल-यन्त्रमें धर्म-

* यह ३६ उपदेशों एवं १४०० छन्दोंका ग्रन्थ है। अनुष्टुप्-मानसे १७०० के लगभग श्लोक-संख्या होती है। उपर्युक्त स्थलोंपर इसकी अमुद्रित प्रतियाँ सुरक्षित हैं।

अधर्म आदि समस्त विश्वकी पूजा की जाती है। ब्रह्मात्मक होनेके कारण ही यह विश्व यथार्थ (सत्) है[१]। जहाँ-जहाँ 'असत्' शब्दसे श्रुतियोंमें इसका निर्देश मिलता है, वहाँ उसे अव्यक्तत्वादि-धर्मपरक समझना चाहिये। मिथ्यात्व-द्योतक नहीं। यदि कहीं मिथ्या शब्दका प्रयोग मिलता हो तो उसे विश्वकी परिवर्तनशीलताका सूचक समझना चाहिये। इस सम्बन्धमें भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यकी यह उक्ति मननीय है—

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं
श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं
त्रिरूपतापि श्रुतिसूत्रसाधिता॥

(वे० का० श्लो० ७)

जड-चेतनात्मक समस्त विश्व ब्रह्मात्मक, अतएव अपने उपास्य (आराध्य)-का अंश एवं अंग है। अतः किसीका भी अपमान न किया जाय। किसीसे भी विद्वेष करना अपने उपास्यसे ही विद्वेष करना होगा। विश्वके कण-कणमें अनुराग एवं प्रेम होनेसे ही विश्वम्भर प्रभु सन्तुष्ट होते हैं; क्योंकि वे अणु-अणुमें व्याप्त हैं। रजका एक कण भी ऐसा नहीं मिल सकता, जहाँपर अपने आराध्य प्रभु विराजमान न हों[२]।

जिधर दृष्टिपात हो, उधर प्रभु ही दीख पड़ें और कुछ न दीखे; जो कुछ सुना जाय, वह प्रभुका ही गुण-गान है; जो कुछ ज्ञात हो रहा है, उससे अपने उपास्य प्रभु ही ज्ञात हो रहे हैं। यही भावना वास्तविक सुख-प्रदायिनी है[३]।

अतः इस सम्प्रदायके किसी भी साधकको रुद्र आदि किसी भी देवमें हीन भावना एवं द्वेष-दृष्टि नहीं रखनी चाहिये। यह व्यापक उपासना परम्परागत है। भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यने इसी भावनाकी दृढ़ताके लिये स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है कि—'जिसमें दीनता (विनम्रता) आदि गुण (भाव) हों, उसीपर श्रीयुगलकिशोर प्रभु कृपा करते हैं और उनकी कृपा होनेपर ही श्रवण-कीर्तन आदि (अपरा भक्ति)-के साधकके हृदयमें प्रेमविशेषलक्षणा (परा) भक्तिका प्रादुर्भाव होता है[४]।

'भक्ति एवं उपासनाके शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य और उज्ज्वल (मधुर-शृंगार)—ये पाँच रस माने जाते हैं[५]।' यद्यपि अपनी-अपनी भावनामें एक-एककी प्रधानता है, तथापि प्रत्येक रसकी उपासनामें इन सबका थोड़ा-बहुत पुट अवश्य रहता है। साधक अपनी अभिरुचिके अनुसार इन पाँचोंमेंसे किसी भी एक भावको अपना सकता है। श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायमें यद्यपि पाँचों रसोंके उपासक हैं, तथापि प्रधानतया मधुर (उज्ज्वल) रस अभिप्रेत है। भगवान् श्रीआद्यनिम्बार्काचार्यने इन रसोंका क्रमशः संक्षिप्त दिग्दर्शन कराते हुए कहा है—'भृत्य (दास), पुत्र, प्रिया एवं मित्रकी भाँति निष्कपट होकर देह-इन्द्रिय-मन और प्राणोंसे उपासकको अपने उपास्य एवं उपदेशक आचार्य गुरुदेवकी सेवा करनी चाहिये[६]'।

यह मधुर रसकी उपासना अर्वाचीन नहीं, परम प्राचीन है। अर्जुनने भी इसी क्रमसे प्रभुकी प्रार्थना की थी—'जिस प्रकार पुत्रकी त्रुटियोंपर पिता क्षमा करता है, मित्रकी त्रुटियोंको मित्र और प्रिया (कान्ता)-की त्रुटियोंको प्रिय (कान्त) क्षमा करते हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! आप मेरी त्रुटियोंको क्षमा करें'—

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥

(गीता ११।४४)

---

१. सर्वं खल्विदं ब्रह्म। (छान्दोग्य० ३।१४।१)। सदेव सोम्येदमग्र आसीत्। (छान्दोग्य० ६।२।१)

२. किंच किंचिदिह विद्यते नहि त्वां विनाण्वपि तथाखिलेश्वर। (श्रीकृष्णस्तवराज श्लो० ६)

३. यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा। (छान्दोग्य० ७।२४।१)

४. कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा। भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमा साधनरूपिकापरा॥ (वे० का०)

५. शान्तं दास्यं च वात्सल्यं सख्यमुज्ज्वलमेव च। अमी पञ्चरसा ज्ञेयाः प्रोक्ता वै रसवेदिभिः॥
(सिद्धान्तरत्नांजलि, दशश्लोकी टीका, चतुर्थ परिच्छेद)

६. देहेन्द्रियमनःप्राणैर्मायां हित्वा समाहितः।भृत्यवत्पुत्रवत्सेवेत् प्रियावन्मित्रवत्तथा॥ (मन्त्ररहस्यषोडशी १६)

इस प्रार्थनामें भक्तिके वात्सल्य, सख्य और मधुर रसोंका ही तो स्पष्ट संकेत है।

मधुररस-भावनामें सभी स्त्री-पुरुषोंका अधिकार है; साधक अपनेको उपास्य प्रिया-प्रियतम श्रीयुगल-किशोरकी सहचरी मानकर उनकी आराधना करता है। वह अपनेको कान्ता नहीं मानता; क्योंकि कान्ता-भावमें स्वसुख-सुखित्वकी झलक आ जाती है। श्रीकिशोरीजीके साथ स्पर्धा होकर ईर्ष्या-भावनाका होना भी स्वाभाविक है, जिससे वह उत्तम उज्ज्वल रस नहीं रहता। प्रिया-प्रियतम बाल, पौगण्ड, कुमार, किशोर—किसी भी वयकी लीला करें, उन्हें देखकर प्रमुदित होना और उसी क्रीड़ाके अनुकूल सेवा करते रहना उत्तम 'मधुर' (उज्ज्वल) रस कहलाता है। यही उज्ज्वल मधुर रसकी उपासना श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें परम्परासे चली आ रही है। उपास्य श्रीयुगलकिशोरको माता, पिता, सखा, बन्धु, गुरु, विद्या, द्रव्य—सब कुछ मानकर उनकी आराधना की जाती है। भक्त उपासक तल्लीन होकर अभ्यर्थना करता है—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

माधव जब गोपी बने

(साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री)

श्रीराधा-माधवके पारस्परिक प्रीतिभावका निरूपण करनेवाली अनेक कथाएँ गर्गसंहिता आदि ग्रन्थोंमें प्राप्त होती हैं। इनमें श्रीराधा-माधवके प्रथम मिलनकी कथा बड़ी मार्मिकतासे नारदजीने राजा बहुलाश्वको सुनायी है। भाण्डीरवनमें शिशुरूप कृष्णसे प्रथम भेंटके पश्चात् राधाजीमें श्रीकृष्णके दर्शनकी तीव्र उत्कण्ठा रहती थी। एक बार राधाजीकी सखी ललिताजीने उन्हें बताया कि श्यामसुन्दर गोचारणहेतु नित्यप्रति तुम्हारे महलके निकटसे गुजरते हैं। तब राधाजीने सर्वप्रथम कृष्णका चित्र देखनेकी इच्छा प्रकट की तो सखियोंने श्रीकृष्णका नयनाभिराम चित्र बनाकर दिखाया। उसे देखते ही राधाजी सुध-बुध खो बैठीं, जब उत्कण्ठावश उन्होंने कृष्णका प्रत्यक्ष दर्शन किया तो वे विह्वल हो गयीं। राधाकी विरह-वेदनासे व्यथित ललिताजीने कृष्णको यह बात जब बतायी तो उन्होंने ललिताजीको आश्वासन दिया—'राधाका मनोरथ अवश्य ही पूर्ण होगा।' ललिताजीसे श्रीकृष्णका अभिमत जानकर राधाजीने चन्द्राननाकी प्रेरणासे श्रीकृष्णप्राप्त्यर्थ तुलसीजीकी सविधि आराधना की। इधर श्रीकृष्ण राधाकी प्रीतिकी परीक्षा करनेके लिये गोपीवेश धारणकर उनके उपवनमें आये। इससे राधाको अतीव प्रसन्नता हुई। राधाने गोपीवेशधारी कृष्णसे प्रतिदिन आनेका अनुरोध किया। अगले दिन गोपीरूप श्रीकृष्ण आकर अपनी निन्दा करने लगे, जिससे राधाकी प्रीति परखी जा सके। तब राधाने कृष्णकी महिमा बताते हुए कहा कि—'यदि मेरा प्रेम सच्चा है तो यहीं और अभी नन्दनन्दन आ जायँगे।' राधाने जैसे ही निश्चल भावसे श्रीकृष्णका स्मरण किया, वैसे ही प्रीतिपरवश माधवने अपने गोपीवेशको तिरोहितकर कोटिकामकमनीय स्वरूपसे उन्हें दर्शन दिया। श्रीराधा अपने प्राणधनको पाकर कृत-कृत्य हो गयीं।

कृष्ण सारे घटनाक्रमसे स्वयंके अनभिज्ञ होनेकी लीला करते हुए चतुराईसे युक्तिपूर्ण वचन बनाकर कहने लगे—'हे राधे! मैं तो तुम्हारे बुलानेपर तत्काल दौड़ा चला आया, पर तभी तुम्हें छलनेके लिये सखीरूपिणी कोई यक्षिणी अथवा किंनरी आदि जो भी आयी थी; यहाँसे चली गयी। ऐसी नागिनोंपर तुम कभी विश्वास न करना!' [गर्गसंहिता]

श्रीराधाविरह-वेदनाका प्राकट्य

(डॉ० श्रीमहानामव्रतजी ब्रह्मचारी)

कृष्ण-विरहमें व्याकुल व्रजांगनाओंसे वार्तालापकर उद्धवजीका ज्ञानाभिमान नष्ट हो गया, वे गोपियोंकी उच्च प्रेमावस्थाका परिचय पाकर अभिभूत हो गये और उनका सत्संग पाकर स्वयंको धन्य समझने लगे, तभी उच्चस्वरसे क्रन्दन करती हुई गोपियाँ कुछ कदम अग्रसर हुईं। उद्धवने उनका अनुगमन किया। निभृत निकुंजके अन्तरतम प्रदेशमें श्रीकृष्ण-विरहकी विग्रहवती 'श्री' अष्टसखियोंसे परिवृत होकर भूतलपर पड़ी हुई हैं। अन्यान्य सभी सखियाँ आकर उन्हें घेरकर बैठ गयीं। उद्धवने देखा कि मध्यस्थलमें एक अनन्य-साधारण महादेवी-मूर्ति सोयी हुई है—

सखी-अङ्के हिम वपु रसना अवश।
पाणितल धरातले शेष दशा दश॥

(हरिकथा)

विरह-वेदनाकी घनायित विग्रहवती श्री अत्यन्त क्षीण-कण्ठसे सखियोंको सम्बोधित करती हुई कहने लगीं—'सखि! क्या कहूँ, गोकुलपतिका विच्छेद-सन्ताप **'विश्लेषजन्मा ज्वरः'** कटाहमें उबलते तेलसे भी अधिकतर उत्तापयुक्त **'उत्तापी पुटपाकतोऽपि'** तीव्र ज्वालासे जला रहा है, कालकूट विषकी अपेक्षा भी अधिक चित्त-क्षोभकारी है, **'गरलग्रामादपि क्षोभणः'** वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण और कठोर शैल-सदृश वक्षको विदीर्णकर मर्मस्थानोंमें पीड़ा पहुँचा रहा है **'दम्भोलेरपि दुःसहः'**। यह जलन भीषण विषूचिका-रोगीको होनेवाली जलनसे भी कोटि-गुणा अधिक है। यह भयंकर विरह-सन्ताप प्रतिक्षण मेरे मर्मस्थानोंको क्षत-विक्षत करता हुआ विदीर्ण किये दे रहा है **'मर्माण्यद्य भिनत्ति'**। सखि! यह ताप अब और सहन नहीं होता। इस देहको जीवित रखनेका अब कोई प्रयोजन भी नहीं दीखता। इस व्यर्थ जीवनको अभी त्याग दूँगी।' ललिता बोली—'राधे! देहत्याग करनेसे ही क्या श्रीकृष्ण मिल जायँगे?' श्रीमती बोलीं—'मेरा विश्वास है कि देह त्याग करके श्रीकृष्णको निश्चय ही पाऊँगी। मैंने पौर्णमासी देवीके मुखसे सुन रखा है कि मनुष्य जिस संकल्पको लेकर देहत्याग करता है, मृत्युके बाद उसे वही गति मिलती है। मेरा भरोसा इसीपर आधारित है। मैं इस दृढ़ संकल्पको हृदयमें धारण करके देहत्याग करूँगी कि मृत्युके बाद मेरी देहमें जितना-सा मिट्टीका अंश है वह मथुराके उस पथकी मिट्टीमें जा मिले, जिसपर होकर प्राणनाथ नित्य आते-जाते हैं। इससे मैं उनके चरणकमलोंको नित्य अपने हृदयपर धारण कर सकूँगी। मृत्युके पश्चात् मेरे शरीरमें जितना जलभाग है, वह मथुराके उस विहार-सरोवरके जलमें जा मिले, जिसमें मेरे श्यामसुन्दर नित्य स्नानावगाहन करते हैं। इससे स्नानकालमें मैं अपने प्राण-प्यारेके अधरोंका चुम्बन कर सकूँगी। मेरी देहका तेजोंऽश उस दर्पणमें जा मिले, जिससे मथुरेश स्नानके बाद नित्य अपना वदन-बिम्ब निहारा करते हैं। मेरी देहमें जो थोड़ी-सी वायुका अंश विद्यमान है, वह मेरी मृत्युके पश्चात् श्रीकृष्णके तालुस्थित वायुराशिमें मिल जाय और इस हतभागिनीकी देहका आकाश-अंश उस गृहके आकाशके साथ एकाकार हो जाय, जिस गृहमें मेरे प्राणजीवन रजनी व्यतीत करते हैं। मेरे मृत्युकालका यह संकल्प सार्थक होनेपर मैं मरकर ही अपनी समग्र सत्ताद्वारा उन्हें प्राप्त कर लूँगी। इसकी अपेक्षा सुखकर और क्या हो सकता है?'

क्षणभर शान्त रहकर श्रीमती राधा पुनः प्रलाप करने लगीं—'नहीं, नहीं, मेरा मरण कैसे हो सकता है? मरणमें सबसे बड़ी बाधा तो है उनके श्रीमुखकी पुनः आगमन-विषयक उक्ति।' हठात् श्रीराधाने आकाशकी ओर मुँह फेरते ही देखा कि एक कौआ मथुराकी दिशामें उड़ा चला जा रहा है। तब वे उसे लक्ष्य करके कहने लगीं—'हे वायसराज! सुनो, मथुरा जा रहे हो न? तो एक मेरी बात भी सुनते जाओ—वृन्दावनसे बाहर निकलते ही फिर किसी भी अन्य दिशामें देखे बिना सीधे मधुपुरी चले जाओ। वहाँके राजाको प्रणाम करके मेरा यह सन्देश कहना **'वन्दनोत्तरं सन्देशं वद'**—किसी गृहमें आग लग जाय तो पहला कर्तव्य होता है कि कोई गृहपालित पशु भीतर हो तो द्वार खोलकर उसे मुक्त

कर देना। मेरे इस देह-गृहमें प्रबल अग्नि प्रज्वलित हो रही है। उन्होंने तो यह आग लगायी है। उनसे कहना कि मेरा प्राण-पशु बाहर नहीं जा पा रहा है—**'दग्धुं प्राणपशुं शिखी विरहभूरिन्धे मदङ्गालये'**। इसका कारण यह है कि द्वारमें अर्गला लगी हुई है। उन्हें कहना कि जरा अर्गला तो हटा दें। यदि पूछें कि कौन-सी अर्गला, तो कह देना कि 'मैं फिर आऊँगा'—यह आशावाणी ही वह अर्गला है **'आशार्गलाबन्धनम्'**। थोड़ी देर रुककर वे फिर सब सखियोंको उद्देश्य करके बोलने लगीं—

यमुना-तटिनी-कूले केलि-कदम्बेर मूले, मोरे लये चल लो त्वराय।
अन्तिमेर बन्धु हये, यमुना-मृत्तिका लये, सखी मोर लिपो सर्वगाय॥
श्यामनाम तदुपरि, लिखो सब सहचरी, तुलसी मंजरी दियो ताय।
आमारे वेष्टन करि, बोलो सबे हरि हरि, जखन पराण बहिराय॥

(हरिकथा)

'सखि! यमुना नदीके किनारे लीलाकदम्बके नीचे मुझे अति शीघ्र ले चलो। तुम्हीं मेरी अन्तसमयकी बन्धु हो, इसलिये यमुना-रज लेकर मेरी सारी देहपर 'श्याम' नाम लिख देना। उसे फिर तुलसी-मंजरीसे सजा देना। जब मेरे प्राण बहिर्गत होने लगें, तब सब सखियाँ मुझे घेरकर 'हरि-हरि' कीर्तन करते रहना।'

श्रीमान् उद्धव विस्फारित नेत्रोंसे विरहकातरताकी इस करुण-मूर्तिको देखने लगे और उत्कर्ण होकर दिव्य उन्मादिनीकी प्रलाप-उक्ति सुनने लगे। देखते-देखते और सुनते-सुनते मानो उनके देह-प्राण, मन-बुद्धि, चैतन्य सब मिलकर एक विपुल वेदनानुभूतिमें एकाकार होने लगे। उद्धव पहचान गये—जिनके विषयमें बहुत सुन चुका हूँ, घोर निद्रामें भी जिनका नाम लेकर मेरे प्रभु चमक उठते हैं और दीर्घ नि:श्वास त्याग करने लगते हैं—ये वे ही श्रीराधा हैं।

श्रीशुकदेवजीने श्रीराधाका कहीं स्पष्ट नाम नहीं लिया है, कहा है—**'काचित्'। क=प्रेमसुख, आ=समन्तात्, चित्=ज्ञानं यस्या:'** अर्थात् श्रीकृष्णको प्रेम करके जिस अखण्ड अनन्त सुखकी अनुभूति होती है, उस सुखको जिन्होंने परिपूर्णरूपसे अनुभव कर लिया है, वे ही यहाँ 'काचित्' हैं। इस प्रेमसुखका अनुभव तो अनेक लोग कर सकते हैं, किंतु प्रेमकी परिपूर्णता नहीं होनेके कारण अनुभवकी भी पूर्णता प्राप्त नहीं होती। परिपूर्ण प्रेम-सुखका अनुभव एकमात्र श्रीराधाको ही होता है, कारण, वे मादनाख्यभावमयी हैं। अतएव इस जगत्‌में एकमात्र श्रीराधाको ही 'काचित्' नामसे आख्यात किया जा सकता है। श्रीशुकमुनिने अत्यन्त कुशलतापूर्वक श्रीराधाका नाम गुप्त ही रखा है—

'बुझिबे रसिकजन ना बुझिबे मूढ़।'

'इस रहस्यको केवल रसिक भक्त ही समझ सकेंगे, मूढ़ प्राणी नहीं समझेंगे।'

श्रीराधाजीकी प्रेमवैचित्त्यजनित व्याकुलता

'प्रेमकी उत्कृष्टताके कारण प्रियतमके समीप रहनेपर भी उसके न रहनेके निश्चयसे होनेवाली पीड़ाका अनुभव होना 'प्रेमवैचित्त्य' कहलाता है।' श्रीराधाजीके इसी प्रेमवैचित्त्यका एक सुन्दर उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

श्रीराधारानी एक दिन निकुंजमें बड़े प्रेमसे प्रियतम श्यामसुन्दरको भोजन करा रही थीं। उन्होंने अपने कर-कमलोंसे कई प्रकारके षड्रसयुक्त पदार्थ बनाये थे; वे बड़े चाव तथा मनुहारसे उन्हें परोस रही थीं और प्रियतम सराह-सराहकर मधुर मुसकाते तथा आदर्श विनोद करते हुए भोग लगा रहे थे। इसी बीच एक सखा वहाँ आ गया और उसने कहा—'प्यारे कन्हैया! मैंने तो सुना था कि श्यामसुन्दर अभी कालिन्दी-कूलपर क्रीड़ा कर रहे हैं, तुम यहाँ कैसे कब आ गये?' सखाके वचनोंमें 'मैंने सुना था' यह वाक्य तथा 'तुम यहाँ कैसे कब आ गये?' यह वाक्य तो राधाको सुनायी ही नहीं दिये, उनके कानमें केवल यह वाक्य पहुँचा—'श्यामसुन्दर अभी कालिन्दी-कूलपर क्रीड़ा कर रहे हैं।' बस, राधाको प्रेमवैचित्त्य-दशा प्राप्त हो गयी। वे भूल गयीं कि श्यामसुन्दर यहीं विराजित हैं और भोजन कर रहे हैं; वे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं।

वैदिक साहित्यमें राधा

(पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

वैदिक साहित्यमें 'राधा' का उल्लेख कहाँ है? इसकी खोज प्राचीन लेखकोंने की है। उपनिषदोंमें दो उपनिषद् राधासे सम्बद्ध हैं—एक है राधोपनिषद् तथा दूसरा है राधिकातापनीयोपनिषद्। राधोपनिषद् गद्यमें ही है और राधाकी महिमाका प्रतिपादक है। इसमें राधा कृष्णकी परमान्तरंगभूता ह्लादिनी शक्ति बतलायी गयी हैं। राधाकी व्युत्पत्ति 'राध्' धातुसे है—'**कृष्णेन आराध्यते' इति राधा। 'कृष्णं समाराधयति सदा' इति राधिका गान्धर्वीति व्यपदिश्यते।** कृष्णके द्वारा जो आराधित है, वही राधा है तथा कृष्णकी सदा आराधना करनेवाली राधिका है। 'गान्धर्वी' शब्दके द्वारा उसीका निर्देश किया गया है। यहाँ स्पष्ट ही रूपगोस्वामीका पूर्वनिर्दिष्ट संकेत मिलता है। 'गान्धर्वी' नाम गोपालोत्तरतापिनी उपनिषद्में उपलब्ध होता है, यह ऊपर दिखलाया गया है। यहाँ कहा गया है—'व्रजकी गोपांगनाएँ, श्रीकृष्णकी समस्त महिषियाँ तथा वैकुण्ठकी अधीश्वरी श्रीलक्ष्मीजी इन्हीं श्रीराधाकी कायव्यूह (अंशरूपा) हैं। ये राधा और रससागर कृष्ण एक होते हुए भी शरीरसे क्रीडा करनेके लिये दो हो गये हैं। राधिकाकी अवहेलना करके जो श्रीकृष्णकी आराधना करना चाहता है, वह महामूर्ख ही नहीं, मूढतम है।' इसके अनन्तर राधाके अट्ठाइस नामोंका निर्देश किया गया है। इसके बाद सन्धिनी शक्तिके स्वरूपका भी वर्णनकर फलश्रुतिके साथ वह उपनिषद् समाप्त होता है।

अथर्ववेदीय 'राधिकातापनीय' उपनिषद् भी परिमाणमें छोटा ही है। इसमें भी राधिकाकी प्रशस्त स्तुति है और उन्हें ही सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है। श्रीकृष्णका उत्कृष्ट प्रेम तथा सातिशय आदर राधाके निमित्त है। राधाकी प्रशंसामें इस उपनिषद्का तो यहाँतक कहना है कि विश्वभर्ता श्रीकृष्णचन्द्र एकान्तमें अत्यन्त प्रेमार्द्र होकर जिनकी पद-धूलि अपने मस्तकपर धारण करते हैं, जिनके प्रेममें निमग्न होनेपर उनके हाथसे वंशी भी गिर जाती है एवं अपनी बिखरी अलकोंका भी स्मरण उन्हें नहीं रहता तथा वे क्रीतदासकी तरह जिनके वशमें सदा रहते हैं, उन राधिकाको हम नमस्कार करते हैं—

> यस्या रेणुं पादयोर्विश्वभर्ता
> धरते मूर्ध्नि रहसि प्रेमयुक्तः।
> स्रस्तवेणुः कबरीं न स्मरेद्यस्-
> तल्लीनः कृष्णः क्रीतवत्तां नमामः॥

इन दोनों उपनिषदोंमें '**येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत्**' यह पद्यार्ध उद्धृत किया गया है, जो किसी प्राचीन ग्रन्थका जान पड़ता है। 'सामरहस्य उपनिषद्' में भी इसी तथ्यको ही हम दूसरे शब्दोंमें निर्दिष्ट पाते हैं—

अनादिरयं पुरुष एक एवास्ति। तदेव रूपं द्विधा विधाय समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात् तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो विदुः॥

राधाके वर्णनपरक उपनिषदोंका संकेत करना ही हम इस प्रसंगमें उचित समझते हैं। इनके समयका निर्णय यथार्थ रूपसे नहीं किया जा सकता। इनका आविर्भाव-काल १७वीं शतीके अनन्तर ही प्रतीत होता है। यदि ये इस कालसे पूर्ववर्ती होते, तो गौडीय गोस्वामियोंके ग्रन्थोंमें इनका संकेत तथा उद्धरण अवश्य ही कहीं-न-कहीं उपलब्ध होता। ऐसे सुस्पष्ट वचनोंका उद्धरण न देना आश्चर्यकी ही बात है। फलतः इनकी अर्वाचीनता नितान्त स्पष्ट है।

वैदिक मन्त्रोंमें कृष्णचरित्रका अनुसन्धान महाभारतके प्रख्यात टीकाकार नीलकण्ठ चतुर्धरने सांगोपांग रूपसे किया है। इस ग्रन्थका नाम है—**मन्त्रभागवत,** जिसमें कृष्णके नाना चरित तथा लीलाके प्रदर्शक मन्त्र ऋग्वेदसे उद्धृत किये गये हैं और उनके ऊपर नीलकण्ठने अपनी नयी व्याख्या भी दी है, जिसमें उन मन्त्रोंका कृष्णपरक तात्पर्य स्पष्टतया निर्दिष्ट किया गया है। धार्मिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण होनेपर भी यह ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टिसे विशेष महत्त्व नहीं रखता। इन्होंने समस्त महाभारतपर टीका ('भारतभावदीप') लिखी है, जो अठारहों पर्वोंपर

उपलब्ध है तथा नितान्त लोकप्रिय है। इनके पूर्वज तो महाराष्ट्रके कूर्परग्राम (आजकल कोपरगाँव)-के मूल निवासी थे, परन्तु काशीमें आकर बस गये थे और काशीमें ही इन्होंने इस गौरवपूर्ण ग्रन्थका प्रणयन किया। इनके एक ग्रन्थका रचनाकाल १६९५ ई० मिलता है। फलतः इनका समय १७ वीं शतीका उत्तरार्ध तथा १८वीं शतीका आरम्भ (१६५०-१७२० ई० लगभग) मानना उचित प्रतीत होता है। निश्चित है कि इस शताब्दीके पूर्व ही वैष्णव धर्मका महान् अभ्युदय हो चुका था और उसके सिद्धान्तोंको वेदसे निकालनेकी प्रवृत्ति विद्वानोंमें जागरूक थी। इसीलिये, नीलकण्ठने मन्त्ररामायणमें रामायणकी कथा तथा मन्त्रभागवतमें भागवतकी मुख्य कथाओं तथा घटनाओंका निर्देश बड़ी मार्मिकताके साथ खोज निकाला है। मन्त्रोंकी स्वप्रणीत टीकामें तत्तत् अर्थको प्रकट करनेका स्तुत्य प्रयास किया गया है।

नीलकण्ठके अनुसार 'राधा' का नाम इस मन्त्रमें निर्दिष्ट है—

अतारिषुर्भरता गव्यवः सम-भक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
प्र पिन्वध्यमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्॥

(ऋक्० ३। ३३। १२)

इस मन्त्रका अर्थ करनेमें नीलकण्ठने बड़ी पंडिताई तथा ऊँची प्रतिभा दिखलायी है। यह मन्त्र प्रसिद्ध विश्वामित्र-नदीसूक्त (३। ३३)-के अन्तर्गत आता है, जिसमें विश्वामित्र तथा नदियोंमें परस्पर संवाद है। इस तथ्यको स्वीकार करते हुए भी नीलकण्ठका कथन है कि नदी-समुद्रके व्याजसे विश्वामित्र गोपियोंको कृष्णके प्रति अभिसार करनेके लिये प्रेरित करते हैं। राधाके अत्यन्त महत्त्वशालिनी होनेके कारण गोपियाँ यहाँ **'सुराधा'** कही गयी हैं। जिस प्रकार नदियाँ समुद्रके पास जाकर अपनेको पूर्ण करती हैं और जीवनको चरितार्थ करती हैं, उसी प्रकार गोपियोंको भी (जिनमें 'राधा' मुख्य गोपी है) कृष्णसे मिलकर अपने जीवनको पूर्ण बनानेका उपदेश इस मन्त्रमें दिया गया है। कृष्णका सूचक यहाँ 'शीभ' शब्द है। इसकी व्याख्या है—

शेतेऽस्मिन् सर्वमिति शीः। भाति स्वयं ज्योतिष्ट्वेन प्रकाशते इति भः। शीश्चासौ भश्चेति शीभः। तं सर्वलयाधिष्ठानचिन्मात्रस्वरूपमित्यर्थः। यद्वा शीभ् कत्थने। शीभन्ते कत्थन्ते श्लाघन्ते आत्मानमनेन इति शीभः। अकर्त्तरि च कारके संज्ञायामिति करणे घः। यं प्राप्य भक्ताः कृतार्थमात्मानं मन्यन्ते इत्यर्थः।

इस एक शब्दकी व्याख्यासे ही विज्ञ पाठक ग्रन्थकारकी पद्धतिसे किञ्चित् परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

× × ×

वेदमें **'राधस्'** शब्दका विपुल प्रयोग हम पाते हैं। यह शब्द नाना विभक्तियोंमें प्रयुक्त किया गया उपलब्ध होता है। दो-एक उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

सञ्चोदय चित्रमर्वाग् राध इन्द्र वरेण्यम्। असदित् ते विभु प्रभु॥

(ऋक्० १। ९। ५)

यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः।

(ऋक्० २। १२। १४)

सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः। दाता राधांसि शुम्भति॥

(ऋक्० १। २२। ८)

इसी प्रकार यह शब्द अपने तृतीयान्त 'राधसा' रूपमें अनेकत्र प्रयुक्त है। (१। ४८। १४; ३। ३०। २०; ४। ५५। १०; १०। २३। १ आदि) चतुर्थ्यन्त 'राधसे' भी बहुशः उपलब्ध होता है— १। १७। ७; ३। ४१। ६; ४। २०। २; ५। ३५। ४; १०। १७। १३ आदि। षष्ठ्यन्त **'राधसः'** का भी कम प्रयोग नहीं मिलता—१। १५। ५; ४। २०। ७; ६। ४४। ५; १०। १४०। ५ आदि। **'राधसाम्'** षष्ठी बहुवचनका प्रयोग एक स्थानपर है (८। ९०। २) तथा सप्तम्यन्त 'राधसि' भी एक ही बार ऋग्वेदमें प्रयुक्त है। (४। ३२। २१)

अब इस वैदिक शब्दका अर्थ विचारणीय है। निघण्टुमें **'राधः'** शब्द धन नाममें पठित है (२। १०)। यह शब्द **'राध साध संसिद्धौ'** से असुन् प्रत्यय जोड़नेसे निष्पन्न होता है इसलिये स्कन्दस्वामीने इस पदके अर्थकी द्योतना की है—वह वस्तु, जो धर्म आदि पुरुषार्थोंको सिद्ध करती है—**सरानुवन्ति साध्नुवन्ति धर्मादीन् पुरुषार्थानिति**

स्कन्दस्वामी। सकारान्त होनेके अतिरिक्त यह आकारान्त भी है और इस प्रकार राधा शब्दका प्रयोग दो मन्त्रोंमें किया गया उपलब्ध होता है—

(१) **स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृता॥**

यह मन्त्र ऋग्वेद (१। ३०। ५)-में, सामवेदमें तथा अथर्ववेद (२०। ४५। २) तीनों वेदोंमें समान रूपसे उपलब्ध होता है।

(२) **इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते। पिबा त्वस्य गिर्वणः॥**

यह मन्त्र ऋग्वेदके एक स्थल (३। ५१। १०)-पर तथा सामवेदके दो स्थलों (१६५, ७३७)-पर प्रयुक्त मिलता है। दोनों मन्त्रोंमें '**राधानां पते**' इसी रूपमें प्रयुक्त है और दोनों जगह यह इन्द्रके विशेषण-रूपमें आया है।

मेरी दृष्टिमें '**राधः**' तथा '**राधा**' दोनोंकी उत्पत्ति '**राध् वृद्धौ**' धातुसे है, जिसमें 'आ' उपसर्ग जोड़नेपर '**आराधयति**' धातुपद बनता है। फलतः इन दोनों शब्दोंका समान अर्थ है आराधना, अर्चना, अर्चा। 'राधा' इस प्रकार वैदिक राधः या राधाका व्यक्तिकरण है। राधा पवित्र तथा पूर्णतम आराधनाकी प्रतीक है। 'आराधना' की उदात्तता उसके प्रेमपूर्ण होनेमें है। जिस आराधना या अर्चनामें विशुद्ध प्रेम नहीं झलकता, जो उदात्त प्रेमके साथ नहीं सम्पन्न की जाती, क्या वह कभी सच्ची 'आराधना' कहलानेकी अधिकारिणी होती है? कभी नहीं। इस प्रकार राधा शब्दके साथ प्रेमके प्राचुर्यका, भक्ति की विपुलताका, भावकी महनीयताका सम्बन्ध कालान्तरमें जुटता गया और धीरे-धीरे राधा विशाल प्रेमकी प्रतिमाके रूपमें साहित्य और धर्ममें प्रतिष्ठित हो गयी।

ऊपर उद्धृत मन्त्रोंमें इन्द्र '**राधानां पते**' नामसे सम्बोधित किये गये हैं। फलतः वेदमें वे ही 'राधापति' हैं। कालान्तरमें जब इन्द्रका प्राधान्य विष्णुके ऊपर आया और कृष्णका विष्णुके साथ सामञ्जस्य स्थापित किया गया, तब कृष्णका राधापति होना स्वाभाविक है, ऐसी मेरी धारणा है और मेरा विचार है। यह धारणा भ्रान्त और तर्कहीन नहीं कही जा सकती। वैदिक धर्मके विकासकी जो रूपरेखा ऊपर खींची गयी है, वह इस परिबृंहणके लिये पर्याप्त साधन प्रस्तुत करती है।

माधुर्य-मकरन्द

(स्वामी श्रीसनातनदेवजी)

(१)

युगल-पद-वन्दन

बंदौं जुगलके पद-कमल!
नील पीत सरोज सम अति सुभग कोमल विमल॥
जिनहिं पाय स्वभाव चपला होत कमला अचल।
परम धन जो सम्भुके, जो पियहिं गुरुतम गरल॥
जिनहिं परसत होत सुरसरि पतित-पावनि प्रबल।
जिनहिं व्रज-रस परसि तारत जगतके खल सकल॥
नित्य निधि व्रज-वल्लविनके अति अनूपम अचल।
पाय जिनकी पुन्य रज अज लह्यौ रति-रस विमल॥
ग्यान-मान बिसारि सेवहिं जिनहिं मुनिजन सकल।
जिनहिं सुमिरत होहिं नारद-सुक-सनक-से विकल॥
बसहिं वे मो मन-भवनमें सदा सन्तत अटल।
तिनहिं सुमिरत रहौं नित ही प्रीति-रसमें विकल॥

(२)

युगल-ज्योति

राधा-माधव-ज्योति जगी री!
कुञ्ज-भवनमें स्याम-गौरकी सुखमा लखि सखि रहीं ठगी री!
होहिं केलि-क्रीडा अति अद्भुत, दोउकी रति दोउ उर उमँगी री!
स्याम-हियेमें विलसहिं स्यामा, स्यामा-उर हरि-लगन लगी री!॥
दोउकी प्रीति-रीति अति अनुपम, निरखि रहहिं सखि! प्रीतिपगी री!
प्रेम-हिंडोलेकी हलचलमें सबही की मति-खगी ठगी री!॥
गान-तानको तरल तरंगनमें मनकी जनु लगन लगी री!
बूड़ि-बूड़ि उतराहिं प्रीति-नदियामें जनु कोउ तरनि डिगी री!॥
रसिकनकी यह अद्भुत तरनी, करनी करि नहिं पार लगी री।
प्राननाथ ही कृपा करहिं तो पार जाय नित प्रीति-पगी री॥
मैं बूड़ै वा पार जाय, दोउ भाँति प्रीतिकी छाप लगी री।
हमहूँ हुलसि चढ़े तरनीमें, पीव-मिलनकी अगिन जगी री॥

गोपीभावकी उपासनाका स्वरूप

(परमहंस श्रीमत्स्वामी श्रीनिगमानन्दजी सरस्वतीदेव)

भगवान्‌के प्रति प्रेम उत्पन्न होनेपर फूलके खिलनेमें, मलयके प्रवाहमें, कोयलकी कूहूमें, भौरोंके गुंजनमें, वही दिखायी पड़ता है। वैसे ही मेघकी गर्जनामें, दामिनीकी दमकमें, अमावस्याके अँधेरेमें, हताशाके दीर्घ निःश्वासमें, दारिद्र्यके आकुल क्रन्दनमें भी उसीकी विभूति नजर आती है। लोगोंकी सेवामें भी उसीकी सेवा होती है। प्रेमके उत्पन्न होनेपर मनुष्यकी समस्त वृत्तियाँ उसीके आश्रित हो जाती हैं। फिर भक्त तद्‌गतचित्त होकर बोल उठता है—मुझे ज्ञान नहीं चाहिये, शान्ति नहीं चाहिये, मुक्ति नहीं चाहिये, सालोक्य भी नहीं चाहिये, केवल 'तुम' ही चाहिये। तुम्हीं मेरे प्राण हो, मेरे विश्वका प्राण हो! आकर मेरे हृदयनिकुंजमें बैठो। एक बार कहो कि मैं 'तुम्हारा' हूँ!

मनकी इस स्थितिको ही प्रेम कहते हैं। अपनेको क्षुद्र, हीन, सान्त तथा ईश्वरको विराट्, विपुल, अनन्त समझनेपर वे हमसे दूर हो जाते हैं, फिर उनके साथ हमारा प्रेम हो नहीं पाता। यदि उनसे भक्तका एकात्मभाव, मान-अभिमान अथवा आदर-आप्यायनका ओतप्रोत भाव न रहे, तो प्रेमकी स्फूर्ति नहीं हो पाती। यशोदाका शासन, नन्दका सामान उठाना, गोपबालकोंका जूठन खाना, अपने कन्धोंपर उन्हें उठाना तथा गोपियोंके पैर पकड़कर उनका मानभंजन करना आदि व्रजभावलुब्ध भक्तोंका परम आदर्श है। महिमज्ञान रहनेपर प्रेम संकुचित हो जाता है। भावके अनुसार भगवान्‌को अपने जैसा अथवा अपनेसे छोटा न समझनेपर प्रेम नहीं होता। अतएव गोपीभावका आदर्श लेकर प्रेमकी साधना करनी चाहिये। प्रेमकी साधना श्रेष्ठ साधना है। प्रेमसे भगवान् आकृष्ट होते हैं। उस आकर्षणसे वे स्थिर नहीं रह पाते। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि भावोंकी जो साधनाएँ हैं, भगवान् उनका प्रतिदान दे सकते हैं; किंतु गोपीप्रेमका मूल्य लौटा नहीं सकते। मैं केवल प्रेम करता हूँ—मैं तुमको ही जानता हूँ, क्या इसमें कोई प्रार्थना है ? प्रार्थना नहीं तो उसकी पूर्तिका प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव मूल्य किस बात का ? मैं तुम्हें चाहता हूँ—यदि देना ही है तो अपनेको दे दो। इसीलिये भगवान् गोपीप्रेमके ऋणी हैं।*

अपनेको भूलकर, धर्म-कर्म, जाति-कुल, मानको बिसराकर अपने वांछितका अनुसरण करना ही प्रेमाभक्ति है। यही भाव गोपियोंमें था और इसीलिये भगवान्‌की आराधनामें गोपीभाव ही श्रेष्ठ है।

प्रेमस्वभाव-लुब्ध साधक, गोपीभावका अवलम्बन करके भगवान्‌को अपना प्रेमास्पद मानकर अपने हृदयके निकुंजमें प्रेमकी पुष्प-शय्यापर उन्हें लेटाकर प्रेम-संगीतसे प्रबुद्ध कर लें। फिर पत्थर या पीतलकी मूर्ति बनाकर तुलसी-चन्दनसे अपने प्रेमास्पदकी देह और मनके समर्पणपूर्वक उनकी पूजा करें। प्रेमके संचार होनेपर क्रमशः उनके अनन्त भाव अनन्त मूर्ति, अनन्त तेजस्‌को धारणा या भावनामें ला पायेंगे। फिर जाकर उस नित्य सहचर, नित्य सखा, नित्य प्रेमास्पदका संधान मिलेगा, जिसको यह संसार रात-दिन पाद्य-अर्घ्यसे पूज रहा है। प्रकृतिरूपी राधा जिसके प्रेमकी कामनामें सर्वत्यागिनी, उदासिनी, योगिनी बनी है। तब जाकर 'जहाँ भी दृष्टि पड़े, वहीं हरि झड़े' का भाव होगा। सब स्थानोंमें, सब वस्तुओंमें उसी प्रेमास्पदकी प्रेममयी मूर्ति दिखायी पड़ेगी। आत्मदर्शी योगीकी तरह प्रेमिक भी प्रत्येक फलमें, फूलमें, पत्तोंकी मर्मर ध्वनिमें, पर्वतमें, झरनोंमें, नद-नदियोंमें, मनुष्यमें, अणु-परमाणुओंमें, उसी सच्चिदानन्दका विकास देखता है, फिर वह श्यामसुन्दरके चिद्‌घनरूपको भूल नहीं पाता। वह जगत्‌को, राधाको, साथ लेकर राधावल्लभकी उपासना करता है। वे प्रेममय हैं—प्रेमके आकर्षणको भूल नहीं पाते।

अतएव भाव-अवलम्बनकी साधनाओंमें प्रेमसाध्य गोपीभावकी साधना ही श्रेष्ठ है; क्योंकि यही मानवमात्रकी असाधारण सम्पत्ति है—यही मानवजीवनका सार है।

[प्रेमिकगुरु, अनु०—डॉ० स्वामी श्रीप्रज्ञानानन्दजी सरस्वती]

---

* इसी ऋणका परिशोध करनेके लिये भगवान्‌को 'गौरांग अवतार' लेना पड़ा—ऐसा भक्तसमाजमें कहा जाता है।

श्रीराधा-तत्त्व

(महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगंगानाथजी झा, एम० ए०, डी० लिट्०, एल० एल० डी०)

'श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः।' जहाँ कहीं श्रीकृष्णकी पूजा होती है, श्रीराधाके साथ होती है—यह तो प्रसिद्ध है। परन्तु कृष्ण-चरित्र-निरूपक ग्रन्थोंमें श्रीमद्भागवत सबसे प्रसिद्ध है—इसमें श्रीराधाकी चर्चा प्रायः नहीं-सी ही है। इससे कुछ लोगोंके मनमें यह सन्देह होने लगा है कि राधाकी उपासना (Radha-cult) कृष्णोपासनासे भी बहुत नवीन है।

जबसे पाश्चात्त्य विद्वानोंने पुराणोंको 'रद्दी', 'कपोल-कल्पित' कहकर हटा दिया, तबसे उनके शिष्य हमारे देशी भाई भी इन अमूल्य ग्रन्थ-रत्नोंकी ओर दृक्पात करना भी महापाप समझने लगे। अब पार्जिटर (Pargiter) साहबकी कृपा पुराणोंकी ओर हुई है। उनका कहना है कि पुराणोंकी सहायताके बिना भारतवर्षके इतिहासका संकलन असम्भवप्राय है। इससे अब आशा होती है कि हमारे देशी भाइयोंकी भी इन ग्रन्थोंकी ओर कृपा-दृष्टि फिरेगी।

देवीभागवत देखनेसे श्रीराधाजीका दर्जा बहुत ऊँचा हो जाता है। इस पुराणके अनुसार 'राधा' केवल बरसानानिवासी वृषभानुकी पुत्रीमात्र नहीं हैं। जैसे श्रीकृष्ण परमात्माके अवतार हैं, वैसे ही श्रीराधा भी पराशक्तिकी अवतार हैं। आद्या 'प्रकृति' के पाँच रूप हैं—(१) दुर्गा, (२) राधा, (३) लक्ष्मी, (४) सरस्वती और (५) सावित्री। (देवीभागवत ९। १। १)

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता॥

राधा कृष्णकी चिच्छक्ति हैं। इन्हींके संयोगसे 'ब्रह्माण्ड' की उत्पत्ति हुई। इस 'ब्रह्माण्ड' को राधाजीने जलमें डाल दिया। इसपर अप्रसन्न होकर श्रीकृष्णने शाप दिया कि 'आजसे तुम अनपत्या रहोगी' इत्यादि। यह कथा देवीभागवतके नवम स्कन्धके द्वितीय अध्यायमें वर्णित है।

इस कथाको कपोलकल्पित कहिये या जो कुछ कहिये, इतना तो मानना पड़ेगा कि राधाकी उपासना बहुत आधुनिक नहीं है और राधाका दर्जा प्रधान शक्तियोंमें है। जो दर्जा लक्ष्मी, सरस्वती और पार्वतीका है, वही राधाका भी।

असल बात तो यह है कि जितने 'देव' हमारे यहाँ माने गये हैं और पूजनीय समझे गये हैं, सबोंके साथ उनकी अपनी-अपनी शक्तियोंकी भी पूजा आवश्यक बतलायी गयी है। यहाँतक कि पूजन-विधिमें शक्तियोंहीका उल्लेख पहले आता है, जैसे—

श्रीगौरीशङ्कराभ्यां नमः, श्रीलक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः, श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः, श्रीसीतारामाभ्यां नमः।

इसपर भी भारतवासी स्त्रियोंका तिरस्कर्ता कहलाता है! आश्चर्य!!

श्रीराधामाधवका प्रेम तथा विरह

राधिका भोरी

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रजखोरी॥
काहे कौं हम ब्रज-तन आवतिं, खेलति रहतिं आपनी पौरी।
सुनत रहतिं स्त्रवननि नँद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि-चोरी॥
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
'सूरदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी॥

विरहिनि-राधिका

अति मलीन वृषभानुकुमारी।
हरि स्त्रम जल भींज्यौ उर अंचल, तिहिं लालच न धुवावति सारी॥
अध मुख रहति अनत नहिं चितवति, ज्यौं गथ हारे थकित जुवारी।
छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने, ज्यौं नलिनी हिमकर की मारी॥
हरि-सँदेस सुनि सहज मृतक भइ, इक विरहिनि, दूजे अलि जारी।
'सूरदास' कैसे करि जीवै ब्रजवनिता बिन स्याम दुखारी॥

एकमात्र सर्वश्रेष्ठ तत्त्व—श्रीराधा

(गोलोकवासी संत श्रीकृपालुजी महाराज)

अद्वितीय इक तत्त्व है, राधा तत्त्व प्रधान।
याको दूजो रूप हैं, स्वयं कृष्ण भगवान्॥

(भक्तिशतक १)

भावार्थ—श्रीवृषभानुनन्दिनी राधिकाजी ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ तत्त्व हैं। उन्हींका अपर अभिन्न स्वरूप स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं। जिनका अवतार द्वापरयुगके अंतमें हुआ था।

व्याख्या—सर्वप्रथम यह समझना है कि राधा तत्त्व क्या है? वैसे तो राधातत्त्वके पूर्वके तत्त्व ही इन्द्रिय-मन-बुद्धिसे परे हैं। यहाँतक कि जो श्रीराधिकाके अभिन्न स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वे भी श्रीराधातत्त्वका पार नहीं पा सके। यथा—

परम धन राधे नाम अधार।
कोटिन रूप धरे नँदनन्दन, तऊ न पायो पार॥

फिर भी जहाँतक समझाया जा सकता है, वहाँतक समझाना एवं समझना परमावश्यक है। समस्त वेदोंमें प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूपसे केवल राधातत्त्वका ही निरूपण है। यथा—

ब्रह्मवादिनो वदन्ति, कस्माद्राधिकामुपासते आदित्योऽभ्यद्रवत्।

श्रुतय ऊचुः—

सर्वाणि राधिकाया दैवतानि सर्वाणि भूतानि राधिकायास्तां नमामः। देवतायतनानि कम्पन्ते राधाया हसन्ति नृत्यन्ति च सर्वाणि राधादैवतानि.........न यां पुराणानि वदन्ति सम्यक् तां राधिकां देवधात्रीं नमामः। जगद्भर्तुर्विश्वसंमोहनस्य श्रीकृष्णस्य प्राणतोऽधिकामपि। वृंदारण्ये स्वेष्टदेवीं च नित्यं तां राधिकां वनधात्रीं नमामः। यस्या रेणुं पादयोर्विश्वभर्ता धरते मूर्ध्नि रहसि प्रेमयुक्तः। यस्या अंके विलुण्ठन् कृष्णदेवो गोलोकाख्यं नैव सस्मार धामपदं सांशा कमला शैलपुत्री तां राधिकां शक्तिधात्रीं नमामः।

(अथर्ववेदीय राधिकातापनीयोपनिषद्)

अर्थात् ब्रह्मवेत्ता महापुरुषोंके चित्तमें एक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि अन्य महाशक्तियोंकी उपासना छोड़कर श्रीराधिकाकी ही उपासना क्यों की जाती है? यह प्रश्न उत्पन्न होते ही एक महान् तेज:पुंज प्रकट हुआ। वह महान् तेज:पुंज श्रुतियाँ ही थीं। उन श्रुतियोंने बताया कि समस्त देवी-देवताओंमें देवत्वशक्ति श्रीराधासे ही आविर्भूत होती है। अत: हम श्रुतियाँ भी श्रीराधाको नमन करती हैं। श्रीराधाजीके भयसे समस्त दैवी महाशक्तियाँ थर-थर काँपती हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी श्रीराधाजीके भृकुटिविलासको भयभीत होकर देखते रहते हैं। जिन श्रीराधाजीका हम श्रुतियाँ एवं सांख्य, योग, वेदान्त आदि भी पार नहीं पा सकते अर्थात् सम्यक् प्रतिपादन नहीं कर सकते, उनको हम प्रणाम करते हैं। जगत्पति विश्वविमोहन नन्दनन्दनकी प्राणाधिकप्रिया, परमोपास्या एवं शरणागतको अभय देनेवाली श्रीराधाको हम सब नमस्कार करते हैं।

प्रेमपरायण आनन्दकन्द सच्चिदानन्द व्रजेन्द्रनन्दन भी रासलीलामें जिनकी चरण-रजको मस्तकपर धारण करते हैं, एवं जिनके प्रेम-प्रभावसे अपनी मुरली और लकुटी आदि दिव्य विभूतियोंको भुला देते हैं। यहाँतक कि स्वयं, श्रीराधाजीके हाथ बिक जाते हैं। हम सब उनकी वन्दना करते हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी जिन वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजीकी अंगरूपी शय्याके परमानन्दमें अपने अपरिमेय सच्चिदानन्दस्वरूप तथा दिव्य चिन्मय धाम गोलोकको भी भुला देते हैं। महालक्ष्मी, पार्वती आदि जिन श्रीराधाजीकी अंशस्वरूपा शक्तियाँ मात्र हैं, उन महाशक्तियोंकी भी मूल महाशक्तिस्वरूपा श्रीराधाजीको नमस्कार है।

राधाशब्दका अर्थ ही राधातत्त्वकी श्रेष्ठताका परिचय प्रदान कर देता है। यथा—**स्वादिपरस्मैपदी 'राध्'** धातु पाणिनीय पाठमें है (राध् साध् संसिद्धौ)। उस राध् धातुसे कर्ममें 'अ' प्रत्यय करनेसे राधाशब्द बनता है। जिसका अर्थ है समस्त जगत्‌की आराध्या। वेद कहता है—

कृष्णेन आराध्यते इति राधा।

(ऋग्वेदीय राधिकोपनिषत्)

तात्पर्य यह कि अनन्तब्रह्माण्डात्मक विश्वप्रपंच एवं ब्रह्मादि ब्रह्माण्डनायकोंके परमाराध्य परब्रह्म श्रीकृष्ण

भी श्रीराधातत्त्वकी निरन्तर आराधना करते हैं। अतः राधातत्त्वका सर्वोत्कृष्टत्व निर्विवाद सिद्ध हो गया।

इसके अतिरिक्त अनेक वेदमन्त्रोंमें राधातत्त्वका निरूपण है। यथा—

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः सवितारं नृचक्षसम्।

(ऋग्वेद १।२२।७)

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते विभूतिरस्तु।

(ऋग्वेद १।३०।५)

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते पिबा त्वस्य गिर्वणः।

(ऋग्वेद ३।५१।१०)

केवल ऋग्वेदमें ही 'राधा' शब्दका प्रयोग सातों विभक्तियोंमें हुआ है। यथा—

राधः (ऋग्वेद १।९।५), राधांसि (ऋग्वेद १।२२।८), राधसा (ऋग्वेद १।४८।१४), राधसे (ऋग्वेद १।१७।७), राधसः (ऋग्वेद १।१५।५), राधसाम् (ऋग्वेद ८।९०।२), राधसि (ऋग्वेद ४।३२।२१)—सभी ऋग्वेदीय मन्त्र हैं।

सारांश यह कि सर्वदेवदेवेश्वर तो श्रीकृष्ण ही हैं। यथा—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।

(श्वेता० ६।७)

किंतु राधाजी, उन परात्पर परब्रह्म स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी भी आराध्या हैं। अतः ब्रह्माण्डपुराणमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने कहा **'राधैवाराध्यते मया।'**

अर्थात् मैं केवल राधातत्त्वकी ही आराधना करता हूँ। अन्यान्य पुराणोंमें भी श्रीराधातत्त्वका निरूपण है। यथा—पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, देवीभागवतपुराण, आदिपुराण, स्कन्दपुराण, मत्स्यपुराण आदि। विस्तारके भयसे उन सबका उद्धरण नहीं दे सकते। पुराणोंके अतिरिक्त बृहद्गौतमीयतन्त्र, नारदपांचरात्र, गर्गसंहिता आदिमें भी राधातत्त्वका विशद विवेचन है। आदिजगद्गुरु शंकर, निम्बार्क, वल्लभ इत्यादि समस्त वैष्णवाचार्योंका तो राधातत्त्व प्राणस्वरूप है ही। राधातत्त्वके निरूपणका स्वरूप सभी आचार्योंका अभिन्न होते हुए भी भिन्न-भिन्न-सा है। कुछ संशयात्मा तार्किकोंको यह संशय होता है कि समस्त पुराणोंमें मूर्धन्य भागवतपुराणमें राधातत्त्वका निरूपण नहीं है; इसके कई विशिष्ट कारण हैं। फिर भी राधातत्त्वका निर्देश भागवतमें बरबस हो ही गया है। यथा—

अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः॥

(१०।३०।२८)

निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः।

(२।४।१४)

उपर्युक्त दोनों स्थलोंमें राधानामका स्पष्ट उल्लेख है। एक बात प्रमुखरूपसे विचारणीय है कि श्रीकृष्णकी भाँति श्रीराधाजीके भी अनन्त नाम हैं। अतः अन्य स्थलोंपर अन्य पर्यायवाची नामोंसे स्पष्ट उल्लेख भी है। यथा—

कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः।
कुचकुंकुमगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः॥

(१०।८३।४२)

इस स्थलपर श्रीराधाजीका नाम 'श्री' शब्दसे निर्दिष्ट है। सारार्थदर्शिनीटीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्तीने विस्तारपूर्वक समझाया है। जिसका तात्पर्य यह है कि द्वारिकास्थ महिषीवृंदने श्रीराधाके कुचकुंकुमयुक्त चरणरजकी ही स्वकामना प्रदर्शित की है। यद्यपि 'श्री' शब्द महालक्ष्मीके हेतु भी प्रयुक्त होता है, किंतु महालक्ष्मीरूपा रुक्मिणीकी चरणरज तो द्वारिकामें सदा प्राप्त ही थी। अतः यह 'श्री' शब्द केवल राधाका ही बोधक हो सकता है।

इसी प्रकार पुनः भागवतमें निरूपण प्राप्त है। यथा—

आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः।

(१०।३०।२)

यहाँ भी राधानामका निर्देश रमाशब्दसे किया गया है। बृहद्वैष्णवतोषिणीटीकाकार सनातन गोस्वामीने इस पर विशद विवेचना की है। जिसका सारांश यह है कि रासमे श्रीकृष्णके अंतर्धान हो जानेपर दिव्य प्रेमावेशमें गोपियोंने श्रीकृष्णकी ही भूतपूर्व लीलाओंका अनुगमन किया। यदि रमा (लक्ष्मी)-पति महाविष्णुको माना जायगा तो वे तो लीलापरिकररहित होते हैं। फिर उनके साथ गोपियोंकी कभी कोई लीला ही नहीं हुई।

इसी प्रकार पुनः भागवतमें 'रमा' शब्द आया है। यथा—**रेमे रमेशो व्रजसुंदरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिंब-विभ्रमः।** (१०।३३।१७)

यहाँ भी 'रमा' शब्द राधाके हेतु ही आया है। क्योंकि राधारमणने ही व्रजांगनाओंके साथ रमण किया था।

इतना ही नहीं वरन् अन्य स्थलोंपर भी कहीं वृन्दा नामसे, कहीं इन्दिरा नामसे, कहीं कान्ता नामसे, कहीं प्रिया नामसे, कहीं आत्मा नामसे, कहीं लक्ष्मी नामसे भी श्रीराधाका उल्लेख प्राप्त है।

फिर भी यदि संशयकर्ताको संतोष न हुआ हो तो और भी कारण सुनें। जब रासका प्रकरण शुकदेवजी सुनाने लगे तब परीक्षित्ने बार-बार संसारी वासनायुक्त समझकर रासपर आपेक्ष किया। यह भी नहीं सोचा कि यदि रासमें वासनाका लेश भी होता तो आत्माराम पूर्णकाम परमनिष्काम जन्मजात परमहंस शुकदेव क्यों स्वीकार करते। अत: शुकदेवजीने आगे रासका प्रकरण ही समाप्त कर दिया।

इसके अतिरिक्त अभिधा (स्पष्ट उल्लेख)-से तो लक्षणा (संकेत)-रीतिसे नामादिनिर्वचन अधिक महत्त्वका माना गया है। और वह तो है ही। इसी आशयसे आचार्योंने कहा है। यथा—

यथा प्रियंगुपत्रेषु गूढमारुण्यमिष्यते।
श्रीमद्भागवते शास्त्रे राधिकातत्त्वमीदृशम्॥

अर्थात् जैसे मेहँदीके हरे पत्तेमें लालिमा प्रकटरूपसे नहीं दिखायी पड़ती, किंतु हाथमें लगानेसे स्पष्ट प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार भागवतसंहितामें भी राधानाम बार-बार संकेतसे ही लिखा गया है।

रसिकोंकी यह भी मान्यता है कि यदि शुकदेवजी राधानामका स्पष्ट उल्लेख करते तो उनको छह मासकी समाधि हो जाती। जबकि परीक्षित्का कल्याण सात दिनमें ही करना अनिवार्य था। यथा—

श्रीराधानाममात्रेण मूर्च्छा षाण्मासिकी भवेत्।

अस्तु, उपर्युक्त वेदादि प्रमाणों एवं युक्तियोंसे राधातत्त्व अनादि अद्वितीय सिद्ध है। अद्वितीयशब्दका प्रयोग एवं एकशब्दका प्रयोग देखकर कुछ शंका हो सकती है। उसका निराकरण यह है कि अद्वितीय अर्थात् जिसके समान अथवा जिससे बड़ा दूसरा तत्त्व न हो। एकका अभिप्राय यह है कि शेष जो भी तत्त्व हैं, वे सब उन्हीं श्रीराधासे ही आविर्भूत हैं। इसी आशयसे स्वयं श्रीराधाने कहा है। यथा—

ममैव पौरुषं रूपं गोपिकाजनमोहनम्।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

अर्थात् मेरे पुरुषशरीरवाले रूपको भगवान् कृष्ण कहते हैं। जो गोपियोंके प्राण कहे जाते हैं।

वस्तुतस्तु राधा तथा कृष्ण एक ही सत्ताके दो रूप एवं दो नाम हैं। लीलाके हेतु ही दो रूप बनाये हैं। यह जीवोंपर कृपा करनेके उद्देश्यसे किया गया है। एक भावुक भक्त कहता है, यथा—

प्रेयांस्तेऽहं त्वमपि च मम प्रेयसीति प्रवादः
प्राणस्तेऽहं त्वमपि च ममासीति हन्त प्रलापः।
त्वं मे ते स्यामहमपि च तद्वाधितं साधु राधे
नो युक्तो नौ प्रणयविषये युष्मदस्मत्प्रयोगः॥

अर्थात् राधाकृष्णके विषयमें दो सत्ताका ज्ञान घोर अज्ञान है। निर्गुण निर्विशेष निराकार ब्रह्म राधारूपी शक्तिसे ही सगुण सविशेष साकार होता है। अत: राधातत्त्व ही सर्वप्रमुख तत्त्व है। दर्शनशास्त्रोंकी दृष्टिसे भी शक्ति (राधा) एवं शक्तिमान् (श्रीकृष्ण)-में भेद नहीं होता।

श्रीराधा-माधवकी मोरकुटी लीला

बरसानेमें ब्रह्माचल पर्वतके ऊपर मोरकुटी नामक स्थान है, यहाँ श्रीराधारानी अपनी सखियोंके साथ मोरोंको चुग्गा डालने आती थीं। एक दिन श्रीराधाजी पधारीं; लेकिन वहाँ एक भी मोर नहीं था, यह देखकर श्रीराधाजी निराश होने लगीं। अपनी प्रेयसी राधाको निराश देखकर श्रीकृष्ण स्वयं मोर बनकर वहाँ प्रकट हो गये। अत्यन्त सुन्दर मोररूपमें श्रीकृष्णको देखकर राधाजीको अत्यन्त आनन्द हुआ। यहाँ रासमण्डल भी है, जहाँ राधा-माधवने रासलीला की थी। रासमण्डलमें श्रीराधाजी और श्रीमाधवका मयूर एवं मयूरीके रूपमें नृत्य करते हुए अत्यन्त मनोहर स्वरूप दर्शनीय है।

भगवत्प्राप्ति ही मानवजीवनका परमलक्ष्य है

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरीशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः॥
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते।
प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे॥

(चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्)

अर्थात् 'दिन और रात, सायंकाल और प्रातःकाल, शिशिर और वसन्त पुनः-पुनः आते हैं; इसी प्रकार कालकी लीला होती रहती है और आयु बीत जाती है, किन्तु आशारूपी वायु छोड़ती ही नहीं; अतः हे मूढ! निरन्तर गोविन्दको ही भज, क्योंकि मृत्युके समीप आनेपर '**डुकृञ् करणे**'* यह रटना रक्षा नहीं कर सकेगा।'

संसारके सारे प्राणियोंमें मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उसका यही कारण है कि मनुष्यमें ही श्रेयस्साधनभूत कर्म, भक्ति, ज्ञानका अनुष्ठान करनेकी क्षमता है। मनुष्यजन्म पाकर भी इन साधनोंका आचरण जो नहीं करता है, उसका जन्म व्यर्थ है। वैसे मनुष्यसे तो दूसरे प्राणी ही श्रेष्ठ हैं।

अपि मानुष्यकं लब्ध्वा भवन्ति ज्ञानिनो न ये।
पशुतैव वरं तेषां प्रत्यवायाप्रवर्तनात्॥

मनुष्यको लौकिक विषयोंपर आसक्ति स्वाभाविक है। उनको पानेके लिये वह बहुत कोशिश करता है। फलस्वरूप उसको विषयसुख प्राप्त होता है। लेकिन वह क्षणिक है। उस क्षणिक सुखके लिये अपना अमूल्य समय नष्ट करना विवेक नहीं है। इसलिये विवेकी लोग सुखप्राप्तिके लिये शास्त्रीय साधनोंका आचरण करते हैं। **ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत।** यह श्रुतिवाक्य कहता है कि ज्योतिष्टोमयागसे स्वर्गसुख मिलता है। लेकिन यह सुख भी नित्य नहीं है। कुछ समयके बाद फिर उस व्यक्तिको जन्म लेना पड़ेगा। यहाँ एक प्रश्न आता है कि वेदोक्त कर्मानुष्ठानसे मिलनेवाला सुख नित्य क्यों नहीं होगा। इसका यह उत्तर है कि जिसकी उत्पत्ति है, उसका नाश अवश्य होगा। संसारमें कोई वैसी चीज नहीं है कि जो उत्पन्न होकर भी नित्य हो। कुछ लोग पूछते हैं कि शास्त्रोक्त साधनके अनुष्ठानसे मिलनेवाले फलको अनित्य मानेंगे तो वह शास्त्र अप्रमाण होगा। वे भ्रान्त हैं। शास्त्रने तो 'ज्योतिष्टोमका फल स्वर्ग है', इतना ही कहा है। वह नित्य है—ऐसा नहीं कहा। इसलिये स्वर्गको अनित्य माननेसे शास्त्रका अप्रामाण्य कभी नहीं होगा। शास्त्र ही उसको अनित्य कहता है '**तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते।**' भगवान् भी कहते हैं '**ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।**' इसलिये शास्त्रोक्त कर्म भी नित्यसुखका साधन नहीं हैं। लेकिन वे कर्म व्यर्थ नहीं हैं। उन्हीं कर्मोंको यदि बिना किसी कामनाके करे तब चित्तशुद्धि मिलती है। चित्तशुद्धि ज्ञानप्राप्तिका साधन है। अशुद्धचित्त पुरुषको ज्ञानप्राप्ति कदापि नहीं होगी। यद्यपि कर्मसे उपासना उत्कृष्ट है; लेकिन उसका फल भी शाश्वत नहीं। इसको भगवान्ने कहा '**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।**' जो उपासना करके उत्कृष्ट फल पाते हैं, उनको भी वापस आना पड़ेगा। '**मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।**' जो भगवानको प्राप्त करते हैं, वे ही मुक्त हैं; उनको फिर जन्म लेनेकी आवश्यकता नहीं होगी। यहाँ भगवत्प्राप्ति माने ब्रह्मसाक्षात्कार ही है। इसी अर्थको महात्मा मधुसूदन सरस्वती लिखते हैं। उनकी यह पंक्ति है—'**सम्यग्दर्शनेनाज्ञानावरणनिवृत्त्या मामुपैष्यसि साक्षात् करिष्यसि अहं ब्रह्मास्मीति।**' मुक्तिका एकमात्र साधन

* व्याकरणमें 'डुकृञ् करणे' एक धातु है, इसे एक ब्राह्मणको वृद्ध होनेपर भी रटते देखकर श्रीशंकराचार्यजीने यह उपदेश किया।

ब्रह्मज्ञान है और दूसरा नहीं। '**तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**' यह श्रुति इसे स्पष्ट बताती है। यहाँ एवकारसे तीन अर्थ प्रतीत होते हैं। ब्रह्मको ही जानकर मुक्ति मिलेगी। ब्रह्मको जानकर ही मुक्ति मिलेगी। ब्रह्मको जानकर मुक्ति मिलेगी ही। इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मसाक्षात्कार ही मुक्तिका एकमात्र साधन है। वही भगवत्प्राप्ति है। इसके लिये निष्काम कर्मानुष्ठान और भगवद्भक्ति साधन हैं। इसीलिये ज्ञानीको भगवान्‌ने सर्वश्रेष्ठ भक्त कहा है—'**तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते**' '**ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।**'

सभी लोगोंको भगवत्प्राप्तिरूप परमानन्दको पानेके लिये ही प्रयत्न करना है। यद्यपि एक ही जन्ममें मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होगी तथापि अक्षुण्णरूपसे किये गये साधनका फल कभी-न-कभी मिलेगा ही। इसे भगवान्‌ने कहा कि '**अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।**'

हम भगवान् राधाकृष्णसे प्रार्थना करते हैं कि वह सभीको अपना जन्म सार्थक करनेके लिये शास्त्रोक्त-साधनानुष्ठान करनेकी प्रेरणा देकर अनुग्रह करें।

श्रीराधा-प्रणाम-वल्लरी

(श्रीराधेश्यामजी बंका)

जो श्यामके सुखके लिये अवतरित होती हैं और
श्याम सुखके लिये तिरोहित होती हैं,
जो यदि हँसती हैं, तो श्यामके सुखके लिये और
रोती हैं, तो श्यामके सुखके लिये,
श्यामका सुख ही जिनके जीवनका प्रकाश है और
श्यामका दुःख ही जिनके जीवनकी रात है,
उन श्याम-जीवना श्रीराधाके श्रीचरण
मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

× × × ×

प्रियतमके अन्यत्र रमणसे जिनके
स्नेह-ज्वारमें उतारका लेश नहीं,
प्रियतमके असंग व्यवहारसे जिनकी
बुद्धिमें असंगतिका बोध नहीं,
प्रियतमकी प्रतिकूल चेष्टासे जिनके
मनमें प्रतिकूलताका आभास नहीं,
उन अचिन्त्य-भावापन्ना श्रीराधाके श्रीचरण
मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

× × × ×

सखियोंसे जिनका सम्बन्ध
एकमात्र प्रियतम श्यामको लेकर है,
खग-मृगसे जिनका व्यवहार
एकमात्र प्रियतम श्यामके निमित्त है,
जड़-चेतनसे जिनका लगाव
एकमात्र प्रियतम श्यामके नाते है,
उन श्याम-सम्बन्धिनी श्रीराधाके श्रीचरण
मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

श्यामकी प्रतीक्षामें श्यामका चिन्तन करते-करते
जो विरह-विकला अविकल श्याम ही बन जाती हैं,
श्याम-बनी-प्रियतमा राधा-विरहमें राधाका चिन्तन करते-करते
जो पुनः राधा बन जाती हैं,
श्याम-रूप हो या राधा-रूप, किसी भी रूपसे किसी क्षण
जिनके प्राणोंकी पीर मिट नहीं पाती है,
उन पीर-दग्धा श्रीराधाके श्रीचरण
मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

× × × ×

प्रियतम श्यामके प्रति प्राणोंका पूर्ण उत्सर्ग ही
जिनके अमित रूपका मूल स्रोत है,
प्रियतम श्यामके प्रति सर्वस्वका सर्व समर्पण ही
जिनके अमित सौन्दर्यका सच्चा हेतु है,
प्रियतम श्यामके प्रति स्वयंका निखिल निवेदन ही
जिनके अमित लावण्यका आदि कारण है,
उन अतुल सुषमामयी श्रीराधाके श्रीचरण
मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

× × × ×

ऐसी अन्य कौन है, जिनके हृदयकी प्रत्येक धड़कनमें
प्रियतमकी मुरली-माधुरी गूँजती रहती है,
ऐसी अन्य कौन है, जिनके शरीरके प्रत्येक रोममें
प्रियतमकी रूप-माधुरी समायी रहती है,
ऐसी अन्य कौन है, जिनके नयनोंकी प्रत्येक हलचलमें
प्रियतमकी लीला-माधुरी नाचती रहती है,
उन अद्वितीयानुरक्ता श्रीराधाके श्रीचरण
मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

श्रीराधामाधवाद्वैतविमर्श

(अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)

राधामाधवकी लीलाभूमि श्रीवृन्दावनका चित्रण श्रीमद्भागवतमें किया गया है, जहाँ गिरिराज गोवर्धनकी तलहटीमें कालिन्दी प्रवाहित हो रही हैं, वहाँ यमुनाकी स्वच्छ बालुकापर राधामाधव लीला करते हैं। जहाँ कदम्ब, तमालादि वृक्षोंसे स्वाभाविक ही निकुंज निर्मित हो गये हैं, जिसमें तुलसीका विशाल वन है, जहाँ वृक्ष, लता, गुल्मादिरूप स्थावरजन और गौओंका निवास एक दिव्यताका स्वरूप उपस्थित करते हैं, उस वृन्दावनको कवियोंने एक पंकजकी तरह माना है। पंकज वह है, जो जलके पंकसे उत्पन्न होता है, उस पंकजकी कोमलता, सुन्दरता और मधुरताका वर्णन करते हुए कविगण थकते नहीं हैं। इस कल्पनाको आगे बढ़ायें—कदाचित् दूधका सरोवर हो, उसमें नवनीतका पंक हो तो उससे उत्पन्न पंकज कैसा होगा? अनुरागरसका सरोवर हो, उसमें अनुरागरससाररूपी पंक हो, उससे उत्पन्न पंकजकी सुन्दरता, सरसता एवं रमणीयता कैसी होगी? इसी तरह सच्चिदानन्दरससरोवरमें सच्चिदानन्दरस-सारपंकसे उत्पन्न पंकजकी दिव्यता अवर्णनीय होगी। यह माना जाता है कि सच्चिदानन्दरससारपंकसे उत्पन्न पंकज ही श्रीवृन्दावनधाम है। इस वृन्दावनरूपी पंकजकी कर्णिका और पंखुड़ियोंके बीचमें जो मंजरियाँ हैं, वे गोपियाँ हैं, उन मंजरियोंमें भरा हुआ पराग श्रीकृष्ण हैं और परागरूपी कृष्णका जो मकरन्द है, वह श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधा हैं, इस प्रकार दोनों एक-दूसरेकी आत्मा हैं। एक ही तत्त्व दो रूपमें प्रतीत होते हुए भी अपने अभेदको बनाये रखता है।

श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार परब्रह्म परमात्मा ही अपनी योगमायासे कृष्णरूपमें अवतरित होते हैं। जिसके सहारे सांसारिक प्राणी दु:खके समुद्रसे पार होता है, उसको ही अवतार कहते हैं। भगवान् कहते हैं—'मैं अज, अविनाशी और सभी प्राणियोंका ईश्वर होता हुआ भी अपनी सच्चिदानन्दलक्षणा स्वरूपभूता प्रकृतिका बिना परित्याग किये योगमायासे मानवरूप धारण करता हूँ।' वह रूप भी इतना सुन्दर होता है, मनमोहक होता है कि उसको देखकर भगवान् स्वयं ही मुग्ध हो जाते हैं। वे दिव्य व्रजभूमिमें अवतार लेकर वृन्दावनमें निवास करते हैं। तब वह वृन्दावन लक्ष्मीका क्रीडास्थल बन जाता है। गोपीगीतमें गोपियाँ कहती हैं—**'जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।'** इसका अर्थ है आपके अवतार लेनेसे व्रज त्रिलोकीपर विजय प्राप्त कर रहा है। विचित्र बात यह है कि त्रिलोकीमें लक्ष्मी उपास्य हैं; लेकिन व्रजमें आकर लक्ष्मी उपासिका हो जाती हैं—**'श्रीयते अत्र व्रजमण्डले श्रयते।'**

भगवान् श्रीकृष्णके सौन्दर्यको प्रकट करनेवाली मणिस्तम्भलीलाका वर्णन करते हुए आचार्य कहते हैं—'एक बार माता यशोदाने मणिस्तम्भके निकट दधिमन्थन करके अपने प्रिय पुत्र कृष्णके लिये सद्यः उत्पन्न नवनीत निकालकर एक भाण्डमें रखा और किसी कार्यसे अन्यत्र चली गयीं, इसी बीच कृष्णने आकर उस भाण्डसे नवनीत लेनेके लिये अपना हाथ बढ़ाया, झुकते समय उनकी दृष्टि मणिस्तम्भमें प्रतिफलित अपने प्रतिबिम्बपर पड़ी, चकित होकर उसको कोई अपरिचित बालक समझकर बोले—'मित्र! मैयासे न कहना, तुम्हें भी एक लोंदी मक्खनकी दूँगा, किंतु उस सुन्दर प्रतिबिम्बका उत्तर न पाकर बोले—अच्छा, तुम इससे सन्तुष्ट नहीं हो तो आधी मटकी मक्खनकी तुम्हें दूँगा। पुन: न बोलनेपर बोले—अच्छा, पूरी मटकी ही ले लेना; पर मुझसे मित्रता कर लो।' तभी वहाँ यशोदा दबे पाँव आकर कृष्णकी बातें सुनकर बोलीं—'कृष्ण! किससे बात कर रहे हो?' कृष्ण बोले—'माँ! यह जो बालक मणिस्तम्भमें छिपा बैठा है, उसीसे बात कर रहा हूँ। किंतु यह तो अपने सौन्दर्यके गर्वमें ही चूर है, मुझसे बात नहीं करता है; तू मेरी इससे मित्रता करा दे।' तब यशोदाने प्रेमसे कृष्णको उठाकर कहा—'मेरे

लाल! यह तेरी ही प्रतिच्छवि है।' कृष्ण बोले—'माँ! मैं इतना सुन्दर हूँ?' यशोदा बोलीं—'***मो सम नहिं पुण्यपुंज बालक तू मेरो***' कौस्तुभादि अलंकारोंसे भगवान्‌के श्रीअंगकी शोभा नहीं बढ़ती; किंतु उनके श्रीअंगके समाश्रयणसे अलंकार ही अलंकृत होते हैं। '**कण्ठं च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थम्।**' भगवान्‌का शंखके समान सुन्दर कण्ठ कौस्तुभमणिको भी आभूषित करता है, इसीलिये वे स्वयंके प्रतिबिम्बको देखकर विस्मयमुग्ध हो जाते हैं—'***रूप रासि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी॥***' अपने इसी सौन्दर्यके समास्वादनके लिये भगवान् स्वयंको दो भागोंमें विभक्त करते हैं और यही राधामाधव हैं। अपने सौन्दर्य, माधुर्य एवं सौरस्यका अवगाहन करनेके लिये सामान्य नेत्र नहीं; राधाके नेत्र चाहिये। जैसे राधामाधव दिव्य-दम्पती हैं, वैसे ही राजराजेश्वर और राजराजेश्वरी भी दिव्यदम्पती हैं। राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरीके सौन्दर्यका वर्णन करते हुए आदिशंकराचार्यजी अपने आनन्दलहरी नामक ग्रन्थमें कहते हैं—

घृतक्षीरद्राक्षामधुमधुरिमा कैरपि पदै-
र्विशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषयः।
तथा ते सौन्दर्यं परमशिवदृङ्मात्रविषयः
कथङ्कारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे॥

अर्थात्—हे परमैश्वर्यशालिनी देवी! जिस प्रकार घृत, क्षीर, दाख और मधु आदिकी पारस्परिक मधुरता अलग-अलग स्पष्टरूपसे शब्दोंद्वारा अभिव्यक्त नहीं की जा सकती; वह केवल शुद्ध एवं दोषरहित रसनाके अनुभव—अनुभूतिका विषय है, उसी प्रकार आपका अपार सौन्दर्य केवल परमशिवके नेत्रोंका विषय है; हम उसका कैसे वर्णन कर सकते हैं? इसी तरह राधामाधवके सौन्दर्यका विषय आपसमें उनके नेत्र ही हैं।

एक स्वरूप सदा द्वै नाम।
आनन्दकी आह्लादिनी श्यामा, आह्लादिनीके आनन्द श्याम॥

जिस प्रकार गंगाजलकी शीतलता, मधुरता, पवित्रता गंगाजलसे पृथक् नहीं, जैसे अग्नि और उसकी लपट कोई पृथक् पदार्थ नहीं, वैसे ही राधाकृष्ण, शिवपार्वतीमें भी कोई पार्थक्य नहीं। अपने स्वरूप-सौन्दर्यपर मुग्ध होकर आत्माराम कृष्ण ही राधारूपसे स्वसौन्दर्य-माधुर्यरससुधाका समास्वादन करते हैं। लोकविमोहिनी मायासे भगवान् सदा ही अलिप्त, असंग रहते हैं। द्वैत बन्धनका कारण होता है; कहा है—

द्वैतं बन्धाय बोधात्प्राक् प्राप्ते बोधे मनीषिणः।
भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतं अद्वैतादपि सुन्दरम्॥

अभेदमें भेदका आहार्यज्ञान लेकर राधामाधवयुगलकी अनादिकालसे अनवरत लीला चल रही है। व्रजके भक्तोंने कहा है—'***न आदि न अन्त विहार करें दोऊ, लाल प्रिया में भई न चिन्हारी।***' प्रत्येक क्षणमें राधा कृष्णका रूप ले लेती हैं और कृष्ण राधा बन जाते हैं, परस्पर दोनों चकोर, दोनों चन्दा हैं। आज भी वृन्दावनके केलि-निकुंजमें राधामाधवकी लीला चल रही है, उनकी सखी, सहचरियाँ उनकी सेवामें स्वयंको समर्पित करते हुए दोनोंके सुखमें स्वसुखका अनुभव करती हैं। युगलहृदयके प्रेमका अनुभव उनको भी आत्मविस्मृत कर देता है। यह राधामाधवकी लीला, इसका चिन्तन और श्रवण ही भक्तोंका चरम लक्ष्य है।

'राधिकाको प्रताप'

(श्रीमोहन श्यामजी शर्मा)

राधे राधे बोले यहाँ सारे ब्रजमण्डल में
श्याम से सवायो सो प्रमाप राधिका को है।
हरे आधि व्याधि औ उपाधि शोक मोह हरे
हरे दुःख, भय, नाम जाप राधिका को है।
कान्ह को पियारो सदा सब ते सवायो सो ही
रसना पे नाम रूपी छाप राधिका को है।
जग को नचाय माया ब्रह्म हू नचाय वाको
छाछ पे नचायो सो प्रताप राधिका को है॥

श्रीराधारससुधा और श्रीकृष्णरसवैभव

[श्रीराधासुधानिधि-समग्रसार]

(अनन्तश्रीविभूषित पूर्वाम्नाय-गोवर्धनमठ-पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु-शंकराचार्य स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज)

सम्मोहनतन्त्रस्थ गोपालसहस्रनामके श्लोक १९ तथा वेदपरिशिष्टके अनुसार '**तस्माज्ज्योतिरभूद् (एकज्ज्योतिरभूद्) द्वेधा राधामाधवरूपकम्**'—वेदान्तवेद्य परज्योति:स्वरूप स्वप्रकाश अद्वयतत्त्व स्वयंकी ज्योति:-स्वरूपताकी व्यावहारिक धरातलपर सिद्धिके लिये श्रीराधामाधवरूपसे अवतीर्ण हुआ।

यदि सदद्वैतबोधात्मक परतत्त्व निराकार ही बना रहे तो स्वयंकी चिद्रूपताको न सिद्धकर आकाशतुल्य अचिद्रूपताको ही चरितार्थ करे। अतएव परब्रह्मको स्वरूपत: और स्वभावत: साकार-निराकार दोनों ही मानना चाहिये—

सर्वपरिपूर्णस्य परब्रह्मण: परमार्थत: साकारं विना केवलनिराकारत्वं यद्यभिमतं तर्हि केवल-निराकारस्य गगनस्येव परब्रह्मणोऽपि जडत्वमापद्येत। तस्मात्परब्रह्मण: परमार्थत: साकारनिराकारौ स्वभाव-सिद्धौ। (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत्-२)

माना कि अग्नि दाहक और प्रकाशक है; परन्तु मन्थनके द्वारा साकार हुए बिना अपने दाह-प्रकाशरूप स्वरूपवैभवको वह सिद्ध कर ले, ऐसा असम्भव ही है। वैसे ही अग्नितुल्य ब्रह्मतत्त्व चिदानन्दस्वरूप है, परंतु लीलायोगसे अनुग्रहपूर्वक अभिव्यक्तिके बिना स्वरूपवैभव प्रकाशमें आ सके; ऐसा असम्भव ही है।

अबाध्य और अवेद्य होता हुआ अपरोक्ष होनेसे वेदान्तवेद्य परतत्त्व जहाँ सदद्वैत और बोधात्मक अर्थात् चिद्रूप है, वहाँ अबाध्य और अभोग्य होता हुआ अपरोक्ष होनेसे वह सद्द्वय और रसात्मक (सदानन्दस्वरूप) भी है। सामरहस्योपनिषत्के अनुसार '**एक एव रसो द्वेधा भिन्नोऽयं श्रीराधाकृष्णरूपाभ्याम्**' वेदान्तवेद्य अद्वयरस ही स्वयंकी रसरूपताको सिद्ध करनेके लिये श्रीराधाकृष्ण-रूपसे उच्छलित है। यदि अद्वयरस निराकार (अमूर्त) ही बना रहे, तो स्वयंकी रसरूपताको न सिद्धकर आकाश और वायुके तुल्य रसविहीनताको ही चरितार्थ करे। रसिकमहानुभावोंके शब्दोंमें—

श्रीराधामाधवचरण बन्दौं बारंबार।
एकतत्त्व दो तनु धरे नित रसपारावार॥

राधासुधानिधि (रससुधानिधि)-के अनुसार वेदान्तवेद्य नेति-नेतिप्रतिपाद्य अद्वयज्योति:स्वरूप रसतत्त्वरूप भुवनमोहननीलपीतच्छवियुग्मरूपसे (राधामाधवरूपसे) स्फुरित और उच्छलित है।

'श्रीराधासुधानिधि' रसस्वरूप रासेश्वर और रासेश्वरी अनादि दम्पती श्रीराधाकृष्णकी निभृतनिकुंजलीलाकी हितसखीके माध्यमसे रसात्मिका अभिव्यंजना है। हिततत्त्वके आलोकमें इस उज्ज्वल अभिव्यक्तिका सानुराग अवलोकन और अहर्निश अनुशीलन रसिकोंका जीवन है। निगमकल्प-तरुगलितफल श्रीमद्भागवत श्रीराधाभावभावित श्रीमत्परम-हंसमुखविनि:सृत संहिता है। इसमें श्रीकृष्णका चरमोत्कर्ष परिलक्षित होना स्वाभाविक है। योगीन्द्रदुर्गमगति मधुसूदनकी दृष्टिसे श्रीराधातत्त्वका प्रतिपादन श्रीराधासुधा-निधिमें है, फलत: श्रीराधाका चरमोत्कर्षस्थापन और ख्यापन उपयुक्त ही है। वस्तुत: '**एक एव रसो द्वेधा भिन्नोऽयं श्रीराधाकृष्णरूपाभ्याम्** और **एकज्ज्योतिरभूद् द्वेधा राधामाधवरूपकम्**' की दृष्टिसे विचार करनेपर दोनों ही रसतम स्वप्रकाश वेदान्तवेद्य परमतत्त्वकी अनादि स्फूर्ति और अभिव्यक्ति हैं। इस दृष्टिसे विचार करनेपर उत्कर्षापकर्षको लेकर प्राप्त मनस्ताप निरस्त हो जाता है और अद्भुत अगाध आनन्दोल्लासकी अभिव्यक्ति अनवरत होती रहती है।

'श्रीराधारससुधानिधि' स्तव अद्भुतानन्दलोभियोंके लिये कर्णकलशोंसे पेय है। इसके पानमें बुधोंकी ही प्रीति-प्रवृत्ति सम्भव है। श्रीराधावैभव श्रुतियों, बुधों और स्वयं योगीन्द्रदुर्गमगति श्रीमधुसूदनके लिये भी मृग्य (अनुसन्धेय) है। वृषभ, स्तोककृष्ण, अर्जुनादि सखाओं तथा वैकुण्ठवैभव रमा (लक्ष्मी)-के लिये भी सर्वथा अगम्य है। श्रीकृष्ण शुक, स्वायम्भुव, नारद, ब्रह्मादि मुनीन्द्रों और देवशिरोमणियोंके लिये भी सर्वथा सुदुर्लभ हैं।

उनके चित्तके हरणमें विज्ञ और दक्ष अद्भुत परमरस और रहस्य श्रीराधारानी वृषभानुनन्दिनी निभृतनिकुंजेश्वरी हैं।

परमपुरुष शिखण्डिमौलि श्रीकृष्ण राधाकिंकरियोंसे नित्य ही काकुवाणी (कातरवाणी)-द्वारा सर्वार्थवर्षिणी पूर्णानुरागरससागरसारमूर्ति कीर्तिकुमारी वृषभानुजा रसनिधि राधाके दिव्य प्रमोदरससारामृतलहरियोंसे अभिषिंचनरत संस्पर्श सुलभ करानेकी भावनासे प्रार्थना करते रहते हैं। प्रेमामृतमकरन्दरसराशिपूर्ण श्रीराधाचरणारविन्दके ध्यानमें निमग्न श्रीकृष्ण राधासंस्पर्शलाभकर राधारूप होनेके लिये उद्यत रहते हैं (१-१४)। इधर श्रीराधा रसिकेन्द्रके मुखेन्दुबिम्ब (मुखचन्द्रमण्डल)-का दूरसे दर्शनकर तथा वेणुनादामृतके पानसे विह्वलांगी होकर चम्पकलताके तुल्य चमत्कृतांगी होकर लज्जाके वशीभूत हो जाती हैं, पुनः श्यामसुन्दरसुधासागरसे संगमार्थ संकेतकुंजकी ओर द्रुतगतिसे चलनेके लिये विवश होती हैं। संकेतकुंजमें मधुरालापादिसे संगमित होती हैं (१५-१८)।

कृपापूर्वक वृषभानुभवनमें प्रादुर्भूत होनेवाली विद्युल्लताके समान देदीप्यमान पूर्णानुरागरसमूर्ति ज्योतिःस्वरूपा श्रीराधा सम्पूर्ण बाधाओंको हरनेवाली हैं, वेदोंकी परम रहस्य हैं। वे परमपुरुष भगवान्‌को भी रति प्रदान करनेवाली हैं(१९-४०)।

श्रीराधामाधवरहस्याधिकारोत्सवकी समुपलब्धि वृन्दावननागरी गोपांगनाओंके भावभावित चित्तमें ही सम्भव है। श्रीराधातत्त्व और राधादास्य वेदोंके शिरोभाग उपनिषदोंका परमगुप्त रहस्य है। हितसखीके मनमें श्रुतिमौलिशेखरलता श्रीराधाको अपने ऊपर प्रसन्न रखनेकी भावना है। श्रीराधाराधनसे ही श्रीकृष्णदास्य और श्रीकृष्णाराधनसे ही राधादास्य सम्भव है, अन्यथा नहीं। यथा—

यद्वृन्दावनमात्रगोचरमहो यन्न श्रुतीकं शिरोऽ-
प्यारोढुं क्षमते न यच्छिवशुकादीनां तु यद्ध्यानगम्।
यत्प्रेमामृतमाधुरीरसमयं यन्नित्यकैशोरकं
तद्रूपं परिवेष्टुमेव नयनं लोलायमानं मम॥

(रा० सु० नि० ७६)

जो केवल वृन्दावनमें ही दृष्टिगोचर होता है, अन्यत्र नहीं। जिसका वर्णन करनेमें श्रुतिशिरोभाग उपनिषद् भी समर्थ नहीं हैं। जो शिव और शुकादिके भी ध्यानमें नहीं आता, जो प्रेमामृतमाधुरीसे परिपूर्ण है और नित्य किशोर है, उस रूपको खोजनेके लिये मेरे नेत्र चंचल (अधीर) हो रहे हैं।

यद्गोविन्दकथासुधारसह्रदे चेतो मया जृम्भितम्
यद्वा तद्गुणकीर्तनार्चनविभूषाद्यैर्दिनं प्रापितम्।
यद्यत्प्रीतिरकारि तत्प्रियजनेष्वात्यन्तिकी तेन मे
गोपेन्द्रात्मजजीवनप्रणयिनी श्रीराधिका तुष्यतु॥

(रा० सु० नि० ११४)

जो कुछ भी मैंने गोविन्दके कथासुधारससरोवरमें अपने चित्तको डुबाया है अथवा उनके गुणकीर्तन, चरणार्चन और उन्हें विभूषणादिविभूषित करनेमें दिन लगाया है; किंवा उनके प्रियजनोंके प्रति जिस-जिस आत्यन्तिकी प्रीतिका विधान किया है या मेरे द्वारा हुआ है, उनके फलस्वरूप गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी जीवनप्रणयिनी श्रीराधिका मुझपर प्रसन्न हों।

यस्याः प्रेमघनाकृतेः पदनखज्योत्स्नाभरस्नापित-
स्वान्तानां समुदेति कापि सरसा भक्तिश्चमत्कारिणी।
सा मे गोकुलभूपनन्दनमनश्चोरी किशोरी कदा
दास्यं दास्यति सर्ववेदशिरसां यत्तद्रहस्यं परम्॥

(रा० सु० नि० २०४)

जिन प्रेमघनाकृति किशोरीके पदनखज्योत्स्नाप्रवाहमें स्नान करके हृदयोंमें कोई अनिर्वचनीय-सरस-चमत्कारिणी भक्ति समुदित होती है। वे गोकुलभूपतनय श्रीकृष्णचन्द्रके मनका भी हरण करनेवाली किशोरी मुझे अपना सर्ववेदशिरोमणि उपनिषदोंका भी परम रहस्यरूप दास्य कब प्रदान करेंगी।

राधादास्यमपास्य यः प्रयतते गोविन्दसङ्गाशया
सोऽयं पूर्णसुधारुचेः परिचयं राकां विना काङ्क्षति।
किञ्च श्यामरतिप्रवाहलहरीबीजं न ये तां विदु-
स्ते प्राप्यापि महामृताम्बुधिमहो बिन्दुं परं प्राप्नुयुः॥

(रा० सु० नि० ७९)

जो लोग श्रीराधाके चरणोंका सेवन छोड़कर गोविन्दके संगलाभकी चेष्टा करते हैं, वे मानो पूर्णिमाके बिना ही पूर्णसुधाकर (चन्द्र)-का परिचय चाहते हैं। वे यह नहीं जानते कि श्यामसुन्दरके रतिप्रवाहकी लहरियोंका बीज श्रीराधा ही हैं। आश्चर्य है कि ऐसा न जाननेसे

ही वे अमृतका महान् समुद्र पाकर भी उनसे केवल बूँदमात्र ही प्राप्त कर पाते हैं।

श्रीकिशोरीके कैंकर्यरसामृतरूप षष्ठ पुरुषार्थपर पुरुषार्थचतुष्टयसहित पंचम पुरुषार्थरूपा एकान्त-भगवद्भक्तियोगपदवी न्योछावर है। यथा—

धर्माद्यर्थचतुष्टयं विजयतां किं तद् वृथा वार्तया
सैकान्तेश्वरभक्तियोगपदवी त्वारोपिता मूर्धनि।
यो वृन्दावनसीम्नि कश्चन घनाश्चर्यः किशोरीमणि-
स्तत्कैङ्कर्यरसामृतादिह परं चित्ते न मे रोचते॥

(रा० सु० नि० ७७)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये उत्तम चार फल यदि विश्वमें उत्कृष्टताको प्राप्त हैं, तो भले ही रहें, हमें इनकी व्यर्थ चर्चासे क्या? ईश्वरकी उस एकान्तभक्तियोगपदवीको भी हम सिर-माथे चढ़ाते हैं, अर्थात् भक्तियोगका आदर तो करते हैं, पर हमें उससे भी क्या लेना-देना? हमारे चित्तको श्रीवृन्दावनकी सीमामें विराजमान किसी घनीभूत आश्चर्यरूपा किशोरीमणिके कैंकर्यरसामृतके अतिरिक्त और कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

अलं विषयवार्तया नरककोटिबीभत्सया
वृथा श्रुतिकथाश्रमो बत बिभेमि कैवल्यतः।
परेशभजनोन्मदा यदि शुकादयः किं ततः
परं तु मम राधिकापदरसे मनो मज्जतु॥

(रा० सु० नि० ८३)

कोटिनरकतुल्य यातनाफलक ऐहिकसुखप्रद अर्थकामरूप विषयवार्त्ता अब बन्द कर देना ही उपयुक्त है। स्वर्गादिसाधक वेदवार्ता भी व्यर्थ भ्रम ही है। वेदान्तसम्मत कैवल्य भी मेरे लिये भयप्रद है। परेशभजनोन्मद शुकादिसे भी क्या लेना-देना? मेरा मन तो केवल श्रीराधाके पदरसमें ही निमग्न रहे, बस इतनी ही चाह है।

सौन्दर्यश्री जिन राधाचरणोंका प्रणतिपुरःसर स्पर्शलाभ-कर और संवाहन करके रसघनमोहन श्रीहरि परम प्रमुदित होते हैं तथा रसोत्सव मनाते हैं, जिनका रुचिर मयूरपिच्छ श्रीराधाचरणोंमें यत्र-तत्र विलोडित होता रहता है, उनकी भक्ति ही सखीका जीवनसर्वस्व है—

पादस्पर्शरसोत्सवं प्रणतिभिर्गोविन्दमिन्दीवर-
श्यामं प्रार्थयितुं सुमञ्जुलरहः कुञ्जांश्च सम्मार्जितुम्।
मालाचन्दनगन्धपूररसवत्ताम्बूलसत्पानका-
न्यादातुं च रसैकदायिनि तव प्रेष्या कदा स्यामहम्॥

(रा० सु० नि० ६०)

रसकी एकमात्र दायिनि मेरी स्वामिनि! प्रणतिके द्वारा आपके चरणोंका स्पर्श ही जिनके लिये रसोत्सवरूप है, ऐसे इन्दीवरश्यामको आपके प्रति प्रार्थित करूँ, सुन्दर-सुमंजुल-एकान्तनिकुंजभवनका मार्जन करूँ तथा पुष्पमाला, चन्दन, इत्रदान (परिमलपात्र), रसयुक्त ताम्बूल और अनेक प्रकारके सुस्वादु पेयपदार्थ आपके कुंजभवनमें पहुँचाऊँ, भला कभी ऐसी दासीके रूपमें आप मुझे स्वीकार करेंगी?

लब्ध्वा दास्यं तदतिकृपया मोहनस्वादितेन
सौन्दर्यश्रीपदकमलयोर्लालनैः स्वापितायाः।
श्रीराधाया मधुरमधुरोच्छिष्टपीयूषसारं
भोजं भोजं नवनवरसानन्दमग्नः कदा स्याम्॥

(रा० सु० नि० ८६)

श्रीस्वामिनीजीके पदकमल सौन्दर्यकी राशि हैं। उन चरणोंको अच्छी तरहसे पलोटकर प्यारेने श्रीजीको शयन करा दिया है। श्रीलालजीने उनके मधुर-मधुर अमृतसाररूप उच्छिष्ट प्रसादको उनकी अति कृपासे प्राप्त करके स्वाद लिया है, मैं उसी प्रसादको प्राप्त करूँ। इस प्रकार मैं आपका दास्य प्राप्त करके कब नव-नव रसानन्दमें मग्न होऊँगी?

रसघनमोहनमूर्तिं विचित्रकेलीमहोत्सवोल्लसितम्।
राधाचरणविलोडितरुचिरशिखण्डं हरिं वन्दे॥

(रा० सु० नि० २००)

जिनका रुचिर मयूरपिच्छ श्रीराधाचरणोंमें यत्र-तत्र विलोडित होता रहता है तथा जो विचित्रकेलिमहोत्सवसे उल्लसित हैं, मैं उन रसघनमोहनमूर्ति हरिकी वन्दना करती हूँ।

शान्त, दास्य, सख्यादिभावोंसे उच्छलित आनन्दको सर्वस्व समझनेवाले शान्त, दास्य, सख्यादिभावोंमें निमग्न रहें, श्रीराधाकिंकरियोंके लिये श्रीराधाचरणनखमणि-चन्द्रिकाकी एक किरण ही सर्वसुखसार है—

ब्रह्मानन्दैकवादाः कतिचन भगवद्वन्दनानन्दमत्ताः
केचिद् गोविन्दसख्याद्यनुपमपरमानन्दमन्ये स्वदन्ते।
श्रीराधाकिङ्करीणां त्वखिलसुखचमत्कारसारैकसीमा
तत्पादाम्भोजराजन्नखमणिविलसज्ज्योतिरेकच्छटापि॥

(रा० सु० नि० १४७)

कोई ब्रह्मानन्दवादी हैं, तो कोई भगवद्वन्दनानन्दमें ही उन्मत्त हैं। कुछ लोग गोविन्दके सख्यादिको ही परमानन्द मानकर उसके आस्वादनमें संलग्न हैं, किंतु श्रीराधाचरणकमलोंकी विलसित नखमणिज्योतिकी एक किरणमात्र ही श्रीराधाकिंकरियोंके लिये अखिलसुख-चमत्कारसारकी सीमा है।

परमरससुधामाधुरीधुरीण श्रीवृन्दारण्यस्थलीकी अनन्त अनुकम्पासे श्रीराधिकाकिंकरियोंको आस्वादनीय युगल-माधुर्यकी समुपलब्धि—

किं ब्रूमोऽन्यत्र कुण्ठीकृतकजनपदे धाम्न्यपि श्रीविकुण्ठे
राधामाधुर्यवेत्ता मधुपतिरथ तन्माधुरीं वेत्ति राधा।
वृन्दारण्यस्थलीयं परमरससुधामाधुरीणां धुरीणां
तद्द्वन्द्वं स्वादनीयं सकलमपि ददौ राधिकाकिंकरीभ्यः॥

(रा० सु० नि० १७५)

अन्यत्रकी तो बात ही क्या, श्रीविकुण्ठधाम भी युगलरसकी व्रजमें अभिव्यक्तिसे कुण्ठितप्रदेश बन गया है; क्यों न हो। श्रीराधाके माधुर्यको केवल माधव जानते हैं और माधवके माधुर्यको केवल श्रीराधा जानती हैं। इन आस्वादनीय युगलको परमरससुधामाधुरीधुरीण श्रीवृन्दारण्य-स्थलीने श्रीराधाकिंकरियोंको पूर्णतः प्रदान किया है।

काश्मीरगौरच्छवि, चम्पकगौरच्छवि श्रीराधाजीका नाम श्रीकृष्णके लिये जाप्य है। अत्यद्भुत दो वर्ण राधा नामका केवल एकबारका उच्चारण गोकुलपति श्रीकृष्णको तत्क्षण आकर्षित करनेवाला है, जिससे प्रेमियोंके लिये धर्मादि समस्त पुरुषार्थोंमें स्वच्छताका स्फुरण होने लगता है। इस नामसे अंकित मन्त्रराजके जपनेमें स्वयं श्रीकृष्ण सदा-सर्वदा प्रीतिपूर्वक संलग्न रहते हैं। योगीन्द्रोंके समान जिनकी चरणज्योतिके ध्यानपरायण होकर प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्र तथा गद्गद वाणीसे कालिन्दीतटके किसी निकुंजमन्दिरमें विराजमान श्रीकृष्ण भी स्वयं दो अक्षरोंकी पराविद्याका जप करते हैं (९४-९५)। श्रीराधानामके श्रवणकीर्तनादिके सुलभ होनेपर कोटि-कोटि श्रेष्ठसाधनसम्पदा भी त्याज्य हो जाती है (१४३)। स्वयं श्रीराधा भी अमृतरससंस्त्रावि **'श्याम'** इन वर्णोंका जप करती हैं (२५४)। क्यों न हो, एक-दूसरेके नामपर एक-दूसरे न्योछावर जो हैं? निभृतनिकुञ्जमें कैंकर्यका मनोरथ सँजोनेवाली सखी शिखिपिच्छमौलिका ध्यान करती हुई, उनके नामोंका कीर्तन करती हुई, उनके चरणाम्बुजोंकी नित्य परिचर्या करती हुई, उनके मन्त्रराजका जप करती हुई, श्रीराधापददास्यको हृदयमें धारण करती हुई, उनके अनुग्रहसे परमाद्भुत अनुरागोत्सव चाहती हुई (२५८) बरबस दोनोंकी एकरूपताको चरितार्थ करती है। हाँ, बात इतनी-सी है, यद्यपि ससुरालकी सखी अपनी सखीके नाते सखीके पतिसे प्रेम करती है और उनकी आराधना करती है, तथापि उसके लिये दोनोंकी अनुकम्पा अपेक्षित है तथा उसे दोनोंसे इतना घुलमिलकर रहना आवश्यक है कि दोनोंको ऐसा न लगे कि यह कोई भिन्न है। इस लोकसिद्ध लीलाकी प्रशस्त परिपाटीका नवनिभृत-राधारतिवनमें, कैंकर्यभावभावित सखीने आद्यन्त निर्वाह प्रस्तुत काव्यमें किया है। सखी तरलसुवर्णसदृश पीतच्छविवसन एवम् मयूरपिच्छरचित मुकुटधारी नीलेन्दीवरकिशोर श्रीकृष्णको अपने हृदयमें धारण करके उनका ध्यान करती हैं। इससे प्रसन्न होकर दवीयदृष्टि (दूरदर्शी) महानुभावोंकी पदस्वरूपा श्रीराधा सखीको अपना कैंकर्य प्रदान करती हैं। श्रीराधा श्रुति, सुधी और श्रीकृष्णके लिये भी मृग्य हैं, तथापि महन्मार्ग (महामार्ग)-से च्युत अपराधरत किंतु शरणापन्नके प्रति भी करुणार्द्र हैं (२६९)।

यल्लक्ष्मीशुकनारदादिपरमाश्चर्यानुरागोत्सवैः
प्राप्तं यत्कृपयैव हि व्रजभृतां तत्तत्किशोरीगणैः।
तत्कैङ्कर्यमनुक्षणाद्भुतरसं प्राप्तुं धृताशे मयि
श्रीराधे नवकुञ्जनागरि कृपादृष्टिं कदा दास्यसि॥

(रा० सु० नि० ८५)

हे नवकुञ्जनागरि! मैं आपकी उस कैंकर्यप्राप्तिकी आशाको धारण किये हुए हूँ, जिससे क्षण-क्षणमें अद्भुतरसकी प्राप्ति होती है और जिसे उन अनुरागरसमयी व्रजकिशोरीगणोंने प्राप्त किया था, जिन गोपव्रजबालाओंके अनुरागोत्सवकी लालसा लक्ष्मी, शुक, नारदादिको भी रहती है। हे श्रीराधे! मेरे लिये आप अपनी उस कृपादृष्टिका दान क्या कभी करोगी?

रसवती सिद्धिप्रदा श्रीकृष्णोपास्या श्रीराधानाम्नी श्रुतिमौलिशेखरलताकी श्रीकृष्णाराधनमें अद्भुत तत्परता—

या वाराधयति प्रियं व्रजमणिं प्रौढानुरागोत्सवैः
संसिद्ध्यन्ति यदाश्रयेण हि परं गोविन्दसख्युत्सुकाः।

यत्सिद्धिः परमापदैकरसवत्याराधनात्ते नु सा
श्रीराधा श्रुतिमौलिशेखरलतानाम्नी मम प्रीयताम्॥

(रा० सु० नि० ९७)

जिस प्रकार व्रजमणि प्रियतम उनका आराधन करते हैं, उसी प्रकार वे भी प्रकृष्टानुरागके उल्लाससे परिपूर्ण होकर अपने प्रियतमका आराधन करती हैं। गोविन्दके साथ सख्यभावप्राप्तिके लिये उत्सुक महानुभाव भी जिनके आश्रयसे रससिद्धि लाभ करते हैं, जिनके आराधनसे परमपदरूपा कोई रसवती सिद्धि प्राप्त होती है, वे ही राधानाम्नी श्रुतिमौलिशेखरलता मुझपर प्रसन्न हों।

वियोगदशामें दिन व्यतीत करनेकी तथा संगमदशाको उद्दीप्त करनेकी श्रीराधाद्वारा प्रकटित विचित्र विधा—

वीणां करे मधुमतीं मधुरस्वरां ता-
माधाय नागरशिरोमणिभावलीलाम्।
गायन्त्यहो दिनमपारमिवाश्रुवर्षै-
र्दुःखान्नयन्त्यहह सा हृदि मेऽस्तु राधा॥

(रा० सु० नि० ४८)

अहो! जो स्वरलहरीभरी अपनी मधुमती नाम्नी वीणाको उठाकर करकमलोंमें धारण करके अपने प्रियतम नागरशिरोमणि श्रीलालजीकी भावलीलाओंको गाती रहती हैं और बड़ी कठिनतासे अपार-सा दिन अश्रुओंकी वर्षाद्वारा व्यतीत करती हैं। अहह! ऐसी प्रेमविह्वला श्रीराधा मेरे हृदयमें निवास करें।

विपञ्चितसुपञ्चमं रुचिरवेणुना गायता
प्रियेण सहवीणया मधुरगानविद्यानिधिः।
करीन्द्रवनसम्मिलन्मदकरिण्युदारक्रमा
कदा नु वृषभानुजा मिलतु भानुजारोधसि॥

(रा० सु० नि० ५७)

जैसे मदमाती करिणी वनमें गजराजसे संगम प्राप्त करनेके लिये उदार गतिसे आती है, ऐसे ही जो मदगजमाती गतिसे पादविन्यास करती हुई श्रीयमुनाके पुलिनपर पधारी हैं। जो मधुरगानविद्यानिधि अपनी वीणामें सुमधुर गान करने लगी हैं, अहा! जिनकी वीणाके पञ्चमस्वरसे मिलाकर श्रीलालजीने भी अपने वेणुकी तान छेड़ दी है। ऐसी वृषभानु-नन्दिनी अपने प्रियतमके साथ मुझे यमुनातटपर कब मिलेंगी?

प्रेमोल्लासरसविलासविकासकन्द श्रीराधावदनचन्द्रके दर्शनोंके लिये समुत्सुक और वितृप्त सखी एवं श्रीकृष्णके लोचनचकोर—

प्रेमोल्लसद्रसविलासविकासकन्दं
गोविन्दलोचनवितृप्तचकोरपेयम्।
सिञ्चन्तमद्भुतरसामृतचन्द्रिकौघैः
श्रीराधिकावदनचन्द्रमहं स्मरामि॥

(रा० सु० नि० ४१)

जो प्रेमसे उल्लसित रसविलासका विकासबीज है एवं गोविन्दके अतृप्त लोचनचकोरोंके लिये पेयस्वरूप है, उसी अद्भुत रसामृतचन्द्रिकाधारासिंचनकारी श्रीराधिका-मुखचन्द्रका मैं स्मरण करती हूँ।

युगलमाधुरी

(पंचरसाचार्य श्रद्धेय स्वामी श्रीमद्रामहर्षणदासजी महाराज)

मधुर मधुर अति मधुर लगै, दोउ प्रीतम प्यारी।
लगत रहत हिय में यह हरदम, कबहुँक होंहि न तुमते न्यारी॥
देखत रहहिं हमारे नयना, युगल मूर्ति मन मोहनि वारी।
चित्त चोरावनि छवि छहरावनि, रस वर्धनि रस ही रस वारी॥
कंज खंज मृग मीन को मर्दहिं, लली लाल अँखियाँ कजरारी।
मंद मंद मुसुकानि मधुरिमा, को न ठगै रस रूप निहारी॥
अंग अंग छवि मदन मनोहर, सुख सुखमा शृंगार अपारी।
'हर्षण' हर्ष बढ़त मन मन्दिर, सुरति करत उर अजिर बिहारी॥

भगवान् श्रीराधामाधवकी उपासना एवं स्वाभाविक द्वैताद्वैतसिद्धान्त

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीश्यामशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज, श्रीनिम्बार्कतीर्थ, अजमेर)

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धि-
र्देहेनैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत्।
देहो यथा छायया शोभमानः
शृण्वन् पठन् याति तद्धाम शुद्धम्॥

(श्रीराधिकोपनिषद् १२)

श्रीराधिकोपनिषद्के इस मन्त्रमें नित्यनिकुंजविहारी युगलस्वरूप श्रीराधामाधवका परस्पर भिन्न-अभिन्न सम्बन्ध प्रदर्शित है। जो सकल लोक-वेदमें प्रसिद्ध परमवात्सल्यमयी भगवान् श्रीमाधवकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा हैं और जो विश्वका भरण-पोषण करनेवाले सच्चिदानन्द परब्रह्म श्रीमाधव हैं; ये दोनों नाम-रूप लीला-धामरूपी रसके सागर हैं, अतः इन दोनोंका श्रीविग्रह रूपगुणशीलादिसे तो एक ही है किंतु लीलाविहारके लिये गौरतेज और श्यामतेजसे नार्याकृति एवं नराकृतिरूपमें भिन्नरूपसे आविर्भूत हुए हैं। कहा भी है—

राधां कृष्णस्वरूपां वै कृष्णं राधास्वरूपिणम्।
कलात्मानं निकुञ्जस्थं गुरुरूपं सदा भजे॥

श्रीराधा श्रीकृष्णस्वरूप हैं एवं श्रीकृष्ण श्रीराधास्वरूप हैं। दोनों अनन्त कलाओंका साकाररूप हैं। उन नित्यस्वरूप निकुंजस्थित श्रीराधामाधवकी मैं सर्वतोभावेन नवनवायमान लीलाओंके समुपदेशकरूपमें सेवा करता हूँ। ये दोनों स्वरूप शरीर और छायाके समान परस्पर भिन्न-अभिन्न हैं।

यद्यपि 'समुद्रतरंगवत्' यह उपमा नित्य एकरस परब्रह्म परमात्मतत्त्वमें सर्वथा घटित नहीं हो सकती तथापि विवक्षित विषयके एक भागको लेकर भी उपमा ग्रहण की जाती है। जब श्रीमाधव समुद्रकी तरह धीर-गम्भीर बन जाते हैं, तब श्रीराधा तरंगके समान परम चंचल हो जाती हैं और जब श्रीराधा समुद्रसमान धीर-गम्भीर होती हैं तो श्रीमाधव तरंगसमान परम चंचल हो जाते हैं। ये दोनों रसके सागर, चेतना-चेतनात्मक जगत्के नियन्ता एवं सर्वेश्वर हैं, इसलिये दोनोंकी ब्रह्मरूपता तथा स्वाभाविक भिन्न-अभिन्नता सिद्ध होती है। आद्याचार्यचरण श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य वेदान्त-दशश्लोकीमें उपास्यस्वरूप परब्रह्मतत्त्वका कितना सुन्दर निरूपण करते हैं—

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषमशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्॥
अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥

भगवान् श्रीराधामाधव स्वभावसे ही समस्त दोषोंसे रहित हैं। अतएव सबको दोषरहितकर मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। आप शान्ति, ज्ञान, कारुण्य आदि स्वरूपगुण एवं सौन्दर्य, माधुर्य, मार्दवादि विग्रहगुणोंके पारावार हैं।

परब्रह्म परमात्माको मायिक गुणोंसे निर्लिप्त; अतएव निर्गुण बतलानेवाले वेदमन्त्र भी यथार्थ ही हैं, क्योंकि समस्त कल्याणगुणोंके समुद्र सर्वाधार श्रीसर्वेश्वर श्रीराधामाधवप्रभु प्राकृतिक गुणोंसे लिप्त नहीं होते। निर्गुण, निराकार, निर्विशेष इत्यादि शब्दोंका तात्पर्य गुणरहित या आकाररहित एवं विशेषणविहीन नहीं समझना चाहिये; क्योंकि संसारकी भली-बुरी कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसके आधार भगवान् न हों। जब समस्त विश्व और दिव्य सद्गुणोंके आधार प्रभु ही हैं, तब उन्हें निर्गुण कैसे कह सकते हैं? वास्तवमें ब्रह्म

सगुण ही है। अपने अन्दर स्थित त्रिगुणात्मिका प्रकृति और उसके गुण-दोषोंसे लिप्त न होनेके कारण ही उसे निर्गुण कहते हैं। इस विषयमें श्रीमद्भागवतमें एक सुन्दर प्रसंग है, जिसमें महाराज परीक्षित्को शंका हुई कि अनिर्देश्य एवं निर्गुण ब्रह्मका श्रुतियाँ किस प्रकार प्रतिपादन करती हैं ?

ब्रह्मन् ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः।
कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात् सदसतः परे॥

(श्रीमद्भागवत १०। ८७। १)

श्रीशुकदेवजी इस शंकाका समाधान वेदस्तुतिके माध्यमसे करते हैं—

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः॥

(श्रीमद्भागवत १०। ८७। १४)

श्रुतियाँ कहती हैं, यद्यपि हम आपका स्वरूपतः वर्णन करनेमें असमर्थ हैं, परंतु जब कभी आप मायाके द्वारा जगत्की सृष्टि करके सगुण हो जाते हैं अथवा उसका निषेध करके स्वरूपस्थितिकी लीला करते हैं अथवा अपना सच्चिदानन्दघनस्वरूप श्रीविग्रह प्रकट करके क्रीडा करते हैं, तब हम यत्किंचित् आपका वर्णन करनेमें समर्थ होती हैं।

'क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः' इस स्मृतिवाक्यसे सिद्ध होता है कि वेदोंमें जिस परब्रह्मतत्त्वका निरूपण हुआ है, वह सगुण ब्रह्म है; क्योंकि अनाम-रूपादि निर्विशेष ब्रह्मके निरूपणमें श्रुतियाँ स्वयंको असमर्थ पाती हैं।

भगवान् श्रीराधामाधवप्रभु एकमात्र सर्वतोभावेन सबके वरेण्य हैं। आपके मुखारविन्दकी शोभा अतिशय दर्शनीय है, जिसका दर्शनकर भक्तवृन्द स्वयंकी सुध-बुध खोकर तन्मय हो जाते हैं। आपके अत्यन्त सुकोमल श्रीविग्रहका स्पर्श अनिर्वचनीय आनन्द प्रदान करनेवाला है, जिससे भक्तजन अनायास ही समस्त क्लेशोंसे पार हो जाते हैं। आपके युगल चरणारविन्द परम सेवनीय हैं, जिनके आश्रित होनेपर शरणागत जीव तत्क्षण भवबन्धनसे छूट जाता है।

इस चराचर निखिल विश्वमें सूक्ष्म-से-सूक्ष्म कोई भी वस्तु नहीं, जिसमें भगवान् श्रीराधामाधव ओतप्रोत न हों। **'अथात आदेशो नेति नेति'** इत्यादि श्रुतियाँ भगवान्के अतिरिक्त समस्त चराचर जगत्की स्वतन्त्र सत्ताका निषेध करती हैं। सबकी सत्ता भगवान्के ही अधीन है, अतएव परतन्त्र सत्तावाले इस जडचेतनात्मक जगत्के आधार भी भगवान् ही हैं। विश्वमें ओतप्रोत रहते हुए भी भगवान् इससे निर्लिप्त; अतएव परे हैं। वे प्राकृतिक गुण-दोषोंसे रहित और समस्त दिव्य गुणोंके आश्रय हैं, अतएव उन्हें सविशेष-निर्विशेष, सगुण-निर्गुण सब कुछ कह सकते हैं। यही स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्तका निगूढ रहस्य है।

परस्परविरुद्ध धर्म भी परमात्मामें अविरुद्धरूपसे रहते हैं। श्रीराधामाधवका युगलविग्रह परस्परविरुद्ध धर्मवाला होते हुए भी वस्तुतः दोनोंमें कोई भेद नहीं है। सर्वथा अभेद भी नहीं कह सकते। इसलिये भेदाभेद इस शब्दसंयोजनसे परमात्मतत्त्व विवक्षित होता है। **'अणोरणीयान् महतो महीयान्'** इत्यादि श्रुतियाँ भगवान्को सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और महान्-से-भी-महान् बतलाती हैं।

आत्माकी एकता बतलानेवाली श्रुतियाँ भी मिलती हैं और बहुत-सी श्रुतियाँ अनेकताका भी प्रतिपादन करती हैं; वे सभी श्रुतियाँ यथार्थ हैं। वही उत्तम अधिकारी है, जिसके हृदयमें भगवान् श्रीराधामाधव भेदरूपसे भी प्रतीत होते हों और अभेदरूपसे भी प्रतीत होते हों। यह भेदाभेदभावना स्वाभाविक है, अतः इसी भावनावाला साधक सबमें श्रेष्ठ माना गया है। ऐसी भावना उसी भाग्यशाली महात्माके हृदयमें प्रकाशित होती है, जिसपर भगवान् श्रीराधामाधवप्रभुकी पूर्ण कृपा हो। **'एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्'** (श्रीमद्भगवद्गीता ९। १५) इस भगवद्वाक्यसे भी यही प्रमाणित होता है।

यह चराचरात्मक समस्त विश्व परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीराधामाधवसे ही उत्पन्न होता है, उन्हीं सर्वाधारमें स्थित होकर वृद्धिको प्राप्त होता है और

उन्हींमें लीन होता है। श्रीसर्वेश्वर श्रीराधामाधवप्रभु ही इसके नियन्ता हैं, इसलिये यह विश्व भी ब्रह्मरूप अर्थात् ब्रह्मसे अभिन्न कहलाता है। सर्वाधार सर्वनियन्ता भगवान् श्रीराधामाधवप्रभु ही विश्वके अभिन्ननिमित्तो-पादान कारण, नियामक एवं आधार हैं, अतः विश्वको उनसे कभी भी पृथक् नहीं माना जा सकता। किंतु समस्त विश्व भगवान्का एक पाद ही माना जाता है, बाकी तीन पाद इससे ऊपर हैं। **'त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः'** ऐसा श्रुति कहती है। अतः उपनिषदोंमें विश्व और विश्वम्भरका भेदाभेदसम्बन्ध बतलाया गया है। उसी स्वाभाविक भेदाभेदका श्रीनिम्बार्कभगवान्ने समर्थन किया है।

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं
श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं
त्रिरूपतापि श्रुतिसूत्रसाधिता॥

(वेदान्तदशश्लोकी)

भगवान् श्रीराधामाधवप्रभुकी युगलरसमयी उपासना वैष्णवजनोंको अत्यन्त प्रिय है। भगवान्के नित्य निकुंजलीलारसका पान करनेवाले रसिक भक्त महानुभाव सारूप्यसायुज्यादि मोक्षको भी तुच्छ समझते हैं। मुक्ति तो इनके चरणोंकी दासी होती है। भगवान् स्वयं निजभक्तोंकी महिमाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद् विनान्यत्॥

(श्रीमद्भागवत ११। १४। १४)

भगवान्की निकुंजलीलाओंका रसपान करनेवाला रसिक भक्त भगवान्के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहता, यहाँतक कि मोक्षकी भी अभिलाषा नहीं रखता। फिर स्वर्गादिलोकोंकी कामना उसमें कैसे हो सकती है? ऐसा भक्त स्वयं तो आनन्दमें रहता है तथा अन्यको भी पावन बना देता है। भगवान् कहते हैं—

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(श्रीमद्भागवत ११। १४। २४)

भगवान् बुद्धको कभी नाचते हुए नहीं देखा गया और न ही भगवान् महावीरको कभी हँसते-गाते सुना गया; क्योंकि वहाँ निकुंजलीलाओंका रस प्रवाहित नहीं है। विना रसके वाणी गद्गद नहीं होती और न ही विना रसके रोना अथवा हँसना सम्भव हो सकता है। फिर गीत और नृत्य रसके अभावमें कहाँ सम्भव होंगे? यह सब भगवान् श्रीराधामाधवके युगलस्वरूपकी उपासना एवं निकुंजलीलाओंकी लोकोत्तर भावनाओंमें प्रस्फुटित होते हैं। हम सभी रासविहारी भगवान् श्रीराधामाधवप्रभुकी उपासनासे अपने जीवनको धन्य बनायें। भगवान् श्रीराधासर्वेश्वर श्रीराधामाधवप्रभु हमें अपने चरणोंमें शरण प्रदान करें।

'गोपियन को प्यारो कारी कमरी वारो'

एक ऐसी कथा है—भगवान् जब व्रजसे मथुरामें गये, तब गोपांगना विरहिणी होकर विलाप करने लगीं। किसीने कहा—'मथुरा बहुत दूर थोड़ी है, तुम वहीं जाकर प्रभुसे मिल आओ'। व्रजांगनाओंने ऐसा विलाप किया कि उनके अश्रुसागरमें जग डूब जाय, लोगोंने बहुत कुछ कहा-सुना तो वहाँपर सब गयीं। द्वारपालने भगवान्को खबर दी तो प्रभुने कहा—'आने दो'। व्रजांगनाएँ भीतर गयीं और श्रीकृष्णाचन्द्र परमानन्दका ऐश्वर्य देखा, देखते ही चट सबने घूँघट काढ़ा, कहने लगीं—'यह तो हमारे मनमोहन नहीं हैं; मुरलीमनोहर काली कमलीवाले नन्दलाल ही हमारे सर्वस्व हैं।' [भक्तिसुधा]

परमात्माका अद्वैतदर्शन—श्रीराधामाधव

(परमपूज्य संत श्रीहरिहर महाराजजी दिवेगाँवकर)

हम परमात्मतत्त्वको वास्तविकतासे तभी प्राप्त होते हैं, जब हमारी अविद्या निवृत्त हो जाती है। अविद्यारूप अज्ञान-उपाधिके कारण ही जीव विषयोंमें सुखबुद्धि धारण करके मिथ्या विषयोंको सत्य मान लेता है और उसे सत्यतत्त्वका दर्शन नहीं होता। दृश्य, द्रष्टा और दर्शन—इस त्रिपुटीसे रहित जो दर्शन हो जाय, वही सच्चा परमात्मदर्शन है। श्रीराधामाधवका स्वरूप अद्वैतभावसे पूर्ण है। भेद वहीं दिखता है, जहाँ हम आभासको सत्य मानते हैं। अद्वैतभाव तो उस सूर्यके समान है, जिसके उदय होनेसे अज्ञानरूप अन्धकार मानो भाग जाता है।

जबतक द्वैत रहता है, तबतक ही एक-दूसरेको देखता है और जब सब कुछ आत्मरूप हो जाता है, तब कौन किसको देखेगा? बृहदारण्यक उपनिषद्में आया है—

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत् केन कं पश्येत्॥

(बृहदारण्यक० २। ४। १४)

श्रीराधाजी जब श्यामसुन्दरका दर्शन करती हैं तो श्यामसुन्दर माधव राधारूप हैं और जब श्रीकृष्ण श्रीराधाजीको देखते हैं तो श्रीराधाजी माधवरूपा हैं।

द्वैत तो केवल आभासमात्र ही है। जीवकी अज्ञानदृष्टि ही द्वैतके आभासको सत्य मान लेती है।

यह जीव और ईश्वरका भेद भी मायाके कारण भ्रान्ति उत्पन्न कराता है, इसीलिये वेदान्तवेत्ताओंने ऐसा भी कहा है—

मायाख्यायाः कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ।
यथेच्छं पिबतां द्वैतं तत्त्वं त्वद्वैतमेव हि॥

अर्थात् माया नामक कामधेनु गायके दो वत्स हैं—'जीव और ईश्वर'—ये दोनों ही अपनी इच्छाके अनुरूप द्वैतरूप दुग्धका पान करें, परंतु परमार्थ-तत्त्व तो अद्वैत ही है।

श्रीराधाजी तो परमात्माकी साक्षात् आह्लादिनी शक्ति हैं। श्रीराधामाधवके स्वरूपमें द्वैत कैसे हो सकता है? श्रीराधाजी आनन्दरूपा हैं और आनन्द ही ब्रह्म कहा गया है।

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति॥

(तैत्तिरीय० ३। ६। १)

श्रीराधाजी ही जीवन हैं; क्योंकि आनन्दके कारण ही जीव जनमा हुआ है, जीता है और श्रीराधाजी आनन्दमूर्ति हैं।

जीव जिस जगत्में विचरण करता है, वह जगत् परमात्माकी शक्तिरूपा प्रकृतिके ही अंग-भूत कारणकार्य-समुदायसे व्याप्त हो रहा है; क्योंकि ईश्वर तो मायापति माधव है और इस मायाको ही प्रकृति जानना चाहिये। यथा—

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ४। १०)

श्रीमाधवका स्वरूप तो निर्गुण निराकार कहा गया है। जहाँ प्रज्ञा नहीं पहुँचती और प्रज्ञा शेष भी नहीं रहती, वह श्रीराधामाधवतत्त्व तो अग्राह्य, अलक्ष्य, लक्ष्यातीत, प्रपंचरहित, शान्त, शिव, अद्वैतरूप है।

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षण-मचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।

(माण्डूक्योपनिषद् ७)

उस तत्त्वका ज्ञान होनेपर द्वैत शेष नहीं रहता **'ज्ञाते द्वैतं न विद्यते'**। वह अद्वैतरूप परमात्मा ही सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त है। वही सबसे दूर भी है और वही सबसे समीप भी है। वह परमात्मा बाहर भी है और भीतर भी है। बाहर-भीतर (अन्तर्बाह्य) तो दृष्टिका ही भेद है। उसी निर्गुण तत्त्वसे यह सम्पूर्ण सृष्टि भी निर्मित हुई है। यह सम्पूर्ण जगत् श्रीराधामाधवका ही विस्तार है—

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

(ईशावास्योपनिषद् ५)

श्रीराधामाधवका अद्वैतरूप कैसा है—ध्यानयोगमें स्थित होकर अपने गुणोंसे ढकी हुई उन परमात्माकी स्वरूप-भूत अचिन्त्य शक्तिका साक्षात्कार किया जा सकता है। जो अकेले ही काल, कर्म, स्वभाव और आत्मातक सम्पूर्ण कारणोंपर शासन करते हैं। उन परमात्मदेवकी अचिन्त्यशक्ति श्रीराधाजी हैं और वे परमात्मदेव भगवान् श्रीमाधव हैं।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि
कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् १। ३)

भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधाजीसे कहते हैं—'जिस प्रकार दूधमें धवलता, अग्निमें दाहकशक्ति, पृथ्वीमें गन्ध है, जलमें शीतलता है, उसी प्रकार हे श्रीराधे! तुममें मेरी स्थिति है। तुममें मैं स्थित हूँ। धवलता और दूधमें जिस प्रकार भेदका अभाव (ऐक्य) है; उसी प्रकार श्रीराधे! तुम मुझसे अभिन्न हो। हम दोनोंमें भेद नहीं है। हे श्रीराधे! मेरे बिना तुम निर्जीव हो और तुम्हारे बिना मैं अदृश्य हूँ। हे सुन्दरी! तुम्हारे बिना मैं संसारकी रचना नहीं कर सकता; जिस प्रकार कुम्हार मिट्टीके बिना घड़ा नहीं बना सकता, सुनार सोनेके बिना आभूषण निर्माण नहीं कर सकता, उसी प्रकार तुम्हारे बिना यह विश्व भी नहीं हो सकता। हे श्रीराधे! परमात्मा जैसे नित्य हैं, उसी प्रकार साक्षात् प्रकृतिरूपा तुम भी नित्य हो। तुममें सम्पूर्ण शक्तियोंका समाहार है। तुम ही सबकी आधार हो और सनातनी हो।

यह संवाद ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आया है

यथा क्षीरे च धावल्यं दाहिका च हुताशने।
भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्वयि मम स्थितिः॥
धावल्यदुग्धयोरैक्यं दाहिकानलयोर्यथा।
भूगन्धजलशैत्यानां नास्ति भेदस्तथावयोः॥
स्वयमात्मा यथा नित्यस्तथा त्वं प्रकृतिः स्वयम्।
सर्वशक्तिसमायुक्ता सर्वाधारा सनातनी॥

(ब्र० वै० श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६। २१४-१५, २१८)

इन्द्र आदि देवता भी जिस अविनाशी परम आनन्दका अनुभव करते हुए एकमात्र कारणभूत जिस ब्रह्ममें अपनी आत्माको प्रेरित करते हैं, वही श्रीराधामाधवतत्त्व है।

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम्।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त॥

(अथर्ववेद २। १। ५)

श्रीराधामाधव-अनुस्मरण

दिव्यातिदिव्यतडिदम्बरशोभमानं राधामनोहरमुखस्मितमोदमानम्।
गोपालबाललललनापरिसेव्यमानं गोविन्ददेवमनिशं मनसा स्मरामि॥

दिव्यताका भी अतिक्रमण करनेवाले विद्युत्कान्तिके सदृश पीताम्बरसे जो शोभित हो रहे हैं; श्रीराधाके मनोहर मुखसे छिटकती हुई मुसकान जिनको आह्लादित कर रही है तथा मुग्ध गोपांगनाएँ जिनकी सब प्रकारसे सेवा कर रही हैं—ऐसे श्रीगोविन्ददेवका मैं अन्तःकरणसे स्मरण करता हूँ।

राधाकटाक्षप्रमुदास्यनेत्रं क्रीडाप्रकर्षप्रणयातिदास्यम्।
केलिक्रमाद्विह्वलचित्तजातं गोविन्ददेवं मनसा स्मरामि॥

श्रीराधाकी विलासपूर्ण चितवनसे जिनका मुख तथा नेत्र समुल्लसित हो रहे हैं; (श्रीराधाके) सुन्दर लीलाविलासों तथा प्रीतिभावके कारण जो (उनकी) परिचर्यामें निरत हैं तथा (श्रीराधाके साथ की गयी लोकोत्तर) रासकेलिसे जिनका मानस विह्वल हो गया है—ऐसे श्रीगोविन्ददेवका मैं अन्तःकरणसे स्मरण करता हूँ।

—पं० श्रीगंगाधरजी पाठक 'वेदाद्याचार्य'

राधामाधव एक

(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिलभारतवर्षीय धर्मसंघ)

अचिन्त्य अपरिमित अनन्त गुणगणनिलय सर्वेश्वर सर्वनियन्ता जगदाधार अद्वय ब्रह्म अपनी नैसर्गिक अवस्था निर्गुण-निराकारतासे सगुण-निराकार होते हैं। तदनन्तर सगुण-साकार होकर सृष्टि-पालन-संहार-निग्रह तथा अनुग्रह आदि विविध कर्मोंके सम्पादनार्थ सिसृक्षु ब्रह्मा, बुभूषु विष्णु, जिहीर्षु शिव, गणपति, जगदम्बिका, मर्यादारक्षकावतार श्रीराम, लीलालास्यसंलग्न गीतोपदेशक श्रीकृष्ण आदि त्रिभुवनकमनीय दिव्य स्वरूप धारणकर भक्तवाञ्छाकल्पतरु बन जाते हैं।

यद् यद् धिया त उरुगाय विभावयन्ति।
तत् तद् वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

(श्रीमद्भागवत ३।९।११)

यहाँ भगवान्‌के लिये 'उरुगाय' सम्बोधन विलक्षण है।

(१) उरुधैव—अनेक प्रकारसे, **गीयते वेदेन इति**=वेदके द्वारा जिनकी महिमाको गाया गया है।

(२) उरुभिः—श्रेष्ठैः-महद्भिः-वेदविद्भिः-तत्त्वज्ञैः-ऋषिभिः वेदतत्त्वज्ञ अतिश्रेष्ठ ऋषियोंद्वारा गीयते इति=जिनकी महिमाका अपने-अपने अनुभवोंके अनुसार अनेक प्रकारसे गान किया गया है।

(३) उरुधा—अनेकधा=अनेक प्रकारसे, **गानं भवति यस्य**=जिनकी विलक्षण कीर्तिका गान किया जाता है।

हे उरुगाय! आपके भावुक भक्त जिस-जिस भावसे आपका ध्यान करते हैं, आप अपने उन ऐकान्तिक भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये वही-वही स्वरूप धारण करके प्रकट हो जाते हैं।

अच्छा; उस अद्वय अखण्ड ज्ञानसत्ताको ज्ञानी ब्रह्म कहते हैं। योगी उन्हें परमात्मा कहते हैं। भक्त उन्हें भगवान् कहकर पुकारते हैं।

वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(श्रीमद्भागवत १।२।११)

उपर्युक्त इन सभी नामरूपात्मक अभिव्यक्त अवतारोंमें अपने लोकोत्तर चरित्रसे, लीला, धाम, नाम तथा रूपसे, अपने अप्रतिम सौन्दर्य, सौगन्ध्य, सौरस्य, सौमनस्य, माधुर्य, गाम्भीर्यादि दिव्यगुणोंसे बड़े-बड़े ज्ञानी, मानी, ध्यानी निर्गुणासक्त महर्षियोंके चित्तको भी श्रीहरि बलात् आकृष्ट कर लेते हैं—'**इत्थंभूतगुणो हरिः।**' कहते हैं त्रेताके दण्डकारण्यवासी उदासी संन्यासी महर्षिगण द्वापरमें व्रजमण्डलकी गोपिका बनकर श्रीकृष्णके रासोत्सवका रसपान किया करते हैं।

रामचन्द्रं दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरं मुनयो वनवासिनो विस्मिताः"" तं (रामं) होचुः"" आलिङ्गामो भवन्तम्। [स उक्तवान्] भवान्तरे कृष्णावतारे यूयं गोपिका भूत्वा मां आलिङ्गथ॥ (कृष्णोपनिषत् १)

सर्वांगसुन्दर सुकोमल शरच्चन्द्राह्लादकारी श्रीरामको दण्डकारण्यमें पाकर महात्माओंने निवेदन किया कि हम आपका स्पर्श करना चाहते हैं। भगवान्‌ने उनके मनोभावोंको जानकर कहा—'अग्रिम अवतारमें व्रजेश्वर माधव बनकर जब मैं आऊँगा, तब आप सब गोपी बनकर अपना मनोरथ पूर्ण कर लेना।'

ब्रह्मके उसी नित्यनूतन (दिने-दिने नवं-नवं) (प्रतिक्षण प्रवर्धमान) आनन्दरूप अवतारको श्रीराधामाधव कहा गया है। जिसका दर्शन करते ही पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-लता, सर-सरिता, वन-पर्वत, किरात-हूण, आन्ध्र, पुलिन्द-पुल्कस, यवनादि भी मन्त्रमुग्ध होकर खो जाते हैं, और किसीकी तो क्या कहें, स्वयं श्रीकृष्ण अपने ही प्रतिबिम्बको देखकर उसे पानेके लिये मचल उठते हैं। दर्पणगत प्रतिबिम्बसे याचना करते हैं—'लाला! तू मोते मित्रता करेगो, मेरे संग खेलेगो, आय जा। तोकूँ ताजो ताजो मक्खन खबाऊँगो।' नन्द-यशोदाप्रभृति समस्त गोप-गोपीमण्डल आनन्दसमुद्रमें गोता लगाते हुए लालकी लीलापर न्योछावर हो उठते हैं।

आइये, सर्वप्रथम श्रीराधामाधवकी एकताको सिद्ध करनेसे पूर्व रासरसेश्वरी नित्यनिकुंजेश्वरी वृषभानुनन्दिनी कीर्तिजा किशोरी श्रीराधाजीके विषयमें विचार करें—

श्रीराधा—

(१) राध्नोति—**साधयति भक्तानां सर्वाणि कार्याणि इति सा।** भक्तोंके सभी कार्योंको सिद्ध करनेवाली हैं श्रीराधा।

(२) राजते—**धरण्यां जीवोद्धाराय या सा राधा।** जो वसुधापर जीवोद्धारार्थ ही विराजित हैं।

(३) राति—**ददाति सर्वं इति रा, धारयति पालयति सर्वं प्रपञ्चं कृपादृष्ट्या इति धा** दोनोंके संयोगसे बना राधा।

(४) आराधिता—**या शिवविष्णुब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रानन्द-कन्दकृष्णचन्द्रादिभिः आत्मज्योतीरूपात्मकतद्-दर्शनानन्दसम्प्राप्तये इति सा राधा।** आत्मज्योति-रूपात्मक श्रीराधादर्शनप्राप्तिके लिये शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र, श्रीकृष्णादिके द्वारा जो आराधित हैं।

(५) इन्होंने गोलोकमें श्रीकृष्णको अपने अंकमें धारण किया था, इसीलिये तत्त्वज्ञ विद्वानोंने इनको राधा कहा है।

रासे सम्भूय गोलोके सा दधार हरेः पुरः।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्महेश्वरि॥

(ब्रह्मवैवर्त)

(६) **रा अक्षरको सुनत ही विकसत माधव ईश।**
धा सुनतहि धावत हरी जद्यपि हैं जगदीश॥

'रा' शब्दोच्चारणादेव स्फीतो भवति माधवः।
'धा' शब्दोच्चारतः पश्चाद् धावत्येव ससम्भ्रमः॥

(ब्रह्मवैवर्त)

(७) र+आ+ध+आ=राधा इन वर्णोंके श्रवण-स्मरण-उच्चारणसे

'र' कारसे कोटिजन्मोत्थ शुभाशुभ कर्मभोग मिट जाते हैं।

'आ' कारसे गर्भवास, मृत्यु, रोगादि मिट जाते हैं।

'ध' कारसे आयुकी अल्पता मिट जाती है।

'आ' कारसे भवबन्धन कट जाते हैं।

रेफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगं शुभाशुभम्।
आकारो गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सृजेत्॥
धकार आयुषो हानिम् आकारो भवबन्धनम्।
श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यति न संशयः॥

(ब्र० वै० कृष्णजन्म० १३।५—७)

श्रीमाधव—

(१) **मधोरपत्यं पुमान् माधवः मधुवंशोत्पन्नत्वात्।** मधुवंशमें उत्पन्न होनेसे इनको माधव कहते हैं।

(२) **मा=लक्ष्मी, माया, श्रीराधा, सरस्वती, गंगा, वसुधा आसां धवः स्वामी।** लक्ष्मी आदिके स्वामी होनेसे इनको माधव कहा जाता है।

(३) श्रीब्रह्माजीको प्रकट करनेवाले, विद्या देनेवाले, श्रीकृष्णकी शरणमें आत्मवृत्तिप्रकाशार्थ मुमुक्षुजन जाते हैं।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो विद्यास्तस्मै गापयति स्म कृष्णः।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमनुव्रजेत्॥

(गोपालपूर्वतापिनी० २।११)

श्रीराधा-माधवका सम्बन्ध—

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः॥

(स्कन्द० वैष्णव० भाग० मा० १।२२)

श्रीकिशोरीजी श्रीकृष्णकी आत्मा हैं। आत्मारूपा श्रीराधाजीके संग निकुंजादिमें नितान्त ऐकान्तिक लीलारूपात्मक रमण करनेसे ही तत्त्वज्ञ विद्वानोंद्वारा श्रीकृष्णको आत्माराम कहा जाता है।

भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको अर्धरात्रिमें श्रीकृष्ण प्रकट हुए। भाद्रपद शुक्ल अष्टमीको मध्याह्नमें श्रीराधा प्रकट हुईं।

स्वयं राधा कृष्णपत्नी कृष्णवक्षःस्थलस्थिता।
प्राणाधिष्ठात्री देवी च तस्यैव परमात्मनः॥

भगवान् श्रीमन्माधवके वक्षःस्थलपर अवस्थित श्रीराधाजी माधवकी प्राणाधिष्ठात्री धर्मपत्नी हैं।

श्रीराधा-माधवकी एकता—

श्रीराधामाधव देखनेमें भले ही दो प्रतीत होते हों, परंतु वास्तवमें तो एक ही हैं।

जैसे चन्द्र-चन्द्रिका, पुष्प-सुगन्ध, जल-तरंग, पृथ्वी-

गन्ध, जल-रस, अग्नि-रूप (दाहकता), शब्द-अर्थ आदि दिखनेमें दो-जैसे होनेपर भी एक ही हैं।

चंद्र-चंद्रिका ऐक्य जिमि सुमन-सुगन्ध सुयोग।
शब्द-अर्थ जल-लहर तिमि राधा-माधव योग॥

श्रीराधाकृष्णयोः एकमासनं, एका बुद्धिः, एकं मनः एकं ज्ञानम्, एक आत्मा, एकं पदम्, एका आकृतिः, एकं ब्रह्म। अत एव द्वयोर्न भेदः। (राधोपनिषत् २ प्रपाठक)

भगवान् श्रीराधामाधवके उपवेशनार्थ आसन भी एक ही है। दोनोंकी विचारवृत्ति (बुद्धि) भी एक ही है। दोनोंका मन भी एक ही है। दोनोंका ज्ञान भी समान ही है। दोनोंका पद भी एक ही है। अरे भाई! श्रीराधामाधवकी आकृति, प्रकृति, संस्कृति, प्रवृत्ति भी एक ही है। श्रीराधाजीके अनुकरणका परिणाम ये हुआ कि बड़े-बड़े सुकोमल केश तो थे ही, कानोंमें कुण्डल तो थे ही, लालाने ललीकी तरह अपनी नाकमें भी नासाभरणके रूपमें मौक्तिक धारण किया है। (**नासाग्रे वरमौक्तिकम्**) सम्भवतः पुरुषमात्रमें कोई न मिलेगा। जिसने नाकमें आभूषण धारण किया हो श्रीकृष्णके अतिरिक्त, अथवा कोई हो तो आप ही बतायें। दोनोंमें ब्रह्मत्व एक ही है। इसीलिये दोनोंमें कोई भेद भी नहीं है। दोनों एक ही हैं।

अज्ञानजन्य भेदबुद्धिवशात् जो नराधम इतना जाननेपर भी इन दोनों (श्रीराधामाधव)-में भेद रखते हैं, उनका समूल उन्मूलन हो जाता है। चिरकालतक नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं। तदनन्तर सैकड़ों पीढ़ियोंसहित वे सूकरयोनिमें जाते हैं। उसके भी पश्चात् ६० हजार वर्षतक विष्ठाका कीड़ा बनकर जीते हैं।

राधामाधवयोर्भेदं ये कुर्वन्ति नराधमाः।
वंशहानिर्भवेत्तेषां पच्यन्ते नरके चिरम्॥
यान्ति सूकरयोनिं च पितृभिः शतकैः सह।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां कृमयस्तथा॥

(ब्र० वै० कृ० १२२। ४५-४६)

हे साधकवृन्द! एकबार मनकी चंचलताको छोड़कर चेतनाकी गहराइयोंमें उतरकर, एकाग्रतापूर्वक जरा ध्यानसे देखो, आपको राधामाधव दो नहीं, एक ही दिखेंगे। क्यों दिखेंगे? क्योंकि वे दो हैं ही नहीं, एक ही हैं। श्रीमाधव ही राधा हैं। बिम्बप्रतिबिम्बके समान श्रीराधा ही माधव हैं।

ये श्रीराधामाधव ही साक्षात् सच्चिदानन्दघन परमामृतस्वरूप परब्रह्म हैं—**परब्रह्मसच्चिदानन्दराधा-कृष्णयोः परस्परसुखाभिलाषरसास्वादन इव तत् सच्चिदानन्दामृतं कथ्यते॥** (राधोपनिषत्)

अस्या अंशाद् बहवो विष्णुरुद्रादयो भवन्ति।

(राधो० ३)

आद्या प्रकृति श्रीराधाजीके अंशांशोंसे अनेकों विष्णु-शिवादि देव प्रकट होते हैं।

प्रश्न—परंतु ऐसा कैसे सम्भव है? शिवादि इनसे प्रकट हों!

उत्तर—जैसे अग्निज्वालासे चिनगारीका निकलना, चिनगारीसे महाज्वाला बनना देखा जाता है। वैसे ही सब देवोंमें सभी होते ही हैं।

स एवायं पुरुषः स्वरमणार्थं स्वस्वरूपं प्रकटितवान्। सर्वे आनन्दरसा यस्मात् प्रकटिता भवन्ति॥ [तेषु] आनन्दरूपेषु पुरुषोऽयं रमते। स एवायं पुरुषः समाराधनतत्परोऽभूत्॥ तस्मात् स्वयमेव समाराधनमकरोत्। अतो लोके वेदे च श्रीराधा गीयते॥ (सामरहस्योपनिषत्)

उसी इस पुरुष (माधव)-ने अपने रमणके लिये अपने अन्दरसे निज मूलस्वरूपको प्रकट किया।

क्यों? क्योंकि ***'एकाकी मनो न रमते'*** अकेले खेलना (रमण करना) सम्भव नहीं। खेलना है तो दो तो चाहिये ही चाहिये। कदाचित् कोई अकेला बच्चा स्वयंसे बात करता हुआ ही, स्वयंमें खोया हुआ ही, स्वयं ही खेलता रहता है? तब! अरे बाबा! वह बालक भी स्वयंसे भिन्न किसी दूसरे साथीकी कल्पना करता है, तभी खेल पाता है।

श्रीमाधवने जब अपने प्रेमामृतपरिपूर्ण हृदयसमुद्रको मथा, तब उससे कारुण्यपरिपूरित, सौन्दर्यामृतपरिसिंचित,

सुधाप्रवर्षिणी, असंख्य मयूखोंसे परिमण्डित, सर्वविध परितापपरिहारक, परमाह्लादक मुखचन्द्र प्रकट हुआ। जिसे भावुक भक्तोंने श्रीराधा कहा है। उसीसे सभी आनन्दरस प्रकट होते हैं। जिनमें यह परमपुरुष श्रीमाधव रमण करते हैं। स्वयमेव स्वयंके समाराधनमें लग गये।

प्रश्न—स्वयंद्वारा स्वयंकी आराधना कैसे होगी?

उत्तर—जैसे दर्पणाश्रित प्रतिबिम्बको देख-देखकर उसको सजाते-सजाते हम स्वयंको ही सजा रहे होते हैं।

सतत समाराधननिरत होनेसे ही वेद तथा लोकने उनको श्रीराधाके रूपमें गाया है।

और भी कहते हैं—

अनादिरयं पुरुष एक एवास्ति। तदेव रूपं द्विधा विधाय समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात्तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति।

(सामरहस्योपनिषत्)

यह अनादि परमपुरुष माधव राधामाधवरूपसे दो स्वरूपोंमें प्रकट होकर समाराधन करने लगे। वेदवेत्ताओंने उसी आनन्दमय स्वरूपको श्रीराधा कहा है।

चित्तमें सरस उपासनाकी पवित्रतम अवस्थाका परिपाक जब हो जाता है, तब सगुण-साकार-परम्पराके सर्वोत्तम आकर्षक श्रीविग्रह श्रीराधामाधवयुगलके पावनतम पादारविन्दमें रति-प्रीति हो जाती है।

तैलधारावत् अविच्छिन्न इस आराधनाके परिणाम-स्वरूप निष्कामता, निःस्पृहता, अनन्यताका भाव सुदृढ़ होने लगता है। अनन्यताका यही दिव्य भाव तद्रूपताकी ओर ले जाता है।

तस्मिन् तज्जने च भेदाभावात्॥

भगवान् तथा भगवद्भक्तमें अभेदत्वकी संस्तुति शास्त्रोंमें संतोंने की है।

उपासक उपास्यमें लीन हो जाय, सर्वत्र उपासकको उपास्यका ही दर्शन हो, अनुभव हो, यही समग्रोपासनाओंका प्रतिफल है।

रस समुद्र उद्भूत शशि उज्ज्वल शीतल नेक।
बिम्ब तथा प्रतिबिम्बवत्, राधामाधव एक॥

श्रीराधा-रुचिर-पंचामृत

(श्रीसुरेन्द्रजी त्रिपाठी 'ब्रजरजआश्रित')

रुचिर रंग, अति रुचिर रूप, छबि रुचिर लाड़ली प्यारी।
रुचिर अधर, नासिका रुचिर अति, तामे बेसरि न्यारी॥
रुचिर दंत, मुख, नयन रुचिर दोउ, रुचिर-रुचिर लटकारी।
'ब्रजरजआश्रित' रुचिर मोहिनी, श्री बृषभानु दुलारी॥

रुचिर कपोल, रुचिर ग्रीवा, अति रुचिर चिबुक चितहारी।
चितवनि रुचिर, रुचिर मृदु मुसकनि, हँसनि रुचिर बलिहारी॥
रुचिर भाल भृकुटिन बिच बिन्दी, कुण्डल लटकनि न्यारी।
'ब्रजरजआश्रित' रुचिर मोहिनी, श्री बृषभानु दुलारी॥

झलमलात गलहार रुचिर, तामे नीलम रुचिकारी।
नीलवर्ण तन रुचिर ओढ़नी, लहँगा, रुचिर किनारी॥
रुचिर-रुचिर पग नूपुर बाजत, रुचिर चाल मतवारी।
'ब्रजरजआश्रित' रुचिर मोहिनी, श्री बृषभानु दुलारी॥

रुचिर गमन प्रिय, रुचिर वचन मृदु, लीला अद्भुत प्यारी।
रुचिर कटाक्ष बिलोकति राधे, शुभ मुद मंगल कारी॥
रुचिर कुंज, सहचरी रुचिर, मंजरी रुचिर बृजनारी।
'ब्रजरजआश्रित' रुचिर मोहिनी, श्री बृषभानु दुलारी॥

रुचिर लाड़िले सँग नित राजति, रूप परम मनहारी।
कृपा कटाक्ष करहु अब राधे, श्री बरसाने वारी॥
रुचिर स्वभाव बिलोकहु मोपे, विघ्न विनाशन वारी।
'ब्रजरजआश्रित' रुचिर मोहिनी, श्री बृषभानु दुलारी॥

नित्य रुचिर-पंचामृत जे पीवैं तजि काम।
तिनहि निकुंज बिहारिणी हरषि देउ निज धाम॥

प्रेमसारसर्वस्वविग्रह—श्रीराधामाधव

(द्वाराचार्य मलूकपीठाधीश्वर डॉ० श्रीराजेन्द्रदासदेवाचार्यजी महाराज)

अत्यन्त हर्षका विषय है कि वैदिक सनातन धर्मकी पोषिका-पालिका-रक्षिका संस्था भगवद्‌विभूति गीताप्रेस गोरखपुर श्रीराधामाधव-अंकका प्रकाशन कर रही है। यह अंक आस्तिक रसिकभक्तसमुदायको आह्लादितकर श्रीराधामाधवके चरणोंमें प्रतिक्षणवर्धमान रति प्रदान करेगा। निष्काम कर्मयोगके आचार्य परम निष्काम भक्त श्रीजय-दयालजी गोयन्दकाने जहाँ तत्त्वचिन्तामणि आदिके माध्यमसे, भगवान् श्रीकृष्णके योगेश्वरस्वरूपका प्रतिपादन किया वहीं प्रेमरसरूपा भक्तिका प्रतिपादन रसिक भक्त श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार (कल्याणके आदि सम्पादक)-जीने श्रीराधामाधव-चिन्तन, पदरत्नाकर आदिके माध्यमसे किया। वर्तमान समयमें शास्त्रीय प्रामाणिक सनातन मर्यादाओंके अनुरूप श्रीराधामाधवकी भक्तिके स्वरूपको प्रस्तुत करनेकी महती आवश्यकताकी पूर्ति इस अंकके माध्यमसे होने जा रही है। वर्णाश्रमोचित सदाचारमें शिथिलता, शास्त्रज्ञानका अभाव, माता-पिता, गुरु, सन्त, ब्राह्मण-वेदादि शास्त्रोंमें निष्ठाकी न्यूनता आदि अनेक ऐसे अपरिहार्य कारण हैं, जिससे सनातन ब्रह्मज्योतिःस्वरूप नित्यसिद्ध अनादि दिव्य दम्पती नित्यकिशोर नित्यविहार-परायण प्रेमसारसर्वस्वविग्रह प्रेमक्रीड़ा-परायण श्रीराधामाधवका रसमय स्वरूपबोध कलिमल-ग्रसित मलिनान्तःकरणके लिये कठिन है। ऐसे लोग भी इस अंकके माध्यमसे राधामाधवकी भक्ति प्राप्त करेंगे, धर्मनिष्ठ सदाचारी बनेंगे। वर्तमान समयमें श्रीराधामाधवके प्रति आकर्षण बढ़ रहा है, किंतु जिन बेचारोंकी वासनासे वासित बुद्धि शरीर-संसारमें अतिशय आसक्त हो रही है, उनकी तो सोच ही लौकिक-पारलौकिक भोगोंतक ही सीमित हो रही, ऐसे लोगोंके लिये रहस्यज्ञान कठिन है। उनपर अनुग्रह हो रहा है, इस अंकके माध्यमसे। स्कन्द-पुराणोक्त श्रीमद्भागवतमाहात्म्यमें महर्षि शाण्डिल्यने राजर्षि परीक्षित् एवं परम भागवत श्रीवज्रनाभजीको ब्रजभूमिका रहस्य लीलादिके माध्यमसे समझाया। ब्रज शब्दका अर्थ है व्याप्ति, अतएव व्यापक होनेके कारण इस भूमिका नाम ब्रज पड़ा।

निरतिशय बृहत्तम व्यापक तत्त्वको ब्रह्मशब्दसे अभिहित किया गया है अर्थात् ब्रह्म ही ब्रज है, ब्रज ही ब्रह्म है। सत्त्व-रज-तम इन मायिक गुणोंसे असंश्लिष्ट अतीत जो व्यापक परब्रह्म है, उसे ही ब्रज कहते हैं। वह आनन्दघन परम प्रकाशमय तथा अविनाशी है। मुक्तात्मा उसीमें रमण करते हुए स्थित रहते हैं। इस परब्रह्मस्वरूप ब्रजधाममें नन्दनन्दन श्रीकृष्णका नित्य निवास है। सच्चिदानन्दविग्रह श्रीकृष्ण आत्माराम आप्तकाम हैं। ऐसा प्रेमविभोर अनुरागी प्रेमी रसिकजन नित्य निरन्तर कहा करते हैं। 'आत्माराम' 'आप्तकाम' इन नामोंका अत्यन्त रसमय अर्थ किया है शाण्डिल्यजीने—

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्मारामतया प्राज्ञैः प्रोच्यते गूढवेदिभिः॥

अर्थात् श्रीकृष्णकी आत्मा राधा हैं, उनके साथ रमण करनेके कारण ही रहस्यके ज्ञाता श्रीकृष्णको आत्माराम कहते हैं। श्रीराधारानीकी कायव्यूहस्वरूपा सखी सहचरी गोपियाँ हैं, अतएव श्रीकृष्ण राधारमण-स्वरूपमें भी आत्माराम है, गोपीरमणस्वरूपमें भी आत्माराम ही हैं। भगवान्‌में भगवान्‌का विलास ही ब्रज है, रास है। वृन्दावनके महान् रसिक सन्त श्रीहितध्रुवदासजीने कहा है—

प्रेम के खिलौना खेलते दोउ प्रेम खेल।

श्रीराधामाधव प्रेमसारसर्वस्वविग्रह हैं, वे निरन्तर प्रेममयी क्रीड़ामें प्रवृत्त रहते हैं। प्रेम ही राधामाधव हैं, प्रेम ही ब्रजभूमि है। प्रवाहित प्रेम श्रीयमुनाजी हैं। घनीभूत प्रेम ब्रजके गोवर्धन आदि पर्वत हैं। लता-पता, कुंज-निकुंज, गोप-गोपी, गाय, खग, मृग आदि सब प्रेमका ही स्वरूप हैं। प्रेमकी क्रीड़ामें दो होते ही हैं। एक प्रेमी, एक प्रेमपात्र इनमें प्रेमपात्रकी प्रधानता होती है। प्रेमी श्रीकृष्ण हैं, प्रेमपात्रा श्रीराधा हैं। इसीलिये वंशीस्वरूप श्रीहितहरिवंश महाप्रभुके लिये श्रीनाभाजीने भक्तमालमें—

राधाचरण प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी।

—कहा है। श्रीकृष्ण आप्तकाम हैं। कामशब्दका

अर्थ कामना है अर्थात् श्रीकृष्णकी कामना है कि गाय, गोप, गोपी आदिके साथ मैं निरन्तर लीला करूँ, यह मनोरथ ब्रजमें प्रकट होनेपर ही सिद्ध होता है। अतएव ब्रजमें श्रीकृष्ण आप्तकाम हैं।

कामास्तु वाञ्छितास्तस्य गावो गोपाश्च गोपिकाः।
नित्याः सर्वे विहाराद्या आप्तकामस्ततस्त्वयम्॥

श्रीराधामाधवकी दो प्रकारकी लीलाएँ हैं। एक तो वह, जिसका वे स्वयं अपने आत्मस्वरूप प्रेमियोंके साथ अनुभव करते हैं। वह स्वसंवेद्या नित्य विहारलीला है तथा पुराणसंवेद्या लीला व्यावहारिकी लीला है।

वास्तवी तत्स्वसंवेद्या जीवानां व्यावहारिकी।
आद्यां विना द्वितीया न द्वितीया नाद्यगा क्वचित्॥

श्रीयमुनाजीने भी श्रीकृष्णपत्नियोंसे इसी सिद्धान्तको प्रस्तुत किया—आत्माराम श्रीकृष्णकी आत्मा श्रीराधारानी हैं, मैं उनकी दासी हूँ। इसी भावके कारण हमें श्रीकृष्ण-विरहका स्पर्श नहीं होता, जितनी श्रीकृष्णकी रानियाँ हैं; वे सब की सब राधारानीका अंशविस्तार हैं। श्रीराधाकृष्णका नित्य संयोग है। अतः अंशतः विद्यमान श्रीकृष्णकी रानियोंका भी नित्य संयोग ही है। इस रहस्यका बोध बिना श्रीराधादास्यके प्राप्त हो जाय, यह सम्भव नहीं है।

स एव सा स सैवास्ति वंशी तत्प्रेमरूपिका।

अर्थात् श्रीकृष्ण ही राधा हैं। श्रीराधा ही कृष्ण हैं। उनका प्रेम वंशी है। श्रीराधामाधवकी रसमयी उपासनाका भाव अति दुर्लभ है। श्रीभगवतरसिकजीने कहा है—

ललिता सखी उपासना ज्यौं सिंहिनी को क्षीर।

सिंहनीका दूध अति दुर्लभ है, या तो स्वर्णपात्रमें ठहर सकता है अथवा सिंहनीके बच्चेके पेटमें। तात्पर्य यह है कि राधामाधवकी मधुर-भावकी लीलाओंके रसास्वादनके लिये शुकदेवजीके जैसा स्वर्णपात्र बन जाय अथवा जिन रसिकाचार्योंके वक्षमें (हृदयमें) यह रस भरा है। उनका स्तनन्धय शिशु बन जाय तो ही सम्भव है।

श्रीराधामाधवके दिव्यातिदिव्य महामधुररसकी पिपासा साधकमें होनी ही चाहिये, किंतु उसकी पात्रताकी प्राप्तिके लिये वैदिक वर्णाश्रमधर्मका श्रद्धापूर्वक पालन, सत्य, अहिंसा आदि धर्मके दस लक्षणोंकी जीवनमें पूर्ण प्रतिष्ठा, भक्ति, भगवत्-चरित्रका आश्रय, नाम, रूप, लीला, धामका आश्रय, गौ, ब्राह्मण, माता-पिता, संत, सद्गुरुकी सेवा आदि अपेक्षित है। साधन अपने सन्तोषके लिये करना चाहिये; अधिकारिता तो हरि, गुरु, सन्तकी कृपासे ही प्राप्त होगी।

श्रीकृष्णके रोनेका रहस्य

एक बार श्रीकृष्णको रोते देखकर एक गोपी रोनेका कारण पूछती है। उसके उत्तरमें श्रीकृष्ण कहते हैं—'सुनो, सखि! जहाँ प्रेम है, वहाँ निश्चय ही आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहती रहेगी। प्रेमीका हृदय पिघलकर आँसुओंके रूपमें निरन्तर बहता रहता है और उसी अश्रु-जल, प्रेमजलमें प्रेमका पौधा अंकुरित होकर निरन्तर बढ़ता रहता है। सखि! मैं स्वयं प्रेमीके प्रेममें निरन्तर रोता रहता हूँ। मेरी आँखोंसे निरन्तर आँसुओंकी धारा चलती रहती है। मेरी इच्छा नहीं थी कि मैं बताऊँ, पर तुमने बार-बार पूछा—तुम क्यों रोते हो ? तो आज बात कह दे रहा हूँ। मैं अपने प्रेमीके प्रेममें रोता हूँ; जो मेरा प्रेमी है, वह निरन्तर रोता है और मैं भी उसके लिये निरन्तर रोता ही रहता हूँ। सखि! जिस दिन मेरे-जैसे प्रेमके समुद्रमें तुम डूबोगी, जिस दिन तुम्हारे हृदयमें प्रेमका समुद्र—उसी प्रेमका समुद्र जो मेरे हृदयमें नित्य-निरन्तर लहराता रहता है, लहराने लगेगा, उस दिन तुम भी मेरी ही तरह बस, केवल रोती ही रहोगी। सखि! उन आँसुओंकी धारासे जगत् पवित्र होता है; वे आँसू नहीं, वे तो गंगा-यमुनाकी धारा हैं। उनमें डुबकी लगानेपर फिर त्रिताप नहीं रहते। सखि! मैं देखता हूँ, मेरी गोपी, मेरे प्राणोंके समान प्यारी गोपी रो रही है, मेरी प्रियतमा रो रही है, बस मैं भी यह देखते ही रोने लग जाता हूँ। मेरा हृदय भी रोने लग जाता है। मेरी प्रिया—प्राणोंसे बढ़कर प्यारी गोपी जिस प्रकार एकान्तमें बैठकर रोती है, वैसे ही मैं भी एकान्तमें बैठकर रोता हूँ और रो-रोकर प्राण शीतल करता हूँ। यह है मेरे रोनेका रहस्य।' ['कालाचाँद गीता']

रसिकाराध्या राधा

(संत श्रीरमेशबाबाजी महाराज, मानमन्दिर-बरसाना)

समस्त साधनोंका साध्य सारस्वरूप एकमात्र 'प्रेमतत्त्व' ही है, जो सभी उपाधियों नाम, रूप, लीला, गुण आदि सहायक तत्त्वोंका मूलाधार है। दिव्यातिदिव्य परमप्रेमका घनीभूत सार-समूह एकमात्र श्रीराधिका ही हैं, जो साक्षान्मन्मथमन्मथ रसिकशेखर श्यामसुन्दरका भी प्राण—जीवनधन हैं—

दिव्यप्रमोदरससारनिजाङ्गसङ्ग-
पीयूषवीचिनिचयैरभिषेचयन्ती ।
कन्दर्पकोटिशरमूर्च्छितनन्दसूनु-
सञ्जीवनी जयति कापि निकुञ्जदेवी॥

(श्रीराधासुधानिधि ५)

श्रीजीका अवर्णनीय अलौकिक प्रेमरसमय गौरवर्ण वपु है—

अङ्गप्रत्यङ्गरिङ्गन्मधुरतरमहाकीर्तिपीयूषसिन्धो-
रिन्दोः कोटीर्विनिन्दद्वदनमतिमदालोलनेत्रं दधत्याः।
राधायाः सौकुमार्याद्भुतललिततनोः केलिकल्लोलिनीना-
मानंदस्यंदिनीनां प्रणयरसमयान् किं विगाहे प्रवाहान्॥

(श्रीराधासुधानिधि १६२)

श्रीवृषभानुनन्दिनीकी कीर्तिसे करोड़ों-करोड़ों मधुरातिमधुर प्रेमरसामृतसिन्धु निकला करते हैं। श्रीराधासुधानिधिकार कहते हैं कि समुद्रमन्थनकालमें सिन्धु-सार '**अमृत**' तो निकला था, लेकिन अमृतका समुद्र कहीं भी आजतक नहीं निकला; वह केवल श्रीराधारानीके श्रीअंगोंसे ही निकला, उनके अंगों, प्रत्यंगों, उपांगों अर्थात् रोम-रोमसे करोड़ों-करोड़ों मधुरामृत-सिन्धु निकलते हैं, इसलिये अनन्त प्रेमसिन्धु-संवाहिनी, अनन्त पीयूषसिन्धुसंवाहिनीको ही 'राधा' कहते हैं।

जब श्रीजीके सर्वांगोंसे सरस-सिन्धु निकलते हैं तो अनेकों चन्द्रमा भी निकलेंगे, (जब समुद्रसे अमृत निकला तो उसमेंसे चन्द्रमा भी निकला था) अतः कोटि-कोटि चन्द्रमाओंको तिरस्कृत करनेवाला जिनका मुखचन्द्र है और अत्यधिक प्रेममदसे चंचल नेत्रोंको जो धारण कर रही हैं, ऐसी सौकुमारी श्रीराधा हैं। (**कुत्सितः मारः यस्माद्**, जिस सुन्दरताके आगे कामदेव भी तुच्छ लगता है, उसे 'कुमार' कहते हैं।)

ऐसी माधुर्यमय-महामहिमशालिनी श्रीराधाको सुधानिधिकारने स्पष्ट प्रणाम न करके उनकी दिशाको नमन किया है—

यस्याः कदापि वसनाञ्चलखेलनोत्थ-
धन्यातिधन्यपवनेन कृतार्थमानी।
योगीन्द्रदुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि
तस्या नमोऽस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि॥

(श्रीराधासुधानिधि १)

ग्रन्थकारने श्रीराधाप्रेमकी परम प्रगाढ़ताके कारण अपनी बहुत दीनता दिखाते हुए प्रारम्भिक श्लोकमें न तो श्रीराधारानीको, न श्रीकृष्णको और न अन्य किसीको भी प्रणाम किया, यह एक बहुत विचित्र बात थी; उनका भाव है कि हम तो श्रीजीको प्रणाम करनेके योग्य ही नहीं हैं, उन वृन्दावनेश्वरीको हम-जैसे तुच्छ जीव कैसे प्रणाम कर सकते हैं, जिसमें '**यस्याः**' कहकर श्रीराधिकाको सम्बोधित किया, उनका सुदैन्यमय गूढ़तम भाव यह है कि श्रीजीके प्रेमातिरेकमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी भाव-विभोर होकर पूरा नाम नहीं ले पाते हैं, उन लाड़िलीजीका नाम हम कैसे लें? इसलिये मंगलाचरणमें नाम ही नहीं लिया और '**सर्वनाम**' से स्वाराध्याको सुसम्बोधित करते हुए सर्वप्रथम मंगलमय प्रणाम 'श्रीबरसाने' धामको किया है।

यदि कोई सुधानिधिकारसे यह प्रश्न पूछे कि ग्रन्थके बीचमें तो आपने कई बार '**श्रीजी**' का नाम ले लिया तो इसका उत्तर अन्तमें कहते हैं—

क्वासौ राधा निगमपदवीदूरगा कुत्र चासौ
कृष्णस्तस्याः कुचमुकुलयोरन्तरैकान्तवासः।
क्वाहं तुच्छः परममधमः प्राण्यहो गर्ह्यकर्मा
यत् तन्नाम स्फुरति महिमा ह्येष वृन्दावनस्य॥

(श्रीराधासुधानिधि २६०)

श्रीराधारानीकी ऐसी अनन्त महिमा है कि जहाँ वेद भी नहीं पहुँच सकते हैं और कृष्णके लिये कहते हैं—

'**कृष्णास्तस्याः कुचमुकुलयोरन्तरैकान्तवासः।**' कृष्ण तो एक भौंरे थे, जो श्रीराधिकारूपी कमलके भीतर सदाके लिये बन्द हो गये, सृष्टि-प्रपंचको छोड़कर उन्होंने एकांतवास ले लिया। फिर '**क्वाहं तुच्छः परममधमः प्राण्यहो गर्ह्यकर्मा**' कहाँ मैं तुच्छ परम अधम प्राणी राधानाम लेनेके योग्य हूँ? मैंने जो श्रीजीका नाम लिया, उसका कारण है—'**यत् तन् नाम स्फुरति महिमा ह्येष वृन्दावनस्य।**' इस ब्रजरजमें आनेवाला जो भी व्यक्ति है, उसे ये रजरानी अधिकार दे देती हैं कि 'जा तू, राधा-राधा कह' ये यहाँकी मिट्टीका प्रताप है; इस ब्रजभूमिमें जो भी आता है, वह सहजमें ही राधे-राधे कहने लगता है। इसलिये ब्रजवासीजन कहते हैं कि यहाँ आकर भी जिसने राधा-राधा नहीं कहा, राधानाम नहीं जाना, उससे ज्यादा अभागा कोई नहीं है, ब्रजवासी गाते हैं—

जो बरसाने (वृन्दावन)-में आयो
जानै राधा नाम न गायो।
वाके जीवनको धिक्कार रटे जा राधे-राधे॥

श्रीशुकमहाप्रभुने भी साक्षात् गुरुस्वरूपा परमप्रेममयी महादेवी 'श्रीराधा' का नाम स्पष्टरूपसे नहीं लिया; 'सर्वनाम' से ही श्रीभागवतजीमें राधालीलाका गान किया है। वस्तुतः श्रीमद्भागवतमें जैसा राधाचरित्रका वर्णन है, वैसा अन्य किसी ग्रन्थमें नहीं है। वे लोग बहुत ही नासमझ हैं, जो कहते हैं कि श्रीमद्भागवतमें 'राधानाम' नहीं है। अरे! जैसे कोई पुत्र अपने माता या पिताके पास जाता है तो उनका नाम नहीं लेता है। गुरुदेवके पास जायँगे तो 'भगवन्' कहेंगे—'गुरुजीका नाम लेकर कोई उन्हें सम्बोधित नहीं करता, यह एक प्रेमकी विधा है।'

ऐसी असीम महामहिमान्वित श्रीराधिकाके अंचलकी सुगन्धित वायुको पाकर अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक श्यामसुन्दर भी धन्यातिधन्य (परमकृतार्थ) हो जाते हैं।

ग्रैवेयोज्ज्वलकम्बुकण्ठिमृदुदोर्वल्लीचलत्कङ्कणे
वीक्षे पट्टदुकूलवासिनि रणन्मञ्जीरपादाम्बुजे॥
(श्रीराधासुधानिधि १०८)

लाड़िलीजीका ऐसा सुन्दर दुकूल (अंचल) है, जिसकी श्रीसुगन्ध पानेके लिये श्यामसुन्दर निरन्तर लालायित रहते हैं, जिधरसे श्रीजी निकलती हैं, पादाम्बुज-मणि-मंजीरकी छम-छमकी मधुर ध्वनि सुनायी पड़ने लगती है। रसिकोंने बताया है कि श्रीजीके चरणोंके नूपुरोंसे शब्दब्रह्मका प्रकाश होता है—'***श्रीराधा पद-पद्म में, नूपुर कलरव होय।***' नूपुर-ध्वनिके आगे वंशी भी चुप हो जाती है।

पादाङ्गुलीनिहितदृष्टिमपत्रपिष्णुं
दूरादुदीक्ष्य रसिकेन्द्रमुखेन्दुविम्बम्।
वीक्षे चलत्पदगतिं चरिताभिरामां
झङ्कारनूपुरवतीं बत कर्हि राधाम्॥
(श्रीराधासुधानिधि १५)

'**झङ्कारनूपुरवतीं बत कर्हि राधाम्**' जब वे चलती हैं तो ऐसी अद्भुत झनकार ध्वनि उत्पन्न होती है कि जिसके आगे शब्द-ब्रह्म, अनेक मन्त्र, वीणा, वंशी आदि सब उस सुन्दरता-मधुरताके आगे शान्त हो जाते हैं। जिस समय श्रीराधारानी गाती हैं तो उस गानकी सुमधुरताके आगे श्रीकृष्ण भी चुप हो जाते हैं।

भावुकजन कहते हैं कि बिना राधिकारानीके जो श्रीकृष्णकी उपासना करता है, उसे तो अमावस्याके चन्द्रमाका उपासक समझो। वस्तुतः श्रीकृष्णतत्त्वकी प्रकाशिका वृषभानुजा हैं।

राधादास्यमपास्य यः प्रयतते गोविन्दसङ्गाशया
सोऽयं पूर्णसुधारुचेः परिचयं राकां विना काङ्क्षति।
किं च श्यामरतिप्रवाहलहरीबीजं न ये तां विदु-
स्ते प्राप्यापि महामृताम्बुधिमहो बिन्दुं परं प्राप्नुयुः॥
(श्रीराधासुधानिधि ७९)

अवर्णनीय गुणसम्पन्न परब्रह्म श्रीकृष्ण आत्माराम, आत्मरत होते हुए भी श्रीजीकी आराधना करके रस-सिद्धि करते हैं, क्योंकि '**इत्थम्भूतगुणा राधिका**' श्रीराधिकामें ऐसे असाम्यातिशय विलक्षण गुण हैं—

निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नम।
(श्रीमद्भागवत २।४।१४)

आचार्योंने कहा है कि श्रीराधाके गौरतेजकी समानता ही कहीं नहीं है फिर उनसे अधिक कोई कैसे हो जायगा?

'**स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः**' में धामका अर्थ 'वृन्दावनधाम' है, 'स्वधामनि' अर्थात् '**स्ववृन्दावन-धामनि**' स्थानवाची है। ('धाम' का अर्थ 'तेज' भी होता है, बहुतसे अद्वैतवादी विद्वान् इस श्लोकमें 'धाम'

का अर्थ 'तेज' करते हैं। जो तेजवाची 'राधसा' शब्द है, वह पूर्वमें एक बार आ चुका है, अत: इसकी पुनरुक्ति करनेकी आवश्यकता नहीं है।) 'रंस्यते' अर्थात् रमण-क्रिया केवल युगलमें ही होती है, अत: शुकदेवजीने '**निरस्तसाम्यातिशय**' शब्दका प्रयोग राधारानीके लिये किया है। श्रीजी अपनी गौरकान्तिसे ब्रह्मरूप चिन्मय धाम श्रीवृन्दावनमें रमण करती हैं; इसी भावको श्रीचैतन्यमहाप्रभु भी कहते थे—

गौरा भृङ्गकुरङ्गकोकिलगणा गौरा: शुका: सारिका:
गौरा: सर्वमहीरुहा वनचया गौराणि पुष्पाणि च।
गौराश्चक्रकपोतबर्हिविहगा गौरं च वृन्दावनम्
राधादेहरुचाद्भुतं सखि वृत: श्यामोऽपि गौरायते॥

श्रीराधिकारानीके गौरतेजसे काले भ्रमर, कृष्णसार मृग भी गोरे हो जाते हैं; काली कोयल, तोता-मैना, चकवा-चकवी, कपोत, मोर, नीलकण्ठ आदि पक्षी भी गोरे हो जाते हैं। यहाँतक कि राधारानीकी गौरकान्तिसे वृन्दावनके नीलकमल और सम्पूर्ण वृन्दावन गोरा हो जाता है। परमाश्चर्यकी बात यह है कि सखियोंसे घिरे हुए श्यामसुन्दरका नीलवपु भी राधादेहकी गौर-कान्तिसे चमकने लगता है।

महाकवि बिहारीजीने भी लिखा है—

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परै स्याम हरित दुति होय॥

गौरांगी राधिकाकी गौर-कान्तिसे श्यामसुन्दर हरे अर्थात् रसमय हो जाते हैं अथवा श्याम-द्युति हृत (हृतका अपभ्रंश है—हरित, छीन या हरण) कर ली जाती है।

रसिकाचार्य स्वामी हरिदासजीने कहा है—

बड़े भये हौ बिहारी याही छाँहि ते।

श्रीजीकी करुणा-कृपासे श्रीश्यामसुन्दरमें रसिकताके दिव्य गुण आये हैं। श्रीराधारानीमें ऐसे अनन्त दिव्यातिदिव्य प्रेमरसमय गुण हैं कि वे आत्माराम श्रीकृष्णको भी अपने अधीनकर रसमयी लीलाओंके लिये विवश कर देते हैं। इसलिये आत्माराम श्रीकृष्णकी प्राणजीवनी श्रीराधिका हैं—

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका।

(स्कन्दपुराण, भागवतमाहात्म्य २। ११)

एक युगलरसमयी लीलाकी झलक है—

संग ही चले डगर के डगर के।

सुन्दर कुंजगली है, बीचमें सखियाँ हैं और उनके मध्यमें राधारानी हैं तथा श्यामसुन्दर मार्गके किनारे-किनारे श्रीराधिकाका मुख-दर्शनकर लट्टू होते हुए चल रहे हैं, जहाँ श्रीजी रुकती हैं, वहाँ रुकते हैं, जहाँ चल देती हैं, वहाँ स्वयं भी चल देते हैं। खड़ी हो गयीं तो खड़े हो गये, चल पड़ीं तो चल पड़े, श्रीजी किसी सखीसे बात करने लगीं तो श्यामसुन्दर खड़े होकर उनको देखने लगे। सखीने श्रीजीसे कहा—लाड़िलीजी! जरा-सा बायीं ओर मुड़के देखो। किशोरीजी देख नहीं रही हैं, जानती हैं, क्या देखें, वही होंगे। जान-बूझकर नहीं देख रही हैं, यह उनकी अदा है। नायिकाकी अदाको संस्कृतमें 'विभ्रम' कहते हैं। राधाकृपाकटाक्षस्तोत्रमें भी वर्णन आता है—

अनङ्गरङ्गमङ्गलप्रसङ्गभङ्गुरभ्रुवाम्।
सविभ्रमं ससम्भ्रमं दृगन्तबाणपातनै:॥

सविभ्रमम्—ये अदा है; रूपगर्वीली, गुणगर्वीली श्रीराधारानीकी प्रत्येक क्रिया अदासे समन्वित है।

जैसे-जैसे श्रीजी अपनी भावमयी लीला करती हैं तो श्यामसुन्दरकी ओर पीठ कर लेती हैं कि मैं उन्हें नहीं देखूँगी, वैसे-वैसे श्रीकृष्ण और अधिक उनके वशमें हो रहे हैं। श्रीकृष्णका अंग-अंग वशमें हो गया है, न हिल रहे हैं, न डुल रहे हैं।

सूर स्याम प्यारी के वश भये, रोम-रोम रस भरके-भरके॥

श्रीकृष्णके रोम-रोममें राधा-रस व्याप्त हो गया।

श्रीराधारानीके कारण ही सम्पन्न हुई रसमयी लीलाओंके आधार अवतरित धामका दिव्य स्वरूप आराधनासे ही दिखायी पड़ता है। 'गह्वरवन' श्रीजीकी अन्तरंग लीलास्थली है, यहाँ नित्य रसमयी लीलाएँ होती हैं, जिन लीलाओंमें प्रवेश पाने एवं सेवाराधनहेतु स्वयं श्यामसुन्दर भी सखीवेशमें आकर श्रीजीकी सखियोंसे करबद्ध याचना करते हैं—

गह्वरवन के वास की, आस करैं सिव सेष।
इहाँ की महिमा कौन कहै, जहाँ स्याम धरैं सखी वेष॥

कल्मष-कर्षक एवं मनमोहक '**श्रीगह्वरवन**' को श्रीराधिकारानीने रास-विलासके लिये निज करकमलोंसे निर्मित किया है—

श्रीराधामाधव एवं उनके परिकरों आदिका परिचय

[व्रज-लीलाके सन्दर्भमें]

श्रीकृष्ण एवं उनके लीला-सहचर

पितामह—पर्जन्य।

पितामही—वरीयसी।

मातामह—सुमुख।

मातामही—पाटला।

ताऊ—उपनन्द एवं अभिनन्द।

ताई—तुंगी (उपनन्दकी पत्नी), पीवरी (अभिनन्दकी पत्नी)।

चाचा—सन्नन्द (सुनन्द) एवं नन्दन।

चाची—कुवलया (सन्नन्दकी पत्नी), अतुल्या (नन्दनकी पत्नी)।

फूफा—महानील एवं सुनील।

बुआ—सुनन्दा (महानीलकी पत्नी), नन्दिनी (सुनीलकी पत्नी)।

पिता—महाराज नन्द।

बड़ी माता—महारानी रोहिणी (वसुदेवकी पत्नी एवं बलरामजीकी जननी)।

माता—महारानी यशोदा।

मामा—यशोवर्धन, यशोधर, यशोदेव, सुदेव।

मौसा—मल्ल (पत्नी-यशस्विनी) (एक मतसे मौसाका नाम भी नन्द है)।

मौसी—यशोदेवी (दधिसारा), यशस्विनी (हविस्सारा)।

पितामहके समान पूज्य गोप—गोष्ठ, कल्लोल, करुण्ड, तुण्ड, कुटेर, पुरट आदि।

पितामहीके समान पूजनीया वृद्धा गोपियाँ—शिलाभेरी, शिखाम्बरा, भारुणी, भंगुरा, भंगी, भारशाखा, शिखा आदि।

पिताके समकक्ष पूज्य गोप—कपिल, मंगल, पिंगल, पिंग, माठर, पीठ, पट्टिश, शंकर, संगर, भृंग, घृणि, घाटिक, सारघ, पटीर, दण्डी, केदार, सौरभेय, कलांकुर, धुरीण, धुर्व, चक्रांग, मस्कर, उत्पल, कम्बल, सुपक्ष, सौधहारीत, हरिकेश, हर, उपनन्द आदि।

माताके समान पूजनीया गोपांगनागण—वत्सला, कुशला, ताली, मेदुरा, मसृणा, कृपा, शंकिनी, बिम्बिनी, मित्रा, सुभगा, भोगिनी, प्रभा, शारिका, हिंगुला, नीति, कपिला, धमनीधरा, पक्षति, पाटका, पुण्डी, सुतुण्डा, तुष्टि, अंजना, तरंगाक्षी, तरलिका, शुभदा, मालिका, अंगदा, विशाला, शल्लकी, वेणा, वर्त्तिका आदि।

इनके घर प्रायः आने-जानेवाली ब्राह्मण-स्त्रियाँ—सुलता, गौतमी, यामी, चण्डिका आदि।

मातामहके तुल्य पूज्य गोप—किल, अन्तकेल, तीलाट, कृपीट, पुरट, गोण्ड, कल्लोट्ट, कारण्ड, तरीषण, वरीषण, वीरारोह, वरारोह आदि।

मातामहीके तुल्य पूजनीया वृद्धा गोपियाँ—भारुण्डा, जटिला, भेला, कराला, करवालिका, घर्घरा, मुखरा, घोरा, घण्टा, घोणी, सुघण्टिका, ध्वांक्षरुण्टी हण्डि, तुण्डि, डिण्डिमा, मंजुवाणिका, चक्कि, चोण्डिका, चुण्डी, पुण्डवाणिका, डामणी, डामरी, डुम्बी, डंका आदि।

स्तन्यपान करानेवाली धात्रियाँ—अम्बिका तथा

किलिम्बा (अम्बा), धनिष्ठा आदि।

अग्रज (बड़े भ्राता)—बलराम (रोहिणीजीके पुत्र)।

ताऊके सम्बन्धसे चचेरे बड़े भाई—सुभद्र, मण्डल, दण्डी, कुण्डली, भद्रकृष्ण, स्तोककृष्ण, सुबल, सुबाहु आदि।

ताऊ, चाचाके सम्बन्धसे बहनें—नन्दिरा, मन्दिरा, नन्दी, नन्दा, श्यामदेवी आदि।

सखा—श्रीकृष्णके चार प्रकारके सखा हैं—(१) सुहृद्, (२) सखा, (३) प्रियसखा, (४) प्रिय नर्मसखा।

(१) सुहृद्वर्गके सखा—सुहृद्वर्गमें जो गोपसखा हैं, वे आयुमें श्रीकृष्णकी अपेक्षा बड़े हैं। वे सदा साथ रहकर इनकी रक्षा करते हैं। ये सुभद्र, भद्रवर्धन, मण्डलीभद्र, कुलवीर, महाभीम, दिव्यशक्ति, गोभट, सुरप्रभ, रणस्थिर आदि हैं। इन सबके अध्यक्ष अम्बिकापुत्र विजयाक्ष हैं।

(२) सखावर्गके सखा—सखावर्गके कुछ सखा तो श्रीकृष्णचन्द्रके समान आयुके हैं तथा कुछ श्रीकृष्णसे छोटे हैं। ये सखा भाँति-भाँतिसे श्रीकृष्णकी आग्रहपूर्वक सेवा करते हैं और सदा सावधान रहते हैं कि कोई शत्रु नन्दनन्दनपर आक्रमण न कर दे।

समान आयुके सखा हैं—विशाल, वृषभ, ओजस्वी, जम्बि, देवप्रस्थ, वरूथप, मन्दार, कुसुमापीड, मणिबन्ध आदि तथा श्रीकृष्णसे छोटी आयुके सखा हैं—मन्दार, चन्दन, कुन्द, कलिन्द, कुलिक आदि।

(३) प्रियसखावर्गके सखा—इस वर्गमें श्रीदाम, दाम, सुदामा, वसुदाम, किंकिणी, भद्रसेन, अंशुमान्, स्तोककृष्ण (श्रीकृष्णके चाचा नन्दनके पुत्र), पुण्डरीकाक्ष, विटंगाक्ष, विलासी, कलविंक, प्रियंकर आदि हैं। ये प्रिय सखा विविध क्रीड़ाओंसे, परस्पर कुश्ती लड़कर, लाठीके खेल खेलकर, युद्ध-अभिनयकी रचनाकर तथा अन्य अनेकों प्रकारसे श्रीकृष्णचन्द्रका आनन्दवर्द्धन करते हैं। ये सब शान्त प्रकृतिके हैं तथा श्रीकृष्णके परम प्राणरूप हैं। ये सब समान वय और रूपवाले हैं। इन सबमें मुख्य हैं—श्रीदाम। ये पीठमर्दक (प्रधान नायकके सहायक) सखा हैं। इन्हें श्रीकृष्ण अत्यन्त प्यार करते हैं। इसी प्रकार स्तोककृष्ण भी इन्हें बहुत प्रिय हैं, प्रायः देखा जाता है कि श्रीकृष्ण जो भी भोजन करते हैं, उसमेंसे प्रथम ग्रासका आधा भाग स्तोककृष्णके मुखमें पहले देते हैं एवं फिर शेष अपने मुँहमें डाल लेते हैं। स्तोककृष्ण देखनेमें श्रीकृष्णकी प्रतिमूर्ति हैं। वे इन्हें प्यार भी बहुत करते हैं। भद्रसेन समस्त सखाओंके सेनापति हैं।

(४) प्रिय नर्मसखावर्गके सखा—इस वर्गमें सुबल, (श्रीकृष्णके चाचा सन्नन्दके पुत्र), अर्जुन, गन्धर्व, वसन्त, उज्ज्वल, कोकिल, सनन्दन, विदग्ध आदि सखा हैं। श्रीकृष्णका ऐसा कोई रहस्य नहीं है, जो इनसे छिपा हो।

विदूषक सखा—मधुमंगल, पुष्पांक, हासांक, हंस आदि श्रीकृष्णके विदूषक सखा हैं।

विट—कडार, भारतीबन्धु, गन्ध, वेद, वेध आदि श्रीकृष्णके विट (प्रणयमें सहायक सेवक) हैं।

आयुध धारण करानेवाले सेवक—रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकण्ठ, मधुव्रत, शालिक, तालिक, माली, मान, मालाधर आदि श्रीकृष्णके वेणु, शृंग, मुरली, यष्टि, पाश आदिकी रचना करनेवाले एवं इन्हें धारण करानेवाले तथा शृंगारोचित विविध वनधातु जुटानेवाले दास हैं।

वेश-विन्यासकी सेवा—प्रेमकन्द, महागन्ध, दय, मकरन्द प्रभृति श्रीकृष्णको नाना वेशोंमें सजानेकी अन्तरंग सेवामें नियुक्त हैं। ये पुष्परससार (इत्र)-से श्रीकृष्णके वस्त्रोंको सुरभित रखते हैं। इनकी सैरन्ध्री (केश सँवारनेवालीका)-का नाम है—मधुकन्दला।

वस्त्र-संस्कारसेवा—सारंग, बकुल आदि श्रीकृष्णके वस्त्र-संस्कारकी सेवामें नियुक्त रजक हैं।

अंगराग तथा पुष्पालंकरणकी सेवा—सुमना, कुसुमोल्लास, पुष्पहास, हर आदि तथा सुबन्ध, सुगन्ध आदि श्रीकृष्णचन्द्रकी गन्ध, अंगराग, पुष्पाभरण आदिकी सेवा करते रहते हैं।

भोजन-पात्र, आसनादिकी सेवा—विमल, कमल आदि श्रीकृष्णके भोजनपात्र, आसन (पीढ़ा) आदिकी सँभाल रखनेवाले परिचारक हैं।

जलकी सेवा—पयोद तथा वारिद आदि श्रीकृष्णचन्द्रके यहाँ जल छाननेकी सेवामें निरत रहते हैं।

ताम्बूलकी सेवा—श्रीकृष्णचन्द्रके लिये सुरभित

ताम्बूलका बीड़ा सजानेवाले हैं—सुविलास, विशालाक्ष, रसाल, जम्बुल, रसशाली, पल्लव, मंगल, फुल्ल, कोमल, कपिल आदि। ये ताम्बूलका बीड़ा बाँधनेमें अत्यन्त निपुण हैं। ये सब श्रीकृष्णके पास रहनेवाले, विविध विचित्र चेष्टा करके, नाच-कूदकर, मीठी चर्चा सुनाकर मनोरंजन करनेवाले सखा हैं।

चेट—भंगुर, भृंगार, सान्धिक, ग्रहिल आदि श्रीकृष्णके चेट (नियत काम करनेवाले सेवक) हैं।

चेटी—कुरंगी, भृंगारी, सुलम्बा, लम्बिका आदि श्रीकृष्णकी चेटियाँ हैं।

प्रमुख परिचारिकाएँ—नन्द-भवनकी प्रमुख परिचारिकाएँ हैं—धनिष्ठा, चन्दनकला, गुणमाला, रतिप्रभा, तड़ित्प्रभा, तरुणी, इन्दुप्रभा, शोभा, रम्भा आदि। धनिष्ठा तो श्रीकृष्णचन्दकी धात्री तथा व्रजरानीकी अत्यन्त विश्वासपात्री भी हैं। उपर्युक्त सभी पानी छिड़कने, गोबरसे आँगन आदि लीपने, दूध औटाने आदि अन्तःपुरके कार्योंमें अत्यन्त कुशला हैं।

चर—चतुर, चारण, धीमान्, पेशल आदि इनके उत्तम चर हैं। ये नानावेश बनाकर गोप-गोपियोंमें विचरण करते रहते हैं।

दूत—केलि तथा विवादमें कुशल विशारद, तुंग, वावदूक, मनोरम, नीतिसार आदि इनके कुंज-सम्मेलनके उपयोगी दूत हैं।

दूतिकाएँ—पौर्णमासी, वीरा, वृन्दा, वंशी, नान्दीमुखी, वृन्दारिका, मेना, सुबला तथा मुरली प्रभृति इनकी दूतिकाएँ हैं। ये सब-की-सब कुशला, प्रिया-प्रियतमका सम्मिलन करानेमें दक्षा तथा कुंजादिको स्वच्छ रखने आदिमें निपुणा हैं। ये वृक्षायुर्वेदका ज्ञान रखती हैं तथा प्रिया-प्रियतमके स्नेहसे पूर्ण हैं। इनमें वृन्दा सर्वश्रेष्ठ हैं। वृन्दा तपाये हुए सोनेकी कान्तिके समान परम मनोहरा हैं। नील वस्त्रका परिधान धारण करती हैं तथा मुक्ताहार एवं पुष्पोंसे सुसज्जित रहती हैं। ये सदा वृन्दावनमें निवास करती हैं, प्रिया-प्रियतमका सम्मिलन चाहनेवाली हैं तथा उनके प्रेमसे परिप्लुता हैं।

वंदीगण—नन्द-दरबारके वन्दीगणोंमें सुविचित्र-रव और मधुररव श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय हैं।

नर्तक—(नन्द-सभाके) इनके प्रिय नर्तक हैं—चन्द्रहास, इन्दुहास, चन्द्रमुख आदि।

नट—(अभिनय करनेवाले)—इनके प्रिय नट हैं—सारंग, रसद, विलास आदि।

गायक—इनके प्रिय गायक हैं—सुकण्ठ, सुधाकण्ठ आदि।

रसज्ञ तालधारी—भारत, सारद, विद्याविलास, सरस आदि सर्व प्रकारकी व्यवस्थामें निपुण इनके तालधारी समाजीगण हैं।

मृदंग-वादक—सुधाकर, सुधानाद एवं सानन्द—ये इनके गुणी मृदंग-वादक हैं।

गृहनापित—क्षौरकर्म, तैल-मर्दन, पाद-संवाहन, दर्पणकी सेवा आदि कार्योंमें नियुक्त हैं—दक्ष, सुरंग, भद्रांग, स्वच्छ, सुशील एवं प्रगुण नामक गृहनापित।

सौचिक (दर्जी)—इनके कुलके निपुण दर्जीका नाम है रौचिक।

रजक (धोबी)—सुमुख, दुर्लभ, रंजन आदि इनके परिवारके धोबी हैं।

हड्डिप (मेहतर)—पुण्यपुंज तथा भाग्यराशि इनके परिवारके भंगी हैं।

स्वर्णकार (सुनार)—इनके तथा इनके परिवारके लिये विविध अलंकार-आभूषण आदि बनानेवाले रंगण तथा रंकण नामक दो सुनार हैं।

कुम्भकार (कुम्हार)—पवन तथा कर्मठ नामसे इनके दो कुम्हार हैं, जो इनके परिवारके लिये प्रयुक्त होनेवाले कलश, गागर, दधिभाण्डादि बनाते हैं।

काष्ठशिल्पी (बढ़ई)—वर्द्धकि तथा वर्द्धमान नामके इनके दो कुल-बढ़ई हैं, जो इनके लिये शकट, खाट आदि लकड़ीकी चीजोंका निर्माण करते हैं।

अन्य निजी शिल्पी एवं कारुगण—कारव, कुण्ड, कण्ठोल, करण्ड, कटुल आदि ऐसे घरेलू शिल्पी कारुगण हैं, जो इनके गृहमें काम आनेवाली जेवड़ी, मथनिया, कुठार, पेटी आदि सामान बनाते रहते हैं।

चित्रकार—सुचित्र एवं विचित्र नामके दो पटु

[illegible] [illegible] इनके प्रिय पात्र हैं।

गाय—इनकी प्रिय गायोंके नाम हैं—मंगला, पिंगेक्षणा, गंगा, पिशंगी, प्रणतश्रृंगी, मृदंगमुखी, धूमला, शबला, मणिकस्तनी, हंसी, वंशी प्रिया आदि।

बलीवर्द—पद्मगन्ध तथा पिशंगाक्ष आदि इनके प्रिय बैल हैं।

हरिण (मृग)—इनके प्रिय मृगका नाम है सुरंग।

मर्कट—इनका एक प्रिय बन्दर भी है, उसका नाम है दधिलोभ।

श्वान—व्याघ्र और भ्रमरक नामके दो कुत्ते भी श्रीकृष्णको बहुत प्रिय हैं।

हंस—इनके पास एक अत्यन्त सुमनोहर हंस भी है, जिसका नाम है कलस्वन।

मयूर—इनके प्रिय मयूरोंके नाम हैं शिखी और ताण्डविक।

तोते—इनके दक्ष और विचक्षण नामके दो प्रिय तोते हैं।

महोद्यान—साक्षात् कल्याणरूप श्रीवृन्दावन ही इनका परम मांगलिक महोद्यान है।

क्रीडापर्वत—श्रीगोवर्धनपर्वत इनकी रमणीय क्रीडास्थली है।

घाट—इनका प्रिय घाट नीलमण्डपिका नामसे विख्यात है। मानसगंगाका पारंगघाट भी इन्हें अतिशय प्रिय है। इस घाटपर सुविलासतरा नामकी एक नौका श्रीकृष्णचन्द्रके लिये सदा प्रस्तुत रहती है।

निभृत गुफा—'मणिकन्दली' नामक कन्दरा इन्हें अत्यन्त प्रिय है।

मण्डप—शुभ्र, उज्ज्वल शिलाखण्डोंसे जटित एवं विविध सुगन्धित द्रव्योंसे सुवासित 'आमोदवर्धन' नामका इनका निज-मण्डप है।

सरोवर—इनके निज-सरोवरका नाम 'पावन सरोवर' है, जिसके किनारे इनके अनेक क्रीड़ाकुंज शोभायमान हैं।

कुंज—इनके प्रिय कुंजका नाम 'काममहातीर्थ' है।

लीलापुलिन—इनके लीलापुलिनका नाम 'अनंग-रंगभूमि' है।

निज-मन्दिर—नन्दीश्वरपर्वतपर 'स्फुरदिन्दिर' नामक इनका निज-मन्दिर है।

दर्पण—इनके दर्पणका नाम 'शरदिन्दु' है।

पंखा—इनके पंखेको 'मधुमारुत' कहा जाता है।

लीला-कमल तथा गेंद—इनके पवित्र लीला-कमलका नाम 'सदास्मेर' है एवं गेंदका नाम 'चित्र-कोरक' है।

धनुष-बाण—'विलासकार्म्मण' नामक स्वर्णसे मण्डित इनका धनुष है तथा इनके मनोहर बाणका नाम 'शिंजिनी' है, जिसके दोनों ओर मणियाँ बँधी हुई हैं।

शृंग—इनके प्रिय शृंग (विषाण)-का नाम 'मंजुघोष' है।

वंशी—इनकी वंशीका नाम 'भुवनमोहिनी' है। यह 'महानन्दा' नामसे भी विख्यात है।*

वेणु—छः रन्ध्रोंवाले इनके सुन्दर वेणुका नाम 'मदन-झंकार' है।

मुरली—कोकिलाओंके हृदयाकर्षक कूजनको भी फीका करनेवाली इनकी मधुर मुरलिकाका नाम 'सरला' है।

वीणा—इनकी वीणा 'तरंगिणी' नामसे विख्यात है।

* इस सम्बन्धमें यह ज्ञातव्य है कि वंशी यदि अष्टछिद्र समन्वित हो एवं एक अंगुलके अन्तरसे एक अंगुल परिमाणका मुखरन्ध्र हो एवं शिरोभाग चार अंगुल तथा पुच्छभाग तीन अंगुल परिमाणका हो, तो उसे 'वंशिका' कहते हैं। यही वंशी यदि नवछिद्र-समन्वित हो, सत्रह अंगुल लम्बी हो तथा छिद्रों एवं मुखरन्ध्रके बीच दस अंगुलका व्यवधान हो, तो उसे सम्मोहिनी वंशी (महानन्दा) कहते हैं। यदि छिद्रों एवं मुखरन्ध्रके बीच बारह अंगुलका व्यवधान हो तो उसे 'आकर्षिणी' कहते हैं। उपर्युक्त दोनों सुवर्णकी बनी होती हैं। यदि बीस अंगुलका व्यवधान हो तो उसे 'आनन्दिनी (बाँसुरी)' कहते हैं। यह श्रीकृष्ण तथा उनके सखाओंको अत्यन्त प्रिय है। आनन्दिनी बाँसकी बनी होती है तथा श्रीकृष्ण इसे विविध लीला प्रसंगोंमें धारण करते हैं। वंशिका मणिमयी (हीरक-पद्मरागादि मणियोंसे जटित) होती है, महानन्दा, सम्मोहिनी एवं आकर्षिणी स्वर्णनिर्मित होती हैं। गोचारणके समय आनन्दिनीको एवं रासके समय श्यामसुन्दर महानन्दाको धारण करते हैं।

राग—गौड़ी तथा गुर्जरी नामकी रागिनियाँ श्रीकृष्णको अतिशय प्रिय हैं।

दण्ड (वेत्र या यष्टिक)—इनके बेंत (वेत्र या छड़ी)-का नाम 'मण्डन' है।

दोहनी—इनकी दोहनीका नाम 'अमृत-दोहनी' है।

आभूषण—श्रीकृष्णचन्द्रके नित्य-प्रयोगमें आनेवाले आभूषणोंमेंसे कुछके नाम निम्नोक्त हैं—

(१) नौ रत्नोंसे जटित 'महारक्षा' नामक रक्षायन्त्र इनकी भुजामें बँधा रहता है।

(२) कंकण—चंकन।

(३) मुद्रिका—रत्नमुखी।

(४) पीताम्बर—निगमशोभन।

(५) किंकिणी—कलझंकारा।

(६) मंजीर—हंसगंजन।

(७) हार—तारावली।

(८) मणिमाला—तड़ित्प्रभा।

(९) पदक—हृदयमोहन (इसपर श्रीराधाकी छवि अंकित है)।

(१०) मणि—कौस्तुभ।

(११) कुण्डल—रत्यधिदेव और रागाधिदेव (मकराकृत)।

(१२) किरीट—रत्नपार।

(१३) चूड़ा—चामरडामरी।

(१४) मयूरमुकुट—नवरत्न-विडम्ब।

(१५) गुंजाली—रागवल्ली।

(१६) माला—दृष्टिमोहिनी।

(१७) तिलक—दृष्टिमोहन।

चरणोंमें चिह्न

दाहिना चरण—अँगूठेके बीचमें जौ, उसके बगलमें ऊर्ध्वरेखा, मध्यमा उँगलीके नीचे कमल, कनिष्ठिकाके नीचे अंकुश, जौके नीचे चक्र, चक्रके नीचे छत्र, कमलके नीचे ध्वजा, अंकुशके नीचे वज्र, एड़ीके मध्यभागमें अष्टकोण, उसकी चारों दिशाओंमें चार सथिये (स्वस्तिक) और उनके बीचमें चारों कोनोंमें चार जामुनके फल—इस प्रकार कुल ग्यारह चिह्न हैं।

बायाँ चरण—अँगूठेके नीचे शंख, उसके बगलमें मध्यमा उँगलीके नीचे दो घेरोंका दूसरा शंख, उन दोनोंके नीचे चरणके दोनों पार्श्वोंको छूता हुआ बिना डोरीका धनुष, धनुषके नीचे तलवेके ठीक मध्यमें गायका खुर, खुरके नीचे त्रिकोण, त्रिकोणके नीचे अर्धचन्द्र (जिसका मुख ऊपरकी ओर है), एड़ीमें मत्स्य तथा खुर एवं मत्स्यके बीच चार कलश (जिनमेंसे दो त्रिकोणके आसपास और दो चन्द्रमाके नीचे अगल-बगलमें स्थित हैं)—इस प्रकार कुल ८ चिह्न हैं।

श्रीराधाजी, उनके परिकर एवं उनकी लीला सहचरियाँ

पितामह—महीभानु।

पितामही—सुखदा (अन्यत्र 'सुषमा' नामका भी उल्लेख मिलता है)।

पिता—वृषभानु।

माता—कीर्तिदा।

पितृव्य (चाचा)—भानु, रत्नभानु एवं सुभानु।

फूफा—काश।

बुआ—भानुमुद्रा।

भ्राता—श्रीदाम।

कनिष्ठा भगिनी—अनंगमंजरी।

मातामह—इन्दु।

मातामही—मुखरा।

मामा—भद्रकीर्ति, महाकीर्ति, चन्द्रकीर्ति।

मामी—मेनका, षष्ठी, गौरी।

मौसा—कुश।

मौसी—कीर्तिमती

धात्री—धातकी।

सखियाँ—श्रीराधाजीकी पाँच प्रकारकी सखियाँ हैं—(१) सखी, (२) नित्यसखी, (३) प्राणसखी, (४) प्रियसखी, (५) परम प्रेष्ठसखी।

(१) सखीवर्गकी सखियाँ—कुसुमिका, विन्ध्या, धनिष्ठा आदि हैं।

(२) नित्यसखीवर्गकी सखियाँ—कस्तूरी, मनोज्ञा, मणिमंजरी, सिन्दूरा, चन्दनवती, कौमुदी, मदिरा आदि हैं।

(३) प्राणसखीवर्गकी सखियाँ—शशिमुखी, चन्द्ररेखा, प्रियंवदा, मदोन्मदा, मधुमती, वासन्ती, लासिका, कलभाषिणी, रत्नवर्णा, केलिकन्दली, कादम्बरी, मणिमती, कर्पूरतिलका आदि हैं। ये सखियाँ प्रेम, सौन्दर्य एवं सद्गुणोंमें प्रायः श्रीराधारानीके समान ही हैं।

(४) प्रियसखीवर्गकी सखियाँ—कुरंगाक्षी, मण्डली, मणिकुण्डला, मालती, चन्द्रतिलका, माधवी, मदनालसा, मंजुकेशी, मंजुमेघा, शशिकला, सुमध्या, मधुरेक्षणा, कमला, कामलतिका, चन्द्रलतिका, गुणचूड़ा, वरांगदा, माधुरी, चन्द्रिका, प्रेममंजरी, तनुमध्यमा, कन्दर्पसुन्दरी आदि कोटि-कोटि प्रिय सखियाँ श्रीराधारानीकी हैं।

(५) परमप्रेष्ठसखीवर्गकी सखियाँ—इस वर्गकी सखियाँ हैं—(१) ललिता, (२) विशाखा, (३) चित्रा, (४) इन्दुलेखा, (५) चम्पकलता, (६) रंगदेवी, (७) तुंगविद्या, (८) सुदेवी।

सुहृद्वर्गकी सखियाँ—श्यामला, मंगला आदि।

प्रतिपक्षवर्गकी सखियाँ—चन्द्रावली आदि।

वाद्य एवं संगीतमें निपुणा सखियाँ—कलाकण्ठी, सुकण्ठी एवं प्रियपिक-कण्ठिका नाम्नी सखियाँ वाद्य एवं कण्ठसंगीतकी कलामें अत्यधिक निपुणा हैं। विशाखा सखी अत्यन्त मधुर कोमल पदोंकी रचना करती हैं तथा ये तीनों सखियाँ गा-गाकर प्रिया-प्रियतमको सुख प्रदान करती हैं। ये सब शुषिर, तत, आनद्ध, घन तथा अन्य वाद्य-यन्त्रोंको बजाती हैं।

मानलीलामें सन्धि करानेवाली सखियाँ—नान्दीमुखी एवं बिन्दुमुखी।

वनवासिनी सखियाँ—मल्ली, भृंगी तथा मतल्ली नामकी पुलिन्द-कन्यकाएँ श्रीराधारानीकी वनवासिनी सखियाँ हैं।

चित्र बनानेवाली सखियाँ—श्रीराधारानीके लिये भाँति-भाँतिके चित्र बनाकर प्रस्तुत करनेवाली सखीका नाम चित्रिणी है।

कलाकार सखियाँ—रसोल्लासा, गुणतुंगा, स्मरोद्धुरा आदि श्रीराधारानीकी कला-मर्मज्ञ सखियाँ हैं।

वनादिकोंमें साथ जानेवाली सखियाँ—वृन्दा, कुन्दलता आदि सहचरियाँ श्रीराधाके साथ वनादिकोंमें आती-जाती हैं।

व्रजराजके घरपर रहनेवाली सखियाँ—श्रीराधारानीकी अत्यन्त प्रियपात्री धनिष्ठा, गुणमाला आदि सखियाँ हैं, जो व्रजराजके घरपर ही रहती हैं।

मंजरियाँ—अनंगमंजरी, रूपमंजरी, रतिमंजरी, लवंगमंजरी, रागमंजरी, रसमंजरी, विलासमंजरी, प्रेममंजरी, मणिमंजरी, सुवर्णमंजरी, काममंजरी, रत्नमंजरी, कस्तूरीमंजरी, गन्धमंजरी, नेत्रमंजरी, पद्ममंजरी, लीलामंजरी, हेममंजरी आदि श्रीराधारानीकी मंजरियाँ हैं। इनमें रतिमंजरी श्रीराधाजीको अत्यन्त प्रिय हैं तथा वे रूपमें भी इनके ही समान हैं।

धात्रीपुत्री—कामदा है। यह श्रीराधारानीके प्रति सखीभावसे युक्त है।

सदा साथ रहनेवाली बालिकाएँ—तुंगी, पिशंगी, कलकन्दला, मंजुला, बिन्दुला, सन्धा, मृदुला आदि बालिकाएँ सदा-सर्वदा इनके साथ रहती हैं।

मन्त्र-तन्त्र-परामर्शदात्री सखियाँ—श्रीराधारानीको यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र क्रियाके सम्बन्धमें परामर्श देनेवाली

सखियोंका नाम है दैवज्ञा एवं दैवतारिणी।

राधाके घर आने-जानेवाली ब्राह्मण-स्त्रियाँ— गार्गी आदि।

वृद्धादूती—कात्यायनी आदि।

मुख्यदूती—महीसूर्या।

चेटीगण—(बँधा काम करनेवाली दासिकाएँ)— भृंगारिका आदि।

मालाकार-कन्याएँ—माणिकी, नर्मदा एवं प्रेमवती, नामकी मालाकार कन्याएँ श्रीराधारानीकी सेवामें नियुक्त रहती हैं। ये सुन्दर, सुरभित कुसुमों एवं पद्मोंका संचयन करके प्रतिदिन प्रात:काल श्रीराधारानीको भेंट करती हैं। श्रीराधारानी प्रायः इन्हें हृदयसे लगाकर इनकी भेंट स्वीकार करती हैं।

सैरन्ध्री—पालिन्द्री।

दासीगण—रागलेखा, कलाकेलि, मंजुला, भूरिदा आदि इनकी दासियाँ हैं।

गृह-नापित-कन्याएँ—श्रीराधारानीके उबटन (अंगराग), अलक्तकदान एवं केश-विन्यासकी सेवा सुगन्धा एवं नलिनी नामकी दो नापित-कन्याएँ करती हैं। ये दोनों ही श्रीराधारानीको अतिशय प्यारी हैं।

गृह-रजक-कन्याएँ—मंजिष्ठा एवं रंगरागा श्रीराधारानीके वस्त्रोंका प्रक्षालन करती हैं। इन्हें श्रीराधारानी अत्यधिक प्यार करती हैं।

हड्डिप-कन्याएँ—भाग्यवती एवं पुण्यपुंजा श्रीराधारानीके घरकी मेहतर-कन्याएँ हैं।

विटगण—सुबल, उज्ज्वल, गन्धर्व, मधुमंगल, रक्तक, विजय, रसाल, पयोद आदि इनके विट (श्रीकृष्णसे मिलन करानेमें सहायक) हैं।

कुल-उपास्यदेव—भगवान् श्रीसूर्यदेव श्रीराधारानीके कुल-उपास्य देवता हैं।

गायें—सुनन्दा, यमुना, बहुला आदि इनकी प्रिय गायें हैं।

गोवत्सा—तुंगी नामकी गोवत्सा इन्हें अत्यन्त प्रिय है।

हरिणी—रंगिणी।

चकोरी—चारुचन्द्रिका।

हंसिनी—तुण्डीकेरी (यह श्रीराधाकुण्डमें सदा विचरण करती रहती है)।

सारिकाएँ—सूक्ष्मधी और शुभा—ये इनकी प्रिय सारिकाएँ हैं।

मयूरी—तुण्डिका।

वृद्धा मर्कटी—कक्खटी।

आभूषण—श्रीराधारानीके निम्नोक्त आभूषणोंका उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त भी भाँति-भाँतिके अनेक आभूषण उनके प्रयोगमें आते हैं—

तिलक—स्मरयन्त्र।

हार—हरिमनोहर।

रत्नताटंक जोड़ी—रोचन।

घ्राणमुक्ता (बुलाक)—प्रभाकरी।

पदक—मदन (इसके भीतर वे श्रीकृष्णकी प्रतिच्छवि छिपाये रहती हैं)।

कटक (कड़ूला)-जोड़ा—चटकाराव।

केयूर (बाजूबन्द)-जोड़ा—मणिकर्बुर।

मुद्रिका—विपक्षमर्दिनी (इसपर श्रीराधाका नाम उत्कीर्ण है)।

करधनी (कांची)—कांचनचित्रांगी।

नूपुर-जोड़ी—रत्नगोपुर—इनकी शब्द-मंजरीसे श्रीकृष्ण व्यामोहित-से हो जाते हैं।

मणि—सौभाग्यमणि—यह मणि शंखचूडके मस्तकसे छीनी गयी थी। यह एक साथ ही सूर्य एवं चन्द्रमाके समान कान्तियुक्त है।

वस्त्र—मेघाम्बर तथा कुरुविन्दनिभ नामके दो वस्त्र इन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। मेघाम्बर मेघकान्तिके सदृश है, वह श्रीराधारानीको अत्यन्त प्रिय है। कुरुविन्दनिभ रक्तवर्ण है तथा श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय है।

दर्पण—मणिबान्धव (इसकी शोभा चन्द्रमाको भी लजाती है)।

रत्नकंकती (कंघी)—स्वस्तिदा।

सुवर्णशलाका—नर्मदा।

श्रीराधाकी प्रिय सुवर्णयूथी (सोनजुहीका पेड़)—तडिद्वल्ली।

वाटिका—कंदर्प-कुहली (यह प्रत्येक समय सुगन्धित पुष्पोंसे सुसज्जित रहती है)।

कुण्ड—श्रीराधाकुण्ड (इसके नीपवेदीतटमें रहस्य-कथनस्थली है)।

राग—मल्हार और धनाश्री श्रीराधारानीकी अत्यन्त प्रिय रागिनियाँ हैं।

वीणा—श्रीराधारानीकी रुद्रवीणाका नाम मधुमती है।

नृत्य—श्रीराधारानीके प्रिय नृत्यका नाम छालिक्य है। रुद्रवल्लकी नामकी नृत्य-पटु सहचरी इन्हें अत्यन्त प्रिय है।

चरणोंमें चिह्न

बायाँ पैर—अंगुष्ठ-मूलमें जौ, उसके नीचे चक्र, चक्रके नीचे छत्र, छत्रके नीचे कंकण, अंगुष्ठके बगलमें ऊर्ध्वरेखा, मध्यमाके नीचे कमलका फूल, कमलके फूलके नीचे फहराती हुई ध्वजा, कनिष्ठिकाके नीचे अंकुश, एड़ीमें अर्धचन्द्र—मुँह उँगलियोंकी ओर। अर्धचन्द्राकार चन्द्रमाके ऊपर दायीं ओर पुष्प एवं बायीं ओर लता—इस प्रकार कुल ११ चिह्न हैं।

दाहिना पैर—अँगूठेके नीचे शंख, अँगूठेके पार्श्वकी दो उँगलियोंके नीचे पर्वत, अन्तिम दो उँगलियोंके नीचे यज्ञवेदी, शंखके नीचे गदा, यज्ञवेदीके नीचे कुण्डल, कुण्डलके नीचे शक्ति, एड़ीमें मत्स्य और मत्स्यके ऊपर मध्यभागमें रथ—इस प्रकार कुल ८ चिह्न हैं।

हाथोंके चिह्न

बायाँ हाथ—तीन रेखाएँ हैं। पाँचों अँगुलियोंके अग्रभागमें पाँच नद्यावर्त, अनामिकाके नीचे हाथी, ऊपरकी दो रेखाओंके बीचमें अनामिकाके नीचे सीधमें घोड़ा, जिसके पैर अँगुलियोंकी ओर हैं, उसके नीचे दूसरी और तीसरी रेखाओंके बीचमें वृषभ, दूसरी रेखाके बगलमें कनिष्ठिकाके नीचे अंकुश, अँगूठेके नीचे ताड़का पंखा, हाथी और अंकुशके बीचमें बेलका पेड़, अँगूठेके सामने पंखेके बगलमें बाण, अंकुशके नीचे तोमर, वृषभके नीचे माला।

दाहिना हाथ—तीन रेखा वैसी ही। अँगुलियोंके अग्रभागमें पाँच शंख, कनिष्ठिकाके नीचे अंकुश, तर्जनीके नीचे चँवर, हथेलीके मध्यमें महल, उसके नीचे नगाड़ा, अंकुशके नीचे वज्र, महलके आसपास दो छकड़े, नगाड़ेके नीचे धनुष, धनुषके नीचे तलवार, अँगूठेके नीचे झारी।

श्रीसरसमाधुरी-काव्यसुषमा

कुंजमें आगमन

बन तें आवत कुंज भवन में।
लटक लटक झुक झूम झमक दोउ, नाहिं समावत फूले मन में॥
फूल सिंगार किएँ नख सिख लौं, मनु फूली फुलवारी तन में।
किंकिनि कुनित कटिन, पग पायल, ज्यों पंछी बोलत बन घन में॥
मुख अंबुज मकरंद माधुरी महक रही कछु मंद हँसन में।
अलबेली अनुरागिनि अलि गन मगन फिरत सब संग लगन में॥
स्याम संग सोभित श्रीस्यामा, संध्या फूली मनहुँ गगन में।
'सरसमाधुरी' अतुलित सोभा इक रसना नहिं आत कहन में॥

श्रीराधागोपाल-वन्दना

भज मन श्री राधे-गोपाल।
करुना निधि कोमल चित तिन कौ, दीनन के प्रतिपाल॥
जिन कौ ध्यान किएँ सुख, उपजै दूर होत दुख-जाल।
माया रहति चरन की चेरी, डरपत जिन सौं काल॥
बिहरत श्रीबृंदाबन माहीं, दोउ गरबैयाँ डाल।
बिलसत रास बिलास रँगीले गावत गीत रसाल॥
हँस-हँस छीन लेत मन छल कर चंचल नैन बिसाल।
'सरसमाधुरी' सरनागत कौं छिन मैं करैं निहाल॥

—श्री 'सरसमाधुरी' जी

श्रीराधाजीकी अष्टसखियाँ

श्रीराधाकिशोरीकी सखियाँ पाँच प्रकारकी मानी जाती हैं—सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी और परमप्रेष्ठसखी। कुसुमिका, विन्ध्या, धनिष्ठा आदि तो 'सखी' कहलाती हैं। कस्तूरी, मणिमंजरी आदि 'नित्यसखी' कही जाती हैं। शशिमुखी, वासन्ती, लासिका आदि 'प्राणसखी' की गणनामें हैं। कुरंगाक्षी, मंजुकेशी, माधवी, मालती आदि 'प्रियसखी' कही जाती हैं तथा श्रीललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रंगदेवी, तुंगविद्या और सुदेवी—ये आठ 'परमप्रेष्ठसखी' की गणनामें हैं। ये आठों सखियाँ ही 'अष्टसखी' के नामसे विख्यात हैं।

हृदयसे जुड़ी हुई अनन्त धमनियोंकी भाँति श्रीराधाकी समस्त सखियाँ राधा-हृत्सरोवरसे निरन्तर प्रेमरस लेती हैं, लेकर उस रसको सर्वत्र फैलाती रहती हैं तथा साथ ही अपना प्रेमरस भी राधा-हृदयमें उँड़ेलती रहती हैं। इस रसविस्तारके कार्यमें श्रीललिता आदि अष्टसखियोंका सबसे प्रमुख स्थान है।

श्रीकृष्णचन्द्रकी नित्यकैशोरलीलामें श्रीललिताकी आयु चौदह वर्ष तीन मास बारह दिनकी रहती है। श्रीललितामें यह नित्य दिव्य आवेश रहता है कि इस समय मेरी आयु इतनी हुई है। इसी प्रकार उस लीलामें श्रीविशाखा चौदह वर्ष दो मास पन्द्रह दिन, श्रीचित्रा चौदह वर्ष एक मास उन्नीस दिन, श्रीइन्दुलेखा चौदह वर्ष दो मास बारह दिन, श्रीचम्पकलता चौदह वर्ष दो मास चौदह दिन, श्रीरंगदेवी चौदह वर्ष दो मास आठ दिन, श्रीतुंगविद्या चौदह वर्ष दो मास बीस दिन और श्रीसुदेवी चौदह वर्ष दो मास आठ दिनकी रहती हैं। अवश्य ही जब श्रीराधाकिशोरीकी लीलाका प्रपंचमें प्रकाश होता है, वे अवतरित होती हैं, तब ये भी उसी प्रकार अवतरित होती हैं—इनका जन्म होता है, कौमार आता है, पौगण्ड आता है, फिर कैशोरसे विभूषित होती हैं।

इन आठ सखियोंका जीवनचरित्र श्रीराधामहारानीकी लीलामें सर्वथा अनुस्यूत रहता है। जो राधाभावसिन्धुका कोई-सा एक कण पा लेते हैं, वे ही इन सखियोंके दिव्य भुवनपावन चरित्रके सम्बन्धमें यत्किंचित् जान पाते हैं। वह भी एक-सा नहीं, जो जैसे पात्र हों। हमारे लिये तो इतना ही पर्याप्त है कि श्रीराधाकिशोरीको स्मरण करते हुए हम इनकी वन्दना कर लें—

गोरोचनारुचिमनोहरकान्तिदेहां
मायूरपिच्छतुलितच्छविचारुचेलाम् ।
राधे तव प्रियसखीं च गुरुं सखीनां
ताम्बूलभक्तिललितां ललितां नमामि॥

हे राधे! गोरोचनके समान जिनके श्रीअंगोंकी मनोहर कान्ति है, जो मयूरपिच्छके समान चित्रित साड़ी धारण करती हैं, तुम्हारी ताम्बूलसेवा जिनके अधिकारमें है, इस सेवासे जो अत्यन्त ललित (सुन्दर) हो रही हैं, जो सखियोंकी गुरुरूप हैं, तुम्हारी उन प्यारी सखी श्रीललिताको मैं प्रणाम कर रहा हूँ।

सौदामिनीनिचयचारुरुचिप्रतीकां
तारावलीललितकान्तिमनोज्ञचेलाम् ।
श्रीराधिके तव चरित्रगुणानुरूपां
सद्गन्धचन्दनरतां विशये विशाखाम्॥

श्रीराधिके! मानो सौदामिनी—समूह एकत्र हो, इस प्रकार तो जिनके अंगोंका सुन्दर वर्ण है, तारिकाश्रेणीकी सुन्दर कान्ति जिनकी मनोहर साड़ीमें भरी हुई है, सुगन्धित द्रव्य, चन्दन आदिसे जो तुम्हारे लिये अंगराग प्रस्तुत करती हैं, उनसे तुम्हारा अंग-विलेपन करती हैं तथा चरित्रमें, गुणमें जो तुम्हारे समान हैं, तुम्हारी उन [प्रिय सखी] विशाखाका मैं आश्रय ग्रहण कर रहा हूँ।

काश्मीरकान्तिकमनीयकलेवराभां
सुस्निग्धकाचनिचयप्रभचारुचेलाम् ।
श्रीराधिके तव मनोरथवस्त्रदाने
चित्रां विचित्रहृदयां सदयां प्रपद्ये॥

श्रीराधिके! केशरकी कान्ति-जैसी जिनके कमनीय अंगोंकी शोभा है, सुचिक्कण काचसमूहकी प्रभावाली सुन्दर साड़ी धारण किये रहती हैं, तुम्हारी रुचिके अनुसार तुम्हें वस्त्र पहनानेमें जो लगी हुई हैं, जिनके हृदयमें अनेकों विचित्र भाव भरे हैं, जो करुणामें भरी हैं, तुम्हारी

उन [प्रिय सखी] चित्राकी मैं शरण ले रहा हूँ।

नृत्योत्सवां हि हरितालसमुज्ज्वलाभां
सद्दाडिमीकुसुमकान्तिमनोज्ञचेलाम् ।
वन्दे मुदा रुचिविनिर्जितचन्द्ररेखां
श्रीराधिके तव सखीमहमिन्दुलेखाम्॥

श्रीराधिके! जिनके अंगोंकी आभा समुज्ज्वल हरिताल-जैसी है, जो दाडिम-पुष्पोंकी कान्तिवाली सुन्दर साड़ीसे विभूषित हैं, जिनका मुख अत्यन्त प्रसन्न है, प्रसन्नमुखकी कान्तिसे जो चन्द्रकलाको भी जीत ले रही हैं, जो नृत्योत्सवके द्वारा तुम्हें सुखी करती हैं, तुम्हारी उन इन्दुलेखा सखीकी मैं वन्दना करता हूँ।

सद्रत्नचामरकरां वरचम्पकाभां
चाषाख्यपक्षिरुचिरच्छविचारुचेलाम् ।
सर्वान् गुणांस्तुलयितुं दधतीं विशाखां
राधेऽथ चम्पकलतां भवतीं प्रपद्ये॥

श्रीराधे! जिनके अंगोंकी आभा चम्पकपुष्प-जैसी है, जो नीलकण्ठ पक्षीके रंगकी साड़ी पहनती हैं, जिनके हाथमें रत्ननिर्मित चामर है, सभी गुणोंमें जो विशाखाके समान हैं, तुम्हारी उन [प्रिय सखी] चम्पकलताकी मैं शरण ले रहा हूँ।

सत्पद्मकेशरमनोहरकान्तिदेहां
प्रोद्यज्जवाकुसुमदीधितिचारुचेलाम् ।
प्रायेण चम्पकलताधिगुणां सुशीलां
राधे भजे प्रियसखीं तव रंगदेवीम्॥

राधे! जिनके अंगोंकी छवि सुन्दर पद्मपरागके समान है, जिनकी सुन्दर साड़ीकी कान्ति पूर्ण विकसित जवाकुसुम-जैसी है, जिनमें गुणोंकी इतनी अधिकता है कि चम्पकलतासे भी बढ़ी-चढ़ी हैं, उन अत्यन्त सुन्दर शीलवाली तुम्हारी प्यारी सखी रंगदेवीका मैं भजन करता हूँ।

सच्चन्द्रचन्दनमनोहरकुङ्कुमाभां
पाण्डुच्छविप्रचुरकान्तिलसद्दुकूलाम् ।
सर्वत्र कोविदतया महितां समज्ञां
राधे भजे प्रियसखीं तव तुंगविद्याम्॥

राधे! कर्पूरचन्दनमिश्रित कुंकुमके समान जिनका वर्ण है, पीतवर्ण कान्तिपूर्ण वस्त्रसे जो सुशोभित हैं, सर्वत्र जिनकी बुद्धिमत्ताका आदर होता है, उन सुयशमयी तुम्हारी प्रिय सखी तुंगविद्याका मैं भजन करता हूँ।

प्रोत्तप्तशुद्धकनकच्छविचारुदेहां
प्रोद्यत्प्रवालनिचयप्रभचारुचेलाम् ।
सर्वानुजीवनगुणोज्ज्वलभक्तिदक्षां
श्रीराधिके तव सखीं कलये सुदेवीम्॥

श्रीराधिके! उत्तप्त विशुद्ध स्वर्ण-जैसी सुन्दर जिनकी देह है, चमकते हुए मूँगेके रंगकी जो साड़ी धारण करती हैं, तुम्हें जल पिलानेकी सुन्दर सेवामें जो निपुण हैं, तुम्हारी उन सुदेवी सखीका मैं ध्यान कर रहा हूँ।

अष्टसखी

अष्ट सखी करतीं सदा सेवा परम अनन्य।
राधा-माधव-जुगलकी, कर निज जीवन धन्य॥
इनके चरण-सरोज में बारंबार प्रनाम।
करुना कर दें श्रीजुगल-पद-रज-रति अभिराम॥

(पद-रत्नाकर)

श्रीललिता

माताका नाम—शारदा।

पिताका नाम—विशोक। (एकमतसे—सत्यकला, सत्यभानु)

अंगकान्ति—गोरोचन-जैसी है।

परिधान वस्त्र—मयूर-पिच्छके सदृश है।

कुंजका रंग—इनका कुंज विद्युद्वर्ण है।

इनकी सेवा—प्रिया-प्रियतमको ताम्बूलकी सेवा अर्पण करती हैं। ये विशुद्ध खण्डिताभावकी मूल स्रोत हैं। अतीत, वर्तमान, भविष्यमें प्रवाहित खण्डिताभावकी प्राकृत धारा इनके विशुद्ध रसमय चिदानन्दमय भावकी ही छाया है। अवश्य ही इनमें जो खण्डिताभाव है, वह अपने निमित्तसे व्यक्त नहीं होता। भानुकिशोरी एवं श्रीकृष्णचन्द्रके निर्दिष्ट सम्मिलनमें विलम्ब होनेपर ही इस दिव्य भावका उन्मेष होता है।

इनका प्रिय राग—भैरव-कलिंगड़ा राग इन्हें अत्यधिक प्यारा है। **प्रिय वाद्य है**—वीणा।

आयु—निकुंजलीलामें इनकी आयु १४ वर्ष ३ महीने १२ दिनकी रहती है।

कुछ विशेष बातें—इनके पितामें जो औदार्य गुण है, वह इनमें पूर्ण रूपसे व्यक्त हुआ है। इनके अधिकारमें प्रिया-प्रियतमकी जो-जो सेवाएँ हैं—उनमें इनकी तीन

१. श्रीललिता सखी

८. श्रीसुदेवी सखी

७. श्रीतुंगविद्या सखी

२. श्रीविशाखा सखी

भगवती श्रीराधाजी

६. श्रीरंगदेवी सखी

३. श्रीचित्रा सखी

४. श्रीइंदुलेखा सखी

५. श्रीचंपकलता सखी

प्रधान सहायिकाएँ हैं—अनंगमंजरी, लवंगमंजरी, रूपमंजरी।

इनकी आठ सखियाँ हैं—रत्नप्रभा, रतिकला, सुभद्रा, भद्ररेखिका, सुमुखी, धनिष्ठा, कलहंसी, कलापिनी।

सखियोंमें प्रधान ये ही हैं। प्रकारान्तरसे राधारानीकी समस्त लीलाओंकी परम अध्यक्षरूपिणी ये ही हैं। निरन्तर वाम्य एवं प्रखरताका एक अद्भुत सम्मिश्रण इनकी चेष्टाओंमें परिलक्षित होता है। सन्धिविग्रह—जिस भाँतिसे अधिकाधिक रसपोषण सम्भव है, उसी प्रकारकी चेष्टाओंमें परिव्याप्त रहकर प्रिया-प्रियतमका आनन्दवर्धन करती हैं। पुष्पवितान, पुष्पमण्डल, पुष्पछत्र, पुष्पशय्या, पुष्पगृह आदिकी रचनामें एवं पहेलीकी अर्थ-अवधारणामें इनके समान निकुंजलीलामें कोई नहीं है। ये इन्द्रजालकी भी पण्डिता हैं।

श्री 'ललिता' लावण्य ललित सखि गोरोचन-आभा-जुत अंग।
विद्युद्-वर्णि निकुञ्जनिवासिनि, वसन रुचिर शिखिपिच्छ सुरंग॥
इन्द्रजाल-निपुणा, नित करती परम स्वादु ताम्बूल प्रदान।
कुसुम-कला-कुशला रचती कल कुसुम-निकेतन कुसुम-वितान॥

श्रीविशाखा

माताका नाम—सुदक्षिणा।

पिताका नाम—पावन।

(**एकमतसे**—गुणकला एवं गुणभानु)

अंगकान्ति—विद्युत्-जैसी है।

परिधान-वस्त्र—इनका तारावलीप्रभ है।

कुंजका रंग—मेघ-सा है।

इनकी सेवा—कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्यसे युक्त विलेपन प्रस्तुतकर प्रिया-प्रियतमके श्रीअंगोंको विलेपित करनेकी विशेष सेवा इनके अधिकारमें है।

इनका भाव—स्वाधीनभर्तृका है। दूसरे शब्दोंमें ऐसा कहें कि इस भावकी अप्राकृत चरम परिणतिकी मूर्ति ये हैं। अतीत-अनागत विश्वमें स्वाधीनभर्तृका-भावका उन्मेष इनकी सत्तापर ही अवलम्बित है। शेष छः सखियोंमें जो-जो भाव हैं—उनके सम्बन्धमें भी यही बात समझनी चाहिये।

इनका प्रिय राग—सारंग राग इन्हें बहुत प्रिय है।

इनका प्रिय वाद्य—मृदंग।

आयु—निकुंजलीलामें इनकी आयु १४ वर्ष २ महीने, १५ दिनोंकी रहती है।

प्रधान सहायिकाएँ—प्रिया-प्रियतमकी सेवामें इनकी प्रधान तीन सहायिकाएँ हैं—मधुमतीमंजरी, रसमंजरी एवं गुणमंजरी। **इनकी आठ सखियाँ हैं**—माधवी, मालती, चन्द्ररेखिका, कुंजरी, हरिणी, चपला, सुरभि, शुभानना।

कुछ विशेष बातें—जिस क्षण भानुकिशोरीका आविर्भाव हुआ है, उसी क्षण ये भी आविर्भूत हुई हैं। इनके पिता महान् विद्वान् हैं। ये भी पूर्ण विदुषी हैं। इनका परामर्श कभी व्यर्थ नहीं होता। अत्यन्त परिहास-कुशल हैं। प्रिया-प्रियतमके मिलनकी विविध युक्तियाँ, नव-नव रसास्वादनके उपाय ये सोचती ही रहती हैं। अंगोंपर पत्रावली आदिकी रचना करनेमें, मालाके संयोगसे विविध शिरोभूषण प्रस्तुत करनेमें तथा विविध सूत्रोंको लेकर सुईसे वस्त्रोंपर बेल-बूटे निकालनेमें अत्यन्त प्रवीण हैं। वस्त्रकी सँभाल रखनेवाली जो सखियाँ एवं दासियाँ हैं, पुष्पलतावल्लरी-वृक्षावलीपर वृन्दादेवीकी जिन-जिन सखियोंका अधिकार है, वे सभी इनके आदेशसे ही काम करती हैं।

सखी 'विशाखा' विद्युद्-वर्णा, रहती बादल-वर्णा कुञ्ज।
तारा-प्रभा सुवसन सुशोभित, मन नित मगन श्याम-पद-कंज॥
कर्पूरादि सुगन्ध-द्रव्य युत लेपन करती सुन्दर अंग।
बूटे-बेल बनाती, रचती चित्र विविध रुचि अंग-प्रत्यंग॥

श्रीचित्रा

माताका नाम—चर्चिका।

पिताका नाम—चतुर।

(**एकमतसे**—रुचिकला और शुचिभानु)

अंगकान्ति—काश्मीर (केशर)-जैसी है।

परिधान-वस्त्र—काचप्रभ है।

कुंजका रंग—किंजल्क-वर्ण है।

इनकी सेवा—प्रिया-प्रियतमको वस्त्रालंकारसे विभूषित करना। एक बात ध्यानमें रखनी है कि विशुद्ध निकुंजमें शृंगार, प्रिया-प्रियतम दोनोंका ही सखियाँ ही करती हैं; किंतु गोष्ठलीला-मिश्रित निकुंजलीलामें गोष्ठके समय तो केवल राधारानीकी सेवा ही सखियाँ करती हैं। श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवामें गोष्ठके परिकर रहते हैं।

इनका भाव—दिवाभिसारिका। **राग**—संकटा

राग इन्हें अतिशय प्यारा है। **इनका प्रिय वाद्य**—सितार। **आयु**—निकुंजमें इनकी आयु १४ वर्ष १ महीने, १९ दिनकी रहती है।

इनकी सेवामें प्रधान सहायिकाएँ—विमलामंजरी, रतिमंजरी, भद्रमंजरी। **इनकी आठ सखियाँ हैं**—रसालिका, तिलकनी, शौरसेनी, सुगांधिका, रमिला, कामनागरी, नागरी, नागवेलिका।

कुछ विशेष बातें—इनके पिता ज्योतिष-शास्त्रमें पारंगत हैं। ये भी ज्योतिषशास्त्रकी पूर्ण पण्डिता हैं। संकेतभाषाका इन्हें विचित्र ज्ञान है। अनेक देशोंकी भाषाओंका भी परिज्ञान है। ये देखकर ही बता देती हैं कि मधु और दुग्ध आदि वस्तुएँ कैसी हैं। किस कीटका संचित मधु है। किस पशुका दूध है। काचके बर्तन बनानेमें बड़ी निपुण हैं। वृक्षोपचारशास्त्र, पशुशास्त्रमें भी इनका पूर्ण अधिकार है। सर्पमन्त्रोंकी भी विशेषज्ञा हैं। रसीली भोज्य वस्तुओंके निर्माणमें सिद्धहस्ता हैं। वृन्दावनकी कुसुमादिविहीन जो दिव्यौषधियाँ हैं तथा ऐसी जो अन्य वनस्पतियाँ हैं—उनपर अधिकार रखनेवाली समस्त सखियाँ अथवा वृन्दादासिकाएँ इनके आदेशसे ही काम करती हैं।

'चित्रा' अंग-कान्ति केसर-सी, काँच-प्रभा-से वसन ललाम।
कुञ्ज रंग किञ्जल्क कलित अति, शोभामय सब अंग सुठाम॥
विविध विचित्र वसन-आभूषणसे करती सुन्दर सिंगार।
करती सांकेतिक अनेक देशोंकी भाषाका व्यवहार॥

श्रीइन्दुलेखा

माताका नाम—बेला।

पिताका नाम—सागर।

(**एकमतसे**—वरकला और वरभानु)

अंगकान्ति—हरिताल-जैसी है।

परिधान-वस्त्र—दाड़िम-कुसुम वर्ण।

कुंजका रंग—शुभ्र है।

इनकी सेवा—नृत्यसे प्रिया-प्रियतमको सन्तुष्ट करना।

इनका भाव—प्रोषितभर्तृका।

इनका प्रिय राग—विहाग।

प्रिय वाद्य—मँजीरा।

आयु—निकुंजमें इनकी आयु १४ वर्ष २ महीने, १२ दिनोंकी रहती है।

प्रधान सहायिकाएँ—सेवा-कार्यमें इनकी प्रधान सहायिकाएँ हैं—श्यामलामंजरी, लीलामंजरी एवं विलासमंजरी।

इनकी आठ सखियाँ हैं—तुंगभद्रा, रसतुंगा, रंगवारी, सुमंगला, चित्रलेखा, विचित्रांगी, मोदिनी, मदनालसा।

कुछ विशेष बातें—इनके पिता प्रसिद्ध गायक हैं। गानविद्यामें ये भी व्रजकी ख्यातिलब्ध गोपसुन्दरी हैं।

सखी 'इन्दुलेखा' शुचि करती शुभ्र-वर्ण शुभ कुञ्ज-निवास।
अंग-कान्ति हरताल-सदृश, रँग दाडिम-कुसुम वसन सुखरास॥
करती नृत्य विचित्र भंगिमा संयुत नित नूतन अभिराम।
गायन-विद्या-निपुणा, व्रजकी ख्यात गोपसुन्दरी ललाम॥

श्रीचम्पकलता

माताका नाम—वाटिका।

पिताका नाम—आराम।

(**एकमतसे**—चन्द्रकला तथा चन्द्रभानु)

अंगकान्ति—चम्पक पुष्प-जैसी है।

परिधान-वस्त्र—नीलकण्ठ पक्षीके समान है।

कुंजका रंग—तप्त स्वर्णके समान है।

सेवा—चामर डुलानेकी है।

भाव—वासकसज्जाका है।

प्रिय वाद्य—सारंगी है।

आयु—१४ वर्ष २ माह १४ दिनकी रहती है।

प्रधान सहायिकाएँ—पालिकामंजरी, विलासमंजरी, केलिमंजरी।

इनकी आठ सखियाँ हैं—कुरंगाक्षी, सुरति, मंडला, मणिकुंडला, चन्द्रिका, चन्द्रलतिका, कुन्दाक्षी, सुमन्दिरा।

कुछ विशेष बातें—पिता विविध कलाओंके ज्ञाता हैं तथा ये भी विविध कलाओंकी पण्डिता हैं। अन्य गुणोंमें विशाखाके समान हैं। द्यूतशास्त्रकी महापण्डिता हैं। प्रतिपक्ष यूथकी सखियोंकी इनके आगे एक नहीं चलती। केवल हाथके सहारे मिट्टीके बर्तन, पत्र, पुष्प आदि विविध वस्तुएँ बनानेमें ये अद्वितीय हैं। मिष्टान्न और व्यंजन बनानेका इनका कौशल भी अद्वितीय है।

'चम्पकलता' कान्ति चम्पा-सी, कुञ्ज तपे सोनेके रंग।
नीलकण्ठ-पक्षीके रँगके रुचिर वसन धारे शुचि अंग॥

चावभरे चित चँवर डुलाती अविरत नित कर-कमल उदार।
द्यूत-पण्डिता, विविध कलाओं से करती सुन्दर सिंगार॥

श्रीरंगदेवी

माताका नाम—करुणा।

पिताका नाम—आराम।

(**एकमतसे**—धर्मकला और धर्मभानु)

अंगकान्ति—पद्मकिंजल्क-सी है।

परिधान-वस्त्र—जवाकुसुम वर्णका है।

कुंजका रंग—इनका कुंज श्याम रंगका है।

इनकी सेवा—इनकी सेवा अलक्तक लगानेकी है। गोष्ठलीलामें राधाकिशोरीके अलक्तक रागकी सेवा नापित-कन्याएँ करती हैं; पर निकुंजमें यह सेवा रंगदेवीजीके अधिकारमें है।

इनका भाव—उत्कण्ठिताका है।

आयु—निकुंजमें सदा १४ वर्ष २ माह ८ दिनकी रहती है।

इनकी प्रधान सहायिकाएँ—मंगलामंजरी, कुन्दमंजरी एवं मदनमंजरी हैं।

आठ सखियाँ हैं—कलकण्ठी, शशिकला, कमला, मधुरा, इन्दिरा, कंदर्पसुन्दरी, कामलतिका, प्रेममंजरी।

कुछ विशेष बातें—इनके पितामें धर्म-पालनकी बड़ी निष्ठा है। इनमें भी स्त्रियोचित व्रत-त्यौहारके प्रति बड़ी आस्था है। शेष बातोंमें प्राय: श्रीचम्पकलताजीके समान हैं। धूप खेनेवाली सखियाँ, शिशिरमें अग्नि-रक्षण करनेवाली तथा ग्रीष्ममें विजनकी सेवा करनेवाली सखियाँ, दासियाँ ये सभी इनके आदेशसे काम करती हैं।

सखी 'रंगदेवी' बसती अति रुचिर निकुञ्ज, वर्ण जो श्याम।
कान्ति कमल-केसर-सी शोभित जवा-कुसुम-रँग वसन ललाम॥
नित्य लगाती रुचि कर-चरणोंमें यावक अतिशय अभिराम।
आस्था अति त्यौहार-व्रतोंमें, कला-कुशल शुचि शोभाधाम॥

श्रीतुंगविद्या

माताका नाम—मेधा।

पिताका नाम—पौष्कर।

अंगकान्ति—चन्द्रकुंकुम-जैसी है।

परिधान-वस्त्र—परिधान पीतवर्ण है।

कुंजका रंग—निकुंज अरुणवर्ण है।

सेवा—इनके अधिकारमें गीत-वाद्यकी सेवा है।

इनका भाव—विप्रलम्भ है।

आयु—निकुंजमें इनकी आयु सदा १४ वर्ष २ माह २० दिनकी रहती है।

सेवाकार्यमें इनकी प्रधान सहायिकाएँ—धन्यामंजरी, अशोकमंजरी एवं मंजुलामंजरी हैं।

इनकी आठ सखियाँ हैं—मंजुमेधा, सुमध्या, मधुरेक्षणा, तनुमध्या, मधुस्यन्दा, गुणचूड़ा, वरांगदा।

कुछ विशेष बातें—इनके पिता स्वाभाविक सबको बड़े प्यारे लगते हैं। ये भी स्वाभाविक सबको अत्यन्त प्रिय हैं। समस्त विद्याओंकी ये खान हैं। ऐसी कोई विद्या नहीं, जो तुंगविद्याजी नहीं जानतीं। रसशास्त्र, नीतिशास्त्र, नाट्यशास्त्र, समस्त गान्धर्व-विद्या—इन सबकी ये आचार्या हैं। संगीतमंच, वाद्यमंच, रासमंच आदिपर जितनी सखियाँ एवं दासियाँ काम करती हैं, सब-की-सब इनके पर्यवेक्षणमें काम करती हैं।

सखी 'तुंगविद्या' अति शोभित कान्ति चन्द्र, कुंकुम-सी देह।
वसन सुशोभित पीत वर्ण वर, अरुण निकुंज, भरी नव नेह॥
गीत वाद्यसे सेवा करती अतिशय सरस सदा अविराम।
नीति-नाट्य-गान्धर्व-शास्त्र-निपुणा रस-आचार्या अभिराम॥

श्रीसुदेवी

ये रंगदेवीजीकी जुड़वाँ बहन हैं।

अंगकान्ति—सुवर्ण-जैसी है।

परिधान-वस्त्र—प्रवालवर्ण है।

कुंज—हरिद्वर्ण है।

सेवा—इनके अधिकारमें जलकी सेवा है।

इनका भाव—कलहान्तरिता।

आयु—इनकी भी आयु निकुंजमें १४ वर्ष २ महीने ८ दिनकी रहती है।

सेवाकार्यमें इनकी सहायिकाएँ हैं—तारकामंजरी, सुधामुखीमंजरी, पद्ममंजरी।

इनकी आठ सखियाँ हैं—कावेरी, चारुकबरा, सुकेशी, मंजुकेशिका, हारहीरा, महाहीरा, हारकण्ठी, मनोहरा।

कुछ विशेष बातें—ये दौड़नेमें बहुत तेज हैं। आकृति रंगदेवीसे इतनी मिलती है कि दूरसे देखनेपर

कितनी बार भ्रान्ति हो जाती है कि रंगदेवीजी आ रही हैं। भानुकिशोरीकी वेणीरचना भी अधिकांश समय ये ही करती हैं। सारिका एवं शुकको शिक्षा देनेमें बड़ी कुशल हैं। तीतर-बटेर लड़ानेकी कला भी इन्हें खूब आती है। शकुनशास्त्रकी पूर्ण पण्डिता हैं। पक्षीके शब्दोंका इन्हें पूर्ण ज्ञान है। चन्द्रोदय, बादल, पुष्प, अग्निके सम्बन्धमें भी इनका ज्ञान अगाध है। दिव्यलीलामें प्रतिपक्षीके भाव, उनकी चेष्टा आदि जाननेके लिये जो सखियाँ एवं दासियाँ गुप्तचरकी भाँति घूमती हैं, वे सबकी सब इनके आदेशके अनुसार चलती हैं।

सखी 'सुदेवी' स्वर्ण-वर्ण-सी, वसन सुशोभित मूँगा-रंग।
कुञ्ज हरिद्रा-रंग मनोहर, करती सकल वासना भंग॥
जल निर्मल पावन सुरभितसे करती जो सेवा अभिराम।
ललित लाड़िलीकी जो करती वेणी-रचना परम ललाम॥

श्रीराधामाधवकी मधुर व्रजलीलामें सम्मिलित सखियोंके विभिन्न वर्ग

परम प्रेमस्वरूप सच्चिदानन्दघनविग्रह परात्पर भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर व्रजलीलामें लाखों-लाखों पुण्य-सौभाग्यमयी देवियाँ सम्मिलित थीं। उनमें नित्यसिद्धा गोपांगनाओंके अतिरिक्त पूर्वजन्मकी घोर तपस्या, प्रबल अनन्य आकांक्षा एवं विशुद्ध मधुरोपासनाके फलस्वरूप विभिन्न समूहोंमें विभिन्न नामोंसे विख्यात बहुत-सी व्रजांगनाएँ थीं। उनके समूहोंके निम्नलिखित दस वर्ग प्रधान हैं—श्रुतिरूपा, ऋषिरूपा, मैथिली, कौसली, अयोध्यापुरवासिनी, यज्ञसीता, पौलिन्दी, देवनारी, जालन्धरी और नागेन्द्रकन्या। इनके साथ भगवान् श्रीकृष्णके लीला-विहारका कुछ वर्णन गर्गसंहिता, माधुर्यखण्डमें प्राप्त होता है। व्रजलीलामें अष्टसखियाँ सबमें प्रधान मानी ही जाती हैं। पद्मपुराणादिमें सोलह आद्या सखियोंका वर्णन है, इनमें पहली आठके स्थान तथा सेवाकार्य नियत हैं। दोनोंके नाम ये हैं—

(१) ललिता, श्यामला, धन्या, श्रीहरिप्रिया, विशाखा, शैब्या, पद्मा और भद्रा।

(२) चन्द्रावली, चित्रलेखा, चन्द्रा, मदनसुन्दरी, श्रीकृष्णप्रिया, श्रीमधुमती, चन्द्ररेखा और हरिप्रिया।

इनके अतिरिक्त ऐसी बहुत-सी सेवापरायणा गोपांगनाएँ भी हैं, जिन्होंने विभिन्न पुरुषरूपोंमें पूर्वजन्मोंमें श्रीकृष्णप्रेम-प्राप्तिके लिये दीर्घकालतक कठोर तपस्या की थी और उसके फलस्वरूप गोपीरूपमें अवतीर्ण होकर श्रीकृष्णप्रेम तथा भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर सेवाका सौभाग्य प्राप्त किया था। इनमें मुख्यतया चार ये हैं—

१. सुनन्दा—ये वीणा धारण करती हैं। इनके पिताका नाम सुनन्द गोप है। ये पूर्वजन्ममें उग्रतपा नामक ऋषि थीं और इन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके मधुर व्रजस्वरूपके ध्यानसहित घोर तपस्या की थी। उसीके फलस्वरूप इन्हें यह सौभाग्य मिला।

२. भद्रा—ये दिव्य व्यजनके द्वारा सेवा करती हैं। इनके पिताका नाम सुभद्र गोप है। ये पूर्वजन्ममें सत्यतपा नामक ऋषि थीं और इन्होंने मधुरोपासनासहित श्रीकृष्णप्रेमप्राप्तिके लिये घोर तप किया था।

३. रंगवेणी—ये चित्रकलामें निपुण हैं और इस कलाके द्वारा सेवा करती हैं। इनके पिताका नाम सारंग गोप है। इन्होंने हरिधामा नामक ऋषिके रूपमें पूर्वजन्ममें घोर तपस्यायुक्त मधुर भावसे भगवान् श्रीकृष्णकी दीर्घकालतक आराधना की थी।

४. चित्रगन्धा—ये अपने सहज दिव्य अंग-सौरभसे श्रीकृष्णको सुख पहुँचाती हैं। इनके पिताका नाम प्रचण्ड गोप हैं। ये पूर्वजन्ममें जाबालि नामक महान् ऋषि थीं। इन्होंने श्रीकृष्णप्रेमप्राप्तिके लिये तपस्या करती हुई स्वयं ब्रह्मविद्यासे मन्त्रदीक्षा प्राप्त करके मानसरोवरपर जाकर तदनुसार कठोर तपस्या और मधुरोपासना की थी।

वस्तुतः प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेमरूपा मधुरोपासनाका अधिकार उन्हींको प्राप्त होता है, जो उसे प्राप्त करनेके लिये निरभिमान होकर सहर्ष सर्वत्याग करते हैं एवं अपरिमित उल्लास तथा उत्साहके साथ दीर्घकालतक धैर्यके साथ महान्से महान् तप करनेके लिये सदा प्रस्तुत रहते हैं और तप करते हैं।

उन सभी महाभागा व्रजवनिताओंकी श्रीचरणरजको अनन्त प्रणाम है, जिन्होंने यह सौभाग्य प्राप्त किया था।

जगज्जननी श्रीराधा

(१)

गोलोकमें आविर्भाव

कल्पका आरम्भ है। आदिपुरुष श्रीकृष्णचन्द्र गोलोकके सुरम्य रासमण्डलमें विराजित हैं। चिदानन्दमय कल्पवृक्षोंकी श्रेणी रासस्थलीकी परिक्रमा कर रही है। वह वेदी सुविस्तीर्ण, मण्डलाकृति, समतल एवं सुस्निग्ध है। चन्दन, अगरु, कस्तूरी, कुंकुम बिखेरकर इसका संस्कार किया गया है। दधि, लाजा, शुक्लधान्य, दूर्वादल—इन मंगलद्रव्योंसे वेदी परिव्याप्त है। दिव्य कदलीस्तम्भ चारों ओर लगे हैं; उन स्तम्भोंपर पट्टसूत्रमें ग्रथित चन्दन-पल्लवोंसे निर्मित वंदनवार बँधा है। रत्नसारनिर्मित तीन कोटि मण्डपोंसे परिवेष्टित वेदीकी शोभा अपरिसीम है। रत्नप्रदीपोंकी ज्योति, सौरभमय विविध कुसुमोंका सुवास, दिव्य धूपसे निस्सरित सुगन्धित धूम्रराशि, शृंगार-विलासकी अगणित सामग्री, सुसज्जित शयनपर्यंकोंकी पंक्ति—इन सबके अन्तरालसे गोलोक-विहारीका अनन्त ऐश्वर्य झाँक रहा है, झाँककर देख रहा है—आज अभिनय आरम्भ होनेका समय हुआ या नहीं? अभिनयके दर्शक चतुर्भुज श्रीनारायण, पंचवक्त्र महेश्वर, चतुर्मुख ब्रह्मा, सर्वसाक्षी धर्म, वागधिष्ठात्री सरस्वती, ऐश्वर्य-अधिदेवी महालक्ष्मी, जगज्जननी दुर्गा, जपमालिनी सावित्री—ये सभी तो रंगमंचपर आ गये हैं, लीलासूत्रधार श्रीगोविन्द भी उपस्थित हैं; पर सूत्रधारके प्राणसूत्र जिनके हाथमें हैं, वे अभी नहीं आयी हैं। देववृन्द आश्चर्य-विस्फारित नेत्रोंसे मंच—रासमण्डलकी ओर देखने लगते हैं।

किंतु अब विलम्ब नहीं। देवोंने देखा—गोलोकविहारी श्रीगोविन्द श्रीकृष्णचन्द्रके वामपार्श्वमें एक कम्पन-सा हुआ, नहीं-नहीं, ओह! एक कन्याका आविर्भाव हुआ है; अतीत, वर्तमान, भविष्यका समस्त सौन्दर्य पुंजीभूत होकर सामने आ गया है। आयु सोलह वर्षकी है; सुकोमलतम अंग यौवनभारसे दबे जा रहे हैं; बन्धुजीव-पुष्प-जैसे अरुण अधर हैं; उज्ज्वल दशनोंकी शोभाके आगे मुक्तापंक्तिकी अमित शोभा तुच्छ, हेय बन जा रही है, शरत्कालीन कोटि राकाचन्द्रोंका सौन्दर्य मुखपर नाच रहा है; ओह! उस सुन्दर सीमन्त (माँग)-की शोभाका वर्णन करनेकी सामर्थ्य किसमें है? चारु पंकजलोचनोंका सौन्दर्य कौन बतावे? सुठाम नासा, सुन्दर चन्दन-चित्रित गण्डयुगल—इनकी तुलना किससे करें? कर्णयुगल रत्नभूषित हैं; मणिमाला, हीरक-कण्ठहार, रत्न-केयूर, रत्नकंकण—इनसे श्रीअंगोंपर एक किरणजाल फैला है; भालपर सिन्दूरबिन्दु कितना मनोहर है! मालतीमाला-विभूषित, सुसंस्कृत केशपाश, उनमें सुगन्धित कबरीभारकी सुषमा कैसी निराली है! स्थलपद्मोंकी शोभा तो सिमिटकर इन युगल चरणतलोंमें आ गयी है, चरणविन्यास हंसको लज्जित कर रहा है; अनेक आभरणोंसे विभूषित श्रीअंगोंसे सौन्दर्यकी सरिता प्रवाहित हो रही है। रूपधर्षित हुए देववृन्द इस सौन्दर्यको देखते ही रह जाते हैं।

श्रीकृष्णचन्द्रके वामपार्श्वसे आविर्भूत यह कन्या, यह सुन्दरी ही श्रीराधा हैं। 'राधा' नाम इसलिये हुआ कि 'रास' मण्डलमें प्रकट हुईं तथा प्रकट होते ही पुष्पचयनकर श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें अर्घ्य समर्पित करनेके लिये 'धावित' हुईं—दौड़ीं—

रासे सम्भूय गोलोके सा दधाव हरेः पुरः।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्र० खं०)

अथवा—

कृष्णेन आराध्यत इति राधा।
कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका॥

(राधिकोपनिषद्)

'श्रीकृष्ण इनकी नित्य आराधना करते हैं, इसलिये इनका नाम राधा है और श्रीकृष्णकी ये सदा सम्यक् रूपसे आराधना करती हैं, इसलिये राधिका नामसे प्रसिद्ध हुई हैं।'

अथवा—

स एवायं पुरुषः स्वयमेव समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात् स्वयमेव समाराधनमकरोत्॥ अतो लोके वेदे श्रीराधा गीयते। × × × अनादिरयं पुरुष एक एवास्ति॥ तदेव रूपं द्विधा विधाय समाराधनतत्परोऽभूत्। तस्मात् तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति॥

(सामरहस्योपनिषद्)

'वही पुरुष स्वयं ही अपने-आपकी आराधना करनेके लिये तत्पर हुआ। आराधनाकी इच्छा होनेके कारण उस पुरुषने अपने-आप ही अपने-आपकी आराधना की। इसीलिये लोक एवं वेदमें श्रीराधा प्रसिद्ध हुईं। × × × वह अनादि पुरुष तो एक ही है। किंतु अनादिकालसे ही वह अपनेको दो रूपोंमें बनाकर अपनी आराधनाके लिये तत्पर हुआ है। इसीलिये वेदज्ञ श्रीराधाको रसिकानन्दरूपा (रसराजकी आनन्दमूर्ति) बतलाते हैं।

अथवा—

राधेत्येवं च संसिद्धा राकारो दानवाचकः।
धा निर्वाणं च तद्दात्री तेन राधा प्रकीर्तिता॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णखण्ड)

'राधा' नाम इस प्रकार सिद्ध हुआ—राकार दानवाचक है एवं 'धा' निर्वाणका बोधक है। ये निर्वाणका दान करती हैं, इसीलिये 'राधा' नामसे कीर्तित हुई हैं।

अस्तु, परमात्मा श्रीकृष्णकी प्राणाधिष्ठात्री देवी श्रीराधाका श्रीकृष्णके प्राणोंसे ही आविर्भाव हुआ। ये श्रीकृष्णचन्द्रको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हैं।

प्राणाधिष्ठातृदेवी सा कृष्णस्य परमात्मनः।
आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्र० खं०)

उसी समय इन्हीं श्रीराधाके लोमकूपोंसे लक्षकोटि गोपसुन्दरियाँ प्रकट हुईं। वास्तवमें तो यह आविर्भावकी लीला प्रपंचकी दृष्टिसे ही हुई। अन्यथा प्रलय, सृजन, फिर संहार, फिर सृष्टि—इस प्रवाहसे उस पार श्रीराधाकी, राधाकान्तकी लीला, उनका नित्य-निकुंजविहार तो अनादिकालसे सपरिकर नित्य दो रूपोंमें प्रतिष्ठित रहकर चल रहा है एवं अनन्त कालतक चलता रहेगा। प्रलयकी छाया उसे छू नहीं सकती, सृजनका कम्पन उसे उद्वेलित नहीं कर सकता। श्रीराधाका यह आविर्भाव तो—प्रपंचगत कतिपय बड़भागी ऋषियोंकी चित्तभूमिपर कल्पके आरम्भमें उस लीलाका उन्मेष किस क्रमसे हुआ, इसका एक निदर्शनमात्र है।

(२)

प्रपंचमें अवतरणकी भूमिका

गोलोकेश्वर! नाथ! मेरे प्रियतम! तुमने गोलोककी मर्यादा भंग की है!—नेत्रोंमें अश्रु भरकर रोषकम्पित कण्ठसे श्रीराधाने गोलोकविहारीसे कहा तथा कहकर मौन हो गयीं। श्रीकृष्णचन्द्रने जान लिया—मेरे विरजा-विहारकी घटनासे प्रियाके हृदयमें दुर्जय मानका संचार हो गया है। तथा इस मानसे निर्गत शत-सहस्र आनन्दकी धाराओंमें अवगाहनकर गोलोकविहारी रासेश्वरी श्रीराधाको मनाने चलते हैं।

श्रीकृष्णचन्द्रकी ह्लादिनी शक्ति महाभावस्वरूपा श्रीराधाकी मानलीला, मान-रहस्य प्राकृत मनमें समा ही नहीं सकता। इसे तो प्रेमविभावित चित्त ही ग्रहण करता है। अनन्त जन्मार्जित साधनाके फलस्वरूप चित्तमें यह वासना, यह इच्छा उत्पन्न होती है कि श्रीकृष्णको मुझसे सुख मिले। इस इच्छाका ही नाम प्रेम है, किंतु यह इच्छा प्राकृत मनकी वृत्ति नहीं है। यह तो उपासनासे निर्मल हुए मनमें जब श्रीकृष्णकी स्वरूप-शक्ति ह्लादिनीप्रधान शुद्ध सत्त्वका आविर्भाव होता है, मन इस शुद्ध सत्त्वसे मिलकर तद्रूप हो जाता है, प्रज्वलित अग्निमें पड़े लोहपिण्डकी भाँति शुद्ध सत्त्व मनके अणु-अणुमें उदय हो जाता है—उस समय उत्पन्न होती है। यह इच्छा—यह प्रेम ही प्राणीका परम पुरुषार्थ है। यह प्रेम गाढ़ होता हुआ, उत्कर्षकी ओर बढ़ता हुआ, क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुरागके रूपमें परिणत होता है। इस अनुरागकी चरम परिणतिको 'भाव' कहते हैं। भावका ऊर्ध्वतर स्तर महाभाव है। इस महाभावकी उच्चतम घनीभूत मूर्ति श्रीराधा हैं। यह महाभाव-महासागर कितना अनन्त—अपरिसीम है, एकमात्र श्रीकृष्णचन्द्रको ही सुख पहुँचानेकी कितनी—कैसी-कैसी उत्ताल तरंगें इसमें उठती हैं, एक-एक तरंग शृंगाररसराजमूर्ति श्रीकृष्णके लिये कितने परमानन्दका सृजन करती है, इसका यत्किंचित् अनुमान प्रेममसृण मनमें ही सम्भव है। श्रीकृष्ण मनाते हैं और श्रीराधा नहीं मानतीं, उस समय आनन्दरूप श्रीकृष्णके हृदयमें जो सहस्र-सहस्र आनन्द-धाराएँ बहने लगती हैं, उनका परिचय बड़े सौभाग्यसे ही मिलता है तथा परिचय मिलनेपर ही यह प्रत्यक्ष होता है कि इस मानमें स्वार्थमूलक घृणित कुटिलताकी तो

गन्ध भी नहीं है, यह तो सर्वथा श्रीकृष्णसुखेच्छामयी प्रीतिकी ही एक वैचित्री है।

अस्तु, गोलोकविहारी श्रीकृष्णचन्द्रके मनानेपर भी श्रीराधाका कोप आज शान्त नहीं होता। समीपमें अवस्थित सुशीला, शशिकला, यमुना, माधवी, रति आदि तैंतीस वयस्याओंपर एक आतंक-सा छा जाता है; उन्होंने गोलोकविहारिणीका यह रूप आज ही देखा है। वहींपर खड़ा-खड़ा गोलोकका एक गोप सुदामा भी देख रहा है। अघटन-घटनापटीयसी योगमाया भी श्रीराधाका यह भाव देख रही हैं; किंतु योगमाया केवल रस ही नहीं ले रही हैं, साथ-ही-साथ लीला-मंचकी यवनिका भी उठाती जा रही हैं। वे सोचती हैं—उस सुदूर लीलाकी पृष्ठभूमि यहीं निर्मित होगी, युग-युगसे निर्धारित क्रम यही है। बस, यह विचार आते ही वे गोलोकविहारी एवं गोलोकविहारिणी श्रीराधाके सम्मुख श्वेतवाराहकल्पकी अट्ठाईसवीं चतुर्युगीका द्वापरकालीन चित्रपट सामने रख देती हैं। उस पटमें असुरोंके भारसे धराका पीड़ित होना, ब्रह्माको अपनी करुण कहानी सुनाना, ब्रह्माकी तथा देवताओंकी पुरुषोत्तमसे धरा-भार-हरणकी प्रार्थना करना, गोलोकविहारी पुरुषोत्तमका स्वयं अवतरित होनेका वचन देना, अवतरित होना, श्रीराधाका भी भारतवर्षमें प्रकट होना—इस प्रकार प्रकट-लीलाका पूरा विवरण अंकित था। पटकी ओर श्रीराधाने, राधारमणने देखा या नहीं—कहा नहीं जा सकता, किंतु योगमायाको यवनिकासूत्र खींच देनेकी आज्ञा तो मिल गयी। वे पर्दा हटा देती हैं और सुदामा गोपका अभिनय आरम्भ होता है, गोलोक-विहारिणी श्रीराधाकी परमानन्ददायिनी लीलाका प्रापंचिक जगत्में प्रकाशित होनेका उपक्रम होने लगता है।

श्रीराधाका यह मान सुदामा गोपके लिये असह्य हो जाता है, वह कटु शब्दोंमें गोलोकविहारिणीकी भर्त्सना करने लगता है। श्रीराधा और भी कुपित हो उठती हैं। कोप अन्तरमें सीमित न रहकर वाग्वज्रके रूपमें बाहर निकल पड़ता है। रोषमें भरी श्रीराधा बोल उठती हैं—'सुदाम! मुझे शिक्षा देने आये हो? मेरे तप्त हृदयको और भी संतप्त करने आये हो? यह तो असुरका कार्य है; फिर असुर ही क्यों नहीं बन जाते? जाओ, सचमुच असुरयोनिमें ही कुछ देर घूमते रहो।' सुदामा गोप काँप उठता है, पर साथ ही क्रोधसे नेत्र जलने लगते हैं। वह कह उठता है—'गोलोकेश्वरि! तुममें सामर्थ्य है, तुमने इस वाग्वज्रसे मुझे नीचे गिरा दिया! ओह! और कोई दुःख नहीं, किंतु श्रीकृष्णचन्द्रसे तुमने मेरा क्षणिक वियोग करा दिया, मेरे प्राणोंकी सम्पत्ति तुमने ले ली! देवि! श्रीकृष्णवियोगके दुःखका अनुभव तुम्हें नहीं है; इसीलिये वह दुःख तुमने मुझे दिया है। तो जाओ, देवि! जाओ, एक बार तुम भी श्रीकृष्णवियोगका दुःख अनुभव करो। सुदूर द्वापरमें गोलोकविहारीके लिये देववृन्द प्रतीक्षा करेंगे, इनका अवतरण होगा, उसी समय गोपकन्याके रूपमें भारतवर्षमें तुम भी अवतरित हो जाओ। गोपसुन्दरियोंके रूपमें तुम्हारी ये सखियाँ भी अवतरित हो जायँगी, तुम्हारी चिरसंगिनी रहेंगी, पर श्रीकृष्ण एक शत वर्षोंके लिये तुमसे अलग हो जायँगे। सौ मानववर्ष श्रीकृष्णवियोगका दुःख अनुभव करो; स्वयं अनुभव कर लो—प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रका वियोग-दुःख कोटि-कोटि नरकयन्त्रणाओंसे भी अधिक भीषण होता है!'—यह कहते-कहते सुदामाके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह बह चलता है; गोलोकविहारिणी श्रीराधाके एवं श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें प्रणाम करके वह चलनेके लिये उद्यत होता है; किंतु विह्वल हुई श्रीराधा क्रन्दन कर उठती हैं—

वत्स! क्व यासीत्युच्चार्य पुत्रविच्छेदकातरा।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण प्र० ख०)

—पुत्रविच्छेदके भयसे कातर हुई पुकारने लगती हैं—'वत्स! कहाँ जा रहे हो?'

श्रीकृष्णचन्द्र सान्त्वना देने लगते हैं—'रासेश्वरि! प्राणप्रिये! कृपामयि! यह शाप नहीं, शापके आवरणमें यह तो विश्वके प्रति तुम्हारा दिया हुआ वरदान है। इसी निमित्तसे हरिवल्लभा वृन्दाका तुलसीरूपमें भारतवर्षमें प्राकट्य होगा, इसी निमित्तसे भारतवर्षके आकाशमें तुम्हारी विधि-हरि-हर-वन्दित चरणनख-चन्द्रिका चमक उठेगी, उस ज्योत्स्नासे भारतवर्षमें मधुरलीला-रसकी वह सनातन स्रोतस्विनी प्रवाहित होगी, जिसमें अवगाहनकर प्रपंचके जीव अनन्त काल-तक शीतल, कृतकृत्य होते रहेंगे; तुम्हारे मोहन-

महाभाव*की तरंगिणीमें डूबकर मैं भी कृतार्थ होऊँगा। सुदामा तो गोलोकका है, गोलोकमें ही लौटकर, प्रपंचमें क्रीडा करके आ जायगा, तुम्हारा धन तुम्हें ही मिलेगा। प्राणेश्वरि! तुम व्याकुल मत हो!'—गोलोकविहारी अपनी प्रियाको हृदयसे लगाकर पीताम्बरसे नेत्र पोंछने लगे।

इस प्रकार रासेश्वरी श्रीराधाके भारतवर्षमें अवतरित होनेकी भूमिका बनी; उनके नित्य रासकी, नित्य-निकुंजलीलाकी एक झाँकी जगत्‌में प्रकाशित होनेकी प्रस्तावना पूरी हुई।

(३)

अवतरण

नृगपुत्र राजा सुचन्द्रका एवं पितरोंकी मानसी कन्या सुचन्द्रपत्नी कलावतीका पुनर्जन्म हुआ। सुचन्द्र तो वृषभानु गोपके रूपमें उत्पन्न हुए एवं कलावती कीर्तिदा गोपीके रूपमें। यथासमय दोनोंका विवाह होकर पुनर्मिलन हुआ। एक तो राजा सुचन्द्र हरिके अंशसे ही उत्पन्न हुए थे; उसपर उन्होंने पत्नीसहित दिव्य द्वादश वर्षोंतक तप करके ब्रह्माको संतुष्ट किया था। इसीलिये कमलयोनिने ही यह वर दिया था—'द्वापरके अन्तमें स्वयं श्रीराधा तुम दोनोंकी पुत्री बनेंगी।' उस वरकी सिद्धिके लिये ही सुचन्द्र वृषभानु गोप बने हैं। इन्हीं वृषभानुमें, इनके जन्मके समय, सूर्यका भी आवेश हो गया; क्योंकि सूर्यने तपस्याकर श्रीकृष्णचन्द्रसे एक कन्यारत्नकी याचना की थी तथा श्रीकृष्णचन्द्रने संतुष्ट होकर 'तथास्तु' कहा था। इसके अतिरिक्त नित्य-लीलाके वृषभानु एवं कीर्तिदा—ये दोनों भी इन्हीं वृषभानु गोप एवं कीर्तिदामें समाविष्ट हो गये; क्योंकि स्वयं गोलोकविहारिणी राधाका अवतरण होने जा रहा है। अस्तु, इस प्रकार योगमायाने द्वापरके अन्तमें रासेश्वरीके लिये उपयुक्त क्षेत्रकी रचना कर दी।

धीरे-धीरे वह निर्दिष्ट समय भी आ पहुँचा। वृषभानु-व्रजकी गोपसुन्दरियोंने एक दिन अकस्मात् देखा—कीर्तिदा रानीके अंग पीले हो गये हैं; गर्भके अन्य लक्षण भी स्पष्ट परिलक्षित हो रहे हैं। फिर तो उनके हर्षका पार नहीं। कानों-कान यह समाचार वृषभानु-व्रजमें सुखस्रोत बनकर फैलने लगा। सभी उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।

वह मुहूर्त आया। भाद्रपदकी शुक्ला अष्टमी है; चन्द्रवासर है, मध्याह्न है। कीर्तिदा रानी रत्नपर्यंकपर विराजित हैं। एक घड़ी पूर्वसे प्रसवका आभास-सा मिलने लगा है। वृद्धा गोपिकाएँ उन्हें घेरे बैठी हैं। इस समय आकाश मेघाच्छन्न हो रहा है। सहसा प्रसूतिगृहमें एक ज्योति फैल जाती है—इतनी तीव्र ज्योति कि सबके नेत्र निमीलित हो गये। इसी समय कीर्तिदा रानीने प्रसव किया। प्रसवमें केवल वायु निकला; इतने दिन उदर तो वायुसे ही पूर्ण था। किंतु इससे पूर्व कि कीर्तिदा रानी एवं अन्य गोपिकाएँ आँख खोलकर देखें, उसी वायुकम्पनके स्थानपर एक बालिका प्रकट हो गयी। सूतिकागार उस बालिकाके लावण्यसे प्लावित होने लगा। गोपसुन्दरियोंके नेत्र खुले, उन्होंने देखा—शत-सहस्र शरच्चन्द्रोंकी कान्ति लिये एक बालिका कीर्तिदाके सामने पड़ी है, कीर्तिदा रानीने प्रसव किया है। कीर्तिदा रानीको यह प्रतीत हुआ—मेरे द्वारा सद्य:प्रसूत इस कन्याके अंगोंमें मानो किसी दिव्यातिदिव्य शतमूली-प्रसूनकी आभा भरी हो, अथवा रक्तवर्णकी तडिल्लहरी ही बालिकारूपमें परिणत हो गयी हो। आनन्दविवशा कीर्तिदा रानी कुछ बोलना चाहती हैं, पर बोल नहीं पातीं। मन-ही-मन दो लक्ष गोदानोंका संकल्प करती हैं। गोपियोंने गवाक्ष-रन्ध्रसे झाँककर देखा—चारों ओर दिव्य पुष्पोंका ढेर लगा हुआ है। वास्तवमें ही देववृन्द ऊपरसे नन्दनकानन-जात प्रफुल्ल-कुसुमोंकी वर्षा कर रहे थे। मानो पावसमें ही शरद्‌का विकास हो गया हो— इस प्रकार नदियोंकी धारा निर्मल हो गयी, आकाश-पथकी वह मेघमाला न जाने कहाँ विलीन हो गयी और दिशाएँ प्रसन्न हो उठीं! शीतल-मन्द पवन अरविन्द-सौरभका विस्तार करते हुए प्रवाहित हो चला—मानो राधा-यश-सौरभ दुकूलमें लिये रासेश्वरीके आगमनकी सूचना देते हुए वह पवन घर-घर फिर रहा हो, पर आनन्दवश बेसुध होनेके कारण उसकी गति धीमी पड़ गयी हो। पुरवासियोंके आनन्दका तो कहना ही क्या है—

* प्रेमकी चरम परिणति महाभावकी दो अवस्थाएँ होती हैं—एक संयोगकी, दूसरी वियोगकी। संयोगके समय यह महाभाव 'मोदन' नामसे कहा जाता है, तथा विरहके समय 'मोहन' नामसे।

महारस पूरन प्रगट्यो आनि।
अति फूलीं घर घर ब्रजनारीं राधा प्रगटी जानि॥
धाईं मंगल साज सबै लै महा महोच्छव मानि।
आयीं घर वृषभानु गोप के, श्रीफल सोहति पानि॥
कीरति बदन सुधानिधि देख्यौ सुंदर रूप बखानि।
नाचत गावत दै करतारी, होत न हरष अघानि॥
देत असीस सीस चरननि धरि, सदा रहौ सुखदानि।
रस की निधि ब्रजरसिक राय सौं करौ सकल दुखहानि॥

× × ×

आज रावल में जय जयकार।
प्रगट भईं बृषभानु गोप कैं श्रीराधा अवतार॥
गृह गृह ते सब चलीं बेग दै गावत मंगलचार।
प्रगट भई त्रिभुवन की सोभा रूप रासि सुखसार॥
निरतत गावत करत बधाई भीर भई अति द्वार।
परमानँद वृषभानुनंदिनी जोरी नंददुलार॥

संयोगकी बात! आज ही कुछ देर पहलेसे करभाजन, श्रृंगी, गर्ग एवं दुर्वासा—चारों वहाँ आये हुए हैं। गोपोंकी प्रार्थनापर, वृषभानुको आनन्दमें निमग्न करते हुए वे श्रीराधाके ग्रह-नक्षत्रका निर्णय कर रहे हैं—

करभाजन श्रृंगी जु गर्गमुनि लगन नछत बल सोध री।
भए अचरज ग्रह देखि परस्पर कहत सबन प्रति बोध री॥
सुदि भादौं सुभ मास, अष्टमी अनुराधा के सोध री।
प्रीति जोग, बल बालव करनैं, लगन धनुष बर बोध री॥

बालिकाका नाम रखा गया—'राधा'। 'राधिका' नाम वृषभानु एवं कीर्तिदा दोनोंने मिलकर रखा—लोहितवर्ण विद्युत्-लहरी-सी अंगप्रभा होनेके कारण। राधा—राधिका नाम जगत्में विख्यात हुआ—

चकार नाम तस्यास्तु भानुः कीर्तिदयान्वितः।
रक्तविद्युत्प्रभा देवी धत्ते यस्मात् शुचिस्मिते।
तस्मात्तु राधिका नाम सर्वलोकेषु गीयते॥
(राधातन्त्र)

गोलोकविहारी श्रीकृष्णचन्द्रके जन्मोत्सवपर जो रसधारा प्रसरित हुई, वह द्विगुणित परिमाणमें रासेश्वरीके जन्मपर उमड़ चली—

जो रस नंदभवन में उमग्यौ, तातैं दूनों होत री।

राधा-सुधा-धारामें स्थावर-जंगम सभी बह चले—

सुर मुनि नाग धरनि जंगम कौं आनँद अति सुख देत री।
ससि खंजन बिद्रुम सुक केहरि, तिनहि छीनि बल लेत री॥
सूरदास उर बसौ निरंतर राधा माधौ जोरि री।
यह छबि निरखि निरखि सचु पावै, पुनि डारै तृन तोरि री॥

इस प्रकार अयोनिसम्भवा श्रीराधा भूतलपर श्रीवृषभानु एवं कीर्तिदा रानीकी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुईं।

(४)

देवर्षिको दर्शन

वीणाकी झनकारपर हरि-गुण-गान करते हुए देवर्षि नारद व्रजमें घूम रहे हैं। कुछ देर पहले व्रजेश्वर नन्दके घर गये थे। वहाँ नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके उन्होंने दर्शन किये। दर्शन करनेपर मनमें आया—जब स्वयं गोलोकविहारी श्रीकृष्णचन्द्र भूतलपर अवतरित हुए हैं तो गोलोकेश्वरी श्रीराधा भी कहीं-न-कहीं गोपीरूपमें अवश्य आयी हैं। उन्हीं श्रीराधाको ढूँढ़ते हुए देवर्षि व्रजके प्रत्येक गृहके सामने ठहर-ठहरकर आगे बढ़ते जा रहे हैं। देवर्षिका दिव्य ज्ञान कुण्ठित हो गया है, सर्वज्ञ नारदको श्रीराधाका अनुसन्धान नहीं मिल रहा है; मानो योगमाया देवर्षिको निमित्त बनाकर राधा-दर्शनकी यह साधना जगत्को बता रही हों—पहले श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन होते हैं, उनके दर्शनोंसे श्रीराधाके दर्शनकी इच्छा जाग्रत् होती है; फिर श्रीराधाको पानेके लिये व्याकुल होकर व्रजकी गलियोंमें भटकना पड़ता

है। अस्तु, घूमते हुए देवर्षि वृषभानु-प्रासादके सामने आकर खड़े हो जाते हैं। वह विशाल मन्दिर देवर्षिको मानो अपनी ओर आकर्षित कर रहा हो। देवर्षि भीतर प्रवेश कर जाते हैं। वृषभानु गोपकी दृष्टि उनपर पड़ती है। वे दौड़कर नारदके चरणोंमें लोट जाते हैं।

विधिवत् पाद्य-अर्घ्यसे पूजा करके देवर्षिको प्रसन्न अनुभवकर वृषभानु गोप अपने सुन्दर पुत्र श्रीदामको गोदमें उठा लाते हैं, लाकर मुनिके चरणोंमें डाल देते हैं। बालकका स्पर्श होते ही मुनिके नेत्रोंमें स्नेहाश्रु भर आता है; उत्तरीयसे अपनी आँखें पोंछकर उसे उठाकर वे हृदयसे लगा लेते हैं, तथा गद्गद कण्ठसे बालकका भविष्य बतलाते हैं—'वृषभानु! सुनो, तुम्हारा यह पुत्र नन्दनन्दनका, बलरामका प्रिय सखा होगा।'

तो क्या रासेश्वरी श्रीराधा यहाँ भी नहीं हैं? वृषभानु उन्हें तो लाया नहीं?—यह सोचकर निराश-से हुए देवर्षि चलनेको उद्यत हुए। उसी समय वृषभानुने कहा—'भगवन्! मेरी एक पुत्री है; सुन्दर तो वह इतनी है मानो सौन्दर्यकी खानि कोई देवपत्नी इस रूपमें उतर आयी हो। पर आश्चर्य यह है कि वह अपनी आँखें सदा निमीलित रखती है; हमलोगोंकी बातें भी उसके कानोंमें प्रवेश नहीं करतीं, उन्मादिनी-सी दीखती है; इसलिये हे भगवत्तम! श्रीचरणोंमें मेरी यह प्रार्थना है कि एक बार अपनी सुप्रसन्न दृष्टि उस बालिकापर भी डालकर उसे प्रकृतिस्थ कर दें।'

आश्चर्यमें भरे नारद वृषभानुके पीछे-पीछे अन्तः-पुरमें चले जाते हैं। जाकर देखा—स्वर्णनिर्मित सजीव सुन्दरतम प्रतिमा-सी एक बालिका भूमिपर लोट रही है। देखते ही नारदका धैर्य जाता रहा, अपनेको वे किसी प्रकार भी संवरण न कर सके; वे दौड़े तथा बालिकाको उठाकर उन्होंने अंकमें ले लिया। एक परमानन्द-सिन्धुकी लहरें देवर्षिको लपेट लेती हैं, उनके प्राणोंमें अननुभूतपूर्व एक अद्‌भुत प्रेमका संचार हो जाता है, वे बालिकाको क्रोड़में धारण किये मूर्च्छित हो जाते हैं। दो घड़ीके लिये तो उनकी यह दशा है, मानो उनका शरीर एक शिलाखण्ड हो। दो घड़ीके पश्चात् जाकर कहीं बाह्यज्ञान होता है तथा बालिकाका अप्रतिम सौन्दर्य निहारकर विस्मयकी सीमा नहीं रहती। वे मन-ही-मन सोचने लगते हैं—'ओह! ऐसे सौन्दर्यके दर्शन मुझे तो कभी नहीं हुए। मेरी अबाध गति है, सभी लोकोंमें स्वच्छन्द विचरता हूँ; ब्रह्मलोक, रुद्रलोक, इन्द्रलोक—इनमें कहीं भी इस शोभासागरका एक बिन्दु भी मैंने नहीं देखा; महामाया भगवती शैलेन्द्रनन्दिनीके दर्शन मैंने किये हैं, उनका सौन्दर्य चराचर-मोहन है; किंतु इतनी सुन्दर तो वे भी नहीं! लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति, विद्या आदि सुन्दरियाँ तो इस सौन्दर्यपुंजकी छाया भी नहीं छू पातीं। विष्णुके हर-विमोहन उस मोहिनीरूपको भी मैंने देखा है, पर इस अतुल रूपकी तुलनामें वह भी नहीं। बालिकाको देखते ही श्रीगोविन्द-चरणाम्बुजमें मेरी जैसी प्रीति उमड़ी, वैसी आजतक कभी नहीं हुई। बस, बस, यही श्रीराधा हैं; निश्चय ही यही श्रीरासेश्वरी हैं।—देवर्षिका अन्तर्हृदय आलोकित हो उठा।

'वृषभानु! कुछ क्षणके लिये तुम बाहर चले जाओ; बालिकाके सम्बन्धमें मैं कुछ करना चाहता हूँ'—गद्गद कण्ठसे देवर्षिने धीरे-धीरे कहा। सरलमति वृषभानु देवर्षिको प्रणामकर बाहर चले आये। एकान्त पाकर नारदने श्रीराधाका स्तवन आरम्भ किया—'देवि! महायोगमयि! महाप्रभामयि! मायेश्वरि! मेरे महान् सौभाग्यसे, न जाने किन अनन्त शुभ कर्मोंसे रचित सौभाग्यका फल देने तुम मेरे दृष्टिपथमें उतर आयी हो। देवि! ये तुम्हारे दिव्य अंग अत्यन्त मोहन हैं, ओह! इन मधुर अंगोंसे माधुर्यका निर्झर झर रहा है; इस मधुरिमाका एक कण ही उस महाद्‌भुत रसानन्दसिन्धुका सृजन कर रहा है, जिसमें अनन्त भक्त अनन्त कालतक स्नान करते रहेंगे। देवि! तुम्हारे इन निमीलित नेत्रोंसे भी सुखकी वर्षा हो रही है, वह सुख बरस रहा है?—जो नित्य नवीन है। मैं अनुभव कर रहा हूँ, तुम्हारे अन्तर्देशमें सुखका समुद्र लहरा रहा है; उसीकी लहरें नेत्रोंपर, तुम्हारे इस प्रसन्न, सौम्य, मधुर मुखमण्डलपर नाच रही हैं।'

देवर्षिकी वाणी काँप रही है, पर स्तवन करते ही जा रहे हैं—

तत्त्वं विशुद्धसत्त्वासु शक्तिर्विद्यात्मिका परा।
परमानन्दसंदोहं दधती वैष्णवं परम्॥

कलयाऽऽश्चर्यविभवे ब्रह्मरुद्रादिदुर्गमे।
योगीन्द्राणां ध्यानपथं न त्वं स्पृशसि कर्हिचित्॥
इच्छाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिस्तवेशितुः।
तवांशमात्रमित्येवं मनीषा मे प्रवर्तते॥

× × ×

आनन्दरूपिणी शक्तिस्त्वमीश्वरि न संशयः।
त्वया च क्रीडते कृष्णो नूनं वृन्दावने वने॥
कौमारेणैव रूपेण त्वं विश्वस्य च मोहिनी।
तारुण्यवयसा स्पृष्टं कीदृक्ते रूपमद्भुतम्॥

(पद्मपुराण पा० ख०)

'देवि! तुम्हीं ब्रह्म हो; सच्चिदानन्द ब्रह्मके सत्-अंशमें स्थित सन्धिनी शक्तिकी चरम परिणति—विशुद्ध सत्त्व तुम्हीं हो; विशुद्ध सत्त्वमयी तुममें ही चिदंशकी संवित्-शक्ति, संवित्की चरम परिणति विद्यात्मिका परा शक्ति—ज्ञानशक्तिका भी निवास है; तुम्हीं आनन्दांशकी ह्लादिनी शक्ति, ह्लादिनीकी भी चरम परिणति महाभाव-रूपिणी हो; आश्चर्यवैभवमयि! तुम्हारी एक कलाका भी ज्ञान ब्रह्म-रुद्रतकके लिये कठिन है, फिर योगीन्द्रगणके ध्यानपथमें तो तुम आ ही कैसे सकती हो? मेरी बुद्धि तो यह कह रही है कि इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति—ये सभी तुम ईश्वरीके अंशमात्र हैं। × × × श्रीकृष्णचन्द्रकी आनन्दरूपिणी शक्ति तुम्हीं हो, तुम्हीं उनकी प्राणेश्वरी हो—इसमें कोई संशय नहीं; तुम्हारे ही साथ निश्चय श्रीकृष्णचन्द्र वृन्दावनमें क्रीड़ा करते हैं। ओह देवि! जब तुम्हारा कौमार रूप ही ऐसा विश्वविमोहन है, तब वह तरुण रूप कितना विलक्षण होगा!'

कहते-कहते नारदका कण्ठ रुद्ध होने लगता है। प्राणोंमें श्रीराधाके तरुण रूपको देखनेकी प्रबल उत्कण्ठा भर जाती है। वे वहींपर टँगे मणिपालनेपर श्रीराधाको लिटा देते हैं तथा उनकी ओर देखते हुए बारंबार प्रणाम करने लगते हैं, तरुण रूपसे दर्शन देनेके लिये प्रार्थना करते हैं। नारदके अन्तर्हृदयमें मानो कोई कह देता है—'देवर्षे! श्रीकृष्णकी वन्दना करो, तभी श्रीकृष्णप्रियतमाके नेत्र तुम्हारी ओर फिरेंगे।' देवर्षि श्रीकृष्णचन्द्रकी जय-जयकार कर उठते हैं—

जय कृष्ण मनोहारिन् जय वृन्दावनप्रिय।
जय भ्रूभंगललित जय वेणुरवाकुल॥
जय बर्हकृतोत्तंस जय गोपीविमोहन।
जय कुङ्कुमलिप्तांग जय रत्नविभूषण॥

(पद्मपुराण, पा० ख०)

—बस, इसी समय दृश्य बदल जाता है। मणिपालनेपर विराजित वृषभानुकुमारी अन्तर्हित हो जाती हैं तथा नारदके सामने किशोरी श्रीराधाका आविर्भाव हो जाता है। इतना ही नहीं, दिव्य भूषण-वसनसे सज्जित अगणित सखियाँ भी वहाँ प्रकट हो जाती हैं, श्रीराधाको घेर लेती हैं। वह रूप! वह सौन्दर्य!—नारदके नेत्र निमेषशून्य एवं अंग निश्चेष्ट हो जाते हैं, मानो नारद सचमुच अन्तिम अवस्थामें जा पहुँचे हों।

राधाचरणाम्बुकणिकाका स्पर्श कराकर एक सखी देवर्षिको चैतन्य करती है और कहती है—'मुनिवर्य! अनन्त सौभाग्यसे श्रीराधाके दर्शन तुम्हें हुए हैं। महाभागवतोंको भी इनके दर्शन दुर्लभ हैं। देखो, ये अब तुम्हारे सामनेसे फिर अन्तर्हित हो जायँगी, प्रदक्षिणा करके नमस्कार कर लो। जाओ। गिरिराज-परिसरमें, कुसुमसरोवरके तटपर एक अशोक-लता फूल रही है, उसके सौरभसे वृन्दावन सुवासित हो रहा है, वहाँ उसके नीचे हम सबोंको अर्द्धरात्रिके समय देख पाओगे·······।'

श्रीराधाका वह कैशोररूप अन्तर्हित हो गया। बाल्यरूपसे रत्नपालनेपर वे पुनः प्रकट हो गयीं।

द्वारपर खड़े वृषभानु प्रतीक्षा कर रहे थे। जय-जयकारकी ध्वनि सुनकर आश्चर्य कर रहे थे। अश्रुपूरित कण्ठसे देवर्षिने पुकारा, वे भीतर आ गये। देवर्षि बोले—'वृषभानु! इस बालिकाका यही स्वभाव है; देवताओंकी सामर्थ्य नहीं कि वे इसका स्वभाव बदल दें। किंतु तुम्हारे भाग्यकी सीमा नहीं; जिस गृहमें तुम्हारी पुत्रीके चरणचिह्न अंकित हैं, वहाँ लक्ष्मीसहित नारायण, समस्त देव नित्य निवास करते हैं।' यह कहकर स्खलित गतिसे नारद चल पड़ते हैं। वीणामें राधायशोगानकी लहरी भरते, आँसू बहाते हुए वे अशोकवनकी ओर चले गये।

× × ×

उसी दिन कीर्तिदा रानीकी गोदमें पुत्रीको देखकर प्रेमविवश हुए वृषभानु लाड़ लड़ाने लगे। नारदके गानका इतना-सा अंश वृषभानुके कानमें प्रवेश कर गया था—'**जय कृष्ण मनोहारिन्!**' जानकर नहीं, लाड़ लड़ाते समय यों ही उनके मुखसे निकल गया—'**जय कृष्ण मनोहारिन्!**' बस, भानुकुमारी श्रीराधा आँखें खोलकर देखने लगीं। वृषभानुके हर्षका पार नहीं, कीर्तिदा आनन्दमें निमग्न हो गयीं; उन्हें तो पुत्रीको प्रकृतिस्थ करनेका मन्त्र प्राप्त हो गया। इससे पूर्व जब-जब नन्दगेहिनी यशोदा कीर्तिदासे मिलने आयी हैं, तब-तब भानुकुमारीने आँखें खोल-खोलकर देखा है।

(५)

श्रीकृष्णचन्द्र-मिलन

अचानक काली घटाएँ घिर आती हैं। भाण्डीरवनमें अन्धकार छा जाता है। वायु बड़े वेगसे बहने लगती है। तरु-लताएँ काँप उठती हैं। कदम्ब-तमालपत्र छिन्न हो-होकर गिरने लगते हैं। ऐसे समय इसी वनमें एक वटके नीचे व्रजेश्वर नन्द श्रीकृष्णचन्द्रको गोदमें लिये खड़े हैं। उन्हें चिन्ता हो रही है कि श्रीकृष्णकी रक्षा कैसे हो।

गोपोंका गोचारण निरीक्षण करने वे आ रहे थे। श्रीकृष्णचन्द्र साथ चलनेके लिये मचल गये; किसी प्रकार नहीं माने, रोने लगे। इसीलिये वे उन्हें साथ ले आये थे। यहाँ वनमें आनेपर गोरक्षकोंको तो उन्होंने दूसरे वनकी गायें एकत्रकर वहीं ले आनेके लिये भेज दिया, स्वयं उन गायोंकी सँभालके लिये खड़े रहे। इतनेमें यह झंझावात प्रारम्भ हो गया। कोई गोरक्षक भी नहीं कि उसे गायें सँभलाकर वे भवनकी ओर जायँ; तथा यों ही गायोंको छोड़ भी दें तो जायँ कैसे? बड़ी-बड़ी बूँदें जो आरम्भ हो गयी हैं। अत: कोई भी उपाय न देखकर व्रजेश्वर एकान्त मनसे नारायणका स्मरण करने लगते हैं।

मानो कोटि सूर्य एक साथ उदय हुए हों, इस प्रकार दिशाएँ उद्भासित हो जाती हैं; तथा वह झंझावात तो न जाने कहाँ चला गया! नन्दराय आँखें खोलकर देखते हैं—सामने एक बालिका खड़ी है। 'हैं—हैं! वृषभानुकुमारी! तू यहाँ इस समय कैसे आयी, बेटी!'—व्रजेश्वरने अचकचाकर कहा। किंतु दूसरे ही क्षण अन्तर्हृदयमें एक दिव्य ज्ञानका उन्मेष होने लगता है, मौन होकर वे वृषभानुनन्दिनीकी ओर देखने लगते हैं—कोटि चन्द्रोंकी द्युति मुखमण्डलपर झलमल-झलमल कर रही है, नीलवसनभूषित अंग हैं; अंगोंपर कांची, कंकण, हार, अंगद, अंगुरीयक, मंजीर यथास्थान सुशोभित हैं; चंचल कर्णकुण्डल तथा दिव्यातिदिव्य रत्नचूड़ामणिसे किरणें झर रही हैं; अंगोंके तेजका तो कहना ही क्या है, भानुकुमारीकी अंगप्रभासे ही वन आलोकित हुआ है। नन्दरायको गर्गकी वे बातें भी स्मरण हो आयीं; पुत्रके नामकरण-संस्कारसे पूर्व गर्गने एकान्तमें वृषभानुपुत्रीकी महिमा, श्रीराधातत्त्वकी बात बतलायी थी; पर उस समय तो नन्दराय सुन रहे थे और साथ-ही-साथ भूलते जा रहे थे; इस समय उन सबकी स्मृति हो आयी, सबका रहस्य सामने आ गया। अंजलि बाँधकर नन्दरायने श्रीराधाको प्रणाम किया और बोले—'देवि! मैं जान गया, पुरुषोत्तम श्रीहरिकी तुम प्राणेश्वरी हो एवं मेरी गोदमें तुम्हारे प्राणनाथ स्वयं पुरुषोत्तम श्रीहरि ही विराजित हैं; लो, देवि! ले जाओ; अपने प्राणेश्वरको साथ ले जाओ। किंतु.........।' नन्द कुछ रुक-से गये; श्रीकृष्णचन्द्रके भीति-विजड़ित नयनोंकी ओर उनकी दृष्टि चली गयी थी। क्षणभर बाद बोले—'किंतु देवि! यह बालक तो आखिर मेरा पुत्र ही है न! इसे मुझे ही लौटा देना।'—नन्दरायने श्रीकृष्णचन्द्रको श्रीराधाके हस्तकमलोंपर रख दिया। श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको गोदमें लिये गहन वनमें प्रविष्ट हो गयीं।

× × ×

वृन्दावनकी भूमिपर गोलोकका दिव्य रासमण्डल प्रकट होता है। श्रीराधा नन्दपुत्रको लिये उसी मण्डपमें चली आती हैं। सहसा नन्दपुत्र श्रीराधाकी गोदसे अन्तर्हित हो जाते हैं। वृषभानुनन्दिनी विस्मित होकर सोचने लगती हैं—नन्दरायने जिस बालकको सौंपा था—वह कहाँ चला गया? इतनेमें गोलोकविहारी नित्यकैशोरमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्र दीख पड़ते हैं। अपने प्रियतमको देखकर वृषभानुनन्दिनीका हृदय भर आता है, प्रेमावेशसे वे विह्वल हो जाती हैं। श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगते हैं—प्रिये! गोलोककी वे बातें भूल गयी हैं या अभी भी स्मरण हैं? मुझे भी भूल गयी क्या? मैं तो तुम्हें नहीं भूला। तुम्हें भूल जाऊँ, यह मेरे लिये असम्भव है। मेरे प्राणोंकी रानी! तुमसे अधिक प्रिय

मेरे पास कुछ हो, तब तो तुम्हें भूलूँ। तुम्हीं बताओ, प्राणोंसे अधिक प्यारी वस्तुको कोई कैसे भूल सकता है? प्राणाधिके! मेरे जीवनकी समस्त साध एकमात्र तुम्हीं हो। किंतु यह भी कहना नहीं बनता; क्योंकि वास्तवमें हम-तुम—दो हैं ही नहीं; जो तुम हो, वही मैं हूँ; जो मैं हूँ, वही तुम हो; यह ध्रुव सत्य है—हम दोनोंमें भेद है ही नहीं। जिस प्रकार दुग्धमें धवलता है, अग्निमें दाहिकाशक्ति है, पृथ्वीमें गन्ध है, उसी प्रकार हम दोनोंका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। सृष्टिके उस पार ही नहीं, सृष्टिके समय भी मेरी विश्वरचनाका उपादान बनकर तुम मेरे साथ ही रहती हो; तुम यदि न रहो तो फिर मैं सृष्टिरचना करनेमें कभी भी समर्थ न हो सकूँ; कुम्भकार मृत्तिकाके बिना घटकी रचना कैसे करे? स्वर्णकार सुवर्णके न होनेपर स्वर्णकुण्डलका निर्माण कैसे करे? तुम सृष्टिकी आधारभूता हो तो मैं उसका अच्युत बीजरूप हूँ। × × × सौन्दर्यमयि! जिस समय योगसे मैं सर्वबीजस्वरूप हूँ, उस समय तुम भी शक्तिरूपिणी समस्त स्त्रीरूपधारिणी हो × × × अलग दीखनेपर भी शक्ति, बुद्धि, ज्ञान, तेज—इनकी दृष्टिसे भी हम-तुम सर्वथा समान हैं। × × × किंतु यह सब होकर भी, यह तत्त्वज्ञान मुझमें नित्य वर्तमान रहनेपर भी, मेरे प्राण तो तुम्हारे लिये नित्य व्याकुल रहते हैं। प्राणाधिके! तुम्हें देखकर, तुम्हें पाकर रससिन्धुमें निमग्न हो जाऊँ—इसमें तो कहना ही क्या है; तुम्हारा नाम भी मुझे कितना प्रिय है, यह कैसे बताऊँ? सुनो, जिस समय किसीके मुखसे केवल 'रा' सुन लेता हूँ, उस समय आनन्दमें भरकर अपने कोषकी बहुमूल्य सम्पत्ति मेरी भक्ति—मेरा प्रेम मैं उसे दे देता हूँ; फिर भी मनमें भयभीत होता हूँ कि मैं तो इसकी वंचना कर रहा हूँ, 'रा' उच्चारणका उचित पुरस्कार तो मैं इसे दे नहीं सका; तथा जिस समय वह 'धा' का उच्चारण करता है, उस समय यह देखकर कि यह मेरी प्रियाका नाम ले रहा है, मैं उसके पीछे-पीछे चल पड़ता हूँ, केवल नामश्रवणके लोभसे; यह 'राधा' नाम मेरे कानोंमें तुम्हारी स्मृतिकी सुधा-धारा बहा देता है; मेरे प्राण शीतल, रसमय हो जाते हैं—

त्वं मे प्राणाधिका राधे प्रेयसी च वरानने।
यथा त्वं च तथाहं च भेदो हि नावयोर्ध्रुवम्॥
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहिका सति।
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहं त्वयि संततम्॥
विना मृदा घटं कर्तुं विना स्वर्णेन कुण्डलम्।
कुलालः स्वर्णकारश्च न हि शक्तः कदाचन॥
तथा त्वया विना सृष्टिमहं कर्तुं न च क्षमः।
सृष्टेराधारभूता त्वं बीजरूपोऽहमच्युतः॥

× × ×

सर्वबीजस्वरूपोऽहं सदा योगेन सुन्दरि।
त्वं च शक्तिस्वरूपा च सर्वस्त्रीरूपधारिणी॥

× × ×

शक्त्या बुद्ध्या च ज्ञानेन मया तुल्या वरानने।

× × ×

'रा' शब्दं कुर्वतस्त्रस्तो ददामि भक्तिमुत्तमाम्।
'धा' शब्दं कुर्वतः पश्चाद्यामि श्रवणलोभतः॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण कृ० खं०)

इस प्रकार रसिकेश्वर राधानाथ अपनी प्रियाको अतीतकी स्मृति दिलाकर, स्वरूपकी स्मृति कराकर, उन्हींके नामकी सुधासे उनको सिक्तकर प्रियतमा श्रीराधाका आनन्दवर्धन करने लगते हैं। राधाभावसिन्धुमें भी तरंगें उठने लगती हैं, भावके आवर्त बन जाते हैं; आवर्त राधानाथको रसके अतल-तलमें डुबाने ही जा रहे थे कि उसी समय माला-कमण्डलु धारण किये जगद्विधाता चतुर्मुख ब्रह्मा आकाशसे नीचे उतर आते हैं; राधा-राधानाथके चरणोंमें वन्दना करते हैं। पुष्करतीर्थमें साठ हजार वर्षोंतक विधाताने श्रीकृष्णचन्द्रकी आराधना की थी, राधाचरणारविन्द-दर्शनका वर प्राप्त किया था। उसी वरकी पूर्तिके लिये एवं राधानाथकी मनोहारिणी लीलामें एक छोटा-सा अभिनय करनेके लिये योगमायाप्रेरित वे ठीक उपयुक्त समयपर आये हैं। अस्तु,

भक्तिनतमस्तक, पुलकितांग, साश्रुनेत्र हुए विधाता बड़ी देरतक तो रासेश्वरकी स्तुति करते रहे। फिर रासेश्वरीके समीप गये। अपने जटाजालसे श्रीराधाके युगल चरणोंकी रेणुकणिका उतारी, रेणु-कणसे अपने सिरका अभिषेक किया; पश्चात् कमण्डलु-जलसे चरण-प्रक्षालन करने लगे। यह करके फिर श्रीकृष्णप्रियाका स्तवन आरम्भ किया। न जाने कितने समयतक करते

रहे। अन्तमें राधा-मुखारविन्दसे युगल पाद-पद्मोंमें अचला भक्तिका वर पाकर धैर्य हुआ। अब उस लीलाका कार्य सम्पन्न करने चले।

श्रीराधा एवं राधानाथको प्रणामकर दोनोंके बीचमें विधाता अग्नि प्रज्वलित करते हैं। अग्निमें विधिवत् हवन करते हैं। फिर विधाताके द्वारा बताये हुए विधानसे स्वयं रासेश्वर हवन करते हैं। इसके पश्चात् रासेश्वरी-रासेश्वर दोनों ही सात बार अग्नि-प्रदक्षिणा करते हैं, अग्निदेवको प्रणाम करते हैं। विधाताकी आज्ञा मानकर श्रीराधा एक बार पुनः हुताशन-प्रदक्षिणा करके श्रीकृष्णचन्द्रके समीप आसन ग्रहण करती हैं। ब्रह्मा श्रीकृष्णचन्द्रको श्रीराधाका पाणिग्रहण करनेके लिये कहते हैं तथा

श्रीकृष्णचन्द्र राधा-हस्तकमलको अपने हस्तकमलपर धारण करते हैं। हस्तग्रहण होनेपर श्रीकृष्णचन्द्रने सात वैदिक मन्त्रोंका पाठ किया। इसके पश्चात् श्रीराधा अपना हस्तकमल श्रीकृष्ण-वक्षःस्थलपर एवं श्रीकृष्णचन्द्र अपना हस्तपद्म श्रीराधाके पृष्ठदेशपर रखते हैं तथा श्रीराधा मन्त्र-समूहका पाठ करती हैं। आजानुलम्बित दिव्यातिदिव्य पारिजातनिर्मित कुसुममाला श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको पहनाती हैं, एवं श्रीकृष्णचन्द्र सुन्दर मनोहर वनमाला श्रीराधाके गलेमें डालते हैं। यह हो जानेपर कमलोद्भव श्रीराधाको श्रीकृष्णचन्द्रके वामपार्श्वमें विराजितकर, दोनोंके अंजलि बाँधनेकी प्रार्थनाकर, दोनोंके द्वारा पाँच वैदिक मन्त्रोंका पाठ कराते हैं। अनन्तर श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम करती हैं; जैसे पिता विधिवत् कन्यादान करे, वैसे सारी विधि सम्पन्न करते हुए विधाता श्रीराधाको श्रीकृष्ण-करकमलोंमें समर्पित करते हैं। आकाश दुन्दुभि, पटह, मुरज आदि देववाद्योंकी ध्वनिसे निनादित होने लगता है, आनन्दनिमग्न देववृन्द पारिजातपुष्पोंकी वर्षा करते हैं; गन्धर्व मधुर गान आरम्भ करते हैं, अप्सराएँ मनोहर नृत्य करने लगती हैं। व्रजगोपोंके, व्रजसुन्दरियोंके सर्वथा अनजानमें ही इस प्रकार वृषभानुनन्दिनी एवं नन्दनन्दनकी विवाहलीला सम्पन्न हो गयी।

× × ×

भाण्डीर-वनके उन निकुंजोंमें रसकी तरंगिणी बह चली; रासेश्वरी श्रीराधा, रासेश्वर श्रीकृष्ण—दोनों ही आनन्द-विभोर होकर उसमें बह चले। जब इस स्रोतमें अन्य रसधाराएँ आकर मिलने लगीं—भावसन्धिका समय आया तो श्रीराधाको बाह्यज्ञान हुआ। वृषभानुनन्दिनी देखती हैं—मेरी गोदमें नन्दरायने जिस पुत्रको सौंपा था, वह तो है; शेष सब स्मृतिमात्र। श्रीकृष्णचन्द्रकी वह कैशोरमूर्ति अन्तर्हित हो गयी है, पुनः वे बालकरूप हो गये हैं।

× × ×

नन्दनन्दनको श्रीराधा यशोदारानीके पास ले जाती हैं। 'मैया! वनमें झंझावात आरम्भ हो गया था; बाबा बोले—'तू इसे ले जा, घर पहुँचा दे!' बड़ी वर्षा हुई है; देखो, मेरी साड़ी सर्वथा भीग गयी है। मैं अब जाती हूँ; घरसे आये मुझे बहुत देर हो गयी है, मेरी मैया चिन्तित होगी; श्रीकृष्णको सँभाल लो।'—यह कहकर वृषभानुनन्दिनीने श्रीकृष्णचन्द्रको यशोदारानीकी गोदमें रख दिया और स्वयं वृषभानुपुरकी ओर चल पड़ीं। यशोदारानीने देखा—साड़ी वास्तवमें सर्वथा आर्द्र है, प्रबल उत्कण्ठा हुई कि दूसरी साड़ी पहना दूँ; किंतु मैयाका शरीर निश्चेष्ट-सा हो गया—ओह! कीर्तिदाकी पुत्री इतनी सुन्दर है। मैया इस सौन्दर्यप्रतिमाकी ओर देखती ही रह गयीं और प्रतिमा देखते-ही-देखते उपवनके लताजालमें जा छिपी।

× × ×

वहाँ भाण्डीरवनमें व्रजेश्वर नन्दको इतनी ही स्मृति है कि वर्षाका ढंग हो रहा था, भानुकुमारीके साथ मैंने पुत्रको घर भेज दिया है।

(६)

पूर्वराग

योगमायाने रसप्रवाहका एक नया द्वार खोला; वृषभानुनन्दिनी इस बातको भूल गयीं कि श्रीकृष्णचन्द्रसे मेरा कभी मिलन हुआ है। श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नित्य प्रियतम हैं, मैं उनकी नित्य-प्राणेश्वरी हूँ—यह स्मृति भी रससिन्धुके अतल-तलमें जा छिपी।*

वृषभानुदुलारीमें अब कैशोरका आविर्भाव हो गया है। उनके श्रीअंगोंके दिव्य सौन्दर्यसे भानुप्रासाद तो नित्य आलोकित रहता ही है; वे जिस पथसे वनमें पुष्पचयन करने जाती हैं, उसपर भी सौन्दर्यकी किरणें बिखर जाती हैं। श्रीमुखके उज्ज्वल स्मितसे पथ उद्भासित हो जाता है। किसीको अनुसन्धान लेना हो, श्रीकिशोरी इस समय किस वनमें हैं—यह जानना हो तो सहज ही जान ले; श्रीअंगोंका दिव्य सुवास बता देगा। सुवाससे उन्मादित, उड़ती हुई भ्रमरपंक्ति संकेत कर देगी—आओ, मेरे पीछे चले चलो; वृषभानुकिशोरी इसी पथसे गयी हैं। अस्तु, आज भी अपने श्रीअंगसौरभसे वनको सुरभित करती हुई वे पुष्पचयन कर रही हैं। साथमें चिरसंगिनी श्रीललिता हैं।

पुष्पित वृक्षोंकी शोभासे प्रसन्न होकर श्रीकिशोरी अकस्मात् पूछ बैठीं—'ललिते! क्या यही वृन्दावन है?' 'हाँ बहन! कृष्णक्रीडाकानन यही है।' बस, किशोरीके हाथसे पुष्पोंका दोना गिर जाता है। ललिता गिरे हुए पुष्पोंको उठाने लगती हैं। 'किसका नाम बताया?'—भानुदुलारी कम्पित कण्ठसे पुनः पूछती हैं। 'सखि! यह श्रीकृष्णका क्रीड़ास्थल है'—कहकर ललिता पुष्पोंको किशोरीके अंचलमें डालने लगती हैं। 'तो अब लौट चलो, बहुत पुष्प हो गये'—यह कहकर उत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही किशोरी अन्यमनस्क-सी हुई भवनकी ओर चल पड़ती हैं।

× × ×

दूसरे दिन श्रीललिताने आकर देखा—किशोरीकी तो विचित्र दशा है। शरीर इतना कृश हो गया है, मानो वे एक पक्षसे निराहार रही हों; कुन्तलराशि पीठपर बिखरी पड़ी है। किशोरीने आज वेणीकी रचना नहीं की; मुख ढाँपे पड़ी हैं, किसीसे भी बात नहीं करतीं। श्रीललिताने गोदमें लेकर, प्यारसे सिर सहलाकर मुख उघाड़ा, देखा—नेत्र सजल हैं, अरुण हैं, सूचना दे रहे हैं, किशोरी सारी रात जागती रही हैं। बारंबार ललिताके पूछनेपर भानुदुलारी कुछ कहने चलीं; किंतु वाणी रुद्ध हो गयी, वे बोल न सकीं। ललिताके शत-शत प्यारसे सिक्त होकर कहीं दो घड़ी बाद वे सखीके प्रति अपना हृदय खोल सकीं। रुद्ध कण्ठसे ही किशोरीने अपनी इस दशाका यह कारण बताया—

कृष्ण नाम जब ते मैं श्रवन सुन्यो री आली,
भूली री भवन, हौं तो बावरी भई री।
भरि भरि आवैं नैन, चितहूँ न परत चैन,
मुखहूँ न आवैं बैन, तनकी दसा कछु औरै भई री॥
जेतेक नेम धरम कीने री बहुत बिधि,
अंग अंग भई हौं तो श्रवनमई री।
नंददास जाके श्रवन सुने यह गति भई,
माधुरी मूरति कैधौं कैसी दई री॥

ललिताके नेत्र भी भर आये। भानुदुलारीको हृदयसे लगाकर बड़ी देरतक वे सान्त्वना देती रहीं।

× × ×

उसी दिन संध्या-समय मन-ही-मन 'कृष्ण-कृष्ण' आवृत्ति करती हुई भानुनन्दिनी उद्यानमें बैठी हैं। इसी समय कदम्बकुंजोंमें श्रीकृष्णचन्द्रकी वंशी बज उठती है। वंशीरव किशोरीके कानोंमें प्रवेश करता है। ओह! यह अमृत-निर्झर! सुधाप्रवाह!! कहाँसे? किस ओरसे? भानुकिशोरीका सारा शरीर थरथर काँपने लगता है—इस

* यह विस्मरण प्राकृत जीवोंके स्वरूप-विस्मरण-जैसा नहीं है। यह मुग्धता तो अखण्ड ज्ञानस्वरूप भगवान्में, अखण्ड ज्ञानस्वरूपा भगवतीमें रसपोषणके लिये रहती है, यथायोग्य प्रकट होती है, छिपती है। यही तो भगवान्की भगवत्ता है कि अनेकों विरोधी भाव एक साथ एक समयमें ही उनमें वर्तमान रहते हैं, एक साथ एक समयमें ही उनमें अखण्ड सम्पूर्ण ज्ञान एवं रसमयी मुग्धता—दोनों वर्तमान रहते हैं।

प्रकार जैसे शीतकालमें उनपर हिमकी वर्षा हो रही हो; साथ ही अंगोंसे प्रस्वेदकी धारा बह चलती है—इतनी अधिक मात्रामें मानो ग्रीष्मतापसे अंगका अणु-अणु उत्तप्त हो रहा है। कानोंपर हाथ रखकर विस्फारित नेत्रोंसे वे वनकी ओर देखने लगती हैं। दूरसे ललिता किशोरीकी यह दशा देख रही हैं। वे दौड़कर समीप आ जाती हैं। तबतक तो किशोरी बाह्यज्ञानशून्य हो गयी हैं। जब उपवनके वृक्षोंसे, पर्वत-कन्दराओंसे वंशीका प्रतिनाद आना बन्द हो जाता है, तब कहीं किशोरी आँखें खोलकर देखती हैं। ललिताने अपने प्यारसे किशोरीको नहलाकर पूछा—'मेरी लाड़िली बहन! सच बता, तुझे क्या हो गया था? सहसा तेरे अंग ऐसे विवश क्यों हो गये थे?' लाड़िली उत्तरमें इतना ही कह सकीं—

नादः कदम्बविटपान्तरतो विसर्पन्
को नाम कर्णपदवीमविशन्न जाने।

'ओह! उस कदम्बवृक्षके अन्तरालसे न जाने कैसी एक ध्वनि आयी, मेरे कानोंमें प्रविष्ट हो गयी।

× × ×

'—आह! कदाचित् उस अमृत-निर्झरके उद्‌गमको मैं देख पाती।'

अतिशय शीघ्रतासे ललिताने कहा—'बावरी! वह तो वंशीध्वनि थी।' इस बार भानुनन्दिनी अत्यधिक उद्विग्न-सी हुई अस्पष्ट स्वरमें तुरंत बोल उठीं—'वह किसीका वंशीनाद था? फिर तो ....।' कहते-कहते लाड़िली पुनः मूर्च्छित हो गयीं।

× × ×

श्रीकृष्णचन्द्रका चित्रपट हाथमें लिये किशोरी देख रही हैं। नेत्रोंसे झर-झर करता हुआ अनर्गल अश्रुप्रवाह बह रहा है। अंचलसे अश्रुमार्जनकर चित्रको देखना चाहती हैं, किंतु इतनेमें ही आँखें पुनः अश्रुपूरित हो जाती हैं। एक बार ही देख सकीं; उसके बादसे जो अश्रुधारा बहने लगी, वह रुक नहीं रही है; इसीसे चित्र दीखता नहीं।

श्रीविशाखाने स्वयं इस चित्रको अंकित किया था; अंकितकर अपनी प्यारी सखी श्रीराधाके पास ले आयी थीं—इस आशासे कि श्रीराधा श्रीकृष्णचन्द्रका नाम सुनकर उनकी ओर अत्यधिक आकर्षित हो गयी हैं, चित्रपटके दर्शनसे उन्हें सान्त्वना मिलेगी। किंतु परिणाम उलटा हुआ, भानुकिशोरीकी व्याकुलता और भी बढ़ गयी!

× × ×

विक्षिप्त-सी हुई भानुकिशोरी प्रलाप कर रही हैं—अग्निकुण्ड है, धक्-धक् करती हुई उसमें आग जल रही है; उसमें मैं हूँ, पर जली तो नहीं! जलूँ कैसे? श्याम जलधरकी वर्षा जो हो रही है।

स्नेहसे सिरपर हाथ फेरकर ललिता-विशाखा पूछती हैं—'मेरे हृदयकी रानी! यह क्या कह रही हो?' उत्तरमें भानुनन्दिनी पागलिनीकी तरह हँसने लगती हैं। हँसकर कहती हैं—'सुनोगी? अच्छा सुनो! महामरकतद्युति अंगोंसे शोभा झर रही थी, सिरपर मयूरपिच्छ सुशोभित था, नवकैशोरका आरम्भ ही हुआ था; इस रूपमें वे चित्रपटसे निकले'—

वितन्वानस्तन्वा मरकतरुचीनां रुचिरतां
पटान्निष्क्रान्तोऽभूद् धृतशिखिशिखण्डो नवयुवा।

—कहकर किशोरी मौन हो गयीं। ललिता-विशाखा परस्पर देखने लगीं। कुछ सोचकर ललिता बोली—'किशोरी! तुमने स्वप्न तो नहीं देखा है?' यह सुनते ही अविलम्ब भानुनन्दिनी बोल उठती हैं—'स्वप्न था या जागरण, दिवस था या रात्रि—यह तो नहीं जान सकी; जाननेकी शक्ति भी नहीं रह गयी थी; क्योंकि उस समय एक श्याम ज्योत्स्ना फैली थी, ज्योत्स्नामें वह सागर लहरें ले रहा था। लहरें मुझे भी बहा ले गयीं, चंचल लहरियोंपर नाचती हुई मैं भी चंचल हो उठी; अब जाननेका अवकाश ही कहाँ था?' भानुकिशोरी इतना कहकर पुनः मौन हो जाती हैं।

× × ×

'मेरी प्यारी ललिते! तू दूर चली जा; विशाखे! तू मेरे समीपसे हट जा; तुम दोनों मुझे स्पर्श मत करना, मेरी-जैसी मलिनाके स्पर्शसे तुम दोनों भी मलिन हो जाओगी; मेरी छायाका स्पर्श भी तुम्हें मलिन कर देगा।' किशोरी अत्यन्त कातर स्वरमें कह रही हैं—'देखो! तुम कहा करती थीं न कि मैं तुम दोनोंको बहुत प्यार करती

हूँ; तो उसी प्यारका प्रत्युपकार चाहती हूँ। तू बाधा मत दे; बल्कि शीघ्र-से-शीघ्र मेरे इस मलिन शरीरका अन्त हो जाय, इसमें सहायक बन जा।'—विकल होकर भानुनन्दिनी यहाँतक कह गयीं।

ललिता एवं विशाखा दोनों ही एक साथ रो पड़ीं। रोकर बोलीं—'किशोरी! यह सब सुन-सुनकर हमारे प्राणोंमें कितनी वेदना हो रही है, इसका तुझे ज्ञान नहीं; अन्यथा तेरे मुखसे ऐसे वचन कभी नहीं निकलते।'

भानुनन्दिनीने ललिताके हाथ पकड़ लिये और बोलीं—'बहन! तू जानती नहीं मैं कितनी अधमा हूँ। अच्छा! सुन ले, मृत्युसे पूर्व उन्हें प्रकट कर देना ही उत्तम है—उस दिन मैंने तुम्हारे मुखसे 'कृष्ण' नाम सुना, सुनते ही मेरा विवेक जाता रहा; यह भी सोच नहीं सकी कि ये 'कृष्ण' कौन हैं। तत्क्षण मन-ही-मन अपना मन, प्राण, जीवन, यौवन—सर्वस्व उन्हें समर्पण कर बैठी; कृष्णनामका मधुपानकर उन्मत्त होने लगी। सोचती थी—वे मिलें या न मिलें, इस कृष्ण नामके सहारे जीवन समाप्त कर दूँगी। किंतु उसी दिन कदम्ब-कुंजोंमें वंशी बज उठी तथा ध्वनि सुनकर मेरा मन विक्षिप्त हो गया। अभी दो पहर पूर्व श्रीकृष्णको आत्मसमर्पण कर चुकी थी; पर इतनी देरमें ही बदल गयी, उस वंशीरवके प्रवाहमें बह चली। ऐसी उन्मादिनी हो गयी कि बाह्यज्ञानतक भूल गयी। अबतक वह उन्माद मिटा नहीं है, रह-रहकर मैं सब कुछ भूल जाती हूँ; इस भूलमें ही मैं अपना पूर्वका आत्मसमर्पण भी भूल गयी; वंशीके छिद्रोंपर सुधा बरसानेवालेपर न्योछावर हो गयी। वह कौन है, नहीं जानती थी; पर उसकी हो गयी, अनेकों कल्पनाएँ करती हुई सुखसमुद्रमें बह चली। इतनेमें ही यह चित्रपट मेरे सामने आया, चित्रकी छबि एक बार ही देख सकी, किंतु देखते ही वह स्निग्ध मेघद्युति पुरुष मेरे हृदयमें, प्राणोंमें समा गया। ओह! धिक्कार है मुझको, जिसने तीन पुरुषोंको आत्मसमर्पण किया, तीन पुरुषोंको प्यार किया; तीन पुरुषोंके प्रति जिस अधमाके हृदयमें रति उत्पन्न हुई—ऐसे मलिन जीवनसे तो मृत्यु कहीं श्रेयस्कर है—

एकस्य श्रुतमेव लुम्पति मतिं कृष्णेति नामाक्षरं
सान्द्रोन्मादपरम्परामुपनयत्यन्यस्य वंशीकलः।
एष स्निग्धघनद्युतिर्मनसि मे लग्नः पटे वीक्षणात्
कष्टं धिक् पुरुषत्रये रतिरभून्मन्ये मृतिं श्रेयसीम्॥

(विदग्धमाधव)

—भानुकिशोरी सुबुक-सुबुककर रोने लगीं। किंतु ललिता एवं विशाखाको अब पथ मिल गया। वे उल्लासमें भरकर बोलीं—'किशोरी! तू भी अजब बावरी है; हम नहीं जानती थीं कि तू इतनी सरला है। अरी! कृष्णनाम, वंशीध्वनि एवं वह चित्र—ये तीनों तो एक व्यक्तिके हैं। ये तीन थोड़े हैं!'

किशोरीके उत्तप्त प्राणोंमें मानो ललिताने अमृत उँड़ेल दिया; प्राण शीतल हो गये, शीतल प्राण सुखकी नींदमें सो गये—इस प्रकार भानुकिशोरी आनन्द-मूर्च्छित होकर ललिताकी गोदमें निश्चेष्ट पड़ गयी।

× × ×

अब तो किशोरीका यह हाल है कि वे सामने मयूरपिच्छ देख लेती हैं तो शरीरमें कम्प होने लगता है; गुंजापुंजपर दृष्टि पड़ते ही नयनोंमें जल भर आता है, चीत्कार कर उठती हैं; आकाशमें जब श्याममेघ उठते हैं, उस समय किशोरीको श्रीकृष्णचन्द्रकी गाढ़ स्फूर्ति होकर शत-सहस्र श्रीकृष्णचन्द्र गगनमें नाचते दीखते हैं; किशोरी भुजाएँ उठाकर उड़ने जाती हैं, पर हाय! पंख नहीं कि उड़ सकें। कभी विरहसे अत्यन्त व्यथित होकर चाहने लगती हैं कि किसी प्रकार मैं श्रीकृष्णको भूल जाऊँ, हृदयसे वह त्रिभंगछवि निकल जाय। केवल चाहती ही नहीं, वास्तवमें श्रीकृष्णको भूलनेके लिये अनेक विषयोंमें मनोनिवेश करने जाती हैं, पर विषय तो भूल जाते हैं और श्रीकृष्ण नहीं भूलते; वह नवनीरद छवि हृदयसे बाहर नहीं होती। ओह! सचमुच क्या ही आश्चर्य है—

प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन् मनो धित्सते
बालासौ विषयेषु धित्सति ततः प्रत्याहरन्ती मनः।
यस्य स्फूर्तिलवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते
मुग्धेयं किल पश्य तस्य हृदयान्निष्क्रान्तिमाकाङ्क्षति॥

(विदग्धमाधव)

विषयोंसे अपने मनको खींचकर मुनिगण जिन श्रीकृष्णचन्द्रमें क्षणभरके लिये भी मन लग जानेकी

इच्छा करते हैं, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्रमें लगे हुए मनको वहाँसे हटाकर वृषभानुनन्दिनी विषयोंमें लगाना चाहती हैं। ओह! हृदयमें जिन श्रीकृष्णचन्द्रकी लवमात्र स्फूर्तिके लिये योगी उत्कण्ठित रहते हैं, यत्न करते हैं, फिर भी स्फूर्ति नहीं होती, उन्हीं श्रीकृष्णचन्द्रको अपने हृदयसे हटानेके लिये लाड़िली इच्छा कर रही हैं, प्रयत्न कर रही हैं, फिर भी हटा नहीं पातीं।

अस्तु, इधर श्रीराधाकिशोरीकी तो यह दशा है; किंतु श्रीकृष्णचन्द्रकी ओरसे किंचित् आकर्षण बाहरसे नहीं दीखता। श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें भी तो वही आँधी चल रही है,* पर प्रेम-विवर्धन-चतुर श्रीकृष्णचन्द्र अपना भाव छिपानेमें पूर्णतया सफल हो रहे हैं। ललिता-विशाखा गन्धतक नहीं पातीं कि किशोरीके लिये इनके मनमें किंचिन्मात्र भी स्थान है। विरहसे व्याकुल किशोरीने लज्जा बहा दी, लज्जा छोड़कर श्रीकृष्णचन्द्रको पत्र लिख भेजा; किंतु पत्रके उत्तरमें भी केवल निराशा मिली। किशोरीका हृदय चूर-चूर हो गया, जीवनकी साध समाप्त हो गयी; प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र मुझे इस शरीरसे मिलेंगे, यह आशा शून्यमें विलीन हो गयी। अन्तमें किशोरीके आकुल प्राणोंने यह बताया— 'लाड़िली! प्रियतम जीवनमें नहीं मिले, कदाचित् जीवनके उस पार····। बस, बस, सर्वथा उपयुक्त!' भानुनन्दिनी कलिन्दनन्दिनीका आश्रय लेने चल पड़ीं।

× × ×

लताजालकी ओटसे श्रीकृष्णचन्द्र भानुनन्दिनीकी विकल चेष्टा देख रहे हैं, हृदय धक-धक करने लगता है। रोती हुई भानुकिशोरीने अपने हाथके कंकण निकाले, विशाखाके हाथपर रख दिये—'लो, बहन! मेरा यह स्मृतिचिह्न मेरी प्यारी ललिताको दे देना।' फिर मुद्रिका उतारी, विशाखाकी अँगुलीमें पहनाने लगीं—'प्राणाधिके! बहन विशाखे! चिर विदाके समय मेरी यह तुच्छ भेंट तू अस्वीकार मत कर; इस मुद्रिकाको देखकर तू कभी मुझे याद कर लेना, भला!'—विशाखा किशोरीको भुजपाशमें बाँधकर, फुफकार मारकर रोने लगीं।

रुद्ध कण्ठसे भानुनन्दिनीने कहा—'तू क्यों रोती है? बहन! यह तो भाग्यकी बात है, इसमें तेरा क्या दोष है? तूने तो अपनी सारी शक्ति लगा दी, पर प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रका मन फिरा न सकी; मेरे मन्दभाग्यको तू कैसे पलट देगी? पर अब समय नहीं, हृदयको पत्थर कर ले; मेरी अन्तिम वासना तुझे सुना दे रही हूँ, धैर्य करके सुन ले। तटका वह तमाल तुझे दीख रहा है न? अच्छी तरह तू देख ले। बहन! मैं तो देख नहीं पा रही हूँ, पहले देख चुकी हूँ। इस तमालका वर्ण मेरे प्रियतम-जैसा श्याम है; बस, मेरे लिये इतना ही पर्याप्त है। आह! तमाल-स्कन्धपर मेरे निष्प्राण शरीरको लिटा देना, मेरी भुजाओंसे तमाल-स्कन्धको वेष्टितकर सुदृढ़ बन्धन लगा देना, जिससे चिरकालतक मेरा यह शरीर वृन्दावनमें ही, तमालशाखापर ही स्थिर रहे। विश्राम करता रहे।

अकारुण्यः कृष्णो यदि मयि तवागः कथमिदं
मुधा मा रोदीर्मे कुरु परमिमामुत्तरकृतिम्।
तमालस्य स्कन्धे सखि कलितदोर्वल्लरिरियं
यथा वृन्दारण्ये चिरमविचला तिष्ठति तनुः॥

(विदग्धमाधव)

—किंतु·········हाँ! एक बार वह चित्रपट मुझे पुनः दिखा दे। त्रैलोक्यमोहन उस मुखचन्द्रको साक्षात् तो देख नहीं सकी, महाप्रयाणसे पूर्व उस चित्रपटको ही देख लूँ; मेरे प्राण शीतल हो जायँ, उसी त्रिभंगसुन्दर छविमें मैं अनन्तकालके लिये लीन हो सकूँ।'

विशाखाके धैर्यकी सीमा हो चुकी। किंतु उत्तर दिये बिना तो किशोरीके प्राण यों ही निकल जायँगे। किसी प्रकार सारी शक्ति बटोरकर विशाखा रोती हुई ही रुक-रुककर इतना कह सकीं—'लाड़िली! वह चित्रफलक तो घरपर है।'

'आह! इतना सौभाग्य भी नहीं'—किशोरीने नेत्र बन्द कर लिये। उनके अंग अवश हो गये, वहीं बैठ गयीं। 'आओ, प्रियतम! प्राणेश्वर! आओ। स्वामिन्!

* श्रीकृष्णचन्द्र जिस समय वनमें कुसुमोंसे विभूषित चम्पकलता देखते हैं, उस समय अंग काँपने लगते हैं, समस्त चम्पकवन राधाकिशोरीमय बन जाता है; मयूरपिच्छ सिरसे गिर गया, यह ज्ञान नहीं; मधुमंगलने कब माला पहनायी, यह भान नहीं। कदम्बवनके नीरव निकुंजोंमें वंशीपर **'राधा-राधा'** गाकर अपने विकल प्राणोंको शीतल करते रहते हैं।

नाथ! एक बार दासीके ध्यानपथमें उतर आओ, दासीका यह अन्तिम मनोरथ तो पूर्ण कर दो।'—किशोरी अस्फुट स्वरमें आवृत्ति करने लगीं।

श्रीकृष्णचन्द्रके भी धैर्यकी सीमा हो गयी। लताजाल फटा। श्रीकृष्णचन्द्र श्रीराधाकिशोरीके सामने आ गये। उन्हें देखते ही किशोरीके दुःखसे जड़वत् हुई विशाखाके प्राण आनन्दसे नाच उठे। 'लाड़िली! लाड़िली!

नेत्र खोल! री! देख! प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र आये हैं!' भानुकिशोरीने आँखें खोलीं, देखा—सचमुच प्रियतम श्यामसुन्दर सामने खड़े हैं!

(७)

सतीत्व-परीक्षण

व्रजपुरन्ध्रियोंमें भानुकिशोरी एवं श्रीकृष्णचन्द्रके मिलनकी चर्चा कानोंकान फैलने लगी। कोई तो सुनकर आनन्दमें निमग्न हो गयीं, किसीने नाक-भौं सिकोड़ा; व्रजतरुणियोंने तो इसे अपने जीवनका आदर्श बना लिया तथा कोई-कोई चीत्कार कर उठीं—'री भानुनन्दिनी! तुमने यह क्या किया! निर्मल कुलमें········।'

विशेष करके व्रजमें दो ऐसी थीं, जिन्हें यह मिलन शूलकी तरह व्यथा दे रहा था। उनमें एकके अंगोंपर तो अभी यौवन लहरा रहा था और दूसरी वृद्धा हो चुकी थी, अनेक उलट-फेर देख चुकी थी। दोनोंके मनमें अपने सतीत्वका गर्व था। अनसूया, सावित्रीसे भी अपनेको ऊँचा मानती थीं। भानुकिशोरीकी प्रत्येक चेष्टा ही उन्हें दोषपूर्ण दीखती, पद-पदपर उन्हें भानुदुलारीके चरित्रपर संदेह होने लगा। वे किशोरीको अपने मापदण्डपर परख रही थीं; उनके सतीत्वके मापदण्डपर किशोरी तुल नहीं रही थीं। वे बेचारी यह नहीं जानती थीं कि भानुनन्दिनीकी सत्तापर ही जगत्के अतीत, वर्तमान, भविष्यका समस्त सतीत्व अवलम्बित है। जानें भी कैसे, स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनकी लीलासूत्रधारिणी अघटन-घटनापटीयसी योगमाया उन्हें जानने जो नहीं दे रही थीं। वे यदि किशोरीके स्वरूपको जान लें तो फिर लीलामाधुर्यका विस्तार कैसे हो? भानुकिशोरीका ज्वलन्त उज्ज्वलतम श्रीकृष्णप्रेम निखरे कैसे? अस्तु, इन्हीं दोनोंके कारण किशोरी वीथियोंमें, वनमें, घरपर, घाटपर नित्यचर्चाका विषय बन गयी थीं। यह चर्चा यहाँतक बढ़ गयी कि व्रजतरुणियोंकी सास—तनिक भी घर लौटनेमें विलम्ब हुआ कि बस, भानुकिशोरीका उदाहरण देकर ताना मारतीं—

कब की गई न्हान तुम जमुना, यह कहि कहि रिस पावै।
राधा कौ तुम संग करति हौ, ब्रज उपहास उड़ावै॥
वा है बड़े महर की बेटी, तौ ऐसी कहवावै।
सुनहु सूर यह उनहीं भावै, ऐसे कहति डरावै॥

इधर तो यह सब हो रहा है, किंतु भानुदुलारीके मनपर इनका तिलमात्र भी प्रभाव नहीं। यह उपहास, यह लोकनिन्दा उनकी चित्तधाराको उलट दे, यह तो असम्भव है—

जैसे सरिता मिली सिंधु में उलटि प्रवाह न आवै हो।
तैसे सूर कमलमुख निरखत चित इत उत न डुलावै हो॥

पुर-रमणियाँ देखतीं, इतना उपहास होनेपर भी उन्मादिनी-सी हुई भानुकिशोरी, सिरपर स्वर्णकलशी लिये, घाटसे घर, घरसे घाटपर न जाने कितनी बार आयीं और गयीं। उन्हें आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि वे कारण जान गयी थीं—

ग्वालिनि कृष्ण दरस सों अटकी।
बार बार पनघट पै आवति, सिर जमुना जल मटकी॥
मनमोहन को रूप सुधानिधि पिवत प्रेमरस गटकी।
कृष्णदास धन धन्य राधिका, लोकलाज सब पटकी॥

कालिन्दी-तटपर कदम्बकी शीतल छायामें त्रिभंगसुन्दर नन्दनन्दन अवस्थित रहते; किशोरीके नेत्र बरबस उनकी ओर चले जाते, जाकर निमेषशून्य हो जाते—

चितवनि रोके हूँ न रही।
स्यामसुंदर सिंधु सनमुख सरिता उमगि बही॥
प्रेम सलिल प्रवाह भौंरति, मिति न कहूँ कही।
लोभ लहरि, कटाच्छ घूँघट, पट करार ढही॥
थके पल पथ नाव, धीरज परत नहिं न गही।
मिली सूर सुभाव स्यामहिं फेरिहूँ न चही॥

विष-अमृतके अनिर्वचनीय एकत्र मिलनकी—भानुकिशोरीकी हृदय-वेदना एवं अन्तःसुखकी संगमित अचिन्त्य धाराकी अनुभूति उन उपहास करनेवाली कतिपय गोपिकाओंमें न थी, इसीलिये वे लाड़िलीकी आलोचना करती थीं। यह अनुभूति उनके लिये सम्भव भी नहीं थी। जिसके हृदयमें श्रीकृष्णचन्द्रका दिव्य प्रेम जाग्रत् होता है, केवल उसीको प्रेमके वक्रमधुर पराक्रमका भान होता है, दूसरोंको नहीं—

प्रेमा सुन्दरि नन्दनन्दनपरो जागर्ति यस्यान्तरे
ज्ञायन्ते स्फुटमस्य वक्रमधुरास्तेनैव विक्रान्तयः॥

(विदग्धमाधव)

किंतु अब यह आलोचना सीमाका उल्लंघन कर रही थी। भानुनन्दिनीकी भर्त्सना आरम्भ हो गयी, उनसे भाँति-भाँतिके प्रश्न किये जाने लगे। इन सबके उत्तरमें भानुदुलारी केवल रो देतीं, कुछ भी कह नहीं पातीं; वे सम्पूर्णरूपसे समझ भी नहीं पाती थीं कि ये सब क्या कह रहे हैं। भानुकिशोरीका संसार ही जो दूसरा था। अस्तु, लाड़िलीका यह सरल क्रन्दन देखकर, और तो नहीं, कानन-अधिष्ठात्री वृन्दादेवी रो पड़ीं; उनके लिये यह असह्य हो गया। रोकर एक दिन उन्होंने श्रीकृष्णचन्द्रसे अपनी व्यथा बतायी। श्रीकृष्णचन्द्रके नेत्रोंसे भी अश्रुके दो बिन्दु ढलक पड़े। वृन्दा तो समझ नहीं पायीं कि श्रीकृष्णचन्द्र क्या प्रतीकार करेंगे; किंतु श्रीकृष्णचन्द्रके अंगोंसे झाँककर योगमायाने जान लिया कि अब दृश्य बदलना है। बस, दूसरा खेल आरम्भ हो गया।

× × ×

'हाय रे हाय! मेरे नीलमणिको क्या हो गया!'—चीत्कार करती हुई यशोदारानी प्रासादसे संलग्न गोशालाकी ओर दौड़ीं; व्रजेश्वर दौड़े, उपनन्द दौड़े, गोपसुन्दरियाँ दौड़ीं। जाकर देखा—गोशालाके उज्ज्वल मणिप्रांगणमें श्रीकृष्णचन्द्र मूर्च्छित पड़े हैं। व्रजेश्वरीने पुत्रको गोदमें ले लिया। वे गोपशिशु रोकर बोले—मैया! हम सभी नाच रहे थे; कन्हैयाको कहीं चोट भी नहीं लगी, पर नाचते-नाचते ही यह गिर पड़ा। श्रीकृष्णचन्द्रके सारे अंग तप रहे हैं, भीषण ज्वरसे नाड़ी धक्-धक् चल रही है; नेत्र निमीलित हैं, मानो ग्रीष्मनिशाकी छाया पड़ गयी और पद्म संकुचित हो गये।

× × ×

इधर तो मधुवनकी सीमा आनेतक तथा अन्य दिशाओंमें जहाँतक व्रजेश्वरका राज्य था, जहाँतक मित्रराज्योंकी सीमा थी, सर्वत्र एक घड़ीमें ही व्रजेश्वरके दूतोंने डोंडी पीटकर सूचना दे दी—'व्रजेन्द्रनन्दन रुग्ण हो गये हैं, जो वैद्य उन्हें स्वस्थ कर दे, उसे मुँहमाँगा पुरस्कार गोकुलेश्वर देंगे; व्रजेश्वरका सारा राज्य, सारी सम्पत्ति भी यदि वह लेना चाहे तो व्रजराज तत्क्षण दे डालनेके लिये प्रस्तुत हैं।'

× × ×

सूचना सुनकर सघन वनसे एक तरुण वैद्य आया है। पुरस्कार लेने नहीं, अपने औषधज्ञानका, ज्योतिषविद्याका चमत्कार दिखाने। उसका तेज देखकर सबके आकुल प्राणोंमें आशाकी किरण चमक उठती है। आश्चर्य यह है कि तरुण वैद्यकी आकृति अधिकांशमें यशोदानन्दनके समान है। अविराम अश्रु बहाती हुई यशोदारानीने जब वैद्यको देखा तो सहसा उनके मुखसे निकल पड़ा—'बेटा! नीलमणि!............।' पर फिर सँभल गयीं और बोलीं—'वैद्यराज! मेरे प्राण जा रहे हैं; आप जो माँगेंगे, वही दूँगी; मेरे नीलमणिको आप स्वस्थ कर दें। दो घड़ी हो गयी, मेरे नीलमणिकी मूर्च्छा नहीं टूटी।' यह कहती हुई वैद्यके चरणोंसे नीलमणिको छुलाकर, वे विलख-विलखकर रोने लगीं। तरुण वैद्यने वीणा-विनिन्दित कण्ठसे कहा—'व्रजेश्वरि! धैर्य धारण करो, अभी-अभी मैं तुम्हारे पुत्रको स्वस्थ किये देता हूँ; हाँ, मैं जैसे-जैसे कहूँगा, उसी विधानसे सारी व्यवस्था करनी पड़ेगी। और कुछ नहीं, एक नयी कलसी

मँगा लो एवं उस कलसीमें किसी सती स्त्रीसे जल मँगा दो; पर जल भी मैं चाहूँ उस विधिसे············ ।'

× × ×

तरुण वैद्यने कलसी हाथमें ली, एक स्वर्ण-कीलसे उसमें सहस्र छिद्र बनाये; फिर चमकता हुआ एक यन्त्र अपनी झोलीसे निकाला; उस यन्त्रसे श्रीकृष्णचन्द्रके कुंचित केशोंकी एक लर तोड़ ली। फिर एक-एक केशको जोड़ने लगे। क्षणभरमें ही वह केशतन्तु निर्मित हो गया। उसे लेकर प्रबल वेगसे बहती हुई कालिन्दीके तटपर वे गये। नौकासे उस पार जाकर तमालमूलमें केशतन्तुका एक छोर बाँधा तथा फिर इस पार आकर दूसरे छोरको ठीक उसके सामने दूसरे तमालसे सन्नद्ध कर दिया; वह क्षीण केशतन्तु कलिन्दतनयाकी लहरोंसे एक हाथ ऊपर नाचने लगा। यह करके व्रजेन्द्र-गेहिनीसे बोले—'व्रजेश्वरी! विधान यह है कि कोई सती स्त्री श्रीकृष्णचन्द्रके केशोंसे निर्मित इस तन्तुपर पैर रखती हुई, कलिन्दकन्याके इस पारसे उस पार तीन बार जाय एवं लौट आवे; फिर इस छिद्रपूर्ण कलसीमें जल भरकर वहाँ उस स्थानपर आये, जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र मूर्च्छित होकर गिरे हैं। बस, फिर उसी जलसे मैं तत्क्षण तुम्हारे नीलमणिको चैतन्य कर दूँगा।'

'वैद्यराज! यह भी कभी सम्भव है!'—यशोदारानी अपने मस्तकपर हाथ रखकर रो पड़ीं। तरुण वैद्यने गम्भीर वाणीमें कहा—'व्रजरानी! सतीकी महिमा अपार है; वास्तविक सती शून्यमें चल सकती है, आकाशमें जल स्थिर कर सकती है। फिर व्रजपुर तो सतियोंके लिये विख्यात है।'

× × ×

तो क्या व्रजमें ऐसी कोई सती नहीं, जो यह साहस कर सके?—कातर कण्ठसे व्रजरानीने पुकारकर कहा और स्वयं वह कलसी भरने चलीं। वैद्यने हाथ पकड़ लिया— 'व्रजेश्वरि! मैं जानता हूँ, तुम जल ला सकती हो; पर जननीके लाये हुए जलसे वह कार्य सम्भव जो नहीं। वह जल तो तुम्हारे कुलसे भिन्न किसी अन्य रमणीके हाथका चाहिये।'

तरुण वैद्यने अपार गोपसुन्दरियोंकी भीड़की ओर देखा। एक गोपीने पुकारकर कहा—'हमारी ओर क्या देखते हो? वैद्यराज! हम तो श्यामकलंकिनी हैं, हमारे लाये जलसे श्रीकृष्णचन्द्र चैतन्य नहीं होंगे।'

× × ×

यशोदाकी प्रार्थनापर व्रजप्रसिद्ध सती, वह युवती एवं वृद्धा—दोनों वहाँ आयीं। भानुकिशोरीका उपहास करनेमें, अपने सतीत्वके गर्वसे लाड़िलीकी भर्त्सना करनेमें ये ही अग्रगण्या थीं। युवतीने आते ही इठलाकर कलसी उठा ली, जल भरने चली। व्रजसुन्दरियोंकी अपार भीड़ भी पीछे-पीछे चल पड़ी।

× × ×

केशतन्तुपर चरण रखते ही तन्तु छिन्न होकर यमुनालहरियोंपर नाचने लगा। नाचकर बह चला; नहीं-नहीं, भानुनन्दिनीकी निन्दा करनेवालीको मैं उस पार नहीं ले जाऊँगा—मानो सिर हिलाकर यह कहते हुए स्पर्शके भयसे भाग निकला। युवतीको यमुनाकी चंचल तरंगें बहा ले चलीं। नौकारोहियोंने किसी प्रकार निकाला। उसका सिर नीचा हो गया था। आकर बोली—'वैद्यराज! यदि मैं नहीं तो सती सावित्री, सतीशिरोमणि शैलेन्द्रनन्दिनी भी इस विधानसे जल नहीं ला सकतीं। तरुण वैद्यने हँसकर कहा—'देवि! सतीकी महिमाका तुम्हें ज्ञान नहीं।'

× × ×

इस बार वृद्धाकी परीक्षा थी। उसी भाँति नये

तन्तुका निर्माणकर वैद्यराजने केशसेतुकी रचना की। किंतु जो दशा युवतीकी हुई, वही युवती-जननीकी हुई। व्रजेश्वरीके मुखपर निराशा छा गयी—'हाय, मेरे नीलमणिका क्या होगा?'

'वैद्यराज! तुम यदि किसी सतीका परिचय जानते हो तो बताओ'—व्रजरानी तरुण वैद्यकी ओर कातर दृष्टिसे देखकर बोलीं। 'नन्दरानी! ज्योतिषगणनासे बता सकता हूँ'—कहकर वैद्यराज धरतीपर रेखा अंकित करने लगे। कुछ देरतक विविध चित्र, अनेक यन्त्रोंकी रचना करते रहे। फिर प्रफुल्ल चित्तसे बोल उठे—'नन्दगेहिनी! चिन्ताकी बात नहीं; इसी व्रजमें एक परम सती हैं, उन सतीकी चरण-रजसे विश्व पावन होगा। उन्हें बुलाओ। उनका नाम 'राधा' है।'

× × ×

भानुकिशोरीको इस घटनाका पता नहीं। वे तो एकान्त प्रासादमें बैठी कुसुमोंकी माला गूँथ रही हैं। उनके सामने त्रिभंग-ललित प्रियतम श्यामसुन्दरकी मानसमूर्ति है; नेत्र झर रहे हैं और वे प्रियतमको अपने हृदयकी बात सुना रही हैं—

बंधु कि आर बलिब आमि।
जीवने मरणे जनमे जनमे प्राणनाथ हैओ तुमि॥
तोमार चरणे आमार पराणे बाँधिल प्रेमेर फाँसी।
सब समर्पिया एक मन ठैया निचय हैलाम दासी॥
भावि देखिलाम ए तीन भुवने आर के आमार आछे।
राधा बलि केह सुधाइते नाइ, दाँड़ाब काहार काछे॥
ए कुले ओ कुले दु कुले गोकुले आपना बलिब काय।
शीतल बलिया शरण लइनु, ओ दुटी कमल पाय॥
ना ठेलिओ मोरे अबला बलिये, ये हय उचित तोर।
भाविया देखिनु प्राणनाथ बिने गति ये नाहिक मोर॥
आँखिर निमिखे यदि नाहि देखि, तबे से पराणि मरि।
चण्डीदास कय परशरतन गलाय गाँथिया परि॥

'मेरे प्रियतम! और मैं तुम्हें क्या कहूँ। बस, इतना ही चाहती हूँ—जीवनमें, मृत्युमें, जन्म-जन्ममें तुम्हीं मेरे प्राणनाथ रहना। तुम्हारे चरण एवं मेरे प्राणोंमें प्रेमकी गाँठ लग गयी है; मैं सब कुछ तुम्हें समर्पितकर एकान्त मनसे तुम्हारी दासी हो चुकी हूँ। मेरे प्राणेश्वर! मैं सोचकर देखती हूँ—इस त्रिभुवनमें तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कौन है? 'राधा' कहकर मुझे पुकारनेवाला तुम्हारे सिवा और कोई भी तो नहीं है! मैं किसके समीप जाकर खड़ी होऊँ? इस गोकुलमें कौन है, जिसे मैं अपना कहूँ? सर्वत्र ज्वाला है, एकमात्र तुम्हारे युगल चरण-कमल ही शीतल हैं; उन्हें शीतल देखकर ही मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। तुम्हारे लिये भी अब यही उचित है कि मुझ अबलाको चरणोंमें स्थान दे दो; मुझे अपने शीतल चरणोंसे दूर मत फेंक देना। नाथ! सोचकर देखती हूँ, मेरे प्राणनाथ! तुम्हारे बिना अब मेरी अन्य गति ही कहाँ है? तुम यदि दूर फेंक दोगे तो मैं अबला कहाँ जाऊँगी? मेरे प्रियतम! एक निमेषके लिये भी जब तुम्हें नहीं देख पाती तो मेरे प्राण निकलने लगते हैं। मेरे स्पर्शमणि! तुम्हें ही तो मैं अपने अंगोंका भूषण बनाकर गलेमें धारण करती हूँ।'

× × ×

जिस क्षण किशोरीने व्रजरानीका आदेश सुना, यह जाना कि श्रीकृष्णचन्द्र रुग्ण हैं कि बस, उसी क्षण विक्षिप्त-सी हुई दौड़ीं। गोशालामें आ पहुँचीं। उनके आते ही सम्पूर्ण गोशाला उद्भासित हो उठी। तरुण वैद्य आसनसे उठे, भानुकिशोरीके आगे सिर टेक दिया।

× × ×

भानुनन्दिनी जल भरने चलीं। तमाल-तरुसे सन्नद्ध प्रियतमके केशोंसे निर्मित उस सेतुको उन्होंने प्रणाम किया। फिर उसपर अपने कोमल चरण रखकर चल पड़ीं। मध्य धारामें जाकर एक बार किशोरीने पीछेकी ओर फिरकर देखा। 'सतीकी जय हो, भानुकिशोरीकी जय हो'—तुमुल नादसे यमुना-कूल निनादित हो रहा था, तरुश्रेणी आनन्दविवश होकर नाच रही थी, कलिन्दनन्दिनी भी उमंगमें भरकर ऊँची-ऊँची लहरें ले रही थीं, मानो कूलको तोड़कर वृन्दावनको प्लावित कर देंगी। भानुकिशोरीने यह आनन्दकोलाहल सुनकर, आनन्द-प्रकम्पन देखकर

ही आश्चर्यसे पीछेकी ओर देखा था।
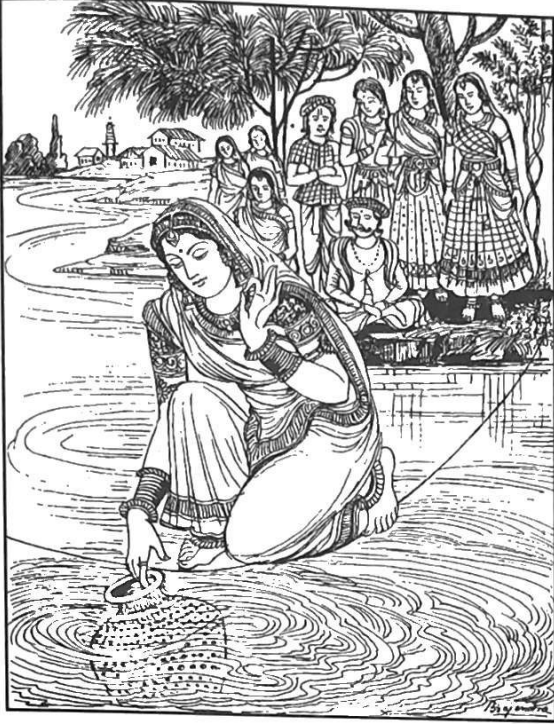
क्रमशः तीन बार किशोरी इस सेतुपर इस पारसे उस पारतक हो आयीं। फिर सहस्र छिद्रोंवाली कलसीको जलसे पूर्ण करने चलीं। बायें हाथसे ही कलसीको डुबाया, कलसी ऊपरतक भर गयी; उसे सिरपर रखकर गोशालाकी ओर चल पड़ीं। आकाशसे तो पुष्पोंकी वर्षा हो ही रही थी; गोपोंने, गोपसुन्दरियोंने, उसी क्षण तोड़-तोड़कर भानुकिशोरीके चरणोंमें इतने पुष्प चढ़ाये कि वह सम्पूर्ण पथ कुसुममय हो गया।

भानुकिशोरीने कलसी तरुण वैद्यके सामने रख दी। वैद्यराजके नेत्र सजल हो रहे थे। वे बोले—'देवि! तुम्हीं अपने पवित्र हस्तकमलोंसे एक अंजलि जल नन्दनन्दनपर डाल दो।' आज्ञा मानकर लज्जासे अवनत हुई किशोरीने अंजलिमें जल लिया और श्रीकृष्णचन्द्रपर बिखेर दिया। श्रीकृष्णचन्द्र ऐसे उठ बैठे, मानो सोकर जगे हों।

× × ×

सिर नीचा किये भानुकिशोरी अपने घरकी ओर जा रही हैं तथा उनके पीछे, अभी-अभी कुछ देर पहले जो गोपियाँ उनके चरित्रपर धूल उछाला करतीं, वे अपने अंचलमें उनकी चरण-रज बटोरती जा रही हैं। बड़े-बड़े वृद्ध गोप सती-शिरोमणि श्रीराधाकिशोरीके चरणोंसे रंजित उस पथमें लोट-लोटकर कृतार्थ हो रहे हैं!

(८)

रासमें मिलन

भानुकिशोरी अपने श्रीअंगोंको सजा रही थीं, मेरे प्रियतमको मेरा श्रृंगार परमानन्दसिन्धुमें निमग्न कर देता है—केवलमात्र इस भावनासे, एकमात्र प्राणेश्वरको सुख पहुँचानेके उद्देश्यसे। इसी समय शारदीय शशधरकी ज्योत्स्नासे उद्भासित यमुनापुलिनपर श्रीकृष्णचन्द्रकी वंशी बज उठती है। बस, फिर तो मिलनोत्कण्ठासे विक्षिप्त हुई भानुकिशोरीका श्रृंगार धरा ही रह जाता है; नहीं-नहीं, एक विचित्र साजसे सजकर किशोरी पुलिनकी ओर दौड़ चलती हैं।

किशोरीने गोस्तन नामक मणिमय हारको कण्ठमें न धारणकर नितम्बदेशमें धारण किया, कटिकिंकिणीको कण्ठमें डाल लिया, पुष्पमालाओंको सिरमें लपेट लिया, ललाटिका (सींथी) वेणीमें लटका ली, नेत्रोंमें तो मृगमद (कस्तूरी)-का अंजन लगा लिया एवं अंजनसे ललाटपर बेंदी लगा ली, अंगरागके बदले यावक (आलता)-रस उठा लिया, उससे श्रीअंगोंको पोत लिया। यही दशा आज किशोरीकी सखियोंकी भी हुई। उन्हें आभूषण धारण करनेको तो अब अवकाश कहाँ? हाँ, वे वस्त्र बदल रही थीं, वस्त्रमात्र बदल सकीं; पर ओढ़नीको तो साड़ी बना लिया, एवं लहँगेको ओढ़ लिया। इस विचित्र वेष-भूषासे सज्जित हुई भानुकिशोरी एवं किशोरीकी सखियाँ वंशीधरके समीप जा पहुँचीं—

'व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः॥'

(श्रीमद्भागवत)

प्रेमविभोर भानुकिशोरीका यह श्रृंगार देखकर अखिलरसामृतमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रके हृदयमें रसकी एक अभिनव धारा बह चलती है। बिन्दुके रूपमें वह रस उनके नेत्रोंसे झरने लगता है। रसमय नेत्रोंसे ही वे भानुकिशोरीके इस शृङ्गारकी ओर कुछ देर देखते रहते हैं। इतनेमें ही इसी वेश-भूषाके अन्तरालसे महाभावरूपा भानुकिशोरीका वह सौन्दर्य, वह श्रृंगार निखर पड़ता है, जिसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अनादिकालसे देख रहे हैं, अनन्त कालतक देखते रहेंगे; जिसे देख-देखकर वे अबतक तृप्त नहीं हुए, अनन्त कालतक

तृप्त होंगे भी नहीं। भानुकिशोरीका वह शृंगार यह है—वे श्रीकृष्ण-स्नेहका तो उबटन लगाती हैं, उस उबटनमें सखियोंका प्रणयरूप सुगन्धित द्रव्य भी मिश्रित रहता है; उससे किशोरीके अंग स्निग्ध, कोमल, सुगन्धपूर्ण, उज्ज्वल हो जाते हैं। पहले किशोरी कारुण्यरूप अमृतधारामें स्नान करती हैं, यह किशोरीका मानो प्रात:स्नान (कौमार) है; फिर तारुण्यकी अमृतधारामें स्नान करती हैं, यह किशोरीका मध्याह्न-स्नान (कैशोर) है। दो स्नान करके फिर लावण्यकी अमृतधारामें अवगाहन करती हैं; यह किशोरीका सायाह्न-स्नान, तृतीय स्नान (कैशोर-सौन्दर्य) है। स्नानके पश्चात् अपनी लज्जारूप साड़ी पहन लेती हैं; यह साड़ी श्यामवर्ण होती है, दिव्य शृंगार-रसमय तन्तुओंसे निर्मित रहती है। भानुकिशोरी कृष्ण-अनुरागकी अरुण साड़ी भी धारण करती हैं तथा प्रणय एवं मानकी कंचुलिकासे वक्ष:स्थल आच्छादित रहता है। फिर अंग-विलेपन करती हैं, उस विलेपनमें सौन्दर्यरूप कुंकुम पड़ा रहता है। सखी-प्रणयरूप चन्दन मिला होता है। अधरोंकी स्मितकान्तिरूप कर्पूरचूर्ण मिश्रित रहता है। मधुररसका मृगमद (कस्तूरी) लेकर श्रीअंगोंको सुचित्रित करती हैं। प्रच्छन्न वंकिम मानके द्वारा केशबन्धकी रचना करती हैं, किसी दिव्य धीराधीरा सुन्दरीके दिव्य गुणोंको लेकर उससे उनका पटवास (सुगन्धित चूर्ण) निर्मित होता है तथा उस दिव्य चूर्णको अपने अंगोंपर वे बिखेर लेती हैं। रागका ताम्बूल ग्रहण करती हैं, इस ताम्बूलरागसे उनके अधर उज्ज्वल अरुणवर्ण हो जाते हैं; प्रेमके कौटिल्यरूप अंजनसे दोनों नेत्रोंको आँजती हैं। सुदीप्त अष्ट सात्त्विक भाव, हर्ष आदि दिव्य तैंतीस संचारी भाव—इन भाव-भूषणोंको ही किशोरी अपने अंगोंमें धारण करती हैं। किलकिंचित आदि बीस भाव ही भानुकिशोरीके श्रीअंगोंके अलंकार हैं, माधुर्य आदि दिव्य पचीस सद्गुणोंकी पुष्पमालासे समस्त अंग पूर्ण रहते हैं; सुन्दर ललाटपर सौभाग्यरूप सुन्दर मनोहर तिलक सुशोभित रहता है, प्रेमवैचित्त्यरूप रत्नहार हृदयपर नाचता रहता है। नित्य किशोर वयसरूप सखीके कंधेपर हाथ रखे वे अवस्थित रहती हैं तथा कृष्णलीलामयी मनोवृत्तिरूप सखियाँ उन्हें घेरे रहती हैं। अपने श्रीअंगके सौरभरूप गृहमें वे दिव्य गर्व-पर्यंकपर विराजित रहकर सदा श्रीकृष्ण-मिलनका चिन्तन करती रहती हैं। कृष्ण-नाम, कृष्ण-गुण, कृष्ण-यशका श्रवण ही कानोंमें अवतंसरूप (कर्ण-भूषण) हैं; श्रीकृष्ण-नाम, गुण-यशके प्रवाहसे वाणी अलंकृत है। श्यामरस—दिव्य शृंगाररसरूप मधुसे पूरित पात्र हाथमें लेकर वे श्रीकृष्णचन्द्रको मधुपान कराती हैं। यही भानुकिशोरीके हाथोंकी शोभा है; समस्त अंगोंसे एकमात्र श्रीकृष्णकी सेवा होती है—यही किशोरीकी अंगशोभा है। विशुद्ध श्रीकृष्णप्रेमरत्नकी आकरभूता राधाकिशोरीके अंगोंके अन्तरालसे अनन्त सद्गुण चमकते रहते हैं; उनसे नित्य विभूषित राधाकिशोरीको बाह्य शृङ्गारकी आवश्यकता नहीं।*

अस्तु, भानुनन्दिनी एवं श्रीकृष्णचन्द्र राका-रजनीमें इस प्रकार मिले। इसी समय दल-की-दल असंख्य

---

* राधाप्रति कृष्णस्नेह सुगन्धि उद्वर्त्तन। ताते अति सुगन्धि देह उज्ज्वलवरण॥
कारुण्यामृतधाराय स्नान प्रथम। तारुण्यामृतधाराय स्नान मध्यम॥
लावण्यामृतधाराय तदुपरि स्नान। निजलज्जा-श्याम-पट्टशाटी परिधान॥
कृष्ण अनुरागे रक्त द्वितीय वसन। प्रणय-मान-कञ्चुलिकाय वक्ष आच्छादन॥
सौन्दर्य कुंकुम सखी-प्रणय चन्दन। स्मित-कान्ति कर्पूर तिने अंगविलेपन॥
प्रच्छन्न-मान वाम्य धमिल्ल-विन्यास। धीराधीरात्मक गुण अङ्गे पटवास॥
राग-ताम्बूल-रागे अधर उज्ज्वल। प्रेमकौटिल्ये नेत्रयुगले कज्जल॥
सूद्दीप्त सात्त्विकभाव हर्षादि सञ्चारी। एइ सब भाव-भूषण सब अङ्गे भरि॥
किलकिञ्चितादि भाव विंशति भूषित। गुणश्रेणी पुष्पमाला सर्वाङ्गे पूरित॥
सौभाग्य तिलक चारु ललाटे उज्ज्वल। प्रेमवैचित्त्य रत्न हृदये तरल॥
मध्यवयस्थिति-सखीस्कन्धे करन्यास। कृष्णलीला-मनोवृत्ति सखी आश पाश॥

गोप-सुन्दरियाँ आ पहुँचती हैं; क्योंकि आज तो महारासके लिये वंशी बजी है, आज ही तो साधनसे गोपी बने हुए अनन्त भक्तोंको नित्यरास—नित्यलीलामें प्रविष्ट करानेका मुहूर्त है।

×   ×   ×

योगमाया मंचपर अपना वैभव बिखेरकर लीला-क्रमका निर्देश करती जा रही हैं तथा उसी क्रमसे लीला आगे बढ़ रही है। पहले गोप-सुन्दरियोंकी प्रेम-परीक्षा होती है; जब वे पूर्णतया उसमें उत्तीर्ण हो जाती हैं तो नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रका प्रेमसिंधु उमड़ उठता है, व्रज-सुन्दरियाँ उसमें डूब-डूबकर कृतार्थ होने लगती हैं। इस रसपानसे—अवश्य ही रस-वर्धनके लिये—गोप-सुन्दरियोंमें तो सौभाग्य-मदका एवं भानुकिशोरीमें मानका आविर्भाव होता है। भानुकिशोरी मान करके निकुंजमें चली जाती हैं। उन्हें न देखकर श्रीकृष्णचन्द्र भी वहाँसे अन्तर्हित हो जाते हैं। अन्तर्धान होनेका उद्देश्य यह है कि व्रज-सुन्दरियोंका सौभाग्य-गर्व प्रशमित होकर इनके रसकी पुष्टि हो एवं प्रियाका मान-प्रसादन होकर महाभाव-सिंधु लहरा उठे और हम सभी उसमें निमग्न हो जायँ—

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। ४८)

×   ×   ×

व्रज-सुन्दरियाँ व्याकुल होकर प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रको वनमें ढूँढ़ने जाती हैं, उन्मादिनी-सी हुई तरु-लता-वल्लरियोंसे प्रियतमका पता पूछती हैं—

बिरहाकुल ह्वै गयीं, सबै पूछत बेली बन।
को जड़, को चैतन्य, न कछु जानत बिरही जन॥

हे मालति, हे जाति, जूथिके, सुनि हित दे चित।
मान हरन मन हरन लाल गिरिधरन लखे इत॥
हे केतकि, इत तें कितहूँ चितए पिय रूसे।
कै नँदनंदन मंद मुसुकि तुमरे मन मूसे॥
हे मुक्ताफल बेल, धरे मुक्ताफल माला।
देखे नैन बिसाल मोहना नंद के लाला॥
हे मंदार उदार, बीर करबीर महामति।
देखे कहुँ बलबीर धीर मन हरन धीर गति॥
हे चंदन, दुखदंदन सब की जरन जुड़ावहु।
नँदनंदन जगबंदन चंदन हमहिं बतावहु॥
पूछो री इन लतनि फूलि रहिं फूलनि जोई।
सुंदर पिय के परस बिना अस फूल न होई॥
हे सखि, हे मृगबधू, इन्हैं किन पूछहु अनुसरि।
डहडहे इन के नैन, अबहिं कहुँ देखे हैं हरि॥
अहो सुभग बन गंधि पवन सँग थिर जु रही चलि।
सुख के भवन दुख दवन रवन इतते चितए बलि॥
हे चंपक, हे कुसुम, तुम्हैं छबि सबसों न्यारी।
नैक बताय जु देउ, जहाँ हरि कुंजबिहारी॥
हे कदंब, हे निंब, अंब, क्यों रहे मौन गहि।
हे बट उतँग सुरंग बीर, कहु तुम इत उत लहि॥
हे असोक, हरि सोक लोकमनि पियहि बतावहु।
अहो पनस, सुभ सरस मरत तिय अमिय पियावहु॥
जमुन निकट के बिटप पूछि भइ निपट उदासी।
क्यों कहिहैं सखि अति कठोर ये तीरथबासी॥

—तथा इधर राधाकिशोरी अपने प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रके प्राणोंमें प्राण मिलाकर आत्मविस्मृत हो गयी हैं। जब जागती हैं तो उस समय भी प्रेमवैचित्त्य* का भाव लेकर ही जागती हैं और इसीलिये कुछ-का-कुछ अनुभव करने लगती हैं। श्रीकृष्णचन्द्र भानुकिशोरीकी दृष्टिके

निजाङ्ग-सौरभालये गर्व-पर्यङ्क। ताते वसि आछे सदा चिन्ते कृष्णसङ्ग॥
कृष्ण-नाम-गुण-यश अवतंस काने। कृष्ण-नाम-गुण-यश प्रवाह वचने॥
कृष्णके कराय श्यामरस मधुपान। निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्वकाम॥
कृष्णेर विशुद्धप्रेम-रत्नेर आकर। अनुपम गुण-गण पूर्ण कलेवर॥

* प्रियस्य संनिकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्षस्वभावतः। या विश्लेषधियाऽऽर्तिस्तत् प्रेमवैचित्त्यमुच्यते॥ (उज्ज्वलनीलमणि)

'प्रियतमके निकट रहनेपर भी प्रेमके उत्कर्षवश प्रियतमसे मेरा वियोग हो गया है—ऐसी भावना होकर जो पीड़ा होती है, उसे प्रेमवैचित्त्य कहते हैं।'

सामने खड़े हैं; पर किशोरीको यह अनुभूति होने लगती है कि प्रियतम जैसे अन्य गोपियोंको छोड़कर चले आये थे, वैसे मुझे भी छोड़कर चले गये। यह अनुभूति इतनी गाढ़ हो जाती है कि किशोरी व्याकुल होकर चीत्कार कर उठती हैं—

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ३०। ४०)

'हा नाथ! हा रमण! हा प्रियतम! हा महाबाहो! तुम कहाँ हो? कहाँ हो? मैं तो तुम्हारी दासी हूँ, अत्यन्त दीन हो रही हूँ। सखे! मुझे दर्शन दो।'

भानुनन्दिनीका यह प्रेमवैचित्त्य-विकार देखकर श्रीकृष्ण तो निर्वाक् हो गये। भानुकिशोरीके चरणोंमें लुट पड़नेके लिये झुके, किंतु इसी समय व्रज-सुन्दरियाँ उन्हें ढूँढ़ती हुई वहाँ आ पहुँचीं। अतः वैचित्त्यवश विलाप करती हुई भानुकिशोरीको वहीं छोड़कर वे पुनः अन्तर्धान हो गये।

व्रजसुन्दरियाँ आयीं। भानुकिशोरीकी व्याकुलता देखकर अपना दुःख भूल गयीं, किशोरीके आँसू पोछने लगीं।

× × ×

भानुनन्दिनीके विलापसे, व्रजसुन्दरियोंके सुस्वर क्रन्दनसे वह सारी वनस्थली करुणाप्लावित हो गयी। इसी समय कोटिमन्मथमन्मथरूपमें श्रीकृष्णचन्द्र प्रकट हो गये। उनके दर्शनमात्रसे मानो व्रजसुन्दरियोंने तो नवजीवन पाया, पर भानुकिशोरीमें पुनः प्रणय-कोपका संचार हो गया। अवश्य ही इस बार श्रीकृष्णचन्द्रकी वाणीमें ऐसा मधु, इतनी नम्रता भरी थी कि भानुकिशोरीका मान क्षणभरमें देखते-देखते ही उस मधुधारामें बह गया। श्रीकृष्णचन्द्रने व्रजसुन्दरियोंसे तो यह कहा—

तब बोले ब्रजराज कुँवर, हौं रिनी तुम्हारो।
अपने मन तें दूरि करौ किन दोष हमारो॥
कोटि कल्प लगि तुम प्रति प्रतिउपकार करौं जौ।
हे मन हरनी तरुनी, उरिनी नाहिं तबौं तौ॥

—तथा किशोरीको हृदयसे लगाकर बोले—

सकल बिस्व अपबस करि मो माया सोहति है।
प्रेममयी तुमरी माया, सो मोहि मोहति है॥
तुम जु करी, सो कोउ न करै, सुनि, नवल किसोरी।
लोक बेद की सुदृढ़ सृंखला तृन सम तोरी॥

भानुकिशोरीने संकुचित होकर प्रियतमके पीताम्बरमें अपना मुख छिपा लिया।

× × ×

महारास-रसकी धारा यमुनापुलिनपर बह चलती है। मानो भानुकिशोरी सौदामिनी हैं और श्रीकृष्णचन्द्र नवजलधर; श्यामघटामें विलीन तडित्-लहरी-सी भानुकिशोरी नृत्य कर रही हैं एवं श्यामवारिधर श्रीकृष्णचन्द्र उमड़-घुमड़कर रसकी वर्षा कर रहे हैं। उन्हें घेरकर एक व्रजसुन्दरी एक श्रीकृष्णचन्द्र, फिर एक गोपसुन्दरी एक श्रीकृष्ण—इस क्रमसे मण्डलकी रचना है, मानो दो स्वर्णिम मणियोंके मध्यमें एक-एक इन्द्रनीलमणि हो।

देवदुन्दुभि बज रही है; देववृन्द आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं। रासके तालपर नृत्य करती हुई वन-अधिदेवी वृन्दा गा रही हैं। उन्हींके स्वर-में-स्वर मिलाकर गगनस्थ देवांगनाएँ भी गा रही हैं—

आज गुपाल रास रस खेलत
पुलिन कल्पतरु तीर री, सजनी।
सरद बिमल नभ चंद बिराजत,
रोचक त्रिबिध समीर री, सजनी॥
चंपक बकुल मालती मुकुलित,
मत्त मुदित पिक कीर री, सजनी।
देखि सुगंध राग रँग नीको,
ब्रज जुबतिन की भीर री, सजनी॥
मघवा मुदित निसान बजायौ,
ब्रत छाँड्यौ मुनि धीर री, सजनी।
(जैश्री) हित हरिबंस मगन मन स्यामा,
हरत मदन घन पीर री, सजनी॥

यह एक झाँकी है महारासके समय भानुकिशोरी श्रीराधा एवं नन्दकिशोर श्रीकृष्णचन्द्रके मिलनकी।

(९)

वियोग

यदि अक्रूर श्रीकृष्णचन्द्रको मधुपुरी ले ही जायगा तो फिर किसके लिये वृन्दावनमें नवकुंजोंका निर्माण करूँ? किसलिये मनोहर पुष्पशय्याकी रचना करूँ? सौरभशालिनी लता-वल्लरियोंको पुष्पित करनेसे ही क्या प्रयोजन है? उनपर कुसुमविकास करानेका समय तो समाप्त हो चला, वृन्दावनके दुर्दिन आरम्भ हो गये, अब इसे सजाकर ही क्या करूँगी?

वनभुवि नवकुञ्जं कस्य हेतोर्विधास्ये
कृतरुचि रचयिष्याम्यत्र वा पुष्पतल्पम्।
सुरभिमसमये वा वल्लिमुत्फुल्लयिष्ये
यदि नयति मुकुन्दं गान्दिनेयः पुराय॥

(ललितमाधव)

—यह कहती हुई कानन-अधिदेवी वृन्दा रोने लगीं। किंतु भानुकिशोरीको अभीतक यह समाचार नहीं मिला है कि मधुपुरसे कंसदूत अक्रूर प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रको लेने आये हैं। आनन्दसिन्धुमें निमग्न भानुनन्दिनीको यह भान नहीं कि सौ वर्षके लिये प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रसे वियोग होनेका वह निर्धारित समय उपस्थित हो गया है। तीन वर्ष, पाँच महीने हो गये—किशोरी बाह्य जगत्को भूल-सी गयी हैं। प्रभात आता, दिन हँसता, संध्या आँचल फैलाती, निशा साँस लेती, उषा अरुणराग बिखेरती और फिर प्रभात हो जाता; किंतु किशोरी नहीं जानतीं, कब क्या हुआ! कभी प्रियतमसे साक्षात् मिलनका, तो कभी श्रीकृष्णस्फूर्तिका आनन्दसागर लहराता रहता एवं किशोरी उसकी लहरोंपर न जाने कहाँ-से-कहाँ बहती रहतीं। आज संध्या हो चुकी है, पर भानुकिशोरीके नेत्रोंमें तो अभी दिन है। सुदूर उपवनके किसी कदम्ब-कुंजमें प्रियतमके मुखारविन्दसे झरते हुए मधुको पी-पीकर मन-ही-मन वे मतवाली हो रही हैं। ललिता-विशाखा सामने खड़ी हैं, दुःखभारसे दोनोंका हृदय फटता जा रहा है। वे सोच नहीं पातीं कि यह हृदयविदारक समाचार—श्रीकृष्णचन्द्र कल मधुपुरी चले जायँगे, यह प्राणहारी सूचना किशोरीके सामने कैसे प्रकट करें; न कहनेका साहस हो रहा है न छिपानेका। धैर्य छूटता जा रहा है, दुःखसे सर्वथा जडवत् होती जा रही हैं तथा विकल होकर परस्पर कानोंमें धीरे-धीरे इसकी चर्चा कर रही हैं—

न वक्तुं नावक्तुं पुरगमनवार्तां मुरभिदः
क्षमन्ते राधायै कथमपि विशाखाप्रभृतयः।
समन्तादाक्रान्ता निबिडजडिमश्रेणिभिरिमाः
परं कर्णाकर्णि व्यवहृतिमधीरं विदधति॥

(ललितमाधव)

× × ×

आखिर भानुदुलारीको यह वज्रभेदी समाचार सुननेको मिला ही, सुनते ही वे मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं। किंतु मूर्च्छा भी भानुकिशोरीके जलते हुए हृदयके तापको सह नहीं सकी, प्राण बचानेके लिये भाग खड़ी हुई। किशोरी जाग उठीं, हाहाकार करने लगीं। श्रीकृष्णचन्द्र आये, सारी रात प्रबोध देते रहे; किंतु किशोरीके करुणक्रन्दनका विराम नहीं हुआ। वे पुनः संज्ञाशून्य हो गयीं।

× × ×

शिशिर-वसन्तकी सन्धिपर आयी हुई वह रजनी भी मानो भानुकिशोरीकी व्यथासे व्याकुल होकर क्षितिजकी ओटमें जा छिपी और उसके स्थानपर कालका नियन्त्रण करने प्रभात आया। किशोरीको जब चेतना हुई तो प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र समीपमें नहीं थे। नन्दप्रासादमें अत्यन्त कोलाहल हो रहा था, किशोरी उसी ओर दौड़ चलीं। जाकर देखा—अक्रूरके रथपर प्राणधन विराजित हैं, विनोदकी बात नहीं थी; सचमुच ही वे कंसकी रंगशाला देखने मधुपुरी जा रहे हैं। फिर तो किशोरीमें दिव्योन्माद आरम्भ हुआ। वे एक बार हँसीं, फिर गम्भीर होकर बोलीं—'री ललिते! विशाखे! देख तो बहन! श्रीकृष्णचन्द्र तो रथपर बैठे हैं। बैठे हैं न? तू देख पा रही है न? अच्छा, यह तो देख—उन्हें रथपर बैठे देखकर मेरा शरीर स्खलित क्यों हो रहा है? अरे देख, वह देख! पृथ्वी घूम रही है; भला, पृथ्वी क्यों घूम रही है, बहन! यह लो! वह कदम्बश्रेणी तो नाच रही है! ये कदम्ब क्यों नृत्य कर रहे हैं?—

स्खलति मम वपुः कथं धरित्री।
भ्रमति कुतः किममी नटन्ति नीपाः॥

(ललितमाधव)

रोती हुई ललिता कुछ दूसरी बात कहकर किशोरीका ध्यान बदलना चाहती हैं, किंतु भानुनन्दिनी रोषमें भरकर बीचमें ही बोल उठती हैं—

विरम कृपणे भावी नायं हरेर्विरहक्लमो।
मम किमभवन् कण्ठे प्राणा मुहुर्निरपत्रपाः॥

(ललितमाधव)

'कृपणे! चुप रह! मुझे भुलाने आयी है? क्या तू समझती है प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रसे मेरा वियोग होगा? मुझे वियोग-दुःख भोगना पड़ेगा? बावली हुई है! क्या कण्ठमें बार-बार आनेवाले मेरे प्राण इतने निर्लज्ज हैं कि वे फिर शरीरमें रह जायँगे, पीछे नहीं चले जायँगे?'

विशाखा किशोरीको पकड़ लेती हैं। इतनेमें ही अक्रूर रथ हाँकने लगते हैं। भानुकिशोरी विशाखाको ठेलकर दौड़ पड़ती हैं, किंतु दो पग चलकर ही कटी चम्पकलताकी भाँति विशाखाके हाथोंपर गिर पड़ती हैं।

× × ×

रथ आगे बढ़ नहीं पाता। व्रजसुन्दरियोंकी भीड़ गति रोके खड़ी है। इतनेमें किशोरी पुनः चैतन्य होकर, विशाखासे हाथ छुड़ाकर रथके समीप चली आती हैं। हाय! इस समय किशोरीकी कैसी करुण दशा है—

क्षणं विक्रोशन्ती लुठति हि शताङ्गस्य पुरतः
क्षणं वाष्पग्रस्तां किरति किल दृष्टिं हरिमुखे।
क्षणं रामस्याग्रे पतति दशनोत्तम्भिततृणा
न राधेयं कं वा क्षिपति करुणाम्भोधिकुहरे॥

(ललितमाधव)

'कभी तो वे चीत्कार करती हुई रथके आगे जाकर लोटने लगती हैं, कभी अश्रुपूरित नेत्रोंसे श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकी ओर देखने लगती हैं; कभी दाँतोंके नीचे एक तृण लेकर बलरामके समक्ष जाकर गिर पड़ती हैं, तृणके संकेतसे करुण प्रार्थना करती हैं—मेरे प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रको तुम रोक लो, दाऊ भैया! ओह! कौन ऐसा है, जो भानुकिशोरीकी यह व्याकुलता देखकर द्रवित न हो जाय—करुणा-समुद्रमें डूब न जाय!'

जो भानुकिशोरी अपनी प्राणरूप सखियोंके सामने भी श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर देखनेमें सकुचाती थीं, वे आज गुरुजनोंके सामने निर्लज्ज हुई विस्फारित नेत्रोंसे श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर देख रही हैं! भानुनन्दिनीकी यह विकलता देखकर उन गुरुजनोंके नेत्रोंसे भी आँसू बह चलते हैं। और तो क्या, निठुर बनकर मधुपुर जाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र भी आत्मसंवरण नहीं कर सके। उनके नेत्रोंसे भी अश्रुप्रवाह आरम्भ हो गया—

रथिनः पथि पश्यतः सखेदं
बत राधावदनं मुरान्तकस्य।
किरतो नयने घनाश्रुबिन्दू-
नरविन्दे मकरन्दवत् क्रमेण॥

'रथपर आसीन श्रीकृष्णचन्द्र राधाकिशोरीकी ओर देख रहे हैं, उनके दोनों नेत्रोंसे घन-घन अश्रुबिन्दु झर रहे हैं, मानो दो कमलपुष्पोंसे क्रमशः मकरन्द झर रहा हो।'

किंतु यह सब होनेपर भी धीरे-धीरे रथ आगेकी ओर बढ़ने ही लगा, श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर अक्रूर चले ही गये। गोकुलका अणु-अणु हाहाकार कर उठा। मानो अक्रूररूप मन्दरने गोकुलसागरका मन्थनकर उसे विक्षुब्ध कर दिया; उसमें जो विरहवेदनामय हालाहल कालकूट निकला, वह तो वहाँ बिखर गया तथा कृष्णरूप चन्द्र अक्रूरके साथ चले गये—इस प्रकार व्रजपुर श्रीकृष्णविरहमें जल उठा, व्रजचन्द्रके अदर्शनसे उसमें अन्धकार छा गया।

× × ×

हाय! नन्दकुल-चन्द्रमा कहाँ चले गये? कहाँ हैं? सखि! तू बता दे, मयूरपिच्छधारी कहाँ चले गये? मोहनमन्त्रमयी मुरलीध्वनि करनेवाले कहाँ हैं? बहन! जिनके अंगोंकी कान्ति इन्द्रनीलमणि-सी है, वे मेरे हृदयेश्वर कहाँ हैं? ओह! रासरसकी तरंगोंपर जो नृत्य करते थे, वे कहाँ चले गये? मेरे जीवनाधार कहाँ हैं? हाय रे हाय! मेरी परम प्यारी निधि कहाँ चली गयी? मेरे प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र कहाँ चले गये? आह! विधाता! तुम्हें धिक्कार है—

क्व नन्दकुलचन्द्रमाः क्व सखि चन्द्रकालंकृतिः
क्व मन्त्रमुरलीरवः क्व नु सुरेन्द्रनीलद्युतिः।
क्व रासरसताण्डवी क्व सखि जीवरक्षौषधि-
र्निधिर्मम सुहृत्तमः क्व बत हन्त हा धिग्विधिम्॥

(ललितमाधव)

—इस प्रकार पुकारती-पुकारती भानुकिशोरी तो उन्मादिनी हो गयीं। समस्त दिन, सारी रात—कभी तो प्रलाप करती रहतीं; कभी जड़-चेतन, स्थावर-जंगम, जो भी दृष्टिपथमें आता, उससे श्रीकृष्णचन्द्रका समाचार पूछने लगतीं। कभी यमुनातटपर चली जातीं; कल-कल करती हुई धाराकी ओर कान लगाकर कुछ देर सुनती रहतीं और फिर कह उठतीं—

मृदु-कलेवरे तुमि, ओ हे शैवालिनि,
कि कहिछ भाल क, रे कह ना आमारे—
सागर-विरहे यदि प्राण तव काँदे, नदि,
तोमार मनेर कथा कह राधिकारे—
तुमि कि जान ना, धनि, से ओ विरहिणी?

मृदुकलेवरे यमुने! क्या कह रही हो, मुझे अच्छी प्रकार समझाकर कहो। सागरके विरहमें यदि तुम्हारे प्राण रो रहे हैं तो अपने मनकी बात, मनकी व्यथा राधिकाको बताओ। सुन्दरि! क्या तुम नहीं जानती कि राधा भी विरहिणी है?

कभी मयूरीकी ओर भानुकिशोरीकी दृष्टि जाती तो उससे बातें करने लगतीं—

तरुशाखा ऊपरे शिखिनि!
केन लो वसिया तुइ विरस वदने?
ना हेरिया श्याम चाँदे, तोरो कि पराण काँदे,
तुइ ओ कि दुःखिनी!
आहा! के ना भालवासे राधिकारमणे?
कार न जुड़ाय आँखि शशी, विहङ्गिनि?
आय, पाखि, आमरा दुजने
गला धराधरि करि भावि लो नीरवे;
नवीन नीरदे प्राण तुइ करेछिस् दान—
से कि तोर हबे?
आर कि पाइबे राधा राधिकारञ्जने?
तुइ भाव घने, धनि, आमि श्रीमाधवे।

री शिखिनी! तू तरुशाखापर उदास क्यों बैठी है; क्या श्रीकृष्णचन्द्रको न देखकर तुम्हारे प्राण भी रो रहे हैं? क्या तू भी उनके वियोग-दुःखसे दुःखिनी हो रही है? आह! सच्ची बात है, राधिकारमणको कौन नहीं प्यार करता? विहंगिनी! भला, चन्द्र किसके नेत्रोंको शीतल नहीं करता? पक्षी! तू आ, मेरे समीप आ जा; एकान्तमें हम दोनों परस्पर एक-दूसरेके कण्ठसे लगकर विचार करें। नवीन नीरदको तुमने अपने प्राण सौंपे तो क्या वह तुम्हारा हो जायगा? क्या पुनः राधाको राधारंजन मिल जायँगे? मयूरी! आ, तू तो मेघका चिन्तन कर और मैं श्यामजलधरवर्ण माधवका।'

कभी अपने ही हाहाकारकी प्रतिध्वनि सुनकर भानुनन्दिनी चकित हो जातीं और प्रतिध्वनिसे पूछने लगतीं—

के तुमि श्यामेरे डाक, राधा यथा डाके—
हाहाकार-रवे?
के तुमि, कोन युवती, डाक ए विरले, सति,
अनाथा राधिका यथा डाके गो माधवे?
अभय-हृदये तुमि कह आसि मोरे—
के ना बाँधाए जगते श्याम-प्रेम डोरे?
* * *
बुझिलाम एतक्षणे के तुमि डाकिछ—
आकाशनन्दिनि!
पर्वत-गहन-वने वास तव, वरानने,
सदा रङ्गरसे तुमि रत, हे रङ्गिणि!
निराकारा भारति, के ना जाने तोमारे?
एसेछ कि काँदिते गो लइया राधारे?
जानि आमि, हे स्वजनि, भालवास तुमि
मोर श्यामघने।
शुनि मुरारिर वाँशी गाइते गो तुमि आसि,
शिखिया श्यामेर गीत मञ्जु कुञ्ज-वने।
राधा राधा वलि यवे डाकितेन हरि—
राधा राधा वलि तुमि डाकिते, सुन्दरि!

'तुम कौन हो? जिस प्रकार राधा हाहाकार करती हुई श्यामको पुकारती है, वैसे ही उन्हें तुम भी पुकार रही हो! सति! बताओ, तुम कौन-सी युवती हो? इस

एकान्त स्थलमें अनाथा राधिकाकी भाँति ही माधवको बुला रही हो। निर्भयचित्त होकर मेरे पास आओ, मुझे बताओ। इसमें भयकी बात ही क्या है? श्यामकी प्रेमडोरीसे इस जगत्‌में कौन बँधा हुआ नहीं है? ओह! आकाशनन्दिनी! इतनी देर बाद मैं समझ पायी कि तुम कौन इस प्रकार पुकार रही थी। वरानने! पर्वतमें, गहन वनमें तुम्हारा निवास है। रंगिणी! तुम सदा खेल करनेमें लगी रहती हो। आकाररहित भारति! तुम्हें कौन नहीं जानता? पर क्या तुम राधाके लिये रोने आयी हो? सजनी! मैं जानती हूँ, तुम मेरे श्यामघनको प्यार करती हो। सुन्दर कुंजवनमें श्रीकृष्णचन्द्रकी मुरलीध्वनि सुनकर तुम उनके पास आती, उनसे उनका गीत सुन लेती एवं फिर वही गीत गाती। सुन्दरि! जब श्रीहरि 'राधा-राधा' कहकर मुझे बुलाते थे तो तुम भी 'राधा-राधा' कहकर मुझे बुलाने लगती थी।'

इसी प्रकार कभी भानुकिशोरी धरासे, कभी गिरिराजसे, कभी मलयमारुत, कुसुम, निकुंजवनसे बात करने लगतीं, उनसे श्रीकृष्णचन्द्रका पता पूछतीं, श्रीकृष्णचन्द्रके पास अपनेको ले चलनेके लिये प्रार्थना करतीं।

जब कभी भी चैतन्य होतीं तो श्रीकृष्णचन्द्रका स्फुरण होने लगता, उनकी अतीत लीलाओंकी स्मृतिसे किशोरीका मन भर जाता तथा अपना दुःखभार कम करनेके लिये वे सखियोंको अपने हृदयकी बात बताने लगतीं—

छिनहिं छिन सुरति होति सो माई।
बोलनि मिलनि चलनि हँसि चितवनि प्रीति रीति चतुराई॥
साँझ समय गोधन सँग आवनि परम मनोहरताई।
रूप सुधा आनंदसिन्धु महँ झलमलाति तरुनाई॥
अंग अंग प्रति मैन सैन सजि धीरज देत मिटाई।
उड़ि उड़ि लगत दृगनि टोना सौ जगमोहनी कन्हाई॥
मरियत सोचि सोचि बिन बातनि हौं बन गहन भुलाई।
'बल्लभ' औचक आइ मंद हँसि गहि भुज कंठ लगाई॥

* * *

माई वे सुख अब दुख देत।
हँसि मिलिबौ बोलिबौ स्याम कौ प्रान हरैं सौ लेत॥
रूप सुधा भरि भरि इन नयननि छिन छिन पान कियो।
बिनु देखें ता बदन कमल के कैसें परत जियो॥
बचन रचन ज्यों मैन मंत्र से श्रवननि में रस बरसैं।
बिन मुक्ता सुक्ता ये त्यों ही गोल बोल कौं तरसैं॥
जे कल केस कुसुम लै निज कर गूँथे नंदकिसोर।
ते अब उरझि लटकि ढूँढत से कहाँ गये चित चोर॥
जिन ग्रीवनि वे भुजा मनोहर भूषन यों लिपटानी।
ते अनाथ सूनी बिनु माधव कासौं कहौं बखानी॥
वह चितवनि, वह चाल मनोहर, उठनि पीर उर बाँकी।
हाय कहाँ वह चरन परसिबौ, नख सिख सुंदर झाँकी॥
एक समय सुनि गरज मेघ की हौं डरि थरथर काँपी।
दे पट ओट बिहँसि मनमोहन हिये लाय भुज चाँपी॥
अब यह बिरह दवानल प्रगट्यौ, जरे चहत सब ब्रजजन।
'बल्लभ' बेगि आइ राखौ बलि कृपा नीर दै दरसन॥

किंतु वियोगिनी किशोरीका दुःखभार तो घटनेके बदले और बढ़ जाता। कितनी बार तो व्याकुलता यहाँतक बढ़ जाती कि प्रतीत होता, मानो किशोरीके प्राण अब सचमुच नहीं रहेंगे। उस समय सखियाँ श्रीकृष्णचन्द्रकी दी हुई गुंजामाला उनके गलेमें डाल देतीं। बस, प्राण मानो इन गुंजामणियोंमें ही उलझ जाते, निकल नहीं पाते। इसके अतिरिक्त '**आयास्ये**'—'प्रिये! मैं आऊँगा,' श्रीकृष्ण-चन्द्रका यह संदेश इतना सुदृढ़ बन्धन था कि प्राण इसे तोड़ नहीं पाते थे।

× × ×

इधर श्रीकृष्णचन्द्रके प्राणोंमें भी कम पीड़ा नहीं है, कंसका निधन भी हो चुका है; पर वे तो व्रज जा नहीं सकते। इसीलिये वे अपने प्रिय सखा उद्धवको भानुनन्दिनीका, व्रजसुन्दरियोंका एवं नन्ददम्पतीका समाचार लाने, उन्हें श्रीकृष्णचन्द्रका संदेश देकर सान्त्वना देने व्रज भेजते हैं। उद्धव व्रजमें आते हैं। पहले नन्ददम्पतीसे मिलते हैं, उन्हें सान्त्वना देने जाते हैं, पर दे नहीं पाते। फिर व्रज-सुन्दरियोंसे उनका मिलन होता है। इनके प्रेमकी धारामें तो उद्धवका सारा ज्ञान बह जाता है। अन्तमें उद्धव भानुनन्दिनीके समीप आये। भानुनन्दिनी दूसरे राज्यमें थीं। वहाँसे उतरकर उद्धवसे मिलीं। पर उसी क्षण उनका मोहन महाभाव उद्वेलित हो उठा, उद्वेलित होकर दिव्योन्मादके रूपमें परिणत हो गया। उसी समय संयोगसे उड़ता हुआ एक भ्रमर भानुकिशोरीके दृष्टिपथमें

आ जाता है। भानुकिशोरी ऐसा अनुभव करती हैं—मेरे प्रियतमने इस भ्रमरको दूत बनाकर भेजा है, मुझे यह मनाने आया है। बस, फिर तो किशोरीका वह दिव्योन्माद हिलोरें लेने लगता है; क्रमशः उसमें दस लहरें उठती हैं तथा भानुकिशोरीके श्रीमुखद्वारसे चित्रजल्पके रूपमें बाहरकी ओर प्रवाहित होने लगती हैं।

पहले प्रजल्पकी लहर आयी; श्रीराधाकिशोरी बोलीं—'रे कितवबन्धु मधुप! तू मेरे चरणोंका स्पर्श मत कर।' भौंरा भानुकिशोरीके चरणोंके समीप उड़ रहा था। भानुकिशोरीने अपने चरण हटा लिये।

दूसरी लहर आयी परिजल्पकी। किशोरीने कहा—'भ्रमर! तुम्हारे स्वामीने केवल एक बार अपनी मोहिनी अधर-सुधाका पान कराया और फिर निर्दय होकर यहाँसे चले गये, जैसे तुम पुष्पोंका रस लेकर उड़ जाते हो।'

अब विजल्पकी लहर नाचने लगी। किशोरी कह रही थीं—'रे मिलिन्द! यदुकुलशिरोमणिका गुणगान यहाँ क्यों कर रहा है; जा, उड़ जा, मधुपुरकी सुन्दरियोंके सामने किया कर; वे अभी उन्हें नहीं जानतीं।'

चौथी उज्जल्पकी लहर भानुदुलारीकी वाणीमें बह रही थी—'रे भृंग! तू मुझे क्यों भुलाने आया है कि श्रीकृष्ण मेरे लिये व्याकुल हैं? बावले! स्वर्गमें, पातालमें, पृथ्वीपर ऐसी कौन है, जो उनपर मोहित होकर न्योछावर न हो जाय; लक्ष्मी भी उनकी उपासना करती हैं। फिर मेरी-जैसीको वे क्यों चाहेंगे?'

अब संजल्पकी पाँचवीं तरंग बाहर आयी—'रे मधुकर! मेरे चरणोंको अपने सिरपर क्यों रख रहा है? हटा दे, ऐसा अनुनय-विनय मैं बहुत देख चुकी हूँ; जिनके लिये सब कुछ छोड़ा, वे छोड़कर चले जायँ! अब उनपर क्या विश्वास करें?'

छठी अवजल्पकी लहरी नृत्य कर उठी—'रे भौंरे! आजसे नहीं, मैं उन्हें बहुत पहलेसे जानती हूँ; उनकी निष्ठुरताका परिचय मुझे है। रामरूपमें छिपकर वालिका वध किया; शूर्पणखाका रूप नष्ट कर दिया, दानवेन्द्र बलिसे छल किया, मुझे किसी भी काली वस्तुसे प्रयोजन नहीं⋯⋯पर उनकी चर्चा तो मैं नहीं छोड़ सकूँगी।'

अब सातवीं अभिजल्पकी तरंग आती है—'रे मधुप! देख, जो एक बार भी उनके लीलापीयूषका एक कण पी लेता है, उसके सारे द्वन्द्व मिट जाते हैं; बहुतसे तो अपना घर-बार स्वाहाकर बाहर चले जाते हैं, भिक्षासे पेट भरते हैं, पर लीलाश्रवण नहीं छोड़ पाते।'

इसके पश्चात् आठवीं आजल्पकी लहरी आयी—'रे अलि! हरिणी व्याधके सुमधुर गानपर विश्वासकर अपना प्राण खो देती है; हम सब भी उनकी मधुभरी बातोंमें भूल गयीं, आज उसीका परिणाम भोग रही हैं। उनकी बात जाने दे, कुछ दूसरी बात कह।'

अनन्तर प्रतिजल्पकी तरंग ऊपर उठी; भानुदुलारी बोलीं— 'मधुकर! मेरे प्रियतमके प्यारे सखा! क्या मेरे प्रियतमने तुम्हें यहाँ भेजा है? तब तो तुम मेरे पूज्य हो। तुम्हें कुछ चाहिये क्या? जो चाहो, सो माँग लो; मैं वही दे दूँगी। प्यारे भ्रमर, क्या मुझे वहाँ ले चलोगे?'

अब अन्तमें किशोरीके स्वरमें दीनता आ जाती है, उत्कण्ठाका भी समावेश हो जाता है तथा दसवीं सुजल्पकी लहरी होठोंसे बह चलती है; किशोरी कहने लगती हैं—'प्यारे भ्रमर! आर्यपुत्र श्रीकृष्णचन्द्र मधुपुरीमें सुखसे तो हैं न? क्या वे हम दासियोंकी कभी चर्चा भी करते हैं? ओह! वह दिन कब आयेगा, जब श्रीकृष्णचन्द्र दिव्यसुगन्धपूर्ण अपना हस्तकमल हमारे सिरपर रखेंगे!'*

---

* प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रके किसी सुहृद्से मिलन होकर गूढ़ रोषके कारण अनेक भावोंसे युक्त जो वचन बोलना है, उसे चित्रजल्प कहते हैं। प्रजल्प आदि इसी चित्रजल्पके भेद हैं। इन दसोंके क्रमशः ये उदाहरण श्रीमद्भागवतमें मिलते हैं—

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक्॥
सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक्।
परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः॥

यों कहकर श्रीराधाकिशोरी मौन हो गयीं। महाभावके इस महावैभवको देखकर उद्धव कुछ देर तो आनन्द-जड हुए निश्चल खड़े रहे तथा जब शरीरमें शक्ति आयी तो भानुकिशोरीके चरणोंमें लोट गये। भानुकिशोरीकी छाया पड़कर उद्धवका अणु-अणु रससे पूर्ण हो गया।

× × ×

कई मास पश्चात् जब उद्धव मधुपुर लौटने लगे तो भानुकिशोरीसे उन्होंने प्रियतम श्रीकृष्णके लिये संदेश माँगा। भानुकिशोरी बोलीं—

स्यान्नः सौख्यं यदपि बलवद्गोष्ठमाप्ते मुकुन्दे
यद्यल्पापि क्षतिरुदयते तस्य मागात्कदापि।
अप्राप्तेऽस्मिन्यदपि नगरादार्तिरुग्रा भवेन्नः
सौख्यं तस्य स्फुरति हृदि चेत्तत्र वासं करोतु॥

(उज्ज्वलनीलमणि)

'प्रियतम श्यामसुन्दरके यहाँ आनेसे हम सबोंको अपार सुख होगा; किंतु यदि यहाँ आनेमें उनकी किंचित् भी क्षति होती हो तो वे कभी भी यहाँ न आयें। उनके नहीं आनेसे यद्यपि हम सबोंके भीषण दुःखकी सीमा नहीं, किंतु वहाँ रहनेसे यदि उनके हृदयमें सुख होता है तो वे वहीं निवास करें।'

राधाकिशोरी! तुम्हारे इस दिव्य प्रेमकी जय हो!—कहकर उद्धव श्रीकृष्णचन्द्रके पास चल पड़े।

(१०)

कुरुक्षेत्रमें मिलन

श्रीकृष्णचन्द्र मथुरासे द्वारका चले गये। दिन, पक्ष, मास, वर्षके क्रमसे वह शतवर्षवियोगकी अवधि भी क्षीण होती हुई पूरी हो गयी। अवश्य ही भानुकिशोरीके लिये तो शतवर्षका एक-एक क्षण कल्पके समान बीतता था। श्रीकृष्णचन्द्र भी स्थिर रहे हों, यह बात नहीं। केवल रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पट्टमहिषियाँ ही जानती थीं—वृषभानुनन्दिनीको उनके प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्र एक क्षणके लिये भी नहीं भूल सके। यहाँ भानुकिशोरीमें मोहनभाव उदय होता, वहाँ रुक्मिणीके पर्यंकपर श्रीकृष्णचन्द्र मूर्च्छित हो जाते। द्वारकामें श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाकी यह दैनन्दिनी घटना थी।

समय हो चुका था, इसीलिये उसके अनुरूप तैयारी होने लगी। श्रीकृष्णचन्द्रने यदुकुलकी सभामें कुरुक्षेत्र जाकर सूर्योपरागका स्नान करनेका प्रस्ताव रखा—

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम्।
विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः॥
दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः॥
विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारैरनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्।
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन्॥
मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम्।
बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद् ध्वाङ्क्षवद् यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः॥
यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति॥
वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः।
ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता॥
प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग।
नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते॥
अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान्।
क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु॥

(१०।४७।१२—२१)

ब्रजबासिन को हेतु हृदय में राखि मुरारी।
सब यादव सों कह्यो बैठि कै सभा मँझारी॥
बड़ो पर्ब रबि गहन, कहा कहौं तासु बड़ाई।
चलौ सबै कुरुक्षेत्र, तहाँ मिलि न्हैये जाई॥

सदल-बल यदुवंशी कुरुक्षेत्रकी ओर चल पड़े। उसी मुहूर्तमें व्रजराज नन्दने भी समस्त पुरवासियोंके सहित ग्रहण-स्नानके लिये वहीं जानेका विचार किया। तथा जब उन्हें यह सूचना मिली कि श्रीवसुदेव श्रीकृष्णचन्द्रको लिये वहाँ आ रहे हैं, तब तो फिर क्षणभरका भी विलम्ब न करके वे चल पड़े। सखियोंके सहित भानुकिशोरी भी चल पड़ीं। चलते समय किशोरीके मार्गमें शुभ शकुन होने लगे—

बायस गहगहात सुभ बानी बिमल पूर्ब दिसि बोली।

× × ×

आखिर उसी तीर्थपर एकान्तमें श्रीराधाकिशोरी एवं श्रीकृष्णचन्द्रका मिलन हुआ। आह! उस मिलनको चित्रित करनेकी सामर्थ्य तो वाग्वादिनी सरस्वतीमें भी नहीं। वे इतना ही कह सकती हैं—

राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव राधा, कीट भृंग गति ह्वै जु गई॥
माधव राधा के रँग राँचे, राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरंतर रसना करि सो कहि न गई॥

× × ×

दूसरे दिन द्वारकेश्वरी रुक्मिणी श्रीकृष्णसे पूछती हैं—

बूझति है रुक्मिणि—पिय! इनमें को बृषभानुकिशोरी।
नैक हमैं दिखरावहु अपनी बालापन की जोरी॥
परम चतुर जिन कीने मोहन अल्प बैस ही थोरी।
बारे ते जिहि यहै पढ़ायो बुधि बल कल बिधि चोरी॥
जाके गुन गनि गुथति माल कबहूँ उर ते नहिं छोरी।
सुमिरन सदा बसतहीं रसना दृष्टि न इत उत मोरी॥

सजलनयन हुए श्रीकृष्णचन्द्र संकेत कर देते हैं—

वह देखौ जुबतिन मैं ठाढ़ी नीलबसन तनु गोरी।
सूरदास मेरो मन वाकी चितवन देखि हर्‌यौ री॥

× × ×

अपने हृदयका समस्त आदर भानुकिशोरीको समर्पितकर द्वारकेश्वरी उन्हें अपने स्थानपर ले आयीं। वृन्दावनेश्वरी एवं द्वारकेश्वरी एक आसनपर सुशोभित हुईं—

रुक्मिनि राधा ऐसै बैठीं।
जैसे बहुत दिनन की बिछुरीं एक बाप की बेटीं॥
एक सुभाउ एक लै दोऊ, दोऊ हरि को प्यारी।
एक प्रान, मन एक दुहुँन को, तनु करि देखिअत न्यारी॥
निज मंदिर लै गईं रुक्मिनी, पहुनाई बिधि ठानी।
सूरदास प्रभु तहँ पग धारे, जहाँ दोऊ ठकुरानी॥

आतिथ्य ग्रहण करके राधाकिशोरी अपने विश्रामागारमें चली आयीं।

× × ×

अर्धनिशाका समय है। श्रीकृष्णचन्द्र पर्यंकपर विराजित हैं। सती रुक्मिणी अपने स्वामीकी पादसेवा (पैर दबानेकी सेवा) करने जा रही हैं।

हैं! हैं! यह क्या! श्रीकृष्णचन्द्रके समस्त चरणतल, गुल्फ, चरणोंकी अँगुलियाँ—सभी फफोलोंसे भरे हैं। रुक्मिणी थर-थर काँपने लगती हैं, उनका मुख अत्यन्त विषण्ण हो जाता है।

मेरे स्वामिन्! बताओ, नाथ! कहाँ आग थी? कहाँ तुम्हारे पैर पड़ गये? दासीकी वंचना मत करो!—रुक्मिणीने श्रीकृष्णचन्द्रके दोनों हाथोंको अपने हाथमें लेकर कातर स्वरमें यह पूछा। किंतु उत्तरके लिये श्रीकृष्णचन्द्र उन्हें टालने लगे। भीष्मकनन्दिनी भी बिना जाने छोड़नेवाली न थीं। द्वारकेश्वरीसे हार मानकर आखिर श्रीकृष्णचन्द्रको अपने पैर जलनेका सच्चा हेतु बताना ही पड़ा। वे संकुचित हुए-से बोले—आज भानुकिशोरी तुम्हारा आतिथ्य ग्रहण कर रही थीं, उनकी छाया पड़कर तुम भी मतवाली हो गयी थी। उमंगमें भरकर तुमने परम सुस्वादु विविध पदार्थ उन्हें खिलाये, अमृतके समान परम मधुर सुवासित जल पिलाया, पर दूध पिलाना भूल गयी। फिर मेरे संकेतपर तुम्हें स्मरण हुआ, मधुरातिमधुर दुग्ध तुमने उन्हें फिरसे जाकर स्वयं पान कराया। उनके प्रेममें तुम अपने-आपको भूल-सी

गयी थी; तुमने यह नहीं देखा कि दूध अधिक उष्ण तो नहीं है। पर वास्तवमें वह दूध आवश्यकतासे अधिक उष्ण था। भानुनन्दिनीको यह पता नहीं कि तुम उन्हें क्या पिला रही हो। तुम पिलाती गयी, वे पीती गयीं। उनके हृदयमें मेरे ये चरण नित्य वर्तमान रहते हैं। वह उष्ण दुग्ध मेरे चरणोंपर ही गिर रहा था। उसी दूधसे जलकर ये फफोले हुए हैं।

'ओह! जिनके हृदयमें श्रीकृष्णचन्द्रके चरण—भावनामय नहीं—वास्तवमें ही साक्षात्‌रूपसे नित्य विराजित रहते हैं, उन भानुकिशोरीके प्रेमकी तो मैं छाया भी नहीं छू सकती।'—द्वारकेश्वरी मूर्च्छित होकर पर्यंकपर गिर पड़ीं।

× × ×

भानुकिशोरीसे मिलने पुनः श्रीकृष्णचन्द्र आये। देखा किशोरी ललितासे कुछ कह रही हैं। छिपकर सुनने लगे। किशोरी यह कह रही थीं—

प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित-
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम्।
तथाप्यन्तःखेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति॥

'सखि! प्रियतम श्रीकृष्ण वही हैं, कुरुक्षेत्रमें मिल भी गये; तथा मैं राधा भी वही हूँ, हमलोगोंका मिलन-सुख भी वही है। तथापि मेरा मन तो प्रियतमकी मधुर पंचमस्वरमें भरती हुई वंशीध्वनिसे झंकृत कालिन्दीतीरवर्ती वृन्दावनको चाह रहा है। मैं चाहती हूँ, बहन! वृन्दावनमें प्रियतमको देखूँ।'

यह सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र सामने आ जाते हैं, भानुकिशोरीको हृदयसे लगा लेते हैं। क्षणभरमें ही कुरुक्षेत्रका अस्तित्व विलीन हो जाता है, उसका चिह्नतक अवशिष्ट नहीं रहता। वहाँ तो अब वृन्दावन है, प्रिया-प्रियतम मिल रहे हैं, रसमयी कालिन्दी प्रवाहित हो रही हैं।

(११)
अन्तर्धान

जिस स्थानपर ब्राह्मणपत्नियोंने श्रीकृष्णचन्द्रको अन्नदान देकर तृप्त किया था, उसी स्थानपर भाण्डीरवनमें वटके नीचे श्रीकृष्णचन्द्र विराजित हैं। द्वारकापुरीसे आये हुए हैं। उनके वामपार्श्वमें श्रीराधाकिशोरी हैं। दक्षिण पार्श्वमें नन्द-यशोदा हैं। नन्ददम्पतीके दक्षिण पार्श्वमें कीर्तिदा-वृषभानु विराजित हैं तथा इन सबको चारों ओरसे घेरकर असंख्य गोप-गोपियोंकी श्रेणी सुशोभित है।

इसी समय एक दिव्यातिदिव्य अत्यन्त मनोहर रथ आकाशसे नीचे उतरता है। रथ चार योजन विस्तृत है, पाँच योजन ऊँचा है, इन्द्रसार रत्नसे निर्मित है; वर्ण विशुद्ध स्फटिकके समान है। रथके ऊपर अमूल्य दिव्य रत्नकलश है, सर्वत्र दिव्य हीरकहार झूल रहे हैं, कभी म्लान न होनेवाले दिव्यातिदिव्य पारिजात कुसुमोंकी बनी मालाओंसे वह विभूषित है, अगणित कौस्तुभ उसमें पिरोये हुए हैं। रथमें सहस्र कोटि मन्दिर बने हुए हैं, मन्दिर सूक्ष्मातिसूक्ष्म दिव्य वस्त्रसे आच्छादित हैं; दो सहस्र चक्रों (पहिये)-पर वह निर्मित है, उसमें दो सहस्र अत्यन्त दिव्य अश्व जुड़े हुए हैं। कोटि गोपोंसे वह रथ परिवृत है।

श्रीकृष्णचन्द्र संकेत करते हैं। श्रीराधाकिशोरी उठती हैं, रथपर आरोहण करती हैं। वे असंख्य व्रजपुरवासी भी क्षणभरमें ही उस रथपर बैठ जाते हैं। देखते-देखते ही रथ गोलोकधामकी यात्रामें चल पड़ता है, अन्तर्हित हो जाता है—

गोलोकं च ययौ राधा सार्धं गोलोकवासिभिः।
(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

श्रीराधा अवतरित हुए गोलोकवासियोंके साथ गोलोकमें पधार जाती हैं।

जयति नवनागरी, रूप गुन आगरी, सर्वसुखसागरी कुँवरि राधा।
जयति हरिभामिनी, स्यामघनदामिनी, केलिकलकामिनी, छबि अगाधा॥
जयति मनमोहनी, करौ दृग बोहनी, दरस दै सोहनी हरौ बाधा।
जयति रसमूर री, सुरभि सुर भूर री, 'भगवतरसिक' प्रान साधा॥

[गोलोकवासी श्रीराधाबाबाजी]

श्रीराधाजी कौन थीं ?

मेरे विश्वासके अनुसार श्रीराधा-कृष्णतत्त्व सर्वथा अप्राकृत है, इनका विग्रह अप्राकृत है, इनकी समस्त लीलाएँ अप्राकृत हैं—जो अप्राकृत क्षेत्रमें, अप्राकृत मन-बुद्धि-शरीरसे अप्राकृत पात्रोंमें हुई थीं।* अप्राकृत लीलाको देखने, सुनने, कहने और समझनेके लिये अप्राकृत नेत्र, कर्ण, वाणी और मन-बुद्धि चाहिये। अतएव मुझ-सा प्राकृत प्राणी, प्राकृत मन-बुद्धिसे कैसे इस तत्त्वको जान सकता है और कैसे प्राकृत वाणीमें उसका वर्णन कर सकता है। अतएव इस सम्बन्धमें मैं जो कुछ भी लिख रहा हूँ उससे किसीको यह न समझना चाहिये कि मैं जो कहता हूँ, यही तत्त्व है, इससे परे और कुछ नहीं है; न यह मानना चाहिये कि मैं किसी मतविशेषपर आक्षेप करता हूँ या किसी तार्किकका मुँह बन्द करनेके लिये ऐसा लिखता हूँ अथवा आग्रहपूर्वक अपना विश्वास दूसरोंपर लादना चाहता हूँ। मेरा यह कहना कदापि नहीं है कि मेरी लिखी बातोंको पाठक मान ही लें। यह तो सिर्फ अपने विश्वासकी बात—शास्त्र और संतोंद्वारा सुनी हुई—अपने कल्याणके लिये लिखी जा रही है। मेरी प्रार्थना है कि पाठकगण तर्क-बुद्धिका आश्रय करके मुझसे इसके सम्बन्धमें कोई प्रश्नोत्तरकी आशा कृपया न रखें। विवादमें तो मैं अपनी हार पहले ही स्वीकार कर लेता हूँ; क्योंकि मैं इस विषयपर तर्क करना ही नहीं चाहता। अवश्य ही मेरे विश्वासका बदलना तो अन्तर्यामी प्रभुकी इच्छापर ही अवलम्बित है।

परिपूर्णतम, परमात्मा, परात्पर, सच्चिदानन्दघन, निखिल ऐश्वर्य, माधुर्य और सौन्दर्यके सागर, दिव्य सच्चिदानन्दविग्रह आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण और भगवान् श्रीराममें मैं कोई भी भेद नहीं मानता और इसी प्रकार भगवती श्रीराधाजी, श्रीरुक्मिणीजी और श्रीसीताजी आदिमें भी मेरी दृष्टिसे कोई भेद नहीं है। भगवान्‌के विभिन्न सच्चिदानन्दमय दिव्य लीला-विग्रहोंमें विभिन्न नाम-रूपोंसे उनकी ह्लादिनी शक्ति साथ रहती ही है। नाम-रूपोंमें पृथक्ता दीखनेपर भी वस्तुतः वे सब एक ही हैं। स्वयं श्रीभगवान्‌ने ही श्रीराधाजीसे कहा है—

यथा त्वं राधिका देवी गोलोके गोकुले तथा।
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्भवती च सरस्वती॥
भवती मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदशायिनः प्रिया।
धर्मपुत्रवधूस्त्वं च शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपिणी॥
कपिलस्य प्रिया कान्ता भारते भारती सती।
द्वार वत्यां महालक्ष्मीर्भवती रुक्मिणी सती॥
त्वं सीता मिथिलायां च त्वच्छाया द्रौपदी सती।
× × × ×
रावणेन हृता त्वं च त्वं च रामस्य कामिनी॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्णजन्मखण्ड १२६।९६—९८,१००)

'हे राधे! जिस प्रकार तुम गोलोक और गोकुलमें श्रीराधिकारूपसे रहती हो, उसी प्रकार वैकुण्ठमें महालक्ष्मी और सरस्वतीके रूपमें विराजमान हो। तुम ही क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णुकी प्रिया मर्त्यलक्ष्मी हो। तुम ही धर्मपुत्रकी कान्ता लक्ष्मी-स्वरूपिणी शान्ति हो। तुम ही भारतमें कपिलकी प्रिय कान्ता सती भारती हो। तुम ही द्वारकामें महालक्ष्मी रुक्मिणी हो। तुम्हारी ही छाया सती द्रौपदी है। तुम ही मिथिलामें सीता हो। तुम्हींको रामकी प्रिया सीताके रूपमें रावणने हरण किया था।'

भगवान्‌के दिव्य लीलाविग्रहोंका प्राकट्य ही वास्तवमें आनन्दमयी ह्लादिनी शक्तिके निमित्तसे है। श्रीभगवान् अपने निजानन्दको परिस्फुट करनेके लिये

* श्रीभगवान्‌के देहादि यदि उस मायाके कार्य पंचमहाभूतोंसे निर्मित—प्राकृत होते, जो माया आवरणरूपा है, तो मायातीत, गुणातीत, आत्माराम मुनिगण भगवान्‌के सौन्दर्य, उनकी अंग-गन्ध, उनकी चरणधूलिके लिये लालायित न होते।

अथवा उसका नवीन रूपमें आस्वादन करनेके लिये ही स्वयं अपने आनन्दको प्रेमविग्रहोंके रूपमें प्रकट करते हैं और स्वयं ही उनसे आनन्दका आस्वादन करते हैं। भगवान्‌के उस आनन्दकी प्रतिमूर्ति ही प्रेमविग्रहरूपा श्रीराधारानीजी हैं और यह प्रेमविग्रह सम्पूर्ण प्रेमोंका एकीभूत समूह है। अतएव श्रीराधिकाजी प्रेममयी हैं और भगवान् श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। जहाँ आनन्द है, वहीं प्रेम है और जहाँ प्रेम है, वहीं आनन्द है। आनन्दरससारका घनीभूत विग्रह श्रीकृष्ण हैं और प्रेमरससारकी घनीभूत मूर्ति श्रीराधारानी हैं। अतएव श्रीराधा और श्रीकृष्णका बिछोह कभी सम्भव ही नहीं। न श्रीराधाके बिना श्रीकृष्ण कभी रह सकते हैं और न श्रीकृष्णके बिना श्रीराधाजी। श्रीकृष्णके दिव्य आनन्दविग्रहकी स्थिति ही दिव्य प्रेमविग्रहरूपा श्रीराधाजीके निमित्तसे है। श्रीराधारानी ही श्रीकृष्णकी जीवनस्वरूपा हैं और इसी प्रकार श्रीकृष्ण ही श्रीराधाके जीवन हैं। दिव्य प्रेमरससारविग्रह होनेसे ही श्रीराधारानी महाभावरूपा हैं और वह नित्य-निरन्तर आनन्दरससार रसराज, अनन्त-ऐश्वर्य, अनन्त-सौन्दर्य-माधुर्य लावण्य-निधि, सच्चिदानन्दसान्द्रांग, अविचिन्त्यशक्ति, आत्मा-रामगणाकर्षी प्रियतम श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करती रहती हैं। इस ह्लादिनी शक्तिकी लाखों अनुगामिनी शक्तियाँ मूर्तिमती होकर प्रतिक्षण सखी, मंजरी, सहचरी और दूती आदि रूपोंसे श्रीराधाकृष्णकी सेवा किया करती हैं; श्रीराधाकृष्णको सुख पहुँचाना और उन्हें प्रसन्न करना ही इनका एकमात्र कार्य होता है। इन्हींका नाम श्रीगोपीजन है।

नित्य आनन्दमय, नित्य तृप्त, नित्य एकरस, कोटि-कोटि-ब्रह्माण्ड-विग्रह, पूर्णब्रह्म परमात्मामें सुखेच्छा कैसे हो सकती है? यह प्रश्न युक्तिसंगत प्रतीत होनेपर भी इसीको सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। भाव और प्रेम परमात्मासे पृथक् वस्तु नहीं है। प्रेमाश्रयका भाव प्रेमविषयमें और प्रेम-विषयका भाव प्रेमाश्रयमें अनुभूत हुआ करता है। श्रीगोपीजन प्रेमका आश्रय हैं और श्रीकृष्ण प्रेमके विषय हैं। श्रीगोपियोंका अप्राकृत दिव्य भाव ही परब्रह्ममें दिव्य सुखेच्छा उत्पन्न कर देता है। प्रेमका महान् उच्च भाव ही उन पूर्णकाममें कामना, नित्यतृप्तमें अतृप्ति, क्रियाहीनमें क्रिया और आनन्दमयमें आनन्दकी वासना जाग्रत् कर देता है। अवश्य ही यह सुखेच्छा, कामना, अतृप्ति, क्रिया या वासना जड इन्द्रियजन्य नहीं है, इस मर्त्य जगत्‌की मायामयी वस्तु नहीं है; क्योंकि वह दिव्य आनन्द और दिव्य प्रेम अभिन्न हैं। श्रीकृष्ण और श्रीराधारानी सदा अभिन्न हैं। श्रीभगवान् कहते हैं—

यथा त्वं च तथाहं च भेदो हि नावयोर्ध्रुवम्।
यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहिका सति॥
यथा पृथिव्यां गन्धश्च तथाहं त्वयि संततम्।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्णजन्मखण्ड १४। ५८-५९)

'जो तुम हो, वही मैं हूँ; हम दोनोंमें किंचित् भी भेद नहीं है। जैसे दूधमें सफेदी, अग्निमें दाहिका शक्ति और पृथ्वीमें गन्ध रहती है, उसी प्रकार मैं सदा तुममें रहता हूँ।'

अब रही श्रीराधिकाजीके विवाहकी बात, सो इस रूपमें इनका लौकिक विवाह कैसा? वृन्दावन-लीला ही लौकिक लीला नहीं है। लौकिक लीलाकी दृष्टिसे तो ग्यारह वर्षकी ही अवस्थामें श्रीकृष्ण व्रजका परित्याग करके मथुरा पधार गये थे। इतनी छोटी अवस्थामें स्त्रियोंके साथ प्रणयकी बात ही कल्पनामें नहीं आती और अलौकिक जगत्‌में दोनों सर्वदा एक ही हैं। फिर भी भगवान्‌ने ब्रह्माजीको श्रीराधाके दिव्य चिन्मय प्रेम-रस-सार-विग्रहका दर्शन करानेका वरदान दिया था, उसकी पूर्तिके लिये एकान्त अरण्यमें ब्रह्माजीको श्रीराधिकाजीके दर्शन कराये और वहीं ब्रह्माजीके द्वारा रसराज और महाभावकी विवाहलीला भी सम्पन्न हुई। ये विवाहिता श्रीराधाजी नित्य ही भगवान् श्रीकृष्णके संग रहती हैं। अवश्य ही छिपी रहती हैं। श्रीकृष्णकृपा

होनेपर ही किन्हीं प्रेमी महानुभावको इस 'युगल जोड़ी' के दुर्लभ दर्शन होते हैं। श्रीमद्भागवतमें श्रीराधाका नाम प्रकटरूपमें नहीं आया है, यह सत्य है; परंतु वह उसमें उसी प्रकार छिपा हुआ है, जैसे शरीरमें आत्मा। प्रेमरससार-चिन्तामणि श्रीराधाजीका अस्तित्व ही आनन्द-रससार श्रीकृष्णकी दिव्य प्रेमलीलाको प्रकट करता है। जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहाँ श्रीराधा नहीं हैं—यह कहना ही नहीं बनता। तार्किकोंको नहीं, भक्तों और शास्त्रके सामने सिर झुकानेवालोंको तो भगवान्‌के ये वाक्य सदा स्मरण रखने चाहिये—

आवयोर्भेदबुद्धिं च यः करोति नराधमः।
तस्य वासः कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
पूर्वान् सप्त परान् सप्त पुरुषान् पातयत्यधः।
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्य नश्यति निश्चितम्॥
अज्ञानादावयोर्निन्दां ये कुर्वन्ति नराधमाः।
पच्यन्ते नरके घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्ण० १५। ६७—७०)

'जो नराधम हम दोनोंमें (श्रीकृष्ण और श्रीराधामें) भेद-बुद्धि करता है, वह जबतक चन्द्र-सूर्य रहते हैं, तबतकके लिये कालसूत्र नामक नरकमें रहता है। उसके पहलेके सात और पीछेके सात पुरुष अधोगामी होते हैं और उसका कोटिजन्मार्जित पुण्य निश्चय ही नष्ट हो जाता है। जो नराधम अज्ञानवश हमलोगोंकी निन्दा करते हैं, वे पापात्मा भी चन्द्र-सूर्यकी स्थितिकालतक घोर नरक भोगते हैं।'

अब रही गोपियोंके प्रेमके शुद्ध होनेकी बात। इसपर रासपंचाध्यायीका यह श्लोकार्द्ध स्मरण रखना चाहिये—

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः।

'छोटे बालक जैसे अपने प्रतिबिम्बके साथ खेला करते हैं, वैसे ही रमेश भगवान्‌ने भी व्रजसुन्दरियोंके साथ क्रीड़ा की।' लीला-रसमय आनन्दकन्द भगवान् स्वभावसे ही प्रेमवश हैं। अतएव उन्होंने प्रेमभावसे ही अपनी आनन्दस्वरूपा शक्तिद्वारा अपने ही प्रतिबिम्बरूप प्रेमस्वरूपा महाभागा गोपियोंके साथ क्रीड़ा की। उनका तो यह आत्मरमण था और गोपियोंका इसमें श्रीकृष्णसुख ही एकमात्र उद्देश्य था। अतएव प्रेममयी गोपी और आनन्दमय श्रीकृष्णकी यह लीला सर्वथा कामगन्धशून्य थी। गोपियोंका प्रेम अत्युच्च—पराकाष्ठाका भाव था। इसीसे उसे रूढ़ महाभाव कहते हैं। इसमें निजेन्द्रिय-तृप्तिकी इच्छाके संस्कारकी भी कल्पना नहीं थी। यह इस जगत्‌की काम-क्रीड़ा नहीं थी। यह तो दिव्य आनन्दमय, पवित्र प्रेममय जगत्‌की अति दुर्लभ रहस्यमय लीला थी, जिसका रसास्वादन करनेके लिये बड़े-बड़े देवता और सिद्ध महात्मागण भी लालायित थे। कहा जाता है कि इसीलिये उन्होंने व्रजमें आकर पशु-पक्षियों तथा वृक्ष-लता-पत्ताके रूपमें जन्म लिया था। श्रीगोपियोंके इस कामशून्य प्रेमभावको, श्रीकृष्णकान्ताशिरोमणि श्रीराधारानीके महाभावको और निजानन्दमें नित्यतृप्त परमात्मामें सुखेच्छा क्यों उत्पन्न होती है और कैसे उन्हें प्रेमरूपा शक्तियोंके साथ लीला करनेमें सुख मिलता है, इस बातको समझने-समझानेका अधिकार श्रीकृष्णगतप्राण, भजनपरायण, प्रेमी रसिक भक्तोंको ही श्रीकृष्णकृपासे प्राप्त होता है। मुझ-जैसा विषयी मनुष्य इसपर क्या कहे-सुने? मेरी तो हाथ जोड़कर सबसे यही प्रार्थना है कि अपने मनकी मलिनताका आरोप भगवान्‌के पवित्र चरित्रोंपर कोई कदापि न करें और शंका छोड़कर जिसको भगवान्‌का जो नाम-रूप प्रिय लगता हो, जिसकी जिसमें रुचि हो, भगवान्‌के दूसरे नाम-रूपको उससे नीचा न समझकर बल्कि अपने ही इष्टदेवका एक भिन्न स्वरूप समझकर, अनन्यभावसे अपने उस इष्टकी सेवामें लगे रहें।

(श्रीरा० मा० चि०)

शिवजीका राधावतार

एक बार परमकौतुकी लीलामय भगवान् श्रीशिवजीने पार्वतीजीसे कहा—'देवि! यदि मुझपर तुम प्रसन्न हो तो तुम पृथिवीतलपर कहीं पुरुषरूपसे अवतार लो और मैं स्त्रीरूप धारण करूँगा। यहाँ जैसे मैं तुम्हारा प्रियतम स्वामी और तुम मेरी प्राणप्यारी भार्या हो, उसी प्रकार वहाँ तुम मेरे स्वामी तथा मैं तुम्हारी पत्नी बनूँगा। बस, यही मेरा अभीष्ट है। तुम मेरी सभी इच्छाओंको पूर्ण करती हो, इसे भी पूर्ण करो।'

शक्तिमान्‌की इच्छा पूर्ण करनेके लिये शक्ति देवीने स्वीकृति दे दी और कहा—'नवीन मेघके समान कान्तिमयी जो मेरी भद्रकाली नामकी मूर्ति है, वही श्रीकृष्णरूपसे पृथिवीपर अवतार लेगी; अब आप भी अपने अंशसे स्त्रीरूप धारण कीजिये।'

शिवजी परम सन्तुष्ट होकर बोले—'मैं तुम्हारी प्रियकामनासे भूतलपर नौ रूपोंमें प्रकट होऊँगा। हे शिवे! मैं स्वयं परम प्रेममयी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके रूपमें अवतीर्ण होऊँगा और तुम्हारी प्राणप्रिया होकर तुम्हारे ही साथ विहार करूँगा। इसके अतिरिक्त मेरी आठ मूर्तियाँ आठ रमणियोंके रूपमें प्रकट होंगी, वे ही मनोहरनयना श्रीरुक्मिणी और सत्यभामा आदि तुम्हारी आठ पटरानियाँ होंगी। इसके अतिरिक्त जो मेरे ये भैरवगण हैं, वे भी रमणीरूप धारणकर भूमिपर अवतीर्ण होंगे।'

देवीने कहा—'आपकी इच्छा सफल हो, मैं आपकी इन सभी मूर्तियोंके साथ यथोचित विहार करूँगी। हे प्रभो! मेरी जया तथा विजया नामकी जो दोनों सखियाँ हैं, वे पुरुषरूपमें श्रीदामा और सुदामा होंगी। विष्णुभगवान्‌के साथ मेरा पहलेसे निश्चय हो चुका है, वे हलायुधरूपमें मेरे बड़े भाई होंगे और सदा मेरे प्रिय कार्योंका साधन करेंगे। उन महाबलीका नाम [बल] राम होगा। इस प्रकार मैं तुम्हारा कार्य सिद्धकर अपनी महती कीर्तिकी स्थापना करके पुनः भूतलसे लौट आऊँगी।'

इसी निश्चयके अनुसार पृथिवी और ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर श्रीपार्वतीजी श्रीकृष्णरूपमें तथा श्रीशिवजी श्रीराधारूपमें प्रकट हुए।

यह एक कल्पमें श्रीराधा-कृष्णके अवतारका बाहरी रहस्य है। भगवान् और भगवतीके अवतारकी गूढ़ अभिसन्धिको तो दूसरा कौन जान सकता है?

—महाभागवतके आधारपर

'मधुर प्रेमकी अनुपम गाथा'

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)

जय राधा वृषभानुकुमारी, नन्दलालकी प्यारी।
पीत वसन रंग, गौर वदन तुम, सुन्दर गोपी न्यारी॥
गोपिनमें तुम सबसे सुन्दर, घर-घरकी तुम प्यारी।
रूप निहारें मातु जसोदा तुम पर हो बलिहारी॥
सब गोपिनको कृष्णने मोहा, तुम उनके मन भायीं।
श्याम-हृदयमें तुमही बसी हो, तुम बिन वो कछु नाहीं॥
गह्वर वनमें, कुंज गलिनमें, तुमने साँझ बितायी।
यमुना तटपे, वंशीवटमें, महारास तुम आयीं॥
बालक ही थे जिनसे तुम्हारी अद्भुत प्रियतमतायी।
काम-क्रोध-मद-लोभमें लिपटा, मन कुछ समझे नाहीं॥
मथुराको जब कृष्ण पधारे, तुम गिरी पछाड़ें खायीं।
श्याम सफल हो सुख पायें बस, मन ये विनती आयी॥
मधुर प्रेमकी अनुपम गाथा, राधे-श्याम सी नाहीं।
अद्भुत राधा प्रेम तुम्हारा, बिन मोल बिके हैं कन्हाई॥
योगी ध्याते, प्रेमी गाते, नारदने टेर लगायी।
श्याम प्रेम-भक्ति पानेको, सबने ही आस लगायी॥
नारायणी तुम नारायणकी, योगशक्ति तुम आदि।
रघुवर की तुम ही हो सीता, श्यामकी राधा प्यारी॥
तुम जगमाता तुमको ध्याता, आया शरण तुम्हारी।
मैं बालक तुम माता मेरी, हर लो विपदा सारी॥

श्रीराधाकृष्णविवाहोत्सव

एक समयकी बात है, श्रीनन्दजी अपने नन्दन बालकृष्णको अंकमें लेकर गौएँ चराते हुए बहुत दूर निकल गये और धीरे-धीरे कालिन्दीके तटपर स्थित भाण्डीर-वनमें जा पहुँचे। थोड़ी ही देरमें श्रीकृष्णकी इच्छासे वायुका वेग अत्यन्त प्रखर हो उठा। आकाश मेघोंकी घटासे आच्छादित हो गया। तमाल और कदम्ब वृक्षोंके पल्लव टूट-टूटकर गिरने, उड़ने और अत्यन्त भयका उत्पादन करने लगे। उस समय महान् अन्धकार छा गया। नन्दनन्दन रोने लगे। वे पिताकी गोदमें बहुत भयभीत दिखायी देने लगे। नन्दको भी भय हो गया। वे शिशुको गोदमें लिये परमेश्वर श्रीहरिकी शरणमें गये।

उसी क्षण करोड़ों सूर्योंके समूहकी-सी दिव्य दीप्ति उदित हुई, जो सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त थी; वह क्रमशः निकट आती-सी जान पड़ी। उस दीप्तिराशिके भीतर नौ नन्दोंके राजाने वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाको देखा। वे करोड़ों चन्द्रमण्डलोंकी कान्ति धारण किये हुए थीं। उनके श्रीअंगोंपर आदिवर्ण नीले रंगके सुन्दर वस्त्र शोभा पा रहे थे। श्रीराधाके दिव्य तेजसे अभिभूत हो नन्दने तत्काल उनके सामने मस्तक झुकाया और हाथ जोड़कर कहा—राधे! ये साक्षात् पुरुषोत्तम हैं और तुम इनकी मुख्य प्राणवल्लभा हो, यह गुप्त रहस्य मैं गर्गजीके मुखसे सुनकर जानता हूँ। राधे! अपने प्राणनाथको मेरे अंकसे ले लो। ये बादलोंकी गर्जनासे डर गये हैं। इन्होंने लीलावश यहाँ प्रकृतिके गुणोंको स्वीकार किया है। इसीलिये इनके विषयमें इस प्रकार भयभीत होनेकी बात कही गयी है। देवि! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम इस भूतलपर मेरी यथेष्ट रक्षा करो। तुमने कृपा करके ही मुझे दर्शन दिया है, वास्तवमें तो तुम सब लोगोंके लिये दुर्लभ हो।

देवि! यदि वास्तवमें तुम मुझपर प्रसन्न हो तो तुम दोनों प्रिया-प्रियतमके चरणारविन्दोंमें मेरी सुदृढ़ भक्ति बनी रहे। साथ ही तुम्हारी भक्तिसे भरपूर साधु-संतोंका संग मुझे सदा मिलता रहे। प्रत्येक युगमें उन संत-महात्माओंके चरणोंमें मेरा प्रेम बना रहे।

'तथास्तु' कहकर श्रीराधाजीने नन्दजीकी गोदसे अपने प्राणनाथको दोनों हाथोंमें ले लिया। फिर जब नन्दरायजी उन्हें प्रणाम करके वहाँसे चले गये, तब श्रीराधिकाजी भाण्डीर-वनमें गयीं।

वहाँ एक सुन्दर सरोवर प्रकट हुआ, जहाँ सुवर्णमय सुन्दर सरोज खिले हुए थे और उन सरोजोंपर बैठी हुई मधुपावलियाँ उनके मधुर मकरन्दका पान कर रही थीं।

दिव्यधामकी शोभाका अवतरण होते ही साक्षात् पुरुषोत्तमोत्तम घनश्याम भगवान् श्रीकृष्ण किशोरावस्थाके अनुरूप दिव्य देह धारण करके श्रीराधाके सम्मुख खड़े हो गये। उनके श्रीअंगोंपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। कौस्तुभमणिसे विभूषित हो, हाथमें वंशी धारण किये वे नन्दनन्दन राशि-राशि मन्मथों (कामदेवों)-को मोहित करने लगे। उन्होंने हँसते हुए प्रियतमाका हाथ अपने हाथमें थाम लिया और उनके साथ विवाह-मण्डपमें प्रविष्ट हुए। उस मण्डपमें विवाहकी सब सामग्री संग्रह करके रखी गयी थी। मेखला, कुशा और जलसे भरे कलश आदि उस मण्डपकी शोभा बढ़ा रहे थे। वहीं एक श्रेष्ठ सिंहासन प्रकट हुआ, जिसपर वे दोनों प्रिया-प्रियतम विराजित हो गये और अपनी दिव्य शोभाका प्रसार करने लगे। वे दोनों मेघ और विद्युत्की भाँति अपनी प्रभासे उद्दीप्त हो रहे थे। उसी समय देवताओंमें श्रेष्ठ विधाता—भगवान् ब्रह्मा आकाशसे उतरकर परमात्मा श्रीकृष्णके सम्मुख आये और उन दोनोंके चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़कर कमनीय वाणीद्वारा चारों मुखोंसे मनोहर स्तुति करने लगे—प्रभो! आप सबके आदिकारण हैं, किंतु आपका कोई आदि-अन्त नहीं है। आप समस्त पुरुषोत्तमोंमें उत्तम हैं। अपने भक्तोंपर सदा वात्सल्यभाव रखनेवाले और 'श्रीकृष्ण' नामसे विख्यात हैं। अगणित ब्रह्माण्डोंके पालक-पति हैं। ऐसे आप परात्पर प्रभु राधा-प्राणवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्रकी मैं शरण लेता हूँ। आप गोलोकधामके अधिनाथ हैं, आपकी लीलाओंका

कहीं अन्त नहीं है।

आपके साथ ये लीलावती श्रीराधा अपने लोक (नित्यधाम)-में ललित लीलाएँ किया करती हैं। आप ही जब 'वैकुण्ठनाथ' के रूपमें विराजमान होते हैं, तब ये वृषभानुनन्दिनी ही 'लक्ष्मी' रूपसे आपके साथ सुशोभित होती हैं। जब आप 'श्रीरामचन्द्र' के रूपमें भूतलपर अवतीर्ण होते हैं, तब ये जनकनन्दिनी 'सीता' के रूपमें आपका सेवन करती हैं। आप 'श्रीविष्णु' हैं और ये कमलवनवासिनी 'कमला' हैं; जब आप 'यज्ञपुरुष' का अवतार धारण करते हैं, तब ये श्रीजी आपके साथ 'दक्षिणा' रूपमें निवास करती हैं। आप पतिशिरोमणि हैं तो ये पत्नियोंमें प्रधान हैं। आप 'नृसिंह' हैं तो ये आपके हृदयमें 'रमा' रूपसे निवास करती हैं। आप जब 'नर-नारायण' रूपसे रहकर तपस्या करते हैं, उस समय आपके साथ ये 'परम शान्ति' के रूपमें विराजमान होती हैं। आप जहाँ जिस रूपमें रहते हैं, वहाँ तदनुरूप देह धारण करके ये छायाकी भाँति आपके साथ रहती हैं। पुरुषोत्तमोत्तम! आपका ही श्याम और गौर—द्विविध तेज सर्वत्र विदित है। आप गोलोकधामके अधिपति परात्पर परमेश्वर हैं। मैं आपकी शरण लेता हूँ। यद्यपि आप दोनों नित्य-दम्पती हैं और परस्पर प्रीतिसे परिपूर्ण रहते हैं, परात्पर होते हुए भी एक-दूसरेके अनुरूप रूप धारण करके लीला-विलास करते हैं; तथापि मैं लोक-व्यवहारकी सिद्धि या लोकसंग्रहके लिये आप दोनोंकी वैवाहिक विधि सम्पन्न कराऊँगा—

यदा युवां प्रीतियुतौ च दम्पती
परात्परौ तावनुरूपरूपितौ।
तथापि लोकव्यवहारसंग्रहाद्
विधिं विवाहस्य तु कारयाम्यहम्॥

(गर्ग०, गोलोक० १६। २९)

इस प्रकार स्तुति करके ब्रह्माजीने उठकर कुण्डमें अग्नि प्रज्वलित की और अग्निदेवके सम्मुख बैठे हुए उन दोनों प्रिया-प्रियतमके पाणिग्रहण-संस्कारकी विधि वैदिक विधानसे पूरी की।

यह सब करके ब्रह्माजीने खड़े होकर श्रीहरि और राधिकाजीसे अग्निदेवकी सात परिक्रमाएँ करवायीं। तदनन्तर उन दोनोंको प्रणाम करके वेदवेत्ता विधाताने उन दोनोंसे सात मन्त्र पढ़वाये। उसके बाद श्रीकृष्णके वक्ष:स्थलपर श्रीराधिकाका हाथ रखवाकर और श्रीकृष्णका हाथ श्रीराधिकाके पृष्ठदेशमें स्थापित करके विधाताने उनसे मन्त्रोंका उच्चस्वरसे पाठ करवाया। उन्होंने राधाके हाथोंसे श्रीकृष्णके कण्ठमें एक केसरयुक्त माला पहनवायी, जिसपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। इसी तरह श्रीकृष्णके हाथोंसे भी वृषभानुनन्दिनीके गलेमें माला पहनवाकर वेदज्ञ ब्रह्माजीने उन दोनोंसे अग्निदेवको प्रणाम करवाया और सुन्दर सिंहासनपर उन अभिनव दम्पतीको बैठाया। वे दोनों हाथ जोड़े मौन रहे। पितामहने उन दोनोंसे पाँच मन्त्र पढ़वाये और जैसे पिता अपनी पुत्रीका सुयोग्य वरके हाथमें दान करता है, उसी प्रकार उन्होंने श्रीराधाको श्रीकृष्णके हाथमें सौंप दिया।

उस समय देवताओंने फूल बरसाये और विद्याधरियोंके साथ देवांगनाओंने नृत्य किया। गन्धर्वों, विद्याधरों, चारणों और किन्नरोंने मधुर स्वरसे श्रीकृष्णके लिये सुमंगल-गान किया।

उस अवसरपर श्रीहरिने विधातासे कहा—ब्रह्मन्! आप अपनी इच्छाके अनुसार दक्षिणा बताइये। तब ब्रह्माजीने श्रीहरिसे इस प्रकार कहा—'प्रभो! मुझे अपने युगलचरणोंकी भक्ति ही दक्षिणाके रूपमें प्रदान कीजिये।' श्रीहरिने 'तथास्तु' कहकर उन्हें अभीष्ट वरदान दे दिया। तब ब्रह्माजीने श्रीराधिकाके मंगलमय युगल-चरणारविन्दोंको दोनों हाथों और मस्तकसे बारंबार प्रणाम करके अपने धामको प्रस्थान किया। उस समय प्रणाम करके जाते हुए ब्रह्माजीके मनमें अत्यन्त हर्षोल्लास छा रहा था।*

* विस्तारसे जाननेके लिये गर्गसंहिताका गोलोकखण्ड तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणका श्रीकृष्णजन्मखण्ड देखना चाहिये।

'जिसका विवाह रायाण गोपके साथ हुआ, वह राधा दूसरी थी'

लोग बार-बार राधा-कृष्णके विवाहकी बात पूछते हैं। इसमें युगलस्वरूपके विषयमें अज्ञान होना ही उनकी शंकाका कारण है। जो नित्य एक हैं, जिनमें कभी भेदकी कल्पना नहीं है और जो सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं, उनमें परस्पर विवाह होने-न-होनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। तथापि कुछ महानुभाव उनका विवाह भी देखते हैं और ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार स्वयं श्रीब्रह्माजीके द्वारा एकान्त काननमें उनके विवाह कराये जानेका वर्णन मिलता है। श्रीराधाजीके रायाण गोपके साथ विवाहकी बात भी आती है। उसमें श्रीदामाका शाप कारण था; परंतु वह विवाह स्वयं राधाजीके साथ नहीं, किंतु छायाके साथ हुआ था—ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वहाँ लिखा है—

'राधाजी अयोनिजा थीं। माताके पेटसे नहीं पैदा हुई थीं। माताने योगमायाकी प्रेरणासे वायुको ही जन्म दिया, परंतु वहाँ स्वेच्छासे राधा प्रकट हो गयीं। बारह वर्ष बीतनेपर उन्हें यौवनमें प्रवेश करती देख माता-पिताने रायाण गोपके साथ उनका सम्बन्ध निश्चित किया। उस समय श्रीराधा घरमें छायाको स्थापित करके स्वयं अन्तर्धान हो गयीं। उस छायाके साथ उक्त रायाणका विवाह हुआ। वास्तवी श्रीराधाका विवाह तो हुआ था पुण्यमय वृन्दावनमें श्रीकृष्णके साथ। जगत्स्रष्टा विधाताने विधिपूर्वक उसे सम्पन्न करवाया था।

अयोनिसम्भवा देवी वायुगर्भा कलावती।
सुषाव मायया वायुं सा तत्राविर्बभूव ह॥
अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम्।
सार्धं रायाणवैश्येन तत्सम्बन्धं चकार सः॥
छायां संस्थाप्य तद्गेहे सान्तर्धानं चकार ह।
बभूव तस्य वैश्यस्य विवाहश्छायया सह॥
कृष्णेन सह राधायाः पुण्ये वृन्दावने वने।
विवाहं कारयामास विधिना जगतां विधिः॥

(ब्र० वै० पुराण)

यह राधाकी छाया कौन थी—इसका भी स्पष्टीकरण उस पुराणमें है। केदार राजाकी कन्या वृन्दाके तप करनेपर भगवान्‌ने उसको यह वर दिया था कि 'इस तपस्याके फलस्वरूप तुम मुझे प्राप्त करोगी। फिर व्रजमें असली राधाजी जब वृषभानुकी कन्याके रूपमें अवतीर्ण होंगी, तब तुम उनकी छायाके रूपमें उत्पन्न होओगी। विवाहके समय रायाण छायारूपिणी तुम्हींसे विवाह करेगा और वह वास्तविक राधा तुमको रायाणके हाथोंमें अर्पण करके स्वयं अन्तर्धान हो जायगी। गोकुलवासी मूढ़ लोग रायाणपत्नी तुम्हींको राधा माने रहेंगे। उस समय असली राधा तो मेरे पास निवास करेगी और छायारूपिणी तुम रायाणकी स्त्री होकर जीवनयापन करोगी।'

राधा··························वृषभानुसुता यदा।
सा एव वास्तवी राधा त्वं चच्छायास्वरूपिणी॥
विवाहकाले रायाणस्त्वां चच्छायां ग्रहिष्यति।
त्वां दत्वा वास्तवी राधा सान्तर्धाना भविष्यति॥
राधां कृत्वा च तां मूढा विज्ञास्यन्ति च गोकुले।

× × × ×

स्वयं राधा मम क्रोडे छाया रायाणकामिनी॥

अतः यह सिद्ध है कि यह छाया भी वास्तविकमें राधाकी नहीं है। यह भी केदारकन्या वृन्दाका अवतार है।

इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि वास्तविक राधाका किसी अन्य गोपसे विवाह हुआ था। पर इस विषयमें विवाद करना व्यर्थ है। यहाँ तो उन राधाका प्रसंग है, जो भगवान् श्रीकृष्णकी नित्य अभिन्नरूपा हैं, सर्वेश्वरी मूल प्रकृति हैं, समस्तदेवीस्वरूपिणी हैं, जगज्जननी हैं, श्रीकृष्णकी परम आराधिका हैं, श्रीकृष्णकी परमाराध्या हैं और उनकी साक्षात् आत्मा ही हैं।

श्रीराधा-रहस्य

(आचार्य श्रीहितरूपलालजी गोस्वामी)

तत्त्वदृष्टिसे श्रीराधाके स्वरूपका विचार आजकल बहुत ही संशयापन्न हो गया है। श्रुति, स्मृति आदिके यथार्थ रहस्यको न जाननेके कारण अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ खड़ी हो गयी हैं, और लोगोंको उनमें हठ-सा हो गया है।

जीव, ब्रह्म और प्रकृति इन तीन तत्त्वोंको माननेवाले अनेक विद्वान् श्रीराधाकी गणना जीव-तत्त्व या प्रकृति-तत्त्वमें करते हैं। कोई-कोई उनको श्रीकृष्णकी शक्ति या माया कहते हैं। यहाँ जितनी बड़ी भूल श्रीराधा-तत्त्वके समझनेमें की जाती है उतनी ही बड़ी भूल श्रीकृष्ण-तत्त्वके समझनेमें भी की जाती है।

मूलमें ब्रह्मका ही यथार्थ स्वरूप न समझनेके कारण इन सब कल्पनाओंका उदय हुआ है। श्रीमद्भागवतमें 'श्रीराधा' नाम न देखकर इस प्रकारकी आशंकाओंको और भी अवकाश मिला है। किसी-किसीने '**योगमायामुपाश्रितः**' इस श्लोकके आधारपर योगमायाको ही श्रीराधा समझ लिया है और किसी-किसीने गोपीसमूहमें किसी विशेष गोपीको 'राधा' अनुमान कर लिया है। यह सब कल्पनाएँ एकांगी हैं।

श्रीस्कन्दपुराणमें श्रीमद्भागवतके माहात्म्यका वर्णन करते हुए स्वयं श्रीमद्वेदव्यासजीने भागवतका अभिप्राय इन शब्दोंमें दिखलाया है—

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका।
तस्या दास्यप्रभावेण विरहोऽस्मान्न संस्पृशेत्॥

अर्थात् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं और श्रीराधिका उनकी आत्मा हैं। इस अभिप्रायसे गूढ़ तत्त्वको जाननेवाले मुनियोंने आत्माराम-शब्दके द्वारा ही श्रीराधाजीका वर्णन किया है।

एक बार द्वारिकामें श्रीकृष्णकी रानियोंने कालिन्दीजीसे यह प्रश्न किया कि हमलोग श्रीकृष्णके विरहसे व्याकुल रहती हैं परन्तु आपमें विरह-वेदना नहीं देखी जाती, इसका क्या कारण है? इसपर कालिन्दीजीने उत्तर दिया

कि 'कृष्ण आत्माराम हैं, निश्चय ही उनकी आत्मा श्रीराधिका हैं। हम श्रीराधिकाकी दासी हैं, उनके दास्यके प्रभावसे श्रीकृष्णसे हमारा कभी वियोग नहीं हो सकता।'

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्माराम इति प्रोक्तो मुनिभिर्गूढवेदिभिः॥

हम देखते हैं कि श्रीमद्भागवतकी रासपंचाध्यायीमें 'आत्माराम' शब्द स्थल-स्थलपर दोहराया गया है। यदि स्कन्दपुराणकी व्यवस्थाके अनुसार 'आत्मा' शब्दकी जगह 'राधा' शब्द बदल दिया जाय, तो इन स्थलोंपर 'राधारमण' ऐसा शब्द होगा। '**आत्मारामोऽप्यरीरमत्**' यहींसे रासका प्रारम्भ होता है। यद्यपि श्रीकृष्ण सदा आत्माराम ही हैं अर्थात् श्रीराधाके सिवा अन्यत्र उनका रमण नहीं है, तथापि वे गोपियोंके साथ रास करने लगे, इत्यादि।

इसे देखते हुए श्रीराधाको प्रकृति, माया, शक्ति या जीव कहना पूर्णतया संगत नहीं है। सूत्रकारने किसी गौण अर्थमें आत्माशब्दका प्रयोग होना सम्भव नहीं माना है। '**गौण*श्चेन्नात्मशब्दात्**' (ब्रह्मसूत्र १।१।६)

* प्रधान यानी प्रकृतिमें भी गौण ईक्षण मान सकते हैं; ऐसा नहीं है, यहाँ आत्मा शब्द प्रकृतिके लिये कभी नहीं दिया जा सकता।

आत्माका लक्षण बृहदारण्यकके मैत्रेयी-ब्राह्मणमें इस प्रकार किया गया है '........**न वा सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति॥**' जो कुछ भी पुत्र, मित्र, घर, स्त्री आदि प्रिय होते हैं, वे सब इन वस्तुओंके कारण प्रिय नहीं होते; किन्तु आत्माके अर्थ ही प्रिय होते हैं, जिसकी किंचित्-सी झलकमात्रसे और सब वस्तु प्रिय होती हैं, उस हृदयके हितको आत्मा कहते हैं।

इस सम्पूर्ण विश्वके आत्मा श्रीकृष्ण हैं और उन श्रीकृष्णकी आत्मा श्रीराधा हैं। जो लोग श्रीकृष्णको ब्रह्म और श्रीराधाको ब्रह्मसे इतर कोई दूसरा तत्त्व कल्पना करते हैं, उन्होंने ब्रह्म-तत्त्वको यथार्थ नहीं समझा। कोई-कोई तो यहाँतक भूलते हैं कि वे श्रीकृष्णको भी ब्रह्म नहीं कहकर एक सर्वगुणरहित निर्विशेष सत्तामात्र ब्रह्मकी कल्पना करते हैं। ब्रह्मका लक्षण तैत्तिरीय-उपनिषद्‌की भार्गवी-वारुणीविद्याके अनुसार यह है कि '**आनन्दाद्ध्येव खलु इमानि भूतानि जायन्ते०**' इत्यादि। अर्थात् आनन्दसे ही सबकी उत्पत्ति, आनन्दमें ही सबका जीवन और आनन्दमें ही सबका लय होता है तथा मोक्ष होनेके समय भी सब आनन्दमें ही लीन हो जाते हैं। अतएव आनन्द ही ब्रह्म है, वही रस है; क्योंकि इस रसको ही पाकर यह आनन्दी होता है। यह जो परब्रह्मका आनन्दमय रस-रूप स्वरूप कहा है, उसीको श्रुतिने इन शब्दोंमें दिखलाया है '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**', '**यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता।**' (तैत्तिरीय ब्रह्मानन्दवल्ली) ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त है। जो कोई उसको अपने हृदयस्थित ब्रह्मरूप परम आकाशमें अत्यन्त हितरूप जानता है, वह सर्वज्ञ ब्रह्मके साथ सब भोगोंको प्राप्त करता है। इसी अभिप्रायसे श्रीराधातापनीय-उपनिषद्‌में ब्रह्म-तत्त्वका लक्षण करते हुए कहा है कि एक हित[1] ही तत्त्व है। सामवेद-रहस्यमें कहा है कि 'इस पुरुषने[2] अपने रमणके लिये अपने स्वरूपको प्रकट किया, उस रस-संवलित रूपको—यह आनन्द-रस है, ऐसा पुराविद् (ज्ञानी) लोग कहते हैं। सब आनन्द और रस इसीसे प्रकट होते हैं। यह पुरुष आनन्दरूपमें रमण करता है, अत: यह स्वयं ही आराधनामें तत्पर हुआ। इसलिये इसने अपनी ही आराधना की, इसीसे लोक और वेदमें इसे श्रीराधा कहकर गाया गया है।'

'यह पुरुष अनादि है और एक है, यही दो प्रकारका रूप धारणकर सब रसोंको ग्रहण करता है। यह स्वयं ही नायकरूप होकर आराधनामें तत्पर हुआ, इसीसे वेद जाननेवाले इसे राधा-रसिकानन्द कहते हैं। इसीके कारण यह लोक आनन्दमय है।

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें ब्रह्मके स्वरूपका बहुत अच्छे प्रकारसे निरूपण किया गया है। अध्याय ७३ में व्यासजीके इस प्रश्नपर कि उपनिषदोंमें जिस सत्यपर ब्रह्मका प्रतिपादन किया गया है, जिसको वेदोंने कहीं प्रकृति, कहीं पुरुष और कहीं शून्य कहकर अनेक प्रकारसे वर्णन किया है, आपका वह वास्तविक स्वरूप कौन-सा है? भगवान्‌ने उन्हें श्रीहित वृन्दावन और उसमें श्रीराधाकृष्णरूपके दर्शन कराये हैं तथा इसी प्रकारके प्रसंगमें अध्याय ८२ में भी आपने कहा है कि आज तुम मेरा जो अलौकिक[3] स्वरूप देख रहे हो, यह घनीभूत शुद्ध प्रेम ही है, इसीसे इसे सच्चिदानन्दविग्रह कहते हैं। उपनिषद् इसी स्वरूपको अरूप, निर्गुण, व्यापि, क्रियाहीन और परात्पर कहते हैं।

निर्गुण कहनेका अभिप्राय यह है कि प्रकृतिसे उत्पन्न कोई गुण मुझमें नहीं है और जो मेरे गुण हैं, उनमें अनन्तता और असिद्धता है। मैं अपने चिद्-अंशसे व्याप्त हूँ, इसलिये विद्वान् मुझे ब्रह्म कहते हैं और मैं प्रपंचको नहीं रचता, इसलिये मुझको निष्क्रिय कहते हैं इत्यादि।

इस प्रकार श्रीराधा-तत्त्व श्रीकृष्ण-तत्त्वसे अभिन्न और उसीका आत्मस्वरूप है। दोनों मिलकर एक तत्त्व श्रीहित हैं, जो कि सब वेदान्तोंका हार्द परब्रह्म है।

१-एको हि तत्त्वो हित:।

२-स एवायं पुरुष: स्वरमणार्थं स्वस्वरूपं प्रकटितवान् तद्रूपं रससंवलितं आनन्दरसोऽयं पुराविदो वदन्ति सर्वे आनन्दरसा यस्मात्प्रकटिता भवन्ति इत्यादि।

३-यदद्य मे त्वया दृष्टमिदं रूपमलौकिकम्। घनीभूतामलप्रेम सच्चिदानन्दविग्रहम्। इत्यादि।

श्रीराधासम्बन्धी शंकाओंका समाधान

(सम्बन्धाभिमानी एक दास)

समय-समयपर जिज्ञासु साधकोंद्वारा 'श्रीराधाजी' विषयक कुछ शंकाएँ उठायी जाती हैं। इन शंकाओंसे उन सज्जनोंकी सद्भावना तथा सच्चे जिज्ञासु होनेका परिचय मिलता है। भगवत्कृपाके आश्रित हो इनके समाधानका प्रयत्न किया जाता है। पहली शंका यह है—'रामावतारकी श्रीसीताजीने श्रीकृष्णावतारमें 'राधा'का रूप धारण किया या रुक्मिणीका? सीताका ही राधारूप हो तो रुक्मिणीजी कौन थीं?'

इसका उत्तर यह है कि सीता, राधा और रुक्मिणी तीनों ही वास्तवमें भगवान्‌की एक ही आह्लादिनी पराशक्तिके तीन रूप हैं। वह आदिशक्ति ही रामावतारमें 'श्रीसीता' है, श्रीकृष्णावतारके व्रजमण्डलमें 'श्रीराधा' और द्वारकामें 'श्रीरुक्मिणी' है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें कृष्ण-जन्म-खण्ड अध्याय १२६ में भगवान् श्रीकृष्णने श्रीराधाजीसे स्पष्ट कहा है कि—

यथा त्वं राधिका देवी गोलोके गोकुले तथा।

अर्थात् हे राधे! तुम समानरूपसे गोलोक और गोकुल (व्रज)-में श्रीराधा हो।

त्वं सीता मिथिलायां च त्वच्छाया द्रौपदी सती।

अर्थात् हे राधे! तुम्हीं मिथिलामें सीता हो और तुम्हारी ही छाया द्रौपदी है।

द्वारावत्यां महालक्ष्मीर्भवती रुक्मिणी सती।

अर्थात् द्वारकामें तुम्हीं महालक्ष्मीरूपा रुक्मिणी हो।

रावणेन हृता त्वं च त्वं च रामस्य कामिनी।

तुमको ही रावणने हरण किया था, तुम्हीं श्रीरामकी प्रिय कामिनी (सीता) हो।

वहीं अपने विषयमें भगवान् कहते हैं—

जात्याऽहं कृष्णरूपश्च परिपूर्णतमः स्वयम्।
गोलोके गोकुले रम्ये क्षेत्रे वृन्दावने वने॥

× × ×

अहं चतुर्भुजः शश्वद् द्वार्वत्यां रुक्मिणीपतिः॥

अर्थात् 'मैं ही परम रम्य गोलोक-गोकुल वृन्दावनमें परिपूर्णतम (राधाकान्त स्वयं मुरलीधर द्विभुजधारी) श्रीकृष्ण हूँ और मैं ही द्वारकामें चतुर्भुज (वैकुण्ठनाथ रूपसे महालक्ष्मीरूपा) रुक्मिणीका पति हूँ।'

इसके अतिरिक्त सीता, राधा और रुक्मिणी तीनोंको ही मूल-प्रकृति कहा गया है, जैसे—

१-सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता॥

(श्रीरामतापनीय उपनिषद्)

२-कृष्णात्मिका जगत्कर्त्री मूलप्रकृतिरुक्मिणी॥

(श्रीगोपालतापनीय उपनिषद्)

३-ममाधारस्वरूपा त्वं त्वयि तिष्ठामि साम्प्रतम्।
त्वं च शक्तिसमूहा च मूलप्रकृतिरीश्वरी॥

(ब्रह्मवैवर्त्त-कृष्णजन्मखण्ड ६। २१२)

इनमें पहले प्रमाणमें श्रीसीताजीको, दूसरेमें श्रीरुक्मिणीजीको और तीसरेमें श्रीराधाजीको मूल-प्रकृति कहा है। तात्पर्य यह है कि ये तीनों एक ही मूल-प्रकृतिके तीन रूप हैं। इस प्रकार इन तीनोंका स्वरूपतः ऐक्य सिद्ध होता है, परंतु इसपर यह शंका उठ सकती है कि श्रीरामावतारमें तो श्रीसीताजीका एक ही मिथिलेश-नन्दिनी रूप प्रकट होता है, पर श्रीकृष्णावतारमें वही श्रीराधा और श्रीरुक्मिणी दो भिन्न स्वरूपोंको क्यों धारण करती हैं?

इस शंकाका सम्बन्ध भगवच्चरित्रोंके रहस्य-विभागसे है, अतः इसको समझनेके लिये बहुत ही सावधानीकी आवश्यकता है। श्रीभगवान् कहते हैं—

ममाप्येवं द्विधारूपं द्विभुजं च चतुर्भुजम्।
चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे पद्मया पार्षदैः सह॥
गोलोके द्विभुजोऽहं च गोपीभिः सह राधया।
द्विविधं ये वदन्त्येवं द्वौ प्रधानौ तु तन्मते॥

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, कृष्णजन्मखण्ड अ० ४३)

अर्थात् मेरे भी दो रूप हैं—द्विभुज और चतुर्भुज। चतुर्भुजस्वरूपसे मैं वैकुण्ठमें लक्ष्मी और पार्षदोंके साथ रहता हूँ और द्विभुजरूपसे मैं राधा तथा गोपियोंके साथ

गोलोकमें रहता हूँ। इस प्रकार जो दो रूपसे (मुझे) कथन करते हैं, उनके मतमें दोनों ही प्रधान हैं।'

वैकुण्ठे कमलाकान्तो रूपभेदाच्चतुर्भुजः।
गोलोके गोकुले राधाकान्तोऽयं द्विभुजः स्वयम्॥

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, कृष्णजन्मखण्ड अ० ९)

अर्थात् 'वैकुण्ठमें यही श्रीकृष्ण रूपभेदसे चतुर्भुज कमलाकान्त हैं और गोलोकमें तथा गोकुलमें यह स्वयं द्विभुज राधाकान्त हैं।'

उपर्युक्त अवतरणोंमें भगवान्‌के चतुर्भुज और द्विभुजरूपके भेदका वर्णन करते हुए गोलोकमें द्विभुजरूप मुरलीधर नन्दनन्दनके विषयमें गोलोकस्थ व्रजविहारकी ओर ही संकेत किया गया है। भूमण्डलपर भगवान् नारायणके राम-कृष्ण दोनों ही लीलावतारोंमें श्रीरामचरित्रका अवतरण गोलोकान्तर्गत परमधाम श्रीअयोध्या या साकेतकी नित्य लीलासे होता है तथा श्रीकृष्ण-चरित्रका अवतरण गोलोकस्थ व्रजमण्डलकी नित्यलीलासे होता है।

इन नित्य-लीलाओंका सम्बन्ध युगल नित्यकिशोर श्रीसीताराम अथवा श्रीराधाकृष्णके अनन्य ऐकान्तिक भक्तोंसे ही होता है, जिनके वे सर्वस्व होते हैं। इसीलिये राम-कृष्ण दोनों ही अवतारोंमें गोलोकस्थ साकेत तथा नित्यव्रजमण्डलकी नित्यलीलाके साथ ही शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज विष्णुभगवान् तथा उनके वैकुण्ठधामका ऐश्वर्य भी प्रकट होता रहता है।

ऐसे ही श्रीकृष्णावतारमें भी है, परंतु वहाँ यह नित्यलीला तथा वैकुण्ठधामका ऐश्वर्य श्रीकृष्ण-चरित्रके दो विभिन्न भागोंमें व्यक्त होता है। जैसे—

गोलोकचर्यं यत्किञ्चित् गोकुले तत्प्रतिष्ठितम्।
वैकुण्ठविभवं यत्तद्द्वारकायां प्रकाशितम्॥

(पद्मपुराण] पातालखण्ड अ० ६९)

अर्थात् 'श्रीकृष्णावतारमें नित्य गोलोक-धामकी लीलाका अवतरण व्रजमण्डलमें हुआ है और वैकुण्ठका विभव द्वारकामें प्रकट हुआ है।' इसी कारण श्रीभगवान्‌की आह्लादिनी पराशक्तिको भी श्रीकृष्णावतारमें 'श्रीराधा' और 'श्रीरुक्मिणी' दो रूप धारण करने पड़े हैं। तात्पर्य यह है कि वही आदिशक्ति जो रामावतारमें श्रीसीता है, श्रीकृष्ण-अवतारमें व्रजमण्डलमें श्रीराधा और द्वारकामें श्रीरुक्मिणी हुई है। यहाँतक पहली शंकाका समाधान हुआ।

अब दूसरी शंका यह है कि 'प्राचीन वैष्णवोंके श्रीकृष्ण ही एकमात्र आराध्य थे, यदि कोई मूर्तिमान् आनन्दस्वरूप श्रीकृष्णको जान ले, तो वह फिर स्त्री-पुत्रादिको नहीं चाहेगा। जीवके अन्दर ऐसी बलवती आनन्द-लिप्सा क्यों है? इसी बातको समझनेके लिये गौडीय वैष्णवोंने जीवके स्वरूपकी आलोचना करते हुए राधा-स्वरूपका आविष्कार किया है।' पुनः प्रश्न यह है कि 'राधाका आविष्कार बंगाली वैष्णवोंने श्रीमद्भागवतकी रचना से पहले किया या पीछे?' अब इसका समाधान किया जाता है।

'प्राचीन वैष्णवोंके श्रीकृष्ण ही एकमात्र आराध्य थे, वे श्रीराधाजीकी आराधना नहीं करते थे' यह समझना बहुत बड़ी भूल है। यदि ऐसा होता तो वैष्णवाग्रगण्य श्रीशिवजी महाराज ऐसा क्यों कहते कि—

गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजस्समर्चयेत्।
जपेद् वा ध्यायते वाऽपि स भवेत्पातकी शिवे॥

(सम्मोहनतन्त्रान्तर्गत गोपालसहस्रनाम)

अर्थात् 'हे पार्वती! गौर-तेज अर्थात् श्रीराधाके बिना जो श्याम-तेज अर्थात् श्रीकृष्णका पूजन, जप या ध्यान करता है वह पातकी होता है।' बात असल यह है कि श्रीराधा-रहस्यकी गम्भीरता बहुत ही गहन है, इसे सहज ही नहीं समझा जा सकता। एतदर्थ 'शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य आदि जितने प्रकारके प्रेमोंसे विमलानन्दका आस्वादन किया जाता है, भगवान् श्रीकृष्ण निजानन्द परिस्फुट करनेके लिये अथवा विचित्र भावसे आस्वादन करनेके लिये उन समस्त प्रकारके प्रेमोंको प्रकट करते हैं। सम्पूर्ण प्रकारके प्रेमोंके एक ही समूहरूपका नाम ही 'राधा' है। आनन्दके घनीभूत विग्रह श्रीकृष्ण हैं और प्रेमकी घनीभूत मूर्ति श्रीराधा हैं।'

प्रेमका विषय बहुत ही गूढ़ है। शास्त्रोंमें प्रेमलक्षणा

भक्तिको दुर्लभ बतलाया है तथा कल्याण-पथके अन्य साधनोंका विधिपूर्वक वर्णन करते हुए भी प्रेमके बारेमें 'महत्कृपा' तथा 'भगवत्कृपालेश' को ही उसका साधन माना है। यथा—

'मुख्यतस्तु महत्कृपया भगवत्कृपालेशाद्वा'

(नारदभक्तिसूत्र)

अतएव जब प्रेमका रहस्य ही इतना गूढ़ है और 'प्रेमकी घनीभूत मूर्ति श्रीराधा हैं', तब श्रीराधा-तत्त्वको समझ लेना कोई सहज बात नहीं है।

अतएव प्राचीन कालके वैष्णव श्रीराधा-रहस्यको गोपनीय समझकर ही अधिकतर प्रकटरूपमें श्रीकृष्णकी आराधना करते हुए श्रीराधाकी आराधना प्रायः अन्तरंग भावसे ही किया करते थे और अवसरपर वह बात प्रकट भी हो जाती थी। श्रीराधा-रहस्य-परायण श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने भी तो सर्वसाधारणमें श्रीराधा, श्रीराधानामका प्रचार न करके—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस मन्त्रके कीर्तनका ही मुख्यरूपसे प्रचार किया। क्योंकि वे भी प्राचीन कालके वैष्णवोंके समान सर्वांगपूर्ण वैष्णव थे। यही कारण है कि निम्बार्क-सम्प्रदायके महानुभाव श्रीव्यासजीको भी कहना पड़ा कि—

श्रीशुक प्रगट कियो नहिं याते जानि सारको सार॥

अतएव गौडीय वैष्णवोंने ही राधा-स्वरूपका आविष्कार किया। प्राचीन वैष्णवोंके श्रीकृष्ण ही एकमात्र आराध्य थे तथा वे श्रीराधा-तत्त्वसे परिचित न थे, अथवा श्रीराधा उनकी आराध्या न थीं इत्यादि समझना बहुत बड़ी भूल है।

भगवान्की कृपासे समय-समयपर उच्च कोटिके महात्मा अवतीर्ण होकर जिस सिद्धान्त तथा रहस्यात्मक वस्तुको विपरीत बुद्धियुक्त मनुष्योंके आक्रमणद्वारा नष्ट होते देखते हैं, उसकी रक्षा करते हैं एवं गोपनीय रहस्य जब अधिकारियोंकी कमीके कारण लोप-सा होने लगता है और कुतार्किक लोग उसे कल्पित और शास्त्र-विरुद्ध कहकर मिटानेकी चेष्टा करते हैं तब महात्माओंद्वारा ऐसे गोपनीय रहस्योंका नवीन रूपमें आविष्कार हुआ करता है और इस प्रकार सिद्धान्तों या रहस्योंका उन महात्माओंके द्वारा आविष्कार होना कहा जाता है। श्रीराधा-रहस्यका उद्घाटन विशेषरूपसे गौडीय वैष्णवोंके ही हिस्से पड़ा है, इस प्रकार उनके द्वारा श्रीराधा-रहस्यका आविष्कार होना सत्य ही है। पर प्राचीन वैष्णव श्रीराधा-रहस्यसे परिचित न थे अथवा वे श्रीराधाकी आराधना नहीं करते थे, ऐसा समझना भूलसे खाली नहीं है। ब्रह्मवैवर्तपुराण, नारदीय पुराण, गर्गसंहिता आदि आर्षग्रन्थोंमें श्रीराधारहस्यका विस्तारपूर्वक वर्णन है। श्रीराधासहस्रनाम, श्रीराधाष्टोत्तर-शतनाम, श्रीराधाकवच आदि अनेक प्राचीन स्तोत्र प्राप्त हैं, ये सब किसी गौडीय सम्प्रदायके बनाये हुए नहीं हैं।

यहाँतक दूसरी शंकाका समाधान हुआ, तीसरी शंका पूज्यपाद श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीके सम्बन्धमें है कि उनके द्वारा रचित विनय-पत्रिका तथा श्रीकृष्ण-गीतावलीमें भी 'श्रीराधा' नाम क्यों नहीं आया? इसका उत्तर संक्षेपमें इतना ही है कि गोस्वामीजीके इष्ट श्रीसीताराम हैं और उनके सभी ग्रन्थ श्रीसीताराममय हैं। श्रीकृष्ण-चरित्रका विनय-पत्रिका आदि ग्रन्थोंमें प्रसंग आ जानेके कारण कहीं-कहीं किंचित् दिग्दर्शनमात्र हुआ है। गोस्वामीजीके ग्रन्थोंमें श्रीराधाका नाम न आनेकी शंका उठाना भी युक्त नहीं है। क्योंकि श्रीविनय-पत्रिकाके निम्नलिखित दण्डकमें 'श्रीराधा-रमण' नाम स्पष्ट आया है—

कोसलाधीश, जगदीश, जगदेकहित,
अमितगुण विपुल विस्तार लीला।
गायंति तव चरित सुपवित्र श्रुति-शेष-शुक-
शंभु-सनकादि-मुनि मननशीला॥

× × ×

भूमिभर-भार-हर, प्रकट परमातमा,
ब्रह्म नररूपधर भक्त हेतू।
वृष्णि-कुल-कुमुद-राकेश राधारमण,
कंस बंसाटवी धूमकेतू॥

यहाँतक तृतीय शंकाका समाधान हुआ। इसी शंकाके साथ-साथ,

राधा राधा रटत हैं आक ढाक औ कैर।
तुलसी या व्रजभूमिमें कहा रामसों वैर॥

—यह दोहा लिखकर यह शंका उठायी गयी है कि व्रजमें तो बहुतेरे रामानन्दीय वैष्णवोंके स्थान हैं तथा बहुतेरे श्रीराम-जानकीके मन्दिर हैं, अत: गोस्वामीजीका यह लिखना कैसे सुसंगत हो सकता है?

इसका उत्तर यह है कि उपर्युक्त दोहेमें श्रीगोस्वामीजीने व्रजवासियोंको 'श्रीराधे-राधे' की ध्वनि गुंजार करते हुए सुनकर आनन्दमग्न हो विनोदमें ही यह दोहा कहा है। इसका कदापि यह भाव नहीं कि व्रजवासियोंको उन्होंने श्रीरामका वैरी घोषित किया है। बल्कि यह केवल भावुकोंके विनोदकी वस्तु है। इसी प्रकार गोस्वामीजीका एक और यह दोहा भी बहुत प्रचलित है—

कहा कहौं छबि आजकी भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष-बान लो हाथ॥

मेरी तुच्छ सम्मति तो यह है कि इस दोहेका भाव विनोदकर है। इसकी मार्मिकतामें कोई सन्देह नहीं उठाया जा सकता। पहले तो, ***'कहा कहौं छबि आजकी, भले बने हो नाथ'*** इस आधे दोहेमें ही श्रीकृष्णकी छविका जो भाव प्रकट किया गया है, इससे श्रीकृष्णरूपमें गोस्वामीजीका स्नेह, ममत्व और आनन्द सूचित होता है। शेष आधेमें प्रभुसे अपना विनोदात्मक हठ प्रकट करते हुए गोस्वामीजी कह उठे, ***'तुलसी मस्तक तब नवै धनुष-बान लो हाथ।'*** बस, भावग्राहक प्रभुने गोस्वामीजीके विनोदात्मक हठको पूर्ण किया और हाथमें धनुष-बाण ले ही तो लिया। सारांश यह है कि भगवद्भक्तोंके वाक्योंपर आक्षेप करनेके पूर्व उनके मर्मोंको समझनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

श्रीराधामाधवयुगलकी अभिन्नता

(श्रीगौतमसिंहजी पटेल)

एक ही परब्रह्म, परमात्मा, नित्य अखण्ड रहकर भी दो स्वरूपोंमें अभिव्यक्त होकर लीलायमान है। तत्त्व और लीला एक ही स्वरूपकी दो दिशाएँ हैं। तत्त्वमें जो अव्यक्त है, वही लीलामें व्यक्त है। तत्त्वमें जो बीज है, वही लीलामें विस्तृत विशाल वृक्ष है। अन्य शब्दोंमें तत्त्व लीलारूप अक्षय महासागरका एक जलबिन्दु है। तत्त्वकी समग्रता ही लीला है। लीला तत्त्वका प्रकट स्वरूप है। वस्तुत: लीला एवं लीलामय भी परस्पर अभिन्न ही हैं। श्रीराधामाधवकी यह रसमाधुर्य-प्रधान लीला सनातन-सत्य एवं नित्य-निरन्तर है।

ब्रह्माण्डपुराणमें सर्वेश्वर श्रीमाधवने कहा है—

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधैवाराध्यते मया॥

श्रीराधाकी आत्मा सदा-सर्वदा मैं कृष्ण हूँ और मेरी आत्मा निश्चित रूपसे श्रीराधा हैं। श्रीराधा वृन्दावनकी अधीश्वरी हैं, इस कारण मैं श्रीराधाकी ही आराधना करता हूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपनी ह्लादिनी शक्तिको सदैव श्रीराधारूपमें अभिव्यक्त किये हुए हैं। श्रीराधारानी रासेश्वर कृष्णकी ही स्वरूप शक्ति हैं। जैसे श्रीराधा श्रीकृष्णसे अभिन्न हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण श्रीराधासे अभिन्न हैं। भगवान् श्रीकृष्णका परमानन्दस्वरूप ही श्रीराधाके रूपमें अभिव्यक्त है। श्रीराधामाधवका नित्य विहार अनादिकालसे नित्य-निरन्तर चलता चला आ रहा है और नि:सन्देह अनन्तकालतक चलता रहेगा। श्रीराधा श्रीकृष्णकी प्रेयसी हैं, आराधिका हैं, आराध्या हैं, उपास्या हैं, उपासिका हैं। श्रीराधा श्रीकृष्णकी शक्ति हैं और यही शक्ति शक्तिमान् श्रीकृष्णकी आत्मा है। इस प्रकार श्रीराधामाधव नित्य-निरन्तर एक और अभिन्न हैं।

श्रीराधातत्त्व

(श्रीश्यामजी 'भाईसाब')

प्रश्न—श्रीराधा कौन हैं?

उत्तर—मानवमात्रमें प्रेम-सुखकी स्वाभाविक कामना है, उसे पूर्ण करनेके लिये निराकार परमात्मा साकार कृष्णरूपमें रहते हैं, इन साकार ब्रह्म श्रीकृष्णकी प्रेयसी एवं आह्लादिनी शक्तिका नाम 'राधा' है—

राधा रासेश्वरी रासवासिनी रसिकेश्वरी।
कृष्णप्राणाधिका कृष्णप्रिया कृष्णस्वरूपिणी॥

प्रश्न—परमात्माको प्रेयसीकी क्या आवश्यकता है? क्या वे स्वयं प्रेमस्वरूप एवं आत्मतुष्ट नहीं हैं?

उत्तर—हैं, पर मानवको नित्य सुखास्वादन प्रदान करने एवं सिखानेके लिये एक आदर्श उदाहरणकी आवश्यकता पड़ती है, इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण राधाजीको प्रेमी भक्तोंके सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।

प्रश्न—श्रीराधाका अस्तित्व कितना पुराना है?

उत्तर—स्वयं श्रीकृष्ण जितना; श्रीकृष्ण परमात्मा हैं, अतः सनातन हैं, आदि-अन्तहीन हैं। श्रीराधाजीकी भी यही स्थिति, यही वास्तविकता है, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें बताया गया है कि श्रीकृष्ण निजस्वरूपसे श्रीराधाको प्रकट करते हैं।

प्रश्न—भगवान् श्रीकृष्णका जन्मोत्सव तो सारे देशमें विख्यात ही है। राधाजीका जन्मोत्सव भी प्रचलित हो रहा है, गीतामें लिखा है एवं हम देखते भी हैं कि जिसका जन्म हुआ है, उसका मरण निश्चित होता है। ऐसी स्थितिमें इन श्रीराधा-कृष्णको आदि-अन्तहीन कैसे मान सकते हैं?

उत्तर—मानवजातिको दिशा देनेके लिये अपने नित्यधाम 'गोलोक' से श्रीराधा-कृष्ण हमारी धरतीपर अवतार लेते हैं, अवतारी श्रीराधा-कृष्णके प्राकट्य दिवस 'जन्मदिन' के रूपमें मनाये जाते हैं, यह जन्म लेनेकी लीला भक्तोंको आकृष्ट करनेके लिये होती है, जन्माष्टमी पर्वपर जो उमंग-उल्लास वातावरणमें व्याप्त होता है, उसे सभी जानते-देखते हैं। यह विडम्बना है कि हम उत्सव मनानेके आवेशतक सीमित रह जाते हैं तथा मनानेके वास्तविक उद्देश्यको बिसार देते हैं। यों स्थायी लाभ उठानेवाले भी हैं, पर वे अति न्यून संख्यामें हैं। वस्तुतः लीला है भी उन्हींके लिये।

प्रश्न—क्या हम राधा बन सकते हैं?

उत्तर—राधा बनना तो नहीं होता, पर श्रीराधाजीवाला भाव—इसे राधाभाव या महाभाव कहा है—उद्दीप्त करना ही मानवमात्रका चरम लक्ष्य एवं परिपूर्ण अनन्त सुख है। राधाजी तो नहीं बन सकते, पर राधाभाव जाग्रत् करनेका प्रयत्न करना तो उचित ही है।

प्रश्न—राधाभाव-प्राप्तिके लिये राधाजी बन जाना—उनकी वेश-वाणी धारण करना क्या अनुचित है?

उत्तर—निजी जीवनमें भावुक भक्तजन राधा-वेश-वाणीका प्रयोग करें तो अनुचित नहीं कह सकते, पर प्रेमाभक्तिके विदित इतिहासमें ऐसा कोई उदाहरण नहीं दीखता। प्रेमावतार चैतन्यदेव, मीराजी एवं देवी आण्डाल आदि सभी राधाभावसे भावित तो रहे ही।

प्रश्न—यदि हम राधावेश धारण कर ही लें तो?

उत्तर—किसीको आपत्ति-विपत्ति नही होनी चाहिये, पर ध्यान देनेकी बात यह है कि स्वयं श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाजी प्रचलित अर्थोंमें नर-नारी नहीं हैं—तत्त्वतः एक ही हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् (४। ३)-में कहा है—**'त्वं स्त्री, त्वं पुमानसि, त्वं कुमार उत वा कुमारी'**—तुम ही स्त्री हो, तुम ही पुरुष हो, तुम ही कुमार हो, तुम ही कुमारी हो।

एक ही मूर्ति दो रूपोंमें विभक्त हो गयी है। इस भेदका निरूपण वेदमें किया गया है। ये स्त्री हैं, वे पुरुष हैं, किंवा वे ही स्त्री हैं और ये पुरुष हैं—इसका स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। दो रूप हैं, दोनों ही समान हैं, यही कारण है कि उनको प्राप्त हुआ जीव भी भौतिक देहके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है एवं सूक्ष्मरूपमें उनकी सन्निधिमें रहता है।

दूसरी बात—हम वेश-परिवर्तन कर सकते हैं, पर भीतर छिपे-ढके शरीरकी अंग-आकृति तो पूर्ववत् ही रहेगी। परमात्माके प्रति प्रेमकी विशेषता यही है कि इसमें भौतिक देह या अंगोंका महत्त्व नहीं है। प्रभुप्रेम अनंग है।

वे प्रेमदेव हमें भी अपने भावसे भावित कर दें।

अलौकिक प्रेमकी अमर आराधिका—श्रीराधा

(डॉ० श्रीहरवंशलालजी ओबराय)

जहाँ कृष्णवर्णके श्रीकृष्णका जन्म भाद्रपदमासकी कृष्णाष्टमीको होता है, वहीं गौरवर्णकी सर्वशुक्ला श्रीराधाजीका जन्मोत्सव भाद्रपदमासकी शुक्ल अष्टमीको मनाया जाता है। जैसे नभसे नीलिमा, चन्द्रसे चन्द्रिका, जलसे लहर तथा अग्निसे उष्णता भिन्न नहीं हो सकती है, वैसे ही भारतकी साहित्यिक एवं धार्मिक परम्पराओंमें श्रीकृष्णसे राधाको भिन्न नहीं किया जा सकता, श्रीमद्भागवत-महापुराण राधाजीके विषयमें रहस्यपूर्ण मौन धारण किये हुए है। कहा जाता है कि वहाँ वर्णित एक विशेष गोपी, जिससे कृष्णका विशेष अनुराग था, वृषभानुदुलारी श्रीराधाजी ही हैं। वैसे राधाजीके नामसे 'श्रीराधोपनिषद्', 'राधिकातापनीयोपनिषद्' भी मिलते हैं, ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भी वर्णित है—

ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिर्न भिन्ना
यथा च सृष्टिं कुरुते सनातनः।
शिवश्च सर्वा कलया जगत्सु
माया च सर्वे च तया विमोहिताः॥

रासेश्वरी श्रीराधा ब्रह्मसे अभिन्न हैं, चराचर जगत्की स्वामिनी हैं। सृष्टिमें भी श्रीराधा सत्ता, ज्ञान और आनन्दरूपसे विराज रही हैं। शोभा, कला और रमणीयता जहाँ है, वह उन्हींके श्रीविग्रहकी देन है।

आश्वलायनीय शाखा—ऋग्वेदके एक मन्त्रमें इस प्रकार वर्णित है—

राधया माधवो देवो माधवेन च
राधिका विभ्राजन्ते जनेष्विति।

अर्थात् श्रीराधाजीके द्वारा श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णजीके द्वारा श्रीराधा सुशोभित होते हैं, वे अपने भक्तोंमें इस प्रकार हैं, जैसे एक प्राण दो देह हों।

इसी प्रकार राधातत्त्वके सम्बन्धमें सामरहस्योपनिषद्में निम्न उदाहरण प्राप्त होता है—

अनाद्योऽयं पुरुष एक एवास्ति तदेवं रूपं विधाय सर्वान् रसान् समाहरति स्वयमेव नायिकारूपं विधाय समाराधनतत्परोऽभूत् तस्मात्तां राधां रसिकानन्दां वेदविदो वदन्ति तस्मादानन्दमयोऽयं लोक इति।

अर्थात् सबका आदि कारण पुरुष एक ही है, वह उसी एक रूपको दो प्रकारवाला करके सम्पूर्ण रसोंको एकत्रित करता है और स्वयं ही रमणीरूप धारणकर लीला-आराधनामें तत्पर होता है, इसीलिये श्रीराधारूपसे स्वयंको नायिका मान करके श्रीकृष्णरूपसे अपने-आपको मानता है। उस रसिकानन्दिनी श्रीराधाको वेदके रहस्य जाननेवाले ही जानते हैं और वर्णन करते हैं। इसीलिये गोलोक आनन्दमय है।

इतिहासकारोंके गम्भीर विचारके लिये अथर्ववेदीय उपनिषद्में भी श्रीराधाके दर्शन प्राप्त हैं—

येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैकः क्रीडनार्थं द्विधाऽभूत्।

अर्थात् श्रीराधा और श्रीकृष्ण—दोनों एक ही रसके समुद्र हैं, पर क्रीडाके लिये दो बने हैं।

राधा-कृष्णकी विश्वविश्रुत गाथाका सबसे अधिक व्यथापूर्ण स्वर है राधा-कृष्णका जीवनव्यापी दारुण वियोग। अश्लीलतासे अन्धी हुई आँखोंवाले आलोचकोंको स्मरण रखना चाहिये कि श्रीकृष्ण केवल

११ वर्षकी बाल्यावस्थामें ही गोकुल तजकर मथुरामें कंसका संहार करनेके लिये आ गये थे तथा उसके पश्चात् वे वहींसे द्वारका चले गये और जीवनभर व्रजमें नहीं आये।* जाते समय उन्होंने राधाको कहा था कि मैं कंसको मारकर कल ही वापस आ जाऊँगा। किंतु वह 'कल' कभी न आया। हरिऔधजीके 'प्रिय-प्रवास' में राधा पवनको दूत बनाकर सन्देश भेजती हैं—

मेरे प्यारे नव जलदसे, कंजसे नेत्र वाले,
जाके आये न मधुवनसे, औ न भेजा संदेसा।
मैं रो रो के प्रिय-विरहमें, बावली हो रही हूँ,
जा के मेरी सब दुःख-कथा, श्याम को तू सुना दे॥

श्रीचतुरसेन शास्त्रीने अपने भावनाट्य 'राधा-कृष्ण' में उस चित्रको खींचा है, जब जीवनके अन्तिम प्रहरमें कुरुक्षेत्रमें कुम्भके मेलेके समय राधा-कृष्णका थोड़े समयके लिये मिलन होता है—

'बहुत दिनोंमें मिले राधा'

'पर मिले तो, मैं तो कहती थी मिलेंगे और जरूर मिलेंगे।'

'हँस रही हो राधा?'

'हँसूँ ना, कितने दिन बाद हँसी हूँ, जानते हो कृष्ण?'

'शायद अस्सी बरस बाद।'

'क्या तुम रो रहे हो कृष्ण?'

'नहीं राधे'

'कृष्ण, बहुत दिन हुए, पर तुम्हें मैं देख सकती हूँ, देखो, तुम्हारे सिरपर मोरमुकुट है, कमरमें पीताम्बर है, हाथमें बंसी है। (सोचकर) न, बंसी नहीं है। बंसी तो मेरे पास है। याद है कृष्ण! जब तुम गोकुलसे चले थे तब मैंने छिपा ली थी।'

'याद है राधा'

'कितने बरस हुए कृष्ण?'

'अस्सी बरस'

बस, फिर इसके पश्चात् राधा और कृष्णका इहलौकिक लीलामें कभी पुनर्मिलन नहीं हुआ। पावन स्नेहकी इस विश्व-दुर्लभ गाथाका यह सबसे अधिक वेदनापूर्ण स्वर महाकवि हरिऔधके कण्ठसे गूँज उठा है—

सच्चे स्नेही अवनिजनके, देशमें श्याम जैसे,
राधा जैसी सदय हृदया, विश्व प्रेमानुरक्ता,
हे विश्वात्मा! भरतभुव, के अंक में और आवें,
ऐसी व्यापी विरह घटना, किंतु कोई न होवे॥

[प्रेषक—स्वामी श्रीसंवित्सुबोधगिरिजी]

श्रीराधामाधव-युगलछवि

बसौ मेरे नैननि मैं यह जोरी।
सुंदर स्याम कमल दल लोचन, सँग बृषभानु किसोरी॥
मोर मुकुट, मकराकृत कुण्डल, पीतांबर झकझोरी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौ, का बरनौं मति थोरी॥

कमल-दल-लोचन श्यामसुन्दरके साथ श्रीवृषभानु-नन्दिनी श्रीराधाकी जोड़ी मेरे नेत्रोंमें निवास करे। मयूरपिच्छका मुकुट, मकराकृत कुण्डल और फहराता पीताम्बर। सूरदासजी कहते हैं—हे स्वामी! आपके (इस अमित शोभापूर्ण) दर्शनका मैं थोड़ा बुद्धिवाला क्या वर्णन करूँ।

राधा मोहन सहज सनेही।
सहज रूप गुन, सहज लाड़िले, एक प्रान द्वै देही॥
सहज माधुरी अंग अंग प्रति, सहज सदाँ बन गेही।
सूर स्याम स्यामा दोउ सहज सहज प्रीति करि लेहीं॥

एक गोपी कह रही है—(सखी!) श्रीराधा-कृष्ण परस्पर स्वभावसे ही प्रेम करते हैं। उनका सौन्दर्य एवं गुण स्वाभाविक हैं, स्वभावसे वे प्यारे हैं, दोनों एक प्राण—दो देह हैं। उनके अंग-प्रत्यंगमें स्वाभाविक माधुर्य है और स्वभावतः (वे) सदासे निकुंजविहारी हैं; श्यामसुन्दर और श्रीराधिका स्वभावसे परस्पर प्रेम करते हैं।

* भगवान् श्रीकृष्ण एक बार मथुरा जानेके बाद पुनः कभी वृन्दावन नहीं लौटे, प्रायः सर्वत्र यही लोकप्रसिद्धि है तथापि ब्रह्मवैवर्त्तपुराण आदिमें उनके पुनः आगमनका वर्णन भी मिलता है। कल्पभेदसे लीलाओंमें कुछ भेद हो जाता है, अतः दोनोंको सत्य मानना चाहिये।

प्रीति-प्रतिमा श्रीराधाजी

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

महारानी रुक्मिणीजी बहुत आग्रह करके श्रीराधाको अपने साथ अपने शिविरमें ले आयीं। अच्छा हुआ कि ललिताजी साथ आ गयीं, अन्यथा इन कीर्तिकुमारीको सम्हालना सरल नहीं है, इसे महारानी शीघ्र समझ गयीं। ये तो तनिक-सा निमित्त मिलते ही शरीर-संसार सब भूलकर मूर्च्छित हो जाती हैं। इनके सुदीर्घ लोचन बरसते ही रहते हैं। मनुष्यके शरीरमें इतना भी स्वेद आ सकता है, ऐसा भी रोमांच, कम्प होता है; कल्पनासे परेकी बात थी, श्रीकृष्णकी पट्टमहिषीके लिये।

'सखि! ये श्रीद्वारिकाधीश तुम्हारे प्रेमका स्मरण करते ही विह्वल हो जाते हैं। वह प्रेम कैसा है, यह तो मैंने आज देखा। तुम्हें देखे बिना इनकी बात और इनकी स्थिति, इनकी विह्वलता समझमें आ नहीं सकती थी।' श्रीरुक्मिणीजीने समीप बैठकर करोंमें कर लेकर बड़े सम्मानसे पूछा—'यह प्रेम कैसे पाया जाता है, मुझपर भी अनुग्रह करो।'

'आपके स्वामी प्रेमके अनन्त पयोधि हैं महारानी! श्रीरुक्मिणीजी बहुत विनती कर चुकीं कि ये श्रीवृषभानुनन्दिनी उन्हें महारानी न कहकर बहन कहें, किंतु ये संकोचमयी मानती ही नहीं हैं। इनके मुखसे दूसरा सम्बोधन ही नहीं निकलता। ये 'आप' छोड़कर 'तुम' तो रूठनेपर भी नहीं बोल पाती हैं।

'आप उनकी पट्टमहिषी हैं, आपको मैं क्या बतलाऊँगी।' श्रीराधाने कहा—'वे अकारण कृपालु, अन्यथा मुझ ग्राम्या गोपकन्यामें क्या है। प्रेमकी तो गन्ध भी मुझमें नहीं। वे स्वभावसे परमोदार, जिसे अपना लेते हैं……।' इतना भी किसी प्रकार कह गयीं वे, यही बहुत था। श्रीललिताने मूर्च्छित होती अपनी सखीको सम्हाला।

'यह लोकोत्तर सौन्दर्य और यह शील, प्रेमकी यह पराकाष्ठा और यह अभिमानगन्धशून्यता! महारानी रुक्मिणी विभोर हो कुछ कहने लगी थीं, किंतु ललिताजीने उनके चरण पकड़ लिये कि वे कुछ बोलें नहीं। उनकी सखी अपनी प्रशंसा सुननेमें अत्यन्त असमर्थ है। इस समय उनकी स्तुतिमें कुछ कहा गया तो उनकी व्याकुलता उपचारसे बाहर हो जायगी।'

महारानी रुक्मिणीने फिर कुछ नहीं पूछा। पूछनेको कुछ था भी नहीं। श्रीकृष्ण प्रेमपरवश हैं, यह वे भली प्रकार जानती हैं और विशुद्ध प्रेमकी ही कोई प्रतिमा बने तो कैसी होगी, इसके दर्शन आज उन्हें प्रत्यक्ष हो गये।

सच्चे मनसे पूरे प्रेम और स्नेहसे महारानी स्वयं श्रीराधाके सत्कारमें लगी रहीं। सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि उनकी अल्प सेवा भी स्वीकार करनेमें श्रीराधा बहुत अधिक संकुचित हो रही थीं, अतः अपनी प्रबल उत्कण्ठाको दबाकर उन्हें विदा करना पड़ा उनके शिविरमें। अन्यथा महारानी तो चाहती थीं कि कम-से-कम जबतक यहाँ रहना है, वे इसी शिविरमें रहें और उनकी समस्त परिचर्या स्वयं महारानीको करनेका सौभाग्य प्राप्त हो। उन्हें सन्देह नहीं था कि श्रीराधाकी सेवा कर पावें तो उनको स्वामीका बहुत अधिक प्रेम स्वतः प्राप्त हो जायगा।

श्रीराधा विदा हो गयीं तो रात्रिमें महारानी अपने आराध्यकी सेवामें अत्यधिक उल्लास लिये पहुँचीं। वे श्रीराधाके सौन्दर्य, शील, संकोचकी चर्चा करेंगी और श्रीद्वारिकाधीश आज तन्मय होकर सुनेंगे। प्रसन्न होंगे और·····

महारानी रुक्मिणी कुछ कहना भी चाहती थीं, यही स्मरण नहीं रहा। स्वामीके चरण लिये करोंमें और व्याकुल हो गयीं। 'आपके श्रीचरणोंमें ये फफोले?

किसकी पुकारपर सन्तप्त भूमिमें नंगे पैर आप आज दौड़ पड़े थे?'

महारानी रुक्मिणी जानती हैं कि कोई आर्तप्राण पुकारे तो उनके स्वामीको अपनी सुधि नहीं रह जाती और न गरुड़ स्मरण आते हैं। आजके जैसे फफोले तो इन चरणोंमें कभी देखे नहीं उन्होंने। 'क्या हो गया आज आपको?'

'कुछ नहीं हुआ देवि! कहीं गया नहीं था।' श्रीकृष्णचन्द्र स्नेहपूर्वक कुछ हँसकर ही बोले—'यह तो तुम्हारे ही तनिक प्रमादसे हो गया, किंतु कोई चिन्ता करनेकी बात नहीं है।'

'मेरे प्रमादसे?' महारानीने अत्यन्त आश्चर्यसे पूछा—'मुझसे यह अपराध हुआ?'

'अपराध नहीं, केवल किंचित् प्रमाद।' श्रीकृष्णचन्द्रने प्रियतमा पत्नीका हाथ अपने हाथमें लिया—'तुमने श्रीवृषभानुनन्दिनीको जो दूध पीनेके लिये दिया, वह ठीक शीतल नहीं हुआ था। तुम्हारे हाथसे दिया गया, अत: उसे मेरा ही दिया समझकर वे पी गयीं।'

'मैं समझी नहीं स्वामी!' श्रीरुक्मिणीजीके नेत्र भर आये। उनके प्रमादसे उनके इन आराध्य चरणोंमें ये फफोले पड़े हैं।

'मेरे चरण उनके हृदयमें सदा स्थिर निवास करते हैं।' श्रीकृष्णचन्द्रने बात स्पष्ट की। वह उष्ण दुग्ध श्रीकीर्तिकुमारीके लिये असह्य था। उसका ताप इन चरणोंपर भी तो पड़ता।

'ओह! महारानी रुक्मिणीजी उन चरणोंपर ही मस्तक रखकर फूटकर रो पड़ीं। आज वे इस समय समझ सकीं कि 'एक प्राण दो देह' का क्या अर्थ होता है। उनके आराध्य और उनकी वृषभानुनन्दिनीमें कितना अभेद है। इन्हें वे उनके शील-संकोचका वर्णन सुनानेकी इच्छा कर रही थीं?'

श्रीराधा तो व्रजांगनाओंकी मुकुटमणि है; किंतु महारानी रुक्मिणीको तो लगा कि व्रजके शिविरमें जो भी आये हैं—स्त्री-पुरुष, युवा-वृद्ध सब विशुद्ध प्रेम-प्रतिमा हैं। त्रिभुवनमें कहीं उनकी तुलना नहीं।

'व्रजजनोंके चरण-स्मरणसे पुरुषको श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति होती है देवि!' देवर्षि नारदकी यह बात अब अन्त:करणमें गूँजती ही रहती है। व्रजजनोंके प्रेमकी स्पर्धा कहाँ, उनकी सेवा मिलना भी बड़ा सौभाग्य, किंतु वह भी कहाँ मिलती है। उस शिविरमें जानेपर सब सेवा ही करना चाहते हैं। सब संकोचकी मूर्ति हैं।

मैया यशोदाके ही चरणोंमें महारानी कुछ काल बैठ पाती हैं, किंतु वहाँ भी अपार स्नेह पाया जा सकता है, सेवाका अवसर वहाँ भी नहीं है। वे महामहिमामयी तो पुत्रीके समान अंकमें ही बैठाये रखना चाहती हैं।

माधुर्य-कल्पतरु—भगवान् श्रीकृष्ण

(श्रीकपिलदेवजी तैलंग, एम्०ए०, बी०एड०, साहित्यरत्न)

महाप्रभु वल्लभाचार्यने 'मधुराष्टक' में भगवान् श्रीकृष्णको **'मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्'** के रूपमें उपस्थित किया है। वास्तवमें भगवान् श्रीकृष्ण मधुराधिपति एवं माधुर्यशिरोमणि तो हैं; ही, इससे बढ़कर सम्पूर्ण माधुर्य और सौन्दर्यके स्रोत भी वे ही हैं। प्रकृतिके कण-कणमें जो माधुर्य परिलक्षित हो रहा है, वह उन्हींका स्वरूप है, प्रसाद है। उन्हींसे निःसृत और उन्हींसे संवाहित-प्रवाहित हो रहा है। वे सम्पूर्ण माधुर्यके सर्जक हैं, अतः मधुराधिपति ही हैं। सूर्यकी अरुणिमामें, चन्द्रमाकी शीतलतामें, उषः एवं संध्याकी लालिमामें, पुष्पोंके परागमें, शरद्की चाँदनीमें, उत्फुल्ल मल्लिका-प्रसूनोंमें—सभीमें श्यामसुन्दर ही विहँसते दृष्टिगोचर होते हैं। वे माधुर्यस्वरूप हैं। इसीलिये तो कन्हैयाको माखन-मिसरी परम प्रिय है। मिसरीकी डलीमें मधुरता मिठासके अतिरिक्त और है ही क्या? उनका सौन्दर्य जहाँ नयनानन्दवर्धक है, वहाँ उनका माधुर्य हृदयानन्दवर्धक मनोहारी है। उनके अनन्त माधुर्योंको यदि अतिपरिसीमित किया जाय तो प्रमुखतः उन्हें रूपमाधुर्य, वेणुमाधुर्य, लीलामाधुर्य और गुणमाधुर्यके रूपमें ही परिदर्शित किया जा सकता है। श्रीमद्भागवत उनके इन्हीं माधुर्योंके गुणगानके प्रति समर्पित है।

रूपमाधुर्यमें तो वे साक्षात् मन्मथमन्मथ हैं। समस्त व्रजगोपिकाएँ धेनुचारणके पश्चात् व्रजग्राममें उनके आगमनकी प्रतीक्षामें निरत रहकर उनके रूपमाधुर्यका इस प्रकार अवलोकन करती हैं—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥[1]

(श्रीमद्भा० १०। २१। ५)

भगवान्का रूपमाधुर्य किस प्रकारका है, इसका वर्णन करते हुए भागवतकार कहते हैं—

गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं
लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ।
दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुराप-
मेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य॥

(श्रीमद्भा० १०। ४४। १४)

धन्य हैं वे व्रजगोपिकाएँ, जो उन्हें अपलक निहारना चाहती हैं। उन्हें पलकोंका अन्तराल भी अप्रिय जान पड़ता है। इसलिये वे विधाताको भी मूढ कह डालती है—

जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्।

वह विधाता मूर्ख है, जिसके द्वारा पलक निर्मित किये गये हैं।

रूप-माधुर्य तो है ही अनन्य, पर उनका वेणुमाधुर्य भी अनुपमेय है। इसीलिये आचार्यचरणने **'वेणुर्मधुरो'** वर्णित किया है। रूपमाधुर्य नयनानन्दकारक है।

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनम्
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। ४)

शरदोत्फुल्लमल्लिकामयी उस परमानन्दमयी रजनीमें वेणुनादविमोहित गोपिकाएँ प्रेमाभिभूत हो अपने गृहकृत्योंका भी परित्यागकर, बिना किसी दूसरी सखीसे सम्पर्क किये

१-(वे मन-ही-मन देखने लगीं कि) श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ वृन्दावनमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके सिरपर मयूरपिच्छ है और कानोंपर कनेरके पीले-पीले पुष्प; शरीरपर सुनहला पीताम्बर और गलेमें पाँच प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंकी बनी वैजयन्ती माला है। रंगमंचपर अभिनय करते हुए श्रेष्ठ नटका-सा क्या ही सुन्दर वेष है। बाँसुरीके छिद्रोंको वे अपने अधरामृतसे भर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे ग्वालबाल उनकी लोकपावन कीर्तिका गान कर रहे हैं। इस प्रकार वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ वह वृन्दावनधाम उनके चरणचिह्नोंसे और भी रमणीय बन गया है।

समस्त भय, संकोच, लज्जा एवं मर्यादाको तिलांजलि देती हुईं एकाएक रासरमणभूमिमें समुपस्थित हो गयीं, यह वेणुमाधुर्यका ही तो माहात्म्य था, जो चर-अचरपर प्रभावशाली था, मनोमुग्धकारी था। किंतु वे तो ग्रामीण अपढ़ गोपिकाएँ थीं। वेणुमाधुर्यका प्रभाव तो बड़े-बड़े ज्ञानी परमहंस यहाँतक कि स्वयं भगवान् शिवको भी विमोहित कर देता है।

एक गोपीका भोजन ही नहीं पक पा रहा था। कृष्णकी वंशी बजते ही सूखी लकड़ियाँ गीली हो जाती थीं। जिससे आग बुझने लगती थी। वह भगवान्से कहती है—

मुरहर रंधनसमये मा कुरु मुरलीरवं मधुरम्।
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतनुताम्॥

(सूक्तिसुधाकर १३। २२७)

हे मुरारे! मेरे भोजन बनाते समय दयाकर मुरली न बजाया करो, कारण कि मेरा नीरस ईंधन सरस—गीला बन जाता है, जिससे चूल्हेकी आग ठंडी पड़ने लगती है। यह है वेणुमाधुर्य जो चर-अचरको भी प्रभावित करता है। भागवतका वेणुगीत तो रूपमाधुर्य और वेणुमाधुर्यका ही गीत है।

लीलामाधुर्य तो भक्तजनानन्दवर्धनहेतु ही प्रकट हुआ है। वे लीलापुरुषोत्तम हैं। आनन्ददानहेतु ही उनका इस धराधामपर प्राकट्य हुआ है। भगवान्का अवतरण दो कारणोंसे होता है। लोकरक्षण एवं लोकरंजन। रामावतारका मुख्य उद्देश्य लोकरक्षण ही था। किंतु श्रीकृष्णावतार लोकरक्षण एवं लोकरंजन दोनों ही निमित्तोंसे हुआ तथापि उनका लोकरंजनरूप इतना प्रबल हो उठा कि लोकरक्षणका कार्य गौण बन गया। वे लोकरंजकके रूपमें हमारे सामने आये, जबकि कंस, चाणूर, मुष्टिक, पूतना, प्रलम्बासुर आदिके वधका कार्य लोकरक्षणका ही कार्य था। यह लीलामाधुर्य प्रकट करनेके निमित्त हुआ।

लोकमाधुर्यद्वारा अपने भक्तजनोंके आनन्दवर्धनहेतु वे अपने ईश्वरत्वको भुला देते हैं और अहीरकी छोहरियोंके कहनेपर छछियाभर छाछ पे नाच उठते हैं। प्रेमियोंके आनन्दमें ही उनका आनन्द समाया हुआ है, मानो ईश्वर अपने ईश्वरत्वको, भगवान् अपनी भगवत्ताको, महतो महीयान् अपनी महत्ताको, प्रभु अपनी प्रभुताको भी भूल जाते हैं—यही तो लीलामाधुर्य है। एक सखी दूसरी सखीसे कहती है।

शृणु सखि कौतुकमेकं नन्दनिकेताङ्गणे मया दृष्टम्।
गोधूलिधूसराङ्गो नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः॥

(सूक्तिसुधाकर ५। ४)

हे सखि! वेदान्तमें जिसे ब्रह्म कहा गया है, उसी ब्रह्मको मैंने धूलसना नन्दबाबाके आँगनमें ठुमुक-ठुमुककर नाचते हुए देखा है। ऐसा भगवान् तो अन्यत्र दुर्लभ है। यही लीलाचिन्तन तो गोपियोंका प्राणाधार है, जीवन है। वे बड़भागिनी गोपियाँ लाडलेकी ललित लीलामें लीन रहकर अपनी दिनचर्या बिताती थीं, श्रीशुकदेवजी महाराज कहते हैं—

एवं व्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीला नु गायतीः।
रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३५। २६)

भ्रमरगीतमें श्रीकृष्णको उलाहना देती हुई गोपिकाएँ कहती हैं—

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्-
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इव विहंगा भिक्षुचर्यां चरन्ति॥

(श्रीमद्भा० १०। ४७। १८)

अरे! तेरे कन्हैयाके लीलारूपी कर्णरसायनका एक कणका भी आस्वादन जिसने कर लिया, वह कहींका नहीं रह जाता है। वह तो अकिंचन बना घूमता है और पक्षियोंकी तरह जगह-जगह घूम-फिर भीख माँगनेको विवश हो जाता है। हमारी भी दशा कृष्णने ऐसी ही कर डाली है, फिर भी कृष्णकी कथा-लीला इतनी माधुर्यपूर्ण है कि हमलोग छोड़ भी नहीं पा रहे हैं। हमारी गति तो साँप-छछूँदर-

जैसी हो रही है।

ऐसो लगो रसको चसको मन नाही रह्यो अपने बसको।

इस प्रकार लीलामाधुर्य जितना अधिक श्रीकृष्णके माध्यमसे प्रकट हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ एवं दुराप ही है।

भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ रूप एवं लीलामाधुर्य-निधान हैं, वहाँ गुणके भी अजस्र अक्षय स्रोत हैं। असंख्य, अपरिमेय एवं असीम गुणमाधुर्यसे पूर्ण पूर्ण-पुरुषोत्तम हैं। समस्त पृथिवीके धूलिकणोंको तो गिना जा सकता है, पर अनन्त भगवान्के अनन्त गुणोंकी गणना अशक्य एवं असम्भव है।

भागवतकार कहते हैं—

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ता-
ननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः।
रजांसि भूमेर्गणयेत् कथंचित्
कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः॥

(श्रीमद्भा० ११।४।२)

महाभागा रुक्मिणी तो श्रीकृष्णके गुण-माधुर्यपर ही विमोहित हो गयी थीं। गुणमुग्धावस्थितिमें ही वे इन्हें पति स्वीकार कर चुकी थीं। भागवतकार कहते हैं—

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः।
गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम्॥

(श्रीमद्भा० १०।५२।२३)

इसीलिये तो वे ब्राह्मणद्वारा संदेश भिजवाते हुए कहलवाती हैं कि—

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।

(श्रीमद्भा० १०।५२।३७)

हे त्रिभुवनकमनीय श्यामसुन्दर! तुम्हारे गुण मेरे कर्णविवरोंद्वारा मेरे अन्तःप्रविष्ट हो गये हैं, वे मेरे अंग-अंगके तापको दूरकर जन्म-जन्मान्तरकी विरहज्वालाको परिश्रान्त कर रहे हैं। मेरा चित्त तो समस्त लज्जाका परित्यागकर आपके प्रति समर्पित हो चुका है। अतः मुझे स्वीकार कीजिये।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अपने रूप, वेणु, गुण एवं लीलामाधुर्यसे मानवमन ही नहीं, पशु-पक्षी यहाँतक कि चर-अचरको आनन्दके महार्णवमें स्नापित किया है और आज भी कर रहे हैं।

श्रीराधा-कृष्णका अलौकिक विहार

करत हरि नृत्य नव रंग राधा संग लेत नव गति भेद चरचरी ताल के।
परसपर दरस रस मत्त भए ततथेई थेई गति लेत संगीत सुरसाल के॥ १॥
फरहरत बहिबर थरहरत उर हार भरहरत भ्रमर बर बिमल बनमाल के।
खसित सित कुसुम सिर हँसत कुंतल मनो लसत कल झलमलत स्वेद कन भाल के॥ २॥
अंग अंगन लटक मटक भृंगन भौंह पटक पट ताल कोमल चरन चाल के।
चमक चल कुंडलन दमक दसनावली बिबिध बिद्युत भाव लोचन बिसाल के॥ ३॥
बजत अनुसार द्रिमद्रिम मिरदँग निनाद झमक झंकार कटि किंकिनी झाल के।
तरल ताटंक तड़ित नील नव जलद में यों बिराजत प्रिया पास गोपाल के॥ ४॥
जुबति जन जूथ अगनित बदन चंद्रमा चंद भयो मंद उद्योत तिहिं काल के।
मुदित अनुराग बस राग रागिनी तान गान गति गर्ब रंभादि सुर बालके॥ ५॥
गगनचर सघन रस मगन बरषत फूल वार डारत रतन जतन भर थाल के।
एक रसना 'गदाधर' न बरनत बनै चरित अदभुत कुँवर गिरिधरन लाल के॥ ६॥

रसराज श्रीकृष्णकी रसानुभूति

(डॉ० श्रीअवधबिहारीलालजी कपूर, एम०ए०, डी०फिल०)

श्रुति कहती है कि परतत्त्व रसस्वरूप है—**रसो वै सः**। रसपूर्ण है, अनन्त है। वह पूर्ण होते हुए भी नित्य-नवीन, नित्य-वर्धनशील है। श्रीकृष्ण ही परतत्त्व हैं। उनसे बड़ा और कोई तत्त्व नहीं है। स्वयं उनका ही कथन है—

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।

(गीता ७। ७)

श्रीकृष्ण स्वयं रसिक भी हैं। वे आस्वादक भी हैं; और आस्वाद्य भी। रसका भावसे घना सम्बन्ध है, पर बिना रसके भावका अस्तित्व नहीं, न भावके बिना रसका आस्वादन ही सम्भव है। अतः पूर्ण आस्वादनके लिये पूर्ण भाव चाहिये। भावकी अधिष्ठात्री हैं— श्रीराधा। इसलिये रसिकशेखर श्रीकृष्णका राधाके अपने आस्वादनके प्रति असीम लोभ है। यह उनकी तीन वांछाओंके रूपमें व्यक्त होता है। ये तीन वांछाएँ इस प्रकार हैं—१-श्रीराधाके प्रेमकी महिमा कैसी है; यह जाननेकी वांछा। २-उस प्रेमके द्वारा श्रीराधा मेरे जिस अद्भुत माधुर्यका आस्वादन करती हैं, उसकी मधुरिमा कैसी है; यह जाननेकी वांछा। ३-मेरी मधुरिमाका अनुभवकर राधाको जो सुख होता है, वह कैसा है; यह जाननेकी वांछा*। हम यहाँ श्रीरूप, सनातनादि रसिकाचार्योंका अनुसरणकर परतत्त्व आत्माराम, पूर्णकाम श्रीकृष्णकी इन तीन वांछाओंके रहस्यका उद्घाटन करनेकी चेष्टा करेंगे।

(१) श्रीराधाके प्रेमकी महिमा जाननेकी वांछाका रहस्य—श्रीकृष्णका श्रीराधाके प्रति जो अनुराग है, उससे श्रीराधाका श्रीकृष्णके प्रति अनुराग कहीं अधिक है। केवल राधा ही क्यों व्रजगोपीमात्रका श्रीकृष्णके प्रति जैसा प्रबल त्यागमय अनुराग है, वैसा श्रीकृष्णका गोपियोंके प्रति नहीं है। गोपियाँ लोकधर्म, कुलधर्म, यहाँतक कि पातिव्रत्य-धर्मतकका त्यागकर मात्र श्रीकृष्णका भजन करती हैं। वे श्रीकृष्णको भगवान् जानकर उनसे किसी प्रकारका सुख या मुक्ति आदि प्राप्त करनेके लोभसे विचारपूर्वक ऐसा नहीं करतीं। उन्हें यशोदाके प्राणाधिक प्रिय पुत्र और अपने प्राणश्रेष्ठ (प्रियतम) जानकर कोटि-कोटि प्राणोंको उनके ऊपर न्योछावर करते हुए केवल उन्हें सुखी करनेके उद्देश्यसे ऐसा करती हैं—

सर्वत्याग करि करे कृष्णेर भजन।
कृष्ण सुख हेतु करे प्रेम-सेवन॥

(चै०च० १। ४। १४५)

कृष्ण-सुखकी प्रबल लालसा ही उन्हें वेद-धर्म, लोक-धर्मादिका तृणवत् त्याग करनेका बल देती है। निज-सुख-वासनाकी तो गोपियोंमें गन्ध भी नहीं है। कृष्ण-सुख-वासनासे उनका हृदय इतना भरपूर है कि अन्य किसी वासनाके लिये उसमें स्थान ही नहीं है। श्रीकृष्णके पास गोपिकाओंके इस प्रेमके बदलेमें उन्हें देनेको कुछ नहीं है। वे उनके चिर ऋणी हैं। वे अपने **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते'** इस वचनके अनुसार अपने भक्तोंका उसी प्रकार भजन करनेको बाध्य हैं; जिस प्रकार भक्त उनका भजन करते हैं। इस प्रकार दास्य, सख्य वात्सल्यादिभाववाले भक्तोंका भी वे उसी प्रकार भजन करते हैं, पर व्रजकी गोपियोंके भजनके सम्बन्धमें उनकी यह प्रतिज्ञा भंग हो जाती है। वे **'न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजाम्'** (भागवत १०। ३२। २२) कहकर उनके निकट अपनी हार ही स्वीकार करते हैं; क्योंकि गोपियोंकी तरह स्वजन-परिजनादिका सम्यक् रूपसे त्यागकर अनन्यभावसे उनका भजन करनेकी योग्यता उनमें नहीं है। वे बहुवल्लभ हैं। उनकी अनन्त प्रेयसियाँ हैं। सभीको वे उनके भजनके अनुरूप भजनेको बाध्य हैं। किसी एक गोपीके लिये किसी अन्य गोपी या अपने स्वजनोंको त्यागनेकी

* चैतन्यचरितामृतमें महाप्रभुके अवतारके भी ये ही तीन हेतु बतलाकर वहाँ एक श्लोकमें यह सब इस प्रकार निर्दिष्ट है—

श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवास्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो या मदीयः।
सौख्यं चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेत्ति लोभात्तद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दुः॥ (१। ६)

अतः यहाँ इन्हीं कारणोंसे अवतरित महाप्रभुको श्रीराधाकृष्णका संयुक्तावतार बतलाया गया है।

बात तो दूर, अपने अनन्त कोटि भक्तोंमेंसे किसी एकको भी त्यागना उनके लिये सम्भव नहीं है।

गोपियोंके प्रेमका ऋण प्रेमसे न चुका सकनेके कारण यदि वे कुछ और देकर उसे चुका देना चाहें तो यह भी सम्भव नहीं। देनेको तो त्रिभुवनमें ऐसी कौन-सी वस्तु है; जिसे उन्हें देकर वे अपने-आपको कृतार्थ न मानें। पर कोई ऐसी वस्तु हो, जिसकी उन्हें कामना हो तभी न उनके देनेकी बात बनती है। उन्हें यदि कामना है तो केवल एक वस्तुकी, वह है श्रीकृष्णका अपना सुख, उनकी प्रेम-सेवा। पर इसे देकर उनके प्रति उनका ऋण घटनेकी जगह और बढ़ता ही जाता है। जब गोपियोंके प्रेमके आगे श्रीकृष्णके प्रेमका पलड़ा इतना हलका है तो गोपियोंकी मुकुटमणि मादनाख्य-महाभाववती श्रीराधाके प्रेमके आगे वह कितना हलका होगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

श्रीराधाके प्रेमकी, उनके मादनाख्य-महाभावकी और भी कई असाधारण विशेषताएँ हैं। राधाका प्रेम सर्वभावोद्गमोल्लासी है। इसमें एक ही समय सब प्रकारके भावोंके उद्गमकी और सब प्रकारके विलासोंके अनुभवकी अचिन्त्य क्षमता है—

सर्वभावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः।
राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव यः सदा॥

(उज्ज्वलनीलमणि, स्थायिभावप्र० २०२)

इसमें पूर्वरागादि चार प्रकारके विरह और संक्षिप्त सम्पन्नादि चार प्रकारके मिलनका स्थायिरूपसे अद्भुत समावेश है। विरह-वेदना मिलनसुखको पुष्ट करती है। मिलनका सुख विरह-वेदनाको तीव्र करता है। विरह और मिलनका विरामहीन दोलन प्राण-शक्तिका आधानकर इसे नित्य वर्धनशील बनाता है। यह विभु, अनन्त, असीम होते हुए भी निरन्तर वर्धनशील है—**'विभुरपि कलयन् सदाभिवृद्धिम्।'** यह निरुपाधि, निर्दोष, परम शुद्ध और निरवद्य होते हुए भी वाम या वक्रभावयुक्त है। और सुनिर्मल होते हुए भी यह व्यवहारमें सर्पके समान कुटिल है। इसलिये इसमें एक विलक्षण चमत्कार एवं आकर्षण है। यह सर्वापेक्षा गुरुतम है। श्रीकृष्ण, जो जगद्गुरु हैं, यह उनका भी गुरु है—

'राधिकार प्रेम गुरु आमि शिष्य नट।'

(चै०च० १।४।१०८)

पर गुरुतम होते हुए भी यह गौरव-वर्जित है। दैन्यनामक संचारीभावकी तरंग इसमें सदा लहराती रहती है। इसलिये प्रेम-स्वरूपिणी, प्रेमकी अधिष्ठात्री देवी होते हुए भी श्रीराधा समझती हैं कि उनमें शुद्ध प्रेम तो दूर, कपट-प्रेमतककी गन्ध भी नहीं है—

दूरे शुद्ध प्रेमबन्ध, कपट प्रेमेर गन्ध।
से ह मोर नाहि कृष्ण पाय॥

(चै०च० २।२।४०)

संनिपातका रोगी जितना जल पीता है, उतनी ही उसकी पिपासा और बढ़ती है। इसी प्रकार राधाका प्रेम जितना बढ़ता है, उतना ही अधिक वे उसके अभावके अनुभवकी वेदनासे पीड़ित होती हैं। उनके प्रेमकी बढ़ती हुई तृष्णा उसे उत्तरोत्तर आस्वाद्य बनाती है। राधाके प्रेममें रसके निधान, पूर्णानन्दमय श्रीकृष्णको भी उन्मत्त करनेकी अपूर्व, अचिन्त्य शक्ति है। कविराजगोस्वामीकी भाषामें—

कृष्ण कहे आमि हइ रसेर निधान॥
पूर्णानन्दमय आमि चिन्मय पूर्ण तत्त्व।
राधिकार प्रेमे आमा कराय उन्मत्त॥
ना जानि राधार प्रेमे आछे कत बल।
जे बले आमारे करे सर्वदा विह्वल॥

(चै०च० १।४।१०५—१०७)

श्रीराधाके प्रेमकी आस्वादन-चमत्कारिता और कृष्णोन्मादकारिताका रसिकशेखर श्रीकृष्णको अनुमानमात्र है, अनुभव नहीं। इसलिये उनके मनमें स्वयं अनुभव करके यह जाननेका लोभ जागना स्वाभाविक है कि राधाके प्रेमकी महिमा कैसी है।

(२) श्रीराधाद्वारा आस्वाद्य श्रीकृष्ण-माधुर्यके आस्वादन करनेकी वांछाका रहस्य— श्रीकृष्णकी मधुरिमा परम अद्भुत है। उनका रस-माधुर्य, लीला-माधुर्य, वेणु-माधुर्य और प्रेम-माधुर्य—सभी परम अद्भुत, अनन्त और प्रतिपलवर्धनशील है। उनकी मधुरिमामें ऐसी अचिन्त्य

शक्ति है कि नेत्रोंसे दर्शन करना तो दूर, कानोंसे श्रवण करनेसे ही मन चंचल हो उठता है और दर्शन करनेकी तीव्र उत्कण्ठा हृदयमें जाग पड़ती है; और तो और स्वयं श्रीकृष्णके मनमें भी उसके आस्वादनकी लालसा रहती

है। वे मणिस्तम्भमें अपने प्रतिबिम्बको देख स्थिर खड़े रह गये। सोचने लगे 'कौन है यह व्यक्ति, जिसकी ऐसी रूपमाधुरी है? ऐसा रूप तो मैंने कभी देखा नहीं। निकटसे उसे देखनेके लिये जैसे ही अपना मस्तक नीचा किया, प्रतिबिम्बका भी मस्तक नीचा हो गया, तब अपनी भ्रान्ति जान वे स्मित-मुखसे कहने लगे—'अरे! यह तो मैं ही हूँ। मेरा ही रूप मुझे इस प्रकार मुग्ध कर रहा है। कितना अच्छा होता यदि मैं इसे अपने वक्षमें धारणकर इसका पूर्णरूपसे भोग कर सकता।* (राधिका उसी रूपके माधुर्यमें निमग्न हो स्वयंको भूले रहती हैं।)

प्रश्न हो सकता है—अनन्त वस्तुका पूर्ण आस्वादन क्या सम्भव है? यदि सम्भव है तो उसे अनन्त कैसे कहा जा सकता है? अनन्तको क्या पूर्ण आस्वादनकी परिधिमें बाँधा जा सकता है? यदि उसका पूर्ण आस्वादन हो भी सके तो क्या वह नित्य हो सकता है? पूर्ण आस्वादनके पश्चात् उसके आस्वादनकी प्रबल और अनन्त तृष्णा ही कहाँ रह जाती है? जिस वस्तुका पूर्ण आस्वादन हो जाता है, उसके पुनः आस्वादनमें क्या वितृष्णा नहीं आती?

शंका ठीक है; पर राधाके प्रेममें इसमें अन्तर्हित विरोधोंका सामंजस्य करनेकी अचिन्त्य शक्ति है। रस-स्वरूप श्रीकृष्णका माधुर्य भाव-स्वरूपिणी राधाके सान्निध्यमें ही पूर्णरूपसे प्रकाशित होता है। रसकी प्रकाश-भूमि भाव है। रसराजके माधुर्यकी प्रकाश-भूमि राधाका महाभाव है। राधाका प्रेम नित्यवर्धनशील है। इसलिये श्रीकृष्णकी मधुरिमा भी नित्यवर्धनशील है और नित्य नवनवायमान है। कृष्णनिष्ठ मधुरिमा और राधानिष्ठ उत्कण्ठा दोनोंमें एक-दूसरेके सान्निध्यमें नित्य बढ़ते रहनेकी अनन्त स्पर्धा है। दोनोंमेंसे किसीकी सीमा नहीं। दोनों अनन्त हैं। इसलिये राधाद्वारा श्रीकृष्णकी पूर्ण मधुरिमाका पूर्ण आस्वादन सम्भव है—'**आनन्त्यैनैव आनन्त्यस्य ग्रहणात्**'। इससे न तो श्रीकृष्णकी मधुरिमाका अनन्तत्व खण्डित होता है, न राधाकी कृष्णमयी लालसाका अन्त होता है। श्रीकृष्णका लोभ केवल अपनी मधुरिमाके आस्वादनका नहीं होता, लोभ होता है उस समग्र रूपमें उसके आस्वादनका, जिसमें श्रीराधा उसका आस्वादन करती हैं।

श्रीकृष्ण पूर्णतम आनन्दघन-विग्रह हैं। उस आनन्दके अंशसे ही विश्व आनन्दित है—'**एतस्यैव आनन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।**' वे जगत्‌के सुखके एकमात्र हेतु हैं। पर श्रीकृष्णके भी सुखकी हेतु हैं श्रीराधिका। श्रीकृष्णके रूपका दर्शनकर सभी जीव अपने नेत्रोंको सफल करते हैं; जबकि श्रीकृष्ण श्रीराधाके रूपको देख अपने नेत्रोंको सफल करते हैं। श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि विश्वको विमोहित करती है। श्रीराधाका कलकण्ठ श्रीकृष्णको विमोहित करता है। श्रीकृष्णकी अंगगन्ध जीवमात्रकी घ्राणेन्द्रियको उल्लसित करती है। श्रीराधाकी अंगगन्ध श्रीकृष्णको उल्लसित करती है। श्रीकृष्णकी सर्वेन्द्रियोंको आनन्दोल्लसित करनेवाले महद्‌गुणोंकी एकमात्र आकर हैं श्रीराधा—

कृष्णेन्द्रियाह्लादगणैरुदारा ।
श्रीराधिका राजति राधिकेव॥

(गोविन्दलीलामृत)

* विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्। (श्रीमद्भा० ३।२।१२)

श्रीकृष्ण राधाको प्राप्तकर जिस सुखका अनुभव करते हैं, वह उनके स्वरूपानन्दसे भी अधिक है। पर श्रीराधाको प्राप्तकर श्रीकृष्णको जो सुख होता है, उससे भी श्रीकृष्णको प्राप्तकर श्रीराधाको अधिक सुख होता है। रसशास्त्रके आदि आचार्य भरतमुनिका कथन है कि प्रगाढ़ मिलनमें रसके आश्रय और विषयका सुख समान होता है। यह नियम प्राकृतरसके आनन्द और विषयके सम्बन्धमें तो ठीक है, पर व्रजके अप्राकृत रसके अप्राकृत आश्रय-विषयके सम्बन्धमें नहीं। राधा-कृष्णके मिलनमें राधाका सुख श्रीकृष्णके सुखसे कहीं अधिक है। पर राधाके सुखकी श्रीकृष्णके सुखसे अधिक होनेकी बात तो पीछे रहे, प्रश्न यह है कि राधाको जब अपने सुखकी चाह ही नहीं तो उन्हें सुख होता कैसे है? पर वह तो होता है। राधाके प्रेमकी यह एक विचित्रता है कि इसमें बिना चाहे ही सुख होता है। कारणके बिना ही कार्य होता है—'**निजकामपूर्णता एव सुखोत्पत्तौ हेतुः।**' किंतु, '**तद्विनैव श्रीराधायाः श्रीकृष्णानुभवसुखं जायते इत्येव तत्र विचित्रता। कारणं विना कार्योत्पत्तेः**' (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती)।

श्रीकृष्णको जब सुख होता है, तो गोपियोंको सुख आप ही होता है। बिना चाहे होता है, क्योंकि श्रीकृष्णका सुख ही तो गोपियोंका सुख है। उनका सुख श्रीकृष्णके सुखसे तादात्म्यप्राप्त है। गोपियोंका सुख श्रीकृष्णके सुखमें पर्यवसित है, श्रीकृष्णका सुख गोपियोंके सुखमें पर्यवसित है। इस प्रेमानन्दसे श्रीकृष्ण-सेवानन्द श्रेष्ठ है। श्रीकृष्णकी सेवामें जब ऐसे आनन्दका अनुभव होता है, जिसमें अश्रु-कम्पादि सात्त्विक भाव उदय होकर श्रीकृष्ण-सेवामें बाधा डालते हैं, तब गोपियाँ चरम-पुरुषार्थरूपी उस आनन्दपर भी क्रोध करती हैं—

निज प्रेमानन्दे कृष्ण-सेवानन्द बाधे।
से आनन्देर प्रति भक्तेर हय महाक्रोधे॥

(चै० च० १।४।१७१)

श्रीरूपगोस्वामीके शब्दोंमें वे पद्मनयना गोपियाँ तब अश्रुवर्षणकारी उस प्रेमानन्दकी उच्चस्वरसे निन्दा करती हैं—

गोविन्दप्रेक्षणाक्षेपिवाष्पपूर्णाश्रुवर्षिणम्।
उच्चैरनिन्ददानन्दमरविन्दविलोचना॥

इसके विपरीत यदि श्रीकृष्ण-सेवाके लिये दुःखके महासमुद्रमें भी निमज्जित होना पड़े तो श्रीकृष्णके प्रति अपने असीम अनुरागके कारण वे उस दुःखका भी सुखके महासमुद्रके रूपमें अनुभव करती हैं। श्रीराधाकी इस प्रकारकी महाद्भुत सुख-सम्पत्तिका लोभ श्रीकृष्णकी इस तीसरी वांछाको जन्म देता है। उनका हृदय यह जाननेकी तीव्र लालसासे उद्वेलित रहता है कि अपने सेवोन्मुख प्राण-चक्षुओंसे श्रीराधा मेरे अनुभवजनित जिस सुखका आस्वादन करती हैं, वह कैसा है।

ये तीनों वांछाएँ वास्तवमें रसब्रह्मके रसका पूर्णतम आस्वादन करनेकी मौलिक वांछाके तीन रूप हैं। रसब्रह्मका पूर्णतम आस्वादन पूर्णतम भावके बिना सम्भव नहीं है। पूर्णतम आस्वादनके लिये रसराजका महाभावसे भावित होना, विषयावलम्बनका आश्रयालम्बन होना अर्थात् श्रीकृष्णका राधा होना या उनका राधासे भावात्मक ऐक्य स्थापित करना आवश्यक है। जबतक ऐसा नहीं होता, रसरूप ब्रह्मका, अपनी इस तृष्णाका, तीन वांछनाओंके रूपमें उद्घोषणा करते रहना स्वाभाविक है।

रसराज श्रीकृष्णकी रसके पूर्णतम आस्वादनकी साध पूरी होती है प्रेम-विलासकी चरम अवस्था प्रेम-विलास-विवर्तमें, जिसमें श्रीरूपगोस्वामीके शब्दोंमें, शृंगाररसरूपी निपुण शिल्पी राधा-कृष्णके चित्तरूपी दो लाक्षा-खण्डोंको द्रवीभूतकर एक कर देता है और प्रचुर नवानुरागरूप हिंगुलद्वारा अनुरंजितकर उन्हें एक अनिर्वचनीय अथाह आनन्दाम्बुधिमें निमज्जित कर देता है—

राधाया भवतश्च चित्तजतुनी स्वेदैर्विलाप्य क्रमाद्
युञ्जन्नद्रिनिकुञ्जकुञ्जरपते! निर्धूतभेदभ्रमम्।
चित्राय स्वयमम्ब रञ्जयदिह ब्रह्माण्डहर्म्योदरे
भूयोभिर्नवरागहिङ्गुलभरैः शृङ्गारकारुः कृती॥

(उज्ज्वलनीलमणि, स्थायिभाव प्र० १४३)

भगवान् श्रीकृष्ण षोडश-कलापूर्ण

(श्रीसुतीक्ष्णमुनिजी)

श्रीकृष्ण भगवान्के परिपूर्णतम अवतार थे। तभी श्रीमद्भागवत (१।३।२८)-में '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**' कहा गया है। श्रीकृष्णमें भगवान्के सभी गुण प्रकट थे, जो उनके चरित्रोंसे स्पष्ट होते हैं—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। संशय करनेवाले विनाशको प्राप्त होते हैं। वे सुखी नहीं हो सकते—'**संशयात्मा विनश्यति।**' '**न सुखं संशयात्मनः।**'

(गीता)

'कृष्ण' शब्दका अर्थ—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं परब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥

भगवान् श्रीकृष्ण सर्वकलापूर्ण थे, यह उनकी समय-समयकी लीलाओंसे स्पष्ट हो जाता है; किंतु चन्द्रवंशमें अवतरित होनेसे वे षोडश-कलापूर्ण कहे जाते हैं। उन विशिष्ट सोलह कलाओंके नाम इस प्रकार हैं—

(१) प्रथमकला 'अन्न' है, जिससे जीवमात्रकी उत्पत्ति होती है—'**अन्नाद्भवन्ति भूतानि**' (गीता ३।१४)। अन्नसे ही तृप्ति होती है, तभी छान्दोग्योपनिषद्में अन्नको ब्रह्म कहा गया है। '**अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्**'—अन्नको ब्रह्म जानकर अन्नकी कभी निन्दा न करे। अन्नकी निन्दा करनेवाला ब्रह्मकी निन्दा करनेवालेके तुल्य पातकी—नरकगामी है। उद्भिज्जयोनि केवल अन्नके विकाससे उत्पन्न हुई, यह एक कलाका विकास है। इनमें प्राणमय कोष न होनेसे ये चल नहीं सकते, इसलिये इनकी 'जड' संज्ञा हुई।

(२) द्वितीय कलासे स्वेदजोंकी सृष्टि हुई। यह दूसरी कला अन्न और प्राणोंके मिलनेसे हुई, इसीसे स्वेदजोंमें चलने-फिरनेकी शक्ति आयी।

(३) तृतीय कला अन्नमय, प्राणमय और मनोमयकी है; इससे अण्डजोंका जन्म हुआ और इनमें प्रेम आया।

(४) चतुर्थ कला अन्न, प्राण, मन और विज्ञानकी है; इससे जरायुजोंकी सृष्टि हुई।

(५) पंचम कला अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनन्दकी है। पंचकोष मनुष्यमात्रमें साधारणतया होते हैं। इन सबका विस्तृत वर्णन अनेक ग्रन्थोंमें आता है।

(६) षष्ठ कला विभूति (ऐश्वर्य)-की है, जो मनुष्योंके कर्मानुसार न्यूनाधिक होती रहती है, किंतु भगवान्में वह एकरस परिपूर्ण है, तभी भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके प्रति गीता (१०।४१)-में अपनी विभूतियाँ गिनाते हुए कहते हैं कि 'सम्पूर्ण विभूतियाँ मेरे ही तेजके अंशसे उत्पन्न हुई हैं, इस प्रकार तू जान।'

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

(७) सप्तम कला धर्मकी है, जिसके रक्षार्थ सदैव भगवान् सन्नद्ध रहते हैं। भगवान्की रची सृष्टि भी धर्मके आधारपर स्थित है। जहाँ धर्ममें कुछ भी विषमता (असमानता) आयी अथवा धर्मनाशक मण्डल उदय हुआ, वहीं भगवान् किसी-न-किसी रूपसे या स्वयं प्रकट हो धर्मकी रक्षा करते हैं। भगवान्ने अपना यही विरुद गीता (४।८)-में सुनाया है—

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(८) अष्टम कला अर्थ है। सर्वप्रकारके अर्थ भगवान्की कृपासे सुलभ होते हैं। भगवान् ही परम अर्थ हैं।

(९) नवम कला 'ज्ञान' है—सब प्रकारका परिपूर्ण ज्ञान भगवान्में है। वे ज्ञानस्वरूप हैं। उनके कृपा-कटाक्षके बिना ज्ञानका प्रकाश होना असम्भव है।

(१०) दशम कला तेज (प्रकाश) है। संसारमें जितना प्रकाश (ज्योति) है, वह सब भगवान्की सत्तासे है, सारा विश्व प्रकाश्य है, भगवान् प्रकाशक हैं।

(११) एकादश कला 'यश' है। भगवान् यशके अथाह सागर हैं। संसारका कोई भी व्यक्ति उनके यशकी थाह नहीं पा सका, वेद भी 'नेति-नेति' कहकर चुप हो गये। शेषजी सहस्र मुख, दो सहस्र जिह्वाओंसे भगवान्के नित्य नवीन सुयशोंका गान करते रहनेपर भी उनकी थाह

नहीं पाते।

(१२) द्वादश कला 'योग' की है, भगवान् श्रीकृष्ण समस्त योगियोंके ईश्वर—योगेश्वर हैं।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो..............।

(१३) त्रयोदश कला 'सर्वज्ञता' है। भगवान् ही पूर्ण सर्वज्ञ हैं। शेष सबमें थोड़ी बहुत अल्पज्ञताका भास अवश्य झलकता है, ब्रह्माका बछड़े तथा ग्वालोंका छिपाना, शंकरका मोहिनीरूप देखकर मोहित होना, नारदका विश्वमोहिनीके संग विवाह करनेके लिये भगवान्का रूप माँगना, इन्द्रका व्रजपर कोप करना आदि-आदि सर्वज्ञताके अभावका ही आभास नहीं तो और क्या है? इसलिये भगवान् ही सर्वज्ञ हैं।

(१४) चतुर्दश कला 'इच्छा' है। भगवान्की इच्छाशक्तिको सृष्टिका कारण माना गया है। इस इच्छाशक्तिके चार रूप (भेद) हैं—इच्छाशक्ति, योग-माया, महामाया और माया। भगवान् श्रीकृष्णने इन चारोंसे काम लिया है। श्रीकृष्णकी कोई भी इच्छा व्यर्थ नहीं गयी।

(१५) पंचदश कला 'सर्वतन्त्रस्वतन्त्रता' है।

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई॥

(१६) षोडश कला 'सर्वसिद्धि' है। संसारके सभी कार्य भगवान्की कृपासे ही सिद्ध होते हैं।

उपर्युक्त षोडश कलाएँ पूर्णरूपसे श्रीकृष्णमें विद्यमान हैं—जो श्रीमद्भागवत, गीता, महाभारत, हरिवंश आदिके पढ़नेसे स्पष्ट है। भगवान्के नाम, गुण, लीलाएँ अनन्त हैं। जहाँ बड़े-बड़े लोग थाह नहीं पा सके, वहाँ अल्पबुद्धि जनोंकी क्या गिनती है!

जेहिं मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥

'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'

(डॉ० श्रीविश्वम्भरदयालजी अवस्थी, एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत), पी-एच० डी०, डी० लिट्)

धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य और विभूति—इन षडैश्वर्योंसे युक्त परम शक्तिका नाम भगवान् है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

(विष्णुपुराण ६।५।७४)

सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलय तथा जीवोंके जन्म-मरण और विद्या-अविद्याकी ज्ञेयतामें ही भगवान्की भगवत्ता निहित है—

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥

(विष्णुपुराण ६।५।७८)

सामान्य पुरुष क्लेश, कर्म, विपाक और आशयसे पीड़ित रहते हैं, परंतु ईश्वर इन सबसे अबाधित है—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

(योगदर्शन १।२४)

इसी परम शक्तिको, जो चराचर जगत्के उद्भव, पालन और नाशमें हेतु है, ज्ञानी ब्रह्म, योगी परमात्मा और भक्त भगवान् कहते हैं—

जन्माद्यस्य यतः॥ (वेदान्तदर्शन १।१।२)

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(श्रीमद्भा० १।२।११)

शास्त्रोंमें कहा गया है कि ईश्वर अनन्त शक्तियोंसे परिपूर्ण है। उसके समान कोई नहीं है, फिर उससे बड़ा कोई कैसे हो सकता है—

न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।

(श्वेताश्वतरोप० ६।८)

केनोपनिषद् (३।१०)-में कहा गया है कि चराचर जगत्में दृष्टिगोचर होनेवाले सभी शक्तिमान् उसी परमशक्तिसे शक्ति प्राप्त करते हैं। यदि उसकी इच्छा न हो तो अग्नि और वायु आदिकी दाहकता आदि शक्तियाँ अपना कार्य नहीं कर सकतीं।

श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें भगवान्के अवतारोंका उल्लेख करनेके पश्चात् कहा गया है कि पूर्वोक्त अवतारोंके अतिरिक्त विष्णुके और भी अगणित अवतार उसी प्रकार होते हैं, जैसे सरोवरमें सहस्रों छोटे-छोटे स्रोत

निकला करते हैं। ऋषि, मनु, मनुपुत्र, देवता और प्रजापतिगण—ये सब भगवान् विष्णुके ही अंश हैं। ये सब अवतार तो भगवान्‌के अंश और कलावतार हैं, किंतु श्रीकृष्ण तो सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त साक्षात् भगवान् ही हैं—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥
ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा॥
एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥

(भाग० १।३।२६—२८)

उपर्युक्त श्लोकोंकी व्याख्या करते हुए आचार्य श्रीधरस्वामीने लिखा है कि सभी अवतारोंमें सर्वज्ञता, सर्वशक्तिसम्पन्नता विद्यमान रहती है, किंतु इन अवतारोंमें अभिव्यक्त ज्ञान, क्रिया आदि दिव्य गुणोंके क्रमसे ही उन्हें कलावतार या पूर्णावतारकी संज्ञा दी जाती है—**पुंसः परमेश्वरस्य केचिदंशाः केचित्कला विभूतयश्च। तत्र मत्स्यादीनामवतारत्वेन सर्वज्ञत्वसर्वशक्तिमत्त्वेऽपि यथोपयोगमेव ज्ञानक्रिया-शक्त्याविष्करणम्। कुमारनारदादिष्वाधिकारिकेषु यथोपयोगमंशकलावेशः""कृष्णस्तु भगवान् साक्षान् नारायण एव आविष्कृतसर्वशक्तित्वात्।**

(श्रीमद्भागवत १।३।२८ की श्रीधरी व्याख्या)

सात्वततन्त्रके अनुसार पूर्णशक्तिके सोलहवें भागको कला, चतुर्थ भागको अंश और शतांश (सौवें भाग)-को विभूति कहा जाता है—

अंशस्तुरीयो भागः स्यात्कला तु षोडशी मता।
शतभागो विभूतिश्च वर्ण्यते कविभिः पृथक्॥

(तृतीय पटल ९)

वेदमें ईश्वरको षोडशकलात्मक कहा गया है—

प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि
ज्योतींषि सचते च षोडशी।

(यजुर्वेद ८।३६)

प्रश्नोपनिषद्‌में पुरुषकी सोलह कलाएँ इस प्रकार परिगणित हुई हैं—१. प्राण, २. श्रद्धा, ३. व्योम, ४. वायु, ५. तेज, ६. जल, ७. पृथ्वी, ८. इन्द्रियाँ, ९. मन, १०. अन्न, ११. वीर्य, १२. तप, १३. मन्त्र, १४. कर्म, १५. लोक और १६. नाम।

इन कलाओंपर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि ये मनुष्य-शरीरकी पूर्णताको लेकर प्रतिपादित हुई हैं। ईश्वरके पूर्णावतारका द्योतन करनेवाली सोलह कलाओंका भागवतोक्त मन्त्रादि पाँच कलाओंसे कोई ऐक्य नहीं है। श्रीमद्भागवतके पूर्वोक्त श्लोकोंकी व्याख्या करते हुए श्रीरूपगोस्वामीने 'लघु-भागवतामृतम्' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि भगवान् श्रीकृष्ण सोलह कलाओंसे युक्त पूर्ण अवतार थे और वे सोलह कलाएँ इस प्रकार हैं—

१. श्री, २. भू, ३. कीर्ति, ४. इला, ५. लीला, ६. कान्ति, ७. विद्या, ८. विमला, ९. उत्कर्षिणी, १०. ज्ञाना, ११. क्रिया, १२. योगा, १३. प्रह्वी, १४. सत्या, १५. ईशाना और १६. अनुग्रहा।

श्रीर्भूः कीर्तिरिला लीला कान्तिर्विद्येति सप्तकम्।
विमलाद्या नवेत्येता मुख्याः षोडश शक्तयः॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा तथैव च।
प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहेति नव स्मृताः॥

(पूर्वखण्ड, श्रीकृष्णामृतखण्ड ६९ तथा उसकी टीका)

भगवान् श्रीकृष्ण द्वापर और कलियुगकी संधिमें प्रकट हुए थे। उस समय भूमण्डल अधर्म और उत्पीड़नसे आक्रान्त था। ऐसे संक्रमणकालमें अवतार धारणकर योगिशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने अपने अदम्य शौर्य, अनन्त ज्ञानराशि एवं परमोच्च चरित्रबलसे 'अच्युत' उपाधिको धारणकर वैदिक धर्मको अचल प्रतिष्ठा प्रदान की। उनकी गीता उपनिषदोंके सार-भागको वहन करती हुई अनन्तकालके लिये मनीषियोंके मनन और चिन्तनका विषय बन गयी है। भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य और अप्राकृत लीलाओंसे ज्ञान, श्री, यश आदि षडैश्वर्योंपर उनका पूर्ण स्वामित्व सिद्ध होता है। अतएव श्रीकृष्णका अवतार सोलह कलाओंसे युक्त पूर्णावतार था, यह बात शास्त्रसम्मत सिद्ध हो जाती है—

नारायणस्य शुद्धस्य श्रीकृष्णस्य महात्मनः।
यतः कृष्णावतारेण भगभेदाः पृथक् पृथक्॥
संदर्शिताः पृथक्कार्यं तस्मात्सम्पूर्ण उच्यते।

(सात्वततन्त्र, तृतीय पटल २७)

वही श्याम वही श्यामा—वही काला वही काली

(श्रीश्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

आयान घोष था कालीका उपासक।

वह करता था कालीकी उपासना।

उसकी पत्नी राधा थी कृष्णकी उपासिका।

वह करती थी कृष्णकी उपासना।

आयानकी उपासना चलती खुले-खुले।

राधाकी उपासना चलती छिपे-छिपे, चोरी-चोरी।

कुटिलोंकी कहीं कमी तो है नहीं।

राधाकी ननँद थी कुटिला।

एक दिन उसने आयानके पास जाकर जड़ ही तो दी राधाकी शिकायत 'भैया, तुम्हें पता नहीं। भाभी छिपे-छिपे कृष्णकी पूजा करती रहती हैं।'

'सच?'

'हाँ भैया। न मानो तो अभी चलकर देख लो। पर चलना जरा हौले-हौले। पदचाप कहीं भाभी सुन न ले।'

× × ×

आयान घोष जा पहुँचते हैं राधाके पूजा-कक्षमें।

पर यह क्या?

यहाँ तो सारा दृश्य ही बदला हुआ है!

दाशरथि राय गा रहे हैं;

कुंज कानने काली त्यजे वांशी वनमाली,
करे असि धरे श्रीराधाकान्त!
श्याम-श्यामा-भेद केन
करे जीव भ्रान्त?

वंशीवाला श्याम गायब।

उसकी वंशी भी गायब।

उसकी जगह विराजमान है—काली।

कुंज-काननमें काली प्रतिष्ठित है।

राधाकान्तके हाथमें वंशीके बदले है तलवार! खड्ग।

पीताम्बरका भी पता नहीं।

एक अद्भुत रूप अपरूप, नवीन सौन्दर्य उभर रहा है।

दिगम्बर विवसना काली कराली—लाल-लाल जीभ काढ़े, विकट दन्तोंवाली काली, जिसके मस्तकपर है चन्द्रमा और मुखपर है भीषण अट्टहास;

पीताम्बर परिहरि हरि हलेन दिगम्बरी
मरि-मरि हेरि कि रूपेर अन्त!
कि वा काल शशि लोलजिह्वा एलोकेशी
भाले शशि अट्टहासि विकट दन्त!!

धूप-दीप, गन्ध-तुलसीके स्थानपर है रक्त जवा। कहीं पार है चिन्तामणि श्यामके अनन्त भावोंका?

ये गोविन्द पदद्वये सुगन्धि तुलसी
दिये सुरनर साधे सारा दिनान्त।
दियेसे चरणे राँगा जवा रंगिनीराय
करे सेवा के पावे श्याम चिन्तामणि भावेर अन्त॥

कैसा मूरख है जीव, जो श्याम और श्यामामें भेद करता है?

× × ×

नटवर तो ठहरा बहुरूपिया। जब देखो, स्वांग बदल लेता है। रामप्रसाद गाते हैं;

कालवरण व्रजेर जीवन व्रजांगनार मन उदासी।
हलेन वनमाली कृष्ण-काली वांशी त्यजे करे असि॥

कृष्णको काली बनते क्या देर लगती है!

व्रजांगनाएँ हैरान अभी-अभी तो मुरली थी इसके हाथमें। वनमालीके हाथमें कालीकी यह करवाल कहाँसे आ गयी?

× × ×

उधर तुलसीदास चुनौती फेंक रहे हैं—

कहा कहौं छबि आजुकी भले बने हौ नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष-बाण लेउ हाथ॥

और यह लीजिये—वंशी लापता, धनुष-बाण हाजिर। कृष्ण राम बन जाते हैं!

× × ×

रामप्रसादको काली कलकत्तेवाली वृन्दावनमें कृष्णरूपमें दीख पड़ती है। जो श्याम सो श्यामा! जो काली सो काला—

काली हलि ना रासबिहारी नटवर वेशो वृन्दावने।
निज तनु आधा गुणवती राधा आपनि पुरुष आपनि नारी॥
छिल विसवन कटि एवे पीतघटि एलो चूल चूड़ा वंशीधारी॥

वही पुरुष, वही प्रकृति। वही कृष्ण, वही राधा।

एक ही रूपके दो स्वरूप।

इधर दिगम्बर। उधर पीताम्बर।

माता यशोदाके आगे मनमोहन कृष्ण।

करालवदना कालीका वहाँ कहीं पता ही नहीं।

यशोदा नाचत गो वले नीलमणि, से वेश लुकाले कोथा करालवदनी।

× × ×

कमलाकान्तकी अनुभूति भी तो रामप्रसादसे मिलती-जुलती है। उनकी काली है 'परम-कारण'। मनको समझाते हैं—देख, तू चक्करमें मत आ जाना। यह महिषासुरमर्दिनी काली ही कभी-कभी मर्द बन जाती है और मनमोहन बनकर गोपियोंका मन मोहने लगती है।

जान ना कि मन, परम कारण, काली केवल मेये नय!
मेघे रवरण करिये धारण, कखन कखन पुरुष हय॥
हये एलोकेशी, करे लये असि, दनुज तनये करे समय।
कभू व्रजपुरे आसि, बाजाइये वांशी, व्रजांगनार मन हरियेलय॥

× × ×

रामलालदास दत्त तो साफ कहते हैं; **काला आमार मा काली!**

अभेद भाव रे मन, काला आर काली।
मोहन मुरलीधारी, चतुर्भुजा मुण्डमाली॥
काली कि काला वलिले काले छोंय ना कोन काले।
कालेर कर्त्री काली सेइ काला आमार मा काली॥

कोई अन्तर नहीं 'काला' और 'काली' में।
वही है-मोहन मुरलीधारी।
वही है-चतुर्भुजा मुण्डमाली।
वही है-काला, वही है काली।
कालका निर्माण उसीके हाथों हुआ है।
काल उसके नामसे डुगडुग काँपता है।
'काला' ही है हमारी माँ 'काली'।

× × ×

काली और कृष्ण, शिव और राम—रामप्रसादकी दृष्टिमें एक हैं। वे सभीमें माँ कालीके दर्शन करते हैं। शिंगा हो या वंशी, धनुष हो या खड्ग—सब माँके शस्त्र—

ऐ ये काली कृष्ण शिव राम—सकल आमार एलोकेशी।
शिवरूपे धर शिंगा, कृष्णरूपे बाजाओ वांशी।
ओ मा रामरूपे धर धनु, कालीरूपे करे असि॥

× × ×

गोविन्द चौधरी यह मानकर चलते हैं कि माँ है ओंकार-रूपिणी। जब चाहती है तब अपना रूप बदल लेती हैं—

आज येमन गोविन्देर काछे दुर्गारूपे एसेछे।
काल देखवे राधारूपे श्यामेर वामे वसेछे॥

आज तू गोविन्दके निकट दुर्गारूपमें पधारी है।
कल तू श्यामके वामांगमें राधारूपमें आ बैठेगी।
जब तेरी जो मर्जी हो जाय!

× × ×

रामदुलाल नन्दीको अपने मनसे बड़ी शिकायत है—बड़ा पाजी हो गया है यह मन। अद्वैतमें द्वैतकी कल्पना करता है—

एक ब्रह्म द्विधा भेवे मन आमार हयेछे पाँजि।

अरे, पागल भेदमें क्यों अटका है? माँ ही तो है सर्वत्र—

मगे वले 'फरातारा', 'गड्' वले फिरंगी यारा मा।
'खोदा' वले डाके तोमाय मोगल पाठान सैयद काजी॥
शाक्ते वले तुमि 'शक्ति', 'शिव' तुमि शैवेर उक्ति मा।
सौरी वले 'सूर्य' तुमि, वैरागी कय 'राधिकाजी'॥

फादर और गॉड, खुदा और अल्लाह, शक्ति और शिव, सूर्य और राधा—सब तेरे ही नाम तो हैं माँ।

दीवान रघुनाथ भी इसी स्वरमें गाते हैं—

तुमि राधा तुमि कृष्ण महामाया महाविष्णु।
तुमि गो माँ रामरूपिणी तुमि असिते॥

दुर्गाके १०८ नामोंमें एक नाम है—**पुरुषाकृतिः**। क्यों?

इसीलिये कि एक ही शक्तिके अनेक रूप हैं—

एकैव शक्तिः परमेश्वरस्य भिन्ना चतुर्धा व्यवहारकाले।
पुरुषेषु विष्णुः भोगे भवानी समरे च दुर्गा प्रलये च काली॥

महाशक्तिका ही यह सारा विलास है। वही विष्णु है, वही भवानी, वही दुर्गा और वही काली है।

जगज्जननीके ही ये सारे स्वरूप हैं। केवल पर्दा उठाकर देखनेकी जरूरत है।

आरतीमें हम दुर्गाकी प्रशस्ति करते ही हैं न?

राम कृष्ण तू सीता व्रजरानी राधा।
तूँ वांछा-कल्पद्रुम, हारिणि सब बाधा॥
जगजननी जय जय॥

साधकसे इसीलिए कहा गया है—

काली वल कृष्ण वल किछू तेइ क्षति नाइ।
चित्त परिष्कार रेखे एकमने डाका चाइ॥

काली कहो चाहे कृष्ण! उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। जरूरत एक ही बातकी है। चित्त शुद्ध रखो और पुकारो एकाग्र होकर।

भला, माँ कभी दूर रह सकती है—हृदयसे पुकारनेपर?

श्रीराधाकृष्णकी तात्त्विक अभिन्नता

(श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)

भगवान् श्रीकृष्ण परात्पर पूर्ण ब्रह्म हैं और श्रीराधा उनकी आत्ममाया किंवा अपरा प्रकृति, अथ च उनकी अन्तरंग आह्लादिनी शक्ति हैं। दोनोंकी तात्त्विक अभिन्नता चिरन्तन है, शाश्वत है। दोनोंका यह एकीभाव ऐसा नहीं है, जैसा कि दो असमानधर्मा व्यक्तित्वोंका अथवा वस्तुओंका परस्पर साहचर्यके रूपमें दृष्टिगोचर होता है। ऐसे साहचर्यमें चिरस्थायिता नहीं हो सकती है।

राधाकृष्णकी अभिन्नता तो शब्द और अर्थकी, सूर्य और उसके तेजकी, अग्नि और दाहकताकी अभिन्नताकी भाँति प्रत्यक्षतया सिद्ध है। श्रीगर्गसंहितामें बताया गया है।

ये राधिकायां मयि केशवे मनाग्
भेदं न पश्यन्ति हि दुग्धशौक्ल्यवत्।
त एव मे ब्रह्मपदं प्रयान्ति तद्
अहैतुकस्फूर्जितभक्तिलक्षणाः॥

(गर्गसंहिता, वृन्दा० १२। ३२)

दूध और उसकी सफेद कान्तिकी तरह जो लोग मुझ कृष्णमें और श्रीराधिकाजीमें भेद नहीं देखते हैं, अर्थात् एक ही समझते हैं, वे ही ज्ञानीजन ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं अथ च वे ही हेतुरहित प्रगाढ़भक्तिके अधिकारी हैं।

वस्तुतः यह दो नित्यसंश्लिष्ट तत्त्वोंका, पारस्परिक पृथक्ताका आभास देनेवाला अभेद है। नित्य एक है, परंतु नित्य दो भी दिखायी पड़ते हैं। नित्य अभिन्न हैं, किंतु भिन्न भी प्रतीत होते हैं। इन दोनोंका पृथक्करण नितान्त असम्भव ही है; क्योंकि दोनोंमेंसे किसी एकका भी त्याग कर देनेपर, फिर दूसरेका भी अस्तित्व तिरोहित होने लगता है। इस तथ्यके स्वारस्यको अभिव्यक्त करनेवाली किसी रसिकहृदय भक्तकी यह सूक्ति सुतरां मननीय है—

'राधा के रकार बिनु आधा कृष्ण रहत है…'

भक्तका कहना है कि 'राधाकृष्ण' युगलमेंसे राधाको हटा देनेकी तो सोचिये ही मत, क्योंकि जब, राधाके नाममेंसे केवल 'रकार' मात्रके हटा देनेसे कृष्ण आधे रह जाते हैं, तब पूरी राधाके हटा देनेपर तो कृष्णका अस्तित्व ही विचारणीय हो सकता है।

अनादिसिद्ध एवं अपरिहार्य अभेद

वास्तवमें प्रकृति और पुरुषके रूपमें राधाकृष्णका अभेद, जिसे एकात्मभाव कहना अधिक युक्तियुक्त होगा, अनादिकालसे चला आ रहा है। देवता स्तुति करते समय उनका प्रकृति और पुरुषके रूपमें ही अभिवादन करते हैं—

'त्वं ब्रह्म चेयं प्रकृतिस्तटस्था…'

(गर्गसंहिता, गोलोक० १६। २५)

हे भगवन्! आप साक्षात् ब्रह्म हैं और राधाजी आपकी तटस्थ प्रकृति हैं; इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भी कहा गया है—

योगेनात्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः।
पुमांश्च दक्षिणार्द्धाङ्गो वामाङ्गः प्रकृतिः स्मृतः॥

(ब्रह्मवैवर्त० प्रकृतिखण्ड १२। ९)

परमात्मा श्रीकृष्ण सृष्टि रचनाके समय दो रूपवाले हो गये। दाहिना अंग पुरुष और बायाँ अंग प्रकृतिरूपा स्त्री (श्रीराधा) हुआ। इन्हीं सब विवरणोंके आधारपर सुप्रसिद्ध प्राचीन भाष्यकार पं० दुर्गादत्तने 'गोपालसहस्त्रनाम' स्तोत्रके संस्कृत भाष्यमें श्रीराधाकृष्णका प्रकृति और पुरुषके रूपमें ही वर्णन किया है। यथा—

'राधयति साधयति… उत्पादनरूपेण सृष्टि-कार्याणीति राधा प्रकृतिः… कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यं परब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।'

उत्पादन आदि सृष्टिके कार्योंको करनेवाली होनेसे श्रीराधा प्रकृतिरूपा हैं। 'कृष्' शब्द सत्ताका वाचक है और 'ण' शब्द आनन्दवाचक है। इन दोनोंकी एकता सत्-आनन्दरूप परब्रह्म 'कृष्ण' शब्दका अर्थ है। ऊपर उद्धृत प्रकरण वेद एवं उपनिषदोंके द्वारा प्रतिपादित होनेसे परम प्रमाणभूत हैं।

अन्तमें, तात्त्विक दृष्टिसे सर्वथा अभिन्न होते हुए भी भावुक भक्तोंके मुखोल्लासके लिये अत्यन्त मधुर दो स्वरूपोंमें भी प्रकट हो जानेवाले भगवान् श्रीराधाकृष्णके मंगलमय युगल चरणारविन्दोंमें प्रणाम करते हुए लेखनीको विराम देते हैं।

श्रीराधा और श्रीकृष्ण

(स्वामी श्रीदेवमित्रानन्दजी गिरि)

श्रीराधा और श्रीकृष्णके सम्बन्ध अनिर्वचनीय हैं। उन्हें शब्द देना कठिन है। इशारामात्र हो सकता है। उन्हें एक भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उनकी पृथक् प्रतीति है। वे पृथक् भी नहीं हैं; क्योंकि राधासे भिन्न कृष्णकी या कृष्णसे भिन्न राधाकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। यहाँ यदि कृष्ण चकोर हैं तो राधा चकोरी हैं। या फिर कृष्ण यदि चाँद हैं तो राधा चाँदनी हैं। अब क्या कहेंगे चाँद और चाँदनीको। है कोई अलगाव या सम्भव है अलगाव करना! एक हैं दोनों। परन्तु यदि बिम्बरूपमें चन्द्रको देखें तो चाँदनीकी पृथक् प्रतीति भी हो सकती है। यद्यपि चाँदसे चाँदनी अलग नहीं है। श्रीराधाके साथ सम्बन्धोंपर श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

यथा क्षीरे च धावल्यं दाहिका च हुताशने।
भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्वयि मम स्थितिः॥
धावल्यदुग्धयोरैक्यं दाहिकानलयोर्यथा।
भूगन्धजलशैत्यानां नास्ति भेदस्तथावयोः॥
मया विना त्वं निर्जीवा चादृश्योऽहं त्वया विना।

राधिके, हम दोनों अभिन्न हैं। तुम्हारे बिना मेरी कोई सत्ता नहीं है। हम दोनों ऐसे हैं जैसे दूधमें सफेदी। अलग करना सम्भव नहीं। अग्निमें दाहिका शक्ति जैसे विद्यमान है। पृथ्वीमें जैसे गन्ध या पानीमें शीतलता, ऐसे ही हम और तुम पृथक् प्रतीत होकर भी एक-दूसरेमें समाये हुए, एक-दूसरेको सम्हाले हुए, अखण्ड और अविभाज्य।

प्रिया-प्रियतमके रूपमें श्रीराधा और श्रीकृष्णकी रस-मधुर रहस्यपूर्ण लीलाओंका आस्वादन अनिर्वचनीय है। परंतु बुद्धि और तर्कसे बात न बनेगी। इसके लिये हृदयका द्वार खोलना है। जहाँ केवल दर्शन है, आस्वादन है—

भगवत रसिक रसिक की बातें,
रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना।
अरबरात निसि दिन मिलिबे को,
मिलेइ रहत मानो कबहुँ मिले ना॥

अनन्त मिलनके क्षणोंमें भी अनन्त वियोगका ताप और अनन्त वियोगमें भी अनन्त मिलनके आनन्दका अनुभव, इस अप्राकृत भावदशामें प्राकृत बुद्धिका प्रवेश कैसे सम्भव है!

भगवान् श्रीराधाकृष्णकी 'एक प्राण दो देह' की झाँकी पार्वती और शिवकी 'अर्धनारीश्वर'-जैसी नहीं है। भगवती पार्वती और भगवान् शंकरकी झाँकीमें तो आधे-आधेका विभाजन है। इनके पीछे कोई सूत्र है, सिद्धान्त है, मान्यता है। यह विभाजन गणितकी तरह है, आधा-आधा, थोड़ा भी कम-ज्यादा नहीं। कुछ ऐसा, जैसे कि पत्नी अर्धाङ्गिनी कही जाती है। आधी पत्नी, आधा पति मिलकर पूरे होते हैं। यह बात अलग है कि पाश्चात्त्य जीवनशैलीमें पत्नीको 'बेटर हाफ' कहा जाता है। पत्नी है तो पुरुषका आधा भाग परंतु पुरुषसे श्रेष्ठ है, बेटर है। ऐसी धारणाके पीछे कदाचित् पश्चिमका भोगप्रधान चिन्तन ही कारण है। जो भी हो, पार्वती और शिवके स्वरूपमें प्रकट अर्धनारीश्वरकी धारणाके पीछे सहजता नहीं, उन्मुक्तता नहीं, कसाव दीखता है। परंतु एक प्राण दो देहमें तो कृष्ण पूरा ही मिट जाना चाहते हैं, समा जाना चाहते हैं राधामें और राधा भी कृष्णमें समाकर एक हो जाना चाहती हैं। 'दो देह' दीखते तो हैं अलग। परंतु मिट जानेको व्याकुल। यहाँ आधा-आधाका नहीं, समग्रका ही विलीनीकरण है।

एक बार प्रियतम श्यामसुन्दरके विरहोन्मादमें निकुंजमें अचेत पड़ी राधाका समाचार कृष्णको मिलता है तो उन्हें लगता है, यह कोई दूसरी राधा होगी। उनकी राधा तो उनके पास है। वह तो उनका ही स्वरूप है। उसके बिना तो कृष्णका अस्तित्व ही नहीं। फिर यह दूसरी राधा कहाँसे आ गयी? कहीं कोई षडयन्त्र तो नहीं और तब कृष्ण अपनी राधाको सम्हालने लगते हैं। ऐसे ही आशंकित कृष्णने राधाको एक बार कहा था—

प्रेयांस्तेऽहं त्वमपि च मम प्रेयसीति प्रवादः
त्वं मे प्राणा अहमपि तवास्मीति हन्त प्रलापः।
त्वं मे ते स्यामहमिति च यत् तच्च नो साधु राधे
व्याहारे नो नहि समुचितो युष्मदस्मत्प्रयोगः॥

किशोरी, क्यों बोलते हैं लोग ऐसा कि मैं तुम्हारा प्रियतम हूँ और तू मेरी प्रेयसी है। मुझसे तुझे क्यों अलग करना चाहते हैं। तू मेरा प्राण है और मैं तेरा प्राण हूँ

या फिर कोई कहता है, तू मेरी है और मैं तेरा हूँ— ये बातें मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगतीं। हमारे-तुम्हारे बीच युष्मद्-अस्मद्का प्रयोग सर्वथा अनुचित है। यहाँ मैं और तूका भेद है ही नहीं। जो मैं हूँ, वही तू है। जो तू है, वही मैं हूँ। भेदकी कल्पना भी अपराध है। राधा-कृष्णके बीच यदि कोई भेदबुद्धि करता है तो उसे नारकीय गति मिलती है।

एक भाव-दृश्यका आस्वादन करते हैं। श्रीराधा और श्रीकृष्णके बीच कभी संवाद न हो सका। संवादके लिये कोई दूसरा तो चाहिये। दोके बिना संवाद कैसे हो? ऐसा नहीं कि राधाने संवाद न करना चाहा हो। परन्तु उनके बीच संवाद सम्भव ही नहीं। कृष्ण वापस लौटनेका आश्वासन देकर अक्रूरके साथ मथुरा चले गये। धोखा दिया कृष्णने। विश्वासघात किया भोले-भाले व्रजवासियोंके साथ, और कभी न लौटे वापस। बड़ी प्रतीक्षा की वृन्दावनने। फड़फड़ाती हैं राधा, तड़पती हैं प्रियतम श्यामसुन्दरके लिये और जब विरहवेदना सीमा-पार हो जाती है तो प्रियतम श्यामसुन्दरको राधा पत्र लिखती हैं। यद्यपि यह पत्र कभी भी न लिखा जा सका। यहाँ भी वही अड़चन। कौन किसे लिखे? दो हों तब न लिखें एक-दूसरेको; फिर भी लिखा। लिखा पत्र राधाने। ऐसा पत्र लिखा कि आजतक इस दुनियाँमें ऐसा पत्र कभी किसीने न लिखा होगा। श्रीराधा कहती हैं ललितासखीसे—

सखी! यह कैसी भूल भई।
लिखन लगी पाती पिय कौं, लै दाड़िम कलम नई॥
भूली निज सरूप हौं तुरतहिं बनि घनस्याम गई।
बिरह विकल बोली पुकार 'हा राधे' कितै गई॥
पाती लिखी प्रिये! हृदयेश्वरि! सुमधुर सु-रसमयी।
प्रानाधिके! बेगि आवौ तुम नेह कलह विजयी॥
ठाढ़े भए आय मनमोहन मो तन दृष्टि दयी।
हँसे ठठाय चेतना जागी, हौं सरमाय गई॥

मुझे क्या होता जा रहा है सखि। जब पास थे श्यामसुन्दर तो उन्हें प्यार करना तो दूर; नजर भरकर देख भी न पायी। कभी आते भी प्रियतम तो मैं मानिनी हो जाती। मनाते, मैं न मानती, और तब उदास वापस लौट जाते प्रियतम, और पीछे, मैं तड़पती, रोती रहती, और अब, जब चले गये श्यामसुन्दर तो क्षमा-याचनाका मन होता है। सामने तो बोल नहीं सकती। सोचा, लिखकर अपनी मनोदशा व्यक्त कर दूँ। परंतु लिख भी तो नहीं पाती। बहुत चाह कर लिखना चाहा, और लिखा भी। परंतु देखा न, क्या लिख गया। ललिताने वह पत्र लिया और पढ़ना चाहा। परंतु न पढ़ सकीं। हा किशोरी, किशोरी! ललिता मूर्च्छित हो गयीं। पत्र क्या था, केवल दाग थे काजलमिश्रित कपोलोंपर बहे आँसुओंके; जो पूरे पत्रमें भर गये थे। जो भी लिखा, सब धुलता गया। बस, दाग ही शेष बचा। बहुत प्रयत्नकर सँभालती-सँभालती राधाने कुछ अक्षर बचा लिये। परंतु जो बचा सम्बोधनके रूपमें, वह तो और भी हृदय-विदारक रहा। यहाँ तो राधाने राधाको ही लिख डाला। स्वाभाविक था, पत्र लिखनेके पहले राधाने कृष्णका ध्यान किया होगा। ध्यान करते-करते तन्मय होती गयीं राधा। अपनापन विसर्जित होता चला गया और ध्येयके रूपमें मात्र कृष्ण ही शेष बचे। अब राधा कृष्ण बन गयीं। कृष्ण तो राधाको ही पत्र लिखेंगे न। कृष्ण बनी राधा लिख रहीं है पत्र। पहला सम्बोधन किया, हा राधिके, तुम कहाँ खो गयी हो? अभी तो तुम यहीं थी। अभी भी तुम्हारे दिव्य श्रीविग्रहकी सर्वत्र फैली हुई सुगन्ध तुम्हारे यहीं कहीं होनेका एहसास दे रही है। किशोरी मान जाओ। मत रूठो इतना कि प्राणोंपर आ पड़े। लो चलो, तुम जीत गयी। तुम्हारा प्रेम जीता। मैं हार गया। राधा लिखती जा रही हैं, आह्लादिनि! तुम मेरे जीवनके अन्तरतममें सतत प्रवाहित रसकी धारा हो। वही धारा जब बाहर प्रकट होती है तो राधारूपमें मेरे जीवनका शृंगार बन जाती है। हृदयेश्वरि! अब और मत रूठो। कहाँ छिप गयी हो। अब और नहीं सहा जाता। आओ प्रेयसि, सँभाल लो मुझे। और ऐसा लिखते-लिखते राधा निकुंजमें एक शिलापर बैठी-बैठी अचेत हो दूर जा गिरीं। नहीं-नहीं, गिरतीं कैसे। गिरते-गिरते तो कृष्णने सँभाल लिया था। किशोरी, किशोरी, होशमें आओ किशोरी। तुम राधा हो, राधा। मेरी आह्लादिनी शक्ति, मेरा जीवन, मेरा प्राण, मेरा सर्वस्व, और प्रियतम कृष्णके आँखोंसे बहे आँसुओंमें श्रीराधाका श्रीविग्रह भीग गया था।

केलिमालमें नित्यविहारकी विलक्षणता

(डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी)

माई री, सहज जोरी प्रगट भई रंग की गौरस्याम घनदामिनी जैसें।
प्रथमहू हुती अबहू आगेंहू रहिहै न टरिहैं तैसें।

गौर-श्यामकी वह जोड़ी जितनी सहज है, उतनी ही शाश्वत है। वह युगल-विहार पहले भी था, आज भी है और आगे भी रहेगा, फिर भी स्वामी हरिदासने उसे पहली बार प्रकट रूपमें देखा, जिसे उन्होंने बिहारी-बिहारिन, श्यामा-श्याम, कुंजबिहारी, भाँवती-भाँवते, दुलहिनी-दूलह, जुगल-किसोर, लाड़ली-लाल-जैसे प्यारभरे-रसभरे नाम दिये। 'ऐसी सुनी जु बंद तें कन न्यारो,' 'ज्यों पानी में पानी नरीच,' 'ज्यों घन दामिनी संग रहत नित,' 'नवीन मेघ संग बीजुरी एक रस' कहकर स्वामीजीने यह भी बताया कि यह जोरी अविना-सम्बन्ध-सिद्ध है। जैसे सूर्य से सूर्यकी किरण अलग नहीं रहती, जैसे शब्दसे अर्थ अलग नहीं रहता, जैसे लहर जलसे अलग नहीं रहती; वैसे ही श्यामा और श्याम अलग नहीं होते हैं और उनके नित्यमिलनमें ऐसी विलक्षणता है कि—***'मिले ही रहत मानों कबहु मिले ना।'***

जोड़ी तो भारतीय-दर्शन तथा उपासनाने और भी देखी हैं—प्रकृति-पुरुष, ब्रह्म-माया, प्रज्ञा-उपाय, शक्ति-शक्तिमान्, लक्ष्मीनारायण, शिवशक्ति, उमाशंकर, सीता-राम, रुक्मिणी-कृष्ण और यहाँतक कि राधाकृष्णकी भी, किंतु गौरश्यामकी जिस जोरीकी बात स्वामीजी कह रहे हैं, वह इन सभी जोड़ियोंसे विलक्षण है और इस विलक्षणताके द्रष्टा रसिक अनन्यनृपति स्वामी श्रीहरिदास हैं। इसलिये ही कहा गया है कि—

कूँची नित्य विहार की श्रीहरिदासी हाथ।
अथवा
प्रियालाल हैं धन सही धनी सही हरिदास।

स्वामी श्रीहरिदास गौरश्यामकी सहज जोरी और उनकी रह: केलिके तटस्थ द्रष्टा ही नहीं हैं, वे केलिमें सखी-सुखके अधिकारी भी हैं। सखी-सुखके अधिकारी कह देनेसे भी बात पूरी नहीं हो सकती, क्योंकि—

श्रीस्वामी हरिदास हरि श्रीहरि के निज प्रान।
जो समझै या संधि कों सोई रसिक सुजान॥

नित्यविहार स्वामी श्रीहरिदासका तन-मन-प्राण है और इसी प्रकार स्वामी श्रीहरिदास नित्य-विहारके तन-मन-प्राण हैं। वे बिहारी-बिहारिनके निज प्राण-स्वरूप हैं, नित्यविहारमें वे युगलका लाड़ लड़ानेवाली सखी हैं, अन्तरंग सखी। वह सखी, जो युगलके नेत्रोंकी भाषाको समझती है, मुसकानकी भाषाको समझती है, साँस-की-साँसको भी पढ़ लेती है। नित्यविहारमें शब्दोंके लिये अवकाश ही नहीं है, वहाँ तो मनकी निगूढ़ गतिको समझना है—***साँस समुझि सुर बोलियै डोल नयन की कोर।*** और श्यामाश्यामके रस-सुखको समझनेमें श्रीहरिदासरूप ललितासखी इतनी कुशल हैं कि स्वयं स्वामिनीजू कहती हैं कि—'अरी सखी, प्रेमके मर्म को समझनेवाली तुझसे अधिक और कौन हो सकती है? प्रेम रस-विलासमें जब मेरे मनमें संशय रह जाता है, तब तू ही तो मुझे दाँव-उपाय बतलाती है—

सखी तोते कछु न दुरायहों तू मेरे हित प्रान।
तैं मेरे रस बस कियौ सुंदर सुघर सुजान।
तोतें अधिक न जानिहों कोउ कहै तो लागों पाँय।
मेरे मन संसै रहै तू कहि दाँव-उपाय।

ध्यान देनेकी बात है कि पहले तो वह जोड़ी ही ऐसी है, जो 'कहूँ देखी-सुनी न भनी।' न पहले कहीं देखा गया, न कहा गया और न सुना गया। स्वामीजी उस विलक्षण जोड़ीके द्रष्टा हैं। फिर उस जोड़ीकी रह:केलि-एकान्त रसविलास। एकान्त-विलासकी मर्यादा ही ऐसी है कि किसी भी युगलकी रह:केलिको कोई नहीं देख सकता, यहाँतक कि उसके सम्बन्धमें सोचना भी मर्यादा-विरुद्ध है परंतु श्यामाश्यामका नित्यविहार विलक्षण है, क्योंकि वह कामकेलि नहीं है—***भयौ भरुआन रतिपति-दल दलकें।*** बेचारा कामदेव अपने सम्पूर्ण दल-बलके साथ जहाँ दमित और दलित है, इस

गौरस्याम जोड़ीकी और इस नित्यविहारकी यह विलक्षणता है कि यहाँ प्रेमका अनन्त विस्तार है, स्वामिनीजू प्रेमोत्कर्षकी पराकाष्ठा हैं, प्रेमरूपा हैं, प्रेमाधिष्ठात्री हैं। प्रेमरसवश होकर नित नवीन क्रीड़ा रचती हैं, प्रेमके ही कारण रूठ जाती हैं, प्रेमके ही कारण शंका करती हैं और प्रेमोन्मत्त होकर अपने ही प्रतिबिम्बको देखकर आत्मविस्मृत हो जाती हैं और अपने ही प्रतिबिम्बसे कहती हैं—*'तैं मेरौ लाल मोह्यौ री साँवरौ।'* प्रेमके इस समुद्रमें बेचारा काम किंकरकी तरह वशीभूत है—*'प्यारी तेरी महिमा बरनी न जाय जिहिं आलस काम बस कीन।'* काम तो वहाँ विवश है, पराधीन है। किंकर है, भृत्य है, दास है और वृन्दावनके बाहर ही हाथ जोड़े खड़ा रहता है। नित्यविहारका प्रेम-रस विशुद्धतम है, उसमें कामभावका मिश्रण नहीं है। जो प्रेम कामभावसे स्फुरित होता है, वह विशुद्ध नहीं होता। नित्यविहारका प्रेम यदि विशुद्धतम न होता, तो वहाँ सखीका प्रवेश भी न होता। परंतु नित्यविहारकी विलक्षणता ही यह है कि यहाँ सखीका मात्र प्रवेश ही नहीं है, सखी उस प्रेमका आश्रय भी है और उपादान-कारण भी है, निमित्त-कारण भी है। श्यामाश्याम ललितासखीके मनमें विहार करते हैं, नेत्रोंमें विहार करते हैं और गोदमें विहार करते हैं। श्यामाश्यामके मनमें जो प्रेमस्फूर्ति होती है, ललितासखी उनके अनुकूल लाड़ लड़ाती है और जो प्रेम-स्फूर्ति ललितासखीके मनमें होती है, श्यामाश्याम भी वैसे ही रस-विलास करते हैं। इस प्रकार नित्यविहारमें अकेले श्यामाश्याम ही नहीं हैं, सखी भी है।

माना कि सखीके मनमें निज-सुखका भाव नहीं है, तत्सुखभाव है—श्यामाश्यामके लाड़ लड़ाने, उन्हें तन-मन-प्राणोंसे रिझानेका भाव है, क्योंकि यदि निज-सुखका भाव होता, तो वह प्रेम विशुद्ध न होता। नित्यविहारका प्रेम विशुद्धतम प्रेम है; इसका तात्पर्य ही यह है कि वहाँ स्वार्थ की कौन कहे *'स्व'* की भी गन्ध नहीं है। श्यामाश्याम और सखी तीनों ही प्रेम-रसमें एकाकार हैं। सखी उनके संकेत और मनके सर्वथा अनुरूप है, पर न वह दूती है और न वह दासी है। दूती और दासीका सम्बन्ध तो बहुत ओछी बात है और ऐसी बातें वृन्दावनके बाहर ही रहती हैं, कुंजमहलकी सखी तो प्राणसखी है, वह नित्यविहारको पूर्णता देनेवाली है—***गौरस्याम कों अति सुखदाई।***

नित्यविहारकी यह विलक्षणता है कि यदि नित्यविहारको एक वृक्षके रूपमें समझनेका प्रयास करें तो उसकी मूल और पिंड हरिदासीरूप प्रेमसहेली है। नित्यविहारी और नित्यविहारिणी उसके दो स्कन्ध हैं तथा अनुगत सखी-सहचरी सघन पत्रावली है—*'एक मूल अस्थूल लों, द्वै स्कन्ध समवैस। सेवत सखी सघन सबै, जान समौ जस जैस।'*

संसारके जितने भी प्रेम-सम्बन्धी काव्य हैं, उनमें संयोग और वियोगकी दो अवस्थाएँ होती हैं किंतु श्रीहरिदासने गौरश्यामकी जिस जोड़ीको देखा और नित्यविहारमें जिस युगलका लाड़ किया, उसके प्रेमकी अद्वितीयता ही यह है कि वह संयोग-वियोग-विलक्षण है। श्यामा-श्याम वृन्दावनके रसविलास-महलसे एक पलके लिये भी विलग नहीं होते। नित्यविहारमें न तो स्वामिनीजू कभी अन्तर्धान होती हैं और न प्रकट होती हैं। जैसे पानीके बिना मछली नहीं रह सकती; वैसे ही युगल भी बिना नित्यविहारके नहीं रह सकते। अनादिकालसे इस रसके आस्वादनको विह्वल हैं, अनादि-कालसे निरन्तर विलास कर रहे हैं, फिर भी उनको मिलनेका आभासतक नहीं हुआ। प्रथम समागमका पहला क्षण और वह क्षण नित्य-निरन्तर नया ही बना रहता है—*'यह कौन बात जो अबही और अबही और अबही औरै।'* और इस प्रतिपल नवताके आवेशमें जब मिलनेका ही भान नहीं हुआ, तब बिछुड़नेका प्रश्न ही क्यों है। इसलिये नित्यविहार संयोग-वियोगविलक्षण है। मिलना और बिछुड़ना जहाँ होता है, वहाँ विशुद्ध प्रेम नहीं है, जहाँ मिलते-मिलते चाहना बढ़ती रहे, उत्सुकता बढ़ती रहे, वही विशुद्ध प्रेम है—

बिछुरन मिलन जहाँ रहै, सुद्ध प्रेम नहिं सोय।
मिलत मिलत बढ़ै चाह अति, सुद्ध प्रेम है सोय॥
मिलत मिलत में चाह अति मिले मिले अकुलाहिं।

नित्य मिले हैं फिर भी मिलनेकी उत्कट अभिलाषा बनी हुई है। *'अरबरात मिलिबे कों निसिदिन मिले ही रहत मानों कबहुँ मिले ना।'* भोजन और शयनकी तो बात ही क्या है, यहाँ तो कभी पलक-से-पलक नहीं लगी—

रोम रोम तन यह सुख बिलसत भोजन भूख न प्यास।
रसिक बिहारी मगन रहत नित सहत न खटक उसास॥

नित्यविहार ऐश्वर्य-विलक्षण है, इसमें भगवत्ताका प्रवेश नहीं है। निष्काम भक्त भी भगवान्‌में भगवत्ता देखता है और यदि भगवान्‌में भगवत्ता न हो तो निष्काम भक्ति भी विचलित हो सकती है। स्वयं भगवान्‌में भी भगवत्ताका आवेश होता है। इसलिये नित्यविहारमें भक्त ही क्या भगवान्‌का भी प्रवेश नहीं है; क्योंकि भगवत्ताके कारण जो भक्ति और प्रेम हुआ, वह निष्कारण कहाँ हुआ? नित्यविहारका विशुद्ध प्रेम स्वभावज है, श्यामाश्याम और सखियोंका स्वभाव ही प्रेम है। यहाँ प्रेमका कारण न तो सौन्दर्य है और न रूप, न गुण है और न ऐश्वर्य—

ताहि सुहाय न ठकुरई, बड़ प्रताप विस्तार।
लक्ष्मीपति व्रजपति को दुर्लभ इनते कौन बड़ौ अधिकारी।
श्रीबिहारीदास बिहारकों; लक्ष्मीपति ललचाय।
देव पितर लीयें फिरैं, यहाँ रामकृष्ण न समाय।
याही तो दुर्लभता सबको, लक्ष्मीपति ललचात।
यद्यपि राधा कृष्ण बसत ब्रज बिन बिहार बिललात।

नित्यविहार अवस्था-विलक्षण है। व्रज-रसमें भी नन्दनन्दनकी जन्म-आदिकी लीलाएँ हैं, वे बड़े होते हैं, माखन चुराते हैं, गाय चराते हैं, मुरली बजाते हैं। फिर मथुरालीला, द्वारकालीलाकी बात भी आती है किंतु नित्यविहारके श्यामाश्याम नित्य किशोर हैं। न वे बालक हैं, न युवा हैं, न प्रौढ़ हैं—*'और बैस या रसमें बाधा।'* दूसरी अवस्थाकी कल्पनातक नहीं है।

नित्यविहार मर्यादाविलक्षण है। यहाँ विधि-निषेध जंजाल है। न लोककी मर्यादाका कुछ लेना है और न वेदकी मर्यादाका कुछ देना है। प्रेम-अनुराग-रसमय वृन्दावन है, प्रेम-अनुराग-रसमय ललितासखी हैं और प्रेम-अनुराग-रसमय श्यामा-श्याम हैं। लालजू लाड़लीजूके प्रेमके याचक हैं। प्रेमावेगमें प्यारीजूके अस्फुट शब्दोंको सुनकर श्यामसुन्दरके प्राणोंको पोषण प्राप्त होता है। वे रूप-रसके लिये कातर हैं। प्रेमरस पानेके लिये वे स्वामिनीजूको नाना भाँतिसे रिझाते हैं, कभी मोरोंके साथ नाचते हैं, तो कभी वेणी गूँथनेका सौभाग्य पाना चाहते हैं। वे कहते हैं—'हे प्यारीजू, जहाँ-जहाँ आपके चरण पड़ते हैं, वहीं-वहीं मेरा मन छाया करता चलता है।

हरिदासी-परम्पराके भक्त भगवतरसिकने उपासना-तत्त्वके सात आवरणोंकी चर्चा की है—*'प्रथम महातम प्रकृति ज्ञानरवि तहाँ प्रकासैं।'* पहला आवरण प्रकृति-पुरुषका ज्ञान है। श्रीमद्‌भागवतमें महामुनि कपिल कहते हैं कि जो त्रिगुणात्मक है, अव्यक्त है, नित्य है और कार्यकारणरूप है, जो निर्विशेष होनेपर भी विशेष धर्मोंका आश्रय है, वह प्रधान नामक तत्त्व ही प्रकृति है। भगवान्‌की चित्‌शक्तिसे महत्तत्त्व और महत्तत्त्वसे अहंकार और अहंकारके वैकारिक, तैजस और तामस भेदोंसे इन्द्रिय, मन और पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति होती है। कपिलमुनिने माँ देवहूतिको बताया कि प्रकृति-पुरुषके इस ज्ञानके द्वारा समस्त संशय समाप्त हो जाते हैं तथा कैवल्य-पद प्राप्त होता है।

भगवतरसिकके शब्दोंमें दूसरा आवरण ब्रह्मज्ञान है—*दूजे ब्रह्म प्रकास कोटि सूरज सम भासै।* तैत्तिरीय उपनिषद्‌में भृगुकी जिज्ञासाका समाधान करते हुए वरुणने कहा—*'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, प्रयांति, अभिसंविशंति, तद् ब्रह्मेति।'* जिससे ये सब भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होनेपर जिसके आश्रयमें जीवित रहते हैं तथा अन्तमें उसीमें विलीन हो जाते हैं, वह ब्रह्म है। यह ब्रह्म सत् चित् और आनन्द है।

'तीजे पंकज नाभि रमा बैकुण्ठ निवासी।' वैकुण्ठ आदि-नारायण भगवान् विष्णुका धाम है, जहाँ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला निःश्रेयस नामक वन है। भगवान् देवताओंके भी देवता तथा ब्रह्मादिके भी आत्मा हैं, आराध्य हैं, चराचरके रक्षक हैं, वे भगवान् भक्तिसे प्रसन्न हो जाते हैं।

'चौथो दशरथ-सुवन राम गोपुर के वासी।' *रामो विग्रहवान् धर्मः।* राम साक्षात् मर्यादापुरुषोत्तम हैं तथा भरत, लक्ष्मण, हनुमान्, केवट, शबरी आदि रामभक्तिके आदर्श हैं। परात्पर होते हुए भी वे भक्तोंको आनन्दित करनेके लिये लीला करते हैं, प्रेमविवश होकर भीलनीके जूठे बेर खाते हैं और केवटके निहोरे करते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—*'ऐसौ को उदार जग माँहीं, बिनु सेवा जो द्रवै दीन पै राम सरिस कोउ नाँहीं।'*

'पाँचै ब्रजके गोप नन्द-आदिक सब गोपी।' वह पूर्ण परब्रह्म, पाँचवें आवरणमें जसोदा मैयाके आँगनमें पलनेमें झूल रहा है। *'मेरे लाल कों आउ निंदरिया काहे न आन सोवावै।'* जसोदामैया अपने लालाको देखकर छिनछिन पुलकित होती हैं। उँगली पकड़कर उसे चलना सिखाती हैं, ऊखलसे बाँधती हैं और संटी लेकर डराती भी हैं। वात्सल्यके इस रसके साथ ही ब्रजमें सख्यभाव भी है। ग्वाल-बालोंकी टेर सुनते हैं तो कन्हैया भोजन छोड़कर चले जाते हैं, माँकी भी नहीं सुनते—*'ग्वालनि कर तें कौर छुड़ावत मुख में मेलि सराहत।'* वात्सल्य और सख्यके साथ ही ब्रजमें शृंगार भी है, जहाँ गोपकन्याएँ कन्हैयाको पतिके रूपमें पानेके लिये कात्यायनीकी उपासना करती हैं।

धर्म-अर्थ-कामकी सिद्धि कर्मकाण्डसे होती है। कर्मकाण्डकी परिधि ज्ञान है। ज्ञानकी परिधि है भक्ति और भक्तिकी सीमा है व्रज—*'मुक्ति भरै जहाँ पानी।'* इस ब्रजरसका उल्लास छठे आवरणमें व्यक्त होता है, वह है रासक्रीड़ा। इस तत्त्वका साक्षात् पानेके लिये शिवको भी गोपीका रूप धारण करना पड़ता है।

उपासनाके छह आवरण हैं और ये सभी आवरण वन्दनीय हैं, पूज्य हैं और उपासना तत्त्वके अंग हैं, किंतु आवरणमें सरल तिर्यक् या वृत्तात्मक रेखाएँ होती हैं, कोण होते हैं परंतु सातवाँ आवरण मूलबिन्दु है-विशुद्धतम नित्यविहार। उपासनाके जो छह आवरण हैं, वहाँ मर्यादा और भगवत्ताकी रेखा है, किंतु *'बिन्दु में सिंधु समान को कासों अचरज कहै।'* इस बिन्दुमें रस-सिन्धु है—*'राग ही में रंग रह्यौ रंग के समुद्र में ए दोऊ झागे।'*

श्रीराधाका माधवके प्रति तत्सुखसुखिया भाव

तत्सुखसुखिया श्रीराधाजीका एक प्रसंग श्रीराधाबाबाने अपने प्रियजनोंसे कहा था; जो अन्यत्र दुर्लभ है, उसीको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

श्रीराधा अपने अन्तःपुरमें पालित शुक-सारिकाओंको श्रीकृष्णका नाम उच्चारित कराती थीं। इस प्रकार अपने प्रियतमका नाम लेकर स्वयंको धन्य करती थीं और शुक-सारिकाओंको भी प्रभुनाम-उच्चारण कराती थीं। यही दैनिक क्रम था। कुछ दिनों पश्चात् श्रीराधाने कृष्णके नामके स्थानपर स्वयं अपना नाम—'बोलो श्रीराधे, श्रीराधे' कहलवाना प्रारम्भ किया। लोगोंने आलोचना की। कोई कहता राधा अपना नाम कहलवाकर अपनेको श्रीकृष्णसे श्रेष्ठ मानती है क्या? श्रीराधाकी आलोचना होने लगी, पर श्रीराधाने स्वयं अपना नाम कहलवाना स्थगित नहीं किया।

वे बड़ी तन्मयतासे 'श्रीराधे-राधे' कहलवाती रहीं। पूछनेपर उसका प्रत्युत्तर भी नहीं देती थीं। अन्तमें उन्होंने अपनी अन्तरंग सखियोंको बताया कि श्रीकृष्णके नामोच्चारण करानेसे मुझे आत्मिक आनन्द मिलता था, किंतु श्रीराधेके नामसे मेरे प्रियतमको आनन्द आता है, अतः जिसमें मेरे प्रियतमका सुख निहित हो, वही मुझे प्रिय है। अब चाहे लोग मेरी निन्दा करें या मुझे बुरा-भला कहें।

श्रीराधाका तत्सुखसुखिया भाव अनन्य था; क्योंकि श्रीराधा स्वसुखवांछालेशविरहिता और श्रीकृष्णसुखैक-तात्पर्यरूपा भक्तिके आश्रित रहीं और अद्यावधि उसी भावकी भक्तिसे अनुप्राणित हैं।

श्रीराधामाधवके मधुर प्रेमसम्बन्धकी कुछ झलकियाँ

['प्रेम फूल फूलन सौं प्रेम सेज रची है']

(श्रीअर्जुनलालजी बंसल)

श्रीवृषभानुसुता राधारानीने ब्रजमें अवतरित होकर भगवान् श्रीकृष्णकी ललित-लीलाओंके माध्यमसे सर्वत्र प्रेम-रसकी वर्षा की। दोनों प्रेमियोंने ब्रज-भूमिमें पनघटसे साँकरीगलीतक, प्रेम-सरोवरसे कुसुम-सरोवरतक और गोकुलसे वृन्दावनतक गागर फोड़ने, माखन-चोरी करने तथा रासलीला रचानेकी दिव्य लीलाएँ कीं। श्रीराधारानी और सखियोंको मुरलीके मधुर-स्वरोंद्वारा मोहित करना मनमोहनका नित्यका कार्य था। वे व्रजगोपियोंके अनन्य प्रेमकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—'मैं गोलोक छोड़कर ब्रज-गोपियोंके अनन्य प्रेमके कारण इस क्षेत्रमें अवतरित हुआ हूँ। ऐसा दिव्यप्रेम संसारमें अन्यत्र कहीं नहीं दिखायी देता।'

ब्रजरसिकोंका विश्वास है कि श्रीवृन्दावन प्रेमकी वह भावभूमि है, जहाँ प्रेम अपने सहज रूपमें प्रकट होता है।

उस सहज प्रेमकी व्याख्या करते हुए श्रीकृष्णभक्त रसखानने लिखा है—

प्रेम अवनि श्रीराधिका प्रेम बरन नँदनन्द।
प्रेम वाटिका के दोऊ माली मालिन द्वन्द॥
प्रेम हरी को रूप है त्यौं हरि प्रेम सरूप।
एक होइ द्वै यों लसैं ज्यौं सूरज अरु धूप॥

श्रीराधारानी प्रेमकी भूमि हैं और श्रीकृष्ण प्रेमका साक्षात् स्वरूप हैं। ऐसा लगता है, जैसे ये दोनों प्रेम-वाटिकाके माली और मालिन हैं। इसी प्रकार प्रेम श्रीहरिका स्वरूप है और श्रीहरि प्रेमके स्वरूप हैं। जैसे सूर्य और धूप भिन्न-भिन्न रूपोंमें होते हुए भी एकरूप हैं, वैसे ही श्रीहरि और प्रेम दृष्टिगोचर होते हैं, यथार्थमें भिन्न दिखायी देनेपर भी दोनोंका स्वरूप एक ही है।

प्रेमके महत्त्वका प्रतिपादन करते हुए रसखानने लिखा है—

जदपि जसोदा नंद अरु ग्वाल बाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम कौं गोपी भईं अनन्य॥
वा रस की कछु माधुरी ऊधो लही सराहि।
पावै बहुरि मिठास अरु अब दूजो को आहि॥

श्रीकृष्णप्रेमी बननेसे यद्यपि सारे ग्वाल-बाल धन्य हो गये, परंतु श्रीकृष्णप्रेमकी परम अधिकारिणी बननेके कारण गोपियाँ अद्वितीया बन गयीं।

आइये, ऐसे अनुपम प्रेमका साक्षात् दर्शन करने श्रीराधामाधवकी एक दिव्य-लीलामें प्रवेश करें।

एक समयकी बात है, कुछ सखियाँ श्रीराधारानीके संग अन्तरंग वार्तालापमें निमग्न थीं, एक सखी कहने लगी, हे राधे!

प्रिय तैरे बस यौं री माई।
ज्यौं संगहिं संग छाँह देह बस प्रेम कह्यौ नहिं जाई॥
ज्यौं चकोर बस सरद चन्द्र कै चक्रवाक बस भान।
जैसे मधुकर कमल कोस-बस त्यौं बस स्याम सुजान॥
ज्यौं चातक बस स्वाति बूँद कै तन के बस ज्यौं जीय।
सूरदास प्रभु अति बस तैरैं, समुझि देखि धौं हीय॥

श्रीकृष्ण तुम्हारे वशमें उसी प्रकार रहते हैं, जैसे शरीरके वशमें छाया रहती है, चकोर शरद्‌ऋतुके चन्द्रमाके वशमें, चक्रवाक सूर्यके वशमें, भ्रमर कमल-पुष्पके वशमें, चातक स्वातिबूँदके वशमें और प्राण शरीरके वशमें रहते हैं।

अपनी सखीके मुखसे ऐसी प्रशंसा सुनकर श्रीराधाके मनमें किंचित् गर्व हो आया। तब श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। श्रीराधाको जैसे ही आभास हुआ कि प्रीतमने उनका त्याग कर दिया, वे अधीर हो उठीं, श्रीराधाकी ऐसी दीन-हीन अवस्था देख एक सखी श्रीकृष्णकी खोजमें वनोंमें चली गयी। वहाँ जाकर वृक्षोंसे, बेलोंसे रो-रोकर पूछने लगी—

तुमने कहीं हमारे कान्हाको देखा है, वह प्रेमरूपी खेलमें हारकर हमारे बन्धनसे मुक्त होकर यहीं-कहीं आकर छिप गया है। वह सखी कोई अन्य नहीं, श्रीराधारानीकी प्रिय सखी ललिता थी।

ललिताके मुखसे ऐसे वचन सुनकर श्रीकृष्ण वहीं

प्रकट हो गये। सखीके मुखसे श्रीराधाकी व्यथा-कथा सुनकर श्यामसुन्दर व्याकुल हो उठे। उन्होंने ललितासे विनयपूर्वक कहा—हे सखी! बिना विलम्ब किये मुझे शीघ्रातिशीघ्र मेरी प्रियाजीके पास ले चलो। श्रीकृष्णको संग ले ललिताजी श्रीराधारानीके पास आ गयीं। श्रीराधाको देखते ही श्रीकृष्ण प्रेममें निमग्न हो गये। प्रेमी श्याम-सुन्दरकी दशाका वर्णन करते हुए श्रीसूरदासजी कहते हैं—

भुज भरि लई हिरदय लाइ।
बिरह ब्याकुल देखि बाला, नैन दोऊ भरि आइ॥
रैनि बासर बीच मैं दोउ गए मुरझाइ।
मनौ वृच्छ तमाल बेली, कनक सुधा सिंचाइ॥
हरष उहऽह मुसुकि फूले प्रेम फलनि लगाइ।
काम मुरझनि बेलि तरु की तुरत ही बिसराइ॥
देखि ललिता मिलन वह आनन्द उर न समाइ।
सूर के प्रभु स्याम स्यामा त्रिविध ताप नसाइ॥

ललिताके प्रयाससे श्रीराधाकृष्णका पुनर्मिलन हुआ। श्रीकृष्णने श्रीराधाको अपनी बाँहोंमें भरकर अपने हृदयसे लगा लिया। श्रीराधाके दग्ध हृदयको अभूतपूर्व शान्ति मिली, परंतु अपनी प्रियाजीकी दीन-हीन दशा देख श्रीकृष्णके आँसू पलकोंका बाँध तोड़ उनके वक्ष:स्थलको भिगोने लगे। विरहके कारण दोनोंके मुरझाये मुखमण्डल पुन: खिल उठे, मानो श्रीकृष्णरूपी तमालवृक्षसे संयुक्त श्रीराधारूपी स्वर्णलता प्रेमरूपी अमृतसे सिंचित होकर हरी-भरी हो गयी। मुखपर मुसकानरूपी पुष्प खिलते ही दोनों आनन्दरूपी महासागरमें गोते लगाने लगे। ललिताजीने जैसे ही प्रेमी-युगलको इस अवस्थामें देखा, वे प्रसन्नतासे झूम उठीं। प्रेममें तन्मय हुई सखीने देखा, प्रियतमके हृदयसे लगी प्रियाजी अतिशय सुखका अनुभव कर रही हैं। इस लीलाका सजीव वर्णन करते हुए ध्रुवदासजीने लिखा है—

प्रेमके खिलौना दोउ खेलत हैं प्रेम खेल,
प्रेम फूल फूलन सौं प्रेम सेज रची है।
प्रेम ही कि चितवनि औ मुसकनि हू प्रेम ही की,
प्रेम रँगी बातें करैं प्रेम केलि मची है॥

सचमुचमें यही प्रेम रसरूप है, जिसे प्राप्तकर प्राणी आनन्दलोकमें विचरण करने लगता है।

श्रीराधाजीद्वारा विशुद्ध सेवाके लिये 'सेवानन्द' का भी त्याग

एक बार प्रियतम श्रीकृष्ण खेलते-खेलते बहुत थक गये थे, इसीसे वे निकुंजमें ठीक समयपर नहीं पहुँच पाये। श्रीराधारानी उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। वे जब पधारे तो उन्हें अत्यन्त श्रान्त-क्लान्त और उनके विशाल भालपर श्रम-बिन्दु-कण देखकर राधाजीको बड़ी मनोव्यथा हुई। वे आदरपूर्वक उन्हें सुकोमल सुरभित सुमन-शय्यापर शयन कराकर पंखा झलने लगीं और जब स्वेद-बिन्दु नहीं रहे, तब राधाजीको अपार आनन्द मिला। फिर वे धीरे-धीरे उनके पैर दबाने लगीं। श्यामसुन्दरकी श्रान्ति दूर हो गयी, उनके मोहन मुखपर मधुर मृदुहास्यका समुदय हो गया। राधारानीने चाहा—'अब इन्हें कुछ देरतक नींद आ जाय तो इनमें और भी स्फूर्ति आ सकती है।' श्यामसुन्दरके नेत्र निमीलित हो गये। राधा धीरे-धीरे उनके पैर दबा रही थीं। अपने परमाराध्य, प्राणप्रियतम माधवको इस प्रकार परम आनन्दसे सोते हुए देखकर राधारानीके आनन्दका पार न रहा। उनके शरीरमें आनन्दजनित लक्षण उत्पन्न होने लगे। क्षणभरके लिये 'स्तम्भ' दशा हो गयी और पैर दबाना रुक गया। दूसरे ही क्षण पवित्र अनन्य 'सेवाव्रत' ने प्रकट होकर उन्हें मानो कहा—'राधा ! तुम सेवानन्दमें निमग्न होकर सेवा-परित्यागका पातक कर रही हो।' बस, वे तुरंत सावधान हो गयीं और अपने सेवानन्दको धिक्कार देकर उसका तिरस्कार करती हुई बोलीं—'सचमुच, आज मैंने यह बड़ा पाप—अत्यन्त अपराध किया, जो अपने सुखकी चाह रखकर, सेवा-सुखकी परवा न कर आनन्दमें डूब गयी, सेवाके विघ्न सेवानन्दकी साध रखकर सेवा छोड़ बैठी। हाय! मेरे-जैसी जगत्‌में दूसरी कौन ऐसी स्वार्थसनी नारी होगी, जो अनन्य-सेवा-व्रतकी रक्षा करते हुए प्रियतम-सेवा न कर सकी।

कैशोराद्भुतमाधुरी

(आचार्य श्रीअवधकिशोरदासजी)

पाण्डित्य, तर्क एवं शास्त्रीय अनुशीलन—सभी कुछ था उनमें, पंडित ही थे। काशीसे आये हुए, उन वेदान्तीकी किसी वृन्दावनवासीसे भेंट हो गयी। उन्होंने व्रजवासीसे कहा—'वृन्दावनकी जैसी कीर्ति सुन रखी थी, यहाँ आनेपर वैसा कुछ मिला नहीं।'

सो कैसे महाराज! आपने कहा सुन रखी थी, और यहाँ कहा, कमी दिख गयी आपकूँ?' व्रजवासीने कहा। 'सुना था कि वृन्दावनमें पग-पगपर सत्संग है। वहाँ सब भगवत्परायण लोग रहते हैं, परंतु भइया! यहाँपर तो गम्भीर सत्संग दीखा नहीं' पंडितजीने कहा।

वृन्दावनवासी बोला—'ह्याँ के उथलेमें ही सबकी पैठ नाय ह्वै सके है, फिर गंभीरमें कौन की गम होयगी। गंभीर विषय कहो कासो कहो हो आप?'

पंडितजी—'भाई! वेदशास्त्रकी बातें तुमको समझावें भी कैसे? इतने पढ़े-लिखे तो प्रतीत नहीं हो रहे। फिर भी सुनो; हमारे यहाँ सत्संगमें ब्रह्मसूत्रकी व्याख्या चल रही थी, उसे छोड़कर कौतूहलवश हम यहाँ चले आये। यहाँ तो जहाँ-तहाँ रास, रसिया, गीत, कथा-वार्ताओंमें भी वही, ***'देख्यो दुर्‌यो वह कुंज कुटीरमें बैठे पलोटत राधिका पायन'*** की बातें रहती हैं। ये बातें कोई तत्त्वनिरूपणकी हैं क्या? समझदारोंके लिये तो कोई गहरी बातें ही नहीं मिलतीं यहाँ।' वृन्दावनी—'पंडितजी! हमारे श्रीवृन्दावनमें ब्रह्मसूत्रकी ही वार्ता जहाँ-तहाँ सदाई चलै हैं, आपके समझिवे बुझिवेमें कछू अन्तर है गयो होयगो। हम वृन्दावनीमें ब्रह्मसूत्र वाको कहैं हैं, जा सूत्रमें ब्रह्म बँध जाय है। श्रुति जाको मुक्तिप्रद मुकुन्द बतावै, सो ब्रह्म ह्याँ पै श्रीराधाप्रणयसूत्रमें बँध्यो भये पतंगवत् श्रीप्रियापादानुगमन कियो करें।'

श्रीनिम्बार्क-जैसे आचार्य हूँ बतावैं हैं-

मुकुन्दस्त्वया प्रेमदोरेण बद्धः
पतङ्गो यथा त्वामनु भ्राम्यमाणः।

जाकी अंगकान्ति ही ब्रह्म कहावै है, ऐसे ब्रह्मके दादा नन्दनन्दन हूँ जा सूत्रमें बँधे भये श्रीराधाचरणमें संश्लिष्ट रहे हैं, वा सूत्रसे अधिक और कौन सो ब्रह्मसूत्र है सकै हैं? एक बार तो महाराज! यहाँ पै पंडित सिरताज रसिक अनन्य श्रीहरिराम व्यासजी महाराजने जा ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) कूं तोरि के रासविहारिणी श्रीराधाके चरणोंमें नूपुर गूँथिके बाँधि दिया—

'नै गुना तोरि नूपुर गुह्यो महत सभा मधि रास कें, जा भाँति महाराज! जा सूत्र (प्रेमडोरि)-में ब्रह्म (बड़ा)-हूँ बँधि जाय, वाही ब्रह्मसूत्रकी व्याख्या, चर्चा या वृन्दावनमें रात-दिन चलै हैं। वाही सूत्रमें सब बँधे और बाँधे हैं, या काननकी कीर्ति आपके समझमें नाय आय सकै है महाराज! श्रीकीर्तिकुमारी कै पदाम्बुजाश्रित जनोंकी चरणरज कौ नयनांजन लगाइ कै श्रीवन कूं देखिवेकी चेष्टा करो आप।'

श्रीराधाचरणरसनिष्ठ उन व्रजवासीकी ऐसी युक्ति-युक्त बातें सुनकर पंडितजीकी दशा वैसी ही हो गयी, जैसे गोपियोंसे मिलकर श्रीउद्धवजीकी हुई थी।

वस्तुतः अद्भुत है यह श्रीवृन्दावनधाम, जहाँ किशोरमिथुनका अद्भुत माधुर्य व्यक्त होता है।

समस्तसुभगाद्भुतं सकलमंगलात्यद्भुतं
चिदात्मसकलोज्ज्वलाद्भुतमशेषरम्याद्भुतम् ।
समस्तवरदाद्भुतं सकलकृष्णधामाद्भुतम्
तदेतदखिलाद्भुतं भज रसेन वृन्दावनम्॥

(वृन्दावनमहिमामृतम्)

श्रीवृन्दावनधामको ऐसा आद्भुत्य प्रदान करनेवाली हैं श्रीराधा! वे स्वयं सब प्रकारसे अद्भुत जो हैं—

लावण्यं परमाद्भुतं रतिकलाचातुर्यमत्यद्भुतं
कान्तिः कापि महाद्भुता वरतनोर्लीलागतिश्चाद्भुता।
दृग्भंगी पुनरेव चाद्भुततमा यस्याः स्मितं चाद्भुतं
सा राधाद्भुतमूर्तिरद्भुतरसं दास्यं कदा दास्यति॥

श्रीराधाकृपा ही ऐसे श्रीवृन्दावनका अधिकृत प्रवेशपत्र है। श्रीराधा-कृपाके बिना तो वह ध्यानमें भी नहीं आ सकता।

रे मन अरु अस छाँड़ि कै जो अटकै इक ठौर।
वृन्दावन घन कुंज में जहाँ रसिक सिरमौर॥

जहाँ कुछ करना पड़ता है, वहाँ श्रमका अनुभव होता है, जहाँ कुछ करना नहीं पड़ता, वहाँ श्रम नहीं, विश्राम प्राप्त होता है। श्वसनक्रियामें श्रम नहीं, वरन इसमें अवरोध आनेपर श्रम तथा कष्ट है। इसी प्रकार स्वरूपभूत धर्म या सहज धर्ममें ही जीवको विश्रामकी प्राप्ति सम्भव है। जिस स्थितिमें जीवका यह सहज धर्म हित सदा सहज जाग्रत् है, उस स्थितिका ही नाम है श्रीवृन्दावन। यहाँ जीवका स्वधर्म ही हित (प्रेम) नामसे अभिहित हुआ है। यही है सहज स्वरूपका विश्राम-स्थल।

कौतुक रचै जु भारी वारी अति रसरूप छकावै।
सदा सनेह बसै वृन्दावन प्रिय प्यारी दुलरावै॥

(चाचा श्रीवृन्दावनदासजी)

वृन्दावनीय उपासकोंके लिये प्रेम परम प्रमेय है। अन्यान्य उपासनाओंमें उपास्य या परम तत्त्व भगवान् हैं, किंतु ***'हित (प्रेम)-की यहाँ उपासना, हितके हैं हम दास।'***

यह प्रेम (हित)-ही युगलरूपमें क्रीड़ापरायण है। यहाँका उपास्य हित अर्थात् प्रेम है। यह हित निजास्वादनके लिये युगलरूप श्रीवृषभानुनन्दिनी एवं नन्दनन्दनके रूपमें श्रीवृन्दावनमें दो से एक और एकसे दो होनेकी अद्भुत केलि करता रहता है।

इक हित द्वै बिनु होत नहि, दोऊ मिलि इक होइ।
दिवस एक हित जानिये, चेतन इक ते दोइ॥
जब व्याकुल हित होत फिर आवत सुधि तन बाहि।
यह प्राकट नित होत जहँ, एकहिं द्वै दरसाहि॥

श्रुतियोंने परम तत्त्वको रसस्वरूप कहा है—

रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन॥

रस आस्वादित होकर ही अपनेमें चमत्कारित्व प्रकट करता है। यही उसका वैशिष्ट्य भी है।

रसे सारश्चमत्कारो यं विना न रसो रसः।
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्रैवाद्भुतो रसः॥

अतः आस्वाद्य एवं आस्वादकरूपमें प्रकट रहकर ही आस्वादन प्रकट करनेकी उसकी स्वाभाविकता सिद्ध होती है। यही है रस-सिद्धान्तका मूल। श्रीध्रुवदासजी महाराज कहते हैं—

एक रंग रुचि एक वय एकै भाँति सनेह।
एकै शील स्वभाव मृदु रसके हित द्वै देह॥

एक ही प्रेमतत्त्वकी प्रेमप्रेरित होकर युगलरूपमें आद्यन्तरहित क्रीड़ा होती रहती है।

प्रेम के खिलौना दोउ खेलत हैं प्रेम खेल
प्रेम फूल फूलनि सों प्रेम सेज रची है।
प्रेम ही कि चितवनि औ मुसकनि हू प्रेम ही की
प्रेम रँगी बातें करैं प्रेम केलि मची है।
प्रेम की तरंगनि में प्रीतम परे हैं दोऊ,
प्रेम प्यार मार प्यारी पिय हिय लची है।
हित ध्रुव प्रेम भरी प्यारी सखी देखैं खरी
हित चितवनि छवि आनि उर सची है॥

दोनों ही रसकी राशि हैं, दोनों ही उस रसके भोक्ता और परम रसिक हैं-

परम रसिक रस राशि दोउ परे प्रेमके फन्द।
रहत भरे आनन्दमें, जुग चकोर विवि चन्द॥

फिर भी जैसे साहित्यमें रसकी स्वाभाविकता आश्रयमें आलम्बनके द्वारा उद्दीप्त उसके स्थायीभावसे है, वैसे ही यहाँ प्रेमपात्र श्रीप्रियाके प्रति, प्रेमी श्रीलालमें लौल्यका प्रकट रहना प्रेमकी सहज स्वाभाविकता है। श्रीनन्दलालके प्रति श्रीवृषभानुनन्दिनीका जो प्रेम है, वह अगाध है, जिसकी थाह नहीं मिल पाती है। श्रीलालका उर उद्वेलित प्रेमसागर है, वह भी अथाह है।

गरुवौ नेह नवल नागरि को कोऊ थाह न पावै।
लाल नेह उर उछरि परत है ताते नाच नचावै॥

स्वभावतः प्रेम सौन्दर्यका भोक्ता है और रूप प्रेमका उद्दीपक है, किंतु प्रेम और रूपकी एकरसता श्रीवृन्दावनके निकुंजान्तरमें ही गोचर है, अन्यत्र नहीं-

ढूँढ़ फिरै त्रैलोकमें, मिलत कहूँ ध्रुव नाहिं।
प्रेम रूप दोउ एक रस, बसत निकुंजनि माहिं॥
रसो यः परमानन्द एक एव द्विधा सदा।
श्रीराधाकृष्णरूपाभ्यां तस्यै तस्मै नमो नमः॥

भगवत्स्वरूपकी यह विलक्षणता है कि एक बार

ही उस रूपके, उसकी माधुरीके गोचर होनेपर, जाति-धर्म, कुल-धर्म, वर्ण-आश्रमधर्म, स्त्रियोंके पातिव्रत या सतीत्वधर्मादिकोंके बन्धन टूट जाते हैं—श्रीगोपीजन कहते हैं—

औ तुम्हरो यह रूप धरम के धरमहिं मोहैं।
सब धरमन के धरम-मरम आगे यह कोहैं॥

किंतु श्रीराधारूपरसामृत ऐसा अद्भुत है कि वह उस भगवद्धर्मके प्रति भी निर्मम बन जाता है।

कैशोरामृतमाधुरीभरधुरीणाङ्गच्छविं राधिकां
प्रेमोल्लासभराधिकां निरवधि ध्यायन्ति ये तद्धियः।
त्यक्ताः कर्मभिरात्मनैव भगवद्धर्मोऽप्यहो निर्ममाः
सर्वाश्चर्यगतिं गता रसमयीं तेभ्यो महद्भ्यो नमः॥

सौन्दर्य एक तत्त्व है, जिसकी विद्यमानताके कारण वस्तुओंमें आकर्षण एवं मनोमोहकता आती है। जहाँ भूषणोंके कारण अंग सुन्दर लगते हैं, वहाँ अंगसौष्ठव नहीं; बिना आभूषणोंके अंगोंका सुन्दर लगना ही अंग-सौष्ठव है। श्रीप्रियाजूके तो अंग ही सौन्दर्यतत्त्व हैं।

अंग अंग की सहज माधुरी, कहु कासों पट तरिये।
देवलोक भूलोक रसातल सुनि सुनि कविकुल डरिये॥

(गो० हितहरिवंशजी महाराज)

श्रीप्रियाके श्रीअंगोंमें विभूषणोंसे माधुर्य नहीं बढ़ता, यहाँ तो समस्या है कि माधुर्यका गोपन कैसे किया जाय? जिस वस्तुसे ढँककर, माधुर्यको छिपानेका प्रयास किया जाता है, वह वस्तु ही श्रीअंगोंकी द्युतिसे सुन्दर हो जाती है। इन अंगोंने ही भूषणोंको भूषित किया है। सौन्दर्यरूपी रत्नके पक्के जौहरी तो रसिकमौलि श्रीनन्दनन्दन ही हैं। तभी तो इनके नयनोंसे माधुर्य-मद छलकता रहता है—

मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली।

ये नेत्र मद-विघूर्णित कैसे हो गये? इस रहस्यका उद्‌घाटन श्रीगदाधर भट्‌टजी करते हैं—

नैन धीर अधीर कछु असित सित राते।
प्रिया आनन चन्द्रिका मधुपान रस माते॥

रसिकमणिके मृदुल मनमें छबीलीकी पैनी छवि गड़ जाती है तो सुकुमारीके मनमें मोहनमनकी मृदुलता ही गड़ जाती है। विचित्रता देखी जाय कि अन्यत्र तो कहीं कठोरता गड़ती है, पर यहाँ तो मृदुलता ही गड़ रही है—

सोच रही तेहि छिन कछु इत उत चितवन नाहि।
प्रीतम मन की मृदुलता, गड़ी आइ मन माहि॥

श्रीराधाके माधुर्यकी गम्भीरता एवं अनन्तताका कुछ पता रसिकशेखर नागर, मधुपतिपर पड़नेवाले प्रभावसे चलता है। पराक्रमका प्रकाश सिंह-शृगालके मध्य नहीं वरन गज-मृगेन्द्रद्वन्द्वमें ही देखनेको मिलता है। नवनागरीके आंशिक सौन्दर्यदर्शनसे ही उन उन्मत्त स्वच्छन्द मोहनकी दशा क्या हो गयी? रसिकोंकी वाणीमें सुनिये—

अति गज मत्त निरंकुश मोहन निरखि बँधे लट पाशि।
अवही पंगु भई गति है बिनु उद्यम अनयास॥

महामुनीन्द्रगण जिसकी चरणरजकी निरन्तर खोज करते हैं, वह भी जिसकी खोज करता है, जो अपने भ्रूविलाससे विश्वको विमोहित किये रहनेवाला है, वह परम तत्त्व भी जिसपर मोहित हुआ, जिसकी रसकणिका-मात्रके आस्वादनसे स्वयंको धन्य मानता है, चम्पक-वरण, मोहनमनहरण, राधानामक तत्त्व सबका मंगल-विधान करे—

योगीन्द्रा मृगयन्ति यत्पदरजस्तेनापि यन्मृग्यते
विश्वं येन विमोहितं चलदृशा तस्यापि यन्मोहनम्।
पूर्णानन्दमयोऽपि यद्रसलवास्वादेन धन्यायते
तद्धाम स्फुटचम्पकछवि चिरं राधाभिधं पातु वः॥

श्रीराधा एवं श्रीमाधव, श्रीमाधव एवं श्रीराधा यद्यपि लीलाविलासमें द्विधा हैं, परंतु अद्भुत हैं, अनाख्येय हैं वे युगल। श्रीध्रुवदासजीने ठीक ही कहा—

या शोभा वर वारिये कोटि-कोटि रति ईश।
रीझि रीझि नख चन्द्रकनि जब लावत प्रिय शीश॥

तथा—

विवि चितवनि मुसकनि रह्यो यों उर में छाई।
तेहि रसके बल मनहिं और कछु वै न सुहाई॥

इसी युगलमाधुरीके ध्यानके साथ विश्राम! जय जय श्यामा जय जय श्याम।

राधा बिना कृष्ण आधा

(श्रीफतेहचन्दजी अग्रवाल)

वह सुन्दर चित्रकार थी; किंतु उसने अपनी चित्रांकन-कलाका कभी अभिमान नहीं किया था। उसका नाम उसके गुणोंके अनुकूल था। 'चित्रा' नाम था उसका। उसका धाम था कृष्णकी पवित्र क्रीडास्थली 'गोकुल'। चित्रांकनकी कलामें वह इतनी निपुण और सिद्धहस्त थी कि किसी भी वस्तु, पक्षी, पशु, ताल-तलैया या मानवका चित्र कल्पनामात्रपर बना लिया करती थी। बस, उसे हाथमें तूलिका उठा लेनेभरकी देर होती कि चित्र सर्वोत्कृष्ट एवं हृदयाकर्षी बन जाता।

'चित्रा' अपने कुशल-व्यवहार एवं मधुर स्वभाव तथा अद्भुत चित्रांकन-कलाके कारण आस-पासके क्षेत्रोंकी तो बात ही क्या, दूर-दूरतक चर्चित हो गयी थी।

वह बचपनसे ही 'कृष्ण'-भक्तिमें अनुरक्त थी। अपने आराध्य कृष्णका सुन्दर-सा चित्र वह बना सके, इसी प्रयासमें आज वह एक महान् चित्रकार बन गयी थी। उसकी ख्याति इतनी विस्तृत हो गयी थी कि किसीको भी चित्र बनवाना होता तो उसे बस एक ही नाम सूझता 'चित्रा'। किंतु इतनेपर भी चित्रा सन्तुष्ट नहीं थी। उसे अपनी चित्रांकन-कलापर कभी-कभी सन्देह होने लगता था। वह सोचा करती यदि मैं इतनी प्रतिभासम्पन्न चित्रकार हूँ तो क्यों नहीं अभीतक नन्दबाबाके नटखट श्यामसुन्दर कन्हैया मेरी ओर आकर्षित हुए? उन्होंने आजतक कभी भी मुझे अपना चित्र बनानेके लिये नन्दभवनमें आमन्त्रित क्यों नहीं किया? निश्चय ही अभी मैं पूर्णरूपसे चित्रांकन-कलामें निपुण नहीं हो पायी हूँ। अचानक फिर उसे दूसरे ही क्षण याद आता—मथुरा-नरेशने भी तो मुझसे अपना चित्र बनवाया था और उस चित्रसे इतने सन्तुष्ट हुए थे कि उन्होंने अपने दरबारमें राज्यशिल्पी-जैसा उच्चस्थान प्रदान करना चाहा था। मैंने ही तो उनके प्रस्तावको ठुकरा दिया था।

चित्रा 'कृष्ण' के नटखट स्वरूपको हृदयमें बसा घण्टों गुमशुम बैठी रहती, सोचती रहती, कितना अच्छा होता यदि मैं चित्रकार न होकर 'ग्वालिन' होती। कृष्ण-कन्हैयाको रोज माखन खिला पाती, रोज उसे देख पाती। उसके साथ धेनु चराने भी चली जाती, भले ही कोई कुछ भी कहता। मैं किसीकी परवा न करती। इस प्रकार मन-ही-मन कृष्णका स्मरण करते हुए चित्रा राधाजीके भाग्यको सराहती तथा कभी-कभी उसे राधाजीसे ईर्ष्या-सी होने लगती। चित्रा सोचती कहाँ चितचोर सुन्दर श्याम और कहाँ वह गाँवकी राधा। उसके घाँघरेमें तो सदा गोबर लगा रहता है, पर भाग्य देखो, सदा श्यामसुन्दरका सामीप्य प्राप्त है उसे। धिक्कार है मुझे और मेरी कलाको, जो कृष्णके सामीप्यसे वंचित है!

इस प्रकार नित्य शुद्ध और पवित्र हृदयसे 'चित्रा' कृष्णका चिन्तन किया करती। श्रीकृष्ण तो सदासे ही भाव और भक्तिके भूखे, भक्तवत्सल और अन्तर्यामी हैं। वे चित्राके विचित्र एवं निर्मल-निर्भ्रम प्रेमसे अन्ततः एक दिन द्रवित हो ही उठे और अचानक घरमें रूठकर बैठ गये।

प्रातःकालका समय है, यशोदा मैया सोच रही हैं क्या बात है, आज लाला माखन माँगने नहीं आया! दूसरे दिनों तो भले ही सूर्य उदय होना भूल जाय, किंतु वह माखन माँगना नहीं भूलता। माखन, माखनकी रट लगा देता है। आज क्या बात है? माँ यशोदाकी चिन्ता स्वाभाविक थी। वे विचलित-सी हुईं नन्दबाबाके पास गयीं। पूछा—आपने कन्हैयाको कहीं भेजा है? नहीं तो, भला वह कोई कार्य करता है, जो मैं उसे कहीं भेजता! कल रात चन्द्रावलीकी मटकी फोड़ आया था। इसलिये भयवश मेरे सामने तो आ ही नहीं सकता। नन्दबाबाके उत्तरसे यशोदा अधिक चिन्तित हो उठीं, बोलीं—'अरे! तो फिर कहाँ गया?' इतनेमें ही आवाज आयी कृष्णकी—'मैया, अरी ओ मैया! मैं यहाँ हूँ, किंतु मैं क्यों बताऊँ कि मैं कहाँ हूँ। मैं तो आज रूठा हुआ हूँ और रूठनेवाला चुप रहता है, इसलिये मैं नहीं बताता।'

नन्दबाबा और माँ यशोदा दोनों अपने कान्हाकी ऐसी बातें सुनकर मुँह दबाकर हँसने लगे। मैयाने देखा आवाज पलंगके नीचेसे आ रही है। उन्होंने झुककर पलंगके नीचे देखा, कन्हैया मुँह फुलाये घुटने मोड़े चुपचाप बैठा है। पसीनेसे तर हुआ श्यामल मुँह

कुम्हला-सा गया है। यशोदा मैयाने प्रायः नीचे लेटते हुए पलंगके नीचेसे कन्हैयाको निकाला और वात्सल्यप्रेमके साथ अंकमें भरकर चूमने लगीं। फिर गोदमें बैठाकर प्रेमपूर्वक अपने आँचलसे कृष्णके शरीरका पसीना पोंछने लगीं। पुनः पंखा लहराते हुए पूछा—'क्यों रूठा है मेरा लाला! कुछ पता तो चले।' 'मुझे अपना चित्र बनवाना है' तुनककर बोले जगत्पिता बालरूप कृष्ण।

मैया यशोदाको जोरोंकी हँसी आ गयी। आज तुझे यह चित्र बनवानेकी क्या सूझी? रोज तो माखनके लिये रूठा करता था, फिर आज चित्रके लिये क्यों?

सभीके चित्र हैं हमारे भवनमें; केवल मेरा ही नहीं है, मेरे साथ यह अन्याय क्यों? मेरा भी चित्र तत्काल बनवाया जाय, सभी चित्रोंके ऊपर लगाया जाय, तभी मैं मानूँगा। अन्यथा रूठा ही रहूँगा। मचलते हुए कहा कृष्णने।

नरोत्तम कृष्ण जानते थे, मेरा रूठना न तो मैया सह सकती हैं और न नन्दबाबा। मेरे रूठे रहनेपर अवश्य ही मेरा चित्र बनवाया जायगा और चित्र बनानेके लिये मेरी प्रिय भक्ता चित्राको ही बुलाया जायगा। इस प्रकार चित्राकी मनःकामना पूर्ण की जा सकेगी। वही हुआ जो कृष्ण चाहते थे। चित्राको बुलवाया गया, वस्तुतः इसी बहाने श्रीकृष्ण चित्राको कुछ शिक्षा भी देना चाहते थे।

आज चित्राकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था। वह हर्षोत्फुल्ल हो रही थी, आज वह दिन आ गया था, जिसकी वर्षोंसे उसे प्रतीक्षा थी तथा जिस उद्देश्यसे उसने चित्रांकन-कलाको अपने जीवनयापनका माध्यम बनाया था। वह बेसुध-सी हुई नन्दभवन जानेकी तैयारीमें जुट गयी।

नन्दभवनमें बैठी हुई चित्रा कृष्णके स्वरूपका चिन्तन कर ही रही थी कि इतनेमें ही अचानक उसके जीवनाधार कृष्ण वहाँ आ पहुँचे। वे तुरंत एक छोटी-सी चौकीपर खड़े होते हुए चित्रासे बोले—'चित्र सुन्दर बनाना, मेरी तरह ही।' चित्रा भावविभोर हो अपलक कुछ क्षण कृष्णको निहारती रही। सुधि लौटनेपर एक हाथमें तूलिका पकड़ी और दूसरेमें चित्रपट और चाहा कि कृष्णका चित्र बनाना आरम्भ करूँ, पर यह क्या उसके हाथ शिथिल क्यों हो गये? तूलिकाको क्या हो गया, वह क्यों नहीं चलती? उसने अपने-आपको संयत किया और चित्र क्यों अंकित नहीं हो रहा है, इसका अनुसन्धान करने लगी। ओह! उसे ध्यान आया, कृष्ण तो टेढ़ा खड़ा है, कदाचित् यही कारण है जो चित्र नहीं बन पा रहा है। उसने कृष्णको आदेश दिया—'सीधे खड़े रहो।' कृष्णने शरारती लहजेमें कहा—'सखी! यह कैसे सम्भव है? मैं तो हमेशासे ही नटखट और टेढ़ा हूँ, मैं क्या-क्या चीजें सीधी करूँ? मेरा मुकुट टेढ़ा, मेरी बाँसुरी टेढ़ी, मेरा नाम टेढ़ा। क्या तुम नहीं जानती मेरा एक नाम बाँकेबिहारी भी है और बाँकेका अर्थ तो टेढ़ा ही होता है न? तुम एक काम करो, मेरा टेढ़ा ही एक चित्र बना दो।' चित्रा मन्त्रमुग्ध-सी हुई कृष्णके वचनोंको सुन रही थी। उसे ऐसा लगने लगा जैसे वह चित्रांकन करना ही भूल गयी है। जिस चित्राके हाथमें तूलिका आनेमात्रसे ही चित्र स्वयं ही बन जाया करते थे, वह आज हस्तविहीन-सी हो गयी थी। उसका शरीर रोमांचित हो थर-थर काँप रहा था। उससे कृष्णका चित्र नहीं बन रहा था। चित्रा किंकर्तव्यविमूढ़ हुई चुपचाप बैठ गयी। वह चित्र नहीं बना पानेके कारण लज्जाका अनुभव कर रही थी। उसकी आँखोंसे आँसू निकलना ही चाहते थे कि कृष्ण उसकी मनःस्थिति भाँपकर बोले—'अच्छा, ठहरो जरा! मैं माखन खाकर आता हूँ, तब बनाना मेरा चित्र। उस समय मेरा चित्र हृष्ट-पुष्ट बनेगा, अन्यथा मैं चित्रमें कमजोर-सा दीखूँगा।' कृष्ण चले गये बहाना बनाकर।

चित्रा अकेली रह गयी भवनमें, अब वह अपने आँसुओंके वेगको रोक नहीं पायी। सुबकते-सुबकते न जाने कब वह बेसुध-सी हो गयी या उसकी आँख लग गयी। उसने देखा कि कृष्ण उसके सामने खड़े हैं और उससे कह रहे हैं—'सखी चित्रे! मैं तुम्हारी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। यह सच है कि तुमने हमेशा मुझे अपना आराध्य माना, किंतु साथ ही तुम मेरी प्रियतमा, मेरी सर्वेश्वरी, मेरी शक्ति राधासे ईर्ष्या करती रही। किंतु भद्रे! कदाचित् तुम्हें ज्ञान नहीं कि मैं और राधारानी एक-दूसरेके अभिन्न अंग और पूरक हैं। राधाके बिना, हे चित्रे! मैं अधूरा हूँ, इसलिये ज्ञानी भक्त प्रायः यह

कहा करते हैं कि 'राधा बिना कृष्ण आधा' अर्थात् भद्रे! राधाके बिना मेरी भक्तिका कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता है और इसी कारण तुम मेरी छबि नहीं बना पा रही हो। चित्रा, यदि तुम्हें मेरा चित्र अंकित करना है तो मेरे इस स्वरूपको अपने हृदयमें स्थान दो।' ऐसा कहकर कृष्णने चित्राको अपने पूर्णस्वरूपका दर्शन कराया। चित्राने देखा कृष्णके शरीरका आधा भाग राधाका है और आधा भाग कृष्णका। चित्राने देखा कृष्णका सम्पूर्ण स्वरूप कभी राधाके स्वरूपमें परिवर्तित हो जाता और कभी कृष्णके स्वरूपमें तथा कभी आधे अंगमें कृष्ण होते और आधेमें राधा।

चित्रा कृष्णकी इस अद्भुत लीलाको देखकर तथा उनके पूर्णरूपको देखकर आश्चर्यचकित रह गयी। उसने स्वयंको धिक्कारा—'अरे, वह जिसे गाँवकी एक साधारण-सी बालिका, ग्वालिन, छोरी समझे बैठी थी, वह तो पराशक्ति है। वह तो कृष्णकी लीला-सहचरी है।'

अचानक उसकी चेतना वापस आयी। उसने सच्चे हृदयसे राधाका आह्वान किया, तुरंत ही उसने देखा चतुर्भुज-रूपमें तेजपुंज लिये राधा उसके सामने खड़ी मुसकरा रही हैं, साथमें खड़े हैं नटखट कन्हैया।

कहना न होगा कि उसके बाद चित्राने जो कृष्णका चित्र बनाया, वह अतिललित, सुन्दर तथा भक्तवत्सलतासे परिपूर्ण था। आज चित्राकी चित्रांकन-साधना पूर्ण हो गयी थी, आज उसके जीवनमें माधुर्य-रसकी अजस्र धारा प्रवाहित हो उठी थी।

भक्तिमती चित्राके इस वृत्तान्तसे यह स्पष्ट हो जाता है कि निरन्तरके ध्यानाभ्याससे और साधनादार्ढ्यसे भगवान्‌का मिलन सबके लिये सम्भव है। कहा भी है—

यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

श्रीराधामाधव-तत्त्वदर्शन

(श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु)

श्रीराधामाधवके रूपमें एक ही ज्योति दो प्रकारसे प्रकट है। जो श्रीकृष्ण हैं, वे ही श्रीराधा हैं, और जो श्रीराधा हैं, वे ही श्रीकृष्ण हैं।

श्रीराधा-माधव-चरण बंदौं बारम्बार।
एक तत्त्व दो तनु धरैं, नित-रस-पारावार॥

अनन्य प्रेम ही पूर्ण प्रियतम राधामाधवसे मिलनेका श्रेष्ठ साधन है। श्रीराधाजी प्रेममयी हैं और माधव आनन्दमय हैं।

श्रीराधामाधव अखण्डानन्दसौन्दर्यसुधानिधि हैं। वे अनन्तैश्वर्य, अपार सौन्दर्य, अनन्तशक्ति, अनन्तरससे परिपूर्ण हैं। इन्हींकी मधुरानुरागमयी उपासना करनी चाहिये।

'***तत्सुखे सुखित्वम्***' ही श्रीराधामाधवतत्त्वदर्शनका सार है, वस्तुतः श्रीराधामाधवरहस्यका समुद्घाटन साधारण मनुष्यके पक्षमें सहज-साध्य नहीं है। स्थितधी, ज्ञानी तथा भक्त साधकगण ही अवाङ्मनस-गोचर इन्द्रियातीत मुक्तिविधायक श्रीराधामाधवतत्त्वका दर्शन कर सकते हैं और अनिर्वचनीय तत्त्वकी समुपलब्धि कर सकते हैं।

रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव—ये सभी आह्लादिनी शक्तिके ही भाव हैं, इन सभी भावोंका जहाँ पूर्णतम प्रकाश, अनन्ततम प्रकाश है, वह श्रीराधाभाव है और राधा ही माधवका आनन्द है। श्रीमाधव ही अपने नित्य सौन्दर्य-माधुर्यका समास्वादन करनेके लिये स्वयं अपनी ह्लादिनी शक्तिको श्रीराधास्वरूपमें अभिव्यक्त किये हुए हैं।

अन्तर्बहिःस्थ जय माधव वासुदेव
आयाहि हेऽम्ब करुणामयि राधिके त्वम्।
इन्द्रस्य मान-बलदारण नन्दसूनो
ईड्यारविन्दचरणाय नमो नमस्ते॥

व्यापकरूपसे प्राणिमात्रके अन्दर और बाहर विराजित श्रीमाधव! भगवान् वासुदेव! आपकी जय हो। हे मातः करुणामयी श्रीराधे! आइये! इन्द्रदेवके अभिमान एवं पराक्रमको विदीर्ण करनेवाले हे नन्दनन्दन! स्तुतियोग्य आपके चरणारविन्दोंमें बार-बार नमन है।

'द्वारकाधीश श्रीकृष्णका राधाजीसे सिद्धाश्रममें पुनर्मिलन'

एक समय भगवान् श्रीकृष्ण अपने परिजनोंसहित द्वारकासे सिद्धाश्रम नामक गणेशतीर्थ पधारे और उसी समय गोप-गोपियों और नन्दजी आदिके साथ श्रीराधाजी गणेशजीकी आराधनाके लिये सिद्धाश्रम आयीं। भगवान् श्रीकृष्णने नन्द आदिसे भेंट की, तदनन्तर वे राधाजीसे मिलने गये। वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्णने सुन्दरी राधाको देखा। प्राणवल्लभा श्रीराधाने भी दूरसे ही श्रीकृष्णको आते देखा। उन्हें देखकर वे तुरन्त ही उठ खड़ी हुईं और परम भक्तिपूर्वक उन परमेश्वरको सादर प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगीं।

तत्पश्चात् वे प्रियतम श्रीकृष्णसे एकान्तमें मुसकराती हुई मधुर वचन बोलीं—'नाथ! जो स्वयं मंगलोंका भण्डार, सम्पूर्ण मंगलोंका कारण, मंगलरूप तथा मंगलोंका प्रदाता है; उसके विषयमें कुशल-मंगलका प्रश्न करना तो निरर्थक ही है; तथापि इस समय कुशल पूछना समयानुसार उचित है; क्योंकि लौकिक व्यवहार वेदोंसे भी बलवान् माना जाता है। इसलिये रुक्मिणीकान्त! आप सकुशल तो हैं न? सत्यभामाके प्राणपति! इस समय सत्यभामा तो कुशलसे हैं न? जिनकी आज्ञासे आपने लीलापूर्वक देवराज इन्द्रके साथ युद्ध किया था। इस प्रकारसे परिहासपूर्वक अनेक बातें पूछती हुई राधाजी विरहजनित मानके कारण आवेशमें आकर सहसा मूर्च्छित हो गयीं।

उनकी चेतनाशून्य दशासे गोपियोंने समझा कि हाय! क्या नाथके संयोगने ही हमें अनाथ कर दिया। वे चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगीं—

'श्रीकृष्ण! तुमने यह क्या किया? यह क्या किया? हाय! हमारी राधिका तो प्राणोंसे वियुक्त हो गयी। तुम्हारा मंगल हो, तुम शीघ्र ही हमारी राधाको जीवित कर दो; हम उनके साथ वृन्दावनको जाना चाहती हैं। यदि तुमने ऐसा न किया तो हम सभी स्त्री-वधका पाप तुम्हारे सिर मढ़ेंगी।' क्या खूब! श्रीराधा क्या श्रीकृष्णकी नहीं थीं, जो उनके लिये इतने कड़े शब्दोंका प्रयोग किया गया? परंतु प्रणयकोपने गोपियोंको यह बात भुला दी थी। उनकी ऐसी आतुरता देखकर भगवान्ने अपनी अमृतमयी दृष्टिसे राधामें जीवनका संचार कर दिया। मानिनी राधा रोती-रोती उठ बैठीं। गोपियोंने उन्हें गोदमें लेकर बहुत कुछ समझाया-बुझाया, परंतु उनका कलेजा न थमा। अन्तमें श्रीकृष्णचन्द्रने राधाजीसे अपने तथा राधाजीके तात्त्विक स्वरूपका गम्भीर प्रतिपादन किया। राधा-माधवकी पारस्परिक अभिन्नता और अलौकिक महिमाका यह वर्णन ब्रह्मवैवर्तपुराण*में प्राप्त होता है। वहाँ श्रीकृष्ण राधाजीको प्रबोधित करते हुए कहते हैं—

---

* जात्याहं जगतां स्वामी किं रुक्मिण्यादियोषिताम्। कार्यकारणरूपोऽहं व्यक्तो राधे पृथक् पृथक्॥
एकात्माहं च विश्वेषां जात्या ज्योतिर्मयः स्वयम्। सर्वप्राणिषु व्यक्त्या चाप्याब्रह्मादितृणादिषु॥

× × × ×

जात्याहं कृष्णरूपश्च परिपूर्णतमः स्वयम्। गोलोके गोकुले रम्ये क्षेत्रे वृन्दावने वने॥
द्विभुजो गोपवेषश्च स्वयं राधापतिः शिशुः। गोपालैर्गोपिकाभिश्च सहितः कामधेनुभिः॥
चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे द्विधारूपः सनातनः। लक्ष्मीसरस्वतीकान्तः सततं शान्तविग्रहः॥
यन्मानसी सिन्धुकन्या मर्त्यलक्ष्मीपतिर्भुवि। श्वेतद्वीपे च क्षीरोदे तत्रापि च चतुर्भुजः॥
अहं नारायणर्षिश्च नरो धर्मः सनातनः। धर्मवक्ता च धर्मिष्ठो धर्मवर्त्मप्रवर्तकः॥
शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपा च धर्मिष्ठा च पतिव्रता। अत्र तस्याः पतिरहं पुण्यक्षेत्रे च भारते॥
सिद्धेशः सिद्धिदः साक्षात्कपिलोऽहं सतीपतिः। नानारूपधरोऽहं च व्यक्तिभेदेन सुन्दरि॥
अहं चतुर्भुजः शश्वद् द्वार्वत्यां रुक्मिणीपतिः। अहं क्षीरोदशायी च सत्यभामागृहे शुभे॥
अन्यासां मन्दिरेऽहं च कायव्यूहात् पृथक् पृथक्। अहं नारायणर्षिश्च फाल्गुनस्यास्य सारथिः॥
स नरर्षिर्धर्मपुत्रो मदंशो बलवान् भुवि। तपसाराधितस्तेन सारथ्येऽहं च पुष्करे॥

'राधे! तुम मुझे अपनी ही स्वरूपभूता रुक्मिणी आदि महिषियोंका पति मानकर क्यों दुःख करती हो? मैं तो स्वभावसे ही सभीका स्वामी हूँ। राधे! कार्य और कारणके रूपमें मैं ही अलग-अलग प्रकाशित हो रहा हूँ। मैं सभीका एकमात्र आत्मा हूँ और अपने स्वरूपमें प्रकाशित हूँ। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त समस्त जीवोंमें मैं ही व्यक्त हो रहा हूँ। मैं स्वभावसे ही परिपूर्णतम श्रीकृष्णस्वरूप हूँ। दिव्यधाम, गोलोक तथा सुरम्य क्षेत्र गोकुल और वृन्दावनमें मेरा निवास है। मैं स्वयं ही द्विभुज गोप-वेषसे तुम्हारे परम प्रियतम बालकरूपमें गोप-गोपी और गौओंके सहित वृन्दावनमें रहता हूँ। वैकुण्ठमें मेरा परम शान्त सनातन चतुर्भुज रूप है, वहाँ मैं लक्ष्मी और सरस्वतीका पति होकर दो रूपोंमें रहता हूँ। पृथ्वीमें समुद्रकी जो मानसी कन्या मर्त्यलक्ष्मी है, उसके साथ मैं श्वेतद्वीपमें क्षीरसमुद्रके भीतर चतुर्भुजरूपसे रहता हूँ। मैं ही धर्मस्वरूप, धर्मवक्ता, धर्मनिष्ठ, धर्ममार्गप्रवर्तक ऋषिवर नर और नारायण हूँ। पुण्यक्षेत्र भारतमें धर्म-परायणा पतिव्रता शान्ति और लक्ष्मी मेरी स्त्रियाँ हैं, मैं उनका पति हूँ तथा मैं ही सिद्धिदायक सिद्धेश्वर सतीपति मुनिवर कपिल हूँ। सुन्दरि! इस प्रकार मैं नाना रूपोंसे विविध व्यक्तियोंके रूपमें विराजमान हूँ। द्वारकामें मैं चतुर्भुजरूपसे सर्वदा श्रीरुक्मिणीजीका पति हूँ और सत्यभामाके शुभ गृहमें क्षीरोदशायी भगवान्के रूपसे रहता हूँ। इसी प्रकार अन्यान्य महिषियोंके महलोंमें भी मैं पृथक्-पृथक् शरीर धारणकर रहता हूँ। मैं ही अर्जुनके सारथिरूपसे ऋषिवर नारायण हूँ। मेरा अंश धर्म-पुत्र नर-ऋषि ही महाबलवान् अर्जुनके रूपमें प्रकट हुआ है। इसने मुझे पानेके लिये पुष्कर क्षेत्रमें मेरी आराधना की थी। और राधे! तुम भी जिस प्रकार गोलोक और गोकुलमें राधारूपसे रहती हो, उसी प्रकार वैकुण्ठमें महालक्ष्मी और सरस्वती होकर विराजमान हो। तुम ही क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णुकी प्रिया मर्त्यलक्ष्मी हो और तुम ही धर्म-पुत्र नरकी कान्ता लक्ष्मीस्वरूपा शान्ति हो तथा तुम ही भारतमें कपिलदेवकी प्रिया सती भारती हो। तुम ही मिथिलामें सीताके रूपसे प्रकट हुई थी और तुम्हारी ही छाया सती द्रौपदी है। तुम ही द्वारकामें महालक्ष्मी रुक्मिणी हो, तुम ही अपने कलारूपसे पाँचों पाण्डवोंकी प्रिया द्रौपदी हुई हो तथा तुम्हींको रामकी प्रिया सीताके रूपसे रावण हर ले गया था। अधिक क्या कहूँ—'जिस प्रकार अपनी छाया और कलाओंके द्वारा तुम नाना रूपोंमें प्रकट हुई हो, हे सति! उसी प्रकार अपने अंश और कलाओंसे मैं भी विविध रूपोंमें प्रकट हुआ हूँ। वास्तवमें तो मैं प्रकृतिसे परे सर्वत्र परिपूर्ण साक्षात् परमात्मा हूँ। सति! मैंने तुमको यह सम्पूर्ण आध्यात्मिक रहस्य सुना दिया। मेरी परम ईश्वरी राधे! तुम मेरे सब अपराध क्षमा करो।'

भगवान्के ये गूढ़ रहस्यमय वचन सुननेपर श्रीराधिका और गोपियोंका क्षोभ दूर हो गया, उन्हें अपने वास्तविक स्वरूपका भान हो गया और उन्होंने चित्तमें प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया।

यथा त्वं राधिका देवी गोलोके गोकुले तथा। वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्भवती च सरस्वती॥
भवती मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदशायिनः प्रिया। धर्मपुत्रवधूस्त्वं च शान्तिर्लक्ष्मीस्वरूपिणी॥
कपिलस्य प्रिया कान्ता भारते भारती सती। त्वं सीता मिथिलायां च त्वच्छाया द्रौपदी सती॥
द्वारवत्यां महालक्ष्मीर्भवती रुक्मिणी सती। पञ्चानां पाण्डवानां च भवती कलया प्रिया॥
रावणेन हता त्वं च त्वं च रामस्य कामिनी। नानारूपा यथा त्वं च छायया कलया सति॥
नानारूपस्तथाहं च स्वांशेन कलया तथा। परिपूर्णतमोऽहं च परमात्मा परात्परः॥
इति ते कथितं सर्वमाध्यात्मिकमिदं सति। राधे सर्वापराधं मे क्षमस्व परमेश्वरि॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्म० १२४। ८२-८३, ८५—१०१)

[ख] रासलीला एवं रासतत्त्व

रासके उदय और विकासका संक्षिप्त इतिहास

(श्रीरामनारायणजी अग्रवाल)

भारतीय काव्यमें शृंगाररसको 'रसराज' का पद दिया गया है और शृंगाररसके देवता भगवान् श्रीकृष्ण स्वीकार किये गये हैं। ऐसी दशामें रसिकशिरोमणिद्वारा नाचे गये नृत्यको रास कहकर हमारे साहित्यकारोंने सचमुच बहुत उचित ही काम किया है।

भगवान् श्रीकृष्णके नृत्यमें ब्रजबालाओंने केवल शृंगाररसके सर्वोत्कृष्ट पावन रूपकी प्रत्यक्षानुभूति ही नहीं की, वरन् ब्रजवासियोंके हृदयमें भी नट-नागर मन-मोहनके ये नृत्य नाना प्रकारके स्थायी और संचारी भावोंका उद्रेक प्राय: करते थे। अत: विविध रसों और भाव-अनुभावोंसे युक्त नट-नागर भगवान् श्रीकृष्णद्वारा नाचे गये नृत्य 'रास' कहे गये; रस-निष्पत्तिकी परिपूर्णताके कारण इन्हें रास कहा गया। हमारे विचारसे रास शब्दके तात्पर्य-निर्णयार्थ यही मत युक्ति-युक्त है।

रासक और रास—भरतमुनिके 'नाट्य-शास्त्र' और पुराण-ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि प्राचीन समयसे ही हमारे देशमें रास नृत्योंका प्रचलन था। भरतमुनिने अपने 'नाट्य-शास्त्र' में नाटकके 'उपरूपकों' में जिस 'रासक' का उल्लेख किया है, वह वर्तमान रासका ही पूर्व-रूप था, क्योंकि भरतमुनिने 'रासक' के जो तीन भेद बतलाये, हैं, वे इस प्रकार हैं—

तालं रासकनाम स्याच्च त्रेधा रासकं स्मृतम्।
दण्डरासकमेकं च तथा मण्डलरासकम्॥

इस श्लोकसे प्रकट होता है कि भरतमुनिके समयतक 'रासक-नृत्य' के तीन रूप थे—

(१) ताल-रासक—इस नृत्यमें लय प्रधान थी, समूहमें निश्चित तालोंपर बल देकर नृत्य करना ही 'ताल-रासक' था।

(२) दंड-रासक—इस रासका कहीं-कहीं (लकुट-रासक) नामसे भी उल्लेख है। इसमें नृत्यकर्ता हाथमें लकड़ीके डण्डे लेकर उन्हें बजाते हुए नृत्य करते थे। नृत्य करनेकी यह प्रथा अहीर जातिमें, जिसमें भगवान् कृष्णका लालन-पालन हुआ था, बड़ी लोकप्रिय थी, आज भी वह परम्परा ब्रजके अहीरोंमें प्रचलित है और डण्डोंपर उनका यह नृत्य ब्रजके लोकनृत्योंमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

(३) मण्डल-रासक—रासका तीसरा रूप 'मण्डल-रासक' है, जिसमें स्त्री और पुरुष गोलाकार वृत्त बनाकर समूहनृत्य करते थे। रास-नृत्योंमें सबसे अधिक प्रधानता इसी नृत्यको प्राप्त हुई।

अब यदि हम ब्रजके वर्तमान रासकी इस 'रासक' से तुलना करें तो हमें ज्ञात होता है कि ब्रजके वर्तमान रासके रंगमंचपर होनेवाले नृत्योंमें भरतमुनिद्वारा कथित रासकके तीनों ही रूपोंका सुन्दर समन्वय है।

रास और हल्लीसक—भरतमुनिने अपने नाट्य-शास्त्रमें रासकके अतिरिक्त एक और नृत्यका भी उल्लेख किया, जो 'मण्डल-रासक' से मिलता-जुलता है। उन्होंने इस नृत्यको 'हल्लीश' कहा है। हल्लीश, हल्लीशक या हल्लीसक नृत्यका उल्लेख अन्य प्राचीन ग्रन्थोंमें भी मिलता है और अजन्ताकी गुफाओंमें भी इस नृत्यका एक चित्र उपलब्ध है। भरतके बाद वात्स्यायनने अपने कामसूत्रमें लिखा है, कि—

हल्लीशकक्रीडनकैर्गायनैर्नाट्यरासकैः ।

इस प्रकार वात्स्यायनके अनुसार हल्लीसक नृत्य 'नाट्य-रासक' से भिन्न नहीं था। वात्स्यायनके टीकाकार यशोधरने इस तथ्यको और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है—

मण्डलेन च यत्स्त्रीणां नृत्यं हल्लीसकं तु तत्।
नेता तत्र भवेदेको गोपस्त्रीणां यथा हरिः॥

इस व्याख्यासे स्पष्ट है कि नारियोंके समूहमें

मण्डलाकार नृत्य ही हल्लीसक नृत्य है, परंतु उसमें नेता (पुरुष) एक ही होता है; जैसे गोपांगनाओंमें भगवान् श्रीकृष्ण। ऐसा प्रतीत होता है कि 'मण्डल-रासक' में चाहे जितने स्त्री-पुरुष समूहमें नृत्य कर सकनेके लिये स्वतन्त्र कर दिये गये थे, किंतु हल्लीसक नृत्यमें स्त्रियोंके मध्यमें केवल एक ही पुरुषके नृत्यका विधान रहा होगा और इसी आधारपर हल्लीसक नृत्य और 'मण्डल-रासक' अलग-अलग कुछ समयतक अस्तित्वमें रहे होंगे, किंतु हल्लीसक नृत्य और 'मण्डल-रासक' नौवीं शताब्दीतक या इससे पहलेसे ही घुल-मिल गये थे। 'नाट्य-शास्त्र' के टीकाकार अभिनवगुप्तने इसका संकेत करते हुए कहा है—

मण्डलेन तु यन्नाट्यं हल्लीसकमिति स्मृतम्।

यही नहीं, पुराण-ग्रन्थोंमें सबसे प्राचीन और ऐतिहासिक दृष्टिसे अधिक प्रामाणिक हरिवंश-पुराणके द्वितीय पर्वके बीसवें अध्यायका नाम भी 'हल्लीसक-क्रीड़न' है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ शरद्-ज्योत्स्नामें रासका भव्य वर्णन है।[1]

रास-लीलाओंका प्रारम्भ—रासको अभिनीत करनेकी यह परम्परा कब आरम्भ हुई—इस सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतमें उल्लेख है कि शरद् निशामें यमुना-पुलिनपर भगवान् श्रीकृष्णने रासका आयोजन किया।[2] परंतु रासके बीचमें ही भगवान् श्रीकृष्णको अन्तर्धान हो जाना पड़ा, क्योंकि गोपियोंको यह अभिमान हो गया था कि भगवान् श्रीकृष्ण उनके वशमें हो गये हैं। परंतु भगवान्‌के अन्तर्धान होते ही गोपियोंका अभिमान चूर्ण हो गया और वे उनके विरहमें अत्यन्त कातर होकर यमुनातटपर आयीं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी ब्रज-लीलाओंका अभिनय करके उन्होंने श्रीकृष्णके सान्निध्यका अनुभव किया और उन्हें प्रसन्नकर पुनः प्राप्त किया। इसके उपरान्त स्वयं भगवान्‌ने यमुना-पुलिनपर उन्हें रास-रसका आस्वादन कराया।

इस कथासे ज्ञात होता है कि ब्रजमें रासका जो वर्तमान रंग-मंच है, इसके दो पृथक्-पृथक् भाग क्यों हैं? रासका प्रथम भाग, जो केवल नृत्य, गायन और वादनसे ही सम्बन्ध रखता है, और जिसे 'नित्य-रास' कहा जाता है, वह स्वयं भगवान् कृष्णद्वारा स्थापित है। वे ही इस रासके आदिप्रणेता है, परंतु रासका जो दूसरा भाग है, जिसमें भगवान् कृष्णके जीवनकी लीलाएँ अभिनीत होती हैं, उसका आरम्भ ब्रज-गोपियोंने किया था। भगवान् कृष्णके वियोगमें उनकी लीलाओंके अभिनयद्वारा गोपियोंने स्वयं भगवान् कृष्णका सान्निध्य अनुभव किया था, अतः भगवान् कृष्णकी लीलाओंके अभिनय (अनुकरण)-की आदि आरम्भकर्ता स्वयं ब्रजांगनाएँ हैं। सम्भवतः इसीलिये श्रीधरस्वामीजीने कहा था—

रासो नाम बहुनर्त्तकीयुक्तो नृत्यविशेषः।

ऐसी दशामें हमारे देशमें रासका रंगमंच उतना ही प्राचीन है, जितना स्वयं श्रीकृष्णभगवान्‌का ब्रज-लीलायुग।

रास-लीलाकी व्यापक लोकप्रियता—भगवान् कृष्णके सम्बन्धसे रास-लीलाका इस सम्पूर्ण देशमें व्यापक प्रचार हुआ। गुजरातके 'गरबा नृत्य' पर रासकी स्पष्ट छाप आज भी विद्यमान है। सूरतके निकटके ग्रामोंमें मोरपंख बाँधकर देवीके समक्ष जो नृत्य किया जाता है, वह 'धीर्‌या-रास' कहा जाता है। यही नहीं, प्राचीन समयमें भी ब्रजेतर भारतमें रास-लीलाओंके आयोजनोंके अनेक विवरण उपलब्ध हैं।

कहा जाता है कि १५वीं शताब्दीके प्रसिद्ध कृष्ण-भक्त नरसी मेहताने एकबार भगवान् कृष्णकी रास-लीलाका दर्शन किया था। वे हाथमें मशाल लिये लीला देख रहे थे। रासके दर्शनमें वे ऐसे

---

१. कृष्णस्तु यौवनं दृष्ट्वा निशि चन्द्रमसो वनम्। शारदीं च निशां रम्यां मनश्चक्रे रतिं प्रति॥ (हरिवंशपुराण २। २०। १५)

२. रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः। योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः॥ (श्रीमद्भा० १०। ३३। ३)

तल्लीन हुए कि उनका हाथ ही जल गया। हमारे एक अमरीकन मित्र डॉ० नारविन हाइनने (जो अमरीकासे भारत आये थे, और लगभग २ वर्षतक रास-लीला तथा उत्तर-भारतकी लोकवार्ताका अध्ययन करते रहे थे, चलते समय) हमें अमरीकामें छपी पुस्तकके एक चित्रकी प्रतिलिपि भेंट की थी, जिसमें किसी मरहठानरेशके दरबारमें रास-लीलाका प्रदर्शन चित्रित है। उस चित्रमें रास-लीलाकी वेश-भूषा आधुनिक वेष-भूषासे भिन्न है।

मणिपुरी नृत्य और रास-लीला—वर्तमान मणिपुरी नृत्यका आधार भी रास ही माना जाता है। एक अनुश्रुतिके अनुसार भगवान् शिवके संयोजकत्वमें देवताओं आदिने किसी समय रास-नृत्यका आयोजन किया था। यह नृत्य सात दिन और सात रात निरन्तर चला। बादमें नृत्यकी यह परम्परा ही 'मणिपुरी नृत्य' कहलायी।

कत्थक नृत्य और रास—कत्थक नृत्यका भी उदय राससे ही माना जाता है। कत्थक नृत्यका ही पुराना नाम 'नटवरी नृत्य' है। नटवरी नृत्यका अर्थ है नटवर (भगवान् कृष्ण)-द्वारा नाचा गया नृत्य। यही नहीं, रासके वर्तमान नृत्यों और कत्थक नृत्योंका मूल भी एक ही है और उनके नृत्य भी एक-जैसे ही हैं। अन्तर केवल यही है कि रासके नृत्य लोक-जीवनमें घुल-मिल गये हैं, जबकि कत्थक नृत्योंका आधार शास्त्रीय है।

भारतीय साहित्य और रास—रास-नृत्योंकी लोक-प्रियताका दूसरा बड़ा साक्षी भारतीय साहित्य है। जयदेवका गीत-गोविन्द, विद्यापति और चण्डीदासकी पदावली तथा हिन्दी और ब्रजभाषाका समस्त साहित्य तो रासके वर्णनोंसे परिपूर्ण है ही, साथ ही बंगालका 'ब्रज-बुलि' साहित्य तथा दक्षिणकी भाषाओंके साहित्यमें भी रासके बड़े भव्य वर्णन मिलते हैं। प्राचीन गुजराती साहित्यमें तो रासकी एक साहित्यिक परम्पराका ही उल्लेख श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीने अपने ग्रन्थ 'गुजराती एण्ड इट्स लिटरेचर' में किया है।

रासके नर्त्तक नट—इस प्रकार रासके ये नृत्य प्राचीन समयमें बहुत लोकप्रिय रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि नटजातिका रासके इन नृत्योंसे विशेष सम्बन्ध हो गया था और अपभ्रंशकालतक आते-आते ये नट लोग रास-नृत्योंमें पारंगत हो गये थे। मुनि जिनविजयजीको 'सन्देशरासक' नामक ग्रन्थ खोजमें मिला है। उसमें एक विरहिणी तथा एक पथिकके संवादका एक अंश इस प्रकार है—

विरहिणी—आप कहाँसे आ रहे हैं, कहाँ जायँगे? पथिक—भद्रे! मैं उस साम्बपुरसे आ रहा हूँ, जहाँ भ्रमण करते हुए स्थान-स्थानपर प्रकृतिके मधुर गान सुनायी पड़ते हैं। वेदज्ञ वेदकी व्याख्या करते हैं, कहीं-कहीं रासकोंका अभिनय नटोंद्वारा किया जाता है।

इस ग्रन्थसे जहाँ रासकोंकी जीवित परम्पराका पता लगता है, वहाँ रासनृत्योंसे नटजातिके सम्बन्धका भी पता लगता है। हिन्दीके भक्ति-युगतक रासपर नटोंका आधिपत्य अक्षुण्ण रहा, परंतु बादमें नटोंके हाथों रासका स्वरूप कदाचित् बिगड़ गया। इस सम्बन्धमें श्रीजीवगोस्वामीका यह कथन द्रष्टव्य है—

नटैर्गृहीतकण्ठीनां अन्योन्यात्तरकश्रियाम्।
नर्तकीनाम् भवेद्रासो मण्डलीभूय नर्तनम्॥

अर्थात् 'नट लोग नर्तकी-युग्मसमूहोंके कंठोंमें हाथ डालकर नर्तकीगणोंके साथ मण्डलाकार जो नृत्य करते हैं, उसीको रास कहते हैं।'

इस विवरणसे प्रतीत होता है कि भक्ति-कालतक आते-आते रासका यह रूप अधिक श्रृंगारिक हो गया था।

रासके वर्तमान रंगमंचका उदय—वर्तमान रासका यह रंगमंच कब स्थापित हुआ, इसका लिखित विवरण कहीं उपलब्ध नहीं होता। हाँ, ब्रजके पुराने रासधारी स्वामी राधाकृष्णदासके ग्रन्थ 'रास-सर्वस्व' से, जो अब अप्राप्य है, इस सम्बन्धमें कुछ अपूर्ण सूचनाएँ अवश्य मिलती हैं।

वर्तमान रास-लीलाके रंगमंचकी स्थापनामें महाप्रभु

वल्लभाचार्य, स्वामी हरिदास, महाप्रभु हितहरिवंश आदि महानुभावोंका प्रमुख हाथ था, ऐसा कहा जाता है। साथ ही ब्रजके रासधारियोंमें एक अनुश्रुति भी इस सम्बन्धमें प्रचलित है। कहा जाता है कि वर्तमान रासके रंगमंचकी स्थापना महाप्रभु वल्लभाचार्य और स्वामी हरिदासजीने मथुराके विश्रामघाटपर की थी। परंतु एक दिव्य कारणवश वह रास अधूरा ही रह गया।

उधर करहला गाँवमें घमण्डदेव नामक एक साधु कदमखण्डीमें निवास करते थे और भगवान् कृष्णके प्रत्यक्ष दर्शनोंको बड़े लालायित थे। वे नित्यप्रति सरोवरसे मिट्टी लेकर उससे भगवान् कृष्णकी विविध लीलाओंकी झाँकियाँ बनाते और दिनभर लीला-रसमें निमग्न रहकर उन मूर्तियोंको सायंकाल कुण्डमें ही विसर्जित कर देते थे।

कहा जाता है कि प्रथम रासके असफल हो जानेपर महाप्रभु और स्वामीजीने इन्हीं श्रीघमण्डदेवजीको रासका आयोजन करनेकी प्रेरणा दी और कहा कि रासमें तुम श्रीप्रिया-प्रियतमके प्रत्यक्ष दर्शनका सुख प्राप्त करोगे। आचार्योंकी यह आज्ञा शिरोधार्य करके श्रीघमण्ड-देवजीने करहलाके उदयकरण और खेमकरण नामक दो ब्राह्मणोंकी सहायतासे रासका आयोजन किया और इस प्रकार ब्रजके गाँव करहलासे, १६वीं शताब्दीमें रासका रंगमंच पुनर्गठित हुआ।

'रासवर्वस्वकार' ने भी अपने ग्रन्थमें उक्त घटनाका उल्लेख किया है, किंतु उन्होंने श्रीवल्लभाचार्यजीका नाम स्पष्ट रूपसे नहीं लिया। केवल विष्णुस्वामीमतके पोषक आचार्य कहकर एक अस्पष्ट संकेतमात्र किया है, किंतु स्वामी हरिदासजीका नाम रासके प्रेरकके रूपमें उन्होंने स्पष्टतासे लिखा है। इस कथनके अतिरिक्त भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने भी कई स्थलोंपर श्रीहरिदासजीके रासलीलासे सम्बन्धित होनेका उल्लेख किया है।

ग्राउस महोदयने श्रीनारायणभट्टको रासका आरम्भकर्ता कहा है। यह ठीक है कि रासके विकासमें नारायणभट्टजीका भाग बड़ा महत्त्वपूर्ण है, जिसके कारण कुछ व्यक्ति उन्हें ही रासलीलाका आरम्भकर्ता मान लेते हैं। यही नहीं, ग्राउस महोदयने भी कुछ ऐसी पुस्तकोंके आधारपर अपने 'मथुरा मेमोयर' में नारायणभट्टजीको रासका आरम्भकर्ता कहा है।

हम इस सम्बन्धमें इतना तो कह ही सकते हैं कि हमारी वर्तमान रासलीलाओंके जनक घमण्डदेवजी सं० १५४८ के लगभग अवश्य वर्तमान रहे होंगे, अतः यदि वे नारायणभट्टके पूर्ववर्ती नहीं भी हों तो भी उनसे वयोवृद्ध अवश्य थे। हमारा अनुमान है कि घमण्डदेवजीकी मृत्यु नारायणभट्टजीके आगमनसे पूर्व ही हो चुकी थी।

करहला रासका मुख्य गढ़ रहा है, यह उस गाँवके वातावरणसे ही स्पष्ट लक्षित होता है, परंतु कालान्तरमें उसने उसके विकासमें कोई महत्त्वपूर्ण योग नहीं दिया। वास्तवमें उसके व्यापक प्रचार, मौलिक सुधार तथा विकासका सारा श्रेय श्रीनारायणभट्ट और उनके परिकरोंको ही है।

हमारा अनुमान है कि ब्रजमें आकर श्रीनारायणभट्टने रासका जो स्वरूप प्रचलित देखा, वह उन्हें अधिक आकर्षक प्रतीत नहीं हुआ। इसलिये भट्टजीने करहलाके ही दो ब्राह्मण रामराय और कल्याणरायके अतिरिक्त बादशाहकी सेवासे अवकाशप्राप्त सुप्रसिद्ध नर्तक वल्लभके सहयोगसे रासको शास्त्रीय रूप देकर प्रचलित किया और रासके नव-विकासकी योजना बनायी। श्रीनारायण भट्टजीने ही स्थान-स्थानपर पृथक्-पृथक् लीलाओंका स्थान निर्दिष्ट करके रास-मण्डलोंका निर्माण भी कराया, जैसा कि भक्तमालके अतिरिक्त ध्रुवदासजीके निम्न दोहेसे भी प्रकट होता है—

भट्ट नराइन अति सरस, ब्रज-मण्डल सों हेत।
ठौर-ठौर रचना करी, निकट जान संकेत॥

नारायणभट्टजीद्वारा स्थापित यह परम्परा बड़ी लोकप्रिय सिद्ध हुई और रास-लीलाका सर्वतोमुखी विकास हुआ। नर्तक वल्लभका सहयोग रासकी सफलताका एक प्रमुख कारण बना। यह नर्तक बड़ा गुणी था। वल्लभकी नृत्य-कुशलताकी सराहना स्वयं नाभादासजीने निम्न छप्पयमें की है—

नृत्य गान गुन निपुन रास में रस बरषावत।
अब लीला ललितादि बलित दंपतिहि रिझावत॥

अति उदार निस्तार सुजस ब्रज मंडल राजत।
महा महोत्सव करत बहुत सबही सुख साजत॥
श्रीनारायन भट्ट प्रभु परम प्रीति रस बस किए।
ब्रजबल्लभ बल्लभ परम दुर्लभ सुख नैननि दिए॥

वल्लभजीकी नृत्य-कुशलता और नट-नागर श्रीकृष्णके नृत्यप्रधान व्यक्तित्वका रासपर बहुत ही व्यापक प्रभाव पड़ा है। रासके प्रत्येक संवाद और कथनोंमें संकेतों और नृत्योंका प्रचलन सर्वत्र व्याप्त रहता है।

इस प्रकार नारायणभट्टजीने रासके मूलरूपका जीर्णोद्धार करके उसे शास्त्रीय रूप दिया और इस दृष्टिसे वे निश्चित रूपसे रास-लीलाओंके एकमात्र आचार्य कहे जाने चाहिये; क्योंकि उनके बाद रासकी निश्चित प्रणालीमें कोई विशेष परिवर्तन किये गये हों, ऐसा प्रतीत नहीं होता। उन्होंने स्थान-स्थानपर रास-मण्डल स्थापित कराकर उनका लोकजीवनसे घनिष्ठ सम्पर्क तो स्थापित किया ही, जैसा कि प्रियादासजीने लिखा है, साथ ही उन्होंने इससे भी महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि रासको केवल संगीततक ही सीमित न रखकर नृत्य, वादन और गायनके साथ-साथ अन्तमें उसे अभिनयका रूप भी दे दिया।

रासके इस इतिहास और विकाससे यह भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि अबतक रासका ब्रजके लोक-जीवनसे घनिष्ठ सम्पर्क रहा है, परंतु दुर्भाग्यकी बात है कि धीरे-धीरे रासका बहुत ह्रास हो गया है और अब इसके पुनर्गठनकी पुनः आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। इस सम्बन्धमें अब शीघ्र ही प्रयत्न किये जाने आवश्यक हैं।

श्रीसूरदास-काव्यमंजरी

कुंज-लीला

कुंज मैं बिहरत नवल किसोर।
एक अचंभो देखि सखी री उग्यो 'सूर' बिनु भोर॥
तहँ घन श्याम दामिनी राजत द्वै ससि चारि चकोर।
अंबुज खंजन मधुप मिलि क्रीड़त एकहिं खोर॥
तहँ द्वै कीर बिंब फल चाखत बिद्रुम मुक्ता चोर।
चारि मुकुर आनन पर झलकत नाचत सीसनि मोर॥
तामैं एक अधिक छबि सोहै हंस कमल इक ठौर।
हेमलता तमाल गहि द्वै फल मानौ देति अँकोर॥
कनकलता नीलम राजत उपमा कहँ सब थोर।
'सूरदास' प्रभु इहिं बिधि क्रीड़त ब्रज-जुवती-चित-चोर॥

'नृत्यत हैं दोउ स्यामा-स्याम'

नृत्यत हैं दोउ स्यामा-स्याम।
अंग मगन पिय तैं प्यारी अति, निरखि चकित ब्रज बाम॥
तिरप लेत चपला सी चमकति, झमकत भूषन अंग।
या छबि पर उपमा कहुँ नाहीं, निरखत बिबस अनंग॥
श्री राधिका सकल गुन पूरन, जाके स्याम अधीन।
संग तैं होत नहीं कहुँ न्यारे, भए रहत अति लीन॥
रस समुद्र मानौ उछलित भयौ, सुंदरता की खानि।
सूरदास-प्रभु रीझि थकित भए, कहत न कछू बखानि॥

'रास रस मुरली ही तैं जान्यौ'

रास रस मुरली ही तैं जान्यौ।
स्याम अधर पै बैठि नाद कियौ, मारग चंद हिरान्यौ॥
धरनि जीव जल थल के मोहे, नभ मंडल सुर थाके।
तृन द्रुम सलिल पवन गति भूले, स्त्रवन सब्द पर्‌यौ जाके॥
बच्यौ नाहिं पाताल रसातल, कितक उदै लौं भान।
नारद सारद सिव यह भाषत, कछु तनु रह्यौ न स्यान॥
यह अपार रस रास उपायौ, सुन्यौ न देख्यौ नैन।
नारायन धुनि सुनि ललचाने, स्याम अधर रस बेनु॥
कहत रमा सौं सुनि सुनि प्यारी, बिहरत हैं बन स्याम।
सूर कहाँ हम कौं वैसौ सुख, जो बिलसति ब्रज बाम॥

राधाकृष्णका दिव्य सौन्दर्य

नैन सफल अब भए हमारे।
देवलोक नीसान बजाए, बरषत सुमन सुधारे॥
जै-जै धुनि किन्नर-मुनि गावत, निरखत जोग बिसारे।
सिव-सारद-नारद यह भाषत, धनि-धनि नंद-दुलारे॥
सुर-ललना पति-गति बिसराए, रहीं निहारि-निहारि।
जात न बनै देखि सुर हरि कौ, आईं लोक बिसारि॥
यह छबि तिहूँ भुवन कहुँ नाहीं, जो बृंदाबन-धाम।
सुंदरता रस गुनकी सींवाँ, सूर राधिका श्याम॥

रासलीलाका रहस्य

(श्रीहबीबुर रहमान साहब)

कितने आश्चर्यकी बात है कि जो भारत-भूमि ब्रह्मविद्याका स्रोत और वेदान्तादि शास्त्रोंकी आदिप्रकाशिका है, जहाँ व्यास और पतंजलि-जैसे अध्यात्मवादी महात्मा सूर्य बनकर ऐसे चमके कि उनकी किरणोंकी दीप्तिसे अन्धकारयुक्त हृदयपटल भी जगमगा उठे, जहाँकी गीता कर्म करते हुए भी फलबद्ध न होनेका महत्त्वपूर्ण उपदेश दे रही है, वहींके कुछ 'भारतीय नामधारी' लोग आज विदेशी वातावरणसे प्रभावित होकर महाराज श्रीकृष्णकी रासलीलाको भी विवादग्रस्त समझने लगे हैं! मुझे इस लीलाके किसी विशिष्टरूपमें मानने या न माननेसे कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। मेरा ध्यान तो इस ओर केवल इस कारण आकृष्ट हुआ कि यदि इस प्रकारके आध्यात्मिक महत्त्वपूर्ण चमत्कारोंको केवल बाह्यदृष्टिके आधारपर 'प्राचीन रूढ़िवाद' या असम्भव कहकर ठुकरा दिया जाय, तो सारा अध्यात्मवाद (Spiritualism) और अनासक्तियोग ही समाप्त हो जाता है और प्रत्यक्षकृत निश्चित सिद्धान्त है कि बिना आध्यात्मिक आश्रय या अद्वैतानुसारिणी समताके समाजमें पारस्परिक, पूर्ण और अखण्डित सहानुभूति नहीं पैदा हो सकती और बिना इस 'अकृत्रिम सहानुभूति' के किसी भी नैतिक शैलीका अवलम्बन संसारयात्राके लिये कल्याणप्रद नहीं हो सकता; अत: न केवल अध्यात्मवादकी 'रक्षा', अपितु संसार-यात्राको 'सुखप्रद' बनानेके लिये, नैतिक दृष्टिसे भी इस विषयपर ध्यान देनेकी अत्यन्त आवश्यकता है और केवल मेरा ही नहीं, अपितु प्रत्येक प्रेम और भक्तिमार्गी तत्त्वान्वेषीका कर्तव्य है कि वह उक्त लीलाकी आध्यात्मिकता स्फुट करनेका प्रयत्न करे। अत: हिंदुस्तानके प्रसिद्ध अध्यात्मवाद या सूफीमतके प्रेमी और नीति-धुरन्धरोंकी सेवामें भी निम्नस्थ विचारावलीका अर्पण करना अयोग्य न होगा।

संस्कृत भाषामें उपमा और रूपकादि अलंकारोंकी अधिकता होनेके कारण किसी हदतक यह कहनेका अवसर अवश्य हो सकता है कि 'रासलीलाके श्रीकृष्ण और गोपियोंका अर्थ मनुष्य और उसकी वासनाएँ हैं, जो उसे तरह-तरहके नाच नचाया करती हैं इत्यादि····।' इस प्रकारकी भाव-परिवृत्ति या खींचातानीसे जिन लोगोंको शान्ति हो जाती है, वे शान्त रहें; मुझे उनसे कोई सम्बन्ध नहीं; परंतु मेरे विचारमें यह प्रकरण-विरोधी व्याख्या उस जन-समुदायके लिये पर्याप्त नहीं है, जो अन्तर्निलीन भावान्वेषी और मार्मिक वस्तुका अभिलाषी है और जो व्यासजीके सीधे-सादे शब्दोंसे हटना नहीं चाहता और न इसीको माननेके लिये तैयार है कि व्यासभगवान् 'काल्पनिक कथाओंके रूप' में अपना उपदेश किया करते थे तथा जिनकी धारणा है कि इस लीलामें यदि मनुष्यके लिये कोई महत्त्वपूर्ण विशेष उपदेश अन्तर्हित नहीं है, तो यह चीज श्रीकृष्ण-जैसे योगिराजके साथ सम्बद्ध ही कैसे हो गयी ? और न केवल उनसे सम्बद्ध हुई, प्रत्युत अबतक श्रद्धाकी दृष्टिसे देखी जाती है। इसके अतिरिक्त न केवल मेरे अपितु समस्त सहृदय संसारके अन्तस्तलमें यह अटल धारणा अंकित है कि कर्मकाण्ड या प्रवृत्तिमार्गके अतिरिक्त ईश्वरप्राप्तिका एक असाधारण मार्ग—भक्ति या प्रेम अर्थात् 'इश्की रास्ता' भी है, जिसके अग्रसर वल्लभ, तुलसी और सूर इत्यादिके चित्ताकर्षक चरित्र अबतक लोगोंके हृदयोंपर अलौकिक राज्य कर रहे हैं। अत: मैं हजरत, मिश्रीमजहर, जानजाना साहिबके निम्नलिखित सिद्धान्तानुसार मुस्लिम जनताके सामने भी स्वतन्त्रतापूर्वक उन्हींके शब्दोंमें कह सकता हूँ कि—'समस्त मार्गोंके जानकार होनेपर भी कृष्णजीकी अपनी प्रधान पद्धति मन्दिर और मस्जिदसे 'अलग' केवल 'प्रेम-पद्धति ही थी, इस कारण प्रेम-मार्गिक असाधारण भक्तिकी अलौकिक आकर्षण-शक्ति और उसके अनिवार्य चमत्कारोंपर ध्यान देनेके पश्चात् मेरा पूर्णप्राय विचार है कि यदि वास्तविक गोपियाँ ही अपने अलौकिक प्रेमद्वारा श्रीकृष्णपर मोहित होकर रासलीलाका कारण हुई हों, तो भी किसी वादीके विवादका कोई अवसर नहीं हो सकता।'

इस संक्षिप्त भूमिकाके पश्चात् निवेदन है कि

महाराज श्रीकृष्ण योगिराज थे, इस कारण उनकी 'रासलीला' का 'रहस्य' जाननेके लिये यौगिक ज्ञानसे परिचित होनेकी आवश्यकता है। इस सम्बन्धमें मुझे केवल यह कहना है कि इस बातको सभी सहृदयजन जानते हैं कि मनुष्य 'वैयक्तिक' और 'सामष्टिक' दोनों दृष्टियोंका स्रोत है और यही कारण है कि इसके आचरण और संकल्पोंमें भी इन दोनों दृष्टियोंकी पूरी झलक दिखायी देती है। कौन नहीं जानता कि जब मनुष्यपर वैयक्तिकता या अत्यन्त स्वार्थपरताका भूत सवार हो जाता है, तब अपने लाभके लिये उस पुत्रतकके प्राणान्तके लिये तैयार हो जाता है, जिसे उसने अपना ही रक्त और पसीना एक करके स्वयं ही पाला और पोसा था। इसके विपरीत कभी दूध पीते, किसी दूसरेके भी बुभुक्षित और तृषित बालकको दु:खसे बिलबिलाता देख, उसी मनुष्यका हृदय विदीर्ण हो जाता है। 'उसकी भूख' 'इसकी भूख' और 'उसकी प्यास' 'इसकी प्यास' हो जाती है और इस समानता और ऐक्यके उमड़े हुए स्रोतमें वैयक्तिक भित्तियाँ कम्पायमान और स्खलितप्राय हो जाती हैं; यहाँतक कि वही अपने पुत्रके प्राणान्तका इच्छुक मनुष्य, उस विपत्तिग्रस्त दुखित बालकके सुखके लिये, उस द्रव्यके व्यय करनेमें भी कोई कमी नहीं करता, जिसके लिये स्वयं अपने ही अंशस्वरूप पुत्रसे लड़नेके लिये तैयार हो गया था। सारांश यह कि अपनेको 'अन्य' मानकर दुत्कारने और अन्यको अपना समझकर गले लगानेकी लालसा मानुषी प्रकृतिमें विद्यमान है। स्फुट है कि इनमेंसे पहलीका 'स्रोत' वैयक्तिक दृष्टि या स्वार्थपरता है और दूसरेका 'आधार' वह सर्वव्यापी आन्तरिक 'अहंभाव' का 'अन्तर्निहित ज्ञान' है, जिसकी प्रेरणासे मनुष्य समय-समयपर दूसरोंपर बलि-प्रदान होता हुआ दिखायी देता है। बस, इन दोनों दृष्टियोंमेंसे सामान्यजन तो पहलीहीको अभीष्ट समझकर उसीपर टिक जाते हैं, परंतु योगी या सूफी इस स्वप्नवत् वैयक्तिकतासे उन्नत हो जाता है और उस जाग्रत् अवस्थाका अनुभव करता है, जहाँ यह वैयक्तिकता आत्मस्वरूपमें लय होकर अलक्षित हो जाती है। इस सारे लेखका अभिप्राय यह है कि योगी या वलीकी स्थिति सामान्य धार्मिकोंसे भिन्न हो जाती है। गीता भी कहती है—*'सर्वत्र समदर्शी योगी सर्वभूतोंमें अपनेको और अपनेमें सर्वभूतोंको स्थित देखता है' इत्यादि। गीताका यह और दूसरे श्लोक भी स्पष्ट रीतिसे स्फुट कर देते हैं कि योगीकी अवस्था सर्वसाधारणसे प्रतिकूल हो जाती है। इस अवस्थाविशेषके विवरणके अनन्तर, अब मैं रासलीलाकी शाब्दिक और मर्मस्पर्शी विवेचनाको भी आवश्यक समझता हूँ, जिससे हिन्दू-शास्त्रानुसार उसका वास्तविक अर्थ श्रीकृष्णभक्तोंके सामने स्फुट हो जाय। इस सम्बन्धमें निवेदन है कि हमारे भ्रातृगणोंका अपने धार्मिक ग्रन्थोंके आधारपर यह सिद्धान्त है कि उक्त लीलाके दर्शन, पठन और श्रवणादिसे निर्वाण अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है तथा उनका प्राचीन साहित्य यह भी उपदेश करता है कि मोक्ष वस्तुत: काल्पनिक—सांसारिक प्रपंचसे छूटकर ब्रह्ममें लीन हो जानेका नाम है और उसकी प्राप्ति ब्रह्मज्ञानके बिना सम्भव नहीं। इन विचारोंके अस्तित्वमें प्रत्येक तत्त्वान्वेषीका कर्तव्य है कि वह रासलीलाके ऐसे 'अर्थ' की अन्वेषणा करे, जिसमें उपर्युक्त मोक्षादि विचारोंके साथ-साथ चलनेकी पूरी सामर्थ्य और योग्यता विद्यमान हो। इस कार्यके लिये सबसे प्रथम अवतारवादके सिद्धान्तपर ध्यान देनेकी आवश्यकता है। अत: संक्षेपत: निवेदन है कि प्राचीन आर्य-तत्त्वान्वेषियोंने ईश्वरावतारको निम्नरीतिसे समझा है—

उस जगदाधार ब्रह्मकी शक्तियाँ जड और चेतन हर एकमें अपना प्रकाश करती हैं; इनकी पारस्परिक मात्रा या न्यूनाधिक्य समझनेके लिये इनकी सोलह कलाएँ (दर्जे) मानी गयीं हैं; इसके साथ ही यह भी स्वीकार किया गया है कि इस लौकिक सृष्टिमें ईश्वरीय कलाओंमेंसे एकसे लेकर आठतक ही सामान्य जनोंमें प्रकट हो सकती हैं। इसके पश्चात् अवतारकी भूमि आ जाती है, जहाँपर सामान्य जीवकी पहुँच नहीं हो

*-सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन:॥ (गीता ६। २९)

सकती। निष्कर्ष यह है कि नौवींसे लेकर सोलहवींतक जितनी भी कलाएँ किसी पुनीत सत्तामें आविर्भूत होती हैं, उसको पारिभाषिक भाषामें अवतार, ईश्वर या ब्रह्मांश कहा जाता है। अवतारकी इस विवेचना और रासलीलाकी उपर्युक्त मोक्षसम्बन्धी अन्वेषणाका ध्यान रखते हुए इस लीलाकी शाब्दिक समीक्षा निम्नरीतिसे होनी चाहिये—

'रास-लीला' शब्द मिश्रित है रास और लीलासे, पहला शब्द 'रास' रस शब्दसे 'तस्येदम्' सूत्रसे 'इदमर्थ' में 'अण्' प्रत्यय करनेसे बनता है और तैत्तिरीय उपनिषद्के वाक्य—[१] 'रस ब्रह्म है' के अनुसार 'रस' शब्दका अर्थ 'ब्रह्म' है; अत: रास शब्दका अर्थ हुआ ब्रह्मका 'पूर्णकलात्मक औपाधिक प्रादुर्भाव' और यह प्रादुर्भाव प्रधानतया महाराज श्रीकृष्णहीमें विद्यमान था; इसी कारण रास शब्दका वास्तविक 'अर्थ' औपाधिक पूर्ण ब्रह्म अर्थात् महाराज श्रीकृष्ण ही है। अब उस शब्दके द्वितीय अंश 'लीला' शब्दपर ध्यान दीजिये, 'लीला' शब्द भी 'ली' और 'ला'से मिश्रित है। ली धातुका अर्थ 'लय' होना और 'ला'का अर्थ है 'लेना'। दोनों शब्दोंका पूर्ण अर्थ—'लियं लातीति लीला' अर्थात् तन्मयता तद्रूपता प्राप्त करानेवाला 'क्रिया-विशेष' हुआ और 'रासलीला' शब्दका प्रसंगयुक्त अर्थ हुआ पूर्णावतार महाराज श्रीकृष्णमें लय करानेवाली क्रिया अथवा 'योगात्मक चमत्कारविशेष'। सारांश यह कि इसी रासलीलाके द्वारा लीलात्मक-कृष्ण-रूपधारी ब्रह्मने व्रजांगनाओंको आत्मस्वरूपमें लय करके परमपदतक पहुँचा दिया।

गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रमें ध्यानावस्थित होकर तल्लीनता तक कैसे पहुँचीं, इसका विवरण निम्नलेखानुसार है—

पुराणग्रन्थोंके अवलोकनसे ज्ञात होता है कि श्रीकृष्णके साथ गोपियोंका प्रेम उच्चकोटिक पूर्णासक्ति या प्रेमकी अन्तिम अवस्थातक पहुँच गया था और इस अवस्थाका अनिवार्य परिणाम यह है कि प्रेमीका चित्त प्रियतमके अतिरिक्त अन्य समस्त सांसारिक वासनाओं (चित्तवृत्तियों)-से शून्य होकर सर्वथा उसीमें समा जाय; क्योंकि पूर्णासक्तिका अभिप्राय ही यह है कि प्रेमीके चित्तमें अपने अभीष्टकी प्राप्तिके लिये पूर्ण अभिलाषा अर्थात् आकांक्षा उत्पन्न हो जाय और आकांक्षा उस समयतक पूर्ण नहीं कही जा सकती, जबतक कि चित्त पूर्णरूपसे एकाग्र होकर अपनी सम्पूर्ण ध्यान-शक्ति केवल एक ही ध्येयमें न लगा दे; और जब चित्तका पूर्ण ध्यान एक ही ध्येयमें लग गया, तब फिर उसमें उस प्रियतमके अतिरिक्त और किसी पदार्थका स्थान ही कहाँ रह गया? अत: यह नितान्त सत्य है कि पूर्णानुरागमें प्रेमीका चित्त प्रियतमके अतिरिक्त समस्त सांसारिक वृत्तियोंसे सर्वथा शून्य हो जाता है। महामना भवभूति भी मालतीके विरहमें माधवकी अवस्थाको चित्रित करते हुए तन्मयताहीका दृश्य प्रदर्शित कर रहे हैं—

'[२]मैं' उस (मालती)-को इधर-उधर, आगे-पीछे, भीतर-बाहर और चारों ओर देख रहा हूँ, उस अवस्थामें जब कि विकसित मुग्ध स्वर्ण-कमलके सदृश उसके आननमें स्थित आँखें मेरी आसक्तिवश (मुझे देखनेके लिये) तिरछी हो गयी थीं।'

और यही भाव अरबीके[३] इस वाक्यका है कि पूर्णासक्ति एक देदीप्यमान अग्नि है, जो प्रियतमके अतिरिक्त अन्य समस्त पदार्थोंको भस्म कर देती है।

योगदर्शन भी कहता है कि जिस[४] तरह बिल्लौर मणि अपने समीप स्थित वस्तुसे प्रभावित होकर उसीके रंग-रूपमें रँग जाती है, उसी तरह वह चित्त, जो संसार और तद्गत-पदार्थोंसे शून्य होकर स्वच्छ हो जाता है, जिस वस्तुकी ओर ध्यान देता है उसीके रूपमें ढल जाता है। फारसी साहित्यमें भी इसी अवस्थाका चित्र चित्रित है—'[५] जब मैं सिरसे पैरतक तेरी अभिलाषामें खुद ही

१-रसो वै स:।

२-पश्यामि तामित इत: पुरतश्च पश्चादन्तर्बहि: परित एव विवर्तमानाम्। उद्बुद्धमुग्धकनकाब्जनिभं वहन्तीमासक्तितिर्यगपवर्तितदृष्टि वक्त्रम्॥

३-अलइश्को नारुन्, यहरूको मासिवल्महबूब।

४-क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनतासमापत्ति:। (१।४१)

५-चूँ मन्जे सरतापाय खुद सरफे तमन्नायत शुदम् हेचम् नर्मादा ताजनम् हर्फे तमन्नाये दिगर।

व्यय हो गया, तब कुछ अवशिष्ट ही नहीं रहा, जिसकी अभिलाषा करूँ।'

इस पूर्ण एकाग्रता या सामाधिक संसारमें जब प्रियतम और प्रेमीके बीचका पर्दा उठ जाता है, तब प्रेमी 'वह प्रेमी' और प्रियतम 'वह प्रियतम' नहीं रहता। उस समयकी अवस्था वाक्‌शक्तिसे परे हो जाती है। उर्दू-साहित्यकी भावना भी इस सम्बन्धमें अपना यही विचार प्रदर्शित कर रही है—

'कहूँ क्या कि खिलवते खासमें जो हिजाब बीचसे उठ गया।
न वह तुम रहे, न वह हम रहे, जो रही सो बेखबरी रही॥

इस पद्यके उत्तरार्धसे प्रकट होता है कि उच्चकोटिके प्रेमीका आन्तरिक ध्येय वास्तवमें प्रियतमका अस्थिपिंजररूपी कलेवर नहीं होता, अपितु उसकी दृष्टिका अन्तिम और आभ्यन्तरीय केन्द्र 'ऐसे' और 'वैसे' की सीमासे बाहर—वह मूक कर देनेवाली—अलौकिक और प्रकाशात्मक छटा होती है, जिसके आविर्भावकी ओर पद्यके उत्तरार्ध—'न वह तुम रहे, न वह हम रहे' में परामर्श किया गया है; और स्फुट है कि यह वही अखण्ड सौन्दर्य-सूर्य है, जिसकी किरणोंसे समस्त सांसारिक चन्द्रवदनोंके आनन चमक रहे हैं और जो सबसे परे और निर्लिप्त होनेपर भी सबको प्रकाशित कर रहा है। जैसा कि श्रुति भी कहती है कि [१]यह सब (जगत्) उसीके प्रकाशसे प्रकाशित हो रहा है; अपि च [२]यही उस (ईश्वर)-का परम आनन्द है। अन्य सर्वभूत इसी आनन्दकी आंशिक मात्रासे जीवित रहते हैं। उर्दू-कविताके चमकीले मोतियोंमें भी इसी श्रुति-सिद्धान्तकी रोशनी जगमगा रही है। यथा—

उसीकी शोखी[३] शरारमें[४] है, उसीकी गर्मी चुनार[५] में है।
वह आब[६] हर सब्जाजारमें[७] है वह लाला[८] हर कोहिसार[९] में है॥

अनुरागके इसी पवित्र, भौतिक वासनारहित उच्चकोटिक-पदके लिये अरबी-साहित्यका वाक्य है—'अनुराग तो ब्रह्मप्राप्तिकारक एक अग्नि है।' कुछ लोगोंने एक पग और आगे बढ़ाया और बोल उठे—'इश्क अर्थात् अनुराग तो वही अल्लाह है, वही अल्लाह वही अल्लाह[१०] और यही अनुरागरागिनी पाश्चात्य कवियोंने इस प्रकार गायी है कि 'अनुराग ब्रह्म है' और 'ब्रह्म' अनुराग। उपर्युक्त सहृदय तत्त्वदर्शियोंके अनुभवके अतिरिक्त प्रियतम और प्रेमीकी उक्त एकरूपताका रहस्य हर व्यक्ति खुद अपनी ही सत्तामें देख सकता है। मेरा अभिप्राय यह है कि सांसारिक जीव, शारीरिक वासनाधार अपनी 'देह' पर आसक्त होकर उससे ऐसा संसक्त हो गया, जैसा कि बीजोत्पन्न वृक्ष, कलमी वृक्षसे 'बँध' जाता है और जीव भी, उसी तरह शारीरिक रंग-रूप और गुणोंमें डूबकर शरीर हो गया है, जैसे कि बीजोत्पन्न या कटा पेड़ कलमी पौधेसे बँधकर 'कलमी' हो जाता है। तार्किक जनोंके लिये विशिष्ट विवरण यह है कि प्रायः समस्त धर्मों और तत्त्वदर्शी विद्वानोंने जीवात्माको अत्यन्त सूक्ष्म अर्थात् एक 'निराकार' और 'अभौतिक' द्रव्य माना है और वर्तमान प्रत्यक्षवादी भौतिक विज्ञानने यह भी सिद्ध कर दिया है कि जो वस्तु जितनी अधिक सूक्ष्म होती है, उसमें उतनी ही अधिक विचित्र शक्ति भी होती है, जैसा कि वायु, वाष्प, अग्नि और विद्युत् इत्यादि सूक्ष्म वस्तुओंके आश्चर्यजनक विकासोंसे दिन-प्रतिदिन प्रकटित होता रहता है। अतः सबसे अधिक और अत्यन्त सूक्ष्म अर्थात् अभौतिक जीवात्मामें शक्ति भी आत्यन्तिकी ही होनी चाहिये, फिर क्या कारण कि किसी एक भी जीवधारी व्यक्तिमें उस आत्यन्तिकी शक्तिके दर्शन नहीं होते? इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नका उत्तर उस समयतक नहीं हो सकता, जबतक कि देह और जीवकी प्रेमात्मक पूर्ण एकता स्वीकार न कर ली जाय। अतः देह और जीवकी निम्नांकित प्रेम-कहानियोंपर ध्यान दीजिये—

विशुद्धानुरागके पारंगत अनुरागियों और सहृदय तत्त्वदर्शियोंने देखा है कि पूर्णानुरागमें ध्यानोद्रेकके

१-तस्यैव भासा सर्वमिदं विभाति।

२-एषोऽस्य परमानन्द एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति। (बृहदारण्यकोपनिषद्)

३-चंचलता, ४-स्फुलिंग ५-औषधनामी लताविशेष, जो रात्रिमें अग्निकी तरह चमकती है, ६-पानी, ७-हरित-स्थली, ८-पुष्पविशेष, ९-पर्वतप्रदेश। १०-अल्इश्को नारुन् वासिलुन्फीज्जाते रब्बिल्आलमी अल्इश्को हुवल्लाहो हुवल्लाहो हुवल्लाह। ११-God is love love is God.

कारण प्रेमी प्रियतममें लीन होकर नितान्त तद्रूप हो जाता है। न केवल उसमें प्रियतमके गुण ही आ जाते हैं अपितु दोनोंके बीचसे भेदोत्पादक कल्पित पर्दा उठ जाता है और अवस्थाविशेषमें उनकी आकृतितक एक-सी दिखायी देने लगती है। इस विषयमें शास्त्रीय प्रमाणान्वेषीजन गर्गसंहितालिखित यह रहस्यमयी घटना पढ़ सकते हैं कि गर्म दूध तो पियें राधिकाजी और छाले पड़ें महाराज श्रीकृष्णके चरणोंमें। इसी तरह भृंगी कीटका दूसरे कीड़ेको पकड़कर भयजनित ध्यानद्वारा अपना-सा बना लेना भी उक्त तद्रूपताहीका पोषक है। निष्कर्ष यह कि मनुष्य-जन्म या देहको सबसे 'अधिक श्रेष्ठ' केवल इस कारण माना गया है कि इसके द्वारा पुण्यकर्म करके मनुष्य अपने अभीष्ट ध्येय अर्थात् परमपदतक पहुँच जाता है और यह अटल नियम है कि जिस पदार्थसे किसीकी कामनापूर्ति या लाभ होता है, उससे उसका प्रेम हो जाता है। अतः अपनी पदोन्नतिका अभिलाषी 'जीव' शरीरका प्रेमी बन गया; कारण कि उसीके द्वारा कर्म करके वह उन्नत हो सकता था। बस, उसका यह प्रेम पूर्णानुरागके उस दर्जेपर पहुँच गया, जहाँ प्रेमी और प्रियतम 'दो' नहीं रहते। यही कारण है कि चोट तो लगती है शरीरको और व्यथित होकर 'हाय-हाय' करता है जीव। ठीक उसी तरह कि गर्म दूध तो पियें राधिकाजी और छाले पड़ें कृष्णजीके; या यह कि फस्द तो खोली गयी मजनूके और खून निकला कलेवर-लैलासे; यह इसलिये कि दोनोंके मध्यमें भेद-भाव उठ गया था, जैसा कि निम्नस्थित पद्यसे भी सिद्ध होता है—

अजीब इश्कका दोनों तरफ असर फैला।
वह कह रही थी अनाल्कैस[1] वह अना[2] लैला॥

इसके विपरीत यदि देह और जीवमें उपर्युक्त प्रेमात्मक एकता न मानी जाय तो फिर शरीरके दुःखसे जीवका 'हाय-हाय' करना तो एक ओर, शरीर और शरीरी (जीव)-का सम्बन्ध ही असम्भव हो जायगा; क्योंकि शरीर साकार, जीव निराकार; शरीर जड और जीव चेतनादि विरोधी गुणोंसे विशिष्ट है। भला कभी विरोधी पदार्थ भी बिना स्वार्थ परस्पर दृढ़ संसक्त होकर एक हो सकते हैं, जैसे कि देह और जीव? अतः स्पष्ट हो गया कि दैहिक प्रेमोद्रेकमें जीव उसी तरह स्वगुण-विरक्त होकर देह हो गया है, जैसे कि कलमी पौधेसे बँधकर 'कटा पेड़' भी कलमी हो जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्तिमें उपर्युक्त जीवकी आत्यन्तिकी शक्ति दिखायी नहीं देती अपितु साधारणतया दैहिक और भौतिक शक्तिहीके दर्शन होते हैं। परंतु जो व्यक्ति योगक्रियाद्वारा शरीरानन्दसे निकलकर 'आत्मानन्द' में डूब जाता है, वह जीवात्मासे 'पूर्णात्मा' होकर अपनी 'अन्तर्निलीन' अलौकिक शक्ति पुनः प्राप्त कर लेता है और उसीसे समय-समयपर योगकी उन चमत्कारात्मक सिद्धियोंका आविर्भाव होने लगता है, जिनका विवरण योगदर्शन-जैसे दर्शन-ग्रन्थके विभूतिपादमें सविस्तार विद्यमान है। और यदि मनुष्यके जीवमें उपर्युक्त अलौकिक शक्ति पहलेसे मौजूद मानी ही न जाय, तो अब कहाँसे आकर उक्त चमत्कारकारिणी हो जाती और विभूतिपादका निर्माण भी कैसे युक्तिसंगत हो सकता? इस स्थानपर यह विचार उत्थित होना सही नहीं है, पूर्णानुरागमें हर प्रेमी अपने प्रियमें लीन होकर ईश्वरप्राप्ति या परमपदतक पहुँच जाता है; क्योंकि यह पदवी उसीकी है जो शारीरिक सीमासे परे अलौकिक निराकार समुद्रमें मग्न हो चुका है। अर्थात् जिसकी आँखने साकारके मूलमें भी निराकारका ही रहस्यमय नाटक देखा है या यह कि गोपियोंकी भाँति जिसकी लौ किसी ऐसे योगेश्वर या पूर्णवतारसे लगी हो; जिसके शरीरसे भी सूर्यकान्तमणिकी तरह रूपादि शारीरिक सम्पर्कशून्य, लोक-प्रकाशक, अलौकिक भुवन-भास्करकी किरणें निकल रही हों, और स्फुट है कि हर प्रेमीका प्रेम ऐसी सत्तासे नहीं होता। इसलिये जो व्यक्ति किसी अध्यात्मविरोधी, आहंकारिक, वासनारत, 'दुर्गुण-समुदायाधार-कलेवर' से प्रेम करके उसके शरीरको ही अपना वास्तविक ध्येय बनायेगा, उसमें भी अनिवार्यतया उसके वे दुर्गुण ही सन्निविष्ट हो जायँगे और स्पष्ट है कि इन दुर्गुणोंका

१-मैं मजनू हूँ। २-मैं लैला हूँ।

ईश्वरप्राप्तिसे क्या सम्बन्ध ?

गोपियों और श्रीकृष्णके प्रेम-सम्बन्धमें मुझे यह और निवेदन करना है कि यह तो सब जानते हैं कि गोपियोंका श्रीकृष्णसे प्रेम था। पर प्रश्न यह है कि वे श्रीकृष्णको क्या देखती थीं? इसका उत्तर स्वयं उन्हींके श्रीमुखसे श्रवण कीजिये—'[१] यह निश्चित है कि आप यशोदाके ही पुत्र नहीं हैं, प्रत्युत आप तो समस्त जीवोंमें अन्तरात्माके साक्षी—देखनेवाले हैं।' गोपियोंके इस वाक्यसे सिद्ध होता है कि वे श्रीकृष्णको वही सर्वव्यापी परमात्मा या 'वास्तविक सत्ता' समझती थीं, जिसकी व्याख्यासे गीताके अध्याय परिपूर्ण हो रहे हैं।

यहाँ यह प्रश्न अवश्य हो सकता है कि जब गोपियाँ असीम और अपरिमित निराकार ज्योतिसे परिचित हो चुकी थीं, तब फिर कृष्णकलेवरकी खोजमें जंगलोंकी खाक छाननेका क्या प्रयोजन था? उसका उत्तर यह है कि श्रीकृष्णकी 'सामष्टिक' और अपरिमित आत्मसत्तासे आँख लड़ते ही उनकी आँखोंमें कुछ ऐसी सामष्टिक और व्यापक अभेदता समा गयी कि वे साकारमें निराकार और निराकारमें साकारका तमाशा देखने लगी थीं। इसके अतिरिक्त व्यापक और निराकारात्मक खिड़की खुल जानेपर भी इस संसारमें प्रायः शारीरिकताका ही अधिकार रहता है। कारण कि स्थिरतामूलक निरन्तर अर्थात् लगातार दर्शन शरीरका ही हो सकता है और यही कारण है कि प्रायः निर्गुणाभिलाषियोंने भी निराकारतापर पूरा काबू न पाकर इस दृश्यमान शरीरको ही तत्त्वज्ञताका जीना बनाया है, जैसा कि किसी प्रेममार्गी महात्माको किसी सौन्दर्यमय आनन्दके दर्शनमें निमग्न देखकर किसी स्थूलदर्शी कर्मकाण्डीने प्रश्न किया कि, 'यह क्या है?' उत्तर मिला कि 'भुवन-भास्कर[२]का' 'विम्ब' देख रहा हूँ परंतु पानीकी थालीमें।' अब किंचिन्मात्र इस ओर भी ध्यान देनेकी आवश्यकता है कि गोपियोंका उक्त प्रेम कोई सामान्य प्रेम नहीं था, प्रत्युत उनके अन्तस्तलमें योगके पवित्र और उच्चतम नियम स्वयं अपना कार्य सम्पादन कर रहे थे। देखिये चित्तमें[३] आनेवाली वृत्तियों अर्थात् 'खयालों' के रोकनेको योगदर्शनमें योग कहा गया है, और इन वृत्तियोंको रोकनेकी दो[४] युक्तियाँ बतायी गयी हैं। प्रथम—सांसारिक पदार्थोंकी सतर्क अस्थिरता और अवास्तविकता देखकर उनसे चित्तका विरक्त और 'विपरीत' हो जाना। द्वितीय—जिस प्रेरणाने इन पदार्थोंसे चित्तको उदासीन कर दिया है, उससे दृढ़ सम्पर्ककारक साधनोंका निरन्तर प्रयोग करना अर्थात् ध्येयके ध्यानमें मग्न हो जानेका 'अभ्यास'। उक्त साधनोंमेंसे महाराज पतंजलिने अभीष्ट पदार्थके ध्यान[५] और सांसारिक वासनाओंसे[६] विरक्त किसी पूर्णात्माके चित्तसे सम्पर्कका भी वर्णन किया है, अपि च यह भी कहा है—जिसे तीव्र[७] संवेग अर्थात् योगकी धुन होती है, उसको योगमें शीघ्र सफलता होती है एवं एकाग्रता[८] अर्थात् एक ही खयालमें निमग्नताको बीमारी, सुस्ती और अधीरता इत्यादि योगविरोधी पदार्थोंका प्रतिबन्धक सिद्ध किया गया है। ध्यानद्वारा,[९] किसी विशेष पदार्थ या प्रदेशमें चित्तके बाँधने अर्थात् लगानेको 'धारणा' कहते हैं। यही धारणा[१०] जब निरन्तर और लगातार रूपसे होने लगती है तो उसका नाम ध्यान हो

१-न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
२-चश्मये आफ्ताबरा बीनम्, लेकदरतश्तेआबमीबीनम्॥
३-योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। (यो० सू० १।२)
४-अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। (यो० १।१२)
५-यथाभिमतध्यानाद्वा (यो० १।३९)।
६-वीतरागविषयं वा चित्तम् (यो० १।३७)।
७-तीव्रसंवेगानामासन्नः (यो०१।२१)।
८-तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः (यो० १।३२)।
९-देशबन्धश्चित्तस्य धारणा (यो० ३।१)।
१०-तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् (यो० ३।२)।

जाता है और जब ध्यानी अपने ध्येयमें पूर्ण मग्नताद्वारा ध्येयस्वरूप होकर स्थित हो जाता है, तब यह अवस्था योगकी अन्तिम कक्षा अर्थात् समाधि[१] कहलाती है। अब योगके इन मौलिक नियमोंको ध्यानमें रखते हुए गोपियोंकी प्रेमावस्थापर दृष्टि डालिये तो विदित हो जायगा कि वे समस्त नियम उनके 'प्रेम-योग' में बिना किसी प्रयत्नके स्वयं ही विद्यमान हो रहे थे। अत: कोई कारण नहीं कि गोपियोंके हृदयमें दुनियासे पूर्ण उदासीनता मानकर, उनको सम्पूर्ण वैराग्यवती न स्वीकार किया जाय तथा श्रीमद्भागवतके अवलोकनसे ज्ञात होता है कि श्रीकृष्णजीका तनिक सम्पर्क भी गोपियोंके चित्तसे इतर समस्त[२] वासनाओंको विस्मृत करा चुका था, जो पूर्ण-वैराग्यका प्रकाशमान प्रमाण है।

द्वितीय वस्तु अर्थात् अभीष्ट पदार्थके ध्यानका 'अभ्यास' तो इस सम्बन्धमें पूर्ण प्रेमीके लिये कुछ कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है। कारण कि प्रेमीसे अधिक प्रियतमके ध्यानमें कौन मग्न हो सकता है? अब रहा अभीष्ट पदार्थका ध्यान और पूर्णात्मा-वीतरागविषयकसे गाढ़तर सम्बन्ध, तो इन दोनों साधनोंकी पूर्ति तो गोपियोंने श्रीकृष्णके ध्यानद्वारा ही कर ली थी, क्योंकि श्रीकृष्ण गोपियोंके अभीष्ट ध्येय भी थे और योगेश्वर होनेके कारण पूर्ण वैराग्यकी मूर्ति भी। अब अवशिष्ट रही तल्लीनता या निमग्नता, सो वह अनुरागीसे बढ़कर और किसीमें हो ही नहीं सकती और गोपियोंका केवल श्रीकृष्णके ही ध्यानमें प्रधानतया मग्न रहना, योगविघ्नोंकी निवृत्तिके लिये भी पर्याप्त था 'तुमहीमें[३] 'असु' अर्थात् चित्त रखनेवाली गोपियाँ'; इस गोपीगीतसे स्पष्टतया यह भी विदित हो जाता है कि गोपियोंने श्रीकृष्णमें 'चित्त' लगाकर 'धारणा' नामक योगके दर्जेको भी प्राप्त कर लिया था। कारण कि 'असु' शब्दका अर्थ चित्त[४] 'भी है और चित्तको किसी स्थान या वस्तुमें रखना अर्थात् बाँध देना ही धारणा है और यही धारणा उन्नत होकर ध्यान और ध्यानसे उच्च होकर 'समाधि' हो जाती है; फिर क्या कारण है कि सांसारिक वासनाओंसे उदासीन गोपियाँ, इस प्रेम-योगकी पूर्ति करनेपर भी श्रीकृष्णमें लीन होकर परमपदतक न पहुँचें? यह है गोपियोंकी तात्त्विक धर्मपरायणता, निष्कपट प्रेम और उनकी ब्रह्मलीनताकी व्याख्या और यही मूल है उस अनुरागात्मक चमत्कारका, जिसको दुनिया आजतक रासलीलाके नामसे याद करती है।

श्रीव्यासदास-काव्यमाधुरी

राधा-नाम ही आधार है

परम धन राधे नाम अधार।
जाहि स्याम मुरलीमें टेरत, सुमिरत बारंबार॥
जंत्र मंत्र औ बेद तंत्र में, सबै तार को तार।
श्रीसुक प्रगट कियौ नहिं या तैं, जानि सार कौ सार॥
कोटिन रूप धरे नँदनंदन, तऊ न पायौ पार।
'ब्यासदास' अब प्रगट बखानत, डारि भार मैं भार॥

व्रजवासकी विधि

ऐसैं ही बसिये व्रज बीथिन।
साधुन के पनवारे चुनि चुनि, उदर पोषिये सीथिन॥
घूरन में के बीन चिनगटा, रच्छा कीजै सीतन।
कुंज कुंज प्रति लोटि लगै उड़ि, रज ब्रज की अंगीतन॥
नितप्रति दरस श्याम श्यामा कौ, नित जमुना जल पीतन।
ऐसेहिं 'ब्यास' होत तन पावन, ऐसेहिं मिलत अतीतन॥

—संत व्यासदासजी

१- तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि:। (यो० ३। ३)

२-इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥ (श्रीमद्भा० १०। ३१। १४)।

३-त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते। (श्रीमद्भा० १०। ३१। १)

४-शब्दार्थचिन्तामणि। (पृ० २२६)

कामदेवका पराभव—रासका प्रारम्भ

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

देवर्षि दयाधाम हैं, यह तो मैं जानता था; किंतु उनकी दया श्रीहरिके समान दर्पहारिणी भी होती है, यह मुझे पता नहीं था। मेरा दर्प अनुचित है, यह कहनेका साहस कौन करेगा? साक्षात् सृष्टिकर्ताको मैंने उनके पुत्रोंके सामने ही विवश बना दिया था। उन स्रष्टाकी सृष्टिका कोई प्राणी—वह ऋषि-मुनि-तपस्वी कोई भी हो, कैसा भी हो, कन्दर्पके सम्मोहन-शरके शरणापन्न न हो जाय, यह सम्भव नहीं।

भगवान् भूतनाथने मुझे भस्म कर दिया; किंतु यह तो मेरी पराजय नहीं थी। मैं भले भस्म हुआ, परंतु मेरे कनिष्ठ भ्राता क्रोधने उन्हें कम्पित करके उनका दीर्घकालीन तप ध्वस्त कर दिया।

मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे सम्यक् पराजय प्राप्त हुई धर्मनन्दन बने बदरिकाश्रममें तपोनिरत नर-नारायणसे; लेकिन मन्मथ तो उन श्रीहरिका ही अंश है। अंश अपने अंशीसे न्यून तो रहेगा ही। उन श्रीहरिके पदाश्रितोंसे भी मदन पराभूत हो जाया करता है। उन आनन्दघनका चरणाश्रय लेकर ही देवर्षि नारदने तथा देवर्षि-जैसे दूसरोंने मुझ मकरध्वजको पराभूत किया है। मैं इसे पराजय नहीं मानता; क्योंकि मेरे अंशीके आश्रयमें जाकर बैठ जाना मुझसे अभय कर देता है, यह तो सहज स्वाभाविक है।

भगवान् शिवने मुझे भस्म करके अनंग बना दिया। यह मेरे सामर्थ्यका वर्धक ही बना। मैं अदृश्य रहकर अधिक आक्रामक हो गया। उस दिन देवर्षिने मुझे देवलोकमें देखा और हँस पड़े। बोले—'सुमनसुकुमार देवता! अब इस नन्दनकाननमें ही बने रहना। धराकी ओर देखनेकी धृष्टता मत करना।'

'पृथ्वीपर कोई अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया है?' मैं उत्तेजित हो गया था—कोई पुरारिसे भी प्रबल तपस्वी पैदा हो गया वहाँ? सृष्टिकर्ता अपनेसे अधिक समर्थ संयमीके सृजनमें सफल हो गये?

'एक गोपकुमार आ गया है भारत-धरापर वृन्दावनमें।' देवर्षिने व्यंग्य किया—'दर्पितोंकी बहुत दुर्गति करता है। कहीं भूलकर उधर मत भटक जाना। दुर्मददलनका वह व्रती—उससे दूर ही रहो, इसीमें दैवको सानुकूल समझो! दुःख पाओगे यदि उधर गये।'

'गोपकुमार? कितने युगोंसे वह तपो-निरत है?' मैं अहंकारसे उद्दीप्त होकर पूछ बैठा।

'वह तप नहीं करता। गायें चराता है और व्रजकी बालिकाओंसे परिहास भी कर लेता है।' देवर्षिका व्यंग्य मैंने समझा नहीं। वे चले गये यह कहकर—'तुम्हारे सम्पूर्ण पौरुषको पराजित करनेका अच्छा अभ्यास है उसे।'

मुझे यह असह्य हो गया। पुष्पधन्वाको कोई गोपकुमार पराजित करेगा? वह भी कोई तपस्वी नहीं, बालक और यदि वह बालिकाओंसे परिहास करता है तो मेरे विकार उसमें विद्यमान हैं, यह तो पूर्वनिश्चित हो गया। मैं उसे देखूँगा। किसी मानवकुमारको पराजित करनेके लिये केवल मेरा धनुष पर्याप्त है। सहायकोंको साथ लेना अनावश्यक लगा मुझे। वसन्त, मलय-मारुत, अप्सराएँ आदि मैंने साथ नहीं लीं।

वृन्दावन पहुँचकर मुझे लगा कि मेरा निर्णय उचित था। वसन्तके स्थानपर शरद् ऋतुकी वह प्रथम पूर्णिमा मेरे शक्तिवर्धनमें कहीं अधिक समर्थ थी। सम्पूर्ण वन मेरे सम्मोहन-पुष्प मल्लिकासे मण्डित था। उसकी मादक सुरभि लेकर मन्द-मारुत अणु-अणुको उत्तेजित कर रहा था। भ्रमर, पक्षी, पशु सभी मेरे प्रभावसे उन्मत्त प्रणय-केलिमें तल्लीन हो रहे थे।

सायंकालका समय—सूर्यास्त हो चुका था। दिशाएँ कुंकुमारुण हो रही थीं। अनुरागपूर अम्बरमें उमड़ पड़ा था। इसी समय एक एकाकी किशोर वनमें आया। मैं उसे देखते ही चौंक गया। मेरे समान ही अतसीकुसुम श्याम; किंतु उसके अंगोंका सौकुमार्य देखकर मेरा अपना सुन्दर रहनेका गर्व गलित हो गया। अब तो मैं अनंग हूँ, किंतु जब अंग था—इतनी सुषमा, इतनी शोभा

तो मुझमें कभी नहीं थी। यदि कहीं मैं पराजित हुआ—इसी कुमारको पिता बनाऊँगा। कुछ तो इस सौन्दर्य-राशिका सीकर इसके पुत्रको प्राप्त होगा।

सघन घुँघराली अलकोंपर लहराता मयूरपिच्छ, भालपर गोरोचनका तिलक, कण्ठमें वनमाला। वह पीताम्बरपरिधान हँसता आया और मैंने देखा कि सम्पूर्ण प्रकृतिमें मेरा सम्मोहन समाप्त हो गया। पशु, पक्षी, भ्रमर सब अपनी प्रणय-केलि भूलकर उसीको अनिमेष देखने लगे। मैं इधर-उधर देखता रहा, कहीं तो मेरा प्रभाव नहीं रहा। मुझे अपनेपर झुँझलाहट हुई—कुछ अप्सराएँ तो मुझे लानी थीं।

सहसा वह प्रफुल्ल पारिजातके नीचे एक शिलातलपर बैठ गया अपने वाम ऊरुपर दक्षिण पाद स्थापित करके। पूर्णचन्द्रका बिम्ब पूर्ण क्षितिजसे ऊपर उठा इसी समय। अत्यन्त सुकुमार कुंकुमारुण चन्द्रबिम्ब—जैसे कुंकुमभूषित सिन्धुसुताका—इस शशिकी सहोदराका श्रीमुख हो। वनका पत्ता-पत्ता चमक उठा। दुग्धोज्ज्वल मल्लिका सुमन किंचित् अरुणाभ हो उठे। कालिन्दीका पुलिन और जल सब अत्यन्त शोभासम्पन्न हो गये।

शरद् ऋतुकी यह सन्ध्या—इतनी सुषमा, इतना उद्दीपक वातावरण—इतनी सहायक परिस्थिति मुझे पूर्ण प्रयत्न करके भी सृष्टिमें कभी प्राप्त नहीं हुई थी। मैं व्याकुल हो उठा—अप्सराएँ तो दूर, कोई भिल्लकुमारी भी होती तो मैं अभी इस गोपकुमारको देख लेता।

उसने अत्यन्त मुग्ध भावसे शशिको अपलक देखा। जैसे सतृष्ण दृगोंसे अपनी किसी प्रेयसीके मुखका स्मरण कर रहा हो। मैं स्पष्ट स्वीकार कर लूँ कि मनोभव होनेपर भी मैं उसके मानसका स्पर्श नहीं कर पा रहा था। ऐसा अनेक बार हुआ है। ऋषि-मुनियोंके मनमें भी मैं अपने सम्मोहन शरकी शक्तिसे ही प्रवेश पाता हूँ।

उसने कटिकी कछनीसे मुरली निकाली और अधरोंपर रख ली। मुरलीने सप्तम स्वरमें मेरा ही क्लीं बीज गुंजारित करना प्रारम्भ किया। क्या? यह मेरा आह्वान कर रहा है या मुझे चुनौती दी जा रही है? मैं इस धरापर उतर क्यों नहीं पाता हूँ? मेरे बीजका—काम-बीजका स्वर गूँज रहा है और मैं सप्राण होनेके स्थानपर शिथिलशरीर होता जा रहा हूँ। मेरी शक्ति, मेरा सम्मोहन गगनमें ही स्तब्ध होता जा रहा है। यह क्या है? कौन-सी शक्ति है यह? इतना सम्मोहन तो मेरे अथवा मेरी प्रिया स्वयं रतिके स्वरमें भी नहीं।

'राधा! राधा! राधा रासेश्वरी!
राधा! राधा! राधा प्राणेश्वरी!'

वंशीसे स्वरने तो पुकारना प्रारम्भ कर दिया। वंशी क्रमशः अनेक-अनेक नारियोंका नाम पुकारने लगी। मुझे साहस हुआ—यह अपनी प्रेयसियोंको पुकार रहा है तो अब मुझे अवसर मिलेगा। यह इस एकान्तमें—इस उद्दीपक वातावरणमें उन्हें बुला रहा है तो मेरे सम्मोहनसे अस्पृश्य नहीं रह सकता।

कुतूहलवश मैंने गगनसे देखा समीपके जनपदकी ओर। सहस्र-सहस्र नारियाँ दौड़ पड़ी थीं। वे किशोरियाँ—मैं मूर्ख था जो अबतक अप्सराओंको साथ न लानेके कारण खिन्न हो रहा था। इनमेंसे एकके सौन्दर्यका सहस्रांश भी तो स्वर्गकी किसी सुन्दरीमें नहीं। मेरे अदृश्य करोंसे कब मेरा सुमन-धनुष छूट गिरा, मुझे स्वयं पता नहीं। मैं धनुषका करता क्या? मेरे किसी शरमें यह शक्ति, यह सम्मोहन, यह तीक्ष्णता नहीं, जो इनमेंसे प्रत्येकके कटाक्षपातमें है। इनकी उपस्थितिमें मन्मथको किसीका मनोमन्थन करनेके लिये शर-सन्धान कहाँ आवश्यक है। यहाँ तो मेरे पंचबाण व्यर्थ हैं।

सब अस्त-व्यस्त भागी आ रही थीं। किसीने गोदोहन करते दोहनी पटक दी थी और किसीने दूधको अग्निपर उफनता त्याग दिया था। अनेक अपना शृंगार कर रही थीं—एक नेत्रमें अंजन, एक चरणमें नूपुर अथवा पदाभरण कर या कर्णमें डाले वे दौड़ी आ रही थीं। अनेकने पदोंमें अलक्तक लगाना प्रारम्भ किया था। आर्द्र अलक्तकके पद-चिह्न वे धरापर बनाती आ रही थीं। किसीका उत्तरीय गिर पड़ा था। किसीका वेणी-ग्रन्थन अपूर्ण था।

कोई पति-पुत्र या भाईको भोजन कराती वैसे ही अन्नसने कर आ रही थीं। अनेकने अपने अंकके शिशुको दुग्धपान कराना छोड़कर शिशुको भूमिपर ही

डाल दिया था। जो जैसे—जिस अवस्थामें थीं, वैसे ही वंशीका स्वर सुनते ही दौड़ पड़ी थीं। इनका यह अस्त-व्यस्त शरीर, वस्त्र, आभरण, केश इनको और भी अधिक मनोहारी—मादक बना रहे थे।

'अरे कहाँ जा रही है ? इस समय वनमें मत जा!' अनेकोंके पतियों, पुत्रों, पिताओं अथवा भाइयोंने उन्हें रोका। पुकारा; किंतु किसीके भी श्रवणमें तो वंशीके स्वरके अतिरिक्त और कुछ सुननेकी शक्ति नहीं। मैं अपने उन्मादक प्रभावसे परिचित हूँ; किंतु इतना अपरिसीम प्रभाव—इसकी तो मैं भी कल्पना नहीं कर सकता।

मुझे अनेक अकल्पनीय चमत्कार देखनेको मिले एक साथ। अनेकोंको उनके पिता, पति या भाई पकड़ लेनेमें सफल हो गये अथवा गृह-द्वार अवरुद्ध कर दिया उन्होंने। इस प्रकार जो भी मार्ग नहीं पा सकीं, उनके नेत्र बन्द हो गये। अपने परम प्रेमास्पदके असह्य वियोगसे उनके शरीर पलभरमें काले पड़ गये। इतनी अपार पीड़ा—इनके कोई जन्म-जन्मान्तरके अपकर्म होंगे भी तो अवश्य वे भस्म हो गये होंगे। दूसरे ही पल उनके अंगोंपर मुखपर जो ज्योति आयी—वह ज्योति, वह आभा तो मैंने स्वर्गके किसी सुरके शरीरमें नहीं देखी। वैसी कान्ति केवल वंशी बजाते गोपकुमार श्रीकृष्णमें ही मैंने आज देखी है। अवश्य इनके ध्यानकी तल्लीनतासे वह रूप इनके हृदयमें आविर्भूत हुआ होगा। इन्होंने अपने अन्तरमें उस अपने प्रियका आलिंगन पाया। इतना आह्लाद एक साथ—अवश्य सम्पूर्ण पुण्योंका परम फल मिल गया इन्हें। इतना शोक या हर्ष प्राकृत शरीर सह नहीं सकता। इनके शरीर निष्प्राण हो गये, किंतु चमत्कार तो मैं देखता हूँ। गोपपल्लीके गृहोंमें पड़े हैं इनके निष्प्राण शरीर और ये साकार सबसे पहले पहुँच गयीं श्रीकृष्णके समीप। इनके ये शरीर आतिवाहिक देह नहीं हैं। यातनादेह होते तो नरक जाते। भोग-देह भी नहीं, जो स्वर्ग जायँ। इनके ये दिव्य देह—इनका दिव्यत्व मैं समझ नहीं पाता।

मैं समझ नहीं पाता कि व्रजसे जो बालिकाएँ वंशीका स्वर सुनकर दौड़ी थीं, वे तो कुछ पलोंमें ही अपने गृहोंको लौट गयीं। प्रायः सब नारियाँ लौट गयीं, उसी समय। उनके स्वजनोंने उपहास किया उनका—'बस! वन देखा और डर गयी ? नन्दनन्दन वंशी बजाये तो क्या हमारा मन उसके समीप दौड़ जानेको नहीं करता, किंतु इस समय क्या वह वनमें बैठा है ? व्रजराज या व्रजेश्वरी इस समय उसे वनमें जाने देंगी ? वह अभी गोचारण करके लौटा है। व्रजराजके भवनपर ब्यालू करके कहीं बैठा वंशी बजा रहा है। रात्रिमें वायुके कारण वंशीध्वनि वनसे आती प्रतीत होती है। इस समय नन्द-भवन भी नहीं जाया जा सकता। कन्हाईकी मुरलीका स्वर हमारे मनको भी मथित करता है, किंतु ऐसे उठ भागना व्यर्थ है। सब सो रहो। प्रभात हो तो कल वनमें जाकर उसका वंशीवादन सुनना। हम सब भी चलेंगे।'

सब नारियाँ-बालिकाएँ अपने गृहोंमें हैं और वे सब दौड़ी भी आ रही हैं। सब किशोरियाँ हैं, न बालिकाएँ और न तरुणियाँ। यह क्या है—मैं कुछ समझ नहीं पाता।*

सब सौन्दर्यकी साकार देवता—सब दौड़ी आयीं। सब अकेली, एक-दूसरीसे दूर छिपती आयीं और आकर वनमें उस शिलातलके चारों ओर खड़ी हो गयीं। इन सबका यह सलज्ज स्मितशोभित मुख, यह सकटाक्ष निरीक्षण—यह स्पष्ट सर्वात्मना समर्पण। इनमें भी जो सबसे आगे हैं, मैं चाहकर भी इनके चरणोंसे ऊपर दृष्टि नहीं उठा पाता। ये सहस्र-सहस्र ज्योत्स्ना झरते चरण-नख। ये अकेली भी होतीं तो भी क्या ये नवघनसुन्दर गोपकुमार इनकी उपेक्षा कर पाते ? यहाँ तो इनकी ये सहस्र-सहस्र सखियाँ साथ हैं; क्या समझकर देवर्षिने इन गोपकुमारको अजेय कहा था मेरे लिये ?

मैं अपने मनोमन्थनसे उबर भी नहीं पाया था कि मुरलीका स्वर शान्त हो गया। अधरोंसे वंशी हटाकर वे

* रासलीला अवतार-लीला नहीं है। अवतार-लीलाके रूपमें श्रीकृष्णचन्द्र नन्दगृहमें मैयाके समीप शैय्यापर ही बने रहे। वे वनमें गये ही नहीं रात्रिको। गोपियाँ भी सब पार्थिव देहसे अपने घरोंमें ही रहीं। रास तो दिव्य लीला है, दिव्य देहोंसे हुई। अन्यथा रासके समय श्रीकृष्णकी आयु आठ वर्ष एक मास, बाईस दिनकी थी। श्रीराधा इनसे कुछ महीने (एक वर्षसे कम) बड़ी हैं। उनकी सखियोंमें भी कोई उनसे दो वर्षसे अधिक बड़ी नहीं हैं।

मयूर-मुकुटी जिस गम्भीर, शान्त अविकृत स्वरमें बोले, मेरा शरीर होता तो मैं अवश्य उनके बैठनेकी शिलापर सिर पटक देता। पराजित भी हुआ ही जाता है, किंतु ऐसी पराजय! जैसे मेरे प्रभावका कोई सीकर भी तो उनको स्पर्श नहीं कर सका था। मैं सन्न सुनता-देखता रहा गगनमें स्तब्ध बना।

'आप सब महाभागाओंका स्वागत!' वे ऐसे स्वरमें कह रहे थे, जैसे कोई सर्वथा अपरिचित हों—'आप सब इस समय कैसे दौड़ी आयीं? व्रजमें कोई विपत्ति तो नहीं है?'

ये कुमारियाँ क्या कहें? इन्होंने सस्मित देखा परस्पर और सिर झुका लिया, किंतु वनमाली बोलते ही गये—'आप सब वनश्री देखने आयी थीं, तो यह भी हो गया। सचमुच आज पूर्ण राशिकी ज्योत्स्नासे रंजित कालिन्दीपुलिन एवं वृन्दावनकी शोभा देखने ही योग्य है, किंतु यह रात्रिका समय है। इस समय स्त्रियोंको वनमें देरतक नहीं रहना चाहिये। अत: अब लौट जाओ।'

इतनी औपचारिक बात की जायगी, किसीको आशंका नहीं थी। सबके मुख म्लान हो गये। सबके नेत्र टपकने लगे; किंतु अभी तो अन्तिम वज्रपात शेष था। वंशीधर कह गये—'आप सब मेरे प्रेमसे विवश आयी हो, यह उचित ही है। सब प्राणी मुझसे प्रेम करते हैं; किंतु प्रेम परिशुद्ध होता है। किसी स्त्रीको परपुरुषके स्पर्शकी कामना नहीं करनी चाहिये। यह कामना क्लेश, अयश तथा अधोगतिका कारण होती है। स्त्रीको पति तथा पतिके स्वजनोंकी सेवा करनी चाहिये। आप सबके पति, पिता, भाई आपको घरपर न पाकर बहुत व्याकुल होंगे। अभी गायें दुहनी होंगी। स्वजनोंको भोजन कराना होगा। स्त्रीका परम धर्म पति-सेवा है। अत: आप सब अब शीघ्र लौटो और स्वजनोंकी तथा गायोंकी सेवा करो। गो-दोहन सम्पन्न कराओ। घरके लोगोंको भोजन कराओ। मेरा प्रेम मनमें रहने दो, इसीसे आपका परम मंगल होगा।'

यह उपदेश कोई वृद्ध मुनि देता तो कुछ बात भी थी। ये सौन्दर्यसिन्धु रसिकशेखर इस एकान्तमें स्वयं मुरलीके सम्मोहन स्वरमें सबका आह्वान करके ऐसा उपदेश देने लगे थे।

सब-की-सब किशोरियोंके कमलमुख शुष्क हो गये। नेत्रोंसे अंजन-रंजित अश्रुधारा चलने लगी। अजस्र अश्रुधारा—कपोल, वक्ष सब आर्द्र होने लगे। पदोंके सुचारु नखोंसे वे भूमि कुरेदने लगीं। एक ही भाव—'भूमि फटती और हम भी वैसे समा जातीं पृथ्वीमें जैसे कभी त्रेतामें भूमि-सुता सीता समा गयी थीं।'

मुझे लगा कि इनके श्वेत पड़ते जाते शरीर अब संज्ञाशून्य होकर पृथ्वीपर गिरने ही वाले हैं; किंतु किसी प्रकार इन्होंने अपनेको सम्हाल लिया। एक इनमें किंचित् बड़ी लगीं वयमें। पीछे पता लगा, इनका नाम चन्द्रावली है। अवश्य यह कुछ प्रगल्भा हैं, इसीलिये बोल सकीं। इनके वचन ही सबके लिये सुधा-स्रोत हो गये।

'श्यामसुन्दर! इतने निष्करुण मत बनो! ऐसे नृशंस वचन तुम्हें नहीं कहने चाहिये। हम संसारके समस्त सम्बन्ध त्यागकर, सब छोड़कर तुम्हारे समीप आयी हैं। परम पुरुष परमात्मा भी अपने अनन्याश्रितोंको अपना लेते हैं। तुम हमें त्यागो मत! स्वीकार करो।' अत्यन्त आर्त गद्गद स्वर इसका। पाषाण भी पिघल जाय ऐसी वाणी।

प्यारे, दुराग्रह मत करो! तुमने जो पति, पुत्र, पिताकी सेवा स्त्रीका परम धर्म बतलाया है, तुम धर्मज्ञ हो, अत: स्वयं कह दो कि तुम्हारे ये वचन तुम्हारे चरणोंकी सेवामें सार्थक नहीं होते? तुम्हीं सबके परम श्रेष्ठ आत्मा नहीं हो, समस्त प्राणधारियोंके आत्मा तुम—तुम्हारी सेवा ही तो सबकी सच्ची सेवा है? मैं स्तम्भित सुनता रहा। मस्तक झुकाया मैंने। भले मैं गर्ववश आया और पराजित हुआ, किंतु इन परमपुरुषके पावन पदोंका साक्षात्कार पा सका। ये परमपुरुष—अन्यमें इतना संयम, इतनी सामर्थ्य सम्भव ही नहीं है। अब तो ये कृपा करें, भगवान् पुरारिका प्रसाद—उनका वरदान सार्थक हो। इनका पुत्रत्व चाहिये मुझे; किंतु क्या ये इतने अकरुण हैं? ये अवनिपर अवस्थित दिव्यदेहा मेरी मातृस्थानीया किशोरियाँ—ये रुदन करती, नखमणिसे भूमि कुरेदती प्रार्थना कर रही हैं—

जो विद्वान् हैं, विवेकी हैं, ज्ञानी हैं, वे सब तो तुममें

सदा प्रीति करते हैं। ये संसारके बन्धन, विपत्ति, क्लेश देनेवाले पति-पुत्र-पितादिसे क्या प्रयोजन? अतः कमललोचन हमपर प्रसन्न हो जाओ! बहुत समयसे हमने आशा लगा रखी है। इस आशालताका उन्मूलन न करो!

यह आशा हमारे हृदयमें तुमने स्वयं अंकुरित की है। स्वयं अपने हास्य, लीला-विलास, बंक-विलोकनसे सींचकर तुमने इसे बढ़ाया है। तुमने अपने भुवनमोहन वंशीरवसे हमारा चित्त छीन लिया और अब कहते हो कि हम लौट जायँ?

हम कैसे लौट जायँ? हमारे पद तुम्हारे समीपसे एक पद हटते नहीं। कहाँ लौट जायँ? तुम्हारे अतिरिक्त तो हमें संसार सूना दीखता है। क्या करें कहीं जाकर? हमारे चित्त एक पलको तुम्हारे पादपद्मोंको छोड़ और कुछ स्मरण नहीं कर पाते।

पुरुषभूषण! सब त्यागकर, सब सम्बन्ध भूलकर केवल तुम्हारी उपासनाकी आशासे हम आयी हैं। हमपर प्रसन्न हो जाओ! तुम सबके विपत्तिविनाशक हो। हम आर्त अबलाओंको अपनी दासियाँ स्वीकार कर लो!

तुम्हारे सुन्दर स्मितसे हमारे अन्तरमें तुम्हारी प्राप्तिका प्रचण्ड वाडव प्रज्वलित हो उठा है। तुम तो व्रजके भय, दुःखको दूर करनेके लिये प्रकट हुए हो। हमारे इस अन्तस्तापको अपने अधरामृतसे सिंचित करके शान्त कर दो!

प्रियतम! तुम हमें अपनी प्राप्तिसे रोक नहीं सकते। केवल संसार तुम्हें निष्ठुर कहेगा। हमारे हृदयोंमें और धैर्य नहीं है। तुम्हारी उपेक्षाग्नि असह्य है। हम तो अभी तुम्हारा ध्यान करके शरीर त्याग देंगी और तुम्हें प्राप्त कर लेंगी; किंतु प्यारे! प्रीतिकी मर्यादा सदाको मिट जायगी। लोग कहेंगे कि व्रजराजकुमारके सम्मुख उनकी प्रेयसियाँ तड़प-तड़पकर मरीं और····। अब अपना लो श्यामसुन्दर!

सहसा वाणी अवरुद्ध हो गयी। लगा कि सब अब गिर पड़ेंगी धरापर, किंतु तभी श्रीकृष्णचन्द्र शिलापरसे कूदे और सबके मध्यमें हँसते आ गये—'सखियो! तुम इतनेमें अधीर हो गयीं? मैं तो परिहास कर रहा था। मैं सदा-सदाका तुम्हारा हूँ, क्या यह भी कहना शेष है?'

एक साथ अपार आनन्दपारावार उमड़ पड़े—कोई कल्पना सम्भव नहीं, जैसे सब कुमारियोंके मुखकमल खिले। सहस्र-सहस्र ज्योत्स्नाका आलोक आया। सबने घेर लिया मयूरमुकुटीको। सब जैसे लिपट पड़ेंगी—एक साथ प्रेम, उल्लास, मान, मिलन—सबमें हर्ष, उत्साह आया। मैं अब भूल चुका था कि मेरा स्वरूप विकारी है। मैं मन्मथ हूँ और मनोमन्थन कर सकता हूँ। मैं तो केवल इन कृपामय पूर्ण प्रेमाब्धिके पदोंमें अवनत हो रहा था।

विनोद, विलास, हास-परिहास प्रारम्भ हो गया था, परंतु मैं स्पष्ट स्तब्ध था। मेरी विकृति अर्थहीन थी। मेरी छाया भी स्पर्श नहीं कर सकती थी। ये पुरुषोत्तम दिव्य क्रीड़ा करने लगे थे। किसीको गुदगुदा देते थे तो कहीं चुटकी भी भर लेते थे। किसीको ठेल देते थे तो किसीको आलिंगनदान भी कर रहे थे। इन परम निर्विकार पूर्ण-पुरुषने किशोरियोंकी प्रीतिको सत्कृत-सम्मानित करना प्रारम्भ किया था।

'श्यामसुन्दर! मेरी वेणी गूँथ दोगे?' किशोरियोंमें अब मान आने लगा। उन्होंने कटाक्षपूर्वक सेवा सूचित करनी प्रारम्भ की। किसीकी वेणी गूँथी इन्होंने और किसीकी अलकोंमें पुष्प सज्जित किये। किसीकी कंचुकी कसी और किसीकी कपोलपल्लीपर चित्रांकन पूर्ण किया। किसीके अधर रंजित कर दिये तो किसीके पदोंके अलक्तकका भी परिष्कार किया।

'पहले मेरे लिये माल्य ग्रन्थन करो!' किशोरियोंमें परस्पर ईर्ष्या आयी।

'तुम पहले मेरी वेणीमें सुमन सजाओ, अन्यथा मैं नहीं बोलूँगी तुमसे।' स्पर्धाने मानका रूप लिया। ये हँसते, मुसकराते सबका सम्मान करनेमें व्यस्त हैं। सब अपनेको सर्वाधिक प्रेयसी मानकर अपना स्वत्व प्रदर्शन करने लगी हैं। ये कबतक ऐसे विवश रहेंगे?

अपराधी मैं हूँ। मैंने आशंका की और ये पूर्णपुरुष अन्तर्धान हो गये। आर्त क्रन्दन गूँज उठा कुमारियोंका। यह असह्य है मुझे, और कोई अपराध बन जाय, इसलिये मैं व्रजधराको प्रणाम करके भाग आया।

रासलीलाका स्वरूप और महत्त्व

(डॉ० श्रीविजयेन्द्रजी स्नातक)

माधुर्यभक्तिनिष्ठ वैष्णव-सम्प्रदायोंमें श्रीकृष्णकी अनेक लीलाओंका वर्णन भगवान्‌के सौन्दर्य, शक्ति और शीलको व्यक्त करनेके लिये स्वीकार किया गया है। इन लीलाओंका आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दोनों प्रकारसे अर्थ करके भक्तजन भगवान्‌के स्वरूपको हृदयंगम करते हैं। इनमें रासलीला भावनाके साथ-साथ लौकिक धरातलपर अनुकरणात्मक होकर दृश्य-लीलाका रूप धारण करती है, अतः उसके प्रभावकी परिधि अन्य लीलाओंकी अपेक्षा व्यापक हो जाती है।

भागवतपुराणके दशम स्कन्धके (उनतीसवेंसे तैतीसवें अध्यायतक) पाँच अध्यायोंको 'रास-पंचाध्यायी' कहते हैं। इन पाँच अध्यायोंको भागवतका प्राण कहा जाता है। 'रास-पंचाध्यायी' में रासका प्रारम्भ करनेके लिये श्रीकृष्णकी अन्तःप्रेरणाका तथा शारदीय पूर्णिमाकी विभावरीका बहुत ही सरल एवं काव्यमयी भाषामें वर्णन किया गया है। ज्यों ही श्रीकृष्णके मनमें रास प्रारम्भ करनेका विचार आया; समस्त वन-प्रान्त अनुरागकी लालिमासे अनुरंजित हो उठा। श्रीकृष्णने अपनी प्रिय वंशी उठायी और उसका वादन प्रारम्भ किया। वंशी-रवको सुनते ही गोपियाँ अपने तन-मनकी सुध भूल, समस्त कार्य-कलापको बीचमें ही छोड़, भाग खड़ी हुईं और श्रीकृष्णके समीप पहुँच गयीं। श्रीकृष्णने बड़े सहज भावसे उन्हें पतिव्रतधर्मका उपदेश देकर वापस लौट जानेको कहा, किंतु गोपियोंने किसी मर्यादाको स्वीकार नहीं किया और अपनी टेकपर दृढ़ बनी रहीं। तब कृष्णने आनन्दपुलकपरिपूर्ण हो उनके साथ मण्डलाकार स्थित होकर रास रचाया। इस रासमें कृष्ण और गोपियोंका मिलन, संयोग-श्रृंगारके धरातलपर विभाव, अनुभाव, संचारीभाव आदिके साथ वर्णित किया गया है, जिसे पढ़कर साधारण पाठकको भ्रम होना सहज है कि यह लीला काम-प्रेमकी श्रृंगारमयी लीला है, इसका कोई आध्यात्मिक धरातल नहीं है। किंतु रास-लीलाके मर्मको समझनेके लिये उसके तात्त्विक आशयकी अवहेलना नहीं की जा सकती। वैष्णव भक्तोंने इस रास-लीलाको ज्ञानमार्ग, योगमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्गकी सरणि माना है—श्रृंगार या कामचेष्टाका आधार उसमें गृहीत ही नहीं हुआ। यहाँ रासलीलामें उपास्य काम विजित है, इसीलिये इसके द्वारा काम-विजयरूप फल-प्राप्ति मानी जाती है।

रासलीलाके मूल उद्देश्यको विभिन्न सम्प्रदायोंके आचार्योंने अपनी-अपनी रास-निष्ठा और भक्तिके अनुसार नाना रूपोंमें वर्णित किया है, किंतु भागवतवर्णित 'रास-पंचाध्यायी' को श्रृंगारपरक लौकिक काम-वासनाका प्रेरक किसीने नहीं माना। श्रीवल्लभाचार्यने सुबोधिनी टीकामें रास-प्रकरणके आरम्भमें कहा है—

ब्रह्मानन्दात्समुद्धृत्य भजनानन्दयोजने।
लीला या सुन्यते सम्यक् सा तुर्ये विनिरूप्यते॥

भगवान्‌ने व्रजमें लीलाएँ इसलिये कीं कि मुक्त जीवोंका ब्रह्मानन्दसे उद्धार होकर उन्हें भजनानन्द मिले। इस प्रकार लौकिक विषयानन्द तथा काव्यरससे इतर रसरूप श्रीकृष्ण (रसो वै सः)-की लीलाओंमें जो

रससमूह मिले, वह रास है। और यह रससमूह गोपी-कृष्णकी शरद्रात्रिकी लीलामें अपने पूर्णरूपमें स्थित बताया गया है। रास-क्रीडाद्वारा मानसिक अनुभवसे रसकी अभिव्यक्ति होती है, देहद्वारा प्राप्त अनुभवसे नहीं—**'रासक्रीडायां मनसो रसोद्गमो न तु देहस्य।'**

वल्लभसम्प्रदायमें रासके तीन रूप माने जाते हैं—(१) नित्य रास, (२) अवतरित रास या नैमित्तिक रास, (३) अनुकरणात्मक। इनमें अनुकरणात्मक दो प्रकारका होता है—(क) भावनात्मक या मानसिक और (ख) देहात्मक। गोलोकमें अथवा निजधाम वृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्ण अपने आनन्द-विग्रहसे अपनी आनन्द-प्रसारिणी शक्तियोंके साथ नित्य रसमग्न रहते हैं। उनकी यह क्रीडा अनादि और अनन्त है। यही भगवान्‌का 'नित्य रास' है।[१]

रास-लीलामें शृंगारमयी चेष्टाओं और काम-क्रीडाओंका अत्यधिक वर्णन देखकर इसे अश्लील समझनेकी भूल होना स्वाभाविक है। इस शंकाका निरास करते हुए वल्लभाचार्यने सुबोधिनीकी कारिकाओंमें स्पष्ट रूपसे यह भाव व्यक्त किया है कि कृष्णके रासमें कामकी समस्त चेष्टाएँ तो हैं परन्तु उनमें काम नहीं है। गोपियोंके लौकिक कामका शमन और अलौकिक कामकी पूर्ति निष्काम भगवान्‌द्वारा हुई थी। यदि लौकिक कामसे कामकी पूर्ति होती तो उससे संसार उत्पन्न होता, परंतु यहाँ तो गोपी-कृष्ण दोनोंमें लौकिक कामका अभाव है और वे संसारसे निवृत्त हैं। इस रासकार्यमें किसी मर्यादाका भंग भी नहीं हुआ। इससे तो गोपियोंको स्वरूपानन्दकी मुक्ति ही मिली है। इसलिये इस लीलाके सुननेसे लोक निष्काम ही बनता है।

भागवतपुराण (१०।३३।४०)-में इसी भावको व्यक्त करते हुए कहा है कि यह लीला काम-रोगरूपी हृदयरोगका नाश करनेवाली है।

अत: स्पष्ट है कि इस रासलीलाको काम-लीला न मानकर काम-विजयलीला ही मानना चाहिये। राधावल्लभ-सम्प्रदायमें रासलीलाको इसीलिये 'कामजयी-लीला' कहते हैं।

श्रीसनातन गोस्वामीने भी रासलीलाको काम-विहीन ही माना है और ह्लादिनी शक्तिका अनादि विलास कहा है—**ह्लादिनीशक्तिविलासलक्षणपरमप्रेममय्येवैषा रिरंसा न तु काममयीति।**

रासके लक्षणकी स्थापना करते हुए कहा जाता है कि सर्वशक्तिमान् परिपूर्ण परतत्त्वकी पराख्या शक्तिके साथ अनादिसिद्ध रिरंसाकी जो उत्कण्ठा है और उस उत्कण्ठाके साथ जो चिद्विलास है, उसीको 'रास' कहते हैं। इस लीलामें अपूर्व नृत्य, गीत, वाद्य आदिका आयोजन तथा विविध भावोंका योग रहता है।

इस रास-लीलाको दो रहस्योंमें विभाजित किया जाता है—अन्तरंग और बहिरंग। अन्तरंग रहस्यका अभिप्राय आनन्द-रसका आस्वादन करना है और बहिरंगका अभिप्राय कामको पराजित करना है। इसलिये जबतक कामको पूर्ण रूपसे विजय न कर ले, तबतक रास-लीला देखनेका अधिकारी नहीं होता—**शृङ्गार-रसकथापदेशेन विशेषतो निवृत्तिपरेयं पञ्चाध्यायी।**

रास-लीलाका प्रतीकार्थ रास—लीलाके विभिन्न प्रतीकार्थ प्रस्तुत किये जाते हैं, किंतु राधावल्लभ सम्प्रदायमें प्रतीकार्थोंकी उपादेयता नहीं है। यहाँ राधा और कृष्णकी अन्तरंगलीलाके ही एक रूपको रासके रूपमें ग्रहण किया जाता है। किंतु जो प्रतीकार्थ प्रचलित हैं, उनका संक्षेपमें हम यहाँ उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं।

ब्रह्मविद्या—इसे आधार मानकर चलनेवाले ज्ञानमार्गी रास-लीलामें भी 'तत्त्वमसि' का विधान पाते हैं। उनकी दृष्टिमें भगवान् श्रीकृष्ण 'तत्' पदार्थ हैं और गोपांगनाएँ 'त्वम्' पदार्थ हैं। इन दोनोंका परस्पर संश्लेषण हो तो क्या वह कामलीला होगी? यथार्थमें अन्तरंग दृष्टिसे यह जीव और ब्रह्मका अद्भुत संयोग ही है।[२]

योगशास्त्र—योगके आधारपर रासका प्रतीकार्थ इस प्रकार समझा जा सकता है कि अनाहत नाद ही

---

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डॉक्टर दीनदयालु गुप्त, पृ० ४९७।

२. श्रीभागवततत्त्व—श्रीकरपात्रीजी, पृ० २१८

भगवान्‌की वंशीध्वनि है, अनेक नाड़ियाँ ही गोपियाँ हैं, कुलकुण्डलिनी ही श्रीराधा हैं और मस्तिष्कका सहस्र-दल कमल ही वह सुरम्य वृन्दावन है, जहाँ आत्मा और परमात्माका सुखमय सम्मिलन होता है तथा जहाँ पहुँचकर ईश्वरीय विभूतिके साथ जीवात्माकी सम्पूर्ण शक्तियाँ सुरम्य रास रचती हुई नृत्य किया करती हैं।[१]

आत्मशक्ति—आत्माकी विभिन्न क्रीडाओंको ही लीलाका आध्यात्मिक अर्थ माननेवाले विद्वान् कृष्ण गोप, गोपी, वंशी आदि सभी अवयवोंका तात्त्विक अर्थ लगाते हैं—

'गो' का अर्थ है इन्द्रिय। अत: 'गोप' या 'गोपी' का अर्थ हुआ इन्द्रियोंकी रक्षा करनेवाला। कृष्ण आत्माके प्रतीक हैं, जो वंशीध्वनिसे, संगीत आदि स्वरोंसे गोपियोंको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। जैसे इन्द्रियाँ या वृत्तियाँ एकमन, एकप्राण होकर अन्तरात्मामें मग्न हो जानेकी तैयारी करती हैं, वैसे ही गोपियाँ वंशीध्वनिसे कृष्णकी ओर केवल गति करती हैं। इसके पश्चात् रासलीलाका नृत्य आता है, जो अपनी तरंगोंद्वारा गोपियोंको कृष्णका सामीप्य प्राप्त करा देता है। सामीप्यका अनुभव अपनी शक्ति और अहम्मन्यताका स्फुरण करता है। अत: पूर्णमग्नताकी दशा नहीं आ पाती। आत्मप्रकाशपर अहंकारका आवरण छा जाता है, पर जैसे ही कृष्णरूपी आत्मज्योति अन्तर्हित होती है, आत्ममग्न होनेकी प्रेरणा तीव्र हो उठती है और अहंकार विलीन हो जाता है। वियोगकी अनुभूति लक्ष्यप्राप्तिके लिये इसीलिये आवश्यक मानी गयी है। अहंकारके नष्ट होते ही, पार्थक्यके समस्त बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, मनोवृत्तियाँ आत्मामें लीन हो जाती हैं, गोपियाँ कृष्णके साथ महारास रचने लगती हैं। यही है आत्माका पूर्णानन्दमें लीन होना। भारतीय संस्कृतिका यही चरम लक्ष्य है।[२]

रासलीलाका एक आध्यात्मिक अर्थ यह भी किया जाता है कि भगवान्‌की यह लीला अपने साथ अपनी ही लीला है। भागवतपुराणमें कहा है कि जैसे बालक अपने प्रतिबिम्बको दर्पण, मणि आदिमें देखकर क्रीड़ा करता है वैसे ही भगवान् रमापतिने हास्य-आलिंगनादिद्वारा ब्रज-सुन्दरियोंके साथ खेल किया। भगवान्‌ने आत्माराम होकर भी अपने अनेक रूप करके प्रत्येक गोपीके साथ पृथक्-पृथक् रहकर क्रीडा की। इसलिये कुछ लोग इस लीलाके अभिनय या अनुकरणके पक्षमें नही हैं।[३]

वेद और रासलीला—रासलीलाका आध्यात्मिक प्रतीकार्थ माननेवाले कुछ विद्वानोंने वेदमें भी रास-लीलाकी खोज की है और शब्दार्थके नित्य सम्बन्धके रूपमें इसे ठहराया है। रासलीलाका रूपकी दृष्टिसे विचार प्राचीन कालसे ही होता आया है। सब वेद भगवान्‌का ही प्रतिपादन करते हैं—इस सिद्धान्तको दरसानेके लिये ही रास-लीलाका प्रसंग है। गोपियाँ वेदकी ऋचाएँ हैं और जिस प्रकार शब्द और अर्थका नित्य सम्बन्ध है, उसी प्रकार ऋचारूपी गोपियों और भगवान्‌का सम्बन्ध भी नित्य है। इसीका नाम 'नित्य-रास-लीला' है।

भगवान् परमात्मा हैं और गोपियाँ प्रकृति हैं, अन्त:करणकी वृत्तियाँ हैं—यह मान करके भी रास-लीलाका रहस्य रूपकी दृष्टिसे समझा जा सकता है। रासलीला ब्रह्मानुरूपका रहस्य प्रकट करती है। परमात्माके साथ अनेकों सम्बन्ध बाँधकर जीवात्मा भगवत्स्वरूप प्राप्त करता है। यह सम्बन्ध काम, क्रोध, भय, स्नेह, एकता और भक्तिसे सिद्ध होता है। अतएव रासलीला इस जीवात्माका परमात्माके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकट करती है।

ऋग्वेदमें विष्णुदेवताके जो विशेषण हैं, वही आगे भक्तिसम्प्रदायोंमें कृष्णके लिये प्रयुक्त किये गये हैं। कृष्ण वैदिक विष्णु एवं सूर्यके विकसित रूप हैं। सूर्य अखिल चराचर विश्वकी आत्मा हैं अतएव वे विश्वके आधार

१. कल्याण—रास-लीलामें आध्यात्मिक तत्त्व—श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र, वर्ष ६, अगस्त १९३१, पृष्ठ २५६।

२. भारतीय साधना और सूर साहित्य—डॉ० श्रीमुंशीरामजी शर्मा, पृ० २०८

३. कल्याण—रासलीला—पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार, वर्ष ६, अगस्त १९३१, पृष्ठ २३२

और मध्यबिन्दु बने हुए हैं तथा विश्वके चारों ओर फिरते हैं। इसी बातको श्रीकृष्णकी रास-लीलाका स्वरूप दिया गया है। रास-लीला तो मनुष्य तथा विश्वका परमात्माके साथका सम्बन्ध प्रकट करती है।

कृष्ण सूर्य हैं और गोपीजन किरण हैं। सूर्यकी किरणें सूर्यमें रहती हैं, सूर्यसे बाहर निकलती हैं और फिर सूर्यमें प्रवेश कर जाती हैं। सूर्य गोलाकार हैं और सर्वदा गतिमान् हैं। यही सुन्दर रहस्य रास-लीलामें सिद्ध किया गया है।

इस प्रकार प्राचीन तथा अर्वाचीन तत्त्व-चिन्तकोंने रासलीलाकी उदात्त भावनाका वर्णन किया है। रास-लीलाकी भावना काव्य-दृष्टि और तत्त्व-ज्ञानकी दृष्टिसे अत्यन्त भव्य और सुन्दर है। अतएव इसका स्थान साहित्य और तत्त्व-ज्ञानके इतिहासमें चिरन्तन है।*

वैष्णव-सम्प्रदायोंमें रासलीला—प्रतीकार्थके आधारपर यदि रासलीलाका मर्मोद्घाटन किया जाय तो यह लीला प्राकृत ठहरेगी ही नहीं। इसलिये इसमें किसी प्रकारकी मर्यादाके अतिक्रमणका या काम-वासनाका प्रश्न भी नहीं उठेगा।

रास-लीलाके सम्बन्धमें ब्रजके भक्ति-सम्प्रदायोंमें यह मतवाद प्रवर्तित है कि ब्रजगोपियोंको अपना स्वरूप-साक्षात्कार करानेके उद्देश्यसे कृष्णने यह रास रचा था। भगवत्स्वरूपदर्शनके लिये जो विभिन्न दशाएँ वर्णित की जाती हैं, रासलीला उनमें छठीं दशा है। पाँचवींतक पहुँचनेपर साधक अपनी 'देहसुधि' भूल जाता है, 'पाँचे भूले देह सुधि' तब कहीं 'छठी भावना रासकी' प्राप्त होती है।

रास-लीलाके प्रयोजन और उद्देश्यके सम्बन्धमें और भी विचार उपलब्ध होते हैं। राधावल्लभ-सम्प्रदायके मतानुसार यह लीला श्रीलालजी (श्रीकृष्ण)-ने प्रेमतत्त्व (हित)-के विकासके लिये की थी। इस लीलामें एक ही 'श्रीतत्त्व' श्रीकृष्ण और गोपीरूपमें आविर्भूत हुआ है। यह शुद्ध, अनाविल, निरतिशय आनन्दपूर्ण प्रेमलीला थी, इसलिये प्रेमके लौकिकरूपको सम्मुख रखकर शृंगारमयी भावनाओंका प्रस्फुटन इस लीलाका आवश्यक तत्त्व बना। केवल यही ध्यान रखना चाहिये कि निर्विशेष प्रेम-रसका आलम्बन जब लौकिक नायक-नायिका न होकर भगवान् होते हैं, तब वह परम पवित्र माना जाता है। लौकिक दृष्टिसे वर्णित होनेके कारण इसमें नायक-नायिकाका आरोप कर लिया जाता है और उसके बाद स्वकीया-परकीयात्वका भी आधान स्वयं हो जाता है। वस्तुतः ये गोपियाँ, जिनका रासलीलामें वर्णन है, स्वकीया-परकीयाभावनिर्विशेष ही थीं, किंतु सांसारिक दृष्टिसे उन्हें स्वकीया-परकीयाभेदद्वारा वर्णित किया जाता है। भगवान् श्रीकृष्णको ही परमाराध्य एवं पति माननेके कारण यथार्थमें सभी नायिकाएँ (गोपियाँ) स्वकीया ही थीं, किंतु यदि उनमेंसे कुछको अन्य पुरुषोंके साथ विवाहित माना जाय तो परकीयात्व भी माना जा सकता है। रास-पंचाध्यायीकी गोपियाँ सर्वत्यागपूर्वक श्रीकृष्णमें रत हुई थीं, अतः उन्हें स्वकीया ही कहा जाना चाहिये। श्रीहितहरिवंशजीने राधाको दुलहन और कृष्णको दूल्हा बनाकर स्वकीयात्वका ही भाव व्यक्त किया है।

खेलत रास दुलहिनी दूलहु।
सुनहु न सखी सहित ललितादिक,
निरखि-निरखि नैननि किन फूलहु॥
अति बल मधुर महा मोहन धुनि,
उपजत हंससुता के कूलहु।
थेई थेई वचन मिथुन मुख निसरत,
सुनि सुनि देह दसा किय भूलहु॥

× × ×

अति लावन्य रूप अभिनय गुन,
नाहिंन कोटि काम सम तूलहु।
भ्रकुटि विलास हास रस, बरषत,
'हित हरिवंश' प्रेम रस झूलहु॥

(हितचौरासी, पद सं० ६२)

लीलाका दूसरा प्रयोजन जीवोंका कल्याण है। सांसारिक जीव शृंगार और प्रेमके पथपर चलता हुआ

* देखिये—पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ-रासपंचाध्यायी—भागवत, गोविन्दलाल हरगोविन्द भट्ट, पृष्ठ २९६-९७।

केवल 'काम' में ही अपने भोग-विलासकी इतिश्री समझ बैठता है, जिसके परिणामस्वरूप संसारके आवागमनके बन्धनमें पुनः-पुनः फँसना होता है। इस लीलाद्वारा वह काम-विजयकी भावना पोषित करके काम-जयरूप फलको प्राप्त करता है। श्रीकृष्ण और गोपीके उत्कृष्ट प्रेमको अपने लिये उपास्य मानकर चलनेसे काम-जय-रूप फल-प्राप्ति सम्भव है।

प्रेमलक्षणाभक्तिके मतसे रासलीलाका तृतीय प्रयोजन यह है कि श्रीकृष्ण सदा राधिकाजीको प्रसन्न करनेके लिये प्रयत्नशील रहते हैं। राधाको प्रमुदित रखना ही उनका परमोद्देश्य है। राधिकाकी अंशभूता अन्यान्य गोपिकाओंको रासमें एकत्रकर प्रकारान्तरसे इष्टदेवी राधाको प्रमुदित करनेका यह एक क्रीड़ाकौतुक है। इस लीलामें ***'तत्सुखसुखित्व'*** भावकी रक्षा करते हुए श्रीकृष्ण अपने आमोदका विस्तार करते हैं। इस ***'तत्सुख-सुखित्व'*** का पर्यवसान भी लोक-कल्याणमें ही होता है। अतः इस लीलाकी भावना करना ही पर्याप्त नहीं, अपितु इसे भौतिक रूपमें अनुकरण करना भी अभीष्ट है। अनुकरणद्वारा राधाके प्रति कृष्णानुरागका स्वरूप सांसारिक जीवोंको भी व्यक्त होता है।

रास-लीलास्थलीके विषयमें स्पष्ट सिद्धान्त है कि वह वृन्दावन ही है, अन्य गोलोक आदि नहीं। हाँ, भावनागत रासलीलाके लिये किसी भी अन्य स्थलकी कल्पना की जा सकती है। स्थूल वृन्दावनका माहात्म्य स्वीकार करनेवाले इस सम्प्रदायमें राधा-कृष्णकी समस्त लीलाएँ यहीं घटित हुई हैं और आज भी रास-लीला इसी धाममें नित्य होती है। ब्रजलीलाकी पराकाष्ठा ही रासलीलामें है। रास-पंचाध्यायीमें गोलोकमें ही रास-लीलाका होना वर्णित है, किंतु भक्तिसम्प्रदायोंमें वृन्दावनको ही मुख्यता प्रदान की जाती है; क्योंकि इस भूमिका माहात्म्य गोलोक, ब्रह्मलोक आदिसे भी बढ़कर माना जाता है। हितहरिवंशजीने अपने रासके पदोंमें ब्रजको भी रासस्थल कहा है।

रासलीलारहस्यका उद्घाटन करते हुए स्कन्द-पुराणमें शांडिल्य ऋषिका राजा परीक्षित् और राजा वज्रनाभसे जो संवाद आता है, वह मनोयोगपूर्वक पठनीय है। ब्रजभूमिकी व्यापकतापर प्रकाश डालते हुए शांडिल्य ऋषिने ब्रजको ब्रह्मका ही रूप ठहराया है। उस व्यापक व्रजमें कृष्णको देहधारी बताया और उन्हें आत्माराम कहा है। श्रीकृष्ण परमात्मा हैं और उनकी आत्मा हैं श्रीराधा। श्रीराधाको प्रसन्न करनेके लिये कृष्ण रासलीला रचते हैं। इस लीलामें सत्त्व-रज-तम गुणोंके द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है। यह लीला दो प्रकार की है—वास्तवी और व्यावहारिकी।

सर्गस्थित्यप्यया यत्र रजःसत्त्वतमोगुणैः।
लीलैवं द्विविधा तस्य वास्तवी व्यावहारिकी॥
वास्तवी तत्स्वसंवेद्या जीवानां व्यावहारिकी।
आद्यां विना द्वितीया न द्वितीया नाद्यगा क्वचित्॥

वास्तवी लीला सब जीवोंके हृदयमें होती है, परंतु व्यावहारिकी लीला देखे बिना वास्तवी लीला किसीकी समझमें नहीं आती। साथ ही वास्तवी लीलाके समझे बिना व्यावहारिकी लीलाका रस भी पवित्र भावसे आस्वादन नहीं किया जा सकता। इन दोनों लीलाओंका पारस्परिक गहन सम्बन्ध है।*

रास-लीलाके स्वरूपनिर्णयके बाद यह प्रश्न स्वाभाविक रूपसे उत्पन्न होता है कि यदि यह लीला प्रतीक-रूपक और शुद्ध भावनापरक आध्यात्मिक है तो इसका अभिनय-अनुकरण करना युक्तिसंगत नहीं। भगवान्‌की गूढ़ लीलाका संसारी जीव किस प्रकार अनुकरण कर सकते हैं। किंतु इस प्रश्नके उत्तरमें यह कहा जाता है कि यदि केवल स्मरणात्मक शैलीसे इस लीलाकी मानसिक भावना मात्र की जायगी तो केवल उन्हीं भक्तोंको इसका लाभ प्राप्त होगा, जिनका कल्मषहीन मानस भगवान्‌की भावना करनेयोग्य पवित्र हो गया है। साधारण कोटिके संसारी भक्त इस लीलाकी मानस-भावना नहीं कर पायेंगे और यह गूढ़-गहन दार्शनिक

* कल्याण—रास-लीला, लेखक-पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार, वर्ष ६, अगस्त १९३१, पृ० २३२।

मिलनेके लिये असीम व्याकुलताभरी उनकी प्रत्येक भाव-भंगिमा व्रजराजनन्दनके हृत्पटपर प्रस्तुत होने लगी। व्रज-सुन्दरियोंकी असंख्य भाव-धाराएँ एक साथ व्रजराजनन्दनको घेरकर प्रवाहित होने लगीं। इस भावधारामें व्रजराजनन्दनके लिये स्थिर रहना असम्भव हो गया। वे स्वयं भी इसमें बरबस बह चले। वज्रनाभ! तुम्हारे प्रपितामह स्वयं भगवान् हैं। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण वैराग्य—ये सब इनमें निरन्तर रहते हैं। वे आप्तकाम हैं, नित्यतृप्त हैं। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो इन्हें प्राप्त न हो। ऐसा कोई सुख नहीं, जो इनमें निरन्तर वर्तमान न रहता हो। ये भला, किस वस्तुकी इच्छा करें; किस सुखकी अभिलाषा करें ? पर बलिहारी है व्रजसुन्दरियोंके प्रेमकी, जिसने पूर्णकाम, नित्यतृप्तमें भी व्रजसुन्दरियोंसे रस प्राप्त करनेकी इच्छा उत्पन्न कर दी; इच्छा ही नहीं—व्याकुलता पैदा कर दी।

व्रजराजनन्दन सोचने लगे—'अहो! ये व्रज-सुन्दरियाँ सब कुछ त्यागकर, सब कुछ भूलकर एकमात्र मुझे चाहती हैं। इनमें निज-सुख-वासना—कल्पनाकी गन्ध भी नहीं है। ये केवल मेरा सुख चाहती हैं। इनके प्रेममें कोई हेतु नहीं। ये केवल प्रेमके लिये ही प्रेम करती हैं। मेरे प्रति ऐसा विशुद्ध प्रेम अनन्त विश्वमें व्रजसुन्दरियोंके सिवा और किसीका अबतक न हुआ, भविष्यमें भी नहीं होगा। इस प्रेमका प्रतिदान तो मैं दे ही नहीं सकता। अनादिकालसे मेरी यह प्रतिज्ञा है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(गीता ४। ११)

'जो मुझे जिस भावसे भजता है, मैं उसे उसी भावसे भजता हूँ।' पर यह मेरी प्रतिज्ञा आज टूट गयी। इनके प्रेमके अनुरूप प्रेम मैं नहीं कर सका। इनमेंसे प्रत्येक व्रजसुन्दरीके स्मृतिपटमें एकमात्र मैं हूँ। पर मेरा अन्त:करण तो अनन्त-अनन्त स्मृतियोंसे भरा पड़ा है। सबको भूल भी जाऊँ तो भी इन अभिन्न व्रजसुन्दरियोंको तो भूल नहीं सकता। इन अनन्त असंख्य गोपियोंकी स्मृति बनी रहेगी। फिर इनके प्रेमके अनुरूप मेरा प्रेम कहाँ हुआ? हाँ! यदि मैं अपनी समस्त भगवत्ताको भूलकर सर्वथा इनके प्रेमके अनुरूप भावसे भावित होकर इनका प्रेम ग्रहण करूँ, इन्हें अपने प्रेमका दान दूँ तो मेरे कर्तव्यकी यत्किंचित पूर्ति सम्भव है। इनके प्रेमका ऋण तो मैं कभी चुका ही नहीं सकता। अपने आपको इनके भावानुरूप यन्त्र बनाकर किसी अंशमें केवल मात्र इनके प्रेमको ग्रहण करनेके अनुरूप बन सकूँगा। अत: आज यही करना है। इन्हें बुलाकर सब कुछ समर्पण कर देना है।' यों विचार करके स्वयं भगवान् व्रजराजनन्दनने अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाका विकास किया तथा व्रजसुन्दरियोंको अपने निकट बुलाकर इनके भावानुरूप इन्हें आनन्द देनेकी इच्छा की।

'तब लीनी करकमल जोगमाया-सी मुरली।
अघटित घटना चतुर बहुरि अधरासव जुरली॥
जाकी धुनि तैं अगम निगम प्रगटे बड़ नागर।
नाद ब्रह्मकी जननि मोहिनी सब सुख सागर॥
नागर नवल किसोर कान्ह कल गान कियौ अस।
बाम बिलोचन बालन को मन हरन होइ जस॥

एक क्षणमें सारा व्रजमण्डल वंशीध्वनिसे पूर्ण हो गया। स्खलितस्रोता पयस्विनीकी धाराकी तरह व्रजसुन्दरियाँ अपने प्रियतम श्यामसुन्दरसे मिलनेके लिये दौड़ पड़ीं। क्यों नहीं दौड़तीं, आजकी वंशीध्वनि व्रजांगनाओंका मन हरण करनेके लिये ही हुई थी। अपने स्वामीकी आज्ञासे वंशीने व्रजांगनाओंके श्रीकृष्ण-प्रेम-परिभावित चित्तका हरण किया। अपहरणकर वह ध्वनि स्वामीकी ओर दौड़ी। व्रजांगनाएँ भी ठीक ध्वनिके पीछे-पीछे ही दौड़ीं, मानो चितचोरको ढूँढने निकली हों। चितचोर दूर थोड़े ही थे। क्षणमें ही जा पहुँचीं। उन्हें दीखा—अहा! मेरे प्रियतम श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने ही वंशीनादसे मेरे चित्तको खींचा है। चित्त तो पहले ही खिंच आया। इस बार इसी पंक्तिमें बँधा शरीर भी खिंच चुका था। अविलम्ब खिंच आया। दूध दुह रही थी, वह पूरा नहीं दुहा गया। भोजन बना रही थी, पर भोजन चूल्हेपर ही रह गया। सेवा कर रही थी, सेवा भूलकर दौड़ पड़ी। और तो क्या? शृंगार कर रही थी, शृंगार अधूरा ही रह गया, बल्कि विकृत शृंगार करके प्रियतमके पास दौड़ पड़ी।

वज्रनाभ! श्रीकृष्ण एवं व्रजसुन्दरियाँ दो नहीं हैं। श्रीकृष्ण ही व्रजसुन्दरियाँ हैं, व्रजसुन्दरियाँ ही श्रीकृष्ण

हैं। पर यह तो उनकी अनादि अनन्त प्रेमलीला है। अनादिकालसे होती आ रही है, अनन्तकालतक होती रहेगी। अस्तु, व्रजेन्द्रनन्दनकी इस बार भी ठीक उसी तरह सब चेष्टा हो रही थी। बड़ी कठिन परीक्षा व्रजसुन्दरियोंकी हुई और व्रजसुन्दरियाँ भी परीक्षामें पूर्णतया उत्तीर्ण हुईं। व्रजराजसुन्दर व्रजसुन्दरियोंको संनिकट पाकर कृतार्थ हुए। व्रजसुन्दरियाँ व्रजेन्द्रनन्दनको पाकर कृतार्थ हुईं। मिलनके बाद वियोगलीलाका होना अनिवार्य है, आवश्यक है। देखते-देखते ही व्रजेन्द्रनन्दन अन्तर्धान हो गये। इन्हें ढूँढ़ती हुई व्रजसुन्दरियाँ विक्षिप्त हो गयीं। वृक्षोंसे, लताओंसे—इनका पता पूछने लगीं। भावावेश और भी बढ़ता गया और अपनेको ही श्रीकृष्ण समझकर वे इन्हींकी तरह लीला करने लगीं। कभी आवेश शिथिल होता तो 'हा प्रियतम! हा प्राणनाथ! कहाँ हो?'—कहकर रोने लगतीं। एक क्षण एक कल्पके समान बीतने लगा। वियोग-वेदनाका उफान चरम सीमापर पहुँचकर कातर वाणीके रूपमें शिथिल होनेका मार्ग ढूँढ़ने लगा। वे करुण कण्ठसे गाने लगीं—

कहन लगीं, अहो कुँवर कान्ह ब्रज प्रगटे जब तें।
अवधिभूत इंदिरा इहाँ क्रीडत हैं तब तें॥
नयन मूँदिबौ महाअस्त्र लै हाँसी-फाँसी।
मारत हौ कित सुरतनाथ! बिनु मोलकी दासी॥
विष-जलहू तैं, व्याल-अनल तैं दामिनि-झर तैं।
क्यों राखीं, नहिं मरन दई, नागर! नगधर तैं॥
जब तुम जसुदा-सुवन भए, पिय अति इतराने।
बिस्व-कुसल के काज बिधिहिं बिनती करि आने॥
अहो मीत! अहो प्राननाथ! यह अचरज भारी।
अपने जन कौं मारि करौ किन की रखवारी?
जब पसु चारन चलत चरन कोमल धरि बनमें।
सिल-त्रिन-कंटक अटकत-कसकत हमरे मनमें॥
प्रनत मनोरथ करन चरन सरसीरुह पिय के।
का घटि जैहै नाथ! हरत दुख हमरे हिय के॥
फनी-फनन पै अरपे, डरपे नहिन नैकु तब।
छतियन पै पग धरत डरत कत, कुँवर कान्ह अब॥
जानति हैं हम तुम जु डरत ब्रजराज-दुलारे।
कोमल चरन-सरोज, उरोज कठोर हमारे॥
हरें-हरें पग धरिय, हमैं पिय निपट पियारे।
कत अटवी-महि अटत, गड़त तृन-कूर्प अन्यारे॥

गोपियोंकी व्यथा पूर्ण सीमापर पहुँच चुकी थी। व्रजेन्द्रनन्दनके लिये भी अब अलग रहना सम्भव नहीं था। उसी क्षण साक्षात् मन्मथ-मन्मथ प्रकट हो गये। व्रजसुन्दरियाँ अपने प्रियतम प्राणधनको पाकर आनन्दमें निमग्न हो गयीं। विविध दिव्य रसमयी रस-चर्चाके पश्चात् यमुना-पुलिनपर मण्डलाकार रास आरम्भ हुआ। देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं। आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। रासके तालपर नृत्य करती हुई वनाधिदेवी वृन्दा गाने लगीं। इन्हींके स्वरमें स्वर मिलाकर गगनस्थ देवांगनाएँ भी गाने लगीं—

आज गोपाल रास रस खेलत
पुलिन कल्पतरु तीर री सजनी!
सरद बिमल नभचंद बिराजत,
रोचत त्रिविध समीर री सजनी!
चम्पक बकुल मालती मुकुलित
मत्त मुदित अति कीर री सजनी!
लेन सुगंध राग-रागिनि को
ब्रज-जुवतिन की भीर री सजनी!
मघवा मुदित निसान बजावत
व्रत छाँड्यो मुनि धीर री सजनी!
हित हरिबंस मगन मन स्यामा
हरत मदन मन पीर री सजनी!

गाते-गाते उद्धव जोरसे 'जय हो, जय हो,' पुकार उठते हैं। फिर अतिशय उल्लासके स्वरमें कहते हैं—'महर्षियो! वज्र! इधर देखो, रासमण्डलमण्डित वृन्दावनविहारी प्रकट हो गये। जय हो, जय हो।' सभी उधर देखते हैं। रासमण्डलमण्डित वृन्दावनविहारीकी अनुपम झाँकी करके सभी प्रेममें डूब जाते हैं। पूर्ण ध्वनिसे एक साथ ही कीर्तन आरम्भ होता है—

जै हरि गोविन्द राधे गोविन्द।
जै हरि गोविन्द राधे गोविन्द॥

रासपंचाध्यायीकी व्याख्या

(एक आचार्य)

एक शक्तिसम्पन्न, क्रान्तदर्शी कवि कुछ लिख जाता है, सहृदय भावुक उसका रसास्वादन करता है, आनन्दका अनुभव करता है।

दूसरा सत्यान्वेषक दार्शनिक उसकी समालोचना करता है, उसमें अध्यात्मतत्त्वोंकी उद्‌भावना करता है, उसका समानधर्मानुयायी उन तत्त्वोंके ज्ञानसे बड़ा उल्लसित होता है।

तीसरा भक्तहृदय उसमें अपनी 'भावना' के अनुरूप भगवान्‌का रूप देखता है। सहधर्मी उसके इष्टदेवकी उपासना करता है, भक्ति और आह्लादसे विह्वल हो उठता है।

इस प्रकार एक ऋषि अथवा कविकी कृतिके आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थोंकी उत्पत्ति होती है।

अतः जब किसी उपास्य और प्रिय धर्मग्रन्थका, जनसाधारणके 'काव्य' ग्रन्थका अर्थ करना हो तो पहले आधिदैविक, तब आध्यात्मिक और तब आधिभौतिक अर्थ करना चाहिये। आधिदैविक अर्थ जनसाधारणके लिये है, आध्यात्मिक अर्थ विशेष मनोवृत्तिके लोगोंके लिये है और आधिभौतिक अर्थ कुछ इने-गिने सहृदय लोगोंके लिये है, जो अलौकिक रसका अनुभव कर सकते हैं, जो लोकके साधारण बुरे-भलेके ऊपर उठ सकते हैं।

विद्वान् सदा कहा करते हैं कि वेदों और पुराणोंके तीन-तीन अर्थ होते हैं—आधिदैविक, आध्यात्मिक और आधिभौतिक।

जो जैसा अधिकारी हो, जिसमें विद्या-बुद्धिकी जैसी योग्यता हो, जिसकी जैसी रुचि हो, वह उसी प्रकारके अर्थको अपनाये और लाभ उठाये।

रासपंचाध्यायी

भागवतके दशमस्कन्ध (पूर्वार्ध)-के उनतीसवेंसे तैंतीसवें अध्यायतकका नाम है—रासपंचाध्यायी। उसमें कृष्ण और गोपियोंकी रासक्रीड़ाका वर्णन है। यही वर्णन संक्षेपसे विष्णुपुराणमें और विस्तारसे ब्रह्मवैवर्तमें भी आया है। भागवतका वर्णन न अधिक सूक्ष्म है और न अधिक विस्तृत। भागवतकी कथा ही लोगोंमें अधिक कही और सुनी जाती है, अतः उसीपर आक्षेप भी अधिक होते हैं।

आक्षेप तो होते ही रहते हैं, पर जिन्हें सचमुच इस रासपंचाध्यायीको पढ़नेकी इच्छा है, उनसे एक बात कही जा सकती है कि भागवत भक्तोंके लिये लिखी गयी है। रासपंचाध्यायीके प्रारम्भमें ही लिखा है कि शरद्‌की रात्रिमें भगवान्‌ने योगमायाका आश्रय लेकर रासकी लीला प्रारम्भ की थी। अतः जो लोग कृष्णको योगीश्वर भगवान् मानते हों और जो उनकी आधिदैविक लीलाको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हों, वे ही इसे पढ़ें। अर्थात् भागवतका प्रधान अर्थ आधिदैविक ही होना चाहिये। और यदि इतनेसे उस श्रद्धालुकी जिज्ञासा शान्त न हो तो वह किसी सन्त अथवा महात्मासे उसके आध्यात्मिक तत्त्वोंको समझनेका यत्न करे। रासके आध्यात्मिक अर्थसे उसकी जिज्ञासा भी शान्त होगी और अपूर्व आनन्द भी मिलेगा। इसके आगे जानेकी अनधिकार चेष्टा प्रत्येकको न करनी चाहिये।

ऐसे विशाल हृदयवाले भी अनेक होते हैं, जो उस रासके आधिभौतिक अर्थमें भी अलौकिक रसकी अनुभूति करते हैं। वे श्लील-अश्लीलके परे जाकर उसके सौन्दर्यकी परख करते हैं। पर ऐसे लोग वे ही होते हैं, जिनपर सरस्वतीकी विशेष कृपा रहती है; नहीं तो प्रत्येक पाठकके आँख-कान होते हैं और प्रत्येक ही उन वाक्यों और कथाओंको पढ़ता अथवा सुनता है, पर सबको न तो एक-सा अर्थ ही सूझता है और न सुझानेपर प्रिय ही लगता है।

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥

(ऋक्० १०। ७१। ४)

'जिसे लखावे वही लखे'

चोर-जार-शिखामणि

[एक सज्जनने भगवान् श्रीकृष्णके 'चोर-जार-शिखामणि' नामके सम्बन्धमें प्रश्न किया। जिसका युक्ति-युक्त एवं शास्त्रीय प्रमाणोंसे समन्वित एक सुन्दर उत्तर पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा लिखा गया, उसीको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—सम्पादक]

एक सज्जन पूछते हैं—'गोपालसहस्रनाम' में भगवान्का एक नाम 'चोर-जार-शिखामणि' आया है। चोरी और जारी दोनों ही अत्यन्त नीच वृत्तियाँ हैं। भगवान्के भक्तकी तो बात ही दूर, जब साधारण विवेकवान् पुरुष भी 'चोरी-जारी' से बचे रहते हैं, तब फिर भगवान्में चोरी-जारीका होना कैसे सम्भव है? और यदि उनमें चोरी-जारी नहीं है तो फिर उनको चोर-जारोंका मुकुटमणि कहना क्या उन्हें गालियाँ देना नहीं है? और यदि वस्तुतः भगवान्में चोरी-जारीका होना माना जा सकता है तो फिर वे भगवान् कैसे हुए और उनके आदर्शसे दुनियाके लोग डूबे बिना कैसे रहेंगे? मेरी समझसे बुरी नीयतसे किसीने उनका यह नाम रख दिया है। इस सम्बन्धमें मैं आपका मत जानना चाहता हूँ।

इसके उत्तरमें अल्पमतिके अनुसार कुछ लिखनेका प्रयत्न किया जाता है। प्रश्नकर्ता महोदयको इससे कुछ संतोष हुआ तो अच्छी बात है। नहीं तो, इसी बहाने कुछ समय भगवच्चर्चामें बीतेगा और इस सुअवसरकी प्राप्तिके कारण प्रश्नकर्ता महोदय हैं, इसलिये मैं तो उनका कृतज्ञ हूँ ही।

यह बात सर्वथा सत्य है कि 'चोरी' और 'जारी' बहुत ही नीच वृत्तियाँ हैं और ऐसी वृत्तियाँ जिन लोगोंमें हैं, वे कदापि विवेकवान् और सदाचारी नहीं हैं। भक्तमें ऐसे दुर्गुण रह ही नहीं सकते; और भगवान्में तो इनकी कल्पना करना भी मूर्खताकी सीमा है। इतना होनेपर भी 'गोपालसहस्रनाम' में आया हुआ श्रीभगवान्का यह 'चोर-जार-शिखामणि' नाम न तो भगवान्को गाली देनेके लिये है और न किसीने बुरी नीयतसे ही इस नामको गढ़ लिया है। दृष्टिविशेषके अनुसार भगवान्में इस नामकी पूर्ण सार्थकता है और इसका रहस्य समझ लेनेपर फिर कोई शंका भी नहीं रहती।

सबसे पहले भगवान्का स्वरूप समझना चाहिये। स्वरूपभूत दिव्यगुणविशिष्ट भगवान्में लौकिक गुणोंका—जो प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणके विकार हैं—सर्वथा अभाव है, इसलिये वे निर्गुण हैं। भक्तोंके परम आदर्श, लोकसंग्रहके आचार्य और विश्वके भरण-पोषण-कर्ता होनेसे वे समस्त सात्त्विक गुणोंको अपनेमें धारण करते हैं, इसलिये वे अशेषसद्गुणालंकृत हैं और प्रकृतिके द्वारा अखिल जगद्रूपमें उन्हींका प्रकाश होनेके कारण वे समस्त सदसद्गुणसम्पन्न हैं। भगवान् ही समस्त विश्वके निमित्त और उपादान कारण हैं। इस दृष्टिसे संसारके सभी भाव उन्हींसे उत्पन्न होते हैं,[१] सभी भावोंका सम्बन्ध उनसे जुड़ा हुआ है। इतना होनेपर भी उनके स्व-स्वरूपमें कोई दोष नहीं आता। उनके द्वारा सब कुछ होनेपर भी वे किसीके बन्धनमें नहीं हैं।[२]

किसी दृष्टिविशेषके हेतुसे उन्हें यदि संसारसे सर्वथा पृथक् माना जाय तो फिर यह तो मानना ही पड़ेगा कि संसारमें जो कुछ है, सभी भगवान्का है; क्योंकि वे 'सर्वलोकमहेश्वर'[३] हैं और संसारमें जितने भी पुरुष हैं, सबके देहमें 'देही' या आत्मारूपसे वे ही स्वयं विराजित हैं।[४] इस दृष्टिसे समस्त संसारके सम्पूर्ण

१- ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये। मत्त एवेति तान्विद्धि................. (गीता ७। १२)
अर्थात् सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणसे उत्पन्न होनेवाले जितने भाव हैं, सबको तू मुझसे ही (उत्पन्न) जान।

२- न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय। (गीता ९। ९) अर्थात् हे अर्जुन! वे कर्म मुझको नहीं बाँधते।

३- सर्वलोकमहेश्वरम् (गीता ५। २९)

४- अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः। (गीता १०। २०) अर्थात् अर्जुन! सब भूतोंके हृदयमें आत्मारूपसे मैं ही स्थित हूँ।

पदार्थोंके स्वत्वपर अधिकार करनेसे और समस्त स्त्रियोंके पति होनेसे भी उनपर न परधनापहरणका दोष आ सकता है और न औपपत्यका ही।

परंतु यहाँ सर्वलोकमहेश्वर और विश्वात्मारूपमें स्थित भगवान्‌के सम्बन्धमें प्रश्न नहीं है, यहाँ तो प्रश्नकर्ता महोदय विश्वात्मा और सर्वलोकमहेश्वरसे भिन्न समझकर उन साकार-मंगलविग्रह भगवान्‌के सम्बन्धमें पूछते हैं, जो धर्मसंस्थापनार्थ ही धरातलपर अवतीर्ण होते हैं। उनका कहना है कि 'धर्मसंस्थापनार्थ अवतार ग्रहण करनेवाले भगवान् क्या ऐसा कोई भी कार्य कर सकते हैं; जो स्वरूपत: धर्मविरुद्ध हो और जिससे शुभ आदर्श नष्ट होनेके साथ ही धर्मस्थापनाके स्थानपर धर्मकी हानि होती हो?'

इसके उत्तरमें यों तो यह कहना भी सर्वथा युक्तियुक्त और सत्य ही है कि भगवान्‌पर माया-जगत्‌के धर्मका कोई बन्धन लागू नहीं पड़ता, वे सर्वतन्त्रस्वतन्त्र हैं। वे जो कुछ करते हैं, वही उनका धर्म है और वे जो कुछ कहते हैं, वही शास्त्र है। अवश्य ही उनकी क्रियाका अनुकरण करना सबके लिये न तो उचित है और न सम्भव ही; क्योंकि भगवान्‌की क्रिया भगवान्‌के स्वधर्मानुकूल होती है। जीवमें भगवत्ता न होनेसे वह भगवान्‌के धर्मका आचरण नहीं कर सकता। भगवान् श्रीकृष्ण आग पी गये, वे वरुणलोकसे नन्दको ले आये, यमराजके यहाँसे गुरुपुत्रको लौटा लाये, उन्होंने दिनमें ही सूर्यको छिपा दिया, बाललीलामें कनिष्ठिका अँगुलीपर पहाड़ उठा लिया और अपने चरित्रोंसे ब्रह्माको भी मोहित कर दिया। जीव इनमेंसे कोई-सा भी कार्य नहीं कर सकता। इसीलिये भगवान्‌की क्रियाका अनुसरण भी मनुष्य नहीं कर सकता। हाँ, उनकी वाणीका—उनके उपदेशोंका पालन अवश्य करना चाहिये और इसीमें जीवोंका कल्याण है।

ऐसा होनेपर भी साकार-मंगलविग्रह भगवान्‌की लीलामें वस्तुत: ऐसी कोई क्रिया नहीं होती, जो शास्त्रविरुद्ध हो या जिसे हम चोरी-जारी या किसी पापकी श्रेणीमें रख सकें। मोहवश मूढ़लोग उनके स्वरूपको न समझनेके कारण ही उनकी क्रियाओंपर दोषारोपण कर बैठते हैं।[१] तब फिर इस 'चोरी-जारी' का क्या अर्थ है? अब इसीपर संक्षेपमें विचार करना है। यों तो वेदोंमें भी भगवान्‌को '**स्तेनानां पतये नम:**' चोरोंका सरदार कहकर प्रणाम किया गया है। भगवान् श्रीरामको भी प्राचीन सद्ग्रन्थोंके आधारपर श्रीरामस्वरूपके अनुभवी गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने '**लोचन सुखद बिस्व चित चोरा**' कहा है। परंतु प्रधानरूपसे यह 'चोर-जार-शिखामणि' नाम भगवान् श्रीकृष्णके लिये ही प्रयुक्त हुआ है। श्रीमद्भागवतके अनुसार यह स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं—'**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।**' गीतामें तो भगवान् श्रीकृष्णने अपने ही श्रीमुखसे बारम्बार अपनेको साक्षात् सर्वाधिपति सच्चिदानन्दघन परात्पर तत्त्व घोषित किया है। और इन भगवान्‌का 'चोर-जार-शिखामणि' नाम रखा गया है उन व्रज-गोपियोंके द्वारा, जिनके चरणोंकी पावन धूलि पानेके लिये देवश्रेष्ठ ब्रह्मा और ज्ञानिश्रेष्ठ उद्धव तिर्यगादि योनि और लता-गुल्मादि जड शरीर धारण करनेमें भी अपना सौभाग्य समझते हैं[२] तथा स्वयं

१- अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥ (गीता ९।११)

'सब भूतोंके महेश्वररूप मेरे परम भावको न जाननेवाले मूढ़ मनुष्य ही मानव-शरीरधारी मुझ भगवान्‌को न पहचानकर मुझे तुच्छ समझते हैं।'

२-तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद् गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्दस्त्वद्यापि यत्पदरज: श्रुतिमृग्यमेव॥ (श्रीमद्भा० १०।१४।३४)

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—'भगवन्! मुझे इस धरातलपर व्रजमें—विशेषत: गोकुलमें किसी कीड़े-मकोड़ेकी योनि मिल जाय, जिससे मैं गोकुलवासियोंकी चरण-रजसे अपने मस्तकको अभिषिक्त करनेका सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ, जिन गोकुलवासियोंके जीवन सम्पूर्णरूपसे आप भगवान् मुकुन्द हैं, जिनकी चरण-रजको अनादिकालसे अबतक श्रुति खोज रही है (परंतु पाती नहीं)।'

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥ (श्रीमद्भा० १०।४७।६१)
वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णश:। यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥ (श्रीमद्भा० १०।४७।६३)

भगवान् जिनका अपनेको ऋणी घोषित करते हैं[१]।

गोपियोंके घर माखन खाकर और यमुनातटपर उनके वस्त्रोंको कदम्बपर रखकर भगवान् श्रीकृष्ण चोर कहलाये तथा शारदीय पूर्णिमाकी रात्रिको गोपियोंमें आत्मरमणकर भगवान् 'जार' कहलाये। परंतु इस माखनखोरी, चीरचोरी और रासरमणके प्रेमराज्यसम्बन्धी रहस्यका किंचित् भी तत्त्व समझमें आ जाय तो फिर यह बात भलीभाँति जान ली जाती है कि न तो यह 'चोरी' वस्तुतः चोरी ही है और न वह 'रमण' कोई परस्त्रीसंगरूप व्यभिचार ही है।

शब्दोंको लेकर झगड़नेकी बात तो दूसरी है। तत्त्वज्ञ लोग शब्दोंपर ध्यान नहीं दिया करते, वे प्रसंगानुकूल उनके अर्थोंपर ध्यान देते हैं। वेदोंमें और गीतामें भी अच्छे भावोंमें 'काम' शब्दका प्रयोग हुआ है। भगवान् स्वयं एकसे अनेक होनेकी 'कामना' करते हैं।[२] धर्मसे अविरुद्ध 'काम' को वे अपना स्वरूप बतलाते हैं।[३] गोपियोंके दिव्य प्रेमको शास्त्रमें 'काम' कहा गया है[४]। श्रुतियोंमें और गीतामें 'रति' शब्द आता है।[५] गीतामें 'रमन्ति' शब्द भी आया है।[६] परंतु इन सबका अर्थ ही दूसरा है। एक 'जन्म' शब्दको ही लीजिये। गीतामें भगवान्के लिये 'जन्म' शब्द आता है। भगवान् अजन्मा हैं, परंतु वे स्वयं अर्जुनसे कहते हैं—मेरे कई जन्म हो चुके हैं।[७] साथ ही यह भी कहते हैं कि मेरे जन्मके तत्त्वको जाननेवाला 'जन्म' से छूट जाता है। जरा सोचना चाहिये—जिसके 'जन्म' के तत्त्वको जाननेवाला जन्मसे छूट जाता है, उसका जन्म क्या उसी जातिका जन्म है, जिस जातिका उस जन्मसे छूटनेवाले साधारण मनुष्यका जन्म होता है? वह अजन्माका जन्म है—दिव्य जन्म है। जन्म होनेपर भी वस्तुतः वह जन्म नहीं है। इसी प्रकार भगवान्का 'काम', उनकी 'चोरी', उनकी 'जारी', उनकी 'रति', उनका 'रमण' आदि सभी दिव्य हैं। जिन भगवान्का अनन्य भजन करनेवाले मनुष्य गुणातीत हो जाते हैं, उन नित्य निर्गुण भगवान्में बहिरंगा प्रकृतिके मलिन विकाररूप दुर्गुणोंकी कल्पना करना मूर्खता नहीं तो और क्या है?

तब फिर ये क्या हैं? ये हैं भगवान् श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता दिव्य लीलाएँ, जो दिव्य व्रजधाममें दिव्य व्रजवासियों और दिव्य व्रजबालाओंके साथ दिव्य देहमें

श्रीउद्धवजी कहते हैं—

'अहो! इन गोपियोंकी चरण-रजका सेवन करनेवाले वृन्दावनमें उत्पन्न हुए गुल्म, लता और ओषधियोंमेंसे मैं कुछ भी हो जाऊँ (जिससे उन गोपियोंकी चरण-रज मुझे भी प्राप्त हो); क्योंकि इन गोपियोंने बहुत ही कठिनतासे त्याग किये जानेयोग्य स्वजनोंको और आर्यपथको त्यागकर भगवान् मुकुन्दके मार्गको प्राप्त किया है, जिसको श्रुतियाँ अनादिकालसे खोज रही हैं। ·····मैं उन नन्द-व्रजवासिनी स्त्रियोंकी चरण-रेणुको बार-बार नमस्कार करता हूँ, जिनके द्वारा किया गया भगवान्की लीला-कथाओंका गान त्रिभुवनको पवित्र करता है।'

१-न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥ (श्रीमद्भा० १०।३२।२२)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'प्रियाओ! तुमने घरकी कठिन बेड़ियोंको निःशेषरूपसे तोड़कर मेरी सेवा की है, तुम्हारे इस साधुकार्यका बदला मैं देवताओंकी आयुमें भी नहीं चुका सकता। तुम अपनी ही उदारतासे मुझे इस ऋणसे मुक्त कर सकती हो।'

२-'सोऽकामयत' (तैत्तिरीय० २।६)

३-धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥' (गीता ७।११) अर्थात् हे अर्जुन! धर्मसे अविरुद्ध 'काम' मैं हूँ।

४- प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत्प्रथाम्।

५- आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः॥ (मुण्डक० ३।१।४)
यस्त्वात्मरतिरेव स्यात् (गीता ३।१७)

६- तुष्यन्ति च रमन्ति च। (गीता १०।९)

७- बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि..... (गीता ४।५)

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥ (गीता ४।९)

अर्थात् अर्जुन! मेरा जन्म कर्म दिव्य है; इसको जो पुरुष तत्त्वतः जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको नहीं प्राप्त होता, वह मुझको ही पाता है।

दिव्यरूपसे होती हैं। इनमें न प्राकृत चोरी है, न प्राकृत रमण है और न प्राकृत देह है। अधिक क्या, वहाँकी प्रकृति ही प्राकृत नहीं है। इसीलिये यह रहस्य हमारी प्राकृत बुद्धिके ध्यानमें नहीं आता। हमारी बुद्धि बहिरंगा प्रकृतिके कार्यरूप समष्टिबुद्धिका एक अत्यन्त स्थूल रूप है, जो स्वयं प्रकृतिसम्भूत अज्ञानसे इतनी आच्छादित है कि अपने कारणरूप बहिरंगा प्रकृतिका भी रहस्य नहीं जान सकती, फिर इस प्रकृतिसे सर्वथा अतीत दिव्य-राज्यके खेलको यह बुद्धि कैसे समझ सकती है। इसीलिये ऐसे शब्दोंको पढ़-सुनकर हमारी बुद्धिमें मोह होता है और हम श्रीभगवान्‌को अपने-ही-सरीखा प्राकृत शरीरधारी मनुष्य मानकर और उनकी दिव्य लीलाओंको प्राकृत मनुष्योचित लौकिक क्रिया समझकर उनपर दोषारोपण करके, मोहवश उनका अनुकरण करने जाकर या पापबुद्धिकी प्रेरणासे उनकी दिव्य लीलाओंकी आड़में अपने पापका समर्थन करनेकी चेष्टा करके घोर नरककुण्डमें गिर पड़ते हैं! यह हमारा ही अज्ञान है। अप्राकृत भगवान्‌की अप्राकृत लीलाओंका रहस्य अप्राकृत स्थितिमें पहुँचनेपर ही कोई जान सकता है। इसीलिये गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्मभूत होनेके पश्चात् ही पराभक्तिके द्वारा अपने स्वरूपके यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति बतलायी है।* यह दुर्लभ स्थिति भगवत्कृपासे ही प्राप्त होती है। इस स्थितिमें पहुँचनेपर भगवान्‌की जिन दिव्य लीलाओंका यथार्थ प्रत्यक्ष होता है, वे मन-वाणीके अगोचर भगवत्स्वरूपमय होती हैं, उनका कोई भी वर्णन नहीं कर सकता।

हाँ, प्रेमराज्यके बाह्य स्तरकी कुछ स्थूल बातें, जो भगवत्कृपासे शुद्धान्तःकरणवाले पुरुषोंकी समझमें किसी अंशमें आ सकती हैं, उन्हींपर विचार किया जा सकता है और उनके अनुसार गोपियोंके घरमें दधिमाखनकी चोरी-लीलाको हम भगवान्‌की 'भक्तपूजा-ग्रहण-लीला', वस्त्रचोरीको 'आवरण हरण-लीला' और रास-रमणको अत्यन्त गोपनीय 'प्रेम-मिलन-लीला' कह सकते हैं।

भला, क्या कोई कह सकता है कि भगवान् श्रीकृष्णने किसी दिन भी किसी ऐसी गोपीके घरमें घुसकर माखन चुराया था, जो उस माखनको अपनी चीज समझती थी और जो भगवान्‌के द्वारा उसके चुरा लिये जानेपर दुखी होती थी? श्रीकृष्णगतप्राणा, श्रीकृष्णभावितमति गोपिकाओंका तन-मन—सभी कुछ श्यामसुन्दर प्राणप्रियतम श्रीकृष्णका था। वे संसारमें जीती थीं श्रीकृष्णके लिये, घरमें रहती थीं श्रीकृष्णके लिये और घरके सारे काम करती थीं श्रीकृष्णके लिये। उनकी निर्मल और योगीन्द्रदुर्लभ पवित्र बुद्धिमें श्रीकृष्णके सिवा अपना कुछ था ही नहीं। श्रीकृष्णके लिये ही, श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये ही, श्रीकृष्णकी निज सामग्रीसे ही श्रीकृष्णको पूजकर—श्रीकृष्णको सुखी देखकर वे सुखी होती थीं। प्रातःकाल निद्रा टूटनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक वे जो कुछ भी करती थीं, सब श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये ही करती थीं। यहाँतक कि उनकी निद्रा भी श्रीकृष्णमें ही होती थी—स्वप्न और सुषुप्ति दोनोंमें ही वे श्रीकृष्णकी मधुर और शान्त लीला देखा करती थीं। रातको दही जमाते समय श्यामसुन्दरकी माधुरी छबिका ध्यान करती हुई प्रेममयी प्रत्येक गोपिका यह अभिलाषा करती थी कि 'मेरा दही सुन्दर जमे, श्रीकृष्णके लिये उसे बिलोकर मैं बढ़िया-सा और बहुत-सा माखन निकालूँ और उसे उतने ही ऊँचे छीकेपर रखूँ, जितनेपर श्रीकृष्णका हाथ आसानीसे पहुँच सके; फिर मेरे प्राणधन श्रीकृष्ण अपने सखाओंको साथ लेकर हँसते और क्रीड़ा करते हुए घरमें पदार्पण करें, माखन लूटें और लुटायें, आनन्दमें मत्त होकर मेरे आँगनमें नाचें और मैं किसी कोनेमें छिपकर इस लीलाको अपनी आँखोंसे देखकर जीवनको सफल करूँ।' रातभर गोपी इसी विचारमें रहती। प्रातःकाल जल्दी-जल्दी दही बिलोकर माखन निकालकर छीकेपर रखती। कहीं प्राणधन आकर

* ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः। (गीता १८। ५४-५५)
भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—'ब्रह्मभूत होनेपर प्रसन्नात्मा पुरुष न तो किसी वस्तुके लिये शोक करता है न किसीकी आकांक्षा करता है, वह सब भूतोंमें समभावसे ब्रह्मको देखता है; तब उसे मेरी पराभक्ति प्राप्त होती है और उस पराभक्तिके द्वारा वह मेरे स्वरूप-तत्त्वको यथार्थरूपमें जानता है।'

लौट न जायँ, इसलिये वह सब कामोंको छोड़कर सबसे पहले दही बिलोती और छीकेपर माखन रखनेके बाद श्रीकृष्णकी प्रतीक्षामें व्याकुल हुई मन-ही-मन सोचती—'हा! आज प्राणधन क्यों नहीं आये, इतना विलम्ब क्यों हो गया? क्या आज इस दासीका घर पवित्र न करेंगे? क्या आज मेरे समर्पण किये हुए माखनका भोग लगाकर स्वयं सुखी होकर मुझे सुखी न करेंगे? इन्हीं विचारोंमें आँसू बहाती हुई गोपी क्षण-क्षणमें दौड़कर दरवाजेपर जाती, लज्जा छोड़कर राहकी ओर ताकती। श्यामसुन्दर आ रहे हैं या नहीं?—सखियोंसे पूछती। एक-एक निमेष उसके लिये युगके समान बीतता। भक्तवांछाकल्पतरु भगवान् श्रीकृष्ण भी अनेक रूपोंमें एक ही साथ ऐसी प्रत्येक गोपीके घर पधारकर भोग लगाते, भक्तको सुखी देखकर सुखी होते और अपने सुखसे भक्तके सुखको अनन्तगुना बढ़ा देते!

अब आप ही बतलाइये, क्या इसका नाम चोरी है? जिस चोरीको स्मृतियोंमें अपराध माना गया है, दूसरेके धनपर मन ललचानेवाले कामनाके गुलाम विषयासक्त पामर प्राणी जिस घृणित चोरीको अपना पेशा मानते हैं, क्या उस चोरीसे इस चोरीकी किसी अंशमें भी तुलना हो सकती है? बड़े पुण्य-बलसे अनन्त जन्मोंके अनन्त सुकृतोंके फलस्वरूप भगवच्चरणोंमें मनुष्यकी मति होती है और उस निर्मल मतिसे साधना करते-करते भगवत्कृपासे कभी किसी भक्त-विशेषके द्वारा ही भगवान्‌के प्रति सर्वस्व समर्पित होता है, तब कहीं गोपिकाओंके इस महान् आदर्शकी कोई छाया उसमें आती है। फिर स्वरूपभूता गोपिकाओंके साथ भगवान्‌की इस प्रेमलीलाको मामूली चोरी समझना बुद्धिभ्रमके सिवा और क्या हो सकता है?

दूसरी चोरी भगवान् श्रीकृष्णने यमुना-तटपर उन महाभाग्यवती गोपकुमारियोंके वस्त्रोंकी की, जो कात्यायनी देवीकी साधना करके प्राणप्रियतम श्रीकृष्णको प्राणनाथरूपमें प्राप्त करना चाहती थीं। गोपियोंका भगवान्‌को प्राप्त करनेकी साधना करना भी प्रेमराज्यकी एक लीला ही थी। स्वरूपभूता गोपिकाओंको श्रीकृष्ण कब अप्राप्त थे? प्रेमका मार्ग दिखलानेके लिये—प्रेमराज्यमें प्रवेश किस प्रकार हो सकता है, कितने त्यागकी इसमें आवश्यकता है, इसीका दिग्दर्शन करानेके लिये ये सब लीलाएँ थीं। उसी प्रेमराज्यकी माधुरी भक्तोंको चखानेके लिये साक्षात् रसराज रसिकशेखर श्रीकृष्णने दिव्य परिकर और अपने दिव्य धामसहित अवतीर्ण होकर व्रजमें जो मधुर प्रेमलीलाएँ की थीं, उन्हींमें वस्त्र-हरण भी एक अनोखी लीला थी। यह लीला अत्यन्त रहस्यमयी है। विषयोंके आपातरमणीय नरकराज्यसे निकलकर दिव्य प्रेमराज्यमें प्रवेश किये बिना आनन्दसिन्धु रसराज श्रीकृष्णकी इस लीलाका रहस्य समझमें नहीं आ सकता। विषय-मोहसे आवृत लौकिक दृष्टिसे तो भगवान्‌की इस दिव्य लीलामें दोष ही दिखलायी देगा और ऐसे लोगोंके लिये इतना ही उत्तर पर्याप्त है कि श्रीकृष्ण उस समय छः वर्षके बहुत छोटे बालक थे। किसी बुरी नीयतसे गोपियोंके वस्त्रोंको चुराना उनके लिये बन ही नहीं सकता। अथवा श्रीकृष्णने नदीमें नंगी होकर नहानेकी कुप्रथाको दूर करनेके लिये ऐसा किया था और इसीलिये उनसे कहा भी कि वस्त्रहीन होकर नहानेमें देवताओंका अपमान होता है*, ऐसा नहीं करना चाहिये। परंतु प्रेममार्गके साधक भक्तोंके लिये यही बात नहीं है। उनके लिये तो भगवान् सर्वत्यागका—सारे आवरणोंको हटाकर अपने सामने आनेका पाठ सिखानेके लिये ही यह लीला करते हैं। भगवत्-तत्त्वके ज्ञानमें—मल और विक्षेपरूप दो बड़े प्रतिबन्धकोंके नाश होनेपर भी—जबतक आवरण रहता है, तबतक बहुत बड़ी बाधा वर्तमान रहती है। आवरणका नाश सहजमें नहीं होता। अज्ञान इस सुकौशलसे जीवकी बुद्धिको ढके रखता है कि वह किसी तरह भी भगवान्‌के सामने निरावरण—बेपर्द होकर जानेकी अनुमति नहीं देती। इस वस्त्र-हरणकी लीलामें भक्तके बाह्याभ्यन्तर सभी प्रकारके आवरण नष्ट हो जानेका तत्त्व निहित है। आनन्द-सौन्दर्य-सुधा-निधि रसराजका चिदानन्द-रसमय रूप ही ऐसा मधुर है कि उसके सामने आनेपर किसी प्रकारकी सुधि नहीं रहती। देह-गेह, लज्जा-संकोच, मान-अपमान, अपना-पराया, लोक-परलोक—सभी उस

* यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम्।　(श्रीमद्भा० १०। २२। १९)

अनुपम रूपसरिताकी प्रखर धारामें बह जाते हैं। फिर बाह्य वस्त्रोंके आवरणकी तो बात ही क्या है? गोपियोंमें बाह्याभ्यन्तर भगवान्‌के साथ कोई आवरण था—यह बात नहीं है। जिन श्रीकृष्णका एक बार सच्चे हृदयसे स्मरणमात्र करनेसे मायाके समस्त बन्धन सदाके लिये टूट जाते हैं, अज्ञानका मोटा पर्दा हमेशाके लिये फट जाता है, उन भगवान्‌का साक्षात् संग प्राप्त करनेवाली—उनके तत्त्वका नित्य अनुभव करनेवाली—उनकी दिव्य प्रेमलीलाओंमें सहायता करनेके लिये ही, उन्हींकी इच्छासे प्रकट होनेवाली उन्हींकी अपनी स्वरूपभूता दिव्य शक्तिसे विभिन्न स्वरूपोंमें प्रकट हुई गोपिकाओंमें किसी आवरणकी कल्पना करना तो भगवदपराध ही है। गोपिकाओंकी और भगवान्‌की ये लीलाएँ तो प्रेममार्गीय भक्तोंके लिये आदर्श मार्गदर्शिकारूपमें हुई हैं। जिस प्रेमके प्राकट्यमें तन-मनकी कुछ भी सुधि नहीं रहनी चाहिये, जिस प्रेमके दिव्य देशमें प्रेमास्पदके सामने उसकी प्राप्तिमें व्यवधानरूप या प्रेममें कलंकरूप कोई भी आवरण नहीं रहना चाहिये, उस प्रेममें गोपिकाओंको आवरणरहित बनानेकी चेष्टामें भगवान्‌का वस्त्र-हरण-लीला करना कैसे दूषित हो सकता है? जब साधारण लौकिक प्रेममें भी प्रेमी और प्रेमास्पदमें किसी आवरणकी गुंजाइश नहीं, तब एक ही भगवान्‌के द्विविधरूप रसराज और महाभावके पूर्ण मिलनमें वस्त्रावरणकी बाधा कैसे रह सकती है? प्रेमसाम्राज्यके सम्राट् प्रेमतत्त्वके मूलाधार, दिव्य प्रेमविग्रह और समस्त जीवोंके आत्मारूप श्रीकृष्णके सामने कौन पर्देमें रह सकता है? अणु-अणुमें व्यापक विभु परमात्मा श्रीकृष्णके सामने अपना कोई भी अंग कैसे छिपाकर रखा जा सकता है? मोहग्रस्त जीव अज्ञानवश अन्तर्यामीको न पहचानकर ही उनसे छिपने-छिपानेकी व्यर्थ चेष्टा किया करता है। परंतु भक्त अपने आपको उन्हींकी चीज मानकर उनके सामने खोल देता है और जहाँ भक्त होकर भी इस आपेको खोलनेमें उसे किसी कारणसे संकोच होता है, वहाँ भक्तवत्सल भगवान् स्वयं उसको निरावरण करके अपने और उसके बीचके व्यवधानको पूर्णतया दूर करके दृढ़ आलिंगनके साथ उसे अपने आनन्दमय रससिन्धुमें डुबाकर रसमय बनानेके उद्देश्यसे बलपूर्वक उसके आवरणको हर लेते हैं। यही वस्त्र-हरण-लीलाका स्थूल रहस्य है। क्या इस लीलामें किसी भी समझदार पुरुषको बुरी नीयतका संदेह हो सकता है? क्या इस आवरण-भंगलीलाको कोई विज्ञ पुरुष चोरी कह सकते हैं?

भगवान् तो इतना ही नहीं करते, वे सबसे पहले तो भक्तके मनको चुरा लेनेका प्रयत्न करते हैं और जो भक्त भगवान्‌को अपना मन देना चाहता है, अन्तमें उस मनको वे चुरा ही लेते हैं! जिसका मन चोरा गया; वह फिर उस मन-चोरसे अलग कैसे हो सकता है? इसीलिये गोपियोंकी लीलामें गोपियोंका श्रीकृष्णमें निरन्तर निवास दिखलाया जाता है।

श्यामसुन्दरके बालसौन्दर्यके जादूसे बचनेके लिये नन्दबाबाकी गलीमें जानेसे मना किया जाता है—

बटाऊ! वा मग तैं मति जइयो।
गली भयावनि भारी जा मैं सबरो माल लुटइयो॥
ठाढ़ो तहाँ तमाल-नील एक छैल छबीलो छैयो।
नंगे बदन मदन-मद मारत मधुर-मधुर मुसकैयो॥
देखन कौं अति भोरो छोरो, जादूगर बहु सैयो।
हरत चित्तधन सरबस तुरतहि, नहिं कोउ ताहि रुकैयो॥

अबतक तो चोरीके महत्त्वपर विचार हुआ, अब जारके अर्थपर कुछ विचार करना है। यह बात तो पहले कही ही जा चुकी है कि सब जीवोंके आत्मा होनेके कारण भगवान्‌में कभी औपपत्यकी—जारपनेकी कल्पना ही नहीं हो सकती; परंतु यहाँ साकार दिव्य-मंगल-विग्रह भगवान्‌को जो 'जार-शिखामणि' कहा गया—इसीपर विचार करना है। भगवत्-सम्बन्धी रसोंमें प्रधान रस पाँच हैं—(१) शान्त, (२) दास्य, (३) सख्य, (४) वात्सल्य और (५) माधुर्य। इन पाँच रसोंका प्रयोग लौकिक प्रेममें भी होता है, परंतु भगवान्‌के साथ सम्बन्ध होनेसे ये पाँचों रस भक्तिके या भगवत्-प्रेमके उत्तरोत्तर बढ़े हुए पाँच भाव बन जाते हैं। इन पाँचोंमें सबसे ऊँचा रस है—माधुर्य! माधुर्यमें शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य—चारों ही रहते हैं। यह रस प्रेमका सर्वोच्च विकसितरूप होनेसे

अत्यन्त ही स्वादु है। इस रसके रसिक लोग भोग-मोक्ष सबको तृणवत् त्यागकर भगवत्प्रेममें मतवाले रहते हैं। इसीसे इसका नाम मधुर है। शान्तरसमें शुद्धान्तःकरणकी भगवदभिमुखी वृत्तिका विकासमात्र होता है। दास्यमें भगवत्सेवाका तो अधिकार है; परंतु भगवान् इसमें ऐश्वर्यशाली हैं, स्वामी हैं, सेव्य हैं और भक्त दीन है, दास है और सेवक है। इसमें कुछ अलगाव-सा है और संकोच-सा है, परंतु सख्य, वात्सल्य और माधुर्यमें क्रमशः भगवान् अधिकाधिक निकटतम निजजन होते चले जाते हैं। सख्यमें ऐश्वर्य अप्रकट-सा और प्रेम प्रकट-सा रहता है। वात्सल्यमें ऐश्वर्यकी कभी-कभी छाया-सी आती है, भक्तमें स्नेहका विकास रहता है और माधुर्यमें तो भगवान् अपने सारे ऐश्वर्यको भुलाकर—अपनी विभूतिको मिटाकर प्रियतम कान्तरूपमें भक्तके सामने प्रकट रहते हैं। इस रसमें न प्रार्थना है, न कामना है, न भय है और न संकोच है। समयविशेषपर प्रसंगानुकूल व्यवहारमें पूर्वोक्त चारों रसोंके दर्शन होनेपर भी प्रधान रस मधुर ही रहता है। प्रियतम मेरा है और मैं प्रियतमका हूँ; उसका सब कुछ मेरा है और मेरा तो एकमात्र प्रियतमको छोड़कर और कुछ है ही नहीं। इस रसमें भगवान्की जो सेवा होती है, वह मालिककी नहीं, प्रियतमकी होती है। प्रियतमके सुखी होनेमें ही प्रेमीको अपार सुख है, इसलिये सेवा भी अपार ही होती है। इस माधुर्यभावके दो प्रकार हैं—स्वकीयाभाव और परकीयाभाव। अपनी स्त्रीके साथ विवाहित पतिका जो प्रेम होता है, उसे स्वकीयाभाव कहते हैं और अन्य स्त्रीके साथ जो परपुरुषका प्रेमसम्बन्ध होता है, उसे परकीयाभाव कहते हैं। लौकिक प्रेममें इन्द्रियसुखकी प्रधानता होनेके कारण परकीयाभाव पाप है, घृणित है और नरकका कारण है, अतएव सर्वथा त्याज्य है; क्योंकि लौकिक परकीयाभावमें अंग-संगकी घृणित कामना है और प्रेमास्पद 'जार' पुरुष है। परंतु भगवत्प्रेमके दिव्य कान्ताभावमें परकीयाभाव स्वकीयाभावसे कहीं श्रेष्ठ है; क्योंकि इसमें अंग-संगकी या इन्द्रियसुखकी कोई आकांक्षा नहीं है और प्रेमास्पद 'जार' नहीं, परंतु पति-पुत्रोंके अपने और समस्त विश्वके आत्मा स्वयं भगवान् हैं। स्वकीयाभावमें भी पतिव्रता पत्नी अपना नाम-गोत्र, मन-प्राण, धन-धर्म, लोक-परलोक—सभी कुछ पतिके अर्पण करके जीवनका प्रत्येक क्षण पतिकी सेवामें ही बिताती है; परंतु उसमें चार बातोंकी परकीयाकी अपेक्षा कमी होती है। प्रियतमका निरन्तर चिन्तन, मिलनकी अत्यन्त उत्कट अतृप्त उत्कण्ठा, प्रियतममें किसी भी दोषका न दीखना और कुछ भी न चाहना—ये चार बातें निरन्तर एक साथ निवास होनेके कारण स्वकीयामें नहीं होतीं; इसीलिये परकीयाभाव श्रेष्ठ है। भगवान्से नित्यमिलनका अभाव न होनेपर भी परकीयाभावकी प्रधानताके कारण गोपियोंको भगवान्का क्षणभरका अदर्शन भी असह्य होता था।[1] वे प्रत्येक काम करते समय निरन्तर श्रीकृष्णका चिन्तन करती थीं[2] और श्रीकृष्णकी प्रत्येक क्रिया उन्हें ऐसी दिव्य गुणमयी दीखती थी कि एक क्षणभरके लिये भी उनसे उनका चित्त हटाये नहीं हटता था। अवश्य ही यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि यह परकीयाभाव केवल व्रजमें अर्थात् लौकिक विषयवासनासे सर्वथा विमुक्त दिव्य प्रेमराज्यमें ही सम्भव है! इसीलिये श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—

१- अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्॥　(श्रीमद्भा० १०।३१।१५)

गोपियाँ कहती हैं—'श्यामसुन्दर! जब आप दिनके समय वनमें विचरते हैं, तब आपको न देख सकनेके कारण हमारे लिये एक-एक पल युगके समान बीतता है। फिर शामको जब हम वनसे लौटते समय घुँघराली अलकावलियोंसे सुशोभित आपके श्रीमुखको देखती हैं, तब हमें आँखोंकी पलक बनानेवाले ब्रह्मा मूर्ख प्रतीत होते हैं (क्योंकि पलकोंका पड़ना हमें सहन नहीं होता)।'

२- या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः॥ (श्रीमद्भा० १०।४४।१५)

'जो गोपियाँ गायोंका दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकोंको पालना झुलाते समय, रोते हुए शिशुओंको लोरी देते समय, घरोंमें छिड़काव करते तथा झाड़ू लगाते समय, प्रेमभरे हृदयसे आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद वाणीसे श्रीकृष्णका नाम-गुण-गान किया करती हैं, उन श्रीकृष्णमें चित्त निवेशित करनेवाली गोपरमणियोंको धन्य है।'

परकीयाभावे अति रसेर उल्लास।
ब्रज बिना इहार अन्यत्र नाहिं वास॥

'सर्वोच्च मधुर रसके उच्चतम परकीयाभावका उल्लास व्रजको अर्थात् दिव्य प्रेमराज्यको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं होता। इसीलिये इस प्रेमराज्यके सम्राट् भगवान् श्रीकृष्ण व्रजको छोड़कर इस रूपमें अन्यत्र कहीं नहीं मिलते—

वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।

गोपियोंका श्रीकृष्णप्रेम परकीयाबुद्धिसे था। इसीसे उनके लिये '**जारबुद्ध्यापि संगताः**' कहा गया है। जारबुद्धि अर्थात् जारभाव था, न कि विषय-वासनायुक्त कामप्रेरित घृणित मनोविकार!

भगवान्‌की अन्तरंगा शक्तियोंमें '**ह्लादिनी शक्ति**' सर्वप्रधान है। यही भगवान्‌की 'प्रकृति', 'आत्ममाया' या योगमाया है। भगवान्‌का रसराजरूपमें प्राकट्य इसी ह्लादिनी शक्तिके निमित्तसे हुआ है। वास्तवमें शक्ति और शक्तिमान्‌के स्वरूपमें कोई भेद नहीं है, दिव्य लीलामें स्वयं भगवान् ही अपने सौन्दर्य और माधुर्यका दिव्य रसास्वादन करनेके लिये ह्लादिनी शक्तिसे महाभावरूपिणी श्रीराधाके रूपमें प्रकट होते हैं और उसीसे विभिन्न लीलाओंके लिये असंख्य शक्तियाँ भी प्रकट होती हैं, जो रसराज श्रीकृष्ण और महाभावरूपा श्रीराधाकी प्रेम-लीलामें श्रीराधाकी सहचरी होकर रहती हैं। श्रीराधाकृष्णके प्रेममिलनमें इन सबका संयोग रहता है और ये ही श्रीगोपियाँ हैं। इन गोपियोंका दिव्य वंशीध्वनिसे शारदीय पूर्णिमाकी रात्रिको भगवान् आवाहन करते हैं। भगवान्‌के आवाहनको सुनकर भला, किससे रहा जा सकता है? जिन गोपियोंका चित्त श्रीकृष्णने चुरा लिया था, वे '**कृष्णगृहीतमानसाः**' गोपियाँ उस दिव्य अनंगवर्धन वंशीसंगीतको सुनकर—जो जिस अवस्थामें थीं, उसी अवस्थामें— प्रियतमसे मिलनेके लिये भाग निकलती हैं; परंतु स्थूल देहसे नहीं। उनका वह देह तो वहीं रह जाता है, जिसको प्रत्येक गोप अपने पास सोया हुआ देखता है—

मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। ३८)

अर्थात् व्रजवासियोंने रासमें गयी हुई अपनी पत्नियोंको अपने पासमें ही सोये हुए देखा।

ये सब जाती हैं दिव्य भावदेहसे—जो स्थूल, सूक्ष्म और कारणसे परे केवल व्रजप्रेमलीलाके सम्पादनार्थ ही प्रकट हुआ था और उन्हीं दिव्य भावदेहोंमें सच्चिदानन्दघन, योगेश्वरेश्वर, साक्षात् मन्मथ-मन्मथ, आप्तकाम, सत्यकाम, पूर्णकाम, दिव्य, चिदानन्दमय मंगलविग्रह भगवान् योगमायाको आश्रित करके रमणकी इच्छा करते हैं और प्रत्येक भावदेहरूपा चिदानन्दमयी गोपीके साथ एक ही साथ अनेक रूपोंमें प्रकट होकर रासक्रीडा करते और आत्मारामरूपसे रमण करते हैं। वह रमण किस प्रकारका होता है, इसपर मुनिवर श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। १७)

'जैसे बालक दर्पणमें अपने रूपको देखकर उसके साथ स्वच्छन्द खेलता है, उसी प्रकारसे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णने व्रजसुन्दरियोंके साथ रमण किया।' यह है संक्षेपमें भगवान्‌के जाररूपकी स्थूल व्याख्या! भला, इस दिव्य प्रेमलीलाको—परमात्माकी और जीवात्माकी या भगवान् और भक्तकी इस आदरणीय मिलनलीलाको कोई व्यभिचार कह सकता है?

केवल दही, माखन और वस्त्र ही नहीं, समस्त गोपियोंके सम्पूर्ण मन-प्राणको चुरा लेनेके कारण और एक-दोके साथ नहीं किंतु असंख्य देहोंमें असंख्य आत्मारूपसे निवास करनेवाले परमात्माके खेलकी भाँति, अगणित चिदानन्दमयी गोपियोंके साथ आत्मरमण करनेके कारण रसानुभूतिको प्राप्त भाग्यवती गोपियोंने डंकेकी चोटपर भगवान् श्रीकृष्णको 'चोर-जार-शिखामणि' कहा और ठीक ही कहा!!

अवश्य ही कुछ विषयकामी पुरुषोंने भगवान्‌की इन दिव्य लीलाओंको लौकिक चोरी-जारी मानकर इसका दुरुपयोग किया और अब भी कर रहे हैं; परंतु उनके ऐसा करनेसे न तो भगवान्‌के दिव्य भावमें कोई अन्तर पड़ सकता है और न गोपियोंका ही कुछ बिगड़ सकता है! हाँ, बुरी नीयतसे कवितामें, भावोंमें, आचरणमें, उपदेशमें और समझनेमें इसका दुरुपयोग करनेवाले नर-नारी अवश्य ही पापके भागी और नरकगामी होते हैं!

रासलीला

(श्रीहरिश्चन्द्रजी अष्ठाना 'प्रेम')

पढ़ता था—शायद दसवें दर्जेमें। तब कभी-कभी स्टेशन किसीको लाने, किसीको पहुँचाने जाता। स्टेशनपर चहल-पहल मुझे कुछ अच्छी लगती थी। इंजन धीरे-धीरे अनेक डिब्बोंको बाँधे जब प्लेटफार्मपर आता, तो लगता कोई सम्राट् बड़ी शानसे आ रहा है। कितने लोग उसकी प्रतीक्षामें रहते हैं। वह आग तो निकालता था, पर कितना शान्त था। कितने बोझे उसपरसे उतरते और कितने फिर लद जाते—वह उफ् भी न करता। जब चलता तो गर्वसे सिर उठाकर सीटी बजाता हुआ। सेवा जो कर रहा था।

यह स्टेशन भी क्या जगह है ? यहाँ मुसाफिर आते-जाते। वही मुसाफिर तो रोज न होते, पर आना-जाना—भीड़ वैसी ही रोज रहती। कोई सामानके साथ, कोई बेसामान; कोई रोता-सा, कोई हँसता-सा; हर सूरत देखनेमें आती। कुछ खोये-खोये-से इधर-उधर ढूँढ़ते फिरते; कुछ अपना बोझ स्वयं ढो रहे थे, कुछ औरोंसे ढुआ रहे थे। सबमें रवानगी थी। स्थिर था बस, वह मूक प्लेटफार्म, जिसको अनेकों अपने पैरोंसे रौंद रहे थे। सन्त था वह।

जब रेल चली जाती—हलचल कम हो जाती तो मैं वहाँ टँगे बड़े-बड़े चित्रोंको ध्यानसे देखता। काशी, नासिक, पुरी, श्रीवृन्दावन इत्यादि सभी थे वहाँ। मैं एक मानसिक चित्र, जो इन चित्रोंसे कहीं रंगीन होता, तैयार कर लेता। तस्वीरें जैसे सजीव हो उठतीं—जैसे मैं उनके घाटों-गलियोंमें घूमने लगता, खो ही जाता समझो। बम्बई, दार्जिलिंग, नैनीताल इत्यादिके चित्र अच्छे लगते, पर काशी, नासिकमें कुछ विशेषता थी और वृन्दावन? वृन्दावन तो आत्माको बाँध ही लेता था।

कितने ही दिनोंसे वृन्दावन जानेकी इच्छा थी, पर मेरे पास मैले कपड़े[१] बहुत थे। सोचता धोकर साफ करके तब चलूँगा। अपने-आप थोड़े-थोड़े धोता था। थोड़े ही धो पाता—सब उजले कर ही न पाता, शहरकी दौड़धूपमें साफ फिर मैले हो जाते। न जाने कैसा संग था। फिर कोई धोनेवाला[२] भी तो ठीक नहीं मिला। सोचा, जो है वही लेकर चला चलूँ, कोई वृन्दावनमें ही धो देगा।

चला फिर स्टेशनकी ओर—अबकी स्वयं ही जानेको। रेल आयी, भीड़ दौड़ पड़ी। बड़ा-सा गट्ठर मैले कपड़ोंका, छोटी-सी पोटली उजले कपड़ोंकी—कुछ उजले और कुछ मैले कपड़े पहने हुए एक डिब्बेमें घुसने लगा। सभीके पास गट्ठर थे—मैले, पर सभी कहते 'हाँ-हाँ' इतना बड़ा गट्ठर लेकर यहाँ कहाँ धँसेगा। मैं सब अनसुनी करके आँख बचाकर सब लिये-दिये एक डिब्बेमें घुस ही तो पड़ा। यहाँ लोगोंने अपना सामान इधर-उधर ऊपर-नीचे रख दिया, पर मैं तो अपनी पोटली चिपकाये ही रहा—बैठा रहा। कभी मैं उनके सहारे, कभी वे मेरे सहारे। उन्हींका मेरा संग था, वे ही मेरे साथी थे। वे ही थे मेरे भूत, वर्तमान और भविष्य।

वृन्दावन आया, आया क्या, बस, पहुँच गया। वह वृन्दावन, जिसका वर्षोंसे स्वप्न देखता था, जिसकी मनमोहक तस्वीरें खींचता था और जहाँ-तहाँ शतरंजकी गोटीकी तरह राधा-कृष्णको बैठा देता, चलाता, कभी किसीको हरा देता, कभी किसीको जिता देता। उसी वृन्दावनमें आ गया। यहाँ भी देखा, कुछ मैले ही कपड़े पहने थे—कुछ साफ, जिनमें इत्र[३] लगा था, जो खुद सूँघते और दूसरोंको सुँघाते। कितने ही रँगे कपड़े पहने थे—कितनोंके नीचे लँगोट[४] झलक रहे थे, अन्दर बनियाइनकी जेबें बाहर झाँक रही थीं—किसी बोझ[५]से नीचे झुकी थीं। कुछ एक वस्त्रधारी[६] भी थे, वे बचकर चलते। और कुछ ऐसे भी थे, जो स्वच्छ सफेद वस्त्र[७] पहने थे, मस्तीसे झूमते चलते थे बेखबर। दिगम्बर[८] भी

१-कपड़े—कर्म। २-संत।

३-घमण्डी। ४-ब्रह्मचर्यहीन। ५-द्रव्य एकत्रित रखना। ६-साधक। ७-सूफी। ८-देहाध्यास न रखनेवाला।

थे, सभी थे हमारे वृन्दावनमें।

मैं भी बचता-बचाता टिकनेका स्थान ढूँढ़ने लगा, पर कोई पैर ही न धरने दे। सोचा था वृन्दावन तो लखनऊ नहीं, वह तो हमारे प्रभुका है—चाहे जहाँ पड़ रहूँगा, पर यहाँ तो कितनोंने ही छोटे-छोटे स्वच्छन्द राज्य स्थापित कर रखे थे। उनकी घेरी धरती उनकी थी—ऊपर आसमानतक उन्हींका था, तो फिर मैं क्या करता। मैंने कहा—'प्रभु! जब रखना ही नहीं था तो क्यों बुलाया? तुम्हारी इतनी बड़ी दुनिया छोड़कर आया हूँ तुम्हारे पास, तुमने बुलाया जो तो फिर क्या ठहरने न दोगे?' जैसे कोई अज्ञातमें मुसकरा दिया—मुझे लगा किसीसे बातें हो गयीं। बस, चल पड़ा यमुनाकी ओर। घाटपर खड़ा था—यमुना इठलाती मचलती हुई बह रही थी, लहरोंमें नृत्य था, बहावमें संगीत था। एक मस्तीका आलम था, जिसमें सभी बहती चीजें डूबती-उतराती चली जा रही थीं। मैं देखता ही रहा—देखते-ही-देखते चाँद भी पानीमें उतर आया। अनगिनत तारे कूद पड़े, खेल चल पड़ा—आँख-मिचौनी। मैं सोचने लगा क्या यही 'रासलीला' है?

एक घाटपर अपनी छोटी-बड़ी उजली-मैली पोटली रखकर बैठ गया, देखता रहा उस यमुनाको, जो वृन्दावनमें रंग उड़ेलती है, जिसकी गोदमें गोपाल खेलते थे। घूम-घूमकर घाटके पास झाड़ियोंको देखता फिरा, उनके अन्दर झाँकता, सूँघता, जैसे कोई पागल खोये हुए बाल-गोपालको, छिपे हुए नन्दलालको खोजता हो। थक गया, घाटपर आकर पोटलीका सहारा लेकर लेटा—बस, आँख लग गयी, सो गया।

कुछ हलचलकी आवाजें आने लगीं, कुछ पायल झनक उठे, कुछ खड़ाऊँ बोल पड़े। लोग लीला देखने जा रहे थे, मैं उठ बैठा। बड़ी गठरी तो यमुना-जलमें भीग गयी, उसे एक किनारे रखकर—छोटी पोटली दबाकर मैं चल पड़ा लीला देखने—कृष्ण-लीला।

एक बगीचा था, मंचपर छोटे-से गोपाल, बड़ी-सी राधा, छोटी-बड़ी गोपियाँ और कुछ टेढ़े-सीधे गोपसखा थे। वंशी थी, मृदंग था, करतालें और झाँझें थीं। बजी वंशी, बोला मृदंग और फिर चला नृत्य। देखते ही बनता था। होलीका दृश्य रंगसे भरा था। माखनचोरी! मक्खनकी गोलियोंसे दर्शक भरपूर हो गये—ठगे-ठगेसे सब रह गये। छके थे सब। क्या पिला रहे थे, क्या पी रहे थे। न जाने क्या था वह। हल्की-हल्की फुहार वर्षाकी थी—वह वर्षा थोड़े ही थी, मद्यकी झड़ी लगी थी, सब नशेसे थे चूर, कोई इधर, कोई उधर; न वस्त्रकी खबर, न शरीरका ध्यान; न लाजका, न मर्यादाका ज्ञान। सब अपने स्वामीके आलिंगनमें जो थे।

लीला समाप्त हुई, सब तितर-बितर हो गये। मैं अपनी सफेद कपड़ोंकी पोटली दबाये घाटको लौटा, ऊपर बैठा—देखा यमुना[१] मेरे बड़े गट्ठरसे खेल कर रही थी, हिला-डुलाकर किनारेपर ले आयी थी, देखते-देखते कपड़े बह चले, मैं हँस दिया, यमुनाकी हर लहर मुसकरा दी। मैंने कहा, 'माँ! यह भी ले जाओ' फिर सफेद कपड़े भी उसीके हवाले कर दिये, वह उन्हें भी लेकर चल दी। पोटली खुल गयी, कपड़े बिखर गये, मैं उनको देखने लगा—वह कुर्ता, वह धोती, वह लँगोटी। फिर कहा 'पागल', मुँह मोड़ लिया। सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपरको चला, पर यह लँगोटी! हाँ! यह तो होनी ही चाहिये। फेंकूँ कि न फेंकूँ, हाथ लगाया उतारूँ, पर उतारा नहीं, कुछ निश्चय न कर सका। कोई बोला, 'यह मैली हो गयी है, धो तो डाल' बस यमुनामें घुस गया, कमर-भर पानीमें खड़ा हो गया। लँगोटा खोल मल-मलकर धोने लगा, एक लहर आयी जोरकी और साथ ही पैरमें काटा कछुए[२]ने—बस लड़खड़ा गया, लँगोटी हाथसे छूट गयी—लहरोंमें वह बह चली, हाथ बढ़ाया—मैं बढ़ा, पर वह तो बह ही गयी। मैंने कहा, 'माँ! यह भी ले लिया। अब कहाँ जाऊँ, कैसे, दिगम्बर? माँ! तुम्हारी गोदमें नंगा ठीक है, पर संसारके बीच क्या यह ठीक है? जो तुम्हारी इच्छा।' प्रणाम किया और बाहर निकलने लगा। एक लहरका थपेड़ा लगा। देखा, एक स्वच्छ कोरे वस्त्रका टुकड़ा मेरी कमरमें लगा। क्यों? माँका प्रसाद था, लपेट लिया। कफन था किसीका। तो क्या माँ! यहाँ कफन[३] ही

१-भक्तिरूपी नदी। २-कच्छप अवतार प्रभुकृपा। ३-इन्द्रियज्ञानरहित।

चाहिये ? बस, उस कफनको लपेटे 'उनके' वृन्दावनमें स्वच्छन्द विचरने लगा।

रातको थककर सो गया। शायद तीन बजेका समय होगा—कुछ घुँघरूकी आवाज आयी जैसे एक चहल-पहल मची हो। देखा, ऊपर आकाशमें कितने ही स्वरूप एक ही ओर जल्दी-जल्दी जा रहे हैं, नीचे पृथ्वीपर भी हलचल-सी मची थी। मैंने ऊपरवालोंसे पूछा—नेत्रोंसे 'क्यों भाई कहाँ ?' कोई बोला ही नहीं। कइयोंसे पूछा, पर कौन सुनता ? वे तो शीघ्रतामें थे। फिर एक सन्तने कहा, 'रासलीला'। बोले नहीं, होंठ नहीं हिले, बता दिया मूक वाणीसे। 'रासलीला' सुनकर मैं तड़प उठा, कूद-कूदकर ऊपर उठनेका प्रयास करने लगा, पर उठ ही न पाता, जैसे वह कफन ही बोझ बन जाता। किसीने ऊपरसे हँस दिया फिर आवाज दी 'देह यहाँ नहीं आता प्यारे।* यह कफन उतार दे।' बस, मैंने कफन उड़ा दिया और एकदम ऊपर उठ चला, ज्योत्स्नाका जामा पहने, ज्योत्स्नाकी एक किरनके सहारे।

ऊपर पहुँच गया, किसीने एक टीका लगा दिया जैसे दिव्य दृष्टि खोल दी। आसमानमें कहीं मेला लग रहा था। श्रीकृष्ण थे, राधा थीं, गोपियाँ थीं, कुछ सखा थे। और दर्शक—साधु-संत, गृहस्थ—सभी तो थे, जो पहुँच सकते थे। रोशनी थी, अँधेरा था। छिटकी-छिटकी चाँदनी थी, फूलोंकी सुगन्ध थी, रंग थे, बहती धार थी नदी-सी। दर्शक सब बैठ गये। न जाने किसपर गोपियोंके पैर मचल पड़े, वंशीपर श्रीकृष्ण खड़े थे न जाने काहेपर। मृदंगपर थाप पड़ी, मँजीरे बोल उठे, स्वर छिड़ गये। श्रीकृष्ण मुसकराये, राधाको छेड़ा, बोले—'राधे! तुम एक नृत्य करो, जैसा हम कहें तो हम जानें।' राधाके तेवर बदल गये, बोलीं 'कहो।'

श्रीकृष्ण बोले—

चन्द्रबदनी! नाचो तो देखि।
ना होब भूषणेर ध्वनि ना नड़िबे चीर।
द्रुतगति चरणे ना बाजिबे मंजीर॥
विषम संकटे ताले बाजाइब बाँशी।
धनु अंकेर माझे नाचो बुझिब प्रेयसी॥
हारिले काड़िमें लबो बेशर काँचली।
जितिले तोमारे दिब मोहन मुरली॥

'चन्द्रमुखी! मैं देखूँ, तुम नाचो। पर शर्त यह है, नाचते समय न तो गहनोंकी आवाज हो, न कपड़ा हिले, चरणोंकी तेज चालमें भी मंजीर न बजें, ताल भी न गड़बड़ हो, मैं तालपर मुरली बजाऊँगा, तुम यदि हार जाओगी तो मैं तुम्हारी नकबेसर और कंचुकी छीन लूँगा, जीतोगी तो तुम्हें मोहन-मुरली दे दूँगा।'

श्रीराधा बिजलीकी तरह चमक उठीं, वह नृत्य क्या था—बस, दामिनी दमक रही थी। जैसे सर्प एक ही स्थानपर द्रुतगतिसे चल रहा हो, जैसे एक बबूला हवामें ऊपर बह चला हो—जैसे प्राण महाप्राणसे मिलने उठ पड़े हों। श्यामसुन्दरने जैसे बताया था, वैसे ही राधा नाच रही थीं। श्यामसुन्दर चारों ओर देखते हुए अपनेको छिपा रहे थे। सबने पुकारकर कहा—'राधा जीत गयीं। नागर हार गये।' सारा गोपीसमूह हँस पड़ा। उल्लाससे, गर्वसे, हर्षसे देवताओंने ताली बजायी, 'जै राधे-जै राधे' गूँज उठा।

जेमनि बोले श्याम नागर तेमनि नाचे रहि।
मुरली लुकाय श्याम चारि दिके चाई॥
सबाई बोले राई जय नागर हारिले।
दुःखिनी कहिछे गोपमंडल हाँसाले॥

श्रीकृष्ण शरमाये, पर मुसकराये, हारे; पर जीते। राधाका नृत्य, राधाकी चाल, राधाकी मुसकान, छेड़छाड़—ये ही तो उनकी श्वास हैं। इन्हींमें तो उनके प्राण हैं। इसीपर तो वे न्यौछावर हैं।

ठुमककर राधा श्रीकृष्णके पास आ गयीं। बोलीं,—'श्रीकृष्ण! अब तुम नाचो, जैसा मैं कहूँ, और हारे तो मैं वंशी छीन लूँगी।' 'कैसे ? बोलो'।

राधाने कहा—सुनो—

---

* सूक्ष्म शरीरसे जा पाता है।

श्याम तोमाके नाचते हबे।

ना नाडिबे गण्ड मुण्ड नूपुरेर कड़ाई।
ना नाडिबे बनमाला बूझिब बड़ाई॥
ना नाडिबे क्षुद्र घन्टि श्रवणेर कुण्डल।
ना नाड़िबे नासार मोती नयनेर पल॥
ललिता बाजाय बीणा बिशाखा मृदंग।
चित्रा बाजाय सप्तस्वरा राइ देखे रंग॥
तुंगविद्या कपिलास तुम्बुरा रंगदेवी।
इन्दुरेखा बाजाय पिणाक मंजिरा सुदेवी॥
उद्भट ताले यदि हारो बनमाली।
चूड़ा बाँशी केड़े लबो, दिब करताली॥
यदि जिते राह दिबो आमरा होबो दासी।
नईले कारागारे घोर दुःखिनी शुनि हासी॥

'श्यामसुन्दर! तुम्हें नाचना पड़ेगा। शर्त यह होगी कि नाचते समय गाल, सिर नहीं हिलेंगे। नूपुर नहीं हिलेंगे। गलेकी वनमाला नहीं हिलेगी। तभी तुम्हारी बड़ाई समझी जायगी। क्षुद्र घंटिकाएँ तथा कानोंके कुण्डल भी नहीं हिलेंगे। नासिकाका मोती और आँखोंकी पलकें भी नहीं हिलेंगी। ललिता वीणा बजायेंगी, विशाखा मृदंग, चित्रा सप्तस्वरा, तुंगविद्या कपिलास, रंगदेवी तम्बूरा, इन्दुरेखा पिनाक और सुदेवी मँजीरा बजायेंगी। विचित्र तालोंमें कहीं भी हे वनमाली! तुम यदि हार गये तो हम ताली बजाकर तुम्हारे मस्तकका चूड़ा और हाथोंसे मुरली छीन लेंगी। यदि कदाचित् तुम जीत गये तो हम सब तुम्हारी दासी हो जायँगी। नहीं तो, तुम्हें हमारे घोर कारागारमें रहना पड़ेगा।

बड़ी उमंगसे, बड़ी तत्परतासे श्रीकृष्णने फेंटा कसा, वंशी खोंसी। सबकी ओर देख, राधासे आँख मिलायी, मुसकराये, जगह बनायी जैसे नृत्य करनेकी उतावली हो, पर! पर वे तो एकदम भाग खड़े हुए। सबने ताली पीट दी, सब ठहाका मारकर हँस पड़े।

फिर राधा भागी पीछे, और पकड़ ही तो लायी हाथमें हाथ लेकर, फिर पैर मचल पड़े, घुंघरू बोल पड़े, हवामें मादकता बही, देखनेवाले होश खो बैठे, ऐसी थी यह रासलीला। आकाश गूँज उठा, हृदय काँप उठे, शरीर सिहर पड़े, आँखोंमें वर्षा ऋतु उमड़ पड़ी। सब ही तार बज उठे एक स्वरसे। बस, एक कम्पन था, बस, एक ध्वनि थी—ऐसी थी वह 'रासलीला'।

जब सोयी शक्ति[१] जगा रहा था—आसनपर था तो सुषुम्ना नाड़ीसे सूर्य एवं चन्द्रनाड़ी कुछ इस प्रकार गुँथी थीं, जैसे धनुषमें दो तार बँधे हों। मूलाधारमें एक नोक, भ्रूमध्यमें दूसरी नोक, द्रुतपर धनुषका झुकाव था, इसी धनुषाकारमें शक्ति चलती अनेकों चालोंसे, अनेकों ज्योतियोंसे, अनेकों शब्दोंसे, अनेकों स्वरोंसे। कितना रस था उसमें, कितनी मादकता, कितनी दिव्यता? क्या यह 'रासलीला' है? हमारे अन्दर ही! क्या अनहद ही वह स्वर नहीं, जो बिना कोई अंग हिले बोले! क्या इस ओंकारध्वनिमें कोई स्वरूप रहता है? नहीं। तभी तो श्रीकृष्ण भाग खड़े हुए। पर यह अवस्था कितनी देर? शक्ति सदा शिवसे मिलती है तो क्या वह सुख-आनन्द आनन्द नहीं? क्या अमृतकी वर्षा नहीं है? तो क्या यही 'रासलीला' है हमारे अन्दर?

इसी रासलीलाका वर्णन ही तो है—

ऐसा देस दिवाना रे लोगो जाय सो माता होय।
बिन मदिरा मतवारे झूमे जनम-मरन दुख खोय॥
बिना सीप अनमोलक मोती बिन दामिनि दमकाही।
बिन ऋतु फूले फूल रहत हैं अमरित रस फल पाई॥
अनहद सबद भँवर बिच गुँजै संख पखावज बाजे।
ताल घंट मुरली घनघोरा भेरि दमामै गाजे॥
रम्भा नृत्य करे बिनु पगसूँ बिन पायल ठनकारै।
सिद्धि गर्जना अति ही भारी घुंघरू गति झनकारै॥

रहस्यकी बात है रासलीला, बिरला ही कोई पहचाने—जिसे 'वह' पहचनवा दे, अपने आश्रयमें ले ले, अपना रहस्य खोल दे। राधे कृष्ण! जय राधे कृष्ण!

* कुण्डलिनी।

श्रीराधा-माधवकी कुछ मधुर लीलाएँ

[ब्रजभाषामें]

(संकलनकर्ता—श्रीहरिवल्लभजी शर्मा 'कीर्तनिया')

(१)

श्रीकृष्णकी गोपी-प्रेम-वर्णन-लीला

(पद)

गोपी प्रेम की धुजा।
जिन गोपाल किये बस अपने, उर धरि स्याम भुजा॥
सुक मुनि ब्यास प्रसंसा कीनी, उद्धव संत सराहीं।
भूरि भाग गोकुल की बनिता अति पुनीत भव माँहीं॥

(दोहा)

ब्रज-गोपिन के प्रेम की बँधी धुजा अति दूर।
ब्रह्मादिक बांछत रहैं इन के पद की धूर॥

अहाहा! देखौ, ये गोपी प्रेम-मन्दिरकी धुजा हैं। मन्दिरमें बिसेष ऊँचौ स्थान सिखरकौ होय है। सिखरके ऊपर कलसा होय है, कलसाके ऊपर चक्र होय है, चक्रके ऊपर धुजा होय है; परंतु धुजाके ऊपर कछु नहीं होय है। वो धुजा लहराय-फहराय कैं दूर ही ते कहै है—'एरे पथिकौ, यह मन्दिर है; यहाँ आऔ और श्रीहरिके दरसन करि नैन-मन सिराऔ, पाप नसाऔ और पुण्य कमाऔ। ऐसैं ही वे गोपी प्रेम-मन्दिरकी धुजा-स्थान पै बिराजमान है कैं पुकारि-पुकारि कैं कहि रही हैं—'एरे संसारके जीवौ, यह ब्रज है, यहाँ आऔ। यह प्रेमकौ मन्दिर है। प्रेमके देवी-देवता श्रीजुगलस्वरूपके दरसन करौ। प्रेमकौ ठाकुर यहीं है, प्रेमकी उपासना यहीं है और प्रेमकी सामग्री हू यहीं है। यातैं या प्रेमधाममें आऔ। यदि तुम्हारौ हृदय कारौ है तो यहाँ के कारे-गोरे रंग सौं ऊजरौ करि लेउ। और जो तुम्हारी धारना मैली है तौ यहाँ प्रेमकी जमुनाधार ते पवित्र करि लेऔ। जो रुकि गयी है तौ बहाय लेऔ। और सूखि गयी है तौ सरसाय लेऔ। या श्रीबृन्दाबनमें प्रेम-नदी चारों ओर बहि रही है, तुम यामें गोता लगाय कैं पाप-ताप ते रहित है जाऔ! गोपी टेरि-टेरि कैं कह रही हैं—

(दोहा)

तीन लोक चौदह भुवन प्रेम कहूँ ध्रुव नाहिं।
पर— **जगमग ह्वै रह्यौ रूप सौं श्रीबृंदाबन माँहिं॥**
और— **ढूँढ़ि फिरैं त्रैलोक जो, मिलत कहूँ हरि नाहिं।**
पर— **प्रेमरूप दोउ एकरस बसत निकुंजन माँहि॥**

हम दोऊ स्वरूप प्रेम-निकुंजके देवता हैं और ये गोपी हमारी पुजारिन हैं, प्रेमकी आद्याचार्य हैं। प्रेम-सम्प्रदाय गोपिन ते ही चल्यौ है, प्रेमकी पद्धति इननें ही चलायी और प्रेमकौ स्वरूप इननें हीं जगत कूँ दरसायौ है। यदि ये गोपी नहीं होतीं, तौ, प्रेम-शब्द ग्रन्थनमें हीं रहि जातौ। श्रीनारदजी **'यथा व्रजगोपिकानाम्'** कहि कैं अपने ग्रन्थ 'भक्तिसूत्र' में कौन कौ दृष्टान्त देते। और जो गोपी न होतीं तौ स्वयं मेरौ जो बाक्य—**'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'** है, याकौ स्वरूप प्रत्यक्ष करि कौन दरसावतौ। अजी, गोपी न होतीं तौ मेरी माखन-चोरी-लीला, पनघट-लीला, दान-लीला, मान-लीला, होरी-लीला, बंसी-लीला और रास-लीला नहीं होतीं। रसिकजन लुटि जाते, और स्वयं मैं हूँ पूरे ते आधौ रहि जातौ-पूर्णतम स्वरूप ते न्यूनतम रहि जातौ! और यदि गोपी न होतीं तौ भक्ति जुबती ते फेर वृद्धा है जाती। श्रीनारदजीनें भक्ति सौं कही ही—

श्लोक

वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा।
धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च॥

हे भक्तिदेवी! तुम बृन्दाबनके संयोग ते फिर जुबती है गयी हौ; याते ये बृन्दाबन धन्य है, जहाँ भक्ति नृत्य करै है। यह भक्ति गोपी-कृष्ण-लीला कूँ गाय-गाय कैं नृत्य करै है। यदि गोपी न होतीं तो मैं कौनके संग लीला करतौ, और भक्ति कहा गाय कैं नृत्य करती, बिचारी रोय-रोय कैं आप ही बूढ़ी है जाती। या प्रकार ये ब्रजगोपी मेरी ब्रजलीलाकी आधारस्वरूपा हैं तथा स्वयं मेरी प्राण-जीवन-स्वरूपा हैं। याही सौं प्रेम-मन्दिरमें इनकौ स्थान सर्वोपरि है—गोपी प्रेमकी धुजा हैं।

जदपि जसोदा नंद अरु ग्वालबाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम की गोपी भईं अनन्य॥

भक्त जगत में बहुत हैं, तिन कौ नाहिं प्रमान।
हौं गोपिन के हिय बसौं, गोपी मेरे प्रान॥

(२)

श्रीब्रज-प्रेम-प्रशंसा-लीला

श्रीकृष्ण—अहा, यह ब्रज बैकुण्ठ हू सौं उत्कृष्ट तथा मेरे निज-धाम गोलोक हू सौं अतिश्रेष्ठ सौन्दर्यमय सोभा कूँ प्राप्त है रह्यौ है। यामें मेरी इतनी ममता क्यों है याकौ हू उत्तर थोरे-से सब्दनमें यह है कि **'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'** अस्तु, यह मेरी जन्मभूमि है। संसारमें तौ मैं पुज्यौ हूँ, किंतु या ब्रजमें तौ मैं ही पुजारी बन्यौ हूँ और गोपी-गोप-गैयनकी मैंने स्वयं ही पूजा करी है। वास्तवमें या ब्रजकौ-सौ बिलच्छन प्रेम कहूँ देखिबेमें नहीं आयौ। संक्षिप्त उदाहरणमें—मैया जसोदा दूध पिबायबेके समय मेरे मुखसों तौ दूध कौ कटोरौ लगाय देय है और ऊपर सौं थप्परकी ताड़ना दैकैं कहै है 'अरे कन्हैया! कै तौ या सबरे दूध कूँ पी जैयो, नहीं तौ दारीके! तेरी चुटिया छोटी-सी रहि जायगी। धन्य है या प्रेम कूँ! या प्रेम-डोरमें बँधि कै फिर मेरौ मन छूटिबे कूँ नहीं करै है।'

(रसिया)

कैसैहुँ छूटै नाहिं छुटायौ रसिया बँध्यौ प्रेम की डोर,
ऐसी प्रेममई ब्रजछटा घटा लखि नाचि उठै मन मोर।
मन मो स्वच्छंद फँस्यौ गोपिन के फंद,
कोई कहै ब्रज चंद, कोइ आनँद कौ कंद।
नंद-जसुदा कौ लाल, कोई ग्वारिया गोपाल,
कोई जग-प्रतिपाल, कोई कंस कौ निकंद।
कंदहु ते मीठौ नाम एक कहैं प्यारौ माखनचोर॥

प्रेम-राज्य कौ सब सौं सुन्दर तथा मधुर नाम मेरौ यह माखनचोर है। माया-राज्यवारेन कूँ तो यह नाम ऐसौ लगै है जैसैं खीरमें नौन। किंतु **'कर्तुं अकर्तुम् अन्यथाकर्तुं समर्थ ईश्वरः'**—यह तौ मोकूँ और ही रूप सौं सोभा देय है। वास्तवमें या ब्रजमें मेरी ईस्वरताके उपासक नहीं हैं! किंतु यहाँ तौ ब्रजवासिन कौ स्वामी, सेवक, पुत्र, सखा—जो कछु हूँ सो मैं ही हूँ! यहाँ ईस्वर तौ मेरे पासहू नहिं फटकि सकै है। तौहू कछु एक दिना मोकूँ अपनी ईस्वरता कौ अभिमान है गयौ; क्योंकि मैंने—

(रसिया)

गिरि कूँ पुजाय इंद्र-यज्ञ कूँ मिटाय,
लियौ ब्रज कूँ बचाय मैंटि ब्याल-अग्नि ब्याधि।
ब्याधि मैंटि गर्व आयौ, मैंने गिरि कूँ उठायौ,
एक गोपी ने सुनायौ तेरी सब झूठी साधि॥

तब मैंने कही—'क्यों!' तब वा गोपीने तुरन्त उत्तर दियौ—

(रसिया)

राधे ने गिरिधर गिरि समेत लियौ धारि भौंह की कोर॥

वाने कही—'कन्हैया' तैनें तौ केवल गिरिराज ही उठायौ हौ, किंतु हमारी रासेस्वरी-सरबेस्वरी राधाने तौ तो समेत गिरिराज सात दिन, सात रात ताईं अपनी एक भौंहकी कोर पै ही डाट्यौ हौ, नहीं तौ वाकौ बोझ तेरे बाप पै हू नहीं झिलतौ! अहा, धन्य है या प्रेम कूँ! वास्तवमें मेरौ भक्त अनन्य हैकैं मेरौ भजन करै है, तौ मैं वाकूँ कछु दै दऊँ हूँ या कछु उपकार कर दऊँ हूँ। जैसें—

(रसिया)

ध्रुव नें रिझायौ, ऊँचे पद पै बैठायौ,
प्रहलाद नें बुलायौ, दियौ बाप ते बचाय।
चाव गनिका नें धार्यौ, ताकूँ सूवा संग तार्यौ,
नाहिं सबरी ते हार्यौ, दई धाम कूँ पठाय॥

अस्तु, मैंने सबके रिन चुकाय दिये, परंतु या—

(रसिया)

ब्रज की चुरुवा भर छाछ बनाय लियौ रिनियाँ नंद-किसोर॥

या ब्रजकी चुरुवा भर कौ बदलौ मैं स्वयं विश्वम्भर है कैं हूँ नहीं चुकाय सक्यौ। तबही तौ मोकूँ इन ब्रजदेबिनकी हाथ जोरि कैं बिनती करनी परी—

(श्लोक)

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या मां भजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥

हे ब्रजदेवियौ, यदि मेरी देवतान की-सी आयु होय, तौहू मैं तुम्हारी या चुरुवा भर छाछ कौ बदलौ नहीं चुकाय सकूँ हूँ। याही सौं मैं तुम्हारौ जन्म-जन्मान्तर रिनियाँ रहूँगौ, क्योंकि मैं तो—

(रसिया)

भाव सौं बँधाऊँ, प्रेम प्रीत में बिकाऊँ,
नहिं धन सौं अघाऊँ भक्ति चाहूँ मैं अनन।
अन्य भाव सौं न नेह, तजि भूपति कौ गेह,
साक-पात सौं सनेह, फल-पत्र-पुष्प-कन॥
अनुदिन रज-सेवी स्याम तुच्छ ता आगें लाख-करोर॥

(३)

श्रीप्रेमाश्रु-प्रशंसा-लीला

श्रीकृष्ण—

(रसिया)

भक्तन के जो प्रेम के आँसू, तिनकौ जग में मोल न तोल।
जग में मोल न तोल, वे तौ मोकूँ लेत हैं मोल॥

या संसारमें आँसू कौन नहीं बहावै है, तथापि आँसू-आँसुनमें भेद होय है। कोई तौ आँसू जगतके लियें बहावै है। और कोई मो जगत-पतिके लियें बहावै है। इनमें एक कौ नाम है मोह और दूसरे कौ नाम है प्रेम। मोह संसारमें फसावै है, और प्रेम संसार कूँ नसावै है। मोह तमोगुन है, प्रेम निर्गुन है। मोहके आँसू तौ सब ही बहावै हैं, किंतु प्रेमके आँसू कितने बहावै हैं। स्त्री-पुत्र-धनके बियोगमें तो झट्ट ही आँसू निकसि आवैं हैं। परंतु मेरे बियोगमें भलौ, कितनेनके आँसू निकरैं हैं। बीच बजारमें 'हाय बेटा, हाय बाबा' कहिकैं माथौ कूटि-कूटि कैं, छाती फारि-फारि कैं रोयबेवारे तौ बहुत मिलैंगे। परंतु मेरे बियोगमें मेरी याद करिकैं 'हा नाथ, हा प्राननाथ, हा स्याम प्यारे' कहि-कहि कैं माथौ फोरिबे वारौ, छाती फारिबेवारौ ढूँढ़िबे पै बिरलौ ही कहूँ कोई मिलैगौ। अजी, माथौ फोरिबेकी बात तौ दूर रही, दो बूँद आँसू बहायबेमें हूँ लज्जा लगै है। यदि भाग्य सौं कहूँ सत्संग-कथा-कीर्तनमें हृदय पिघलि कैं नेत्र बहिबे हूँ लगैं हैं तौ झट्ट ही वाकूँ दबाय जायँ हैं कि कोई कहूँ देख न लेय, कोई हँसै नहीं। कोई यौं न कहि बैठै कि याकौ तौ बड़ौ ही दुर्बल चित्त है। यह पुरुष कैसौ, जो स्त्रीकी नाईं रोवै है—इत्यादि। या प्रकार संसारके लियें रोयबेमें लज्जा नहीं, हँसी नहीं, कमजोरी नहीं। किंतु मेरे लियें रोयबेमें ही सबरी गड़बड़ी है। याकौ कारन कहा है? क्यों जीव मेरे लियें व्याकुल-पागल नहीं होय है? याकौ कारन केवल इतनौ ही है कि जीव कौ मोते कोई प्रयोजन नहीं है। और प्रयोजन बिना मूर्ख हू एक पग नहीं हलावै है—**'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते।'** जीव कौ प्रयोजन तो है धन सौं, स्त्री सौं, पुत्र-परिवार सौं, भाई-बन्धु-यार सौं। वैसैं तौ नित्य मोते कहै है—**'त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।'** 'हे प्रभो! तुम ही मेरी माता हौ, तुम ही पिता हौ, अन्तमें, तुम ही मेरे सरबस्व हौ।' ऐसैं नित्य मेरी बिनती करै है। परंतु याकौ अर्थ एक हू अच्छर नहीं समझैं है। जो समझतौ तौ परिवार कूँ नहीं रोवतौ, इनकौ पागल गुलाम न बनतौ। मेरौ पागल-प्रेमी बनि जातौ। परंतु वाके माता-पिता तो घरमें हैं। बंधु, सखा परौस में हैं, वाकी विद्या पोथीमें है अथवा गुरूके पास है। वाकी ओषधि वैद्यन के पास है। धन तिजोरीमें है। सरबस्व संसार है। फिर मैं कहा हूँ, कछु नहीं। सब काम तौ संसारकी सहायता सौं चलि रहे हैं, फिर मोते कहा सम्बन्ध! हाँ, जब जीवकी गाड़ी दलदलमें ऐसी जाय अटकै है कि सबरे बल धरे रहि जायँ हैं, तब मेरी याद आवै है।

(तुक)

अपबल, तपबल और बाहुबल, चौथौ है बल दाम।
सूर किसोर-कृपा सौं सब बल हारे कौ हरि नाम॥

येहू अपनी अटकी भई गाड़ी कौ ही भजन है, मेरौ भजन नहीं। अपने लियें रोवनौ है, मेरे लियें नहीं। मैं तौ वाके ताईं स्त्री-पुत्र-धन-सम्पत्ती जुटायबेवारौ—उनकी रच्छा-सम्हार करिबेवारौ एक चाकर-सरीखौ हूँ। यदि सब बस्तु जुटाय दीनी-रच्छा कर दीनी, तब तौ मेरी खूब मानता होय है और मेरी नौकरी हू चुकाय दी जाय है। नहीं तौ पूजाके बदलें मोकूँ गारी मिलै है। ये है संसारके लोगनकी मोमें

भक्ति। फिर भलौ ऐसी भक्तिमें प्रेमके आँसू कैसें आवैंगे, वहाँ तौ मोह व ढोंगके ही आँसू आवैंगे। याही सों प्रेमके आँसू दुरलभ और अनमोल हैं।

(श्लोक)

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥

मेरौ प्रिय भक्त जब हाथमें एक तुलसीदलके संग अपने हृदयकमलके सहस्रदलके मधुर और बिचित्र भाव कूँ मिलाय मोकूँ चढ़ावै है, तथा हाथके एक चुल्लू जलमें अपने नैन-कमलकी प्रेम-रसमयी धारा कूँ मिलाय मोकूँ चढ़ावै है, तो मैं वाके हाथन बिक जाऊँ हूँ। किंतु भावके बिना स्वर्ण-कलसानमें गंगाजल भरि-भरि कैं अभिषेक करावौ, बहुमूल्य आभूषन धरावौ, परंतु मैं हाथ नहीं आऊँ हूँ। कारन कि मेरी दृष्टिमें बस्तु कौ मूल्य नहीं, भावकौ मूल्य है। भाव सौं छोटी-सी बस्तु हू महान बनि जाय है—मैं वाकूँ तुरन्त अंगीकार करि लऊँ हूँ। परंतु भावके बिना महान बस्तु हू तुच्छ है जाय है और मैं वाकूँ स्वीकार ही नहीं करूँ हूँ।

(रसिया)

प्रेमानँद में डूब्यौ जो कोउ, भूल्यौ मोल-सतोल।
वह औ मैं मिलि रस ही लूटैं, अधिक कहूँ कहा खोल॥

श्रीकृष्ण—

(पद)

तुमहिं लगत हौं मैं कैसौ, स्यामा!
बूझन की अभिलाष रहत जिय, सकुच लगत मन-ही-मन ऐसौ॥
भोरौ गिनत चतुर कै भामिनि, अपनेहि बदन बखानौ जैसौ।
बृंदाबन हित रूप पै बलि जाऊँ, तुम जु मिली मेरौ भाग सो ऐसौ॥

श्रीजी—

(पद)

प्रीतम तुम मो दृगनि बसत हौ!
कहा भोरे ह्वैकैं पूछत हौ, कै चतुराई करि जु हँसत हौ॥
लीजियै परखि सरूप आपनौ, पुतरिन में पिय तुमहि लसत हौ।
बृंदाबन हित रूप बलि गई, कुंज लड्यावत हिय हुलसत हौ॥

कठिन वियोगमें भी उत्तरोत्तर बढ़ता श्रीराधाका विशुद्ध प्रेम

एक बार श्रीकृष्णके कठोर व्यवहारको लेकर राधासे सहानुभूति तथा विशेष स्नेह रखनेवाली हिताकांक्षिणी एक सखीने श्रीराधासे इतना-सा कह दिया कि 'राधे! श्रीकृष्ण बड़े ही निष्ठुर—निर्दय हैं। उनपर विश्वास तथा उनके प्रति प्रेम करनेमें क्या लाभ है? तुम उनके वियोगमें इतनी दुखी हो, रात-दिन जलती रहती हो, इसका उनको पूरा पता है; तब भी वे इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। ऐसी परिस्थितिमें तुम उनका मनसे त्याग कर दो तो सर्वोत्तम है, इस दुःखसे त्राण पानेका तो यही उपाय है।' सखीकी यह बात सुनकर श्रीराधाजीको बड़ी मर्मपीड़ा हुई। पर वे अत्यन्त मधुरहृदया होनेके कारण सखीका तीक्ष्ण तिरस्कार न करती हुई उससे कहने लगीं—

'सखी! तुम ऐसी मूर्खता-भरी बातें मत करो। प्राणनाथकी निन्दा करके मेरे हृदयपर चोट मत पहुँचाओ। मेरे वे जीवनके जीवन सदा सुखी रहें। तुम मुझे उनके गुणोंकी और उनकी मीठी कुशलकी बात सुनाओ। वे दूर रहें या समीप, वस्तुतः वे मुझसे पलभर भी पृथक् नहीं रहते। वे निरन्तर (आठों पहर) मेरे हृदयमें बसे रहते हैं, कभी भी इधर-उधर नहीं जाते। मेरे हृदयमें तनिक भी दुःख-संताप नहीं है, वहाँ यदि ताप होता तो मेरे प्राण-प्रियतमका सुकोमल शरीर जल जाता। अतएव मेरे हृदयमें मुदिता तथा शीतलता भरी रहती है, इतना सुख रहता है कि वह वहाँ समाता नहीं। मुझको एक क्षणके लिये भी वे दुखी देख लेते हैं तो लगातार विलखने लगते हैं। सखी! उनके सुखसे मेरे हृदयमें नित्य सुख-सागरकी लहरें उछलती रहती हैं !'

श्रीराधाकी इन उक्तियोंको सुनकर सखी स्तम्भित—चकित हो गयी और श्रद्धापूर्ण उत्सुकताके साथ वह निर्निमेष श्रीराधाकी ओर देखती रह गयी।

श्रीराधामाधवप्रसंग

(श्रीरामनिश्चयजी मिश्र)

एकबार भगवान्‌का नाखून श्रीराधाजीको लग गया। कई महीनोंतक तो वह जख्म ताजा रहा। एक दिन अचानक भगवान्‌ने पूछा—'राधाजी! यह जख्मका निशान कैसा है?' तो राधाजीने हँसकर जवाब दिया कि—'आप तो ऐसे दाता हैं कि सब कुछ देकर भूल जाते हैं।'

भगवान्‌ने कहा—'वाह! राधाजी वाह! दातापनका क्या प्रमाण दिया। देखिये, कोई एक पैसा किसी भिखारीको देता है तो राह चलते लोगोंसे भी प्रकट कर देता है कि वह दान करने जा रहा है।'

राधाजी—'बस-बस, आप तो इतने भोले हैं कि ऐसा दान करके भी भूल जाते हैं।'

भगवान्—'तो क्या मैं किसीको जख्म लगाता हूँ?'

राधाजी—'नहीं, इसको जख्म कौन कहता है? यह तो संसारके जख्मोंको दूर करनेका शीतल लेप है। यह वह दर्द है कि जिसको दवाकी आवश्यकता नहीं। प्रभो! इसे जख्म न कहिये।'

भगवान्—'शायद मेरा मन रखनेके लिये ऐसा कह रही हो।'

राधाजी—'नहीं भगवन्! भला, आपका मन कौन रख सकता है? आप तो संसारका मन रखनेवाले हैं। तभी तो माखनचोर कहलाते हैं। यानी मन-चोर। माखनका पहला अक्षर है 'म' और अंतिम 'न' और मध्य भाग 'अ' और 'ख' रह जाता है, अर्थात् 'अख' या आँख! ..... आप आँख लड़ाकर मनको चुरानेवाले हैं।'

भगवान्—(हँसकर) 'वाह राधाजी! आपने तो मुझे और भी बड़ा चोर ठहरा दिया।'

राधाजी—देखिये, माधव! जो बीमारीको चुराये, वह वैद्य कहलाता है, जो अज्ञानको चुराये, वह गुरु कहलाता है। फिर जो मनको चुराये, वह सिवा भगवान्‌के और हो ही कौन सकता है?

भगवान्—'भला मनको चुरानेसे फायदा?'

राधाजी—'तमाम संसार नाम-रूपमें रहता है। नाम और रूप देश-कालमें और देश तथा काल मनमें रहते हैं। इसलिये जब आपने किसीका मन ही चुरा लिया तो फिर उसका देश-काल कहाँ रह गया और जब देश-काल ही नहीं रहा तो रूप कहाँ? देखा, आप कितने सुन्दर चोर हैं।'

भगवान्—'नहीं, हमें जल्दी है। पहले यह बताओ कि जख्म लगा कैसे और कब?'

राधाजी—'क्या सभी प्रश्नोंके उत्तर आवश्यक हैं? प्रभो! आप जिद ही करते हैं तो बताये देती हूँ कि एक दिन आपका हाथ अचानक बढ़ा तो मेरे लग गया और यही है इस जख्मका कारण।'

भगवान्—इसको लगता है कि कई दिन हो गये। आखिर कारण क्या है कि यह अच्छा नहीं हुआ?'

राधाजी—'मैंने कब कहा कि यह अच्छा नहीं हुआ।'

भगवान्—'आप कहें या न कहें, लेकिन नजर तो आ रहा है।'

राधाजी—'अच्छा! अगर आपको नजर आ रहा है तो बताये देती हूँ कि ये मैं नहीं चाहती कि यह अच्छा हो; क्योंकि जब इसपर सुधार आता है, मैं इसको हाथोंसे छील देती हूँ।'

भगवान्—(चौंककर) 'वह क्यों?'

राधाजी—'वह इसलिये कि जब मैं इसको छीलती हूँ, इसमें दर्द होता है तब बुद्धि प्रश्न करती है कि यह किसका दर्द है? तब आपका चेहरा नजर आता है और जब आप नजर आते हैं तो कोई दर्द नहीं रहता। फिर मैं इसको दर्द कहूँ या दर्दोंकी दवा। प्रभो! आपके प्रेमका जख्म जो इन दिलोंपर लगा है, उसको कभी न भरने देना, ताकि इस दुःखका अभाव न हो जाय कि जिसके होनेसे और कोई दुःख हो ही नहीं सकता। क्योंकि दुःखमें ही भगवान्‌का स्मरण प्रायः सभी करते हैं।'

भगवान्—'राधे! तुम जीती, मैं हारा।'

रासलीलाके एक आयोजनकी विषयवस्तु

(स्वामी श्रीकन्हैयालालजी)

[एक बार श्रीरासविहारीजीका पंचदिवसीय लीलानुकरणका कार्यक्रम हुआ। पाँच दिन लगातार यह लीलानुकरण सरस व्रज-भाषामें स्वामी श्रीकन्हैयालालजीकी रासमण्डलीद्वारा हुआ। यह लीलावर्णन उन्हींके शब्दोंमें यहाँ वर्णित है—संपादक]

प्रथम दिवस

प्रथम दिवस माखनचोरीलीला। गोपालकामिनीजार, चोरजारशिखामणिके आशयको लेकर। गोपालकी चोरीमें तथा जीवकी चोरीमें स्वर्ग-नरक, विष-अमृत तथा दिन-रातको-सो महान् अन्तर है। इसमें अनेक भेद हैं, परन्तु उनमें-से निम्नांकित ८ भेद किये जाते हैं।

१-जीव अभावमें पड़कर चोरी करे, परन्तु श्यामसुन्दर तो सब प्रकारसे परिपूर्ण होकर चोरी करें।

२-जीवके चोरी करनेसे लड़ाई-झगड़ा बढ़े और चित्तमें राग-द्वेषकी अग्नि धधक जाय। परन्तु श्यामसुन्दरके चोरी करनेसे दोनों ओर सुख-शान्तिकी गंगा-यमुना बहती है।

३-जीवको कोई बुलाता नहीं कि तुम मेरे घर आकर चोरी करो, परन्तु श्यामसुन्दरको तो व्रजगोपियाँ बड़े प्रेमसे बुलाती हैं और कहती हैं कि वंशीवाले! तू मेरी गली आजा। मेरौ ही माखन खाजा।

४-जीवके चोरी करनेसे उसे पाप और शाप लगे तथा अमंगल ही अमंगल हो। परन्तु श्यामसुन्दरकी माखनचोरीकी चर्चा से पाप तो घट जायँ, पुण्य बढ़ जावे। कहने और सुननेवालोंको मंगल ही मंगल हो जाय।

५-जीव अपने स्वार्थको लेकर चोरी करे परन्तु श्यामसुन्दर तो निःस्वार्थ और निरहंकारभावसे चोरी करते हैं।

६-जीव परायी वस्तुको चुराते हैं। परन्तु श्यामसुन्दरके लिये तो संसारकी सब वस्तु अपनी है। अपनी वस्तुको लेना—यह चोरी कहाँ हुई?

७-जीव कहूँ छल करके चुरावे है तो कहीं बल करके चुरावे, परन्तु श्यामसुन्दरकी माखनचोरी तो केवल छल ही छल है। बल तो लेशमात्र भी नहीं है।

८-जीव परायी वस्तुको चुराय सके है, परंतु हृदयको नहीं। किंतु श्यामसुन्दर ही ऐसे निराले माखनचोर हैं, जो अपने भक्तकी भीतरकी व बाहरकी वस्तु चुरायकर वाको निरबैरी, निर्मोही, प्रेमी, सन्तसिरमौर बनाय देते हैं। इस प्रकार आठ भेदनके ऊपर विचार करबे सु सब शंकाएँ दूर है जायँ। जो जीव बाहरकी क्रियामात्रको देखें और भीतरके भावनको नहीं जानें, वे तो सदा भ्रममें ही पड़े रहत हैं।

द्वितीय दिवस

गोकुलग्राममें शंकरजीका आगमन। अपने उपास्य-देव श्रीबालकृष्णलालके दर्शन करनेके लिये माता यशोदासे अनुनय-विनय। माता यशोदा वात्सल्यभावमें डूब शंकरजीके भयावह अमंगलरूपको देख अपने छोटेसे कन्हैयाको कैसे दिखावें! भगवान् शंकरजीके हठ करनेपर भी माता यशोदा अपने छगनमगनको शंकरजीके समक्ष न लायीं। तब शंकरजीने अपने हठयोगके प्रयोगद्वारा श्यामसुन्दरके नवनीतसे भी सुकोमल हृदयको पिघला दिया, तब लीलाबिहारीको बाध्य होकरके अपनी लीला करनी पड़ी। तुरन्त पलनामें पौढ़े हुए बैठकर रुदन इस प्रकार किया कि माता यशोदा तथा सभी गोकुलकी गोपियाँ उनको चुप न कर सकीं। तब माता यशोदाको भान हुआ कि अमंगलवेषधारी योगीराज ही लालके ऊपर जादू-टोना कर गये। तुरन्त एक गोपीको भेजकर योगीराजको बुलाया कि बाबा चल, यशोदाके लालाके दर्शन कर और लालाकी नजर को दूर कर। तो तुरन्त भोले बाबा समझ गये कि मेरी पुकार सुन ली। इसी उमंगमें उन्मत्त हो अपने ताण्डवनृत्यके द्वारा गोकुलकी बीथीको ताण्डव-विभोर कर दिया। तुरन्त यशोदाने राई लूण ला, बाबा को देकर कहा कि मेरे लालकी नजरको दूर करो और लालाके दर्शनकर अपने हृदयकी तपनको बुझाओ। इस प्रकार बालकृष्णलालने अपनी बाल-लीलाके द्वारा भक्तशिरोमणि श्रीशंकरजीको अपना दर्शन कराया।

तृतीय दिवस—रंगीली होली

वृन्दावनकलानाथौ हृदयानन्दवर्धनौ।
सुखदौ राधिकाकृष्णौ भजेऽहं कुञ्जगामिनौ॥

जिस निकुंजमहलमें विराजमान श्रीप्रियाप्रियतम, जो कि अवतारनके अवतारी हैं, वह अपने स्वांत:सुखाय सभी परिकरके मध्य सब ऋतुओंमें आनन्द तथा परमानन्दके रसभोक्ता हैं, अपने सखीगणोंके मध्य तत्सुखपरायण होय बसन्त ऋतुका आगमन जान, भक्ति, पराभक्ति प्रेमाभक्ति, एवं रागानुगाभक्तिको सार जो नील कसौनी मजिट रंगनकेद्वारा रंगीली होली खेल खेलें हैं, वो अनिर्वचनीय है। बादमें जिन-जिनोंने इस आनन्दको देखा, वह वाणीद्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता है।

प्रेम अटपटी बात है कहत बने नहिं बैन।
कै जाने मन ही दशा कै प्रेमी के नैन॥

चतुर्थ दिवस—पनघटलीला

ब्रजबिहारी नन्दनन्दन ब्रजमें सब ही गोप-गोपी-ग्वाल आदिकी भावनाको जान सबहीके हित-वर्धनके लिये नाना-प्रकारकी लीला करते हैं, तो आज पनघटपर जाबेवारी गोपिनको, उनकी गागरको फोड़, बाँहको मरोड़ जो रसास्वादन करायो, बाकी अधिकारिणी वे ही पनिहारिन ब्रजगोपी हैं। जो कि यही कामना करती रहे हैं कि काहू प्रकार-सु भगवान् श्यामसुन्दरके दर्शन हो जायँ। लोक-लाज, कुल-कान, वेद-मर्यादाकी रक्षा हो जाय और श्यामसुन्दरके दर्शन भी हो जायँ। ब्रजबिहारी नन्दनन्दनने पनघट पै जाय या प्रकारकी झाँकी दिखायी कि गोपी अपने तन-बदनकी सुध-बुध भूल पुकारबै लगी।

पद—

आज ठाढ़ौ री बिहारी यमुना तट पै।
मत जायो री अकेली कोई पनघट पै॥
मुकुट लटक भृकुटी की मटक।
मन रहो है अटक याके पीरे पट पै॥
नन्द जू को छौना देख धीरज रहै-
ना बीर ऐसो कछू टोना नागरनट पै॥
गुरुजन त्रास कैसे बसै ब्रज बास
मन बन गयो दास घुँघरारी लट पै॥
तज कुल लाज गोपी गई भाज-
श्याम रसिया को राज आज बंशीवट पै॥

पञ्चम दिवस—राजदानलीला

नित्यप्रति श्यामसुन्दर ब्रजगोपिनको मार्गमें रोक, ब्रजगोपिन सों माखन-मिश्रीको दान मांगे। या बातको जान बरसानेकी सखीनने वृषभानुकिशोरी श्रीराधेजू-सु प्रार्थना करी। आज इन दानबिहारीको दान लेबेको स्वाद चखा देवो। तो चतुर चौंसठकलाशिरोमणी श्रीवृषभानुनन्दिनीने अपनी सखीनको मन्त्री, सिपाही, कोतवाल आदिका छद्म धारण कराय आप स्वयं राजकुमार बन गहवर बन में बिराजमान है गयीं। कीर्तिनन्दिनीकी आमन्त्रणाको देख नन्दनन्दनकी मिलबेवारी एक सखीने या गुप्त मन्त्रणा कूँ श्यामसुन्दरके आगे प्रकट कियो। या अनुपम छद्मकी बात सुन श्यामसुन्दरके मनमें बड़ी उत्कण्ठा हुई। राजकुमारके दर्शन किस प्रकारसे होय। तो प्रियाजीके तत्सुखपरायण श्रीलालजीने तुरन्त गूजरीको छद्म बनाय, अपनी संगकी सखीनको संगमें लेय शीशपर दहीकी मटकी धर, रमक झमक केहरी कट-सी गजगामिनीकी गति-सु तुरन्त गहवर बनमें जहाँ राजकुमार मन्त्रीसहित विराजमान हैं, वहाँ पहुँच गयी और बड़े ऊँचे स्वरमें बोली—***'लैवो री कोई माखन, मिश्री, दही, दूध।'*** या ऊँची टेरको सुन राजकुमार वा नवगूजरीके समक्ष प्रस्तुत भये, तो नवगूजरी नवराजकुमारकी छबीके दर्शनकर दही-दूध बेचनो तो भूल गयी और कहने लगी लेवो री कोई राजकुमार। या प्रकार दोनों ही दोनोंकी छबीको देख अपन पे कूँ भूल गये और एकने एकको पहचान लियो।

दोहा—

जैसे उमड़े सिन्धु, जब रुकत न बालू भीत।
रसिक राय बे पथ भये, प्रबल प्रेम लिये जीत॥
लीला श्यामाश्याम की, पावक रूप बिहार।
नहिं समर्थ खगराज हैं, करत चकोर अहार॥

॥ बोलो श्रीरासबिहारीलालकी जय॥

राससम्बन्धी कुछ प्राचीन अनुश्रुतियाँ

(स्वामी श्रीलाडिलीशरणजी द्विवेदी)

व्रजमें रास-लीलाके पुनर्गठनके उपरान्त गाँव करहला उसका केन्द्र बना और यहाँके उदयकरण और खेमकरण नामक ब्राह्मणोंका इस रंगमंचके निर्माणमें बड़ा योग रहा है। रासका यह रंगमंच भक्ति-युगमें बड़ा लोकप्रिय सिद्ध हुआ, और रासके माध्यमसे भक्तवृन्द व्रजविहारीके प्रत्यक्ष दर्शनका सुख प्राप्त करते रहे। राससे सम्बन्धित अनेक अनुश्रुतियाँ इसका प्रमाण हैं, जिनमेंसे कुछका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। नाभादासजीने अपनी 'भक्तमाल' में भी ऐसी राससम्बन्धी घटनाओंकी चर्चा भक्तोंके प्रसंगमें की है।

चन्दा डाकूका हृदय-परिवर्तन—कहा जाता है कि औरंगजेबके शासनकालकी बात है; उस समय रास-लीलामें उदयकरणजीके पुत्र विक्रमजी कृष्णके स्वरूप बनते थे। वे बड़े मनहरण और प्रभावशाली थे। एक दिन एक धनाढ्य भक्तके यहाँ बड़े समारोहसे रासलीलाका आयोजन था। श्रीराधा-कृष्ण तथा सखियोंके लिये नख-शिख रत्न-जटित स्वर्ण आभूषण तथा जरीके वस्त्र धारण कराये गये। यह समाचार तत्कालीन चन्दा नामके डाकूने सुना। वह लोभवश बहुतसे हथियारबन्द साथियोंको लेकर उस बस्तीमें आ पहुँचा। लोगोंमें हलचल मच गयी। सब अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए। शोर-गुल सुनकर रासमें विराजमान विक्रमजी (श्रीठाकुरजीके स्वरूप)-ने जब यह हाल देखा तो उन्होंने उस लीला करानेवाले भक्त सेठसे इसका कारण पूछा। उसने कहा—'महाराज! सुना है डाकू लूट-मार करने आ रहे हैं।' सुनते ही श्रीश्यामसुन्दरका स्वरूप धारण किये विक्रमजी बोले—'आने दो'—इतनेमें ही चन्दा डाकू निर्भय सीधा सिंहासनके समीप जा पहुँचा, और ज्यों ही उसने आभूषणोंपर हाथ डालना चाहा, तब उन्हीं विक्रमजी (श्रीकृष्णस्वरूप)-ने उसका हाथ पकड़कर मुँहपर ऐसा प्रहार किया कि वह चारों खाने चित्त जा पड़ा। उसके होश-हवाश गुम हो गये, उसके साथी यह तमाशा देख भयभीत पत्थरकी मूर्तिकी भाँति वहीं-के-वहीं खड़े रह गये। जब डाकूको होश आया तो उसने विक्रमजीके चरण-कमलोंको प्रेम-भावसे जाकर पकड़ लिया और उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी। उस दिनसे अपने हथियारोंको श्रीचरणोंमें पटककर वह सदाके लिये भगवद्भक्त बन गया।

राजा जयसिंहका महल-हवेली-निर्माण—इस लोक-प्रसिद्ध घटनाके बाद कई रास-मण्डलियोंका निर्माण हो गया और जहाँ-तहाँ रास-रस वितरण होने लगा। परंतु उन मण्डलियोंमें भाव-भक्तिकी मर्यादाओंके विपरीत आचरण भी होने लगे। यह देखकर कुछ सन्तों और भक्तोंके हृदयमें बड़ी ठेस पहुँची। उनमेंसे कुछ लोगोंने जयपुर जाकर महाराज जयसिंहजीसे रासधारियोंकी शिकायत की, क्योंकि उस समय ब्रजके माँटगाँवतक जयपुरका ही राज्य था। कुछ सोच-समझकर महाराज जयसिंह वृन्दावन आये और रासधारियोंकी परीक्षा लेनेका निर्णय किया। उन्होंने समस्त रास-मण्डलियोंको रासके लिये आमन्त्रण दिया और श्रीजमुनाजीके किनारे विशाल मण्डप निर्माण कराकर एक अठारह हाथ ऊँचा सिंहासन बनवाया। श्रीवृन्दावनमें चीर-घाटके निकट आज भी जयसिंहके घेरेके नामसे जो प्रसिद्ध स्थान है, वहाँपर अलग-अलग मण्डलियाँ अपने-अपने स्वरूपोंका रासके लिये शृंगार कर ही रही थीं कि एक बूढ़ा व्रजवासी अठारह हाथ ऊँचा सिंहासन देखकर अपनी मण्डलीके शृंगारघरमें आकर रोने लगा, जहाँ उसका पोता श्रीश्यामसुन्दर-स्वरूपका शृंगार कर रहा था। अपने बाबाका रुदन देखकर वह बालक बोला—'बाबा! क्या बात है? क्यों रोते हो?' कई बार टालनेपर जब उस बालकस्वरूपने दुखित होकर कहा—'बाबा! यदि तुम रोनेका कारण नहीं बतलाते तो मैं भी शृंगार नहीं करता।' यह देख बूढ़े बाबाने सोचा कि लाला समझेगा कोई घरका मर गया है। वह कहने लगा—'बेटा! आज हमारे रासके मुकुटकी लाज कौन बचायेगा? मैं उसके लिये रोता हूँ। राजाने १८ हाथ ऊँचा सिंहासन परीक्षाके लिये बनवाया है।' यह सुनते ही श्यामसुन्दर बननेवाले उस बालकको

आवेश आ गया। वह बोला—'बाबा! मैं उस सिंहासनपर चढ़ूँगा, तू चिन्ता मत कर।' यह सुनकर बाबाको कुछ सन्तोष हुआ, रास-लीलाके पण्डालमें छमाछम नूपुरोंकी ध्वनि गूँजने लगी। राधा-कृष्णके कई स्वरूप बहुत-सी सखियोंसहित सुसज्जित वस्त्र-आभूषणोंसे अलंकृत अपनी मनहरण छटा-माधुरीद्वारा दर्शकोंके नयनोंको रसाप्लावित करते हुए सिंहासनोंपर आकर विराजमान हो गये, परंतु उसी एक मण्डलीके श्रीजुगलसरकार नहीं पधारे, जिसके ठाकुरजीने अपने बाबाको आश्वासन दिया था कि मैं सिंहासनपर चढ़ूँगा। जयसिंहने अपने चाकरोंको उनको बुलानेकी आज्ञा की, किंतु वे तब भी नहीं आये। अन्तमें महामन्त्री जब बुलाने गये तब श्रीकृष्णने कहा—'राजा स्वयं बुलाने क्यों नहीं आते?' उन्होंने महाराजसे आकर कहा, तब जयसिंहजी स्वयं उन्हें लेने गये। राजाने श्रीचरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर रास-लीलामें पधारनेकी विनती की।

श्रीराधा-कृष्ण सखियोंसहित, राजाके साथ चल दिये। रास-स्थलीमें पहुँचते ही श्रीकृष्ण तुरंत उछलकर उस ऊँचे सिंहासनपर जा विराजे। दर्शकोंके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु झलकने लगे, फूलोंकी वर्षा होने लगी। श्रीराधारानीने वहाँ पहुँचकर जब मचानकी ओर देखा तब जयसिंहजी हाथ जोड़कर कहने लगे—'हे कोमलांगी श्रीलाडिलीजी! आप सीढ़ीपर धीरे-धीरे चरण रखकर ही इस सिंहासनपर चढ़िये। ये श्रीश्यामसुन्दरजी तो गोपबालक हैं। वन-वनमें वृक्षोंपर उछल-कूद करते हुए गाय चरानेका इनका स्वभाव है।'

जयसिंहको तो केवल चमत्कार ही देखना था, लीला तो करानी थी ही नहीं, अतः वह आयोजन समाप्त हो गया। महाराज जयसिंहने मचानपर विराजे हुए श्रीयुगलसरकारके श्रीचरणोंमें साष्टांग प्रणाम किया और शृंगार-गृहमें पधारनेकी प्रार्थना की। सीढ़ीद्वारा ज्यों ही श्रीयुगलस्वरूप उतरे, महाराज जयसिंहजीने श्रीश्यामसुन्दरजीको कन्धेपर बैठा लिया और जोधपुर-नरेश किशनसिंहने, जो महाराजके साथ थे श्रीस्वामिनीजीको अपने कन्धोंपर चढ़ाया। दोनों राज्योंके दो दीवानोंने चारों सखियोंको कन्धेपर चढ़ाया और महाराजके पीछे चल दिये।

जयपुरनरेशका शरीर कुछ स्थूल था। वे धीरे-धीरे चल रहे थे। श्रीलाडिलीजी तथा सखियोंको आगे निकलते देख श्रीश्यामसुन्दरने जयसिंहजीको चरण मारते हुए कहा—'हमारा घोड़ा बड़ा कमजोर है, इससे चला भी नहीं जाता।' यह सुनकर नरेश तो आनन्दमें विभोर हो गये परंतु श्रीठाकुरजीके बाबाके हृदयमें सम्राट्के क्रोधित होनेकी आशंका उत्पन्न हो गयी, वे अपने पौत्र श्रीकृष्णकी ओर आँख निकालकर देखने लगे। नरेशको यह बात बुरी लगी और उन्होंने उस भोले व्रजवासीको सामनेसे हट जानेका आदेश दिया।

रसिक भक्त जयसिंहजी वहीं खड़े रहे। श्यामसुन्दर फिर बोले—'अब क्यों नहीं चलते?' राजाने विनय की—'श्रीमहाराज! यह घोड़ा अड़ियल है, अड़ गया है, बिना दूसरी ऐंड़ खाये नहीं चलेगा।' श्रीलालजीने दूसरे चरणसे प्रेम-प्रहार किया, तब वे उनको लेकर शृंगार-गृहमें आये और उन्हें उतारकर चरणकमलोंको शीशपर धारण किया और करबद्ध विनती की कि—'प्रभु मेरे लिये कुछ सेवाका आदेश कीजिये।' त्रिभुवनमोहन चुप रहे। राजा बार-बार यही प्रार्थना करने लगे, तब अपनी वंशी राजाके मस्तकपर मारकर ठाकुरजी बोले—'खबरदार, आजसे जो किसीकी परीक्षा ली।'

इतना कहते ही श्रीकृष्ण मूर्च्छित हो गये, उनको अन्तर्गृहमें ले जाकर पलंगपर लिटा दिया गया। कुछ समय पश्चात् जब वे चैतन्य हुए, भावावेश उतरा, तब उन्होंने अपना शृंगार उतरवाया। जयसिंहजी उस मण्डलीके स्वामीजीसे बोले—'आप कुछ माँगिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' भगवद्विश्वासपरायण सन्तोषी व्रजवासियोंने कहा—'हम आपसे कुछ नहीं चाहते, पर यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो हमारे कच्चे मकानोंको पक्के करा दीजिये।'

राजाने यह स्वीकार करके एक गाँव रास-मण्डलीको भेंट किया और करहला गाँवमें पक्के महल तथा हवेली बनवानेके लिये चूना-पत्थर आदि सामान इकट्ठा होने लगा, परंतु कुछ दिनोंके उपरान्त ही जयसिंह परलोक सिधार गये, अतः वह कार्य अपूर्ण ही

रह गया। आज भी वहाँ खोदनेपर नीवोंसे पत्थर निकलते हैं, तथा करहलाके रासधारियोंके वंशज आज भी महल तथा हवेलीवालोंके नामसे प्रसिद्ध हैं।

श्रीविट्ठलविपुलजीका शरीर-त्याग

श्रीवृन्दावनमें स्वामी हरिदासजीके परम धाम पधारनेपर उनके प्रिय शिष्य श्रीविट्ठलविपुलजी श्रीगुरु-चरणोंके वियोगमें अति शोकाकुल रहते थे और निरन्तर नेत्रोंसे विरहजल बहाया करते थे। किसीको देखनेको जी नहीं करता था, इसलिये उन्होंने नेत्रोंपर पट्टी बाँध ली थी।

उन्हीं दिनों एक समय रासलीलाका समारोह श्रीवृन्दावनके माननीय महानुभावोंने अति उत्साहसे कराया। उसमें श्रीविट्ठलविपुलजीको भी कुछ आदरणीय सन्त-महन्त आमन्त्रण करने उनके पास गये। संकोचवश वे उनका बुलावा न टाल सके, और रासलीलामें आ विराजे। रास-रसकी घटाएँ उमड़ने लगीं, मुकुटकी लटक और चन्द्रिकाकी चटकके साथ कुण्डलोंकी झमकमें दर्शकोंके मनमीन तैरने लगे। श्रीश्यामा-श्याम गलबाँही दिये सखी-मण्डलमें नृत्य कर रहे थे। नूपुरोंके मनहरण बोल, बीच-बीचमें वंशीकी मदभरी सुरीली ध्वनि और सखियों तथा श्रीजुगलसरकारके कोकिल कंठद्वारा गान, तान और आलापोंकी विचित्र माधुरीके सागरमें रसिक भ्रमर मतवाले हो झूम रहे थे कि अचानक नृत्य-गति मन्द हो गयी और लाड़िलीजी श्यामसुन्दरजीसे बोलीं—'प्रीतम! विट्ठलविपुलकी पट्टी नयनोंसे खुलवा दो।' श्रीलालजी बोले—'आप ही कृपा कीजिये।'

नृत्य करते हुए श्रीकिशोरीजीने जाकर विट्ठलजीका हाथ पकड़ लिया और बोलीं—'पट्टी खोलो।' उन्होंने प्रेम-विभोर होकर 'स्वामिनीजी!, अब छोड़ना नहीं' कहते हुए दूसरे हाथसे पट्टी खोली और देखा कि श्यामा-श्यामके रोम-रोमसे महाकान्तिकी गौर-श्याम किरणें छिटक रही हैं। मधुर रस-सागर मृगनयनोंमें करुणाकी घटाएँ छा रही हैं और पास ही उनके सर्वस्व स्वामी श्रीहरिदासजी श्रीललितासखीके स्वरूपमें विराजमान हैं। विट्ठलविपुलजीके नेत्र स्तब्ध हो गये। प्रेमाश्रुकी सरिता बहने लगी और उनका भौतिक शरीर श्रीयुगलचरणोंमें गिर पड़ा। जय-जयकारकी मंगल-ध्वनि गूँज उठी।

राजा रामरायद्वारा पुत्रीकी भेंट

राजा खेम्हालके बेटे राजा रामरायजी परम भक्त थे। एक दिवस राधेलाल-रूपरामकी करहला ग्रामकी मण्डलीद्वारा महलमें शरत्-पूर्णिमाकी चाँदनीमें ऐसा सुधा-रस उमड़ा कि रामरायजीको साक्षात् कोटि चन्द्र-कान्तिको विलज्जित करनेवाली श्रीश्यामसुन्दरकी छवि दृष्टिगोचर हो गयी, वे प्रेमविह्वल हो गये। उन्होंने एक ब्राह्मण मन्त्रीसे सलाह की कि—'क्या वस्तु भेंट करनी चाहिये?' उस मन्त्रीने कहा—'महाराज, जो आपको सबसे प्यारी हो।' राजाने कहा—'मुझे मेरी बेटी सबसे प्यारी है।' राजाने महलमें जाकर शृंगारसे युक्त बेटीको लाकर श्रीलालजीके चरणोंमें भेंट किया। साथमें इतना धन भी दिया कि वह श्रीकृष्णका स्वरूप उस राज-कन्याके साथ विवाह करके आनन्दसे जीवन व्यतीत करता रहे। परंतु मण्डलीके स्वामीजीने धन स्वीकार करके नरेशसे कहा—'आपकी कन्याको हमने ठाकुरजीकी बहू मान लिया, फिर भी हम ब्राह्मण हैं, आप क्षत्रिय हैं, इसलिये आप इसका लौकिक विवाह किसी क्षत्रियके साथ कर दें।'

कैदियोंकी मुक्ति

स्वतन्त्रतासे पूर्वकी घटना है, करहला ग्रामके स्वामी बिहारीलालकी मण्डली दतिया राज्यमें रास कर रही थी। भवानीसिंहजी राजा थे। राजदरबारमें रासलीला हुआ करती थी। राजाका श्रीकृष्णसे सखा-भाव था। एक दिन भवानीसिंहजीको हँसी सूझी, उन्होंने सिंहासनपर विराजित ठाकुरजीसे कुछ विचित्र परिहासकी बात कह डाली, जिसको सुनकर श्रीलालजीको आवेश आ गया और पासमें पड़ी गुलाबकी छड़ीद्वारा राजाको पीटना शुरू कर दिया, नरेश वहाँसे महलमें भाग चले और वे भी उनको मारते-मारते महलमें चले गये। राजा वहीं जाकर छिप गये। उस समय रासमें व्रजके सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ ग्वारिया बाबाजी भी थे। लीला इस प्रकार समाप्त हो गयी। मन्त्री आदिको इस प्रकार राजाको मारना बुरा लगा। यह देखकर राजाने उनसे कहा—'तुम लोग इस बातको नहीं समझ सकते, इसलिये श्यामसुन्दरको तुम कुछ न कहना। मेरी उनकी जो बात है, उसे मैं जानूँ या वे।'

दूसरे दिन फिर रासके लिये स्वरूप जब विराजे, तब राजा भवानीसिंहने आकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया, और विनय करने लगे तथा उनसे कुछ सेवाकी प्रार्थना की। श्रीकृष्णजीको स्मरण हो आया कि जलके पास जब हम शौच जाते हैं, तब तीन आजन्म कैदी हमसे प्रार्थना करते हैं। आज अच्छा अवसर है, सो राजासे बोले—'उन तीनों आजन्म कैदियोंको छोड़ दिया जाय और हमको कुछ नहीं चाहिये।'

राजाने तुरंत कैदियोंको रिहा कर दिया। बादमें नरेशने उन ठाकुरजीकी जीवनपर्यन्तके लिये आजीविका बाँध दी और स्वामीजीके पुत्र राधाकृष्ण तथा गोवर्धनको अपने राज्यमें दीवानकी पदवी प्रदान की।

कालिय-दमन लीला

उसी समयमें एक बार एक भक्तने श्रीयमुनाजीके किनारेपर रासानुकरण कराया। कालियनाग नाथनेकी लीला आरम्भ हुई। श्रीश्यामसुन्दर कमरमें फेंट कसने लगे तो उस भक्तने लोगोंसे पूछा—'क्या श्रीकृष्ण यमुनामें कूदेंगे? जो कमर कसते हैं' यह बात श्रीलालजीके कानमें पड़ गयी। वे बोले—'हाँ कूदेंगे।' और तुरंत यमुनामें कूद पड़े। सब दर्शक सोचमें पड़ गये। थोड़ी देरमें श्रीकृष्ण एक बड़ा भारी साँप; जो आठ-दस आदमियोंसे भी न उठे, लेकर बाहर निकले। उस भक्तने उस समय श्यामसुन्दरका ऐसा विचित्र प्रकाश देखा कि आँखोंमें चकाचौंध छा गयी और वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। श्रीलालजीने सर्प यमुनाजीमें ही डाल दिया। जब इस भक्तको होश आया तो वह श्रीचरणोंसे लिपट गया और घरबार त्यागकर भजनमें लीन हो गया।

खड्गसेनका लीला-प्रवेश

खड्गसेनजी कायस्थ ग्वालियरके रहनेवाले और रासके बड़े प्रेमी थे। वे रासलीला बड़े उत्साहसे कराया करते थे। शरत्पूर्णिमापर रास करानेका उनका दृढ़ नेम था। एक बार रास-विलासकी ऐसी अनुपम नृत्य-माधुरी उमड़ी कि श्रीराधा-कृष्णकी बाँकी-झाँकीके महाप्रकाशमें उनके नयनप्राण उलझे ही रह गये। देह-गेहकी सुध न रही। खड्गसेनजी सदाके लिए नित्य-विहार रास-रसमें लीन हो गये।

इस प्रकार रास-लीला-अनुकरणमें अनेक चमत्कार समय-समयपर होते देखे और सुने गये हैं।

राधामाधवकी अंजन-लीला

एक समय श्रीराधाजी ललिता-विशाखादि सखियोंके साथ किसी निर्जन कुंजमें बैठकर सखियोंके द्वारा वेश-भूषा धारण कर रही थीं। सखियोंने नाना प्रकारके अलंकारों एवं आभूषणोंसे उन्हें अलंकृत किया। केवल नेत्रोंमें अंजन लगाने जा रही थीं कि उसी समय अचानक कृष्णने मधुर वंशी बजायी। कृष्णकी वंशीध्वनि सुनते ही श्रीराधाजी उन्मत्त होकर बिना अंजन लगाये ही प्राणवल्लभसे मिलनेके लिये परम उत्कण्ठित होकर चल दीं। कृष्ण भी उनकी उत्कण्ठासे प्रतीक्षा कर रहे थे। जब वे प्रियतमसे मिलीं तो कृष्णने उन्हें पुष्प-आसनपर बिठाकर तथा उनके गलेमें हाथ डालकर सखियोंसे आँखमें अंजन न लगानेका कारण पूछा। सखियोंने उत्तर दिया कि हम लोग इनका श्रृंगार कर रही थीं। प्रायः सभी श्रृंगार हो चुका था, केवल नेत्रोंमें अंजन लगाना बाकी था, किंतु इसी बीच आपकी वंशीकी मधुर ध्वनि सुनकर आपसे मिलनेके लिये ये इतनी उत्कण्ठित हो गयीं कि हमारे बार-बार अंजन धारण करनेके लिये अनुरोध करनेपर भी ये बिना एक क्षण रुके चल पड़ीं। ऐसा सुनकर कृष्ण रसावेशमें आकर स्वयं अपने हाथोंसे उनके नेत्रोंमें अंजन लगाकर दर्पणके द्वारा उनकी रूपमाधुरीका उनको आस्वादन कराकर स्वयं भी आस्वादन करने लगे। इस लीलाके कारण इस स्थानका नाम आँजनौक पड़ा। यहाँ रासमण्डल है, जहाँ रासलीला हुई थी। गाँवके दक्षिणमें किशोरीकुण्ड है। कुण्डके पश्चिम तटपर अंजनी शिला है, जहाँ श्रीकृष्णने श्रीराधाजीको बैठाकर अंजन लगाया था। [आचार्य श्रीरमाकान्तजी गोस्वामी]

व्रजकी रासलीला—एक समीक्षा

(प्रो० श्रीअभिराज राजेन्द्रजी मिश्र, पूर्वकुलपति सं० सं० वि० वि०, वाराणसी)

व्रजक्षेत्रकी वर्तमान रासलीलाकी परम्परा उस पावन गंगाधाराके ही समान है, जो पैदा तो हुई पुराण-गोमुखसे, परंतु पूर्णताके सागरतक आते हुए उसमें मिल गई हैं लोकपरम्पराओं एवं धार्मिक आस्थाओं, सम्प्रदायोंकी अनेक-अनेक सहायक सरिताएँ। इस पुराण-गोमुखमें भी मूल उत्सके तीन स्थल हैं—श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्त तथा गर्गसंहिता। यद्यपि हरिवंश, ब्रह्म, विष्णु आदि कुछ अन्यान्य पुराणों तथा महाभारत आदिमें भी श्रीकृष्णकथाका वर्णन है। दूसरी ओर गर्गसंहिताका परिगणन पुराणोंमें न होते हुए भी, उसे पुराण-जैसी ही प्रतिष्ठा प्राप्त है। फिर भी श्रीकृष्णकथाका मूल उद्गम श्रीमद्भागवत-महापुराण ही मान्य है। इसी पुराणके दशम स्कन्धमें बालकृष्ण एवं वयस्सन्धिकी ओर अग्रसर किशोर श्रीकृष्णकी सारी भुवनमोहिनी लीलाओंका वर्णन भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासने किया है।

श्रीकृष्णकी बाललीलाओंका प्रारम्भ उनके यशोदा-गृहमें आनेके साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। हाथसे छूटी कन्याकी उद्घोषणा सुनते ही कंस तो हतप्रभ हो उठता है तथा गोकुलग्रामके समस्त नवजात शिशुओंकी हत्याका नृशंस आदेश देता है। इसी क्रममें पूतना, तृणावर्त, शकटासुर, बकासुर, अघासुर, धेनुक एवं केशीकी विध्वंसलीलाएँ सम्पन्न होती हैं। लीलाओंका यह क्रम भी अन्ततः मुष्टिक, चाणूर, कुवलयापीडके वधोपरान्त कंसके समापनसे ही समाप्त होता है।

परंतु श्रीकृष्णकी ये रिपुसूदनी लीलाएँ भयावह, लोमहर्षक एवं विस्मापक हैं। ये लीलाएँ उनके भगवदैश्वर्यको न जानने-समझनेवालोंके लिये अविश्वसनीय भी हैं। स्वयं जन्मदात्री यशोदा ही यह विश्वास नहीं कर पातीं कि उनके नन्हें शिशुने ही तृणावर्त, शकट अथवा पूतना आदिका वध किया है। वात्सल्यरससे सनी एक भयाकुल जननीकी तरह वे भी बच्चेकी झाड़-फूँक कराने लगती हैं।

रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशङ्किता।
कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत्॥

(श्रीमद्भा० १०।७।११)

दूसरी ओर हैं श्रीकृष्णकी वे लीलाएँ, जो यथार्थकी भावभूमिपर घटती हैं। जिनमें कोई कृत्रिमता नहीं, अविश्वसनीयता नहीं; वे तो एक ऐसे विनोदी शिशुकी लीलाएँ हैं, जो सबको केवल रिझाती हैं। अप्रिय लगती हुई भी वे वैरस्य नहीं पैदा करतीं। श्रीकृष्णका ग्वाल-बालोंके साथ नाना उपायोंसे माखनकी चोरी करना, स्नान करती गोपवधूटियोंके वस्त्रोंको चुरा लेना, गोपियोंके उपालम्भवश श्रीकृष्णका दण्डित होना तथा उलूखलमें बाँधा जाना—इन सारी लीलाओंमें वैरस्य कहीं नहीं था। इनमें केवल उत्कण्ठाका प्रशमन था, दण्डित श्रीकृष्णकी भावमुद्राओंको देखनेकी ललक भर थी। ये सब निर्वैयक्तिक प्रेमके ऐसे अद्भुत सन्दर्भ थे, जिनकी लौकिक स्तरपर कोई व्याख्या ही सम्भव नहीं।

श्रीकृष्णका गोचारणार्थ वृन्दावन-प्रवेश ही इस लीलामहालयका भव्य प्रवेशद्वार है। यह प्रवेशवर्णन श्रीमद्भागवतकार मात्र एक स्रग्धरामें व्यक्त करते हैं।[1] परंतु इसी स्रग्धराके अक्षर-अक्षरके ऋणी हैं बिहारी, देव, मतिराम, दास, ग्वालकवि, रसखान, मीराबाई तथा पद्माकर आदि। सबको श्रीकृष्णरूपकी दीक्षा श्रीमद्भागवतके इसी पद्यसे मिली है। श्रीकृष्णकी प्रणयचन्द्रिकामें डूबा गोकुल दुग्धस्नात हो उठता है। उनका उठना, बैठना, खेलना, कूदना, हास-परिहास, वंशीवादन—सब गोपवधूटियोंका हृदयस्पन्दन बन गया है।[2]

यह कैसा विलक्षण प्रेम है, जो अमृतवल्ली (अमरबेल)-सा लगता है? जिसकी जड़ कहीं नहीं, बस विस्तार ही विस्तार है! जो स्पर्श मात्रसे आश्रयको बाँध

१. बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥ (श्रीमद्भा० १०।२१।५)

२. एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे। निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः॥ (श्रीमद्भा० १०।१४।६१)

लेती है कभी न छोड़नेके लिये; यह कैसा प्रेम है; जो लोकदृष्ट होते हुए भी लोकसिद्ध नहीं है! लोकसिद्ध प्रेम तो रक्तसम्बन्धों अथवा हृदयसम्बन्धोंसे पैदा होता है। तो क्या श्रीकृष्ण गोपवल्लभाओंके कान्त हैं, सखा हैं, भ्राता हैं, पुत्र हैं? क्या वे उनके काम्य हैं? ऐसा तो कुछ भी नहीं!

श्रीकृष्ण तो उन नन्द-यशोदाके भी औरस नहीं, जिस रूपमें उनकी पहचान है! फिर तो गोपियोंसे उनका कौन रक्तसम्बन्ध होगा? वे उनके कुछ नहीं लगते थे। तद्वशीकृतहृदया एक मुग्धा गोपीको यही प्रश्न उद्विग्न कर रहा है कि वे हमारे क्या लगते हैं? (कि मैं उनके लिये विक्षिप्त हो उठी हूँ!) इस गोपीने रातमें केवल भाँवर लेनेकी लीलाभर की थी—

सखि! तैं हू हुती निसि देखत ही जिनपे वे भई हूँ निछावरियाँ।
जिन पानि गह्यो हुतो मेरो जबै सब गाव उठीं व्रज-डावरियाँ॥
अँसुवा भरि आवत मेरो अजौ सुमिरे उनकी पद-पाँवरियाँ।
सखि! को हैं, हमारे वे कौन लगैं, जिनके सँग खेली हूँ भाँवरियाँ॥

अब रहा प्रश्न (कान्तरूपमें) काम्य होनेका तो इस सन्दर्भमें स्वयं श्रीमद्भागवतकार कहते हैं कि वृन्दावनकी सारी लीलाएँ श्रीकृष्णने कुमारावस्था अथवा पौगण्डावस्था[1] में सम्पन्न कीं। मथुराप्रस्थानके समय भी श्रीकृष्णकी अवस्था मात्र ग्यारह वर्ष पाँच महीना थी। ऐसी कोमल अवस्थामें भला रागका अंकुर कहाँ, कामोपभोगकी परिपक्वता कहाँ? यौवन-सम्पन्न भर्तृमती गोपियोंका श्रीकृष्णके प्रति भला कान्तभाव कैसे हो सकता है? फिर भी श्रीकृष्णने व्रजकुमारियोंके साथ चीरहरणलीला की, गोपांगनाओंके साथ भी शरत्पूर्णिमाकी रात्रिमें महारास किया और यह महारास या चीरहरण किसी शिशुका व्यवहार नहीं था, अपितु पूर्ण वयस्क, कन्दर्पकेलि-पारंगत श्रीकृष्णका था? ये दोनों परस्पर विरोधी स्थितियाँ हैं, जिन्हें संसारीजन नहीं समझ सकते। परंतु ईश्वरतत्त्वके संवेदी भक्तजन इस रहस्य, इस स्थितिको सरलतासे समझ सकते हैं।

सामान्य मनुष्योंकी भला क्या चर्चा? स्वयं हरिकथामृतपानमें डूबे महाभागवत परीक्षित्को ही नन्दनन्दनका यह आचरण बेहद अटपटा लगा था—

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम्॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम्।
किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। २७—२९)

इस गूढ प्रश्नका गूढतर उत्तर देते हैं श्रीकृष्णद्वैपायन यह कहकर कि सर्वभुक् अग्निके समान ही, धर्मका व्यतिक्रम एवं साहस, ईश्वरको दूषित नहीं करता, परंतु अनीश्वरको (ईश्वरसे इतर अर्थात् सामान्य मनुष्यको) मनसे भी वैसा नहीं करना चाहिये। देवाधिदेवने कालकूट पिया (वे ईश्वर हैं, विष पचानेकी सामर्थ्यसे सम्पन्न हैं), परंतु उन्हींकी तरह मनुष्य भी विषपान नहीं कर सकता, अन्यथा नामशेष हो जायगा।

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणाञ्च साहसम्।
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा॥
नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः।
विनश्यत्याचरन् मौढ्याद्यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। ३०-३१)

आपाततः लोकविरोधिनी प्रतीत होनेवाली इन लीलाओंका औचित्य है योगेश्वर श्रीकृष्णकी आत्यन्तिक असम्पृक्ति। उन्होंने जो भी लीलाएँ कीं, वे मात्र भक्तोंकी आकांक्षापूर्तिके लिये, उन्हींके परितोषार्थ कीं। उनमें उनकी लेशमात्र भी प्रवृत्ति नहीं थी; क्योंकि वे तो आप्तकाम हैं, आत्माराम हैं, वे तो स्वयं सुखानन्दमूर्ति हैं, फिर भला उन्हें किस सुखकी कामना! लीला होती ही है परसुखार्थ! जैसे भुने हुए धानके बीजमें अंकुरणकी सम्भावना नहीं, वैसे ही सच्चिदानन्दस्वरूप नन्दनन्दनमें कामनाका अंकुर नहीं, कामसुखकी लिप्सा नहीं; इसीलिये भागवतकार कहते हैं कि कुमारावस्थामें भी ये लीलाएँ

१. ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ। (श्रीमद्भा० १०। १५। १)
'पौगण्डः पञ्चमादब्दादर्वाक् च दशमाब्दतः। (मनु० ८। १४८)'

भगवान् श्रीकृष्णने योगमायाका आश्रय लेकर कीं (न कि अपनी कायिक बुभुक्षाको शान्त करनेके लिये)।

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। १)

व्रजकुमारियोंने कात्यायनीपूजाका महीनेभरका व्रत रखा;* वह व्रत था कृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी कामना—'**भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः।**' कृष्णने उनके निश्छल, नैष्ठिक प्रेमका अभिनन्दन किया चीरहरण-लीलाद्वारा, इस भावनाके साथ कि—

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते॥

(श्रीमद्भा० १०। २२। २६)

इन सन्दर्भोंसे स्पष्ट हो जाता है कि कृष्णलीलाओंकी समीक्षा सांसारिक मानकोंद्वारा नहीं की जा सकती है। अन्यथा जैसा आचार्य श्रीधर कहते हैं कि (महारासलीलामें भी) परदारविनोदके कारण कृष्णके कन्दर्पविजेतृत्वकी प्रतीति (भ्रान्ति) होने लगेगी।

ननु विपरीतमिदम्, परदारविनोदेन कन्दर्पविजेतृत्वप्रतीतेः! मैवम्! 'योगमायामुपाश्रितः' 'आत्मारामोऽप्यरीरमत्' 'साक्षान्मन्मथमन्मथः' 'आत्मन्यवरुद्धसौरतः' इत्यादिषु स्वातन्त्र्याभिधानात्। तस्माद् रासक्रीडाविडम्बनं कामविजयख्यापनायेत्येव तत्त्वम्। किञ्च शृङ्गारकथापदेशेन विशेषतो निवृत्तिपरेयं पञ्चाध्यायीति व्यक्तीकरिष्यामः। (श्रीधरी १०। २९। १)

व्रजकी रासलीलाकी यही मूल पीठिका है। पौराणिक आख्यानोंसे ज्ञात होता है कि ये लीलाएँ उनके अवसानके अनन्तर ही उनके प्रपौत्र वज्रनाभद्वारा मथुरामें प्रारम्भ कर दी गयी थीं। श्रीकृष्णका तो सम्पूर्ण जीवन ही लीलामय था, और इन्हीं लीलाओंमें ओत-प्रोत था समाजका आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक सुख; फलतः ये लीलाएँ लोकानुरंजनका विलक्षण साधन बन गयी हैं।

पन्द्रहवीं शती ई०में गौरांगमहाप्रभुके सपरिकर वृन्दावनमें पधारने तथा कृष्णलीला-स्थलोंकी पहचानके बाद ही इन लीलाओंमें बाढ़-सी आ गयी। इसी समय महाप्रभु वल्लभाचार्य एवं उनके पुत्र विट्ठलनाथने भी वृन्दावनको अपना केन्द्र बनाया। मध्व एवं निम्बार्क भी कृष्णोपासक ही थे। ये सारी उपासना-धाराएँ जब व्रजक्षेत्रमें केन्द्रित हो उठीं तो वह समस्त कृष्णभक्तों, मुमुक्षुओंका आकर्षणकेन्द्र बन गया। एक ओर तो मध्व, निम्बार्क एवं वल्लभने कृष्णभक्तिके दार्शनिक पक्षका श्रीमद्भागवतसम्मत पल्लवन किया और दूसरी ओर चैतन्यमहाप्रभुके अचिन्त्यभेदाभेद-सम्प्रदायमें दीक्षित आचार्यों विश्वनाथ चक्रवर्ती, बलदेव विद्याभूषण एवं रूप गोस्वामी आदिने कृष्णकी परकीया-रतिको ख्यापित करते हुए स्वमतका प्रचार-प्रसार किया।

माधुर्यकादम्बिनी एवं भक्तिरसामृतसिन्धु आदिमें इन आचार्योंने भक्तिकी जिन धाराओंका प्रवर्तन किया, वही आगे चलकर कृष्णोपासनाका एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय बन गया। इन सम्प्रदायोंके प्रवर्तन एवं पोषणमें गृहस्थ भी शामिल थे, विरक्त भी। प्रजा भी शामिल थी, राजा भी। हिन्दू भी शामिल थे, मुसलमान भी।

व्रजकी रासलीलाका पौराणिक अथवा शास्त्रीय रूप जो भी हो, परंतु लोकमानसमें वह कृष्णकी मधुरोपासनाका एक ललित प्रयोगमात्र है। इस प्रयोगने भारतराष्ट्रके अनेक आंचलिक लोकनृत्योंको जन्म दिया। गुजरातका डाण्डिया रास तथा गरबा, उत्तरप्रदेशकी कृष्णलीला, उत्कलप्रदेशका ओडिसी, मणिपुरी रासलीला तथा हिमाचली नाटीके अनेक उपभेद राधा-कृष्ण युगल नृत्यसे ही जुड़े हुए हैं।

---

* आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे। कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम्॥

× × × × ×

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः। इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः॥
एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः।

× × × × ×

भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः। वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये॥

(श्रीमद्भा० १०। २२। २, ४-५, ८)

[ग] गोपीतत्त्व

कृष्ण और गोपी

[श्रीमंगलदेवजी शास्त्री, एम०ए०, डी०फिल० (ऑक्सन)]

मनुष्यके जीवनका सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि परमतत्त्वका साक्षात्कार उसे कैसे हो और उसका स्वरूप क्या है।

परम्परागत धारणा यह है कि इन्द्रियोंकी जहाँतक गति है, उससे ऊपर उठकर, इन्द्रियोंका सर्वथा निरोध करके, योगशास्त्रोक्त धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा ही भगवान्‌का, परम तत्त्वका साक्षात्कार किया जा सकता है। यदि ऐसी ही बात हो, तब देखना यह है कि वह साक्षात्कार किस रूपमें होता है। उक्त दृष्टिमें इन्द्रियोंका सर्वथा निरोध होनेके कारण यह स्पष्ट है कि वह साक्षात्कार ऐन्द्रिय नहीं हो सकता। अपूर्ण भाषाके सहारे उसे किसी प्रकार बुद्धिगम्य या उससे भी ऊपर उठकर स्वरूपावस्थितिके रूपमें ही कहा जा सकता है।

एक प्रकारसे यह ठीक है। पर प्रश्न उठता है कि जब इन्द्रियाँ उस साक्षात्कारमें बाधक ही हैं, तब क्या आध्यात्मिक दृष्टिसे सृष्टिकी योजनामें इन्द्रियाँ व्यर्थ ही हैं? क्या वे बाधक होनेके स्थानमें अध्यात्म-दर्शनमें सहायक नहीं हो सकतीं?

एक दिन प्रातः नैत्यिक भ्रमणके लिये जाते हुए यही समस्या विकटरूपमें मनमें उठी। निश्चय किया कि इसका समाधान आज ही होना चाहिये।

नगरके बाहरकी प्राकृतिक सौन्दर्यावलीमें विचरते हुए अनुभव किया—

प्रकृतेर्मातृभूतायाः क्रोडे क्रीडन्ननारतम्।
लालितः पालितश्चापि सदानन्दो वसाम्यहम्॥
स्नेहार्द्रं नित्यसंस्थायि तस्या माधुर्यमद्भुतम्।
दृष्ट्वा पीत्वेव पीयूषं सदानन्दो वसाम्यहम्॥

(रश्मिमाला ३६।१-२)

अर्थात्—

प्रकृति-माताकी गोदमें
सदा क्रीड़ा करता हुआ,
तथा लालित और पालित,
मैं सदा आनन्द से रहता हूँ!
उसके स्नेहसे आर्द्र, नित्य रहनेवाले,
अद्भुत माधुर्यको देखकर,
मानो अमृतको पीकर,
मैं सदा आनन्दसे रहता हूँ!

अथवा—

लोकोत्तरेण दिव्येन माधुर्येण समन्विता।
येयं प्रसादनी शक्तिर्लोके सर्वत्र संस्थिता॥
सूर्ये चन्द्रे जले वायावुत्फुल्लकुसुमावलौ।
सेयमाविर्भवेच्छश्वत् तिष्ठतान्मम मानसे॥

(रश्मिमाला ३४।१, ३)

अर्थात्—

लोकोत्तर दिव्य माधुर्यसे समन्वित,
जो प्रसादनी शक्ति
सृष्टिमें सर्वत्र—
सूर्यमें, चन्द्रमामें, जलमें, वायुमें,
प्रफुल्ल कुसुमावलिमें—
संस्थित है, वह आविर्भूत होकर
सर्वदा मेरे मनमें वास करे!

इसी मानसिक पृष्ठभूमिमें भगवद्गीताके निम्न वचन स्मरण हो आये—

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
× × ×
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ॥

(गीता ७।८-९)

अर्थात् जलोंमें रस, चन्द्र-सूर्यमें प्रभा, पृथिवीमें पवित्र सुगन्ध और अग्निमें प्रकाश—ये सब भगवान्‌के

ही रूप हैं।

उस समय यही प्रतीत होने लगा कि विश्वका यावत् सौन्दर्य भगवान्‌का ही सौन्दर्य है। जैसे मांस-मज्जा आदिसे पूर्ण और दुर्गन्धसे पूरित इस शरीरमें जो मनोज्ञता और आकर्षण है, उसके मूलमें चेतन आत्माकी सत्ता है, उसी प्रकार इस विश्वमें तत्तत् पदार्थोंद्वारा जो दिव्य शान्ति, जीवन-प्रेरणा, अनन्तानन्त ऐश्वर्य और सौन्दर्यकी प्रतीति इन्द्रियोंद्वारा हो रही है, उसके मूलमें मूलतत्त्वस्वरूप भूतभावन भगवान्‌की सत्ता है।

उक्त दृष्टिसे भगवान्‌के स्वरूपके साक्षात्कारमें, अनुभवमें, स्पष्टतः इन्द्रियाँ साधक ही हैं, बाधक नहीं।

उक्त भ्रमणमें उद्भूत विचार उसी समय जिन पद्योंमें ग्रथित कर लिये गये थे, उन्हींको संक्षिप्त व्याख्याके साथ हम नीचे देते हैं—

आनन्दं शाश्वतं तेजो लोकादुद्विग्नचेतसः।
रुद्धाक्षाः प्रयतन्ते यत् स्वान्ते द्रष्टुं मनीषिणः॥
तदेतदिन्द्रियैः साक्षात् परितः परमेष्ठिनम्।
दृष्ट्वा भक्ताः प्रसीदन्तः कीर्तयन्ति दिवानिशम्॥
कृष्णेत्याकर्षकं तत्त्वमिन्द्रियाणामतो मतम्।
गोप्यस्तद्वृत्तयस्तस्माद् भक्तानां परिभाषया॥[1]

'मनीषी लोग संसारसे उद्विग्न-चित्त होकर जिस आनन्दस्वरूप शाश्वत तेजको, इन्द्रियोंका निरोध करके, अपने मानस या अन्तःकरणमें देखनेका प्रयत्न करते हैं। सर्वत्र परमेष्ठी (परमे=ऊँची स्थितिमें स्थित, अर्थात् आपाततः उद्भूत अनुभवोंकी अपेक्षा उत्कृष्टतर अनुभवसे गम्य) उसी मूल-तत्त्वको भक्तजन साक्षात् इन्द्रियोंद्वारा देखकर (अनुभव करके) दिन-रात उसका कीर्तन करते हैं। इसलिये इन्द्रियोंके लिये आकर्षक होनेसे वह मूल-तत्त्व, भक्तजनोंकी परिभाषामें, **'कृष्ण'** इस नामसे कहा जाता है और इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको **'गोपी'** (गो=इन्द्रियोंको पालने या पुष्ट करनेवाली) कहा जाता है।'

अभिप्राय यह है कि उपर्युक्त दृष्टिसे इस अनन्तानन्त परम विशाल विश्वके माध्यमसे जिसका सुन्दर रूप हमें सदैव इन्द्रियगोचर हो रहा है और जो स्वभावतः इन्द्रियोंके लिये 'आकर्षक' है, उसी परम तत्त्वको 'कृष्ण' इस नामसे कहा जाता है।

अपनी वृत्तियोंद्वारा ही इन्द्रियोंको बाह्य दृश्योंका बोध होता है। दूसरे शब्दोंमें, इन्द्रियोंके इन्द्रियत्वको सार्थक करनेवाली या उनको पुष्ट करनेवाली, (उनके योग्य अनुभवोंको देनेवाली) इन्द्रिय-वृत्तियाँ ही हैं।

इन्द्रियोंका नाम 'गौ' है। इसलिये उनकी वृत्तियोंको 'गोपी' कहा जाता है। इन वृत्तियों (गोपियों)-का स्वाभाविक 'आकर्षण' (प्रवृत्ति) बाह्य जगत्‌की ओर है।[2] जैसे मधुमक्खियाँ नाना प्रकारके पुष्पोंसे मधुको, या सूर्य-रश्मियाँ नाना प्रकारके जल-स्थानोंसे विशुद्ध जलको खींच लेती हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक उत्कर्षकी अवस्थामें इन्द्रियोंमें बाह्य जगत्‌के माध्यमसे ही परम तत्त्वस्वरूप भगवान्‌के साक्षात्कारकी योग्यता आ जाती है।[3] इन्द्रियोंद्वारा परम तत्त्वके साक्षात्कारका यही अर्थ है।

बाह्य जगत्‌में भगवान्‌की स्थिति आपाततः नहीं दिखायी देती, आध्यात्मिक उत्कर्षकी अवस्थामें ही उसका भान होता है। इसीलिये परम तत्त्वको 'परमेष्ठी' कहा गया है।

यह आध्यात्मिक दृष्टि जिनकी हो जाती है, सच्चा 'भक्त' उन्हींको कहना चाहिये। वास्तवमें 'कृष्ण' और 'गोपी' ये शब्द भी उन्हींकी परिभाषाके हैं।

१-गवाम् इन्द्रियाणां पालनं पुष्टिर्वा तद्वृत्तिभिरेव क्रियते। पुष्पेषु भ्रमर्य इव विषयेषु प्रवृत्ता इन्द्रियवृत्तयस्तद्रसं गृहीत्वा तेनैवेन्द्रियाणां तृप्तिं पुष्टिं च कुर्वन्ति। अन्यथा तेषां वैयर्थ्यापत्तेः क्षीणत्वसम्भावनोत्पद्यते। अतो वृत्तय एव गोप्यः।

२-पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूः। (कठोपनिषद् २।१।१) तथा प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति। (गीता ६।३३)

३-अदृश्यमपि यत्तत्त्वं लौकिकानामगोचरम्। तदेव परितः स्पष्टं विबुधानां प्रतीयते॥ (रश्मिमाला ६१।२)

चित्रध्वजसे चित्रकला

प्राचीनकालमें चन्द्रप्रभ नामके एक राजर्षि थे। भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उन्हें चित्रध्वज नामक सुन्दर पुत्र प्राप्त था। वह बचपनसे ही भगवान्का भक्त था। जब वह बारह वर्षका हुआ, तब राजाने किसी ब्राह्मणके द्वारा उसे अष्टादशाक्षर (**ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**) मन्त्र दिलवा दिया। बालकने मन्त्रपूत अमृतमय जलमें स्नान करके पिताको प्रणाम किया और एक दिन वह सुन्दर पवित्र नवीन वस्त्र तथा आभूषण धारण करके श्रीविष्णु-मन्दिरमें चला गया। वहाँ वह यमुना-पुलिनपर वनमें गोपबालाओंके साथ क्रीडा करते हुए भुवनमोहन श्रीकृष्णका ध्यान करने लगा। फिर तो भगवान्के लिये उसका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठा। भगवत्कृपासे उसे परमा विद्या प्राप्त हुई और उसने स्वप्नमें देखा—

एक दिव्य भवनमें सुवर्णपीठपर समस्त सुलक्षणोंसे युक्त श्यामवर्ण स्निग्ध और लावण्यशाली त्रिभंगललित भगवान् श्रीकृष्णका मनोहर श्रीविग्रह है। सिरपर मयूरपिच्छ सुशोभित है। वे श्रीविग्रहरूप भगवान् मानो अधरोंपर स्थापित स्वर्णवेणु बजा रहे हैं। उनके दोनों ओर दो सुन्दरियाँ विराजमान हैं। चित्रध्वजने इस प्रकार वेशविलासयुक्त श्रीकृष्णको देखकर लज्जावनत होकर उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर श्रीकृष्णने अपनी दाहिनी ओर बैठी हुई लज्जिता प्रियासे हँसते हुए कहा—'मृगलोचने! तुम अपने ही अंशभूत इस बालकके लिये ऐसा चिन्तन करो, मानो यह तुम्हारी-जैसी ही दिव्य अद्भुत युवती है। तुम्हारे और इसके शरीरमें कोई भी भेद नहीं रहना चाहिये। तुम्हारे ऐसा चिन्तन करनेपर तुम्हारे अंग-तेजका स्पर्श पाकर यह बालक तुम्हारे रूपको प्राप्त हो जायगा।'

तब वह कमलनयनी चित्रध्वजके पास जाकर अपने अंगोंके समान उसके समस्त अंगोंका अभेदभावसे चिन्तन करने लगी। उस देवीके अंगोंकी तेजोराशि चित्रध्वजके अंगोंका आश्रय करके उसका वैसा ही निर्माण करने लगी। देखते-ही-देखते वह सुन्दर रमणीय युवती-रूपमें परिणत हो गया। वह रमणी सम्पूर्ण सुन्दर वस्त्र, आभूषण तथा हार-मालादिसे सुशोभित होकर वैसे ही हाव-भावोंसे सम्पन्न स्त्री दीखने लगी। तब एक दीपकसे दूसरे दीपकके जल उठनेकी भाँति देवीशरीरसे उत्पन्न देवीमूर्तिको देखकर उस देवीने लज्जासे संकुचित और यौवन-सुलभ मन्द मुसकानसे युक्त उस नवीन रमणीका हाथ पकड़कर परम आनन्दसे उसे श्रीगोविन्दकी बायीं ओर बैठा दिया। तदनन्तर उस देवीने श्रीभगवान्से कहा—'प्रभो! आपकी यह दासी उपस्थित है, इसका नामकरण कीजिये और इसे आपकी रुचिकी कौन-सी अत्यन्त प्रिय सेवामें नियुक्त किया जायगा, यह भी बता दीजिये।' इसके पश्चात् उसने स्वयं ही उसका 'चित्रकला' नाम रखकर उससे कहा कि 'तुम इस वीणाको लो और सदा-सर्वदा प्रभुके समीप रहकर विविध स्वरोंमें मेरे प्राणनाथका गुणगान किया करो। तुम्हारे लिये यही सेवा है।'

'चित्रकला'ने उसका आदेश स्वीकार करके भगवान् श्रीमाधवको प्रणाम किया और उनकी प्रेयसीके चरणारविन्दकी धूलि लेकर वह युगलस्वरूपके आनन्दवर्धक गुणोंका सुललित स्वरोंमें गान करने लगी। तब आनन्दमय भगवान् श्रीकृष्णने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसका आलिंगन किया। भगवान् श्रीकृष्णके आनन्दमय स्पर्शसे चित्रकला ज्यों ही आनन्द-सागरमें निमग्न हुई कि उसकी नींद टूट गयी। अब तो श्रीकृष्ण-प्रेम-परवश होकर कुमार चित्रध्वज स्वप्नके उस अपार अलौकिक आनन्दका स्मरण करके फुफकार मारकर उच्च स्वरसे रोने लगा। उसका आहार-विहार सब छूट गया। महीनेभर इस प्रकार व्याकुल हृदयसे घरमें रहा, फिर एक दिन अर्धरात्रिके समय श्रीकृष्णको सहचर बनाकर वह घरसे निकल पड़ा और श्रीकृष्ण-प्राप्तिके लिये मुनियोंके लिये भी दुःसाध्य तपस्या करने लगा। इसी महामुनिने देह-त्यागके अनन्तर वीरगुप्त नामक गोपके घर 'चित्रकला' नामसे कन्यारूपसे जन्म लिया। चित्रकला गोपीके कन्धेपर सदा-सर्वदा सप्तस्वर-शोभित मनोहर वीणा रहती है और यह भगवान्के समीप युगल-स्वरूप श्रीराधाकृष्णका नित्य-निरन्तर गुणगान किया करती है। (पद्मपुराण)

व्रजगोपियोंकी योगधारणा

(श्रीप्रेमनारायणजी त्रिपाठी 'प्रेम')

भगवान् श्रीकृष्णके वियोगमें गोपियोंको अधीर जानकर भक्तप्रवर उद्धव भगवान्‌की आज्ञासे उन्हें समझा-बुझाकर आश्वासन देनेके लिये व्रज जाते हैं और वहाँ गोपियोंको ज्ञान-वैराग्यका उपदेश देते हैं। उधर गोपियोंपर इसका विपरीत ही प्रभाव पड़ता है। वे अपने प्यारे मनमोहनको जीवन्मुक्त पुरुषके ब्रह्मदर्शनकी भाँति सर्वत्र देख रही हैं। उन्हें जड़-चेतन-पृथ्वीकी समग्र वस्तुओंमें प्यारे श्रीकृष्णके दर्शन हो रहे हैं। अपने शरीरमें ही सब कुछ देखनेवाली तथा प्यारे मदनमोहनके साथ सदा क्रीडा करनेवाली एक गोपी कहती है—

हौं ही व्रज वृन्दावन मोहीमें बसत सदा,
जमुनातरंग स्यामरंग अवलीनकी।
चहुँ ओर सुंदर सघन बन देखियतु,
कुंजनमें सुनियत गुंजन अलीनकी॥
बंसीवट तट नटनागर नटतु मोमें,
रासके बिलासकी मधुर धुनि बीनकी॥
भरि रही झनक भनक ताल ताननिकी
तनक तनक तामें झनक चूरीनकी॥

(महाकवि देव)

उस गोपीको यकायक प्यारे प्रभुकी रासक्रीडाकी सुधि हो आती है। वह मानो उसीमें प्रभुके साथ नृत्य करके ***'तनक तनक तामें झनक चूरीनकी'*** सुन-सुनकर पागल हो उठती है। उसको रोमांच हो जाता है। गदगद्‌कण्ठसे लीलामयकी लीलाका वर्णन करती-करती वह आप-ही-आप आनन्दाम्बुनिधिमें गोते खाने लगती है। इसी बीच दूसरी गोपी उद्धव महाराजसे कहती है—

निसिदिन स्त्रौननि पियूष सौ पियत रहैं,
छाय रह्यौ नाद बाँसुरीके सुरग्रामकौ॥
तरनितनूजा तीर बन कुंज बीथिनमें,
जहाँ-तहाँ देखती हैं रूप छबिधामकौ॥
कवि 'मतिराम' होत ह्याँ तौ ना हिये तैं नैकु,
सुख प्रेमगातको परस अभिरामकौ।
ऊधौ! तुम कहत वियोग तजि जोग करौ,
जोग तब करैं जो वियोग होय स्यामकौ॥

(महाकवि मतिराम)

अबकी बार यह गोपी श्याममय होकर उछल पड़ती है। उद्धवजीको डाँट बता-बताकर कहती है—'महाराज! यहाँ तो हमें जहाँ-तहाँ सर्वत्र ही प्यारे श्रीकृष्णके दर्शन मिल रहे हैं। उनके अमृतमय वंशीनादसे हमारे कान भरे जा रहे हैं। यमुनाके तीर कुंजमें-वनमें, प्रत्येक स्थलमें वह मनोहर छबि दिखायी दे रही है। अतएव हे उद्धवजी! आप जो हमें श्रीकृष्णप्राप्तिके लिये योगसमाधि सिखाने आये हैं, वह तो व्यर्थ ही है। कारण, हमारे प्यारे कन्हैयाका तो हमसे पलभरको कभी वियोग ही नहीं है। वे तो हमारे साथ हमें यहीं दीख रहे हैं। इतना सुनकर तीसरी गोपी आगे बढ़कर कहने लगी—उद्धवजी!—

प्राननिके प्यारे तनतापके हरनिहारे,
नंदके दुलारे ब्रजबारे उमहत हैं।
कहैं 'पदुमाकर' उरूझे उर अंतर यों,
अंतर चहे हू तैं न अंतर चहत हैं॥
नैननि बसे हैं अंग-अंग हुलसे हैं, रोम
रोमनि लसे हैं निकसे हैं को कहत हैं।
ऊधौ! वै गोबिन्द मथुरामें कोई और, इहाँ
मेरे तो गोबिन्द मोहि मोहिमें रहत हैं॥

(महाकवि पद्माकर)

यह तो इतनी मगन है कि उद्धवजीको भी चक्करमें डाल देती है। कहती है—'उद्धव महाराज! मेरी आँखोंमें वे बसे हैं। मेरे हृदयमें वे समा गये हैं। दूरी चाहनेपर भी दूर नहीं हो सकते, ऐसे लीन हैं। कौन कहता है कि वे कहीं अन्यत्र जाकर बस गये हैं? हे उद्धवजी! तुम्हारे मथुराजीमें वास करनेवाले श्रीकृष्ण कोई और ही होंगे! मेरे प्यारे कृष्ण-गोविन्द तो मेरे रोम-रोममें समाकर यहीं रम रहे हैं।'

धन्य है प्रेम! विमुग्धकारी लीलाधारीकी छबि जब इस प्रकार किसी योगीके हृदयकमलमें वास करने लग जाती है, तब क्यों न वह ***'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई'*** (रा०च०मा० २।१२७।३) बन जाय। धन्य है अलखनिरंजन, संतनसुखदाता, लीलानागर प्रभु श्रीकृष्णको और उनकी प्रेममयी गोपरमणियोंको!

गोपी-प्रेममें अधीरता

(श्रीवियोगी हरिजी)

प्रेमीको धैर्य कहाँ? अरे भाई! उसकी अधीरता ही उसकी धीरता है। आत्यन्तिक विरहासक्तिमें, मिलनकी परमोत्कण्ठामें प्रेमकी जो गहरी अधीरता होती है, उसका आनन्द विरले ही भाग्यवान् जानते हैं। उस अकथनीय अवस्थामें एक क्षण एक कल्पके समान बीतता है। दिलमें एक अजीब छटपटाहट पैदा हो जाती है, आँखें एक दर्द-भरे मीठे-से नशेमें मस्त हो झूमने लगती हैं, मनपर अपना काबू नहीं रहता, ऐसा लगता है,मानो कहीं उड़ा-सा जा रहा है। कब आयेगी वह घड़ी, कब मिलेगा वह प्रियतम, कब बुझेगी इन आँखोंकी तड़पभरी प्यास, कब मौजकी लहर लहरायेगी दिलके दरियामें—आदि भावनाओंमें जिस किसीका मन आतुर और अधीर हो गया, उसकी प्रेम-साधना सफल है, उसका जीवन धन्य है। प्रेमाधीरतामें बस, कब-ही-कब दिखायी देता है। यहाँतक कि 'अब' भी उस 'कब' के गहरे रंगमें रँग जाता है। ऊँचे प्रेमी कबीरने प्रियतमकी दर्शनोत्कण्ठामें प्रेमाधीरताका कैसा सजीव चित्र खींचकर रख दिया है। कहते हैं—

यहि तनका दिवला करौं, बाती मेलौं जीव।
लोहू सींचौं तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव॥

वह मिले तो मैं यह सब भी करनेको तैयार हूँ। इस देहका दीपक बनाकर उसमें जीवकी बत्ती रखूँगी और अपने हृदयरक्तसे उस प्रेम-ज्योतिको सदा सींचती रहूँगी! देखूँ, इस दियेके उजेलेमें अपने प्रेमास्पदका मुख कब देखनेको मिलता है। हा! कबतक उसकी प्रतीक्षा करूँ।

देखत-देखत दिन गया, निसि भी देखत जाय।
बिरहिन पिय पावै नहीं, केवल जिय घबराय॥

(कबीर)

क्या करूँ, क्या न करूँ। कैसे पाऊँ अपने उस प्यारेको—

जो घन आनँद ऐसी रुची तौ कहा बस है, अहा प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि, हाय! तुम्हें, धरनीमें धँसौं कै अकासहिं चीरौं॥

एक व्रजांगनाकी प्रेमाधीरता देखते ही बनती है। एक दिन, वनमें बलराम और श्रीकृष्णको गायें चराते-चराते भूख लग आयी। उस दिन मैया यशोदाने समयपर छाछतक न भेजी। थोड़ी दूरपर कुछ ब्राह्मण यज्ञानुष्ठान कर रहे थे। ग्वालबालोंने श्रीकृष्णके कहनेपर उन याजकोंसे कुछ भोजन माँगा, पर वे कोरे कर्मठ ब्राह्मण ग्वालोंके लड़कोंको यज्ञकी रसोई भला देने चले? क्रोधित हो बोले—हट जाओ सामनेसे। क्यों अपवित्र दृष्टि डालते हो? यह रसोई हमने तुम ग्वालोंके छोकरोंके ही लिये तो राँधी है।

यज्ञ हेतु हम करीं रसोई। ग्वालन पहले देहिं न सोई॥

बेचारे बालक निराश होकर लौट आये; श्रीकृष्णने कहा, भैया! तुम तो उनकी स्त्रियोंसे जाकर माँगो। वे अवश्य देंगी, क्योंकि—

उनके मन दृढ़भक्ति हमारी। मानि लैहिं वै बात तुम्हारी॥

हुआ भी वही। बड़े ही प्रेमसे अनेक प्रकारके पकवान ले-लेकर द्विज-पत्नियाँ स्वयं ही राम-कृष्णको अपने हाथसे भोजन कराने चलीं। कठोर कर्मठोंने बहुत रोका, पर उन प्रेम-मूर्ति द्विजांगनाओंने उनकी एक न सुनी। और तो सब सविनय अवज्ञा करके चली गयीं, केवल एक ब्राह्मणी अपने पतिदेवके धर्म-पाशमें फँस गयी। बेचारी पतिके पैरोंपर नाक रगड़-रगड़कर कहने लगी—

देखन दै वृन्दावन-चंद।
हा हा कंत, मानि बिनती यह, कुल-अभिमान छाँड़ि मतिमंद॥
कहि, क्यों भूलि धरत जिय औरै जानति नहिं पावन नँदनंद।
दरसन पाय आयहौं अबहीं, हरन सकल तेरे दुखद्वंद॥

(सूर)

वृन्दावनचन्द्र श्यामसुन्दरकी झलक नेक देख आने दो। उस प्यारे गोपाललालको यह कटोराभर केसरिया दूध पिला आने दो। सभी सहेलियाँ तो गयी हैं। इस मिथ्या कुलाभिमानमें क्या रखा है। छोड़ क्यों नहीं देते यह दम्भाचार? अरे, तुम इतने बड़े विद्वान् होकर भी एक मूर्खकी भाँति बात कर रहे हो। मनमें पाप विचारते हो! बालकृष्णमें मेरी पवित्र प्रीतिको तुम शायद किसी और दृष्टिसे देखते हो। क्या कहूँ तुम्हारी बुद्धिको! छोड़ो, जाने दो मुझे, आर्यपुत्र! उस प्राणप्यारे गोपालका मुखचन्द्र मुझे देख आने दो। हा! मैं कैसे जाऊँ। नन्द-

नन्दनको कैसे देख आऊँ!

रति बाढ़ी गोपाल सों।
हा हा! हरि लों जान देहु प्रभु, पद परसति हौं भाल सों॥
सँगकी सखी स्याम सनमुख भई, मैं हिं परी पसु-पाल सों॥
परबस देह, नेह अंतरगत, क्यों मिलौं नयन-बिसाल सों॥

(सूर)

वहाँ संगकी सब सखियाँ अपने-अपने हाथसे प्यारे कृष्ण और बलरामको प्रेमसे भोजन करा रही होंगी। हाय! मैं ही अकेली यहाँ इस पशु-पालके पाले पड़ी छटपटा रही हूँ। भले ही यहाँपर पराधीन देह तड़पा करे, हृदयके भीतर तो कृष्ण-प्रेमकी आग जलती ही रहेगी। उस आगको कौन बुझा सकता है!

पिय, जनि रोकहि अब जान दै।
हौं, हरि-बिरह-जरी जाचति हौं, इतनी बात मोहि दान दै॥
बेनु सुनौं, बिहरत बन देखौं, यह सुख हृदय सिरान दै।
पुनि जो रुचै सोइ तू कीजै, साँच कहति हौं आन दै॥
जो कछु कपट किये जाचति हौं, सुनहि कथा हित कान दै।
मन क्रम बचन 'सूर' अपनो प्रन राखौंगी तन मन प्रान दै॥

नाथ! अब मत रोको। अब तो मुझे तुम जाने ही दो। मैं कृष्णके विरहमें, हाय! कबसे जल रही हूँ। तुमसे बस, एक ही दान माँगती हूँ, न दोगे क्या? वनमें उस वृन्दावन-विहारी गोपालको देख और उसकी बाँसुरी सुनकर मुझे अपना हृदय ठंडा कर लेने दो। इतना ही तुमसे चाहती हूँ। फिर जो तुम्हारे मनमें आये सो करना। यह मैं निष्कपटभावसे सौगन्ध खाकर कहती हूँ। न जाने दोगे तो भी अपना प्रण तो पूरा करूँगी ही। तन, मन और प्राण भी देकर मैं प्यारे मदन-मोहनसे तो मिलूँगी ही। हा! कबतक तुम्हें समझाऊँ। मिलनकी अवधि ही टली जाती है। लो, यह देह ले लो। तुम्हारा दावा सिर्फ इसीपर है न? सो, इस चामकी देहको सँभालकर रख लो। प्राण तो मेरे उस प्राणप्रिय व्रजचन्द्रके ही चरणोंमें जाकर बसेंगे—

कहँ लगि समुझाऊँ 'सूरज' सुनि, जाति मिलनकी औध टरी।
लेहु सँभारि देह पिय, अपनी, बिन प्राननि सब सौज घरी॥

प्रेमाधीरता रही भी यही करके—

चितवत हुती झरोखे ठाढ़ी, किये मिलन कौ साजु।
'सूरदास' तनु त्यागि छिनकमें तज्यौ कंत कौ राजु॥

धन्य प्रेममूर्ति व्रजांगने!

× × ×

आत्यन्तिक विरहासक्तिमें तो धैर्यका भी धैर्य छूट जाता है। यह अवस्था ही कुछ ऐसी होती है। उस शरत्पूर्णिमाको, जब कालिन्दीकूलपर श्रीकृष्णने बाँसुरी बजायी थी, ऐसी कौन व्रजवनिता थी, जो स्वजन-परिजनोंके लाख रोकनेपर भी वहाँ जानेसे रुकी हो? अहो! वह प्रेमाधीरता!

श्रीव्रज-रत्न प्राणधन हरिको, चल सखि! चल, देखें सत्वर।
हैं कदम्बके तले नाचते, वेणु बजाते राधावर॥
घनश्यामकी ध्वनि सुन क्योंकर मैं चातकी धैर्य धारूँ?
क्यों न प्राण-प्यारेके ऊपर अपना तन, मन, धन वारूँ॥

(मधुप)

कैसी खिँची जा रही हैं व्रजबालाएँ उस ओर!

सुनत चलीं व्रज-वधू गीत-धुनि कौ मारग गहि।
भवन-भीत द्रुम-कुंज-पुंज कितहूँ अटकीं नहिं॥
ते पुनि तेहि मग चलीं रँगीली तजि गृह-संगम।
जनु पिँजरन तें उड़े छुड़े नव-प्रेम-विहंगम॥
सावन-सरित न रुकै करौ जो जतन कोउ अति।
कृष्ण हरे जिनके मन, ते क्यों रुकैं अगम गति?

(नन्ददास)

और निर्दय-निठुर स्वजन-सम्बन्धियोंने जिन व्रजबालाओंको किसी तरह काल-कोठरियोंमें बन्द कर रखा था, उनकी दशा यह हुई—

जे रुकि गईं घर अति अधीर गुनमय सरीर-बस।
पुन्य-पाप-प्रारब्ध-रच्यो तन नाहिं पच्यो रस॥
परम दुसह श्रीकृष्ण बिरह-दुख व्याप्यौ जिनमें।
कोटि बरस लगि नरक भोगि अघ भुगते छिनमें।
पुनि रंचक धरि ध्यान पीय परिरंभन दिय जब।
कोटि स्वर्ग-सुख भोगि छिनहिं मंगल कीनों सब॥

(नन्ददास)

उस एक क्षणकी विरह-व्याकुलताका तनिक ध्यान तो करो। करोड़ों वर्षोंके दु:खोंका लय हो जाता है, उस मिलन-उत्कण्ठामें, उस अतुलनीय प्रेमाधीरतामें। आह! कैसी होती होगी वह आतुरता! कितने प्रेमियोंके प्राण-पक्षी न उड़ा दिये होंगे उस दयाहीना अधीरताने। पर प्रेमी तो बलि होनेके अर्थ ही जीवन धारण करते हैं। ऐसे अधीर प्रेमातुर प्राणी कबतक जीवित रह सकते हैं? व्यर्थ ही प्रेमातुरोंको दोष देते हो। कहाँतक बेचारे धैर्य धारण किये रहें। धैर्यकी भी तो कोई हद

होती है। बेचारे विरही अपने प्राणविहंगमोंको कबतक बाँधकर रखे रहें। क्यों न उनके हाथोंसे छूटकर उड़ जायँ उनके छटपटाते हुए प्राण-पक्षी—

बहुत दिनानकी अवधि आस-पास परे
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जानकों;
कहि-कहि आवन छबीले मन-भावन कौ,
गहि-गहि राखति ही दै-दै सनमान कों।
झूठी बतियानकी पत्यानी तें उदास ह्वैकें,
अब ना घिरत 'घनआनँद' निदान कों।
अधर लगे हैं आनि करिकैं पयान प्रान,
चाहत चलन ए सँदेसो लै सुजान कों॥

इतना धीरज क्या कुछ कम है, जो इस बेचारी कृष्णानुरागिणी गोपिकाने वहाँतक सँदेसा ले जानेके लिये अपने आतुर प्राणोंको ओठोंपर कुछ देर तो ठहरा लिया? अरे भाई? प्रेमातुरोंको इतना ही बहुत है। अब भी प्रियतम चाहें तो उस अभागिनीके प्राणोंको अधरोंसे लौटाकर उसके हृदयमें पुनः बसा सकते हैं। प्यारे कृष्ण! तनिक सुनो तो, वह क्या कह रही है। हाय री प्रीति!

एक बिसासकी टेक गहैं लगि आस रहे बस प्रान-बटोही।
हौ 'घनआनँद' जीवन-मूरि, दई कित प्यास न मारति मोही॥

बस, अब और क्या कहूँ!

'हरीचन्द' एक व्रत नेम प्रेम ही कौ लीनों,
रूपकी तिहारे, व्रज-भूप! हौं उपासी हौं।
ज्याय लै रे, प्राननि बचाय लै लगाय अंक,
एरे नन्दलाल! तेरी मोल लई दासी हौं॥

सिद्ध सखीदेहसे नित्यलीलामें प्रवेश

तीन प्रकारके प्रेमी भक्त होते हैं—नित्यसिद्ध, कृपासिद्ध और साधनसिद्ध। नित्यसिद्ध वे हैं, जो श्रीकृष्णके नित्य परिकर हैं और श्रीकृष्ण स्वयं लीलाके लिये जहाँ विराजते हैं, वहीं वे उनके साथ रहते हैं। कृपासिद्ध वे हैं, जो श्रीभगवान्की अहैतुकी कृपासे प्रेमियोंका संग प्राप्त करके अन्तमें उन्हें पा लेते हैं और साधनसिद्ध वे हैं, जो भगवान्की कृपा प्राप्त करनेके लिये भगवान्की रुचिके अनुसार भगवत्प्रीत्यर्थ प्रेमसाधना करते हैं। ऐसे साधकोंमें जो प्रेमके उच्च स्तरपर होते हैं, किसी सखी या मंजरीको गुरुरूपमें वरण करके उनके अनुगत रहते हैं। ऐसे पुरुष समय-समयपर प्राकृत देहसे निकलकर सिद्धदेहके द्वारा लीला-राज्यमें पहुँचते हैं और वहाँ श्रीराधा-गोविन्दकी सेवा करके कृतार्थ होते हैं। ऐसे भक्त आज भी हो सकते हैं। कहा जाता है कि महात्मा श्रीनिवास आचार्य इस स्थितिपर पहुँचे हुए भक्त थे। वे सिद्ध सखीदेहके द्वारा श्रीराधा-गोविन्दकी नित्यलीलाके दर्शनके लिये अपनी सखी-गुरुके पीछे-पीछे श्रीव्रजधाममें जाया करते। एक बार वे ऐसे ही गये हुए थे। स्थूलदेह समाधिस्थितकी भाँति निर्जीव पड़ा था। तीन दिन बीत गये। आचार्यपत्नीने पहले तो इसे समाधि समझा; क्योंकि ऐसी समाधि उनको प्रायः हुआ करती थी, परंतु जब तीन दिन बीत गये, शरीर बिलकुल प्राणहीन प्रतीत हुआ, तब उन्होंने डरकर शिष्य भक्त रामचन्द्रको बुलाया। रामचन्द्र भी उच्च स्तरपर आरूढ़ थे, उन्होंने पता लगाया और गुरुपत्नीको धीरज देकर गुरुकी खोजके लिये सिद्धदेहमें गमन किया। उनका भी स्थूलदेह वहाँ पड़ा रहा। सिद्धदेहमें जाकर रामचन्द्रने देखा—श्रीयमुनाजीमें क्रीड़ा करते-करते श्रीराधिकाजीका एक कर्णकुण्डल कहीं जलमें गिर गया है। श्रीकृष्ण सखियोंके साथ उसे खोज रहे हैं, परंतु वह मिल नहीं रहा है। रामचन्द्रने देखा सिद्ध-देहधारी गुरुदेव श्रीनिवासजी भी सखियोंके यूथमें सम्मिलित हैं तब रामचन्द्र भी गुरुकी सेवामें लगे। खोजते-खोजते कुछ देरके बाद रामचन्द्रको श्रीजीका कुण्डल एक कमलपत्रके नीचे पंकमें पड़ा मिला। उन्होंने लाकर गुरुदेवको दिया। उन्होंने अपनी गुरुरूपा सखीको दिया, सखीने यूथेश्वरीको अर्पण किया और यूथेश्वरीने जाकर श्रीजीकी आज्ञासे उनके कानमें पहना दिया। सबको बड़ा आनन्द हुआ। श्रीजीने खोजनेवाली सखीका पता लगाकर परम प्रसन्नतासे उसे चर्वित ताम्बूल दिया। बस, इधर श्रीनिवासजी तथा रामचन्द्रकी समाधि टूटी, रामचन्द्रके हाथमें श्रीजीका चबाया हुआ पान देखकर दोनोंको बड़ी प्रसन्नता हुई।

'ताहि अहीर की छोहरियाँ.....'

(डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

एक बार व्रजजीवन नीलमणि अत्यन्त प्रात:काल ही जगकर अनेक प्रकारके बाल-चापल करके मैयाको खिझाने लगे। नन्दरानीने दुलारभरे शब्दोंमें उन्हें बहुत समझाया, बहुत मनुहार की—'कनुँ, उतपात मत कर, जा स्नानगृहमें जाकर हाथ-मुँह धो और वस्त्राभूषण धारणकर पौरिके बाहर सखाओंमें जाकर क्रीडा कर। आज मुझे बहुत काम है—मुझे उलझा मत'—पर कन्हैयाने मैयाकी एक न सुनी। वे बार-बार मैयाका अंचल पकड़कर उन्हें शय्यामें चलकर लोरी सुनाते हुए थपकी देकर सुलानेका हठ कर रहे थे। व्रजेन्द्र-गेहिनीने जब उनका यह असमयका अनुरोध स्वीकार नहीं किया तब तो माखनचोर खीज ही गये और क्रुद्ध होकर आँगनमें रखी सभी वस्तुएँ उठा-उठाकर इधर-उधर फेंकने लग गये। 'अरे! यह तो बड़ा धृष्ट और दुर्दम्य हो रहा है, इस अदान्तात्माको कुछ भय दिखाना चाहिये'—ऐसा सोचकर यशोदाने पासमें पड़ी नन्दरायकी वेत्रकी छड़ी उठायी और उस नटखटको डरानेके लिये कृतक-क्रोधका नाट्य करते हुए पकड़नेको दौड़ीं। आज रानीमाता (श्रीरोहिणीजी) अकेले ही यमुना-स्नानको चली गयीं थीं और दाऊदादा (श्रीबलरामजी) बाबा और गोप-सखाओंके साथ खिरक (गोष्ठ)-में थे। नन्दनन्दन तो मानो इसी अवसरकी ताकमें थे। आज उन्हें अपनी बाललीलामें कुछ नवीन रंग भरने थे—वात्सल्योत्कण्ठिता किसी व्रजपुरन्ध्रीको अपनी परम मनोहर लीलाके द्वारा कृतार्थ करना था, अस्तु, वे वैसे ही मुख्य द्वारसे भवनसे बाहर दौड़ पड़े। योगमायाके लीलासंविधानकने दासियोंको भी इस अवसरपर वहाँसे दूर कार्यान्तर-संलग्न कर रखा था—मैयाको हारकर लौटना पड़ा और श्यामसुन्दर मैयासे डरनेका अभिनय करके यमुनातटकी ओर भाग गये। बहुत दिन चढ़ गया, इधर-उधर भटकते रहनेपर अब उन्हें भूखने सताया तब उस बड़भागिनीके द्वारमें आकर किसी शालीन याचककी भाँति द्वारसे ही पुकार लगायी, स्वर पहचानकर वह दौड़ी-दौड़ी भागी आयी। कन्हाईने अपनी सारी व्यथा-कथा सुनायी और और दधि-नवनीत न सही, तनिक-सा मही (छाँछ) पिला देनेका ही अनुरोध करने लगे—

करत हरि ग्वालिन सौं मनुहार।
बलि जाऊँ री माय! मया करि, मेरौ बदन निहार॥
आजु भोर ही तैं काहू की, ऐसी नजर लगी री।
बिनु कारन मोय मारन दौरी, मैय्या नेह पगी री॥
मैं हू रूठि भवन तें भाग्यो, रह्यो न वाकौ हटक्यौ।
तेरी सौं भरि द्यौस कलिंदी-तट बंसीबट भटक्यौ॥
अब लागी अति भूख सूखि गयौ, कंठ प्यास के मारे।
'कहा करौं'-तब सोच-समुझि, हौं आयौ तेरे द्वारे॥
तनक लाय नवनीत प्रीति सौं, दैरी! दया दिखाय।
नाँहि त नैक दही ही अपनौ, कै कछु मही मँगाय॥
देखि स्याम की जुगुति 'विनय' सुनि, गोपी मन मुसक्याँनी।
'मिलत न कछु बिनु मोल लाल! कहुँ' कहि बिनु मोल बिकानी॥

'बिना मूल्य दिये कहीं भी कुछ नहीं मिलता'—प्रेमभरी गोपीका यह टका-सा उत्तर सुनकर और इसका अभिप्राय समझकर, नवनीतप्रियने गोपीके प्रत्यग्रभावित मधुर हैयङ्गवीनके आस्वादन-हेतु मूल्य देनेका भी मन बना लिया पर ग्वालिनीकी इस स्वार्थभरी—अचरजभरी उक्तिपर टिप्पणी करते हुए मूल्य न दे पानेकी अपनी विवशता बखानकर उसके मनमें कुछ दया—कुछ मृदुता उपजानेका प्रयास करने लगे। सत्य भी तो है, उन तत्सुखसुखित्व-भाविता चित्तवृत्तिरूपा महाभागाओंके सम्पिण्डित स्नेहसारसर्वस्वरूप नवनीतका मूल्य दे पाना क्या निखिलब्रह्माण्डाधिनायकके भी वशकी बात है?—

मोल माखन कौ माँगत हाय।
मैं बालक कछु पास न मेरे, देउँ कहाँ तैं लाय॥

कौतूहल-प्रिया व्रजनागरी द्रवित नहीं हुई और उसने अपने नवनीतके मूल्यको चुकानेका अद्भुत प्रस्ताव दे डाला—

मोल नाँहि, तौ चलहु गोठ, कछु होय न यों मुख हेरे।
दै उठवाइ खाँच गोमय की, धरवावहु सिर मेरे॥

'नीलमणि! लाल, कोई बात नहीं, तू मेरे माखनका मूल्य नहीं दे सकता तो न सही, कुछ श्रमदान तो कर सकता है न? माखन तो श्रम करनेपर ही बन पाता है। देख, ब्राह्ममुहूर्त्तसे ही जगकर हम दधिमन्थन करती हैं, दिन-रात गौओंकी सेवा करती हैं—उन्हें गोष्ठमें गोग्रास-शष्पदानादिसे सत्कृत करती हैं और खाँच (टोकरी) भरकर गोमय (गोबर) तथा गोमूत्र सिरमें ढोकर पुष्पवाटिकामें बने विशाल गर्तमें निक्षिप्त करती हैं। गोष्ठकी झाड़ू-बुहारी करती हैं और इस सबके साथ-साथ यमुनाजीसे कलश भर-भरकर जल लाना और घरके अनेक काम भी हमें करने पड़ते हैं। हम सभी तेरी मैयाके समान 'व्रजरानी' तो हैं नहीं कि हमारे ये सब काम सेवक-सेविकाएँ कर दें, अत: कनुँ! यदि तू सचमुच मेरा हैयङ्गवीन (कलके जमाये दहीको मथकर बनाया गया प्रत्यग्र नवनीत) आरोगना चाहता है तो चल; गोष्ठमें चलकर बस, केवल एक छोटा-सा श्रम करते जाना। वह यह कि मैं गोष्ठकी सफाई करके जब गोबरकी टोकरियाँ भर-भरकर उन्हें बाहर ले जाऊँगी, तब तुम प्रत्येक बार सहारा देकर मेरे सिरपर खाँचको रखवाते जाना। इसके बदले मैं तुम्हें उतने ही माखनके लौंदे (गोले) दूँगी, जितनी बार टोकरी उठवाओगे—

जितिक बार तुम खाँच उठावहु, करि स्त्रमु नंद दुलारे।
उतने ही नवनीत पिंड, गनि राखहुँ हाथ तिहारे॥

—कन्हाईने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। अब प्रश्न आया कि टोकरी उठानेकी संख्याका निर्धारण कैसे किया जाय? क्योंकि गिनती तो दोनोंमें-से एकको भी नहीं आती! तब चतुरा-गोपीने ही समस्याका समाधान सुझाया—

पै मैं तौ कछु पढ्यौ न अच्छर, गिनती कुँअर कन्हइया।
या तैं रेख लगाइ कपोलनि, गनवावहुँगी भैय्या॥
होय तुमहिं स्वीकार साँवरे! सौदा करि सचु पाओ।
स्त्रमु करि, भरि-भरि हाथ, चाह भरि मेरौ माँखन खाओ॥

अर्थात् 'तू जितनी बार मेरे सिरपर टोकरी रखवानेमें सहायता करेगा, मैं उतनी आड़ी-तिरछी गोमयकी रेखाएँ क्रमश: तेरे कपोलोंपर लगाती जाऊँगी। कार्य समाप्त हो जानेपर फिर किसी पढ़े-लिखे सयानेके पास चलकर उन रेखाओंकी गणना करा ली जायगी और उतने ही नवनीत-पिण्ड मैं घरपर चलकर तुम्हें दे दूँगी। बोलो, स्वीकार है न यह प्रस्ताव?'

—श्यामघन क्या करते? जन्म-जन्मान्तरसे अपना भावसर्वस्व समर्पित करनेको जो उत्कण्ठित है—प्रतीक्षारत है, उस हृदयकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है? वह अखण्ड-एकरस, निर्गुण-निर्लेप, असंग-ब्रह्म इन्हीं भावमय प्रीतिपथिकोंके ही तो आह्वानपर 'सगुण-साकार-लीलापुरुषोत्तम' बनकर आया है। दिनभरके उपोषित बेचारे नीलसुन्दर, गोपीके साथ उसकी गोशालामें जाकर टोकरियाँ उठवाने लगे। एक हाथसे प्रतिपद उत्पात करती धटी (खिसकती हुई कछनी)-को सम्हालते, दूसरे हाथसे गोमयकी खाँच गोपीके सिरपर सप्रयास रखवाते साँवरेका कमल-कोमल मुख वैसे भी अरुणाभ हो रहा है, उसपर कपोलोंमें यह गोमयकी हरी-पीली रेखाओंका अंकन और प्रेमभरे गुलचाओंकी मार! माखनचोरको कैसा नाच नचा डाला इस निठुर-नागरीने? अहो! अद्भुत-अकल्पित शोभा है, गोपीके नेत्रमधुप इस अमन्द सौन्दर्यमकरन्दका नि:स्पन्द पान कर रहे हैं—

बिबस लोभ-माखन-चाखनके, हरि तँह खाँच उठाई।
गुलचा खाय लाल-गालनि पै, गोमय-लिपि लिखवाई॥

अव्यक्तरूपसे व्रजके नभोमण्डलमें स्थित वृन्दारकवृन्द (देवताओंके समूह), सिद्धगण और योगिजन इस झाँकीको देखकर आश्चर्यमें पड़कर देह-गेहकी सुधि विस्मृतकर 'जय-जयकार' करते हुए नन्दनकाननके कुसुमोंकी वर्षा कर रहे हैं, पर वह प्रेमपगी तो मुग्ध-सी भावसमाधिमें लीन हो रही है—

मख-भोजन नैवेद बेद-मंत्रन जुत गन तन जोई।
नाचत-जाँचत ब्रजमें माँखन-चाखन हित हरि सोई॥

वेदज्ञ ब्राह्मणोंके मन्त्रपूत याज्ञिक आवाहन भी जिन्हें सदा आकृष्ट नहीं कर पाते, वही भक्तवत्सल श्रीहरि व्रजमण्डलमें प्रेमविवश होकर तनिकसे माखनके लिये कभी नृत्य करते हैं और कभी याचक बननेमें भी

संकोच नहीं करते। श्रीकृष्णप्रेम-भावितात्मा भक्तकवि रसखानने ठीक ही तो कहा है—

सेस, गनेस, महेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद से सुक ब्यास रटैं, पचिहारे, तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ, छछियाभरि छाछ पै नाच नचावैं॥

अन्तमें इन्हीं गोपकन्याशिरोमणि वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकारानीके श्रीचरणोंका स्मरण करता हूँ—

सकल-स्तुतिसदन नुतसहसवदन
मदनकदन, दुरितनिकंदिनी के हैं।
सिव-सनकादि-सुक-नारद-सुसिद्धगन-
वंदितविबुध, महाभावस्यंदिनी के हैं॥
तरुन-अरुन मानो कलपलता के दोऊ
पल्लव अमंद, व्रजचंद-चंदिनी के हैं।
'विनय' रसिक-मन हरन सरन दैन
नीके ये चरन वृषभानुनंदिनी के हैं॥

गोपांगनाओंकी मधुर अभिलाषाएँ

सखि! जाने कहाँ ते अचक आय मोरि गागर फोरि गयौ॥
नई चुनरिया चीर-चीर करि निपट निडर पुनि आँखि दिखावै,
देख बीर! अति कोमल बैयाँ दोउ कर पकर मरोरि गयौ॥
मो ते कहै सुन एरी सुंदरी, तो समान ब्रज सुघर न कोऊ!
नख-सिख लौं छबि निरखि-परखि कैं सघन कुंज की ओर गयौ॥
कहँ लग कहौं कुचाल ढीठ की, नाम लेत मेरौ जिया काँपत है,
'नारायन' मैं घनौं बरज रहि, मोतियन की लर तोरि गयौ॥

श्यामसुन्दर अचानक आकर गोपीकी गागर फोड़ चले। उसकी नयी चुनरीको चीर-चीरकर बाँह मरोड़ गये, उसे व्रजमें सबसे अधिक सुन्दरी बताकर उसका नख-शिख निरख-परखकर सघन कुंजकी ओर चले गये और जाते समय उसके हजार रोकते-रोकते मोतियोंका हार भी तोड़ गये। गोपी प्रणयकोपसे श्यामसुन्दरको 'लँगर' कहकर अपनी सखीको सब हाल सुना रही है।

धन्य हो तुम व्रजकी गोपियो, जो तुम्हारे लिये श्यामसुन्दर स्वयं पधारते हैं और अपने हाथों तुम्हारी गागर फोड़ जाते हैं। क्यों न हो? तुमने जो इसका अधिकार प्राप्त कर लिया है! इस लोक और परलोकको सारी भोग-वासनाओंके और जागतिक मोह-ममता, अभिमान-अहंकार, राग-रंग और नीति-रीति आदि समस्त विकारोंके विषभरे कुरससे अपनी गागरको बिलकुल खाली करके और कठिन नियम-संयमकी पवित्र सुधाधारासे उसे अच्छी तरह धोकर तुमने उसमें मधुर गोरस—दिव्य प्रेम-रस भर लिया है और वह मधुर रस भरा भी है तुमने केवल श्रीश्यामसुन्दरको आप्यायित करनेके लिये ही! तभी तो प्रेमसुधाके प्यासे तुम्हारे परम प्रियतम श्यामसुन्दर नटवर-वेषमें बड़ी साधनासे संचित तुम्हारे मधुरातिमधुर प्रेमरसका पान करनेके लिये तुम्हारे समीप दौड़े आये हैं। समस्त विश्वको आनन्दित करनेवाले उस मधुर दिव्य प्रेमरसको भला, वे तुम्हारी नन्ही-सी संकुचित गगरियामें कैसे रहने दें। तुम्हारी गागर फोड़ डालते हैं और अपनी अनन्त महिमासे तुम्हारे प्रेमरसको (परिमाण और माधुर्य—दोनोंमें) अनन्तगुना बनाकर अनन्त मुखोंसे स्वयं उसे पान करते हैं और अनन्त हाथोंसे जगत्के अनन्त जीवोंको बाँट देते हैं।* सारे जगत्को पवित्र प्रेमका दान करनेवाली गोपी! तुम धन्य हो!

अहा! श्रीकृष्ण निपट नि:शंक होकर तुम्हारी नयी चुनरी चीर डालते हैं! गोपी! तुम इससे नाराज क्यों होती

* परमपदपर पहुँचे हुए प्रेमस्वरूप प्रेमी भक्तोंका मधुर प्रेमरस ही भगवान्के द्वारा जगत्में विस्तृत होकर मातृप्रेम, पितृप्रेम, मातृ-पितृभक्ति, धर्मप्रेम, विश्वप्रेम, देशप्रेम, पति-पत्नीप्रेम, मैत्रीप्रेम आदि नाना भावोंमें पात्रानुसार परिणत होता हुआ क्रमशः शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्यभावमें पहुँचकर फिर अपने उद्गमस्थानकी ओर अग्रसर होता है और अन्तमें मधुर प्रेमके रूपमें परिणत हो जाता है। इस प्रकारके गुणरहित, कामनारहित, प्रतिक्षणवर्धमान, सूक्ष्मतर, अनुभवरूप, अविच्छिन्न भगवत्प्रेमकी नित्य निर्मल और दिव्य धाराका जिसमें पर्यवसान होता है, वही प्रेमका अनिर्वचनीय स्वरूप है और वह भगवान्से सर्वथा अभिन्न है।

हो? सच बताओ, क्या तुमने यह चुनरी इसी कामनासे नहीं ओढ़ी थी कि श्यामसुन्दर आयें और तुम्हारी इस दुनियावी चुनरीके टुकड़े-टुकड़े कर डालें? तुम तो सच्चिदानन्दघन नित्य-नवकिशोर श्रीकृष्णकी प्रिया सदा सुहागिन हो न? फिर तुम इस अनित्य सुहागका परिचय देनेवाली दुनियावी चुनरीको कैसे ओढ़े रहती? तुम्हें तो उस दिव्य चुनरीकी चाह है, जो कभी किसी भी कालमें न पुरानी होती है और न उतरती ही है। हाँ, तुम्हारा यह अनोखा नाज अवश्य है कि तुम इस दुनियावी चुनरीको अपने हाथों नहीं फाड़ती। तुम्हारे प्रेमबलसे यह काम भी श्रीकृष्णको ही करना पड़ता है। तुम्हारे मार्गका अनुसरण करती हुई गिरधर-गोपालकी मतवाली मीराने तो अपने ही हाथों दुनियावी चुनरीके टूक-टूक कर डाले थे। 'चुनरी के किए टूक, ओढ़ लीन्हीं लोई।'

गोपीके दिलके खुले दरवाजेपर—एकमात्र श्रीकृष्णके लिये ही खुले द्वारपर श्रीकृष्णको संकोच या डर किस बातका हो? हाँ, वहाँ तो श्रीकृष्ण अवश्य सकुचा जाते हैं—बल्कि जाकर भी वापस लौट आते हैं, जहाँ भीतरी दिलका दरवाजा बन्द होता है या उसमें दूसरोंको भी जानेकी अनुज्ञा होती है; पर तुम्हारा तो सभी कुछ श्रीकृष्णका है न? तुम तो अपना तन-मन-धन, लोक-परलोक, सर्वस्व श्रीकृष्णके चरणोंपर ही न्योछावर कर चुकी हो न? तुम्हारे सब कुछके एकमात्र स्वामी—आत्माके भी आत्मा केवल श्रीकृष्ण ही तो हैं। फिर वे अपनी निजकी सम्पत्तिपर अधिकार करनेमें 'निपट निडर' क्यों न हों? और क्यों न तुम्हारी प्रेमभरी विपरीत चेष्टापर प्रणयकोप करके आँखें दिखायें?

ओहो! श्रीकृष्णने अपने दोनों करकमलोंसे पकड़कर तुम्हारी अति कोमल बाँहोंको मरोड़ दिया! अरे—विषयोंकी गुलामीमें लगे हुए इन पामर प्राणियोंकी भुजाएँ न जाने किन-किन पातकी चरणोंकी सेवामें लगी हैं! न जाने अबतक इन हमारी भुजाओंने कैसे-कैसे दूषित हृदयोंका आलिंगन कराया है! हमारी ये असती भुजाएँ कभी प्यारे श्रीकृष्णकी सेवाके लिये नहीं ललचायीं! प्रियतम श्यामसुन्दरको अँकवारमें भरनेके लिये आकुल होकर ये कभी नहीं फैलीं। गोपी! तुम्हारी भुजाएँ तो सती हैं, वे विषयोंसे सर्वथा विमुख हैं। वे एक श्रीकृष्णको छोड़कर और किसीके लिये कभी नहीं फैलतीं। इसीसे

श्रीकृष्ण आते हैं और तुम्हारी उन बाँहोंको पकड़कर, अहाहा! अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर तुम्हें अपने हृदयके एकान्त मन्दिरमें विराजित कर लेना चाहते हैं। अनादिकालसे जीवकी जीवनधारा जिस अचिन्त्यके हृदयमें प्रवेश करनेके लिये, जिस अनन्त आनन्दसागरमें अपनेको मिलाकर अनन्तरूप बन जानेके लिये ही बह रही है, क्या उस अचिन्त्य हृदयमें प्रवेश करना तुम्हें अवांछनीय है? नहीं, नहीं, अवांछनीय क्यों होता? पर तुम सकुचाती हो! यद्यपि तुम परम शुद्धा हो, इतनी पवित्र हो कि तुम्हारी चरणधूलि बड़े-से-बड़े महापातकीको पलभरमें पतितपावन बना सकती है, बड़े-बड़े देवता और ज्ञानी देवर्षि-महर्षि तुम्हारी दुर्लभ चरणरजकी कामना करते हैं, फिर भी तुम इस संदेहसे कि 'कहीं मेरे हृदयमें अपने सुखकी वासनाका तो कोई कण छिपकर नहीं रह गया है, सकुचा जाती हो। निज-सुखकी वासना तो प्रेममें कलंक है न? सच्चे

भक्तका यही तो आदर्श है। वह सोचता है कि रंचमात्र भी विषय-वासना हृदयमें रहते यदि भगवान् मिल गये तो भगवान्‌के मिलनका मूल्य ही घट जायगा। इसीलिये वह कहता है—'ठहरो प्रभु! अभी मैं तुम्हारे दर्शन पानेके योग्य नहीं हूँ। जब मैं अपना सारा हृदय पूर्णरूपसे तुम्हारे लिये खाली कर दूँ, उसमें कुछ रहे तो बस, केवल तुम्हें सुख पहुँचानेवाली सामग्री ही रहे, मेरे लिये तुम्हारे सुखके सिवा और कुछ भी न रहे, तभी तुम मुझे दर्शन देना।'

गोपी! तुम प्रेमरूपा हो, प्रेमकी अधिष्ठात्री देवी हो, प्रेमकी संस्थापिका हो—कदाचित् इसी आदर्शकी रक्षाके लिये तुम श्यामसुन्दरकी बाँहोंमें अपनेको नहीं देना चाहती; पर वस्तुतः ऐसी बात है नहीं। तुम्हारे हृदयमें भला विषय-वासनाके लेशका कलंक क्यों रहने पायेगा। तुम तो कृष्णगत-प्राणा हो, कृष्णरसभावभाविता हो। हाँ, तुम बड़ी मानिनी हो, प्रेमकी हठीली हो। भला, इसी तरह श्रीकृष्णके साथ क्यों मिलने लगी? परंतु तुम्हारे प्रेममें बड़ा आकर्षण है। सबको बरबस अपनी ओर खींचनेवाले श्रीकृष्णको भी तुम्हारा प्रेम खींच लाता है! श्रीकृष्ण आते हैं और तुम्हारी बाँहोंको पकड़कर तुम्हें अपने हृदयमें बिठा लेना चाहते हैं। तुम मान करके पीछे हटती हो, बाँहें मरोड़ खा जाती हैं और छूट जाती हैं। धन्य-धन्य! गोपी! प्रेमकी ध्वजा गोपी! तुम्हारी जय हो! जय हो!

अहा! तुम प्रेमी भक्तोंमें सर्वशिरोमणि हो। तुम्हारे प्रेममें कितना सामर्थ्य है, जो सर्वशक्तिमान् अचिन्त्यबल भगवान् भी अपनी शक्ति भूलकर तुम्हारे दिव्य प्रेमसे खिंचे हुए स्वयं आतुर होकर तुमसे मिलनेको चले आते हैं! सचमुच तुम अप्रतिम सुन्दरी हो! तुम्हारी जिस सुन्दरताने मुनिमन-मोहन मदनमोहन मोहनके चिन्मय मनको भी मोह लिया, उस तुम्हारी सुन्दरताका बखान सच्चे सौन्दर्यके पूरे पारखी श्रीकृष्ण क्यों न करें। वे लोग भूले हुए हैं, जो तुम्हारे इस दिव्य सौन्दर्यको पार्थिव शरीरकी बाहरी बनावट समझते हैं। तुम तो दिव्य सुन्दरतामयी ही हो। सबसे सुन्दर तो तुम्हारा वह हृदय है, जिसमें प्रकृतिजन्य अहंता-ममता, राग-द्वेष, मद-अभिमान, लोभ-मोह, ईर्ष्या-मत्सरता, काम-क्रोध, चिन्ता-विषाद और सुख-दुःख आदिका संस्कार भी नहीं है और जो समस्त दैवी सम्पदाके परम सार एकमात्र श्रीकृष्णप्रेमकी महिमामयी माधुरीसे ही मण्डित है! तुम्हारे इस परम सुन्दर अन्तस्तलका ही आभास तुम्हारे मोहन-मोहन मुखड़ेपर, तुम्हारे नचीले-नुकीले नेत्रोंपर, तुम्हारी घुँघराली काली अलकावलीपर और तुम्हारे अतुलनीय अंग-अंगपर छाया है। इसीसे तुम विश्वमोहन-मोहिनी हो। इसीसे श्रीकृष्ण तुम्हारा नख-सिख निहारनेको नित्य लालायित रहते हैं। वे बड़े पारखी हैं, इसीसे वे किसीकी बाहरी सुन्दरतापर मुग्ध नहीं होते। उन्हें तो निर्मल हृदयकी परम निर्मल माधुरी चाहिये। ऐसी सुन्दरता हो, जो केवल सुन्दरतासे ही बनी हो; तभी वे उसपर मोहित होते हैं। बड़े रिझवार न ठहरे, गोपी! इसीसे वे तुम्हारी मोहिनी माधुरीपर मुग्ध हैं!

सघन कुंज ही तो उनकी नित्यविहार-स्थली है। जिस कुंजमें घनता नहीं है—जहाँकी बातें बाहर दीखती-सुनती हैं और जिसमें बाहरवालोंका प्रवेश सम्भव है, वहाँ वे सच्चिदानन्दघन कूटस्थ कैसे रह सकते हैं? घनता और अनन्यतामें ही उनका निवास होता है, इसीसे तो भक्तलोग अपने हृदयको भी सघन कुंज ही बनाया करते हैं।

अहाहा! तुम जब उन्हें 'लँगर' और 'ढीठ' कहती हो, तब तुम्हारी रसनासे कैसा मधुर रस बरसता है। बलिहारी तुम्हारे प्रेमपर! तभी तो वे 'कुचाल' करते तुम्हारे बरजते-बरजते तुम्हारी 'मोतियनकी लर तोड़कर' झट सघन कुंजमें जा छिपते हैं। मीराने तो अपने हाथों 'मोती-मूँगे उतार वनमाला पोयी' थी। हाँ, तुम्हारा गौरव इतना बढ़ा हुआ है कि तुम्हारी मोतीकी लड़ तोड़ने भी उन्हें स्वयं आना पड़ा! वह मोतीकी लड़ ही कैसी, जिसके लिये श्यामसुन्दरको अपनी मनमानी करते रुकना पड़े और फिर ऐसी प्रतिबन्धकरूप मोतीकी लड़को श्यामसुन्दर क्यों न तोड़ डालें? गोपी! तुम्हारा मोतीका हार क्या तुम्हारे शृंगारके लिये है? नहीं, तुम्हारा तो भोग-त्याग, जीवन-मरण—सब कुछ श्रीकृष्णसुखके लिये है। तब श्रीकृष्ण यदि उस मुक्ताहारको तोड़कर सुखी होना चाहते हैं तो तुम उन्हें बरजती क्यों हो? अरी! तुम बरजती नहीं; यह तो तुम्हारी नखरेबाजी है। तुम इसलिये नहीं बरजती कि

मोतीके हारपर तुम्हें मोह है; तुम तो बार-बार उन्हें बरजकर अधिकाधिक रसानुभव करना-कराना चाहती हो! उनका नाम लेते तुम्हारा हृदय इसलिये नहीं काँपता कि वे तुम्हारे साथ बरजोरी करते हैं। श्यामकी बरजोरी तो तुम्हारे मनकी नित्यकी साध है। पूर्ण समर्पण कोई कर नहीं सकता, वह तो बरजोरीसे ही करा लिया जाता है। बस, समर्पणकी तैयारीभर होनी चाहिये। तुम्हारा तो हृदय सदा समर्पणकी ही माला जपता है। उसका प्रकम्प बस, वह जाप ही है, जो सघन कुंजसे उन्हें लौटानेके लिये या वहाँ स्वयं पहुँच जानेके लिये तुम कर रही हो। उनकी विरह-वेदनासे उत्पन्न होनेवाली चित्तकी विकलताभरी चंचलता—तुम्हारे हृदयका छटपटाहटभरा प्रतिपलका वह प्रेम-स्पन्दन ही तुम्हारे जीका काँपना है!

गोपी! घबराओ नहीं, श्यामसुन्दर तुम्हें अवश्य मिलेंगे। नहीं-नहीं, वे तो तुम्हें मिले ही हुए हैं। वे तुममें हैं, तुम उनमें हो! तुम्हारा-उनका बिलगाव कभी होता ही नहीं। तुमसे मिले रहनेमें ही उनकी 'श्यामसुन्दरता' है और उनसे मिली रहती हो, इसीसे तुम 'गोपी' हो। यह तो तुम्हारी लीला है, जो जीवोंके कल्याणार्थ तुम अनायास ही करती हो। देवी! आनन्दचिन्मय-रसभाविता भगवती! श्रीकृष्णकी ही आनन्द-लीलामयी श्रीमूर्ति मेरी माँ! ऐसी अमोघ कृपा करो, जिससे इस पामर प्राणीको भी तुम्हारे गोपीप्रेम-प्रासादके रासमण्डपमें एक झाड़ू देनेवाली अनुचरीका काम मिल जाय और फिर कभी श्रीकृष्णदर्शनके लिये तरसता हुआ यह भी तुम्हारी ही तरह गा उठे—

कारुण्यकर्बुरकटाक्षनिरीक्षणेन
तारुण्यसंवलितशैशववैभवेन ।
आपुष्णता भुवनमद्भुतविभ्रमेण
श्रीकृष्णचन्द्र शिशिरीकुरु लोचनं मे॥

(श्रीरा० मा० चि०)

माधवकी मधुर-स्मृति

छिनहिं छिन सुरति होति री माई।
बोलनि मिलनि चलनि हँसि चितवनि प्रीति रीति चतुराई॥
साँझ समय गोधन सँग आवनि परम मनोहरताई।
रूप सुधा आनंद सिंधुमें झलमलात तरुनाई॥
अंग अंग प्रति मैन सैन सजि धीरज देत छुड़ाई।
उड़ि उड़ि लगत दृगनि टोना सो जगमोहनी कन्हाई॥
मरियत सोचि सोचि बिन बातनि हौं बन गहन भुलाई।
बल्लभ औचक आय मंद हँसि गहि भुज कंठ लगाई॥

श्रीराधाजी कहती हैं—'सखि! बार-बार स्मृति हो रही है। वह बोलना, मिलना, चलना, मुसकराते हुए देखना, प्रीतिकी रीति, प्यारभरी चतुरता बार-बार याद आ जाती है। संध्याके समय श्यामसुन्दर गायोंके साथ आते थे, उस समय उनकी मनोहर छबि देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो सुन्दरतारूपी आनन्दमय-अमृतमय समुद्र लहरा रहा हो और तरुणता (किशोरावस्था)-रूपी तरंगें उसमें झलमल-झलमल कर रही हों। श्यामसुन्दरका एक-एक अंग क्या था, मानो मैन (कामदेव)-की सेना हो। धीरज बरबस छूट जाता था। आँखोंपर किसी अंगकी छबि पड़ते ही मालूम पड़ता था मानो श्यामसुन्दररूप जादूगरने टोना फेंका हो। समस्त जगत्को मोहनेवाले कन्हाई अपने अंगोंकी छबिका टोना फेंककर हमें मोहित कर लेते थे। एक दिन मैं वनमें, गहन वनमें भूल गयी थी—उन प्रसंगोंकी याद कर-करके मृत्युका-सा दुःख होता है। इतनेमें ही अचानक श्यामसुन्दर आये और मन्द-मन्द मुसकराकर मेरी भुजाओंको पकड़कर मुझे कण्ठसे लगा लिया।'

साधकका सिद्धदेह

साधकदेह और सिद्धदेह…इस प्रकार सेवाके लिये दो देह माने गये हैं। हमारे इस पांचभौतिक स्थूल देहको ही साधनामें संलग्न होनेपर साधकदेह कहते हैं। इसके परे सिद्धदेह है, जिसकी पहले साधकदेहवाले महानुभाव भावना करते हैं और उस भावनामय सिद्धदेहके द्वारा भगवान्‌की सेवा किया करते हैं। पर जिनके हृदयमें यथार्थ रतिकी उत्पत्ति हो गयी है, उनको सिद्धदेहकी भावना नहीं करनी पड़ती, उसकी स्वयं स्फूर्ति हुआ करती है और वे परम सौभाग्यवान् साधक उक्त सिद्धदेहके द्वारा श्रीराधा-माधवकी मधुरतम निकुंजसेवामें नियुक्त रहकर नित्य निरतिशय परमानन्दाम्बुधिमें निमग्न रहते हैं। यह सिद्धदेह न तो अस्थि-मांस-रक्तमय जडदेह है और न सांख्यप्रोक्त सूक्ष्म और कारणदेह ही है। यह है दिव्यानन्दचिन्मय-रसप्रतिभावित नित्यशुद्ध सुचारु समुज्ज्वल परम सुन्दरतम सच्चिदानन्द-रसमय विग्रह। वैष्णवसाधनाके क्षेत्रमें इस सच्चिदानन्दरसमयी मूर्तिको 'मंजरी' कहते हैं। ये सखियोंकी अनुमतिके अनुसार श्रीराधा-माधवकी सेवामें नियुक्त रहती और परमानन्दका अनुभव करती हैं। इनका यह देह नित्य सुन्दर, नित्य मधुर, नित्य नवसुषमासम्पन्न और नित्य समुज्ज्वल रहता है। इनपर देश-कालका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस मार्गकी साधनाकी परिपक्व स्थितिमें इस सिद्धदेहकी स्वयमेव स्फूर्ति हुआ करती है। पांचभौतिक देह छूट जाती है, पर ये सच्चिदानन्द-रस-विग्रहमयी व्रज-सुन्दरियाँ भगवान्‌के प्रेमधाममें स्फूर्ति प्राप्त करके श्रीयुगलस्वरूपकी सेवामें नित्य नियुक्त रहती हैं। इस साधनाके क्षेत्रमें तथा भगवान् श्रीराधा-माधवके प्रेमधाममें भगवान् श्रीवृन्दावनेश्वर तथा श्रीवृन्दावनेश्वरी, उनकी अष्ट सखियों और अष्ट मंजरियोंके नाम, वर्ण, वस्त्र, वय तथा सखी एवं मंजरियोंकी दिशा और उनकी सेवाकी सूची निम्नलिखित प्रकारसे मानी गयी है (इनके नाम, सेवा आदिमें व्यतिक्रम भी माना जाता है)—

दिशा	नाम	देहका वर्ण	वस्त्रका रंग	वयस्-वर्ष मास दिन	सेवा
×	श्रीनन्दनन्दन श्यामसुन्दर	इन्द्रनीलमणि	पीला	१५। ९। ७	×
	श्रीमती राधिका रासेश्वरी	तपाया स्वर्ण	नीला	१४। २। १५	×

सखी

दिशा	नाम	देहका वर्ण	वस्त्रका रंग	वयस्-वर्ष मास दिन	सेवा
उत्तर	श्रीललिता	गोरोचन	मयूरपिच्छ	१४। ३। १२	ताम्बूल
ईशानकोण	श्रीविशाखा	बिजली	तारावर्ण	१४। २। १५	कर्पूरादि
पूर्व	श्रीचित्रा	काश्मीर (केसर)	काचवर्ण	१४। १। १९	वस्त्र-सेवा
अग्निकोण	श्रीइन्दुलेखा	हरिताल	दाडिमपुष्प	१४। २। १२	नृत्य
दक्षिण	श्रीचम्पकलता	चम्पापुष्प	नीलवर्ण	१४। २। १४	चँवर
नैर्ऋत्यकोण	श्रीरंगदेवी	कमल-केसर	जवापुष्प	१४। २। ८	अलक्तक
पश्चिम	श्रीतुंगविद्या	चन्द्रकुंकुम (कर्पूरयुक्त केसर)	पाण्डुवर्ण	१४। २। २०	नाना वाद्य
वायव्यकोण	श्रीसुदेवी	तपाये हुए स्वर्णके समान	प्रवालवर्ण	१४। २। ८	जल

मंजरी

दिशा	नाम	देहका वर्ण	वस्त्रका रंग	वयस्-वर्ष मास दिन	सेवा
उत्तर	श्रीरूपमंजरी	गोरोचनवर्ण	मयूरपिच्छवर्ण	१३।६।०	ताम्बूल
ईशानकोण	श्रीमंजुलीलामंजरी	तप्तस्वर्णवर्ण	किंशुकपुष्पवर्ण	१३।६।७	वस्त्र
पूर्व	श्रीरसमंजरी	चम्पापुष्पवर्ण	हंसवर्ण	१३ वर्ष	चित्र
अग्निकोण	श्रीरतिमंजरी	विद्युद्वर्ण	तारावर्ण	१३।२।०	चरणसेवा
दक्षिण	श्रीगुणमंजरी	विद्युद्वर्ण	जवापुष्पवर्ण	१३।१।२७	जल
नैर्ऋत्यकोण	श्रीविलासमंजरी	स्वर्णकेतकीवर्ण	भ्रमरवर्ण	१३।०।२६	अंजन-सिन्दूर
पश्चिम	श्रीलवंगमंजरी	विद्युद्वर्ण	तारावर्ण	१३।६।१	माला
वायव्यकोण	श्रीकस्तूरीमंजरी	स्वर्णवर्ण	काचवर्ण	१३ वर्ष	चन्दन

प्रधान अष्टमंजरियोंके नामोंमें भी अन्तर माना गया है, मंजरियोंकी उपर्युक्त सूचीके स्थानपर ये नाम भी माने गये हैं—

(१) श्रीअनंगमंजरी, (२) श्रीमधुमतीमंजरी, (३) श्रीविमलामंजरी, (४) श्रीश्यामलामंजरी, (५) श्रीपालिका-मंजरी, (६) श्रीमंगलामंजरी, (७) श्रीधन्यामंजरी, (८) श्रीतारकामंजरी तथा इन प्रत्येकके अनुगत दो-दो मंजरियाँ अथवा प्रिय नर्मसखियाँ क्रमशः इस प्रकार मानी गयी हैं—(१) श्रीलवंगमंजरी, (२) श्रीरूपमंजरी, (३)श्रीरस-मंजरी, (४) श्रीगुणमंजरी, (५) श्रीरतिमंजरी, (६) श्रीभद्र-मंजरी, (७) श्रीलीलामंजरी, (८) श्रीविलासमंजरी (क), (९) श्रीविलासमंजरी (ख), (१०) श्रीकेलिमंजरी, (११) श्रीकुन्दमंजरी, (१२) श्रीमदनमंजरी, (१३) श्रीअशोक-मंजरी, (१४) श्रीमंजुलालीमंजरी, (१५) श्रीसुधा-मुखीमंजरी, (१६) श्रीपद्ममंजरी। प्रधान अष्ट सखियोंका क्रम भी कहीं-कहीं ऐसा माना गया है—श्रीरंगदेवी, श्रीसुदेवी, श्रीललिता, श्रीविशाखा, श्रीचम्पकलता, श्रीचित्रा, श्रीतुंगविद्या, श्रीइन्दुलेखा अथवा श्रीललिता, श्रीविशाखा, श्रीचम्पकलता, श्रीइन्दुलेखा, श्रीतुंगविद्या, श्रीरंगदेवी, श्रीसुदेवी, श्रीचित्रा। कहीं-कहीं प्रधान अष्ट सखियोंके नामोंमें भी अन्तर माना गया है।

सखियों और मंजरियोंकी संख्या इतनी ही नहीं है। ये तो मुख्य आठ-आठ हैं। सिद्धदेहमें मंजरियोंकी स्फूर्ति और तद्रूपता प्राप्त हो जाती है। यह परम गोपनीय साधन-राज्यका विषय है। यह बात जान लेनेकी है कि इस राग-मार्गमें—रति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव—ये आठ स्तर माने गये हैं। इनमें रति प्रथम है और वह रति तभी मानी जाती है जबकि इस लोक और परलोकके— ब्रह्मलोकतक समस्त भोगोंसे तथा मोक्षसे भी सर्वथा विरति होकर केवल भगवच्चरणारविन्दमें ही रति हो गयी हो। साधकके चित्तमें नित्य-निरन्तर केवल एक यही धारणा दृढ़ताके साथ बद्धमूल हो जाय कि इस लोकमें, परलोकमें, सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा एकमात्र श्रीकृष्ण ही मेरे हैं। श्रीकृष्णके सिवा मेरा और कोई भी, कुछ भी, किसी कालमें भी नहीं है। अतएव यहाँ दूसरी वस्तुमात्र तथा तत्त्वका ही अभाव हो जाता है; तब काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या और असूया आदि दोषोंके लिये तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। ये तो साधकदेहमें ही समाप्त हो जाते हैं। सिद्धदेहमें तो नित्य-निरन्तर श्रीकृष्णानुभवके अतिरिक्त और कुछ रहता ही नहीं।

गोपी-प्रेम

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

गोपी-प्रेमकी बात वही कह सकता है, जिसको गोपीभाव प्राप्त हो गया हो। सुननेका अधिकारी भी वही है। जबतक स्थूल, सूक्ष्म या कारण—किसी भी शरीरमें अहंभाव है, तबतक मनुष्यको गोपीभाव प्राप्त नहीं होता; अतः वह गोपीप्रेमका अधिकारी नहीं है। उद्धव-जैसे ज्ञानी और योगी, जो भगवान् श्रीकृष्णके सखा थे, जब व्रजमें गये, तब गोपियोंके प्रेमको देखकर ज्ञान और योगको भूल गये। उलटा अपने स्वामी और सखा श्रीकृष्णको हृदयहीन और कठोर बताने लगे और उन गोपियोंके प्रेमकी प्रशंसा करने लगे। यहाँतक कि व्रजके लता-पत्ता बननेमें भी अपना सौभाग्य मानकर गोपियोंकी चरण-रजकी कामना करने लगे। उन गोपियोंके प्रेमको भला कोई साधारण मनुष्य कैसे समझ सकता है?

जबतक मनुष्यके शरीरमें अभिमान रहता है, तबतक उसको किसी-न-किसी प्रकारके संयोगजनित सुखका लालच रहता है। गोपीभाव प्राप्त करनेके लिये वस्तुके संयोग और क्रियाजन्य सुखकी तो कौन कहे, चिन्तनतकके सुखका भी त्याग करना पड़ता है। जबतक यह भाव रहता है—अमुक वस्तु, अमुक व्यक्ति, अमुक परिस्थितिसे सुख मिलेगा, तबतक मनुष्य उनका दास बना रहता है। उसके मनमें दूसरोंको सुख पहुँचानेका भाव उत्पन्न नहीं होता। यही स्वार्थभाव है, जिसके रहते हुए गोपीभावकी बात समझमें नहीं आ सकती।

मानव-जीवनमें सत् और असत् दोनोंका संग रहता है। शरीर, संसार और भोगोंका संग ही असत्का संग है और अनन्त जीवन तथा नित्य आनन्दकी लालसा ही सत्का संग है। जिसमें केवल असत्का संग है वह भी मनुष्य नहीं है; क्योंकि असत्का संग तो पशु-पक्षी आदि तिर्यक् योनियोंमें भी होता है एवं जिसमें केवल सत्का संग है, उसे भी मनुष्य नहीं कहा जा सकता। वह मनुष्यभावसे अतीत है। अतः गोपीभाव प्राप्त करनेके लिये स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरका तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाले समस्त भोगोंका संग विवेकद्वारा छोड़ना पड़ता है। उसका त्याग सत्संगसे ही हो सकता है।

सांसारिक सुखभोगमें क्या-क्या दुःख है, इसकी असलियतका ज्ञान सुखभोगसे उन साधकोंको होता है, जो अपने प्राप्त विवेकका आदर करते हैं। विवेकका आदर ही सत्संग है। इस सत्संगसे सुखभोगकी रुचि मिट जाती है और भगवान्के नित्य-नव प्रेमकी लालसा उत्पन्न हो जाती है। तब किसी-किसी अधिकारीको गोपीभावकी प्राप्ति होती है।

देहसे असंग होनेपर ही मनुष्य भोगवासनासे रहित हो सकता है। दोषोंका त्याग ही गुणोंका संग है। भोगोंकी चाह रहते हुए गुणोंका उदय और दोषोंका अभाव नहीं होता। अतः यह समझना चाहिये कि सब प्रकारकी चाहका अन्त होनेपर ही सत्का संग अर्थात् भगवत्प्रेमकी लालसा उत्पन्न होती है।

अतः जिस साधकको गोपीभाव प्राप्त करना हो और उनकी लीलामें प्रवेश करके गोपी-प्रेमकी बात समझनी हो, उसे चाहिये कि देहभावसे उत्पन्न होनेवाली सम्पूर्ण भोगोंकी वासनाका त्याग कर दे; क्योंकि जबतक देहभाव रहता है—मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ—ऐसा भाव होता है, तबतक गोपी-चरित्र सुनने और समझनेका अधिकार प्राप्त नहीं होता। फिर गोपी-प्रेम क्या है—यह तो कोई समझ ही कैसे सकता है।

जब श्यामसुन्दरके प्रेमकी लालसा समस्त भोग-वासनाओंको खाकर सबल हो जाती है, तब तो साधकका व्रजमें प्रवेश होता है। उसके पहले तो व्रजमें प्रवेश ही नहीं होता। यह उस व्रजकी बात

नहीं है, जहाँ लोग टिकट लेकर जाते हैं। यह तो उस व्रजकी बात है, जो प्रकृतिका कार्य नहीं है, जहाँकी कोई भी वस्तु भौतिक नहीं है, जिसका निर्माण दिव्य प्रेमकी धातुसे हुआ है। जहाँकी भूमि, ग्वाल-बाल, गोपियाँ, गायें और लता-पत्ता आदि सब-के-सब चिन्मय हैं। जहाँ जड़ता और भौतिक भावकी गन्ध भी नहीं है, उस व्रजमें प्रवेश हो जानेके बाद भी गोपीभावकी प्राप्ति बहुत दूरकी बात है। दास्यभाव, सख्यभाव और वात्सल्यभावके बाद कहीं गोपीभावकी उपलब्धि होती है। फिर साधारण मनुष्य उस गोपी-प्रेमकी बात कैसे समझ सकते हैं?

जबतक देहभाव रहता है, तभीतक भोगवासना और अनेक प्रकारके दोष रहते हैं और तभीतक दोषोंका नाश करके चित्तशुद्धिके लिये साधन करना रहता है। चित्तका सर्वथा शुद्ध हो जाना और सब प्रकारसे असत्का संग छूट जाना ही व्रजमें प्रवेश है। अत: जिस साधकको गोपी-प्रेम प्राप्त करना हो, उसे चाहिये कि पहले मुक्तिके आनन्दतकका लालच छोड़कर व्रजमें प्रवेशका अधिकार प्राप्त करे और उसके बाद भगवान्‌की कृपापर निर्भर होकर गोपीभावको प्राप्त करे।

'चिट्ठी' एक गोपिकाकी

(श्रीनागेन्द्रसिंहजी 'शास्त्रीजी')

केशव! पुरुष-हृदय कितना कठोर होता है, यह हमें मालूम नहीं था, कन्हैया! हम लोगोंने तो तुमसे पहले स्पष्ट ही कहा था कि—

घर तजौं वन तजौं नागर नगर तजौं,
बंसीवट तट तजौं काहू पै न लजिहौं।
देह तजौं गेह तजौं नेह कहो कैसे तजौं,
आज राज काज सब ऐसे साज सजिहौं॥
बावरो भयो है लोग बावरी कहत मोकौं,
बावरी कहे ते हम काहू ना बरजिहौं।
कहैया सुनैया तजौं बाप और भैया तजौं,
दैया तजौं मैया पै कन्हैया नाहीं तजिहौं॥

प्राणनाथ! हम व्रज-बालाओंको तुमने कितना प्यार दिया था और हमें भी खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते किसी भी क्षण तुम्हारी विस्मृति नहीं होती थी। व्रज तथा वृन्दावनकी गायें और ग्वाल-बाल तुम्हारे साथ जैसे जीते थे, क्या वे वैसे ही जी रहे होंगे? तुम्हें विश्वास है?

घरमें घुसकर दही खा जाना, मटके फोड़ डालना, यह सब तुम्हारा कार्य कितना अच्छा लगता था। अब तो बात ही बदल गयी है।

आज गायें तुम्हारा नाम सुनकर रँभाने लगती हैं, बछड़े दूध पीना छोड़ देते हैं और व्रजवासी व्याकुल हो उठते हैं और तुम?

सूर्यतनया यमुना आज कैसी लगती हैं, कैसे कहूँ, क्या कहूँ? स्थान वही, मिट्टी वही, पेड़-पौधे वही, किंतु कुछ नहीं।

वृन्दावनके पेड़-पौधे अब मुरझाये-से लगते हैं। पेड़ोंमें पत्ते नहीं, फल-फूलोंका नाम नहीं। मानो वे भी तुम्हारे वियोगसे कान्तिहीन हो गये हों। वंशीवटके नीचे कुश-काँटे उग आये हैं। अब वहाँ कौन जाय? और किसलिये जाय?

तुम्हारे ये संगी-साथी, जो खेलमें तुम्हें हराया करते थे और कान्हा साँवला है, नहीं-नहीं काला है—ऐसा कहकर चिढ़ाया करते थे, यहाँतक कि एकने अपनी गेंदके लिये कालियदहमें डुबकी लगानेतककी नौबत ला दी थी, आज निराश-असहाय-कैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं ये सब? क्या इनकी किंचित् सुधि आती है तुम्हें?

मोहन! तुम्हारे संदेशानुसार माँ श्रीयशोदा जब श्रीराधाजीके पास गयीं तो राधाने उनपर भी जादू कर दिया। अब वे भी श्रीराधाजीकी तरह विक्षिप्तावस्थामें ही

सारा कामकाज करती हैं। कभी दिन-दिनभर बिना खाये-पीये ही रह जाती हैं। जब कोई भोजनकी थाली लाकर रखती है तो दो थालियाँ लगवाती हैं और कहती हैं—'क्या मेरा लाला नहीं खायेगा? तुम कैसी निर्दयी हो। बिना बेटेको खिलाये कौन माँ भोजन करती है?' कहते-कहते उनकी आँखें बरसने लगती हैं और थाली ज्यों-की-त्यों छोड़ जहाँ-कहीं भी लुढ़क जाती हैं। तुम्हारा नाम ले-लेकर आँखोंसे आँसू बहाती रहती हैं। तुम माँ यशोदाके लिये कितने निर्दय बेटे निकले कन्हैया!

और तुम्हारी प्रियतमा श्रीराधाकी दशाका वर्णन तो असम्भव है। संक्षेपमें सुनो—

वेणुधर! तुम्हारे दर्शन न होनेसे राधाके नेत्रोंसे अश्रु-जलकी इतनी वर्षा हो रही है कि उससे यमुनाजीका जल दूना हो गया है। उनके शरीरसे इस प्रकार पसीना झर रहा है, जैसे चाँदनी रातमें चन्द्रकान्तमणि रस बहाने लगती है। उनका शरीर भी उसी मणिकी तरह ही स्तब्ध हो गया है। उनका वर्ण उसी मणिकी तरह पीला पड़ गया है। उनके कण्ठसे वाणी रुक-रुककर निकलती है तथा उनका स्वर-भंग हो गया है। उनका सर्वांग कदम्बकेसरकी भाँति पुलकित हो रहा है। झंझावातमें जैसे केलेका पौधा काँपकर धराशायी हो जाता है, वैसे ही उनकी अंगलता भूमिपर गिर पड़ी है—

अश्रूणामतिवृष्टिभिर्द्विगुणयन्नर्कात्मजां निर्भरं
ज्योत्स्नायन्ति विधूपलप्रतिकृतच्छायं वपुर्बिभ्रति।
कण्ठान्तःस्फुटदक्षराद्यपुलकैर्लब्धा कदम्बाकृती
राधा वेणुधर प्रवातकदलीतुल्या क्वचिद् वर्तते॥

व्रजेश! तुम यद्यपि व्रजमें नहीं हो, किंतु तुम्हारी कीर्ति, तुम्हारा नाम-रूप-गुण हमारे अन्तःस्तलमें बसे हैं, जहाँसे तुम अपनेको निकाल नहीं सकते।

कान्हा! अब तो हम यमुनाजी जल भरनेको नहीं जातीं। अब यमुनाका जल भी घट गया है। धारा समाप्तप्राय हो गयी है। कोई कहींसे भी पार कर लेता है, जैसे हमारी तरह ही वह भी अकिंचन हो गयी हो।

प्राणाधार! तुम पतितपावन हो। कुबरीने तुम्हें चन्दन लगा दिया तो उसपर तुम रीझ गये। उसका स्वरूप बदल दिया, पर हमपर कब रीझोगे? रासेश्वर! अब तो तुम्हें मधुपुर ही ज्यादा सुहाता है। व्रजेश्वर! तनिक हमारी ओर भी निहारा करो। हम तो तुम्हारे प्रेममें बावली हैं, प्राणधन! ज्यादे क्या कहना, तुम तो सब जानते ही हो। पर, हमें भूलना मत।

हृदयेश्वर! तुम मेरी भाषापर ध्यान न देना। क्योंकि—

बातुल भूत बिबस मतवारे।
ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥

पत्रोत्तरकी प्रतीक्षामें—एक व्रज-बाला।

कदा वृन्दारण्ये विमलयमुनातीरपुलिने
चरन्तं गोविन्दं हलधरसुदामादिसहितम्।
अये कृष्ण स्वामिन् मधुरमुरलीवादन विभो
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥

'काम' और 'प्रेम' का भेद

कामेर तात्पर्य निज संभोग केवल,
कृष्णसुख-तात्पर्य प्रेम तो प्रबल।
लोकधर्म, वेदधर्म, देहधर्म, कर्म,
लज्जा, धैर्य, देहसुख, आत्मसुख मर्म॥
सर्वत्याग करये, करे कृष्णेर भजन,
कृष्णसुख हेतु करे प्रेमेर सेवन।
अतएव कामे प्रेमे बहुत अन्तर—
काम अन्धतम प्रेम निर्मल भास्कर॥

—श्रीचैतन्यचरितामृत

'गोपी प्रेम की धुजा'

(डॉ० श्रीमुमुक्षुजी दीक्षित)

'अष्टछाप' के कवि परमानन्ददासद्वारा 'गोपी प्रेमकी धुजा' कहकर उनके अलौकिक श्रीकृष्णप्रेमको सर्वोपरि ठहराया गया है—

गोपी प्रेम की धुजा।
जिन गोपाल कीन्हें अपने बस उर धरि स्याम भुजा॥

'गोप' शब्द गौओंके पालकके लिये प्रयुक्त होता है। इसीका स्त्रीलिंग 'गोपी' है। श्रीकृष्णकी अनन्य प्रेमी व्रजवनिताएँ गोपियाँ थीं। गोपियोंमें कुछ 'साधनसिद्धा' हैं, जो विगत जन्मोंकी अनन्य साधनावश श्रीकृष्ण-सेवाकी लालसासे गोपगृहोंमें अवतीर्ण हुई हैं और कुछ 'नित्यसिद्धा' हैं, जो अनादिकालसे भगवान् श्रीकृष्णके साथ दिव्य लीला-विलासमें रत हैं। पौराणिक उल्लेख है कि त्रेतायुगमें दण्डकारण्यवासी ऋषियोंको भगवान् श्रीरामसे द्वापरमें गोपी बनकर उनका सान्निध्य पानेका वरदान प्राप्त हुआ था। 'बृहद्वामनपुराण' के अनुसार श्रुतियों एवं ऋचाओंको तपस्याके परिणामस्वरूप गोपीदेहकी प्राप्ति हुई थी। स्कन्दपुराणकी मान्यता है कि गोपियाँ वस्तुतः श्रीकृष्णके नित्यधामकी नित्य परिकर ही थीं, जो पूर्णावतारके समय गोलोकसे पृथ्वीपर लीलाके निमित्त अवतरित हुई थीं। 'ब्रह्म-संहिता' से गोपियोंके श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्तिका विस्तार एवं शाश्वत संगिनी होनेकी पुष्टि होती है। वे साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता आह्लादिनी शक्ति (श्रीराधिकाजी)-की कायव्यूहरूपा अथवा घनीभूत दिव्य मूर्तियाँ हैं, दिव्य शरीरयुक्ता उनकी अन्तरंग शक्तियाँ ही हैं। दोनोंका परस्पर सम्बन्ध नित्य एवं दिव्य है।

व्रजकी गोपियोंका श्रीकृष्णप्रेम लौकिक जगत्के छद्म प्रेमसे सर्वथा भिन्न था। प्रियतमके प्रति उनका अनन्य अनुराग एवं निष्काम प्रेम स्वसुखवांछारहित एवं तत्सुखसुखित्वकी पवित्र भावनासे ओत-प्रोत था। व्रजगोपांगनाओंके अन्तस्तलमें प्रियतम श्यामसुन्दरके प्रति एकनिष्ठ प्रेमाभक्ति थी। वे 'कृष्णगृहीतमानसा' थीं, गोविन्दने उनके अन्तःकरणका हरण कर लिया था—**'गोविन्दापहृतात्मानः'**। गोपिकाएँ गौओंका दूध दुहते समय सदैव प्रेमातुर चित्तसे आराध्य श्रीकृष्णका ही ध्यान करतीं; और खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते प्रत्येक समय उन्हींके चिन्तनमें निमग्न रहतीं। व्रजगोपांगनाओंके हृदयमें प्रियतमके प्रति तत्सुखका भाव था, स्वसुखकी तो कल्पना भी उनके मनो-मस्तिष्कमें कभी नहीं रही। उनका प्रत्येक व्यवहार कृष्णसुखके निमित्त था। एक बार देवर्षि नारदके द्वारका पहुँचनेपर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने लीलावश उनके समक्ष मस्तकमें असह्य पीड़ा होने तथा किसी भक्तद्वारा प्रदत्त चरण-धूलि मस्तकपर लगानेसे पीड़ाका अन्त होने सम्बन्धी मन्तव्य प्रकट किया। स्वयं देवर्षि नारद एवं समस्त पटरानियोंने नरकगामी होनेकी आशंकावश पद-रज देना स्वीकार न किया। तब नारदजीद्वारा गोपिकाओंसे वस्तुस्थिति बताये जानेपर उन्होंने स्वयंके अनिष्टकी तनिक चिन्ता न करते हुए अप्रतिम प्रेमवश तत्काल चरण-धूलिका अम्बार लगा दिया। उनकी वृत्तियाँ पूरी तरह श्रीकृष्णमय थीं। लौकिक जगत्में रहते हुए भी उनके समस्त सांसारिक कर्म श्रीकृष्णके प्रति समर्पित थे। नैत्यिक जीवनमें उनका गौओंको दुहना, दही मथना, धान कूटना, घरमें बुहारी देना, घर लीपना, बर्तन धोना, पुष्पोंकी माला गूँथना, रुदन करते शिशुको झूला झुलाकर शांत करना, पति एवं परिवारीजनोंकी सेवा-शुश्रूषा आदि सभी कार्य श्रीकृष्णप्रेमसे अनुप्राणित थे। कभी-कभी तो अतिशय प्रेम-प्रवाहवश उनके मनकी वृत्तियाँ (भय, संकोच, धैर्य, मर्यादा) छिन भी जातीं। दिव्य रासके आह्वानपर मध्य-रात्रिमें वंशीकी ध्वनि कानोंमें पड़ते ही उनका अपने विविध कर्मों (भोजन करना, शिशुको स्तनपान कराना, नेत्रोंमें अंजन लगाना आदि)-को तत्काल छोड़ आतुरतावश रास-स्थलकी ओर दौड़ पड़ना और परिवारजनोंके प्रबल विरोधका सामना कर पानेमें असमर्थ गोपियोंका स्वतः समाधिस्थ हो प्राण त्यागते हुए महारासमें सम्मिलित होना उनके दिव्य प्रेमका द्योतक है।

श्रीकृष्णके मथुरागमनपर विरहाकुल गोपियोंकी वेदना द्रष्टव्य है—

निशि दिन बरसत नैन हमारे।

सदा रहत पावस ऋतु इन पर, जब ते स्याम सिधारे॥

बृहस्पतिके शिष्य महाज्ञानी उद्धवजीका शुष्क एवं नीरस तत्त्वज्ञान श्रीकृष्णप्रेममें निमज्जित व्रजगोपियोंके समक्ष व्यर्थ सिद्ध हुआ—

उधौ! मन नाहीं दस बीस।

एक हुतौ सो गयो स्याम संग, को आराधै ईस ?॥

श्रीकृष्णके प्रति व्रज-गोपांगनाओंके अलौकिक प्रेमको सर्वोत्कृष्ट माना गया है—

जदपि जसोदा-नन्द अरु ग्वाल-बाल सब धन्य।

पै या जग में प्रेम की गोपी भईं अनन्य॥

(रसखान)

भक्त-कवि नन्ददासके शब्दोंमें श्रीकृष्णकी गोपियोंके प्रति कृतज्ञता उनके अद्वितीय प्रेमकी पराकाष्ठाकी पुष्टि करती है—

कोटि कलप लगि तुम, प्रति प्रति उपकार करौं जौ।

हे मनहरनी तरुनी! उरनी नाहिं तबौं तौ॥

(रासपंचाध्यायी)।

गोपीभावमें मूलतः कान्ताभावयुक्त मधुर-रसकी प्रधानता है। कान्ताभाव दो प्रकारका वर्णित है—स्वकीया और परकीया। गोपी-प्रेममें परकीया भावकी प्रमुखता है, जिसकी विशिष्टताएँ हैं—प्रियतमका निरन्तर चिन्तन, उससे मिलनकी अतृप्त उत्कण्ठा और प्रियतममें दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव। 'नारद-भक्ति-सूत्र' में प्रेमाभक्तिके उदाहरणहेतु गोपियोंके समान होनेकी बात कही गयी है—'**यथा व्रजगोपिकानां**'। 'आदिपुराण' में भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे गोपियोंको अपनी सहायिका, गुरु, शिष्या, बन्धु ही नहीं अपितु अपना सर्वस्व बतलाया है। 'श्रीमद्भागवत' में उन्होंने गोपियोंके प्रेम, सेवा और त्यागके प्रति जन्म-जन्मतक ऋणी रहनेकी सहज अभिव्यक्ति की है। रसोपासनामें गोपीभाव सर्वथा स्तुत्य है।

गोपीभावमें पाँच प्रधान बातें

गोपीभावमें पाँच प्रधान बातें हैं—

१—श्रीभगवान्‌के स्वरूपका पूर्ण ज्ञान (यद्यपि वह प्रकट नहीं रहता), २—श्रीभगवान्‌में प्रियतमभाव, ३—श्रीभगवान्‌के प्रति सर्वस्व-अर्पण, ४—निजसुखकी इच्छाका पूर्ण त्याग, ५—भगवान्‌के सुखार्थ ही जीवनके सारे आचार-विचार अर्थात् भगवत्प्रीत्यर्थ जीवनधारण।

आनन्दचिन्मयरस-प्रतिभाविता, श्रीकृष्णप्रेमरसभावितमति, श्रीकृष्णगतप्राणा, श्रीकृष्णसुखपरायणा व्रजगोपियोंमें ये पाँचों बातें पूर्णरूपसे थीं।

जिनका मन विषयोंमें फँसा है, जिन्हें भौतिक सौन्दर्य अपनी ओर खींचता है, जिनकी भोग्यपदार्थोंमें आसक्ति है, शरीर और शरीरसम्बन्धी वस्तुओंपर जिनकी ममता है, जो शरीरके आराम और विषयभोगकी चाह रखते हैं और जिनका जीवन-प्रवाह निरन्तर भगवान्‌की ओर नहीं बहने लगा है, वे लोग गोपीभावकी साधनाके अधिकारी नहीं हैं। ऐसे लोग भगवान्‌के अप्राकृत प्रेम-तत्त्वकी सर्वोच्च अभिव्यक्ति दिव्य मधुररसको स्थूल कामतत्त्व या लौकिक आदिरस ही समझेंगे और भगवान् तथा श्रीगोपीजनोंका अनुकरण करने जाकर भयानक नरक-कुण्डमें गिर पड़ेंगे!

जिनके हृदयमें भोगोंसे सच्चा वैराग्य है, जिनका चित्त कामसुखसे हट गया है और जिनकी इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी होकर चिन्मय भगवद्-रसका आस्वादन करनेके लिये आतुर हैं—वे ही महाभाग पुरुष गोपी-भावका अनुसरण कर सकते हैं।

ऋग्वेदीया श्रीराधोपनिषत्

[भगवत्स्वरूपा श्रीराधिकाजीकी महिमा तथा उनका स्वरूप]

ओमथोर्ध्वं मन्थिन ऋषयः सनकाद्या भगवन्तं हिरण्यगर्भमुपासित्वोचुः देव कः परमो देवः, का वा तच्छक्तयः, तासु च का वरीयसी भवतीति सृष्टिहेतुभूता च केति। स होवाच—हे पुत्रकाः शृणुतेदं ह वाव गुह्याद् गुह्यतरमप्रकाश्यं यस्मै कस्मै न देयम्। स्निग्धाय ब्रह्मवादिने गुरुभक्ताय देयमन्यथा दातुर्महदघम्भवतीति। कृष्णो ह वै हरिः परमो देवः षड्विधैश्वर्यपरिपूर्णो भगवान् गोपीगोपसेव्यो वृन्दाराधितो वृन्दावनाधिनाथः, स एक एवेश्वरः। तस्य ह वै द्वैततनुर्नारायणोऽखिलब्रह्माण्डाधिपतिरेकोंऽशः प्रकृतेः प्राचीनो नित्यः। एवं हि तस्य शक्तयस्त्वनेकधा। आह्लादिनीसंधिनीज्ञानेच्छाक्रियाद्या बहुविधाः शक्तयः। तास्वाह्लादिनी वरीयसी परमान्तरङ्गभूता राधा। कृष्णेन आराध्यत इति राधा, कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका गान्धर्वेति व्यपदिश्यत इति। अस्या एव कायव्यूहरूपा गोप्यो महिष्यः श्रीश्चेति। येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत्। एषा वै हरेः सर्वेश्वरी सर्वविद्या सनातनी कृष्णप्राणाधिदेवी चेति विविक्ते वेदाः स्तुवन्ति, यस्या गतिं ब्रह्मभागा वदन्ति। महिमास्याः स्वायुर्मानेनापि कालेन वक्तुं न चोत्सहे। सैव यस्य प्रसीदति तस्य करतलावकलितम्परमं धामेति। एतामवज्ञाय यः कृष्णमाराधयितुमिच्छति स मूढतमो मूढतमश्चेति। अथ हैतानि नामानि गायन्ति श्रुतयः—

ऊर्ध्वरेता बालब्रह्मचारी सनकादि ऋषियोंने भगवान् ब्रह्माजीकी उपासना करके उनसे पूछा—'हे देव! परम देवता कौन हैं? उनकी शक्तियाँ कौन-कौन हैं? उन शक्तियोंमें सबसे श्रेष्ठ, सृष्टिकी हेतुभूता कौन शक्ति है?' सनकादिके प्रश्नको सुनकर श्रीब्रह्माजी बोले—'पुत्रो! सुनो; यह गुह्योंमें भी गुह्यतर—अत्यन्त गुप्त रहस्य है, जिस-किसीके सामने प्रकट करनेयोग्य नहीं है और देनेयोग्य भी नहीं है। जिनके हृदयमें रस हो, जो ब्रह्मवादी हों, गुरुभक्त हों—उन्हींको इसे बताना है; नहीं तो किसी अनधिकारीको देनेसे महापाप होगा! भगवान् हरि श्रीकृष्ण ही परम देव हैं, वे (ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, ज्ञान और वैराग्य—इन) छहों ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण भगवान् हैं। गोप-गोपियाँ उनका सेवन करती हैं, वृन्दा (तुलसीजी) उनकी आराधना करती हैं, वे भगवान् ही वृन्दावनके स्वामी हैं, वे ही एकमात्र परमेश्वर हैं। उन्हींके एक रूप हैं—अखिल ब्रह्माण्डोंके अधिपति नारायण, जो उन्हींके अंश हैं, वे प्रकृतिसे भी प्राचीन और नित्य हैं। उन श्रीकृष्णकी ह्लादिनी, संधिनी, ज्ञान, इच्छा, क्रिया आदि बहुत प्रकारकी शक्तियाँ हैं। इनमें आह्लादिनी सबसे श्रेष्ठ है। यही परम अन्तरंगभूता 'श्रीराधा' हैं, जो श्रीकृष्णके द्वारा आराधिता हैं। श्रीराधा भी श्रीकृष्णका सदा समाराधन करती हैं, अतः वे राधिका कहलाती हैं। इनको 'गान्धर्वा' भी कहते हैं। समस्त गोपियाँ, पटरानियाँ और लक्ष्मीजी इन्हींकी कायव्यूहरूपा हैं। ये श्रीराधा और रस-सागर श्रीकृष्ण एक ही शरीर हैं, लीलाके लिये ये दो बन गये हैं। ये श्रीराधा भगवान् श्रीहरिकी सम्पूर्ण ईश्वरी हैं, सम्पूर्ण सनातनी विद्या हैं, श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। एकान्तमें चारों वेद इनकी स्तुति करते हैं। ब्रह्मवेत्ता जिनके परमपदका प्रतिपादन करते हैं। इनकी महिमाका मैं (ब्रह्मा) अपनी समस्त आयुमें भी वर्णन नहीं कर सकता। जिनपर इनकी कृपा होती है, परमधाम उनके करतलगत हो जाता है। इन राधिकाको न जानकर जो श्रीकृष्णकी आराधना करना चाहता है, वह मूढ़तम है—महामूर्ख है। श्रुतियाँ इनके इन नामोंका गान करती हैं—

राधा रासेश्वरी रम्या कृष्णमन्त्राधिदेवता।
सर्वाद्या सर्ववन्द्या च वृन्दावनविहारिणी॥
वृन्दाराध्या रमाशेषगोपीमण्डलपूजिता।
सत्या सत्यपरा सत्यभामा श्रीकृष्णवल्लभा॥
वृषभानुसुता गोपी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
गान्धर्वा राधिकारम्या रुक्मिणी परमेश्वरी॥
परात्परतरा पूर्णा पूर्णचन्द्रनिभानना।
भुक्तिमुक्तिप्रदा नित्यं भवव्याधिविनाशिनी॥

इत्येतानि नामानि यः पठेत् स जीवन्मुक्तो भवति। इत्याह हिरण्यगर्भो भगवानिति। संधिनी तु धामभूषणशय्यासनादिमित्रभृत्यादिरूपेण परिणता मृत्युलोकावतरणकाले मातृपितृरूपेण चासीदित्यनेकावतारकारणा। ज्ञानशक्तिस्तु क्षेत्रज्ञशक्तिरिति। इच्छान्तर्भूता माया सत्त्वरजस्तमोमयी बहिरङ्गा जगत्कारणभूता सैवाविद्यारूपेण जीवबन्धनभूता। क्रियाशक्तिस्तु लीलाशक्तिरिति।

य इमामुपनिषदमधीते सोऽव्रती व्रती भवति, स वायुपूतो भवति, स सर्वपूतो भवति, राधाकृष्णप्रियो भवति, स यावच्चक्षुःपातं पङ्क्तीः पुनाति ॐ तत्सत्।

॥ इति ऋग्वेदीया श्रीराधोपनिषत् ॥*

---

१. राधा, २. रासेश्वरी, ३. रम्या, ४. कृष्णमन्त्राधिदेवता, ५. सर्वाद्या, ६. सर्ववन्द्या, ७. वृन्दावनविहारिणी, ८. वृन्दाराध्या, ९. रमा, १०. अशेषगोपीमण्डलपूजिता, ११. सत्या, १२. सत्यपरा, १३. सत्यभामा, १४. श्रीकृष्णवल्लभा, १५. वृषभानुसुता, १६. गोपी, १७. मूलप्रकृति, १८. ईश्वरी, १९. गान्धर्वा, २०. राधिका, २१. आरम्या, २२. रुक्मिणी, २३. परमेश्वरी, २४. परात्परतरा, २५. पूर्णा, २६. पूर्णचन्द्रनिभानना, २७. भुक्तिमुक्तिप्रदा, २८. भवव्याधिविनाशिनी।

इन [अट्ठाईस] नामोंका जो पाठ करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है—ऐसा भगवान् श्रीब्रह्माजीने कहा है। [यह तो आह्लादिनी शक्तिका वर्णन हुआ।] इनकी संधिनी शक्ति (श्रीवृन्दावन) धाम, भूषण, शय्या तथा आसन आदि एवं मित्र-सेवक आदिके रूपमें परिणत होती है और इस मर्त्यलोकमें अवतार लेनेके समय वही माता-पिताके रूपमें प्रकट होती है। यही अनेक अवतारोंकी कारणभूता है। ज्ञान-शक्ति ही क्षेत्रज्ञशक्ति है। इच्छा-शक्तिके अन्तर्भूत माया है। यह सत्त्व-रज-तमोमयी है और बहिरंगा है, यही जगत्की कारणभूता है। यही अविद्यारूपसे जीवके बन्धनमें हेतु है। क्रियाशक्ति ही लीलाशक्ति है।

जो इस उपनिषद्को पढ़ता है, वह अव्रती भी व्रती हो जाता है। वह वायुकी भाँति पवित्र एवं वायुकी भाँति पवित्र करनेवाला तथा सब ओर पवित्र एवं सबको पवित्र करनेवाला हो जाता है। वह श्रीराधा-कृष्णको प्रिय होता है और जहाँतक उसकी दृष्टि पड़ती है, वहाँतक सबको पवित्र कर देता है। ॐ तत्सत्।

॥ इस प्रकार ऋग्वेदीय श्रीराधोपनिषत् समाप्त हुआ ॥

---

* उक्त लघुकाय ऋग्वेदीय राधोपनिषद्के अतिरिक्त एक अपेक्षाकृत विस्तृत अथर्ववेदीय राधोपनिषद् भी प्राप्त होता है, जो चार प्रपाठकोंमें विभक्त है। उसका पाठ इस उपनिषद्से सर्वथा भिन्न है।

अथर्ववेदीया श्रीराधिकातापनीयोपनिषत्

[श्रुतियोंद्वारा श्रीराधिकाजीकी अपरिमित महिमाकी प्रतिपादक स्तुति]

ब्रह्मवादिनो वदन्ति, कस्माद्राधिकामुपासते आदित्योऽभ्यद्रवत्॥ १॥ श्रुतय ऊचुः—सर्वाणि राधिकाया दैवतानि सर्वाणि भूतानि राधिकायास्तां नमामः॥ २॥ देवतायतनानि कम्पन्ते राधाया हसन्ति नृत्यन्ति च सर्वाणि राधादैवतानि। सर्वपापक्षयायेति व्याहृतिभिर्हुत्वाथ राधिकायै नमामः॥ ३॥ भासा यस्याः कृष्णदेहोऽपि गौरो जायते देवस्येन्द्रनीलप्रभस्य। भृङ्गाः काकाः कोकिलाश्चापि गौरास्तां राधिकां विश्वधात्रीं नमामः॥ ४॥ यस्या अगम्यतां श्रुतयः सांख्ययोगा वेदान्तानि ब्रह्मभावं वदन्ति। न यां पुराणानि विदन्ति सम्यक् तां राधिकां देवधात्रीं नमामः॥ ५॥ जगद्धर्तुर्विश्वसम्मोहनस्य श्रीकृष्णस्य प्राणतोऽधिकामपि। वृन्दारण्ये स्वेष्टदेवीं च नित्यं तां राधिकां वनधात्रीं नमामः॥ ६॥ यस्या रेणुं पादयोर्विश्वभर्ता धरते मूर्ध्नि रहसि

[किसी समय उपासनाओंके स्वरूप एवं लक्ष्यका विचार करते समय] ब्रह्मवेत्ताओं (वेदज्ञों) ने परस्पर यह विचार करना प्रारम्भ किया कि श्रीराधिकाजीकी उपासना किसलिये होती है। इस विचारमें प्रवृत्त होनेपर उनपर भगवान् आदित्य (वेदोंके अधिष्ठाता प्रकाशमय ज्ञानके रूपमें) अत्यन्त कृपालु हुए। अर्थात् प्रकाशस्वरूप वैदिक ज्ञान उनमें प्रकट हुआ॥ १॥ (उन्होंने श्रीराधिकाजीकी उपासनाके सम्बन्धमें श्रुतियोंको इस प्रकार बातचीत करते हुए पाया—)

श्रुतियाँ कहती हैं—सम्पूर्ण देवताओंमें जो देवरूपता (शक्ति) है, वह श्रीराधिकाजीकी ही है। समस्त प्राणी श्रीराधिकाजीके द्वारा ही अवस्थित हैं। अर्थात् देवतासे लेकर क्षुद्र प्राणियोंतक सभी जीव श्रीराधिकाजीकी शक्तिसे स्थित एवं चेष्टायुक्त हैं और उन्हींसे अभिव्यक्त हुए हैं। इसलिये हम सब श्रुतियाँ उन श्रीराधिकाजीको नमस्कार करती हैं॥ २॥

देवताओंके निवास पंचभूत, इन्द्रियों आदिमें श्रीराधिकाजीकी प्रेरणासे ही कम्पन (चेष्टा) होता है तथा उन्हींकी प्रेरणासे वे हँसते (उल्लास प्राप्त करते) और नाचते (क्रियाशील होते) हैं। सबकी अधिदेवता श्रीराधिकाजी ही हैं (सब उनके वशमें हैं)। अतएव अपने सम्पूर्ण पापोंके नाशके लिये व्याहृतियों (भूः-भुवः-स्वः या श्रीं-क्लीं-ह्रीं)-द्वारा हवन करके फिर श्रीराधिकाजीको हम प्रणाम करती हैं। (तात्पर्य यह कि विशुद्ध हृदयसे ही श्रीराधिकाजीकी उपासना सम्भव है। अतः यजनसे आत्मशुद्धि करके तब प्रणाम करती हैं।)॥ ३॥

जिनके दिव्य शरीरकी कान्तिके पड़नेसे (जिन योगमायारूपके आश्रयसे) इन्द्रनीलमणिके समान वर्णवाला (इन्द्रियातीत नीलिमाव्यंजक) देवाधिदेव श्रीकृष्णचन्द्रका शरीर भी गौर जान पड़ने लगता है (घनसत्त्व होकर आविर्भूत होता है) तथा जिनकी कान्ति पड़नेसे भौंरे, कौए और कोयल (विषयरस-लोलुप, कटुभाषी, पापी एवं मधुरभाषी, परन्तु स्वरूपसे काले अर्थात् योग-ज्ञानादि साधक, जिनका बाह्यरूप नीरस एवं अनाकर्षक है) भी रासमण्डलमें गौरवर्णके (सत्त्वगुणी एवं भक्तियुक्त) हो जाते हैं, उन विश्वकी पालिका श्रीराधिकाजीको हम नमस्कार करती हैं॥ ४॥

हम सब श्रुतियाँ, सांख्य-योग-शास्त्र तथा उपनिषद् जिन परब्रह्मकी अभिन्न शक्तिकी अगम्यताका प्रतिपादन करती हैं, जिनको स्वरूपतः भली प्रकार पुराण भी नहीं जानते, उन देवताओंकी पालिका श्रीराधिकाजीको हम नमस्कार करती हैं॥ ५॥

सम्पूर्ण संसारके अधीश्वर त्रिभुवनमोहन श्रीकृष्णचन्द्र जिन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानते हैं, वृन्दावनमें स्थित अपनी (श्रुतियोंकी) इष्ट—आराध्यदेवी उन श्रीवृन्दावनकी पालिका—अधिष्ठात्री देवी श्रीराधिकाजीको हम नित्य नमस्कार करती हैं॥ ६॥

विश्वभर्ता श्रीकृष्णचन्द्र एकान्तमें अत्यन्त प्रेमार्द्र होकर जिनकी पदधूलि अपने मस्तकपर धारण करते हैं और

प्रेमयुक्तः। स्रस्तवेणुः कबरीं न स्मरेद्यल्लीनः कृष्णः क्रीतवत्तु तां नमामः॥ ७॥ यस्याः क्रीडां चन्द्रमा देवपत्न्यो दृष्ट्वा नग्ना आत्मनो न स्मरन्ति। वृन्दारण्ये स्थावरा जङ्गमाश्च भावाविष्टां राधिकां तां नमामः॥ ८॥ यस्या अङ्के विलुण्ठन् कृष्णदेवो गोलोकाख्यं नैव सस्मार धामपदम्। सांशा कमला शैलपुत्री तां राधिकां शक्तिधात्रीं नमामः॥ ९॥ स्वरैर्ग्रामैश्च त्रिभिर्मूर्च्छनाभिर्गीता देवी सखिभिः प्रेमबद्धा। ब्राह्मीं निशां यातनोदेकशक्त्या वृन्दारण्ये राधिकां तां नमामः॥ १०॥ क्वचिद् भूत्वा द्विभुजा कृष्णदेहा वंशीरन्ध्रैर्वादयामास चक्रे। यस्या भूषां कुन्दमन्दारपुष्पैर्मालां कृत्वानुनयेद्देवदेवः॥ ११॥ येयं राधा यश्च कृष्णो रसाब्धिर्देहेनैकः क्रीडनार्थं द्विधाभूत्। देहो यथा छायया शोभमानः शृण्वन् पठन् याति तद्धाम शुद्धम्॥ १२॥ वसिष्ठं च बृहस्पतिं चार्वागध्यापयति यजमानस्य बार्हस्पत्यं च॥ १३॥

॥ इत्यथर्ववेदीया श्रीराधिकातापनीयोपनिषत्॥

जिनके प्रेममें निमग्न होनेपर हाथसे गिरी वंशी एवं बिखरी अलकोंका भी स्मरण उन्हें नहीं रहता तथा वे क्रीत (खरीदे हुए)-की भाँति जिनके वशमें रहते हैं, उन श्रीराधिकाजीको हम नमस्कार करती हैं॥ ७॥

श्रीरासमण्डलमें जिनकी रासक्रीडा देखकर चन्द्रमा एवं विवसना देवपत्नियोंको अपने शरीरका भी भान नहीं रह जाता और श्रीवृन्दावनके समस्त जड़ एवं जंगम भी अपने स्वरूपको भूल जाते हैं अर्थात् जड़ पाषाण, तरु प्रभृति स्रवित होने लगते हैं और जंगम (चर) प्राणी विमुग्ध-स्थिर हो जाते हैं, श्रीरासमण्डलमें भावावेशयुक्ता उन श्रीराधिकाजीको हम नमन करती हैं॥ ८॥

जिनके अंकमें लेटे हुए श्रीकृष्णचन्द्र अपने शाश्वत विहारस्थान गोलोकका (या अपने ब्रह्मस्वरूप परमधामका) स्मरणतक नहीं करते, कमलोद्भवा लक्ष्मी और श्रीपार्वतीजी जिनकी अंशरूपा हैं, उन समस्त शक्तियोंकी अधिष्ठात्री श्रीराधिकाजीको हम प्रणाम करती हैं॥ ९॥

[श्रीललितादि] सखियोंके साथ [ऋषभ, गान्धारादि] स्वरोंसे, [तार, मध्य और मन्द्र—इन] तीनों ग्रामोंसे तथा (अनेक) मूर्च्छनाओं (स्वरके चढ़ाव-उतारों)-से गाते हुए, प्रेमविवश होकर जिन्होंने (रासक्रीड़ाके समय) श्रीवृन्दावनमें एकमात्र अपनी ही शक्तिसे ब्राह्मीनिशा (एक मास या छः मासपर्यन्त दीर्घरात्रि)-का विस्तार (प्रादुर्भाव) किया, उन श्रीराधिकाजीको हम नमस्कार करती हैं॥ १०॥

किसी समय दो भुजाओंवाली (चतुर्भुजी नहीं) श्रीकृष्णकी मूर्ति बनकर अर्थात् स्वयं द्विभुज श्रीकृष्णवेश धारण करके वंशीके छिद्रोंको श्रीराधिकाजीने स्वरसे भर दिया। (तात्पर्य यह कि श्रीकृष्ण-वेश धारण करके किसी दिन श्रीराधिकाजीने वेणुवादनका प्रयत्न किया और वे केवल वंशी-छिद्रोंसे (गायनरहित) ध्वनि निकाल पायीं।) इसीसे अत्यन्त उल्लसित होकर देव-देव श्रीकृष्णचन्द्रने कुन्द एवं कल्पवृक्षके पुष्पोंकी माला बनाकर उनका शृंगार करके उन्हें प्रसन्न किया॥ ११॥

जिनका इस उपनिषद्में वर्णन हुआ है, वे श्रीराधिकाजी और आनन्द-सिन्धु श्रीकृष्णचन्द्र वस्तुतः एक ही शरीर एवं परस्पर नित्य अभिन्न हैं। केवल लीलाके लिये वे दो स्वरूपोंमें व्यक्त हुए हैं, जैसे शरीर अपनी छायासे शोभित हो। अतएव जिस लीलाके लिये उन परम रससिन्धुका श्रीविग्रह दो रूपोंमें शोभित हुआ, उस लीलाको जो सुनता या पढ़ता है, वह उन परम प्रभुके विशुद्ध धाम (गोलोक)-में जाता है।॥ १२॥

इस उपनिषद्को पूर्वकालमें वसिष्ठजीने मधुरभाषी बृहस्पतिजीको पढ़ाया। बृहस्पतिजीने अपने यजमान इन्द्रको उपदेश किया और तभीसे यह उपनिषद् बार्हस्पत्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ १३॥

॥ इस प्रकार अथर्ववेदीय श्रीराधिकातापनीयोपनिषत् समाप्त हुआ॥

अथर्ववेदीया श्रीकृष्णोपनिषत्

[श्रीकृष्ण-परिकररूपमें देवी-देवताओंका अवतरण, श्रीकृष्णसे उनकी एकरूपता]

हरिः ॐ श्रीमहाविष्णुं सच्चिदानन्दलक्षणं रामचन्द्रं दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरं मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवः। तं होचुर्नोऽवद्यमवतारान्वै गण्यन्ते आलिङ्गामो भवन्तमिति। भवान्तरे कृष्णावतारे यूयं गोपिका भूत्वा मामालिङ्गथ अन्ये येऽवतारास्ते हि गोपा नः स्त्रीश्च नो कुरु। अन्योऽन्यविग्रहं धार्यं तवाङ्गस्पर्शनादिह। शश्वत्स्पर्शयितास्माकं गृह्णीमोऽवतारान्वयम्॥ १॥ रुद्रादीनां वचः श्रुत्वा प्रोवाच भगवान्स्वयम्। अंगसङ्गं करिष्यामि भवद्वाक्यं करोम्यहम्॥ २॥ मोदितास्ते सुराः सर्वे कृतकृत्याधुना वयम्। यो नन्दः परमानन्दो यशोदा मुक्तिगेहिनी॥ ३॥ माया सा त्रिविधा प्रोक्ता सत्त्वराजसतामसी। प्रोक्ता च सात्त्विकी रुद्रे भक्ते ब्रह्मणि राजसी॥ ४॥ तामसी दैत्यपक्षेषु माया त्रेधा ह्युदाहृता। अजेया वैष्णवी माया जप्येन च सुरा पुरा॥ ५॥ देवकी ब्रह्मपुत्रा सा या वेदैरुपगीयते। निगमो वसुदेवो यो वेदार्थः कृष्णरामयोः॥ ६॥ स्तुवते सततं यस्तु सोऽवतीर्णो महीतले। वने वृन्दावने क्रीडन् गोपगोपीसुरैः सह॥ ७॥ गोप्यो गाव ऋचस्तस्य यष्टिका कमलासनः। वंशस्तु भगवान्रुद्रः शृङ्गमिन्द्रः सगोसुरः॥ ८॥ गोकुलं वनवैकुण्ठं तापसास्तत्र ते

सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वांगसुन्दर भगवान् महाविष्णुको श्रीरामचन्द्रजीके रूपमें [वनमें भ्रमण करते हुए देख] वनवासी मुनिगण विस्मित हो गये। वे उनसे बोले [हे प्रभो!] यद्यपि हम जन्म लेना उचित नहीं समझते तथापि हमें आपके आलिंगनकी उत्कण्ठा है। [तब श्रीरामने कहा—] आप लोग अन्य जन्ममें मेरे कृष्णावतारमें गोपिका होकर मेरा आलिंगन प्राप्त करोगे। [ऐसे ही श्रीकृष्णावतारसे पूर्व जब देवताओंसे भगवान्ने उन्हें पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेके लिये कहा, तब] वे [बोले—'भगवन्! हम देवता होकर पृथ्वीपर जन्म लें, यह हमारे लिये बड़ी निन्दाकी बात है; परंतु आपकी आज्ञा है, इसलिये हमें वहाँ जन्म लेना ही पड़ेगा। फिर भी इतनी प्रार्थना अवश्य है कि] हमें गोप और स्त्रीके रूपमें वहाँ उत्पन्न न करें। जिसे आपके अंग-स्पर्शसे वंचित रहना पड़ता हो; ऐसा मनुष्य बनकर हममेंसे कोई भी शरीर धारण नहीं करेगा; हमें सदा अपने अंगोंके स्पर्शका अवसर दें, तभी हम अवतार ग्रहण करेंगे।' रुद्र आदि देवताओंका यह वचन सुनकर स्वयं भगवान्ने कहा—'देवताओ! मैं तुम्हें अंग-स्पर्शका अवसर दूँगा, तुम्हारे वचनोंको अवश्य पूर्ण करूँगा'॥ १-२॥

भगवान्का यह आश्वासन पाकर वे सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'अब हम कृतार्थ हो गये।' भगवान्का परमानन्दमय अंश ही नन्दरायजीके रूपमें प्रकट हुआ। नन्दरानी यशोदाके रूपमें साक्षात् मुक्तिदेवी अवतीर्ण हुईं। सुप्रसिद्ध माया सात्त्विकी, राजसी और तामसी—यों तीन प्रकारकी बतायी गयी है। भगवान्के भक्त श्रीरुद्रदेवमें सात्त्विकी माया है, ब्रह्माजीमें राजसी माया है और दैत्यवर्गमें तामसी मायाका प्रादुर्भाव हुआ है। इस प्रकार यह तीन रूपोंमें स्थित है। इससे भिन्न जो वैष्णवी माया है, जिसको जीतना किसीके लिये भी सम्भव नहीं है। हे देवताओ! [सृष्टिके] आरम्भकालमें ही उत्पन्न हुई यह माया [भगवान्की शरणके अतिरिक्त] जप आदि साधनोंसे भी नहीं जीती जा सकती। वह ब्रह्मविद्यामयी वैष्णवी माया ही देवकीरूपमें प्रकट हुई है। निगम (वेद) ही वसुदेव हैं, जो सदा मुझ नारायणके स्वरूपका स्तवन करते हैं। वेदोंका तात्पर्यभूत ब्रह्म ही श्रीबलराम और श्रीकृष्णके रूपमें इस महीतलपर अवतीर्ण हुआ। वह मूर्तिमान् वेदार्थ ही वृन्दावनमें गोप-गोपियोंके साथ क्रीडा करता है। ऋचाएँ उस श्रीकृष्णकी गौएँ और गोपियाँ हैं। ब्रह्मा लकुटीरूप धारण किये हुए हैं और रुद्र वंश अर्थात् वंशी बने हैं। देवराज इन्द्र सींग (वाद्यविशेष) बने हैं। गोकुल नामक वनके रूपमें साक्षात् वैकुण्ठ है। वहाँ द्रुमोंके रूपमें तपस्वी महात्मा हैं। लोभ-क्रोधादिने दैत्योंका रूप धारण किया है, जो कलियुगमें केवल भगवान्का नाम

द्रुमाः। लोभक्रोधादयो दैत्याः कलिकालतिरस्कृताः॥ ९॥ गोपरूपो हरिः साक्षान्मायाविग्रहधारणः। दुर्बोधं कुहकं तस्य मायया मोहितं जगत्॥ १०॥ दुर्जया सा सुरैः सर्वैर्यष्टिरूपो भवेद् द्विजः। रुद्रो येन कृतो वंशस्तस्य माया जगत्कथम्॥ ११॥ बलं ज्ञानं सुराणां वै तेषां ज्ञानं हृतं क्षणात्। शेषनागो भवेद्रामः कृष्णो ब्रह्मैव शाश्वतम्॥ १२॥ अष्टावष्टसहस्रे द्वे शताधिक्यः स्त्रियस्तथा। ऋचोपनिषदस्ता वै ब्रह्मरूपा ऋचः स्त्रियः॥ १३॥ द्वेषश्चाणूरमल्लोऽयं मत्सरो मुष्टिको जयः। दर्पः कुवलयापीडो गर्वो रक्षः खगो बकः॥ १४॥ दया सा रोहिणी माता सत्यभामा धरेति वै। अघासुरो महाव्याधिः कलिः कंसः स भूपतिः॥ १५॥ शमो मित्रः सुदामा च सत्याक्रूरोद्धवो दमः। यः शङ्खः स स्वयं विष्णुर्लक्ष्मीरूपो व्यवस्थितः॥ १६॥ दुग्धसिन्धौ समुत्पन्नो मेघघोषस्तु संस्मृतः। दुग्धोदधिः कृतस्तेन भग्नभाण्डो दधिग्रहे॥ १७॥ क्रीडते बालको भूत्वा पूर्ववत्सुमहोदधौ। संहारार्थं च शत्रूणां रक्षणाय च संस्थितः॥ १८॥ कृपार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्। यत्स्रष्टुमीश्वरेणासीत्तच्चक्रं ब्रह्मरूपधृक्॥ १९॥ जयन्तीसंभवो वायुश्चमरो धर्मसंज्ञितः। यस्यासौ ज्वलनाभासः खड्गरूपो महेश्वरः॥ २०॥ कश्यपोलूखलः ख्यातो रज्जुर्माताऽदितिस्तथा। चक्रं शङ्खं च संसिद्धिं बिन्दुं च सर्वमूर्धनि॥ २१॥ यावन्ति देवरूपाणि वदन्ति विबुधा जनाः। नमन्ति

लेनेमात्रसे तिरस्कृत (नष्ट) हो जाते हैं ॥ ३-९॥

गोपरूपमें साक्षात् भगवान् श्रीहरि ही लीला-विग्रह धारण किये हुए हैं। यह जगत् मायासे मोहित है, अतः उसके लिये भगवान्‌की लीलाका रहस्य समझना बहुत कठिन है। वह माया समस्त देवताओंके लिये भी दुर्जय है। जिनकी मायाके प्रभावसे ब्रह्माजी लकुटी बने हुए हैं और जिन्होंने भगवान् शिवको बाँसुरी बना रखा है, उनकी मायाको साधारण जगत् कैसे जान सकता है? निश्चय ही देवताओंका बल ज्ञान है। परंतु भगवान्‌की मायाने उसे भी क्षणभरमें हर लिया। श्रीशेषनाग श्रीबलराम बने, और सनातन ब्रह्म ही श्रीकृष्ण बने। सोलह हजार एक सौ आठ—रुक्मिणी आदि भगवान्‌की रानियाँ वेदोंकी ऋचाएँ तथा उपनिषद् हैं। इनके सिवा जो वेदोंकी ब्रह्मरूपा ऋचाएँ हैं, वे गोपियोंके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं। द्वेष चाणूर मल्ल है, मत्सर दुर्जय मुष्टिक है, दर्प ही कुवलयापीड हाथी है। गर्व ही आकाशचारी बकासुर राक्षस है। रोहिणी माताके रूपमें दयाका अवतार हुआ है, पृथ्वी माता ही सत्यभामा बनी हैं। महाव्याधि ही अघासुर है और साक्षात् कलि राजा कंस बना है। श्रीकृष्णके मित्र सुदामा शम हैं, अक्रूर सत्य हैं और उद्धव दम हैं। जो शंख है, वह स्वयं विष्णु है तथा लक्ष्मीका भाई होनेसे लक्ष्मीरूप भी है; वह क्षीरसमुद्रसे उत्पन्न हुआ है, मेघके समान उसका गम्भीर घोष है। दूध-दहीके भण्डारमें जो भगवान्‌ने मटके फोड़े और उनसे जो दूध-दहीका प्रवाह हुआ, उसके रूपमें उन्होंने साक्षात् क्षीरसागरको ही प्रकट किया है और उस महासागरमें वे बालक बने हुए पूर्ववत् क्रीड़ा कर रहे हैं। शत्रुओंके संहार तथा साधुजनोंकी रक्षामें वे सम्यक्‌रूपसे स्थित हैं। समस्त प्राणियोंपर अहैतुकी कृपा करनेके लिये तथा अपने आत्मजरूप धर्मकी रक्षा करनेके लिये श्रीकृष्ण प्रकट हुए हैं, यों जानना चाहिये। भगवान् शिवने श्रीहरिको अर्पित करनेके लिये जिस चक्रको प्रकट किया था, भगवान्‌के हाथमें सुशोभित वह चक्र ब्रह्मस्वरूप ही है॥ १०-१९॥

धर्मने चँवरका रूप ग्रहण किया है, वायुदेव ही वैजयन्ती मालाके रूपमें प्रकट हुए हैं, महेश्वरने अग्निके समान चमचमाते हुए खड्गका रूप धारण किया है। कश्यपमुनि नन्दजीके घरमें ऊखल बने हैं और माता अदिति रज्जुके रूपमें अवतरित हुई हैं। शंख, चक्र आदि जिनके आयुध हैं, सभी प्राणियोंके मूर्धादेशमें विद्यमान संसिद्धि अर्थात् जो परमसिद्धि है, उससे संश्लिष्ट जो बिन्दु अर्थात् तुरीयतत्त्व है, [उसे ही विद्वानोंने सर्वात्मा कृष्णतत्त्व माना है]। ज्ञानी महात्मा देवताओंके जितने स्वरूप बतलाते हैं तथा जिन-

देवरूपेभ्य एवमादि न संशयः॥ २२॥ गदा च कालिका साक्षात्सर्वशत्रुनिबर्हिणी। धनुः शार्ङ्गं स्वमाया च शरत्कालः सुभोजनः॥ २३॥ अब्जकाण्डं जगद्बीजं धृतं पाणौ स्वलीलया। गरुडो वटभाण्डीरः सुदामा नारदो मुनिः॥ २४॥ वृन्दा भक्तिः क्रिया बुद्धिः सर्वजन्तुप्रकाशिनी। तस्मान्न भिन्नं नाभिन्नमाभिर्भिन्नो न वै विभुः॥ भूमावुत्तारितं सर्वं वैकुण्ठं स्वर्गवासिनाम्॥ २५॥ सर्वतीर्थफलं लभते य एवं वेद। देहबन्धाद्विमुच्यते इत्युपनिषत्॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरिति शान्तिः॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

॥ इति अथर्ववेदीया श्रीकृष्णोपनिषत्॥

जिनको लोग देवरूप समझकर नमस्कार करते हैं, [वे सभी देवता भगवान् श्रीकृष्णके ही आश्रित हैं] इसमें संशय नहीं है। भगवान्के हाथकी गदा सारे शत्रुओंका नाश करनेवाली साक्षात् कालिका है। शार्ङ्गधनुषका रूप स्वयं वैष्णवी मायाने धारण किया है और प्राणसंहारक काल ही उनका बाण है। जगत्के बीजरूप कमलको भगवान्ने हाथमें लीलापूर्वक धारण किया है। गरुडने भाण्डीरवटका रूप ग्रहण किया है, और नारदमुनि सुदामा नामके सखा बने हैं। भक्तिने वृन्दाका रूप धारण किया है। सब जीवोंको प्रकाश देनेवाली जो बुद्धि है, वही भगवान्की क्रिया-शक्ति है। अतः ये गोप-गोपी आदि सभी भगवान्से भिन्न नहीं हैं और विभु—परमात्मा श्रीकृष्ण भी इनसे भिन्न नहीं हैं। उन्होंने (श्रीकृष्णने) स्वर्गवासियोंको तथा सारे वैकुण्ठधामको भूतलपर उतार लिया है॥ २०-२५॥

जो इस प्रकार जानता है, वह सब तीर्थोंका फल पाता है और देहके बन्धनसे मुक्त हो जाता है—यह उपनिषद् है।

॥ इस प्रकार अथर्ववेदीय श्रीकृष्णोपनिषद् समाप्त हुआ॥

श्रीराधारानीसे प्रार्थना

दुराराध्यमाराध्य कृष्णं वशे त्वं
महाप्रेमपूरेण राधाभिधाभूः।
स्वयं नामकृत्या हरिप्रेम यच्छ
प्रपन्नाय मे कृष्णरूपे समक्षम्॥
मुकुन्दस्त्वया प्रेमदोरेण बद्धः
पतंगो यथा त्वामनुभ्राम्यमाणः।
उपक्रीडयन् हार्दमेवानुगच्छन्
कृपा वर्तते कारयातो मयेष्टिम्॥

'श्रीराधे! जिनकी आराधना कठिन है, उन श्रीकृष्णकी भी आराधना करके तुमने अपने महान् प्रेमसिन्धुकी बाढ़से उन्हें वशमें कर लिया। श्रीकृष्णकी आराधनाके ही कारण तुम राधा-नामसे विख्यात हुई। श्रीकृष्णस्वरूपे! अपना यह नामकरण स्वयं तुमने किया है, इससे अपने सम्मुख आये हुए मुझ शरणागतको श्रीहरिका प्रेम प्रदान करो। तुम्हारी प्रेमडोरमें बँधे हुए भगवान् श्रीकृष्ण पतंगकी भाँति सदा तुम्हारे आस-पास ही चक्कर लगाते रहते हैं, तुम्हारे हृदयके भावका अनुसरण करके तुम्हारे पास ही रहते तथा क्रीडा करते और कराते हैं। देवि! तुम्हारी कृपा सबपर है, अतः मेरेद्वारा अपनी आराधना-सेवा करवाओ।' **[श्रीनिम्बार्काचार्यस्य श्रीराधाष्टकम् ३-४]**

श्रीराधामाधव-युगलोपासना

भारतीय सनातनधर्मके सिद्धान्तानुसार ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् एक ही हैं। (**ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते**) विभिन्न उपासक-सम्प्रदाय उस एक ही परम तत्त्वकी विभिन्न नाम-रूपोंमें विभिन्न उपासना-पद्धतियोंसे उपासना करते हैं। वह ब्रह्मतत्त्व नित्य स्वरूपभूत शक्तिसे समन्वित है। निराकारवादी भगवान्‌को सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक बतलाते हैं और साकारवादी उपासक उन्हें अपने-अपने भावानुसार लक्ष्मी-नारायण, उमा-महेश्वर, सीता-राम, राधा-कृष्ण आदि दिव्य युगल-स्वरूपोंमें भजते हैं। वस्तुत: नारायण, विष्णु, महेश्वर, राम, कृष्ण—सब एक ही तत्त्वके विभिन्न स्वरूप हैं। इसी प्रकार इनकी शक्तियाँ—श्रीलक्ष्मी, उमा, सीता, राधा आदि भी एक ही भगवत्स्वरूपा महाशक्तिकी विभिन्न लीलास्वरूप हैं। शक्ति नित्य शक्तिमान्‌के साथ है, इसीसे वह शक्तिमान् है और इसीसे वह नित्य युगलस्वरूप है। पर यह नित्य युगलस्वरूप संसारके पृथक्-पृथक् दो स्वतन्त्र व्यक्तियों या पदार्थोंके समान नहीं है। जो हैं तो सर्वथा परस्पर निरपेक्ष, भिन्न-भिन्न, पर एक समय एक साथ मिल जानेपर उन्हें 'जोड़ी' या 'युगल' कहते हैं। भगवान् वस्तुत: एक होकर ही पृथक्-पृथक् दो प्रतीत होते हैं। एकके बिना दूसरेका अस्तित्व ही नहीं है। शक्ति है तो शक्तिमान् है और शक्तिमान् है तो उसमें शक्ति रहती है। सूर्य और उसका तेज, अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति, चन्द्रमा और उसकी चाँदनी, जल और उसकी शीतलता, पद और उसका अर्थ—इनमें जैसे नित्य युगलभाव विद्यमान है, वैसे ही ब्रह्ममें भी नित्य अविनाभाव-युगलभाव है। वस्तुत: 'शक्तिसमन्वित' और 'शक्तिविरहित' कहना भी नहीं बनता। शक्ति ब्रह्मका अभिन्न स्वरूप ही है। जिस समय वह शक्ति अभिव्यक्त होकर लीलायमान नहीं होती, उस समय 'शक्तिविरहित' और जिस समय अभिव्यक्त होकर लीला करती है, उस समय उसे 'शक्तिसमन्वित' कहते हैं। शक्तियुक्त भगवत्स्वरूपके दो प्रकार हैं—'सगुण निराकार' और 'सगुण साकार'। वस्तुत: शक्तिके उनके स्वरूपगत होनेसे 'समन्वित' और 'विरहित'का कोई खास अर्थ नहीं रह जाता।

वे एकमात्र सच्चिदानन्दघन भगवान् नित्य अभेदभूमिमें ही परस्परविरोधी गुण-धर्मोंको आलिंगन किये हुए हैं। वे अपने सर्वातीत विश्वातीत रूपमें स्थित रहते हुए ही अपनी अनन्ताश्चर्यमयी अनन्तवैचित्र्य-प्रसविनी शक्तिके द्वारा अपने-आपमें ही अनन्त विश्वका सृजन करके अपने-आप ही उसका सम्भोग करते हैं। उनका अपने स्वरूपमें ही अपनी अनन्त सत्ता, अनन्त ज्ञान, अनन्त ऐश्वर्य और अनन्त माधुर्यका अनादि अनन्त अनवरत आस्वादन—नित्य रमण चल रहा है। इस नित्य युगल-स्वरूपमें ही वे दिव्य चिन्मय 'रस' और 'भाव' रूपमें व्यक्त और अव्यक्त भावसे नित्य लीलायमान हैं। इसी मधुरतम लीलामें 'रस' और 'भाव' का माधुर्य प्रकट होता है और उसीका पूर्णतम स्वरूप हैं—श्रीकृष्ण और श्रीराधा। वे दोनों नित्य अभिन्न हैं और नित्य दिव्य चिन्मय रसविग्रह और नित्य दिव्य चिन्मय भावविग्रहके रूपमें अपने स्वरूपभूत परमानन्दमय लीलारसके आस्वादनमें संलग्न हैं। श्रीकृष्ण 'रसराज' हैं और श्रीराधा 'महाभाव' हैं। वस्तुत: इनके लीला-रसास्वादनमें आस्वाद्य, आस्वादन और आस्वादक तीनों वे स्वयं ही हैं—उनके नित्य-स्वरूपका ही यह लीलाविलास है।

राधामाधवकी भक्तिकी प्राप्तिहेतु पाँच भाव मुख्यतया माने गये हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। इनमें सर्वात्मनिवेदनपूर्ण होनेके कारण 'मधुर' भाव ही परिपूर्णतया सर्वश्रेष्ठ है। शान्तभाव तो मधुर भक्तिरसकी भूमिका है; क्योंकि उसमें मन-इन्द्रियोंका पूर्ण संयम होकर भगवान्‌में ही उनकी नित्य संलग्नता हो जाती है, पर भगवान्‌के साथ कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं होता। इसलिये उसे मधुरभावके अन्तर्गत नहीं माना जाता। दास्य, सख्य, वात्सल्यमें सम्बन्धयुक्त प्रीति होती है। मधुरमें उसका पूर्ण पर्यवसान है। यह मधुरभाव जहाँ पूर्णरूपसे लीलायमान तथा आत्यन्तिकरूपसे अभिव्यक्त होता है, वही 'महाभाव' है और वही श्रीराधाजीका रूप है। रस-साम्राज्यमें प्रेमका विकास होते-होते 'महाभाव' तक पहुँचना होता है। उसके आठ स्तर माने गये हैं—प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और

महाभाव। विषयी लोगोंके मनमें निज-सुखकी नित्य कामना रहती है। वे दूसरोंके साथ जो सद्भाव, सद्व्यवहार, त्याग, संयम आदि करते हैं, सब इस सुख-कामनाको लेकर ही करते हैं। अतएव वहाँ वास्तविक पवित्र त्यागका सर्वथा अभाव है, इसलिये वह प्रेम नहीं है। वह तो काम है, जो प्रेम-साम्राज्यमें सर्वथा हेय तथा त्याज्य है।

इस प्रेमके विकासके उपर्युक्त आठ स्तरोंको इस प्रकार समझना चाहिये—

(१) विषयभोगोंके त्यागी भगवज्जनके मनमें प्रियतम श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेकी जिस पवित्र अनुपम अनन्य शुद्ध सात्त्विकी वृत्तिका उदय होता है, वह 'प्रेम' है।

(२) वह प्रेम अपने विषय (प्रियतम श्रीकृष्ण)-को पाकर जब चित्तको द्रवित कर देता है, तब प्रेमीजनके उस धनको 'स्नेह' कहा जाता है।

(३) जिसमें सर्वथा नवीन अत्यन्त माधुर्यका अनुभव होता है, स्नेहके इस प्रकारके उत्कर्षको 'मान' कहते हैं। प्रियतम श्रीकृष्णको अधिक सुख देनेके लिये हृदयके भावको छिपाकर, जिसमें वक्रता और वामताका उदय होता है, मनकी उस मधुर स्थितिका नाम 'मान' है।

(४) ममताकी अत्यन्त वृद्धिसे जब मान उत्कर्षको प्राप्त होता है, तब प्रियतमसे अभिन्नता बढ़ जाती है और हृदयमें महान् हर्ष छा जाता है। इस अवस्थामें प्राण, मन, बुद्धि, शरीर, खान-पान तथा वस्त्राभूषण आदि सभीमें प्रियतमसे कुछ भी पृथक्ता नहीं रह जाती, तब उसको 'प्रणय' कहते हैं।

(५) प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनेकी आशामें जब दुःख भी परम सुख हो जाता है और अमिलनमें सभी सुख अपार दुःखमय प्रतीत होते हैं, यों 'प्रणय' जब उत्कर्षको प्राप्तकर इस स्थितिपर पहुँच जाता है, तब उस पावन प्रेमका नाम 'राग' होता है।

(६) जब नित्य अनुभूत प्रियतम श्रीकृष्ण प्रतिपल नये-से-नये दिखायी देते हैं, प्रतिपल वे अधिक-से-अधिक अत्यन्त महान्, अनुपम पवित्र, सरल, सुन्दर और मधुर दिखायी देते हैं; राग जब उत्कर्षको प्राप्त होकर सीमातीत रूपसे बढ़ जाता है, तब जो ऐसे लक्षण प्रकट होते हैं, वे 'अनुराग'के नामसे कहे जाते हैं।

(७) जब प्राणत्यागसे भी अधिक अत्यन्त घोर तथा कठिन दुःख सर्वथा तुच्छ हो जाता है; वरं प्रियतम श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये जब वह परम मधुर तथा परम सुखमय एवं नित्य वांछनीय हो जाता है और श्रीकृष्णमिलन एवं एकमात्र उनके सुखके लिये मनमें अपरिमित चाव बढ़ जाता है; तब वह बढ़ा हुआ 'अनुराग' ही मंगलमय मधुरतामय 'भाव' नाम धारण करता है।

(८) यह भाव जब उच्चस्तरपर पहुँच जाता है, तब उस परम मधुरतम, परम निर्मल, परम विशुद्ध, सर्वदिक्-पवित्र भावको 'महाभाव' कहते हैं। इस महाभावके परमोज्ज्वल, नितान्त पवित्र, निर्मल दिव्य स्वर्णसदृश 'मोदन' और 'मादन' दो सर्वोच्च स्तर हैं, जो उसके पूर्ण प्राकट्यका परिचय देते हैं। इनमें 'मादन' नामक 'महाभाव' परम दुर्लभ तथा स्वाभाविक ही स्वतन्त्र है। इसका प्रकाश केवल श्रीराधाजीमें ही है। स्नेहसे मोदनतक सभी स्तर श्रीकृष्णमें तथा समस्त व्रजांगनाओंमें—मधुर भावमयी रागात्मिका प्रीतिसे संयुक्त गोपरमणियोंमें हैं। व्रजसुन्दरियाँ इन्हीं विभिन्न स्तरोंके प्रेमसे श्रीकृष्ण-सुखार्थ जो श्रीकृष्णकी नित्य-नवोत्साहपूर्वक सहज सेवा—उपासना करती हैं, श्रीराधाजी उनमें मुख्य तथा सर्वप्रधान श्रीकृष्णसेविका या श्रीकृष्णाराधिका हैं। अतएव श्रीकृष्ण इस प्रेमके 'विषय' हैं। साथ ही इस प्रेमके समस्त स्तर श्रीकृष्णमें भी हैं। अतएव वे इस प्रेमके 'आश्रय' भी हैं अर्थात् वे भी व्रजसुन्दरियोंको सुख पहुँचाना चाहते हैं। गोपरमणियोंमें श्रीराधा 'मादनाख्य महाभाव'रूपा हैं। इसलिये वे परम आश्रयरूपा हैं और वे श्रीकृष्णको सुखी देखकर उससे अनन्तगुना सुखलाभ करती हैं। श्रीराधाजीके इस सुखकी स्थितिपर विचार करके श्रीकृष्ण इस प्रेमके आश्रय बनते हैं और वे नित्य श्रीराधाको आराध्य मानकर उनकी सेवा-उपासना करके उन्हें सुख पहुँचाना चाहते हैं। यह उनका परस्पर आश्रय-विषयसम्बन्ध नित्य है। यही प्रेमका वह सर्वोच्च स्तर है, जहाँतक मानवबुद्धि अनुमान लगा सकती है। श्रीकृष्ण और श्रीराधा नित्य एक हैं और वे एक-दूसरेमें सदा समाये हुए हैं; अतएव एकको उपासनासे दोनोंकी उपासना हो जाती है। तथापि साधक चाहें तो एक साथ

'युगल-स्वरूप' की उपासना कर सकते हैं। पर स्मरण रखना चाहिये कि युगल-स्वरूपकी उपासना साधक अपनी-अपनी रुचिके अनुसार श्रीलक्ष्मीनारायण, श्रीगौरीशंकर, श्रीसीताराम, श्रीराधामाधव आदि किसी भी युगल-स्वरूपकी कर सकते हैं। भगवान्‌के सभी लीलारूप तथा भगवतीके सभी लीलारूप भी एक ही परमतत्त्वके विभिन्न स्वरूप हैं।

श्रीराधा-माधव दोनों मंगल स्वरूपोंके पृथक्-पृथक् विग्रहकी चित्रपट, मूर्ति अथवा मानस—किसी भी रूपमें उपासना की जा सकती है। पर उसमें श्रीराधामाधवकी मूर्तियाँ अत्यन्त सौन्दर्य-माधुर्यमयी होनी चाहिये क्योंकि; श्रीराधामाधव अनन्त दिव्य रस-समुद्र हैं।

कोटि-कोटि शत मदन-रति सहज विनिन्दक रूप।
श्रीराधा-माधव अतुल शुचि सौन्दर्य अनूप॥
मुनि-मन-मोहन, विश्वजन-मोहन मधुर अपार।
अनिर्वाच्य, मोहन-स्वमन, चिन्मय सुख रस-सार॥
शक्ति, भूति, लावण्य शुचि, रस, माधुर्य अनन्त।
चिदानन्द-सौन्दर्य-रस-सुधा-सिन्धु, श्रीमन्त॥

श्रीमाधव नित्य निरुपम निरुपाधि चिन्मय नीलकान्तिमय परमोज्ज्वल मरकतमणि हैं और श्रीराधा नित्य निरुपम निरुपाधि चिन्मय स्वर्णकेतकी-सुमन हैं। दोनों ही अपने-अपने सौन्दर्य-माधुर्यसे परस्पर नित्य आकर्षणशील हैं। दोनों ही दोनोंके गुणोंपर नित्य मुग्ध हैं। एक ही परमतत्त्व दो रूपोंमें अपने-अपने अन्तरके मधुरतम भावोंसे एक-दूसरेके प्रति लोलुप होकर निरुपम निरुपाधि अनिर्वचनीय सुषमासे सम्पन्न और परस्परके मधुरतम सुखविधानमें संलग्न है।

इन श्रीराधा-माधवके सर्वविध सात्त्विक शृंगारयुक्त दिव्य चिन्मय युगल-विग्रहकी उपासना साधक अपने-अपने भावानुसार कर सकते हैं।

अब यहाँ श्रीराधामाधव-युगलकी पूजाकी संक्षिप्त विधि लिखी जाती है। मानसमें या श्रीविग्रहकी स्थापना करके साधक पूजा कर सकते हैं।

श्रीवृन्दावनमें यमुनाके तीरपर अनेक प्रकारके वृक्ष-लताओंका एक बृहत् वन-कुंज है। भाँति-भाँतिके पुष्प खिले हुए हैं और उनपर मधुपान-मत्त भ्रमरोंके समुदाय गुंजार कर रहे हैं। यमुनाजीमें वायुके झोंकोंसे सुन्दर मन्द-मन्द तरंगें नाच रही हैं; भाँति-भाँतिके कमल खिल रहे हैं। वहीं श्रीराधामाधव एक कदम्ब वृक्षके नीचे विराजित हैं। श्रीकृष्णके वाम पार्श्वमें श्रीराधिकाजी हैं। इस प्रकार ध्यान करके वृन्दावनकी कल्पना करे। तदनन्तर प्रीतिपूर्वक श्रीराधामाधवका स्मरण तथा ध्यान करे—

तत्पश्चात् मन-ही-मन श्रीराधामाधवका आवाहन करके निम्नलिखित श्लोकोंसे श्रीराधामाधवको प्रणाम करे—

हे कृष्ण करुणासिन्धो दीनबन्धो जगत्पते।
गोपेश गोपिकाकान्त राधाकान्त नमोऽस्तु ते॥
तप्तकाञ्चनगौराङ्गि राधे वृन्दावनेश्वरि।
वृषभानुसुते देवि त्वां नमामि हरिप्रिये॥

तदनन्तर श्रीराधामाधवके चरणोंका विशुद्ध प्रेम प्राप्त करनेके उद्देश्यसे पूजनका संकल्प करे और पूजा आरम्भ कर दे—

आसन—

इदमासनं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।
'श्रीकृष्ण! प्रभो! इदमासनं सुखमास्यताम्'
इदमासनं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।
'श्रीराधे! भगवति! इदमासनं सुखमास्यताम्।'

इस मन्त्रके द्वारा सुमनोहर आसन प्रदान करे। अभावमें पुष्प अर्पण करे।

स्वागत—निम्नलिखित वाक्यके द्वारा सादर अभ्यर्थना करके कुशल-प्रश्न करे—

यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवाः सर्वार्थसिद्धये।
तस्य ते परमेशान! सुस्वागतमिदं वपुः॥
'भो भगवन् श्रीकृष्ण! स्वागतं सुस्वागतम्।
हे श्रीकृष्ण! प्रभो! स्वागतं करोषि॥'
यस्या दर्शनमिच्छन्ति देवाः सर्वार्थसिद्धये।
तस्यास्ते राधिके देवि! सुस्वागतमिदं वपुः॥
'भो भगवति श्रीराधिके! स्वागतं सुस्वागतम्।
हे राधिके! परमेश्वरि! स्वागतं करोषि॥'

पाद्य—किसी चाँदी, ताम्र या पीतलके पात्रमें चन्दन-सहित पुष्प और तुलसीदल डालकर जल भर ले और—'**एतत् पाद्यं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।**'—कहकर श्रीकृष्णके चरणोंमें जल अर्पण करे।

इसी प्रकार—'**एतत् पाद्यं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।**'—बोलकर श्रीराधाके चरणोंमें जल अर्पण करे।

अर्घ्य—शंखमें जल लेकर—'**इदमर्घ्यं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।**' बोलकर श्रीकृष्णको अर्घ्यजल प्रदान करे। '**इदमर्घ्यं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।**' बोलकर श्रीराधाको अर्घ्यजल अर्पण करे।

आचमनीय—दूसरे पात्रमें जल लेकर—'**इदमाचमनीयं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।**' बोलकर श्रीकृष्णको आचमनीय जल अर्पण करे। '**इदमाचमनीयं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।**' कहकर श्रीराधाको आचमनीय जल अर्पण करे।

मधुपर्क—काँसा अथवा चाँदीके पात्रमें (ताँबेका पात्र न हो) मधुपर्क (मधु, घृत, शर्करा, दधि और जल—अभावमें पुष्प, तुलसी और जल) लेकर—'**इदं मधुपर्कं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः**'—कहकर मधुपर्क-सामग्रीको श्रीकृष्णके मुखमें अर्पण करे। '**इदं मधुपर्कं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।**'—कहकर मधुपर्क-सामग्रीको श्रीराधाके मुखमें अर्पण करे।

पुनराचमनीय—एक पात्रमें जल लेकर '**इदं पुनराचमनीयं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।**'—बोलकर श्रीकृष्णके मुखमें अर्पण करे। इसी प्रकार '**इदं पुनराचमनीयं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।**'—बोलकर श्रीराधाके मुखमें अर्पण करे।

स्नान—किसी शुद्ध ताम्रपात्र या शङ्खमें कर्पूर, चन्दन, सुवासित शुद्ध जल लेकर—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥

—यह मन्त्र बोलकर जलपर अंकुशमुद्रा दिखाकर तीर्थोंका आवाहन करे। तदनन्तर—

वृन्दावनविहारेण श्रान्ते विश्रान्तिकारकम्।
चन्द्रपुष्करपानीयं गृहाण पुरुषोत्तम॥

—बोलकर श्रीकृष्णको स्नान कराये—इसी प्रकार श्रीराधाको स्नान कराये।

वस्त्र—'**इदं परिधेयवस्त्रम् इदमुत्तरीयवासश्च श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।**'—यह मन्त्र बोलकर बहुत बढ़िया महीन पीला वस्त्र तथा उत्तरीय वस्त्र भगवान्‌को पहना दे। इसी प्रकार—

'**इदं परिधेयवस्त्रम् कञ्चुकीम् उत्तरीयवासश्च श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।**' यह मन्त्र बोलकर बढ़िया नीले रंगकी साड़ी, कंचुकी और किनारीदार ओढ़नी श्रीराधिकाजीके अर्पण करे।

भूषण—'**इमानि भूषणानि श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।**' बोलकर रत्न-स्वर्ण आदिसे निर्मित अलंकार (हार, मुकुटमणि, कड़े आदि गहने) भगवान्‌को पहना दे।

इसी प्रकार—

'**इमानि भूषणानि श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।**'—बोलकर राजरानियोंके पहनने-योग्य रत्न-स्वर्णादिके गहने श्रीराधाजीको अर्पण करे।

गन्ध—केसर-कर्पूर-मिश्रित चन्दन लेकर '**इमं गन्धं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।**'—कहकर चन्दनको श्रीकृष्णके श्रीअंगोंपर लेपन करे या उन्हें अर्पण करे। '**इमं गन्धं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।**'—कहकर चन्दनको श्रीराधाके श्रीअंगोंपर लेपन करे या उन्हें अर्पण करे।

पुष्प—सुगन्धित नाना प्रकारके पुष्प लेकर '**इमानि पुष्पाणि श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।**'—बोलकर श्रीकृष्णके श्रीचरणोंपर अर्पण करे। '**इमानि पुष्पाणि श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।**' बोलकर पुष्प श्रीराधाके श्रीचरणोंपर अर्पण करे।

तुलसीदल—इसके अनन्तर चन्दनसहित तुलसीदल लेकर '**इदं सचन्दनं तुलसीदलं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।**'—कहकर श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें आठ बार अर्पण करे।

तदनन्तर श्रीकृष्णके आठ नामोंका उच्चारण करते हुए आठ पुष्पांजलियाँ श्रीकृष्णको अर्पण करे—

श्रीकृष्णाय नमः। श्रीवासुदेवाय नमः। श्रीनारायणाय नमः। श्रीदेवकीनन्दनाय नमः। श्रीयदुश्रेष्ठाय नमः। श्रीवार्ष्णेयाय नमः। श्रीअसुराक्रान्तभूभारहारिणे नमः। श्रीधर्मसंस्थापनार्थाय नमः।

श्रीराधाके आठ नामोंका उच्चारण करते हुए आठ पुष्पांजलियाँ श्रीराधाको अर्पण करे—

श्रीराधिकायै नमः। श्रीरासेश्वर्यै नमः। श्रीकृष्णकान्तायै नमः। श्रीनित्यनिकुंजेश्वर्यै नमः। श्रीवृषभानुसुतायै नमः। श्रीगान्धर्विकायै नमः। श्रीवृन्दावन-

महेश्वर्यै नमः। श्रीकृष्णप्राणाधिकादेव्यै नमः।

धूप—पीतल या चाँदीकी धूपदानीमें धूप रखकर—**'इमं धूपं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः,'**—कहकर श्रीकृष्णको धूप अर्पण करे। **'इमं धूपं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।'** कहकर श्रीराधाको धूप अर्पण करे।

दीप—गोघृत या सुगन्धित तैलके द्वारा जलाये हुए दीपकको **'इमं दीपं श्रीकृष्णाय निवेदयामि नमः।'**—बोलकर बायें हाथसे घण्टी बजाते हुए एवं दायें हाथमें दीपकको लेकर आरतीकी भाँति घुमाते हुए श्रीकृष्णको अर्पण कर दे। **'इमं दीपं श्रीराधिकायै निवेदयामि नमः।'**—कहकर दीपकको श्रीराधाको अर्पण कर दे।

नैवेद्य—पवित्र थाली एवं कटोरोंमें भोज्य पदार्थ सजाकर धुली हुई चौकी या पाटेपर रख दे और पीनेके लिये एक दूसरे पात्रमें सुवासित जल भरकर रख दे। फिर **'अस्त्राय फट्'** मन्त्र बोलकर चक्रमुद्रा दिखलाते हुए नैवेद्यका संरक्षण करे। तदनन्तर किसी शुद्ध पात्रमें स्थापित जलमें **'यं'** वायु बीजका १२ बार जप करके उस जलके द्वारा नैवेद्यका प्रोक्षण करे और दाहिने हाथमें **'रं'** बीजका स्मरण करते हुए दाहिने हाथकी पीठपर बायाँ हाथ रखकर उस वह्नि-बीजका उच्चारण करे। फिर बायें हाथकी हथेलीपर अमृत-बीज **'ठं'** का स्मरण करके बायें हाथकी पीठपर दायाँ हाथ रखकर नैवेद्यको अमृत-धारासे सिक्त करे। पीछे चन्दन और पुष्प लेकर—**'एते गन्धपुष्पे श्रीकृष्णाय नमः।'**—एवं **'एते गन्धपुष्पे श्रीराधिकायै नमः।'**—बोलकर नैवेद्य, श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाका क्रमशः अर्चन करे। फिर बायें हाथसे नैवेद्यके पात्रका स्पर्श करके दाहिने हाथसे गन्ध, पुष्प और जल लेकर **'ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।'**—इस मन्त्रका उच्चारण करके—**'इदं नैवेद्यं श्रीकृष्णाय कल्पयामि।' इदं नैवेद्यं श्रीराधिकायै कल्पयामि।'**—बोलकर जलको भूमिपर छोड़ दे। तदनन्तर प्रत्येक नैवेद्यके पात्रमें तुलसीदल रखे। फिर दोनों हाथोंद्वारा नैवेद्यपात्रको उठाकर भक्ति और दैन्यके साथ **'निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्हरे।'**—इस मन्त्रका उच्चारण करके दोनोंको नैवेद्य अर्पण करे। पीछे **'अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा'**—बोलकर श्रीराधा-माधवके हाथोंमें जल देकर बायें हाथके द्वारा 'ग्रास-मुद्रा' दिखावे। तदनन्तर **'प्राणाय स्वाहा।' 'अपानाय स्वाहा।' 'व्यानाय स्वाहा।' 'उदानाय स्वाहा।' 'समानाय स्वाहा।'**—इन पाँच मन्त्रोंका क्रमशः उच्चारण करके प्राणादि पाँच मुद्राएँ दिखावे।

पानीयोदक—फिर तुलसीपत्रसे समन्वित सुवासित निर्मल जलसे पूर्ण पात्र **'एतत् पानीयोदकं श्रीकृष्णाय निवेदयामि।'** एवं **'एतत् पानीयोदकं श्रीराधिकायै निवेदयामि।'** बोलकर श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाको अर्पण करे। तदनन्तर नैवेद्यपर दस बार उपर्युक्त अष्टादशाक्षर मन्त्रका जप करके घंटी बजाये और पर्दा लगाकर पूजा घरसे बाहर आ जाय और १०८ बार उसी मन्त्रका जप करे तथा मन-ही-मन यह भावना करे कि श्रीराधामाधव भोजन कर रहे हैं। इसके पश्चात् भोजनसमाप्तिके बाद द्वार खोलकर या पर्दा हटाकर—

आचमन—जलके द्वारा **'इदमाचमनीयं श्रीकृष्णाय निवेदयामि।' 'इदमाचमनीयं श्रीराधिकायै निवेदयामि।'** कहकर आचमनके लिये जल प्रदान करे।

ताम्बूल-अर्पण—इसी प्रकार **'एतत् ताम्बूलं श्रीकृष्णाय निवेदयामि।' 'एतत् ताम्बूलं श्रीराधिकायै निवेदयामि।'**—कहकर श्रीकृष्ण-राधाको ताम्बूल अर्पण करे। बादमें माला-चन्दन आदि अर्पण करे।

आरती—आसनपर बैठकर कर्पूर मिले हुए गोघृतमें रूईकी बत्तियाँ भिगोकर पाँच दीपककी आरती बनाये और तर्जनी तथा अँगूठेसे उसे पकड़कर दाहिनी ओरसे बायीं ओर और बायीं ओरसे दाहिनी ओर तीन बार या सात बार ले जाये। गात्रमार्जनीय वस्त्र और तुलसीके द्वारा भी इसी प्रकार आरती करे।

पुष्पांजलि—फिर मूल-मन्त्रका स्मरण करते हुए दीपकपर धेनुमुद्रा दिखाकर श्रीराधामाधवको पुष्पांजलि अर्पण करे। इसके बाद तीन या पाँच बार शंखध्वनि करके पूजा समाप्त करे। अन्तमें निम्नलिखित श्लोकोंके द्वारा स्तुति करे—

श्रीराधा-माधव युगलसे कृपाभिक्षा

राधे! वृन्दावनाधीशे! करुणामृतवाहिनि।
कृपया निजपादाब्जे दास्यं मह्यं प्रदीयताम्॥
तवास्मि राधिकानाथ! कर्मणा मनसा गिरा।
कृष्णकान्ते! तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम॥

योऽहं ममास्ति यत् किंचिदिहलोके परत्र च।
तत् सर्वं भवतोरद्य चरणेषु मयार्पितम्॥
संसारसागरान्नाथौ पुत्रमित्रग्रहाकुलात्।
गोप्तारौ मे युवामेव प्रपन्नभयभञ्जनौ॥
शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानिकराकरौ।
प्रसादं कुरुतं दास्यं मयि दुष्टेऽपराधिनि॥

अपराध-क्षमापन

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन!
यत्पूजितं मया देव! परिपूर्णं तदस्तु मे॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
दासोऽयमिति मां मत्वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि॥
तत्पश्चात् प्रसाद-वितरण करे।

श्रीराधारानीके इक्यावन प्रधान दिव्यगुण

जो श्रीराधाजी अचिन्त्यानन्तदिव्यगुण-स्वरूप, सुर-ऋषि-मुनि-मन-आकर्षक, स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णके मनको अपने स्वाभाविक दिव्यगुणोंसे नित्य आकर्षित रखनेवाली हैं, जो विशुद्ध श्रीकृष्ण-प्रेम-रत्नकी खान हैं, सती अनसूया-अरुन्धती आदि जिनके पातिव्रतधर्मकी, लक्ष्मी-पार्वती आदि जिनके सौन्दर्य-सौभाग्यकी इच्छा करती हैं, श्रीकृष्ण भी जिनके सद्गुणोंकी गणना नहीं कर सकते और स्वयं श्रीकृष्ण जिनके गुणोंके वशमें हुए रहते हैं, उन दिव्यगुणमयी राधाके असंख्य गुण हैं। अनुभवी भक्तोंने विविध प्रकारसे उनके कुछ गुणोंके दर्शन किये हैं और उनमेंसे कुछ मुख्य-मुख्य गुणोंके नाम बताये हैं। उन्हींमेंसे दो स्थलोंपर बताये हुए कुल (२५+२६) इक्यावन प्रधान सहज गुण ये हैं—

१-मधुरा, २-नित्य-नव-वयस्का, ३-चंचलकटाक्षविशिष्टा, ४-उज्ज्वलमृदुमधुरहास्यकारिणी, ५-चारुसौभाग्यरेखाढ्या (हाथ-पैर आदि अंगोंपर सौभाग्यसूचक रेखाओंवाली), ६-गन्धोन्मादितमाधवा (अपनी अंग-सुगन्धसे श्रीकृष्णको उन्मत्त बनानेवाली), ७-संगीतप्रसराभिज्ञा (संगीतविद्यामें निपुणा), ८-रम्यवाक् (मधुरभाषिणी), ९-नर्मपण्डिता, १०-विनीता, ११-करुणापूर्णा (करुणासे पूर्ण हृदयवाली), १२-विदग्धा, १३-पाटवान्विता (सभी कामोंमें चतुरा), १४-लज्जाशीला, १५-सुमर्यादा (प्रेम-मर्यादाकी भलीभाँति रक्षा करनेवाली), १६-धैर्यशालिनी, १७-गाम्भीर्यशालिनी (गम्भीरहृदयवाली), १८-सुविलासा (हावभावादिके द्वारा अपने मनोभावोंको समझानेमें चतुर), १९-महाभाव-परमोत्कर्षतर्षिणी (विशुद्ध त्यागमय प्रेमके उत्तरोत्तर उत्कर्षके लिये व्यग्र रहनेवाली), २०-गोकुल-प्रेमवसति (गोवंशके प्रति प्रेमकी निवासस्थली), २१-जगत्-श्रेणीलसद्-यशा (सारे लोकोंमें जिनका यश व्याप्त है, ऐसी), २२-गुर्वर्पित-गुरुस्नेहा (गुरुजनोंके पूर्ण स्नेहको प्राप्त), २३-सखिप्रणयितावशा (सखियोंके प्रेमके वशीभूत), २४-कृष्णप्रियावलिमुख्या (श्रीकृष्णकी प्रियाओंमें मुख्य) और २५-नित्याधीनमाधवा (श्रीमाधव जिनके नित्य अधीन हैं)।

१-अखिलविकारशून्या-नित्यानन्दमयी, २-भोगत्याग समर्पितात्मा, ३-अचिन्त्यानन्तदिव्यपरमानन्दस्वरूपा, ४-प्रीतिपराकाष्ठामहाभावस्वरूपा, ५-स्वसुखानुसंधानकल्पनालेशशून्या, ६-पतिव्रताशिरोमणि अरुन्धती-अनसूयादिद्वारा पूजनीया, ७-श्यामविधुवदनचकोरी, ८-श्रीकृष्णमनोमनस्विनी, ९-श्रीकृष्णप्राणप्राणा, १०-ऋषिमुनिमनःकर्षकचित्ताकर्षिणी, ११-श्रीकृष्णहृदया, १२-श्रीकृष्णजीवना, १३-श्रीकृष्णस्मृतिरूपा, १४-श्रीकृष्णसुखैकमना, १५-श्रीकृष्णानन्दप्रवर्धिनी, १६-श्रीकृष्णप्राणाधिदेवी, १७-श्रीकृष्णाराध्या, १८-श्रीकृष्णाराधिका, १९-नित्यकृष्णानुकूल्यमयी, २०-श्रीकृष्णप्रेमतरंगिणी, २१-श्रीकृष्णार्पितमनोबुद्धि, २२-श्रीकृष्णसेवामयी, २३-श्रीकृष्णाश्रया, २४-श्रीकृष्णाश्रिता, २५-श्रीकृष्णकीर्तिध्वजा, २६-श्रीकृष्णात्मस्वरूपा।

इनमें श्रीराधाका एक-एक गुण उनके जीवनका एक-एक इतिहास है। ये गुण भक्तोंके आदर्श ज्योतिर्मय पथ हैं, कर्मयोगियोंके त्यागकी शिक्षा देनेवाले हैं और ज्ञानियोंके तत्त्वका साक्षात्कार करानेवाले हैं।

श्रीराधा-माधवकी अष्टकालीन मानसी सेवा

सर्वप्रथम साधक श्रीव्रजधाममें अपनी अवस्थितिका चिन्तन करें। फिर अपनी-अपनी गुरुस्वरूपा किसी मंजरीके अनुगत होकर, एक परम सुन्दरी गोपकिशोरीरूपवाली अपनी सिद्धमंजरी-देहकी भावना करें। तत्पश्चात् श्रीललितादि सखीरूपा तथा श्रीरूपमंजरी आदि मंजरीरूपा नित्यसिद्धा व्रजकिशोरियोंकी आज्ञाके अनुसार परम प्रेमपूर्वक मानसमें दिवानिशि श्रीराधा-गोविन्दकी इस प्रकार सेवा करें—

निशान्तकालीन सेवा

१. निशाका अन्त (ब्राह्ममुहूर्तका[१] आरम्भ) होनेपर श्रीवृन्दादेवीके आदेशसे क्रमशः शुक, सारिका, मयूर, कोकिल आदि पक्षियोंके कलरव करनेपर श्रीराधा-कृष्ण-युगलकी नींद टूटनेके पूर्व उठना।

२. श्रीराधा और श्रीकृष्णके एक-दूसरेके श्रीअंगमें चित्र-निर्माण करनेके समय दोनोंके हाथोंमें तूलिका और विलेपनके योग्य सुगन्धिद्रव्य अर्पण करना।

३. श्रीराधा-कृष्ण-युगलके पारस्परिक श्रीअंगोंमें शृंगार करनेके समय दोनोंके हाथोंमें मोतियोंका हार, माला आदि अर्पण करना।

४. मंगल-आरती करना।

५. कुंजसे श्रीवृन्दावनेश्वरीके घर लौटते समय ताम्बूल और जलपात्र लेकर उनके पीछे-पीछे चलना।

६. जल्दी चलनेके कारण टूटे हुए हार आदि तथा बिखरे हुए मोती आदिको आँचलमें बाँधना।

७. चर्वित ताम्बूल आदिको सखियोंमें बाँटना।

८. घर (यावट ग्राम) पहुँचकर श्रीराधिकाका अपने मन्दिरमें शयन करना।

प्रातः[२] कालीन सेवा

१. ब्राह्ममुहूर्त बीतनेपर (अर्थात् प्रातःकाल होनेपर) श्रीराधारानीके द्वारा छोड़े हुए वस्त्रोंको धोकर तथा अलंकार, ताम्बूल-पात्र और भोजन-पान आदिके पात्रोंको माँज-धोकर साफ करना।

२. चन्दन घिसना और उत्तम रीतिसे केसर पीसना।

३. घरवालोंकी बोली सुनकर सशंकित-सी हुई श्रीवृन्दावनेश्वरीका जगकर उठ बैठना।

४. श्रीमतीको मुख धोनेके लिये सुवासित जल और दातौन आदि समर्पण करना।

५. उबटन अर्थात् शरीर स्वच्छ करनेके लिये सुगन्धित-द्रव्य तथा चतुस्सम अर्थात् चन्दन, अगर, केसर और कुंकुमका मिश्रण, नेत्रोंमें आँजनेके लिये अंजन और अंगराग आदि प्रस्तुत करना।

६. श्रीराधारानीके श्रीअंगोंमें अत्युत्कृष्ट सुगन्धित तेल लगाना।

७. तत्पश्चात् सुगन्धित उबटनद्वारा उनके श्रीअंगका मार्जन करते हुए स्वच्छ करना।

८. आँवला और कल्क (सुगन्धित खली) आदिके द्वारा श्रीमतीके केशोंका संस्कार करना।

९. ग्रीष्मकालमें ठंडे जल और शीतकालमें किंचित् उष्ण जलसे श्रीराधारानीको स्नान कराना।

१०. स्नानके पश्चात् सूक्ष्म वस्त्रके द्वारा उनके श्रीअंग और केशोंका जल पोंछना।

११. श्रीवृन्दावनेश्वरीके श्रीअंगमें श्रीकृष्णके अनुरागको बढ़ानेवाला स्वर्णखचित (जरीका) सुमनोहर नीला वस्त्र (साड़ी) पहनाना।

१२. अगुरु-धूमके द्वारा श्रीमतीकी केश-राशिको सुखाना और सुगन्धित करना।

१३. श्रीमतीका शृंगार[३] करना।

---

१. सूर्योदयसे पूर्व ६ घड़ी (दो घंटे, २४ मिनट)-का काल 'ब्राह्ममुहूर्त' कहलाता है।

२. सूर्योदयके उपरान्त छः दण्डतक प्रातःकाल या संगवकाल रहता है।

३. श्रीराधाके निम्नांकित सोलह शृंगार गिनाये गये हैं—(१) स्नान, (२) नाकमें बुलाक धारण कराना, (३) नीली साड़ी धारण कराना, (४) कमरमें करधनी बाँधना, (५) वेणी गूँथना, (६) कानोंमें कर्णफूल धारण कराना, (७) अंगोंमें चन्दनादिका लेप करना, (८) बालोंमें फूल खोंसना, (९) गलेमें फूलोंका हार धारण कराना, (१०) हाथमें कमल धारण कराना, (११) मुखमें पान देना, (१२) ठोड़ीपर घिसी हुई कस्तूरीकी काली बेंदी लगाना, (१३) नेत्रोंमें काजल आँजना, (१४) अंगोंको पत्रावलीसे चित्रित करना, (१५) चरणोंमें महावर देना और (१६) ललाटपर तिलक लगाना।

१४. उनके श्रीचरणोंको महावरसे रँगना।

१५. सूर्यकी पूजाके लिये सामग्री तैयार करना।

१६. भूलसे श्रीवृन्दावनेश्वरीके द्वारा कुंजमें छोड़े हुए मोतियोंके हार आदि उनके आज्ञानुसार वहाँसे लाना।

१७. पाकके लिये श्रीमतीके नन्दीश्वर (नन्दगाँव) जाते समय ताम्बूल तथा जलपात्र आदि लेकर उनके पीछे-पीछे गमन करना।

१८. श्रीवृन्दावनेश्वरीके पाक तैयार करते समय उनके कथनानुसार कार्य करना।

१९. सखाओंसहित श्रीकृष्णको भोजनादि करते देखते रहना।

२०. पाक तैयार करने और परोसनेके कार्यसे थकी हुई श्रीवृन्दावनेश्वरीकी पंखे आदिके द्वारा हवा करके सेवा करना।

२१. श्रीकृष्णका प्रसाद आरोगनेके समय भी श्रीराधारानीकी उसी प्रकार पंखेकी हवा आदिके द्वारा सेवा करना।

२२. गुलाब आदि पुष्पोंके द्वारा सुगन्धित शीतल जल समर्पण करना।

२३. कुल्ला करनेके लिये सुगन्धित जलसे पूर्ण आचमनीय पात्र आदि समर्पण करना।

२४. इलायची-कपूर आदिसे संस्कृत ताम्बूल समर्पण करना।

२५. बदले हुए पीताम्बर आदि सुबलके द्वारा श्रीकृष्णको लौटाना।

पूर्वाह्ण[1]कालीन सेवा

१. बाल-भोग (कलेऊ) आरोगकर श्रीकृष्णके गोचारणके लिये वन जाते समय श्रीराधाजी सखियोंके साथ कुछ दूर श्रीकृष्णके पीछे-पीछे जाकर जब यावट ग्राम (घर)-को लौटें, उस समय ताम्बूल और जल-पात्र आदि लेकर पीछे-पीछे गमन करना।

२. श्रीराधा-गोविन्दके पारस्परिक संदेश उनके पास पहुँचाकर उनको संतुष्ट करना।

३. सूर्य-पूजाके बहाने (अथवा कभी-कभी वन-शोभा-दर्शनके बहाने) श्रीराधाकुण्डपर श्रीकृष्णसे मिलन करानेके हेतु श्रीमतीको अभिसार कराना और उस समय ताम्बूल और जल-पात्र आदि लेकर उनके पीछे-पीछे गमन करना।

मध्याह्न[2]कालीन सेवा

१. श्रीकुण्ड अर्थात् राधाकुण्डपर श्रीराधा और श्रीकृष्णके मिलनका दर्शन करना।

२. कुंजमें विचित्र पुष्प-मन्दिर आदिका निर्माण करना और कुंजको साफ करना।

३. पुष्पशय्याकी रचना करना।

४. श्रीयुगलके श्रीचरणोंको धोना।

५. अपने केशोंके द्वारा उनके श्रीचरणोंका जल पोंछना।

६. चँवर डुलाना।

७. मधुक (महुए)-के पुष्पोंसे पेय मधु बनाना।

८. मधुपूर्ण पात्र श्रीराधा-कृष्णके सम्मुख धारण करना।

९. इलायची, लौंग, कपूर आदिके द्वारा सुवासित ताम्बूल अर्पण करना।

१०. श्रीयुगल-चर्वित कृपाप्राप्त ताम्बूलका आस्वादन करना।

११. श्रीराधा-कृष्ण-युगलकी विहाराभिलाषाका अनुभव करके कुंजसे बाहर चले आना।

१२. कस्तूरी-कुंकुम आदिके अनुलेपनद्वारा सुवासित श्रीअंगके सौरभको ग्रहण करना।

१३. नूपुर और कंगन आदिकी मधुर ध्वनिका श्रवण करना।

१४. श्रीयुगलके श्रीचरण-कमलोंमें ध्वजा, वज्र, अंकुश आदि चिह्नोंके दर्शन करना।

१५. श्रीयुगलके विहारके पश्चात् कुंजके भीतर

१- संगवकालके उपरान्त छः दण्डके कालकी 'पूर्वाह्ण' संज्ञा है।

२- पूर्वाह्णके उपरान्त बारह दण्डका काल मध्याह्नके नामसे निर्दिष्ट है।

पुनः प्रवेश करना।

१६. श्रीयुगलके पैर सहलाना और हवा करना।

१७. सुगन्धित पुष्प आदिसे वासित शीतल जल प्रदान करना।

१८. श्रीराधा-रानीके श्रीअंगोंके लुप्त चित्रोंका पुनः निर्माण करना और तिलक-रचना करना।

१९. श्रीमतीके श्रीअंगोंमें चतुस्समके गन्धका अनुलेपन करना।

२०. टूटे हुए मोतियोंके हारको गूँथना।

२१. पुष्प-चयन करना।

२२. वैजयन्ती माला तथा हार एवं गजरे आदि गूँथना।

२३. हास-परिहास-रत श्रीयुगलके श्रीहस्तकमलोंमें मोतियोंका हार तथा पुष्पोंकी माला आदि प्रदान करना।

२४. हार-माला आदि पहनाना।

२५. सोनेकी कंघीद्वारा श्रीमतीके केशोंको सँवारना।

२६. श्रीमतीकी वेणी बाँधना।

२७. उनके नयनोंमें काजल लगाना।

२८. उनके अधरोंको सुरंजित करना।

२९. चिबुकपर कस्तूरीके द्वारा बिन्दु बनाना।

३०. अनंग-गुटिका, सीधु-विलास आदि प्रदान करना।

३१. मधुर फलोंका संग्रह करना।

३२. फलोंको बनाकर भोग लगानेके लिये प्रदान करना।

३३. किसी एक स्थानमें रसोई बनाना।

३४. श्रीयुगलके पारस्परिक रहस्यालापका श्रवण करना।

३५. श्रीयुगलके वन-विहार, वसन्त-लीला, झूलन-लीला, जल-विहार, पाश-क्रीड़ा आदि अपूर्व लीलाओंके दर्शन करना।

३६. श्रीयुगलके वन-विहारके समय श्रीमतीकी वीणा आदि लेकर उनके पीछे-पीछे गमन करना।

३७. अपने केशोंद्वारा श्रीयुगलके श्रीपादपद्मोंकी रजको झाड़ना-पोंछना।

३८. होली-लीलामें पिचकारियोंको सुगन्धित तरल पदार्थोंसे भरकर श्रीराधिका और सखियोंके हाथोंमें प्रदान करना।

३९. झूलन-लीलामें गान करते हुए झूलेमें झोटे देना, झुलाना।

४०. जल-विहारके समय वस्त्र और अलंकार आदि लेकर श्रीकुण्डके तीरपर रखना।

४१. पाश-क्रीडामें विजयप्राप्त श्रीराधिकाजीकी आज्ञासे श्रीकृष्णके द्वारा दाँवपर रखी सुरंगा आदि सखियों (या मुरली आदि)-को बलपूर्वक लाकर उनके साथ हास्य-विनोद करना।

४२. सूर्य-पूजा करनेके लिये राधाकुण्डको श्रीमतीके जाते समय उनके पीछे-पीछे जाना।

४३. सूर्य-पूजामें तदनुकूल कार्योंको करना।

४४. सूर्य-पूजाके पश्चात् श्रीमतीके पीछे-पीछे चलकर घर लौटना।

अपराह्ण[1]कालीन सेवा

१. श्रीराधिकाजीके रसोई बनाते समय उनके अनुकूल कार्य करना।

२. श्रीराधारानीके स्नान करनेके लिये जाते समय उनके वस्त्राभूषण आदि लेकर उनके पीछे-पीछे जाना।

३. स्नानके पश्चात् उनका शृंगार आदि करना।

४. सखियोंसे घिरी हुई श्रीवृन्दावनेश्वरीके पीछे-पीछे अटारीपर चढ़कर वनसे लौटते हुए सखाओंसे घिरे श्रीकृष्णके दर्शन करके परमानन्द-उपभोग करना।

५. छतके ऊपरसे श्रीराधिकाजीके उतरनेके समय सखियोंके साथ उनके पीछे-पीछे उतरना।

सायं[2]कालीन सेवा

१. श्रीमतीका तुलसीके हाथ व्रजेन्द्र श्रीनन्दजीके

१- सूर्यास्तके पूर्व छः दण्डके कालको अपराह्ण-काल कहा जाता है।

२- सूर्यास्तके उपरान्त छः दण्डका काल सायंकालके नामसे व्यवहृत होता है।

घर भोज्य-सामग्री भेजना। श्रीकृष्णको पानकी गुल्ली और पुष्पोंकी माला अर्पण करना तथा संकेत-कुंजका निर्देश करना। तुलसीके नन्दालय जाते समय उसके साथ जाना।

२. नन्दालयसे श्रीकृष्णका प्रसाद आदि ले आना।

३. वह प्रसाद श्रीराधिका और सखियोंको परोसना।

४. सुगन्धित धूपके सौरभसे उनकी नासिकाको आनन्द देना।

५. गुलाब आदिसे सुगन्धित शीतल जल प्रदान करना।

६. कुल्ला आदि करनेके लिये सुवासित जलसे पूर्ण आचमन-पात्र प्रदान करना।

७. इलायची-लौंग-कपूर आदिसे सुवासित ताम्बूल अर्पण करना।

८. तत्पश्चात् प्राणेश्वरीका अधरामृतसिक्त अर्थात् उनका बचा प्रसाद भोजन करना।

प्रदोष[1]कालीन सेवा

१. प्रदोषकालमें वृन्दावनेश्वरीका वस्त्रालंकारादिसे समयोचित शृंगार करना अर्थात् कृष्णपक्षमें नील वस्त्र आदि और शुक्लपक्षमें शुभ्र वस्त्रादि तथा अलंकार धारण कराना एवं गन्धानुलेपन करना।

२. अनन्तर सखियोंके साथ श्रीमतीको अभिसार कराना तथा उनके पीछे-पीछे गमन करना।

निशा[2]कालीन सेवा

१. निकुंजमें श्रीराधा-कृष्णका मिलनदर्शन करना।

२. रासमें नृत्य आदिकी माधुरीके दर्शन करना।

३. वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाजीके नूपुरकी मधुर ध्वनि और श्रीकृष्णकी वंशी-ध्वनिकी माधुरीको श्रवण करना।

४. श्रीयुगलकी गीत-माधुरीका श्रवण करना तथा नृत्यादिके दर्शन करना।

५. श्रीकृष्णकी वंशीको चुप कराना।

६. श्रीराधिकाकी वीणा-वादन-माधुरीका श्रवण करना।

७. नृत्य, गीत और वाद्यके द्वारा सखियोंके साथ श्रीराधाकृष्णके आनन्दका विधान करना।

८. सुवासित ताम्बूल, सुगन्धित द्रव्य, माला, हवा, सुवासित शीतल जल और पैर सहलाने आदिके द्वारा श्रीराधा-कृष्णकी सेवा करना।

९. श्रीकृष्णका मिष्टान्न तथा फलादि भोजन करते दर्शन करना।

१०. सखियोंके साथ वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाजीका श्रीकृष्णके प्रसादका भोजन करते हुए दर्शन करना।

११. उनका अवशेष भोजन ग्रहण करना।

१२. सखियोंके साथ-साथ श्रीराधा-कृष्ण-युगलका मिलन-दर्शन करना तथा उनके ताम्बूल-सेवन और रसालाप आदिकी माधुरीके दर्शन करते हुए आनन्द-लाभ करना।

१३. सुकोमल शय्यापर श्रीयुगलको शयन कराना।

१४. परिश्रान्त श्रीयुगलकी व्यजनादिद्वारा सेवा करना और उनके सो जानेपर सखियोंका अपनी-अपनी शय्यापर सोना। स्वयं भी वहीं सो जाना।

निम्नलिखित दिनोंमें श्रीकृष्णकी गोचारण-लीला और श्रीमतीकी सूर्यपूजा बन्द रहती है—

१. श्रीजन्माष्टमीके दिन और उसके बाद दो दिनोंतक।

२. श्रीराधाष्टमीके दिन और उसके बाद दो दिनोंतक।

३. माघकी शुक्ला पंचमी अर्थात् वसन्तपंचमीसे फाल्गुनी पूर्णिमा अर्थात् दोलपूर्णिमापर्यन्त २६ दिनोंतक।

(श्रीरा० मा० चि०)

१- सायंकालके उपरान्त छः दण्डके कालको प्रदोषकाल कहते हैं।

२- प्रदोषके उपरान्त बारह दण्डके कालको निशाकाल कहा जाता है।

श्रीराधा-षडक्षरी महाविद्याकी उपासना

(श्रीरामलालजी)

षडक्षरी महाविद्या-उपासनाके अन्तर्गत श्रीराधा-सम्बन्धी मन्त्र, ध्यान, पूजा-विधान और कवच आदिका यथाक्रम विवरण नारदपंचरात्रके द्वितीय रात्रि-विभागमें तीसरे, चौथे और पाँचवें अध्यायमें उपलब्ध होता है।

श्रीशंकरजीका नारदके प्रति कथन है कि 'श्रीराधा [श्रीकृष्णके] प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं।'

'प्राणाधिष्ठात्री या देवी राधारूपा च सा मुने।'

(नारदपंचरात्र २। ३। ५५)

जो कार्य बहुत कालतक श्रीकृष्णकी आराधना करनेके बाद सिद्ध होता है, वह श्रीराधाकी उपासनासे स्वल्पकालमें ही सम्पन्न हो जाता है।

श्रीनारदने शंकरजीसे पूछा कि 'षडक्षरी महाविद्याकी उपासना किन-किनने की थी?' शंकरजीने कहा कि 'यह षडक्षरी महाविद्या वेदोंमें भी सुदुर्लभ है; इसके सम्बन्धमें कुछ भी कहनेका हरिद्वारा निषेध किया गया है। पार्वतीके भी पूछनेपर मैंने कुछ नहीं कहा; मेरे और परमात्मा श्रीकृष्णके लिये यह प्राणतुल्य है; सर्वसिद्धिप्रद और भक्ति-मुक्ति देनेवाली है।

षडक्षरी महाविद्या वेदेषु च सुदुर्लभा।
निषिद्धा हरिणा पूर्वं वक्तुमेव हि नारद॥
पार्वत्या परिपृष्टेन मया नोक्ता पुरा मुने।
अस्माकं प्राणतुल्या च कृष्णस्य परमात्मनः॥

(नारदपंचरात्र २। ३। ७६-७७)

'श्रीकृष्ण इस षडक्षरी महाविद्याका नित्य भक्तिपूर्वक जप करते हैं।' यह परम दुर्लभ मन्त्र है—

'षडक्षरीं महाविद्यां नित्यं भक्त्या जपेद्धरिः।'

(नारदपंचरात्र २। ५। ४)

'षडक्षरी महाविद्या कामधेनुस्वरूपिणी है। इसकी उपासनासे बल, पुत्र, लक्ष्मी तथा दास्यभक्ति और गोलोकमें ईप्सित स्थानकी प्राप्ति होती है।

'रां ओं आं यं स्वाहा'—यही षडक्षरी महाविद्याका बीजमन्त्र है। यह राधाशक्तिकी पूर्णतम जागृतिका द्योतक है; मूलाधार चक्रसे जाग्रत् होकर कुण्डलिनी महाशक्ति सहस्रारचक्रमें अवस्थित हो जाती है—

भूतवर्गात्परो वर्णो द्वितीयो दीर्घवान्मुने।
चतुर्वर्गतुरीयश्च दीर्घवांश्च फलप्रदः॥
भूतवर्गात्परो वर्णो वाणीवान् सर्वसिद्धिदः।
सर्वशुद्धप्रियान्ता च तस्या बीजादिकाः स्मृताः॥

(नारदपंचरात्र २। ३। ९१-९२)

उपर्युक्त श्लोकका अभिप्राय यह है कि '**भूतवर्गात्पर-वर्णो द्वितीयो**—'र' है। भूतका अर्थ है—पाँच; इनके कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्गके बाद 'य' अक्षरके बाद दूसरा अक्षर 'र' है। '**दीर्घवान्**' शब्दका तात्पर्य है 'आं'। 'र' और 'आं' के मिलानेपर 'रां' बना। '**चतुर्वर्गतुरीयः** का तात्पर्य है '**मोक्षदः**'। इसका अभिप्राय 'ओम्' है। '**दीर्घवान्**' का अभिप्राय 'आं' है। '**भूतवर्गात्परो वर्णः**' का तात्पर्य 'य' से है। '**वाणीवान्**' 'यं' का द्योतक है। '**सर्व-शुद्धप्रियान्ता**' का तात्पर्य 'स्वाहा' है। इस तरह षडक्षरी महाविद्यामन्त्रका रूप '**रां ओं आं यं स्वाहा**।' सिद्ध हुआ।

इस मन्त्रानुष्ठानमें श्रीकृष्णकी प्राणप्रियतमा रासेश्वरी राधाका देवतारूपमें ध्यान इस प्रकार किया जाता है—

'भगवती श्रीराधाका वर्ण श्वेत चम्पाकी आभाके समान है। वे करोड़ों चन्द्रमाकी प्रभासे संयुक्त हैं; उनकी कवरी—काले-काले केशोंका जूड़ा मालतीकी मालासे विभूषित है। उन्होंने वह्निपरिशुद्ध—अग्निके तपाये हुए पवित्र रेशमी वस्त्रोंको धारण किया है। वे रत्नभूषणोंसे अलंकृत हैं। मन्द-मन्द मुसकरा रही हैं और उनकी मुखमुद्रा प्रसन्न है। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली हैं। वे ब्रह्मस्वरूपिणी हैं, परमेश्वरी हैं, श्रीकृष्णकी रमणी हैं, परम सुन्दरी हैं। वे श्रीकृष्णके लिये प्राणसे भी अधिक प्रिय हैं। वे देवी हैं, श्रीकृष्णवक्षोविलासिनी हैं। श्रीकृष्ण सदा उनकी स्तुति करते हैं। वे गोलोकमें निवास करती हैं। वे गोप्त्री—रक्षिका हैं, विधाताकी सृष्टि करनेवाली हैं, वृन्दा हैं, वृन्दावनमें विचरण करती हैं, वृन्दावनमें केलि करती रहती हैं। वे तुलसीकी अधिष्ठात्री देवी हैं। श्रीगंगा उनके चरणकमलकी अर्चना करती हैं, वे समस्त सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं, सिद्ध हैं, सिद्धेश्वरी हैं, सिद्धयोगिनी हैं। वे सुयज्ञके यज्ञकी अधिष्ठात्री देवी हैं, सुयज्ञको वरदान देनेवाली हैं। वे वरदात्री हैं और सज्जनोंको समस्त सम्पत्ति देती हैं। श्वेत चँवरके द्वारा प्रिय गोपियाँ उनकी सेवामें लगी रहती हैं। वे रत्न-सिंहासनपर

स्थित हैं, अपने हाथमें रत्नदर्पण धारण करती हैं, अपने दोनों हाथोंमें क्रीड़ाके लिये कमल धारण करती हैं। ऐसी कृष्णप्रिया परमेश्वरी राधाका मैं ध्यान करता हूँ।'(नारदपंचरात्र २। ४। ३—११)

ध्यानके पश्चात् हाथ धोकर पुष्प समर्पण करना चाहिये। स्तोत्र पढ़ना चाहिये—

नारायणि महामाये विष्णुमाये सनातनि॥
प्राणाधिदेवि कृष्णस्य मामुद्धर भवार्णवात्।
संसारसागरे घोरे भीतं मां शरणागतम्॥
प्रपन्नं पतितं मातर्मामुद्धर हरिप्रिये।
असंख्ययोनिभ्रमणादज्ञानान्धतमोऽन्वितम् ॥
ज्वलद्भिर्ज्ञानदीपैश्च मां सुवर्त्म प्रदर्शय।
सर्वेभ्योऽपि विनिर्मुक्तं कुरु राधे सुरेश्वरि॥
मां भक्तमनुरक्तं च कातरं यमताडनात्।
त्वत्पादपद्मयुगले पाद्मपद्मालयार्चिते॥
देहि मह्यं परां भक्तिं कृष्णेन परिसेविते।
स्निग्धदूर्वाङ्कुरैः शुक्लपुष्पैः कुसुमचन्दनैः॥

(नारदपंचरात्र २। ४। १५—२०)

'हे नारायणि! विष्णुमाये! महामाये! सनातनि! श्रीकृष्णके लिये प्राणसे भी अधिक प्रिय देवि! संसारसागरसे मेरा उद्धार कीजिये। मैं इस घोर संसारसागरमें पतित होकर भयभीत हो गया हूँ, मैं शरणागत हूँ। हे माँ! श्रीकृष्णकी प्राण-प्रियतमे! आप मेरा उद्धार कीजिये। असंख्य योनियोंमें जन्म लेकर भ्रमण करते-करते अज्ञान-अन्धकारसे मैं युक्त हूँ। आप देदीप्यमान ज्ञानदीपके आलोकमें मेरा पथ-प्रदर्शन कीजिये। मैं यमकी ताड़नासे दुखी हूँ। मैं आपका भक्त हूँ। आपके चरणकमलमें अनुरक्त हूँ। मुझे सारे विघ्नोंसे मुक्त कर दीजिये। ब्रह्माजी तथा लक्ष्मीजी (आदि उपासक) आपके चरण-कमलोंकी अर्चना करते हैं। कोमल दूर्वादल और श्वेतपुष्प तथा चन्दन आदिसे स्वयं श्रीकृष्ण भी आपकी पूजा करते हैं, आप अपने चरणोंमें मुझे परा—उत्तम भक्ति प्रदान कीजिये।'

पुष्पांजलि-प्रणाम

यथोपलब्ध सामग्रीसे षोडशोपचार पूजन करना चाहिये। इसके बाद तीन पुष्पांजलि समर्पित करनी चाहिये। तत्पश्चात् दासीवर्ग—मालती, माधवी, रत्नमालावती, चम्पावती, मधुमती, सुशीला, वनमालिका, चन्द्रावली, चन्द्रमुखी, पद्मा, पद्ममुखी, कमला, कालिका, कृष्णप्रिया, विद्याधरी तथा वटुवर्ग—सानन्द, परमानन्द, सुमित्र, सन्तनु आदिकी यथाक्रम पाद्यादि उपचारोंसे पूजाकर प्रणाम करना चाहिये।

इसके बाद षडक्षरी महाविद्या मन्त्र—'**रां ओं आं यं स्वाहा।**' का जप करना चाहिये। जप पूर्ण कर लेनेके बाद स्तोत्र और राधा-कवचका पाठ करना चाहिये।

स्तोत्र

राधा रासेश्वरी रम्या रामा च परमात्मनः॥
रासोद्भवा कृष्णकान्ता कृष्णवक्षःस्थलस्थिता।
कृष्णप्राणाधिदेवी च महाविष्णोः प्रसूरपि॥
सर्वाद्या विष्णुमाया च सत्या नित्या सनातनी।
ब्रह्मस्वरूपा परमा निर्लिप्ता निर्गुणा परा॥
वृन्दा वृन्दावने सा च विरजातटवासिनी।
गोलोकवासिनी गोपी गोपीशा गोपमातृका॥
सानन्दा परमानन्दा नन्दनन्दनकामिनी।
वृषभानुसुता शान्ता कान्ता पूर्णतमा च सा॥
काम्या कलावती कन्या तीर्थपूता सती शुभा।

(नारदपंचरात्र २। ४। ४८—५३)

श्रीराधाके इन सैंतीस नामोंसे युक्त स्तोत्रका पाठ करनेवाला इस लोकमें अचल लक्ष्मी और परलोकमें हरिके चरणोंमें भक्ति प्राप्त करता है।

कवच

स्तोत्र-पाठके पश्चात् कवचका पाठ करना चाहिये। यह राधा-कवच है। इसका दूसरा नाम 'परमानन्दसन्दोह कवच' है।

भगवान् श्रीकृष्णने इस 'परमानन्दसन्दोह' कवचको रत्नपुटमें रखकर कण्ठमें धारण किया है। ये नित्य षडक्षरी महाविद्या मन्त्रका जप करते हैं। इस कवचके ऋषि नारायण हैं, श्रीकृष्णकी दास्यभक्तिमें इसका विनियोग होता है—

सर्वाद्या मे शिरः पातु केशं केशवकामिनी।
भालं भगवती पातु लोला लोचनयुग्मकम्॥
नासां नारायणी पातु सानन्दा चाधरोष्ठकम्।
जिह्वां पातु जगन्माता दन्तं दामोदरप्रिया॥

कपोलयुग्मं कृष्णेशा कण्ठं कृष्णप्रियाऽवतु।
कर्णयुग्मं सदा पातु कालिन्दीकूलवासिनी॥
वसुन्धरेशा वक्षो मे परमा सा पयोधरम्।
पद्मनाभप्रिया नाभिं जठरं जाह्नवीश्वरी॥
नित्या नितम्बयुग्मं मे कङ्कालं कृष्णसेविता।
परात्परा पातु पृष्ठं सुश्रोणी श्रोणिकायुगम्॥
परमाद्या पादयुग्मं नखरांश्च नरोत्तमा।
सर्वाङ्गं मे सदा पातु सर्वेशा सर्वमङ्गला॥
पातु रासेश्वरी राधा स्वप्ने जागरणे च माम्।
जले स्थले चान्तरिक्षे सेविता जलशायिनी॥
प्राच्यां मे सततं पातु परिपूर्णतमप्रिया।
वह्नीश्वरी वह्निकोणे दक्षिणे दुःखनाशिनी॥
नैर्ऋत्ये सततं पातु नरकार्णवतारिणी।
वारुणे वनमालीशा वायव्यां वायुपूजिता॥
कौबेरे मां सदा पातु कूर्मेण परिसेविता।
ईशान्यामीश्वरी पातु शतशृङ्गनिवासिनी॥
वने वनचरी पातु वृन्दावनविनोदिनी।
सर्वत्र सततं पातु सर्वेशा विरजेश्वरी॥
प्रथमे पूजिता या च कृष्णेन परमात्मना।
षडक्षर्या विद्यया च सा मां रक्षतु कातरम्॥

(नारदपंचरात्र २। ५। २४—३५)

षडक्षरीविद्याकी उपासना सिद्धिप्रदा और अमोघफलदा है। इसके द्वारा भगवती श्रीराधाका पुण्यचिन्तन होता है।

त्रैलोक्यपावनीं राधां सन्तोऽसेवन्त नित्यशः।
यत्पादपद्मे भक्त्यार्घ्यं नित्यं कृष्णो ददाति च॥

(नारदपंचरात्र २। ६। ११)

'श्रीराधाके चिन्तनसे तीनों लोक पावन होते हैं। श्रीकृष्ण भक्तिपूर्वक उनके चरण-कमलमें अर्घ्य समर्पित करते हैं। संत उनका निर्मल मनसे नित्यप्रति भजन करते हैं।'

कही-अनकही राधाकी

(श्रीजगदीशलालजी श्रीवास्तव 'दीश')

[१]

संध्या सुनसान बरसती है
पहले सा···· भोर···· नहीं होता।
मधु किंकिणि की कण-कण छन-छन
बंसी का शोर···· नहीं होता।
ग्वाले तो आते पर उनमें
जसुमति का छोर नहीं होता।
माखन के चोर बहुत आते
पर चित का चोर नहीं होता।

[२]

जब से तुम चले गये मोहन!
छा गई उदासी कण-कण में।
'हरियल' ने खाना छोड़ दिया
'श्यामा' न गई चरने वन में।
बिरवा तुलसी का सूख गया
सुषमा न रही घर आँगन में।
ठाकुर के द्वार न दीप जला
मन लगा न पूजन-अर्चन में।

[३]

तुम क्या गये कि संग तुम्हारे
चहल-पहल रँगरलियाँ चल दीं।
कोकिल, मोर, चकोर, पपीहा
कुंज-कुंज की कलियाँ चल दीं।
कलियों पर मँडराती गाती
सारी भ्रमरावलियाँ चल दीं।
श्याम! तुम्हारे पीछे-पीछे
गोकुल की सब गलियाँ चल दीं।

[४]

कल मधुवन क्या मैं चली गई
मथ डाला मुझे चकोरोंने।
भौंरोंने सौ-सौ प्रश्न किये
पथ रोक लिया मधु मोरों ने।
मेरे धीरज को तोड़ दिया
रो रो कर वन के ढोरों ने।
क्या कहूँ कि क्या क्या कहा तुम्हें
उन ढोर चराते छोरों ने।

[प्रेषक—श्रीकैलाश पंकजजी श्रीवास्तव]

देवीभागवतमें श्रीराधा-उपासना

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! सुनो, मूलप्रकृति-स्वरूपिणी भगवती भुवनेश्वरीसे जगत्की उत्पत्तिके समय दो शक्तियाँ प्रकट हुईं—राधा और दुर्गा। श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं और श्रीदुर्गा उनकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री। ये ही दोनों देवियाँ सम्पूर्ण जगत्को नियन्त्रणमें रखती हैं। सम्पूर्ण जगत् इन्हींके अधीन है। अत: इन भगवती राधा और दुर्गाको प्रसन्न करनेके लिये निरन्तर उनकी उपासना करनीचाहिये।

नारद! पहले मैं श्रीराधाका मन्त्र बतलाता हूँ, 'श्रीराधा'—इस शब्दके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर उसके आगे स्वाहा शब्द जोड़ देना चाहिये। (**श्रीराधायै स्वाहा**) यह भगवती श्रीराधाका षडक्षर मन्त्र धर्म और अर्थका प्रकाशक है। इसीके आदिमें मायाबीज (**ह्रीं**) का प्रयोग करे तो यह भगवती श्रीराधाका वांछाचिन्तामणि मन्त्र कहा जाता है (मन्त्र इस प्रकार है—**ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा**।) मूलप्रकृति श्रीराधादेवीके आदेशसे इस मन्त्रके जपमें सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णकी प्रवृत्ति हुई थी। फिर श्रीकृष्णने विष्णुको, विष्णुने विराट् ब्रह्माको, ब्रह्माने धर्मदेवको और धर्मदेवने मुझे इसका उपदेश किया। इस प्रकार परम्परा चली आयी। यह जो श्रीराधाका मन्त्र है, इसका ऋषि मैं नारायण हूँ, गायत्री छन्द है, श्रीराधा इस मन्त्रकी देवता हैं। तार (प्रणव)-को बीज और शक्ति (ह्रीं)-बीजको इनकी शक्ति कहा गया है।

मुने! इसके बाद भगवती श्रीराधाका ध्यान करना चाहिये। भगवती श्रीराधाका वर्ण, श्वेतचम्पकके समान है। इनका मुख शरत्कालीन चन्द्रमा जैसा प्रतीत होता है। इनका श्रीविग्रह असंख्य चन्द्रमाओंके समान चमचमा रहा है। आँखें शरद्-ऋतुके विकसित कमलकी तुलना कर रही हैं। इनके अधर बिम्बाफलके समान, श्रोणी स्थूल और नितम्ब करधनीसे अलंकृत हैं। कुन्दपुष्पके सदृश इनकी स्वच्छ दन्तपङ्क्ति है। पवित्र चिन्मय दिव्य रेशमी वस्त्र इन्होंने पहन रखे हैं। इनके प्रसन्न मुखपर मुसकान छायी हुई है। इनके विशाल उरोज हैं। रत्नमय भूषणोंसे विभूषित ये देवी सदा बारह वर्षकी अवस्थाकी ही प्रतीत होती हैं। शृंगारकी मानो ये समुद्र हैं। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये इनमें समय-समयपर चिन्तारूपी लहरें उठा करती है। इन्होंने अपने केशोंमें मल्लिका और मालतीकी मालाओंको धारण कर रखा है। इनके सभी अंग अत्यन्त सुकुमार हैं। रासमण्डलमें विराजमान होकर ये देवी सबको अभय प्रदान करती हैं। ये शान्तस्वरूपा देवी सदा शाश्वतयौवना बनी रहती हैं। गोपियोंकी स्वामिनी बनकर ये रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। ये परमेश्वरी देवी भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिदेवता हैं। वेदोंने इनकी महिमाका वर्णन किया है।*

इस प्रकार हृदयमें ध्यान करके बाहर शालग्रामकी मूर्ति, कलश अथवा आठ दलवाले यन्त्रपर श्रीराधादेवीका आवाहन करके विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। क्रम यह है—पहले देवीका आवाहन करे। तत्पश्चात् आसन आदि समर्पण करे। मूलमन्त्रका उच्चारण करके ये आसन आदि पदार्थ भगवतीके सम्मुख उपस्थित करने चाहिये। उनके चरणोंमें पाद्य देनेका विधान है। अर्घ्य मस्तकपर देना चाहिये। मुखके सम्मुख जल ले जाकर मूल-मन्त्रसे तीन बार आचमन कराना चाहिये। इसके अनन्तर मधुपर्क निवेदन करके श्रीराधाके

---

*श्वेतचम्पकवर्णाभां शरदिन्दुसमाननाम्॥
कोटिचन्द्रप्रतीकाशां शरदम्भोजलोचनाम्। बिम्बाधरां पृथुश्रोणीं काञ्चीयुतनितम्बिनीम्॥
कुन्दपङ्क्तिसमानाभदन्तपङ्क्तिविराजिताम्। क्षौमाम्बरपरीधानां वह्निशुद्धांशुकान्विताम्॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां करिकुम्भयुगस्तनीम्। सदा द्वादशवर्षीयां रत्नभूषणभूषिताम्॥
शृङ्गारसिन्धुलहरीं भक्तानुग्रहकातराम्। मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम्॥
सुकुमाराङ्गलतिकां रासमण्डलमध्यगाम्। वराभयकरां शान्तां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्॥
रत्नसिंहासनासीनां गोपीमण्डलनायिकाम्। कृष्णप्राणाधिकां वेदबोधितां परमेश्वरीम्॥
(देवीभागवत ९। ५०। २१—२७)

लिये एक पयस्विनी गौ देनी चाहिये। तत्पश्चात् उन्हें स्नानगृहमें पधराकर वहीं इनकी पूजा सम्पन्न करे। तैल आदि सुगन्धित वस्तु लगाकर सविधि स्नान करानेके पश्चात् दो वस्त्र अर्पण करे। अनेक प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत करके चन्दन अर्पण करे। अनेक प्रकारके पुष्पोंकी मालाएँ तथा तुलसी निवेदन करे। पारिजात और कमल आदि नाना प्रकारके पुष्प चढ़ाये।

तत्पश्चात् परमेश्वरी श्रीराधाके पवित्र परिवारका अर्चन करना चाहिये। पूर्व, अग्निकोण और वायव्य दिशाके मध्यमें श्रीराधाके दिक्सम्बन्धी अंगकी पूजा होती है। इसके बाद अष्टदल-यन्त्रको आगे करके उसके अग्रभागमें मालावती, अग्निकोणमें माधवी, दक्षिणमें रत्नमाला, नैर्ऋत्यकोणमें सुशीला, पश्चिममें शशिकला, वायव्यकोणमें पारिजाता, उत्तरमें परावती तथा ईशानकोणमें सुन्दरी प्रियकारिणी—इन-इन दिशाओंके दलोंमें बुद्धिमान् पुरुष उपर्युक्त देवियोंकी पूजा करे। यन्त्रपर ही दलके बाहर ब्रह्मा आदि देवताओं, सामने भूमिपर दिक्पाली एवं वज्र आदि आयुधोंकी अर्चा करे। इस प्रकार भगवती श्रीराधाकी पूजा करनी चाहिये। इनके साथ गन्ध आदि उत्तम उपचारोंसे बुद्धिमान् पुरुष भगवती श्रीराधाकी अर्चना करे। तदनन्तर इनके सहस्रनामका पाठ करके स्तुति करनी चाहिये। यत्नपूर्वक इन देवीके मन्त्रका नित्य एक हजार जप करनेका विधान है। इस प्रकार जो पुरुष रासेश्वरी परमपूज्या श्रीराधादेवीकी अर्चना करते हैं, वे भगवान् विष्णुके समान हो सदा गोलोकमें निवास करते हैं। जो बुद्धिमान् पुरुष शुभ अवसरपर भगवती श्रीराधाका जन्मोत्सव मनाता है, उसे रासेश्वरी श्रीराधा अपना सांनिध्य प्रदान कर देती हैं। वर्णसंख्याके अनुसार राधाजीके मन्त्रका पुरश्चरण करना चाहिये तथा बादमें जपका दशांश हवन करना चाहिये। दूध, मधु और घृत आदि स्वादिष्ट पदार्थोंसे युक्त तिलोंद्वारा भक्तिसे सम्पन्न होकर हवन करे।

नारदजीने कहा—मुने! अब आप सम्यक् प्रकारसे स्तोत्र सुनानेकी कृपा करें, जिससे भगवती श्रीराधा प्रसन्न हो जाती हैं।

भगवान् नारायण कहते हैं—भगवती परमेशानि! तुम रासमण्डलमें विराजमान रहती हो। तुम्हें नमस्कार है। रासेश्वरि! भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानते हैं, तुम्हें नमस्कार है। करुणार्णवे! तुम त्रिलोककी जननी हो, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम मुझपर प्रसन्न होनेकी कृपा करो। ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवता तुम्हारे चरणकमलोंकी उपासना करते हैं। जगदम्बे! तुम सरस्वती, सावित्री, शंकरी, गंगा, पद्मावती, षष्ठी और मंगलचण्डिका—इन रूपोंसे विराजती हो; तुम्हें नमस्कार है। तुलसीरूपे! तुम्हें नमस्कार है। लक्ष्मीस्वरूपिणी! तुम्हें नमस्कार है। भगवती दुर्गे! तुम्हें नमस्कार है। सर्वरूपिणी! तुम्हें नमस्कार है। जननी! तुम मूलप्रकृतिस्वरूपा एवं करुणाकी सागर हो। हम तुम्हारी उपासना करते हैं; अत: तुम इस संसार-सागरसे हमारा उद्धार करनेकी कृपा करो।

जो पुरुष त्रिकाल संध्याके समय भगवती श्रीराधाका स्मरण करते हुए उनके इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके लिये कभी कोई भी वस्तु किंचिन्मात्र भी दुर्लभ नहीं हो सकती। आयु समाप्त होनेपर शरीरको त्यागकर वह बड़भागी पुरुष गोलोकमें जा रासमण्डलमें नित्य स्थान पाता है। यह परम रहस्य जिस-किसीके सामने नहीं कहना चाहिये*।

---

* नारायण उवाच

नमस्ते परमेशानि रासमण्डलवासिनि। रासेश्वरि नमस्तेऽस्तु कृष्णप्राणाधिकप्रिये॥
नमस्त्रैलोक्यजननि प्रसीद करुणार्णवे। ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैर्वन्द्यमानपदाम्बुजे॥
नम: सरस्वतीरूपे नम: सावित्रि शंकरि। गङ्गापद्मावतीरूपे षष्ठि मङ्गलचण्डिके॥
नमस्ते तुलसीरूपे नमो लक्ष्मीस्वरूपिणि। नमो दुर्गे भगवति नमस्ते सर्वरूपिणि॥
मूलप्रकृतिरूपां त्वां भजाम: करुणार्णवाम्। संसारसागरादस्मानुद्धराम्ब दयां कुरु॥
इदं स्तोत्रं त्रिसंध्यं य: पठेद् राधां स्मरन्नर:। न तस्य दुर्लभं किंचित्कदाचिच्च भविष्यति॥
देहान्ते च वसेन्नित्यं गोलोके रासमण्डले। इदं रहस्यं परमं न चाख्येयं तु कस्यचित्॥

(देवीभाग० ९।५०।४६—५२)

श्रीकृष्णप्राप्तिके लिये मन्त्रद्वारा उपासना

[गोपालतापनीय-उपनिषद्‌के अनुसार]

(१)

अष्टादशाक्षर मन्त्र

उक्त मन्त्रके विषयमें कुछ मुनिगण यों कहते हैं—'जिसके प्रथम पद (**क्लीं**)-से पृथ्वी, द्वितीय पद (**कृष्णाय**)-से जल, तृतीय पद (**गोविन्दाय**)-से तेज, चतुर्थ पद (**गोपीजनवल्लभाय**)-से वायु तथा अन्तिम पाँचवें पद (**स्वाहा**)-से आकाशकी उत्पत्ति हुई है, वह वैष्णव पंचमहाव्याहृतियोंवाला '**क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**' अष्टादशाक्षरमन्त्र श्रीकृष्णके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाला है। उसका मोक्ष-प्राप्तिके लिये सदा ही जप करते रहना चाहिये।'

इस विषयमें यह गाथा प्रसिद्ध है—

'जिस मन्त्रके प्रथम पदसे पृथ्वी प्रकट हुई, द्वितीय पदसे जलका प्रादुर्भाव हुआ, तृतीय पदसे तेजस्तत्त्वका प्राकट्य हुआ, चतुर्थ पदसे अग्नितत्त्व आविर्भूत हुआ तथा पंचम पदसे आकाशकी उत्पत्ति हुई, एकमात्र उसी अष्टादशाक्षर मन्त्रका निरन्तर अभ्यास (जप) करे। उसीके जपसे राजर्षि चन्द्रध्वज भगवान् श्रीकृष्णके अविनाशी परमधाम गोलोकको प्राप्त हो गये।'

'अतः वह जो परम विशुद्ध, विमल, शोकरहित लोभ आदिसे शून्य, सब प्रकारकी आसक्ति एवं वासनासे वर्जित गोलोकधाम है, वह उक्त पाँच पदोंवाले मन्त्रसे अभिन्न है; तथा वह मन्त्र साक्षात् वासुदेवस्वरूप ही है, जिस वासुदेवसे भिन्न दूसरा कुछ भी नहीं है। वे एकमात्र भगवान् गोविन्द पंचपद-मन्त्रस्वरूप हैं। उनका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दमय है। वे वृन्दावनमें कल्पवृक्षके नीचे रत्नमय सिंहासनपर सदा विराजमान रहते हैं। मैं मरुद्‌गणोंके साथ रहकर उत्तम स्तुतियोंद्वारा उन भगवान्‌को सन्तुष्ट करता हूँ।'

'सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, जो विश्वके पालन और संहारके एकमात्र कारण हैं तथा जो स्वयं ही विश्वरूप और इस विश्वके अधीश्वर हैं, उन भगवान् गोविन्दको बारंबार नमस्कार है। जो विज्ञानस्वरूप और परमानन्दमयविग्रह हैं तथा जो जीवमात्रको अपनी ओर आकृष्ट कर लेनेवाले हैं, गोपसुन्दरियोंके प्राणनाथ उन भगवान् गोविन्दको प्रणाम है, प्रणाम है। जो नेत्रोंमें कमलकी शोभा धारण करते और कण्ठमें कमलपुष्पोंकी माला पहनते हैं, जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है तथा जो कमला—लक्ष्मी, लक्ष्मीस्वरूपा गोपांगनाओंके तथा श्रीराधाके प्राणेश्वर हैं, उन भगवान् श्यामसुन्दरको नमस्कार है, नमस्कार है। मस्तकपर मोरपंखका मुकुट धारण करके जो परम सुन्दर दिखायी देते हैं, जिनमें सबका मन रमण करता है, जिनकी बुद्धि एवं स्मरणशक्ति कभी कुण्ठित नहीं होती, तथा जो लक्ष्मी, गोपसुन्दरीगण तथा श्रीराधाके मानसमें विहार करनेवाले राजहंस हैं, उन भगवान् गोविन्दको बारंबार प्रणाम है। जो कंसके वंशका विध्वंस करनेवाले तथा केशी और चाणूरके विनाशक हैं, भगवान् शंकरके भी जो वन्दनीय हैं, उन पार्थ-सारथि भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। अधरोंपर बाँसुरी रखकर उसे बजाते रहना जिनका स्वाभाविक गुण है, जो गौओंके पालक तथा कालियनागका मान-मर्दन करनेवाले हैं, कालिन्दीके रमणीय तटपर कालियह्रदमें नागके फणोंपर चंचलगतिसे जिनकी अविराम लास्य-लीला हो रही है, अतएव जिनके कानोंमें धारण किये हुए कुण्डल हिलते हुए झलमला रहे हैं, सहस्रों गोपसुन्दरियोंके निर्निमेष नेत्र जिनके श्रीअंगोंमें प्रतिबिम्बित होकर विकसित कमल-पुष्पोंकी माला-सदृश शोभा पा रहे हैं तथा जो नृत्यमें संलग्न होकर अतिशय शोभायमान दिखायी देते हैं, उन शरणागत-जनोंके प्रतिपालक भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम है, प्रणाम है। जो पाप और पापात्मा असुरोंके विनाशक हैं, व्रजवासियोंकी रक्षाके लिये हाथपर गोवर्धन धारण करते हैं, पूतनाके प्राणान्तकारक तथा तृणावर्त असुरके प्राण-संहारक हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। जो कला (अवयव)-से रहित हैं, जिनमें मोहका सर्वथा अभाव है, जो स्वरूपसे ही परम विशुद्ध हैं, अशुद्ध (स्वभाव तथा आचरणवाले) असुरोंके शत्रु हैं

तथा जिनसे बढ़कर या जिनके समान भी दूसरा कोई नहीं है, उन सर्वमहान् परमात्मा श्रीकृष्णको बारंबार नमस्कार है। परमानन्दमय परमेश्वर! मुझपर प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये। प्रभो! मुझे आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि (शारीरिक व्यथा)-रूपी सर्पोंने डस लिया है, कृपया मेरा उद्धार कीजिये। हे कृष्ण! हे रुक्मिणी-वल्लभ! हे गोपसुन्दरियोंका चित्त चुरानेवाले श्यामसुन्दर! मैं संसार-समुद्रमें डूब रहा हूँ। जगद्गुरो! मेरा उद्धार कीजिये। हे केशव! क्लेशहारी नारायण! जनार्दन! परमानन्दमय गोविन्द! माधव! मेरा उद्धार कीजिये।'

'मुनिवरो! जिस प्रकार मैं इन प्रसिद्ध स्तुतियोंद्वारा भगवान्की आराधना करता हूँ, उसी प्रकार तुमलोग भी पाँच पदोंवाले पूर्वोक्त मन्त्रका जप और श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए उनकी आराधनामें लगे रहो। इसके द्वारा संसार-समुद्रसे तर जाओगे।' इस प्रकार ब्रह्माजीने उन सनकादि मुनियोंको उपदेश दिया।

जो इस पूर्वोक्त पंचपद-मन्त्रका सदा जप करता है, वह अनायास ही भगवान्के उस अद्वितीय परमपदको प्राप्त हो जाता है। भगवान्का वह परमपद गतिशील नहीं, नित्य स्थिर है, फिर भी वह मनसे भी अधिक वेगवाला है। भगवत्स्वरूप होनेके कारण ही वह एक अद्वितीय है। देवता अर्थात् वाणी आदि इन्द्रियाँ वहाँतक कभी नहीं पहुँच सकी हैं। इन्द्रियोंकी जहाँ-जहाँ गति है, वहाँ-वहाँ वह पहलेसे ही पहुँचा हुआ है। तात्पर्य यह कि भगवान्का परमपद नित्य, स्थिर, एक और सर्वव्यापी है। इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण ही परमदेव हैं। उनका ध्यान करे, मन्त्रजपद्वारा उनके नामामृतका रसास्वादन करे तथा उन्हींका सदा भजन करे।

(२)

अष्टादशाक्षर महामन्त्रका प्रेममूलक अर्थ, प्रयोग और श्रीयोगपीठोपासना

यह अष्टादशाक्षर मन्त्र श्रीराधामाधवके प्रेमका प्रतीक है। इस मन्त्रसे वृन्दावनमें कल्पतरुमूलमें योगपीठस्थ सहस्रदल कमलपर रत्नसिंहासनपर समासीन, सहस्र-सहस्र श्रीकृष्णसुखैकजीवना गोपियोंके द्वारा सुशोभित, अनन्त असीम माधुर्यमय श्रीराधामाधवयुगलके श्रीचरण-कमलोंके प्रेमकी तथा युगलस्वरूपकी प्रेम-सेवाकी प्राप्ति होती है।

यह अष्टादशाक्षर-मन्त्रराज पाँच पदोंमें विभक्त है—

(१) **क्लीं,** (२) **कृष्णाय,** (३) **गोविन्दाय,** (४) **गोपीजनवल्लभाय** और (५) **स्वाहा**। इन पदोंके अर्थपर कुछ विचार करें।

(१) क्लीं—

'**क्लीं**' बीजको कामबीज या प्रेमबीज कहते हैं।

'क'कारका अर्थ है—सच्चिदानन्दविग्रह परमपुरुष श्रीकृष्ण।

'ल'कारका अर्थ है—उन श्रीकृष्ण राधाकृष्णका प्रेमजनित परमानन्दमय सुखरस-समुद्र।

'ई'कारका अर्थ है—नित्य वृन्दावनेश्वरी ह्लादिनी परमा प्रकृति श्रीराधा।

'नाद' और बिन्दु अर्थात् 'चन्द्रबिन्दु'का अर्थ है—श्रीराधाकृष्णका मिलन-जनित परमानन्द-रसमय माधुर्य।

श्रीसनत्कुमारसंहितामें कहा गया है कि '**क्लीं**'—यह कामबीज केवल अक्षरमय ही नहीं है, यह श्रीकृष्णका मूर्तिमान् श्रीविग्रह-स्वरूप है; क्योंकि इसके अक्षर श्रीकृष्णके श्रीअंगसे अभिन्न हैं। उनका क्रमशः वर्णन इस प्रकार है—

'क'कारको श्रीकृष्णका सिर, ललाट, भ्रू-युगल, नासिका, दो नेत्र और दो कान जानना चाहिये। 'ल'कार है—भगवान्के गाल, हनु, चिबुक, गला, कण्ठ और पीठ। 'ई'कार है उनके स्कन्ध, बाहुद्वय, कोहनी, हाथोंकी अँगुली और नखसमूह। 'अर्धचन्द्र' है—उनका वक्षःस्थल, उदर, पार्श्वदेश, नाभि और कटि। 'बिन्दु'—उनकी ऊरु, घुटने, जंघा, टखने, पैर, टखनोंके नीचेका स्थान, पैरोंकी अँगुली और नखसमूह है। इस प्रकार श्रीकृष्ण ही कामबीजमय श्रीविग्रह हैं।

कामबीजके अन्तर्गत जो पाँच अक्षर हैं, वे यथाक्रम 'पंचपुष्पबाण' हैं। 'क'कार है—आम्रमुकुल, 'ल'कार है—अशोकपुष्प, 'ई'कार है—मल्लिकापुष्प, अर्धचन्द्र है—माधवीपुष्प और बिन्दु है—बकुलपुष्प, ये ही पंचपुष्पबाण माने जाते हैं।

(२) कृष्णाय—'पापकर्षणः कृष्णः' (श्रीगोपालतापनीयोपनिषद्)। 'जो सारे पापोंका कर्षण करते हैं अर्थात् भलीभाँति ध्वंस कर देते हैं, वे हैं—

कृष्ण।' यहाँ पापका अर्थ है—सभीके सभी प्रकारके पाप और अपराध। यहाँतक कि असुरोंके अपराध भी इसके अन्तर्गत आ जाते हैं; क्योंकि '**कर्षति सर्वापराधान्**' अर्थात् 'श्रीकृष्ण सभीके सभी प्रकारके अपराधोंका नाश करते हैं।' यही श्री 'कृष्ण' शब्दकी निरुक्ति है। वे श्रीकृष्ण हैं—परब्रह्म और सच्चिदानन्दविग्रह।

'**कृष्ण एव परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः।**' (श्रीबृहद्‌गौतमीयतन्त्र) श्रीकृष्ण नित्यानन्दमय परब्रह्म हैं, इस विषयमें महाभारतका कथन है—

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥

अर्थात् 'कृष्' धातुका अर्थ है 'भू' यानी सत्ता; 'सत्' शब्दके साथ 'ता' प्रत्यय करनेपर सत्ता पद बनता है; सत्-शब्दका अर्थ है नित्य; अतः सत्ता शब्दसे नित्यताका बोध होता है। 'ण' कारका अर्थ है—निर्वृति यानी आनन्द। अतएव इन दोनोंके मिलनसे हुआ नित्यानन्द। नित्यानन्द परब्रह्म ही है। अतएव 'कृष्ण' शब्दकी उपर्युक्त व्याख्याके अनुसार उसका अर्थ होता है—नित्यानन्दमय परब्रह्म।

श्रीकृष्ण अपने वेणु, रूप, सौन्दर्य तथा लीलादिके अतुलनीय माधुर्यके प्रभावसे अखिल भुवनोंके समस्त स्थावर-जंगमादि के चित्तका आकर्षण करते रहते हैं। वे श्रीकृष्ण ही एकमात्र परमाराध्य हैं।

(३) गोविन्दाय—(गोभूमिवेदविदितो वेदिता गोविन्दः।' (गोपालतापनीयोपनिषद्) 'जो गो, भूमि और वेदोंमें प्रसिद्ध हैं तथा इन सबको प्राप्त हैं, वे गोविन्द हैं।' 'गो' शब्दके बहुत-से अर्थ होते हैं, पर यहाँ केवल तीन अर्थ दिये गये हैं—१—प्रसिद्ध पशुजाति-विशेष (गाय), २—भूमि (भुवन), ३—वेद। फिर, पशुजातिविशेषका अर्थ है—श्रीमान् नन्दगोकुलकी गौएँ। जो अतुलनीय ऐश्वर्य-माधुर्यसे परिपूर्ण होकर भी गौओंसे घिरे हुए खेल करते हैं और इसी अवस्थामें समस्त भुवनोंमें और वेदोंमें प्रसिद्ध हैं। अभिप्राय यह कि जो श्रीमान् नन्दके गोकुलमें अपने व्रजजन-मनोहर नव-नील-नीरद श्यामसुन्दररूपसे विराजित होकर सुमधुर लीला करते हैं एवं अखिल भुवन तथा वेद जिनकी इस लीलामाधुरीका उच्चस्वरसे गान करते हैं—ऐसे जो भुवनोंमें तथा वेदोंमें प्रसिद्ध हैं, वे 'गोपाल'-वेशधारी गोकुलचन्द्र श्रीकृष्ण ही 'गोविन्द' पदके वाच्य हैं।

(४) गोपीजनवल्लभाय—'गोपीजनाविद्या-कला' (गोपालतापनीयोपनिषद्) 'गोपीजन' का अर्थ होता है—गोपीजनरूप आविद्या-कला। आविद्या शब्दका अर्थ है—सम्यक् विद्या—सर्वापेक्षा श्रेष्ठ विद्या। इस विद्याके द्वारा श्रीकृष्णाकर्षिणी शक्तिका बोध होता है। 'कला' शब्दका अर्थ है—'प्रेमभक्ति'की मूर्तिविशेष। अतएव 'गोपीजन' शब्दका अर्थ होता है— जो श्रीकृष्णाकर्षिणी-शक्तिस्वरूपा प्रेमभक्तिकी मूर्तिविशेष हैं—वे 'गोपीजन'। एकमात्र इस जातिकी प्रेमभक्तिके द्वारा ही श्रीकृष्ण सम्यक्‌रूपसे वशीभूत होते हैं। यही मधुर-रसका प्रेम है, जो दास्य, सख्य और वात्सल्यरसके प्रेमको पराभूत करके सर्वोपरि विराजमान है।

'गोपीजन' शब्दका एक अर्थ और भी है। 'गोपी' शब्द 'गुप्' धातुसे बना है। 'गुप्' धातुका अर्थ है—रक्षा करना, पालन करना। श्रीकृष्णकी जो विशिष्ट शक्ति प्रेम देकर भक्तोंका पालन करती है, वह शक्ति 'गोपी' है। इस शक्तिका नाम ह्लादिनी शक्ति है। श्रीमती राधिका ही ह्लादिनीशक्तिस्वरूपा हैं, अतएव 'गोपी' शब्दसे ह्लादिनी-शक्तिरूपा, प्रकृतिकुलललामरूपा वृषभानुराजनन्दिनी श्रीमती राधाजी ही अभिप्रेत हैं—

'गोपी तु प्रकृती राधा जनस्तदंशमण्डलः।'

और 'जन' शब्दसे राधाजीका अंशमण्डल यानी उनकी कायव्यूहरूपा गोपीसमूह अभिप्रेत हैं। अतएव 'गोपीजन' शब्दका अर्थ है—श्रीराधा और उनकी कायव्यूहरूपा श्रीललिता विशाखादिसहित समस्त गोपांगनाएँ। 'वल्लभ' शब्दका अर्थ है प्रेरक, प्रवर्तक, प्रवर्तनकर्त्ता या रमण। जो अपनी माधुर्यमयी लीलाओंसे गोपियोंके प्रवर्तनकर्त्ता या रमण हैं, अर्थात् जो नायकरूपसे गोपसुन्दरियोंके साथ परम मधुर लीला-विलासादि करते हैं—वे ही गोपीजनवल्लभ, गोपियोंके पति अर्थात् श्रीललिता-विशाखादि सखीसमन्विता श्रीराधाजीके प्राणपति हैं। वे हैं— नन्दनन्दन गोकुलानन्दवर्धन रसराज, रसिक-राज-शिरोमणि श्रीकृष्ण, जो श्रीवृन्दावनमें 'गोपी' अर्थात्

पंकजनयनी-नवीना व्रजसुन्दरियोंसे परिवृता श्रीराधिकाजीके साथ विराजित श्रीमदनमोहन। परंतु वास्तविक 'मदनमोहन' तो तभी हैं—जब वे गोपीकुलमुकुटमणि श्रीराधाजीके साथ सुशोभित हैं।

'राधासङ्गे यदा भाति तदा मदनमोहनः।'

किंतु भगवान् श्रीकृष्ण सदा-सर्वदा ही गोपीमण्डल-परिवृता श्रीराधाके साथ विराजित रहते हैं; अतएव वे सदा ही 'मदनमोहन' हैं। 'गोविन्द' रूप श्रीकृष्णकी जो नित्यनव- किशोर मदनमोहन मूर्ति है, वही 'गोपीजनवल्लभ' है। 'गोपीजनवल्लभ' का अभिप्राय है—श्रीकृष्णका वह मदनमोहन-स्वरूप, जो नित्य ही राधालिङ्गितविग्रह है। अतएव 'गोपीजनवल्लभ' शब्दसे स्वतः श्रीराधाकृष्ण-युगलका ही बोध होता है। अतएव अष्टादशाक्षर (**क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**) और दशाक्षर (**गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**) दोनों ही 'युगल-मन्त्र' हैं।

(५) स्वाहा—'तन्माया च' (गोपालतापनीय-उपनिषद्)। 'स्वाहा' शब्दसे श्रीकृष्णकी माया—योगमायाका अभिप्राय है। गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णकी स्वरूपभूता चित्-शक्ति ही योगमाया हैं। ये ही भक्तोंको श्रीकृष्णके चरणकमलमें समर्पण कराती हैं। अतएव 'स्वाहा' पदका '**स्वाहा चात्मसमर्पणमिति**'—ऐसा अर्थ अन्यत्र किया गया है। जिसकी सहायतासे आत्मसमर्पण किया जाता है, उसको 'स्वाहा' कहते हैं। इस 'स्वाहा' पदके उच्चारण या स्मरणके द्वारा भगवान् गोपीजनवल्लभके श्रीपदारविन्दमें भक्तोंका सर्वतोभावसे आत्मसमर्पण किया या कराया जाता है। अतएव इस प्रकारका विचार तथा निश्चय करके ही 'स्वाहा' पदका उच्चारण या स्मरण करना चाहिये कि मैं श्रीगोपीजनवल्लभके श्रीचरणकमलोंमें सर्वतोभावसे आत्मसमर्पण करके उनके दासत्वमें नियुक्त हो रहा हूँ।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो गयी तो बस, भक्तोंकी मनःकामना पूर्ण हो गयी, फिर इस अष्टादशाक्षर मन्त्रमें 'कृष्ण', 'गोविन्द' और 'गोपीजनवल्लभ'— इन शब्दोंकी क्या आवश्यकता है? इसपर जरा गहराईसे विचार करनेपर पता लगता है कि गोपीप्रेम-रसके पिपासु रसिक भक्तोंका हृदय केवल 'कृष्ण' रूपमें 'कृष्ण' को प्राप्त करके ही तृप्त नहीं होता; क्योंकि कृष्णके तो लीलाभेदसे बहुत स्वरूप हैं; पर 'गोविन्द' रूपमें भी कृष्णको पाकर तृप्ति नहीं होती; क्योंकि 'गोविन्द' व्रजराजनन्दन श्रीकृष्णकी 'गोपाल' मूर्तिका नाम है। इस गोपालमूर्तिकी उपासनामें वात्सल्य-रसकी प्रधानता होती है। किंतु शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—सभी रस अत्युत्कृष्ट होनेपर भी सूक्ष्म विचारसे उनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठताका भाव आता है।

पाँच रस हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इनमें शान्तमें एक गुण है—'कृष्णनिष्ठा' (श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्यत्र तृष्णात्याग है)। दास्यमें दो गुण हैं—'कृष्णनिष्ठा' और 'सेवा'। सख्यमें तीन गुण हैं—कृष्णनिष्ठा, सेवा और विश्रम्भ (असंकोच)। वात्सल्यमें चार गुण हैं—'कृष्णनिष्ठा', 'सेवा,' (पालनरूपमें सेवा) 'असंकोच भाव' और 'स्नेहवश पाल्य-पालक ज्ञान।' एवं मधुररसमें पाँच गुण हैं—'कृष्णनिष्ठा', 'सेवा', 'असंकोच भाव', 'लालनमें ममताकी अधिकता' और निजांगके द्वारा सेवा। अतएव मधुर-रस सर्वश्रेष्ठ है। 'मधुर-रस' के भक्तगण इस तारतम्यकी भलीभाँति उपलब्धि करते हैं। उल्लिखित कारणोंसे इस अष्टादशाक्षर मन्त्रसे केवल '**कृष्णाय**' या '**कृष्णाय गोविन्दाय**' ही न बोलकर '**कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय**' कहते हैं। 'मधुरातिमधुर' गोपीजन-वल्लभ हैं। वे मधुररसके द्वारा ही उपास्य और लभ्य हैं।

वास्तविक बात यह है कि श्रीकृष्णकी प्राप्ति हो गयी तो निश्चय ही मानव-जीवन कृतार्थ हो गया। भगवत्प्राप्ति ही मनुष्यका चरम और परम पुरुषार्थ है। परंतु द्वारकाधीश आदि रूपभेदोंसे श्रीकृष्णके बहुत-से स्वरूप हैं। भक्तगण प्रथमतः साधारण भावसे आत्मसमर्पण करते हैं, तदनन्तर भक्तका प्रेमरस जितना ही गाढ़ होता जाता है, उतना ही उसका चित्त श्रीकृष्णको अपेक्षाकृत और भी मधुर स्वरूपमें प्राप्त करनेके लिये ललचा उठता है। तब वह 'गोविन्द'—व्रजराजनन्दन और महाभाग नन्द एवं वात्सल्यप्रेममयी यशोदा मैयाके प्राणधन 'गोपाल' रूप श्रीकृष्णके प्रति आत्मसमर्पण करता है। पर भक्तका प्रेमरस जब पूर्णरूपसे परिपक्व हो उठता है, तब उस प्रेम-

सुधा-रस-सागर-निमग्न रसिक भक्तको गोविन्दरूपसे भी तृप्ति नहीं होती; अत: फिर वह नलिन-नयनी व्रजललनाओंसे घिरे हुए अनन्त प्रेम-पारावार श्रीकृष्णके उस परम सुन्दर सौन्दर्य-माधुर्य-सुधा-रस-सार-सागर नित्य नवकिशोर नटवर श्यामसुन्दर मदनमोहनको प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हो उठता है और उस सर्वोपरि अनुत्तम गोपी-प्रेम-रसमें निमग्न होकर 'गोपीजनवल्लभ' स्वरूप श्रीकृष्णको सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करता है। इसीसे वह प्राण भरकर उस समय '**कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**' अथवा केवल '**गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**' बोलकर अपने प्राणोंकी अनन्य आकांक्षाको पूर्ण करता है। इसीसे मधुर-रस-पिपासु भक्त अनन्ताचिन्त्य माधुर्यमयी व्रजसुन्दरियोंसे परिवृत श्रीराधामाधव-युगलकी प्रेमसेवा प्राप्त करनेके लिये प्रधान साधनरूपमें उपर्युक्त अष्टादशाक्षर या दशाक्षर मन्त्रका आश्रय ग्रहण करते हैं।

इस अष्टादशाक्षर (या दशाक्षर) मन्त्रके द्वारा श्रीराधा-माधव-युगलकी प्रेमोपासना होती है। इसके लिये महानुभाव भक्त प्रेमी साधकोंने एक 'श्रीयोगपीठ' का निर्माण किया है। उस योगपीठके अनुसार ध्यान करके और सम्भव हो तो उसका एक ताम्रका यन्त्र
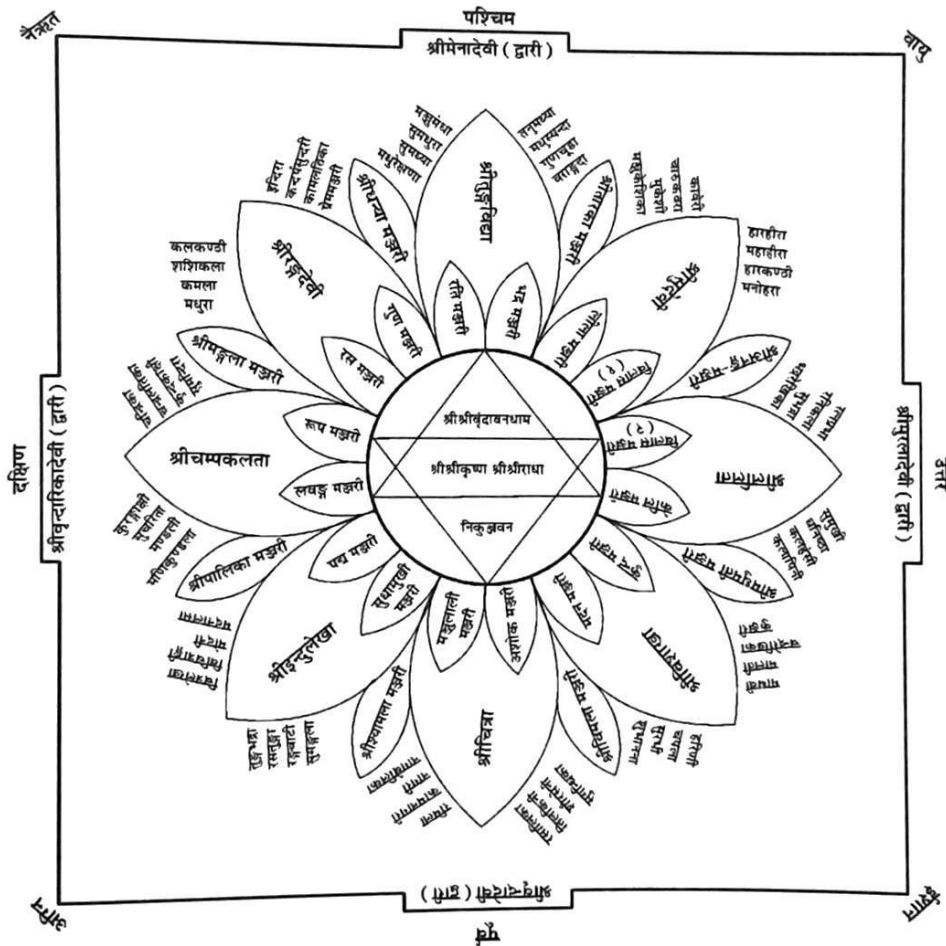
बनवाकर यथायोग्य निर्दिष्ट स्थानोंपर सबकी पूजा करके श्रद्धा-प्रेमपूर्वक मन्त्रका जप करना चाहिये।

परम पवित्र सुरम्य दिव्यातिदिव्य वृन्दावनमें भगवान् श्रीराधामाधवका लीला-विलास चलता है। वहाँ एक लीलाक्षेत्र है, जिसे साधनाकी दृष्टिसे 'श्रीयोगपीठ' कहते हैं। वह सहस्रदल कमल है। उसके केन्द्र-मध्यमें श्रीराधामाधवयुगल विराजित हैं। उस सहस्रदल कमलमें उत्तरकी ओर श्रीललिताजी, ईशानमें श्रीविशाखाजी, पूर्वमें श्रीचित्रा, अग्निकोणमें श्रीइन्दुलेखा, दक्षिणमें श्रीचम्पकलता, नैर्ऋत्यमें श्रीरंगदेवी, पश्चिममें श्रीतुंगविद्या और वायुकोणमें श्रीसुदेवीजी सुशोभित हैं। इनके वर्ण, वस्त्र, सेवा, भाव आदिका वर्णन पृष्ठ १३२ पर किया जा चुका है।

श्रीकृष्णप्राप्तिके लिये व्रजकुमारियोंकी कात्यायनी-उपासना

(ब्रह्मलीन आचार्य श्रीअक्षयकुमारजी वन्द्योपाध्याय)

हेमन्त-ऋतुका प्रथम मास मार्गशीर्ष (अगहन) आ उपस्थित हुआ। इस पवित्र मासमें श्रीकृष्णैकप्राणा व्रजकुमारियोंने श्रीकृष्णप्राप्तिकी कामनासे कात्यायनीपूजाका व्रत ग्रहण किया। इस व्रतके विधानके अनुसार वे संयमपरायणा तपस्विनी ब्रह्मचारिणीके समान एक समय केवल हविष्यान्नका भोजन करतीं, ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर विश्वपावनी यमुनामें स्नान करतीं और अरुणोदयके साथ-साथ यमुनाके पुलिनपर बालुकाद्वारा कात्यायनीदेवीकी मूर्तिका निर्माण करके सुरभित पुष्प, गन्ध-माल्य, धूप-दीप, नैवेद्य, प्रवाल, फल, तण्डुल और नाना प्रकारके उपहार सजाकर देवीकी अर्चना करती थीं। उनका मन्त्र यही था—

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः॥

अर्थात—'हे कात्यायनि! हे महामाये! हे महायोगिनि! हे अधीश्वरि! हे देवि! तुम नन्दगोपसुतको मेरा पति बना दो, तुम्हें नमस्कार है।' इस मन्त्रका वे सदा-सर्वदा मन-

ही-मन जप करतीं एवं इसी मन्त्रके द्वारा देवीकी पूजा करती थीं। श्रीकृष्णगतप्राणा अनन्यमानसा कुमारियाँ इस प्रकार पूरे मार्गशीर्षमासपर्यन्त नियत व्रतचारिणी रहती थीं। वे विश्वजननी कल्याणविधायिनी श्रीकृष्णप्रदान-समर्था देवी भद्रकालीकी यथाविधि अर्चना करतीं एवं नन्दनन्दन हमारे पति हों—सर्वदा इसी प्रार्थनाका हृदयमें आकुल आग्रहके साथ पोषण करती थीं।'

भगवान्‌को उन्होंने चाहा 'पति' रूपमें। पतिरूपमें वरण करना प्रेम-भक्तिका सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है। उन्होंने भगवान्‌को अभीष्ट फलदाताके रूपमें नहीं चाहा, उन्होंने उनको चाहा—एकमात्र वांछित परम प्रियतमरूपमें। परमप्रेष्ठ भगवान्‌के अतिरिक्त उनका और कुछ भी अभीष्ट या वांछित नहीं था और न उन्हें मुक्तिकी ही आकांक्षा थी। उनके समर्पित जीवनमें भगवान्‌को देनेके लिये तो कुछ रहा ही नहीं था। उन्होंने केवल सम्पूर्ण अन्तःकरणसे उन्हें चाहा था और वह चाह थी केवल और केवल उन्हींके लिये। इसीका नाम—है 'यथार्थ भक्ति'। यह अन्याभिलाषावर्जित प्रेम ही वस्तुतः 'भक्ति' पदवाच्य है। यह भक्ति व्रजकुमारियोंमें स्वभावतः ही उत्पन्न हुई थी। उन्होंने भगवान्‌का नाम सुना था गुरुजनोंके मुखसे। उनका गुणगान सुना था। भगवान् ही मानवमात्रके चरम और परम आराध्य हैं एवं उनके साथ अविच्छेद्य भावसे सम्मिलित हो पानेमें ही मानवजीवनकी सम्यक् सार्थकता है, यह तत्त्व भी उनके कानोंमें प्रवेश कर चुका था। श्रवणके साथ ही उनका विशुद्ध चित्त उनके नामसे आकर्षित हो गया। अपने-आप उनके मन और वाणीमें उनका गुणगान स्फुरित होने लगा। उनका सम्पूर्ण हृदय प्रेमसे द्रवीभूत होकर अविच्छिन्न धारामें उन्हींकी ओर प्रवाहित होने लगा। वे भगवद्भावभावित होकर सम्पूर्ण रूपसे भगवान्‌की ही स्वकीया हो जाना चाहती थीं। इसीका नाम है—'पतिरूपमें वरण'। वे भगवान्‌से कोई प्रत्याशा नहीं करती थीं। और तो क्या, भगवान्‌का भी सम्भोग

करना नहीं चाहती थीं। वे तो चाहती थीं भगवान्‌की सम्भोग्या होना। भगवान् उनको निजस्व मानकर ग्रहण करें; उनका जीवन, यौवन, सौन्दर्य, माधुर्य, शक्ति, सम्पत्ति—जो कुछ भी है, सभी भगवान्‌की हैं एवं भगवान् ही उन सबका भोग करें; उनके भोगसे भगवान्‌का आनन्दविलास हो, आनन्दमयकी आनन्द-तरंगें उछलने लगें और रसस्वरूपकी रसमाधुरी नव-नव रूपमें विकीर्ण हो उठे। यही है उनका काम्य; इसीमें होता है उनको कृतार्थताका बोध। वे अपना सब कुछ देकर, निजस्व या स्वभोग्य माननेयोग्य कुछ भी न रखकर भगवान्‌की सेवाधिकारिणी होंगी। इसी सेवासे उनको आनन्द होगा। भगवत्सेवामें आत्मविलयके साधनसे ही उनके जीवनकी सार्थकता होगी। उनकी सर्वांगीण सेवासे भगवान्‌की जो आनन्दधारा प्रवाहित होगी, उसीसे अभिषिक्त होकर उनका जीवन धन्य होगा। यही है पतिरूपमें वरण करनेका रहस्य। साधारण अविद्यासे आवृत-आच्छन्न, आत्मविस्मृत, संसारवशीकृत जनके समान संसारका वे पतिरूपमें वरण करनेको राजी नहीं हुईं। इन्द्रियभोग्य या मनोभोग्य अथवा बुद्धिभोग्य सांसारिक विषयोंकी सेवामें आत्मनियोग करनेके लिये वे प्रस्तुत नहीं हुईं। परिवार, समाज और जातिके सामने आत्मबलिदान करना उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

जो विश्वचराचरके चरम सेव्य हैं, जो स्वरूपतः निखिल विश्वके एकमात्र अद्वितीय पति हैं, जो अखिलरसामृतसिन्धु हैं, जिनके भजनेपर और किसीको भी भजनेकी आकांक्षा या आवश्यकता ही नहीं रह जाती, उन्हींको भजनेसे, उन्हींकी सेवामें आत्मोत्सर्ग करनेसे, भोग्यरूपसे जीवनके समस्त अंग-प्रत्यंगोंका गठन करनेसे ही मानव-जीवनकी चरम सार्थकता है। व्रज-कुमारियोंने कौमारावस्थामें अपने देह और प्राणको किसी प्रकार भी संसारका उच्छिष्ट न होने देकर उसी परम सेव्यकी सेवामें ही समर्पित कर दिया, एकमात्र परम सर्वस्व उन्हींका पतिरूपमें वरण किया, यही उनकी 'उपासना' है।

उन परम सेव्य, विश्वाराध्य, अखिल चराचर अनन्त विश्वब्रह्माण्डके पतिको प्रेममयी व्रजगोपियोंने केवल प्रेमवृत्तिके द्वारा ही उपलब्ध किया था। विशुद्ध प्रेमकी दृष्टिसे ही वे उनकी भावना करतीं, ध्यान करतीं और आराधना-उपासना करती थीं। निराविल प्रेमके विषय एवं आश्रयरूपमें वे उनको उपलब्ध करने और उनके चरणोंमें आत्मनिवेदन करनेके लिये व्याकुल हो उठी थीं। अपने प्रेमाभिषिक्त हृदयदेवताके रूपमें ही उन्होंने उनकी अर्चना-उपासना करनेका व्रत ग्रहण किया था। यही विशुद्ध प्रेमाभक्तिका लक्षण है। इसीलिये वे भगवान्‌का कर्मवृत्ति या ज्ञानवृत्तिकी दृष्टिसे चिन्तन भी नहीं करती थीं, आकांक्षा भी नहीं रखती थीं। कर्म और ज्ञान उनके लिये प्रेमके विलासके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं थे। उनकी दृष्टिमें प्रेम ही कर्मरूपमें और ज्ञानरूपमें अपने अन्तर्निहित माधुर्यका नाना भावोंमें आस्वादन करता रहता है। ये प्रेमके ही धर्म हैं। अतएव वहाँ प्रेमके क्षेत्रमें कर्म और ज्ञानका कोई स्वतन्त्र मूल्य या मर्यादा नहीं है। कर्मकी दृष्टिसे भी 'भगवान् सृष्टि-स्थिति-लयकर्ता, पापपुण्यनियन्ता, कर्मफलविधाता, सर्वशक्तिमान्, न्यायदण्डधारी असीम बलवीर्यैश्वर्यसम्पन्न सर्वलोकमहेश्वर हैं।' ज्ञानकी दृष्टिसे ही वे **'सत्यं ज्ञानमनन्तं निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् एकमेवाद्वितीयम्'*** परब्रह्म परमात्मा हैं।' कर्म और ज्ञानकी स्वतन्त्र मर्यादाको विशुद्ध प्रेमीहृदय स्वीकार नहीं करता, इसीलिये परमाराध्यके ये सब भाव, ये सब महिमामण्डित विशेषण उसको आकर्षित नहीं करते। समग्र वीर्य और ऐश्वर्यका आडम्बर, समग्र विज्ञत्व और प्रभुत्वका प्रभाव, समग्र धर्म-विधातृत्व और निग्रहानुग्रहका सामर्थ्य प्रेमी-हृदयकी

* श्वेताश्वतर उपनिषद् ६। १९

दृष्टिमें अकिंचित्कर है। ये सब उसकी अनुभूतिमें प्रेमास्पदके खेलमात्र, रसस्वरूपके रसविलासमात्र, आनन्दस्वरूपके आत्मास्वादनकी तरंग-भंगिमामात्र हैं। और इन सब खेलोंसे विरत होकर, निर्विकार, निष्पन्द, स्वस्वरूपमें अवस्थिति किंवा खेलके बीचमें ही खेलके ऊर्ध्वस्तरपर निर्लिप्त भावसे स्थित होकर अपने ज्ञान-स्वरूपका आस्वादन करना—यह भी उनका एक भावविशेषमात्र है। प्रेमानन्दघन रसमाधुर्यसिन्धु लीलामय श्रीभगवान्‌में सभी सम्भव है। उनमें सभी भावोंका अपूर्व समावेश है। सभी उनके आत्मास्वादनकी विचित्र भंगिमा है, सभी उनकी लीला-क्रीड़ा है। अतएव प्रेमी भक्त भगवान्‌की असीम कर्मशक्ति, अनन्त ज्ञान, अप्रमेय ऐश्वर्य, अभावनीय औदासीन्य और सर्वभावातीत स्वरूपकी बात जानकर और सुनकर भी वे प्रधानत: एकमात्र प्रेमानन्दघन सौन्दर्य-माधुर्यनिलय नित्यलीला-विहारी रसराजस्वरूपमें ही उनका चिन्तन करते हैं, उपासना करते हैं, आस्वादन करते हैं। श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्णके स्वरूपमें व्रजकुमारियोंने इन्हीं प्रेमके देवता रसराज भगवान्‌की उपलब्धि की थी। वृन्दावनमें श्रीकृष्णके वीर्य, ऐश्वर्य, ज्ञान और गौरवका नानाविध परिचय पाकर भी वे उनसे मुग्ध नहीं हुईं। वे तो उनको रसिकशिरोमणि, प्रेमिकचूडामणि, नित्यलीलाविहारी आनन्दमय परम प्रियतमरूपमें ही अनुभव करती थीं। एवं दैत्यदलन, देव-मोहन, गोवर्धनधारण आदि सभी व्यापारोंमें वे उनकी लीला-क्रीडाका ही दर्शन करती थीं। उनकी सभी प्रकारकी शक्ति, ऐश्वर्य, विज्ञत्व आदिको प्लावित करके उनका प्रेमानन्दस्वरूप ही उनके चित्तमें सर्वदा भासमान रहता था। इन्हीं प्रेमानन्दघन नन्दनन्दन श्रीकृष्णका उन्होंने पतिरूपमें वरण किया था। किंतु महामाया महेश्वरी कात्यायनी देवीके आनुकूल्यके बिना जीवके प्रेमानन्दघन भगवान्‌के साथ मिलन होनेकी सम्भावना नहीं है। कात्यायनी देवी हैं—भगवान्‌की ही अघटनघटनापटीयसी महाशक्ति।

साध्य-साधन-तत्त्वज्ञ व्रजकुमारिकाएँ अपने परमाराध्य प्रेमानन्दघन रसराज श्रीकृष्णके साथ ऐकान्तिकभावसे मिलित होनेके उद्देश्यसे उन महामायाके शरणापन्न हुईं। उन्होंने उनका वालुकामय विग्रह अपने सम्मुख स्थापित किया और शास्त्रीय विधिके अनुसार उनकी उपासना, अर्चना, उनको बारंबार साष्टांग-प्रणाम करने लगीं एवं प्रार्थना करने लगीं—

'माँ! तुम विश्वकी जननी, विश्वकी अधीश्वरी, अघटनघटनापटीयसी महायोगिनी योगेश्वरी हो। माँ! हमारे अभीष्टतम नन्दनन्दन श्रीकृष्ण सदासे तुम्हारे ही हैं। तुम चाहो, तो सदाके लिये उनको हमारी दृष्टिसे छिपाकर रख सकती हो, सदाके लिये हमलोगोंको अपूर्णवासनाकी ज्वालामें जला सकती हो, सदाके लिये हमलोगोंको अपनी अविद्यामूर्तिके द्वारा समाच्छन्न करके श्रीकृष्णसेवासे वंचित रखकर सांसारिक त्रितापोंकी आगमें जलाती रह सकती हो और तुम यदि दया कर दो, तुम यदि अपनी स्नेहमयी, कल्याणमयी, माधुर्यमयी—विद्यामूर्तिको प्रकाशित करके हमलोगोंको गोदमें उठा लो, तुम अपने स्पर्शसे हमारे देह, इन्द्रिय-मन-बुद्धिका समस्त मालिन्य विदूरित करके यदि हमलोगोंको सम्यक्‌रूपेण विशुद्ध प्रेममय और श्रीकृष्ण-सेवाके योग्य बना दो तो इसी क्षण हमारे परम प्रेमास्पदको हमारे सम्मुख समुपस्थित कर सकती हो; इसी क्षण उनके साथ हमारा मिलन करा सकती हो। माँ महामाये! भगवान् श्रीकृष्णको छिपाकर रखना या सामने लाना, उनको हमारे पाससे अलग रखना अथवा उनके साथ हमको नित्ययुक्त कर देना—सब कुछ तुम्हारे ही हाथमें है। हम तुमसे और कुछ भी नहीं चाहतीं। धन-जन, यश-मान, स्वर्ग-अपवर्ग कुछ भी नहीं माँगती। तुम अपने श्रीकृष्णको हमारा पति बना दो, हमको उनकी अनन्य किंकरी बनाकर नित्य-सर्वांगीण सेवाका अधिकार दे दो।'

हम तुम्हारी शरणमें आयी हैं, तुमपर अनन्य भावसे आश्रित हैं।

श्रीनारदजीको भगवान् शंकरसे युगलशरणागति-मन्त्रकी प्राप्ति

सारस्वत कल्पसे पच्चीसवें कल्प पूर्वकी बात है, उस समय नारदजी कश्यपजीके पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे। उस समय भी उनका नाम नारद ही था। एक दिन वे भगवान् श्रीकृष्णका परम तत्त्व पूछनेके लिये कैलास पर्वतपर भगवान् शिवके समीप गये। वहाँ उनके प्रश्न करनेपर महादेवजीने स्वयं जिसका साक्षात्कार किया था, श्रीहरिकी नित्य-लीलासे सम्बन्ध रखनेवाले उस परम रहस्यका उनसे यथार्थरूपमें वर्णन किया। तब नारदजीने श्रीहरिकी नित्य-लीलाका दर्शन करानेके लिये भगवान् शङ्करसे पुनः प्रार्थना की। तब भगवान् सदाशिव इस प्रकार बोले—'**गोपीजनवल्लभ-चरणाञ्छरणं प्रपद्ये**'* यह मन्त्र है। इस मन्त्रके सुरभि ऋषि, गायत्री छन्द और गोपीवल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण देवता कहे गये हैं, '**प्रपन्नोऽस्मि**' ऐसा कहकर भगवान्की शरणागतिरूप भक्ति प्राप्त करनेके लिये इसका विनियोग बताया गया है। विप्रवर! इसका सिद्धादि-शोधन नहीं होता है। इसके लिये न्यासकी कल्पना भी नहीं की गयी है। केवल इस मन्त्रका चिन्तन ही भगवान्की नित्य लीलाको तत्काल प्रकाशित कर देता है। गुरुसे मन्त्र ग्रहण करके उनमें भक्तिभाव रखते हुए अपने धर्मपालनमें संलग्न हो गुरुदेवकी अपने ऊपर पूर्ण कृपा समझे और सेवाओंसे गुरुको सन्तुष्ट करे। साधुपुरुषोंके धर्मोंकी, जो शरणागतोंके भयको दूर करनेवाले हैं, शिक्षा ले। इहलोक और परलोककी चिन्ता छोड़कर उन सिद्धिदायक धर्मोंको अपनाये। 'इहलोकका सुख, भोग और आयु पूर्वकर्मोंके अधीन हैं, कर्मानुसार उनकी व्यवस्था भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही करेंगे।' ऐसा दृढ़ विचारकर अपने मन और बुद्धिके द्वारा निरन्तर नित्यलीलापरायण श्रीकृष्णका चिन्तन करे। दिव्य अर्चाविग्रहोंके रूपमें भी भगवान्का अवतार होता है। अतः उन विग्रहोंकी सेवा-पूजा-द्वारा सदा श्रीकृष्णकी आराधना करे। भगवान्की शरण चाहनेवाले प्रपन्न भक्तोंको अनन्यभावसे उनका चिन्तन करना चाहिये और विद्वानोंको भगवान्का आश्रय रखकर देह-गेह आदिकी ओरसे उदासीन रहना चाहिये। गुरुकी अवहेलना, साधु-महात्माओंकी निन्दा, भगवान् शिव और विष्णुमें भेद करना, वेदनिन्दा, भगवन्नामके बलपर पापाचार करना, भगवन्नामकी महिमाको अर्थवाद समझना, नाम लेनेमें पाखण्ड फैलाना, आलसी और नास्तिकको भगवन्नामका उपदेश देना, भगवन्नामको भूलना अथवा नाममें आदरबुद्धि न होना—ये (दस) बड़े भयानक दोष हैं। वत्स! इन दोषोंको दूरसे ही त्याग देना चाहिये। मैं भगवान्की शरणमें हूँ, इस भावसे सदा हृदयस्थित श्रीहरिका चिन्तन करे और यह विश्वास रखे कि वे भगवान् ही सदा मेरा पालन करते हैं और करेंगे। भगवान् राधा-माधवसे यह प्रार्थना करे—'राधानाथ! मैं मन, वाणी और क्रियाद्वारा आपका हूँ। श्रीकृष्णवल्लभे! मैं तुम्हारा ही हूँ। आप ही दोनों मेरे आश्रय हैं।' मुनिश्रेष्ठ! श्रीहरिके दास, सखा, पिता-माता और प्रेयसियाँ—सब-के-सब नित्य हैं; ऐसा महात्मा पुरुषोंको चिन्तन करना चाहिये। भगवान् श्यामसुन्दर प्रतिदिन वृन्दावन तथा व्रजमें आते-जाते और सखाओंके साथ गौएँ चराते हैं। केवल असुर-विध्वंसकी लीला सदा नहीं होती। श्रीहरिके श्रीदामा आदि बारह सखा कहे गये हैं तथा श्रीराधा-रानीकी सुशीला आदि बत्तीस सखियाँ बतायी गयी हैं। वत्स! साधकको चाहिये वह अपनेको श्यामसुन्दरकी सेवाके सर्वथा अनुरूप समझे और श्रीकृष्णसेवाजनित सुख एवं आनन्दसे अपनेको अत्यन्त संतुष्ट अनुभव करे। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तसे लेकर आधी राततक समयानुरूप सेवाके द्वारा दोनों प्रिया-प्रियतमकी परिचर्या करे। प्रतिदिन एकाग्रचित्त होकर उन युगल सरकारके सहस्र नामोंका पाठ भी करे। मुनीश्वर! यह प्रपन्न भक्तोंके लिये साधन बताया गया है। यह मैंने तुम्हारे समक्ष गूढ तत्त्व प्रकाशित किया है। [नारदपुराण]

---

* गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णके चरणोंकी शरण लेता हूँ।

निकुंजलीलामें प्रवेशहेतु अर्जुन बने अर्जुनी

एक समय यमुनाजीके तटपर किसी वृक्षके नीचे भगवान् देवकीनन्दनके पार्षद अर्जुन बैठे थे, उन्होंने कथाप्रसंगमें ही भगवान्से प्रश्न किया—हे दयासागर प्रभो! श्रीशिव तथा ब्रह्माजी आदिने भी आपके जिस रहस्यका दर्शन अथवा श्रवण न किया हो, उसीका मुझसे वर्णन कीजिये। पूर्वमें आपने कहा था कि गोप-कन्याएँ मेरी प्रेयसी हैं। वे कितने प्रकारकी और संख्यामें कितनी हैं? उनके नाम क्या-क्या हैं? उनमेंसे कौन कहाँ रहती है? हे प्रभो! उनके कौन-कौन-से कर्म हैं? तथा उनकी अवस्था क्या और वेष कैसा है? हे भगवन्! उनमेंसे किन-किनके साथ आप किस नित्य स्थानपर, जहाँका आनन्द और वैभव भी नित्य है, एकान्त-विहार करते हैं। वह परम महान् शाश्वत स्थान कहाँ और कैसा है? यदि आपकी मुझपर पूर्ण कृपा हो तो यहाँ मेरे सभी प्रश्नोंका उत्तर दीजिये। हे पीड़ितोंकी पीड़ा हरनेवाले महाभाग! आपके जिन अज्ञात रहस्योंको मैं पूछना भूल गया होऊँ, उन सबोंका भी वर्णन कीजिये।

अर्जुनके प्रश्नोंको सुनकर भगवान्ने कहा—वह स्थान, वे मेरी वल्लभाएँ और उनके साथका मेरा विहार, यह मेरे प्राणप्रिय पुरुषोंके भी जाननेकी बात नहीं है। इसे तुम सच मानो। हे सखे! उसकी चर्चा कर देनेपर तुम्हें उसे देखनेकी उत्कण्ठा हो जायगी। जो रहस्य ब्रह्मा आदिके लिये भी द्रष्टव्य नहीं है, वह अन्य जनोंके लिये कैसा है, यह कहनेकी बात नहीं। इसलिये हे भाई! उसके बिना तुम्हारा क्या बिगड़ता है, उसे सुननेका आग्रह छोड़ दो।

इस प्रकार भगवान्के दारुण वचन सुनकर अर्जुन दीनभावसे उनके युगल चरणारविन्दोंपर दण्डकी भाँति गिर पड़े। तब भक्तवत्सल प्रभुने हँसकर अपनी दोनों भुजाओंसे उन्हें उठाया और बड़े प्रेमके साथ उनसे कहा—

यदि तुम उस स्थानको देखना ही चाहते हो तो यहाँ उसका वर्णन करनेसे क्या लाभ? जिस देवीसे समस्त ब्रह्माण्डका आविर्भाव हुआ है, वह अब भी जिसमें स्थित है और अन्तमें जिसमें लीन होगा, उसी श्रीमती भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी अत्यन्त भक्तिपूर्वक आराधना करके उनको आत्मसमर्पण कर दो; क्योंकि उन देवीके बिना वह स्थान दिखा देनेमें मैं कभी समर्थ नहीं हूँ।

भगवान्की बात सुनकर अर्जुनके नेत्र आनन्दसे भर आये और उनके आदेशानुसार वे श्रीमती त्रिपुरादेवीके पादुका-स्थानको गये। वहाँ जाकर एवं देवीका दर्शन पाकर पार्थका हृदय भक्तिसे भर गया और 'मेरा नाम अर्जुन है' इस प्रकार कहकर उन्होंने हाथ जोड़े हुए बारम्बार प्रणाम किया, तत्पश्चात् एकान्तमें खड़े हो गये।

भगवती अर्जुनकी उपासना तथा उनपर दयानिधिका अनुग्रह जानकर कृपापूर्वक बोली—

हे वत्स! इस संसारमें कौन-सा अत्यन्त दुर्लभ शुभ कर्म तुमसे हुआ है, जिससे शरणागतवत्सल भगवान्ने तुम्हें इस अत्यन्त गूढ़ रहस्यको जाननेका अधिकारी समझा है।

हे पुत्र! विश्वरूप भगवान्ने तुमपर जैसा अनुग्रह किया है, वैसा भूतलवासी अन्य मनुष्योंपर, स्वर्गवासी देवताओंपर, तपस्वी, योगी तथा अखिल भक्तोंपर भी नहीं किया है; अतः तुम यहाँ आओ, मेरे कूलकुण्ड नामक सरोवरका आश्रय लो। देखो, यह निकटवर्तिनी देवी समस्त कामनाओंको देनेवाली है, तुम इसके साथ सरोवरपर जाओ और उसमें विधिवत् स्नान करके शीघ्र ही यहाँ लौट आओ।

यह सुनकर पार्थने उसी समय जाकर सरोवरमें स्नान किया और तुरन्त लौट आये। उन्हें स्नान करके आये देखकर देवीने उनसे न्यास और मुद्रा आदि कार्य कराया और उनके दाहिने कानमें तत्काल सिद्धिदायिनी परा बालाविद्याका उपदेश किया; साथ ही उस मन्त्रका अनुष्ठान, पूजन, लक्षसंख्यक जप तथा करवीर (कनेर)-की लाख कलिकाओंद्वारा हवन आदिका यथोचित प्रयोग भी समझा दिया। तत्पश्चात् परमेश्वरीने दया करके कहा—हे वत्स! इसी विधिसे मेरी उपासना करोगे तो तत्काल ही तुम्हारा श्रीकृष्णकी लीलामें अधिकार हो जायगा।

यह सुनकर अर्जुनने इसी पद्धतिसे भगवतीकी आराधना आरम्भ कर दी और पूजन तथा जप करके देवीको प्रसन्न किया। तदनन्तर उन्होंने शुभ हवन तथा विधिपूर्वक स्नान करके अपनेको कृतार्थ-सा माना और

मनोरथ प्रायः प्राप्त हुआ ही समझा।

इसी अवसरमें देवी वहाँ आयी और मुसकराती हुई बोली—'बेटा! इस समय तुम उस घरके अन्दर जाओ।' भगवतीकी आज्ञा पाकर उनकी सहचरीके साथ अर्जुन राधापतिके स्थानपर गये, जहाँ सिद्ध भी नहीं पहुँच सकते।

इसके बाद देवीकी सखीके उपदेशसे उन्होंने गोलोकसे ऊपर स्थित नित्य वृन्दावन-धामका दर्शन किया, जो पूर्ण प्रेमरसात्मक तथा परम गुह्य है।

सखीके वचनसे ही अपने दिव्य नेत्रोंसे उस रहस्यमय स्थानका दर्शन करके बढ़े हुए प्रेमोद्रेकसे अर्जुन विह्वल हो उठे और मोहवश मूर्छित होकर वहीं गिर पड़े। फिर कठिनतासे होशमें आनेपर सहचरीने अपनी दोनों भुजाओंसे उन्हें उठाया।

उसके आश्वासन देनेपर जब वे किसी तरह सुस्थिर हुए तो उससे पूछा, बताओ, अब और कौन-सा तप मुझे करना चाहिये?—ऐसा कहकर भगवल्लीला-दर्शनकी अत्यन्त उत्कण्ठासे कातर हो गये।

तब भगवतीकी सखी उन्हें हाथसे पकड़कर वहाँसे दक्षिण ओर एक उत्तम स्थानपर ले गयी और वहाँ जाकर कहा—

हे पार्थ! तुम इस शुभद जलराशिमें स्नानार्थ प्रवेश करो। यह सहस्रदल कमलका आकर है, इसके चारों ओर चार घाट हैं। यह सरोवर जल-जन्तुओंसे व्याप्त है, इसके भीतर प्रवेश करनेपर तुम यहाँकी विशेष बातें देख सकोगे।

यहाँसे दक्षिण-भागमें यह जो सरोवर है, इसका नाम मलय-निर्झर है। वहाँ मधूकके मधुर मकरन्दका पान हुआ करता है। यह सामने जो विकसित उद्यान है, यहाँ भगवान् गोविन्द वसन्त-ऋतुमें वसन्त-कुसुमोचित मदनोत्सव करते हैं। यहाँ दिन-रात भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति होती है, इसलिये इस सरोवरमें स्नान करके पूर्व-सरोवरके तटपर जाओ और उसके जलका आचमन करके अपना मनोरथ सिद्ध करो।

उसकी बात सुनकर अर्जुनने ज्यों ही जलमें प्रवेशकर डुबकी लगायी त्यों ही वह सहचरी अन्तर्धान हो गयी। और उन्होंने जलसे निकलकर अपनेको सम्भ्रममें पड़ी हुई एकाकिनी सुन्दरी रमणीके रूपमें देखा।

गोपीवल्लभ गोविन्दकी मायासे वह सुन्दरी अपने प्रथम शरीरकी सब बातें भूल गयी और विस्मित-भावसे

किंकर्तव्यविमूढ हो जहाँ-की-तहाँ खड़ी रह गयी।

इतनेमें आकाशमें सहसा यह गम्भीर शब्द हुआ कि—'हे सुन्दरि! तुम इसी मार्गसे पूर्व-सरोवरके तटपर चली जाओ और वहाँके जलका आचमन करके अपना मनोरथ सिद्ध करो। हे वरवर्णिनि! तुम खेद न करो; वहीं तुम्हारी सखियाँ हैं, वे तुम्हारे उत्तम मनोरथको पूर्ण करेंगी।'

इस दैवी वाणीको सुनकर वह पूर्व-सरोवरके तटपर गयी। किशोरी वहाँ आचमन करके क्षणभर खड़ी रही।

इसी समय कानोंमें कूजती हुई कांची तथा मंजीरकी मधुर ध्वनिसे मिश्रित किंकिणीकी झनकार सुनायी देने लगी। फिर अद्भुत यौवन-सम्पन्न दिव्य वनिताओंका झुंड वहाँ आ पहुँचा।

उस परम आश्चर्यदायी वनितावृन्दको देखकर वह मन-ही-मन कुछ सोचने लगी और पैरके अँगूठेसे जमीन खोदती हुई सिर झुकाये खड़ी रही।

इसके बाद इसे अकेली खड़ी देखकर वनिताओंने परस्पर दृष्टिपात करके विचारा कि—'बड़ी देरसे कौतूहलमें पड़ी हुई यह कौन हमारी ही जातिकी स्त्री है?' इस

तरह सबोंने उसके ऊपर दृष्टि डालकर क्षणभर परस्पर मन्त्रणा की कि 'चलकर इसे जानना चाहिये'। ऐसा सोचकर सभी कौतुकवश इसे देखने आयीं।

उनमेंसे एक प्रियमुदा नामकी मनस्विनी बाला उसके पास जाकर प्रेमपूर्वक मधुर वाणीमें बोली—तुम कौन और किसकी कन्या हो? तथा किसकी प्राणप्रिया हो? तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ है, किसके द्वारा तुम यहाँ आयी? अथवा तुम स्वयं ही चली आयी हो? चिन्ता करनेसे कोई लाभ नहीं, हमारे प्रश्नानुसार सब बातें हमसे कह दो। इस परमानन्दमय स्थानमें भला किसीको क्या दु:ख है?

इस तरह पूछनेपर उसने विनीतभावसे उनके मनोंको मोहते हुए स्पष्ट शब्दोंमें कहा—मैं कौन हूँ? किसकी कन्या अथवा प्रेयसी हूँ? मुझे यहाँ कौन लाया अथवा मैं स्वयं चली आयी?—इन बातोंको भगवतीजी जानें, मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। फिर भी मैं कुछ कहती हूँ, यदि मेरी बातोंपर आपलोगोंको विश्वास हो तो उसे सुनें। यहाँसे दक्षिणकी ओर एक सरोवर है, मैं वहीं स्नान करने आयी और वहीं खड़ी रही। थोड़ी देरमें उत्कण्ठावश मैं चारों ओर निहारने लगी, इतनेमें मुझे अद्भुत आकाशवाणी सुन पड़ी—हे सुन्दरि! तुम इसी मार्गसे पूर्व-सरोवरपर चली जाओ और उसके जलका आचमन करके अपना मनोरथ सिद्ध करो; हे वरवर्णिनि! खेद न करो; वहीं तुम्हारी सखियाँ हैं, वे तुम्हारे उत्तम मनोरथको पूर्ण करेंगी।—यही सुनकर मैं वहाँसे यहाँ चली आयी हूँ। यहाँ आनेपर मैंने आचमन करके नाना भाँतिकी मधुर ध्वनि सुनी, तत्पश्चात् आपलोगोंका शुभ दर्शन मिला। बस मन, वाणी और शरीरसे इतना ही मुझे मालूम है। हे देवियो! आप कौन हैं, किनकी कन्याएँ हैं, कहाँ आपलोगोंकी जन्म-भूमि है? और किनकी आपलोग वल्लभाएँ हैं?

यह सुनकर प्रियमुदाने कहा—अच्छा मैं बतलाती हूँ। हे शुभे! हमलोग वृन्दावनके कलानाथ गोविन्दकी प्राणप्यारी सखियाँ तथा विहारसहचरियाँ हैं। हम आत्मानन्दमयी व्रजबालाएँ यहाँ आयी हुई हैं। ये श्रुतिगण तथा मुनिगण भी वनितारूपमें यहाँ हैं। पूर्व-कालमें हममेंसे जो-जो राधापतिको अत्यन्त प्यारी थीं, वे ही यहाँ उनके संग नित्यविहार करनेवाली क्रीडा-भूमिकी सहचरी हैं।

हे भामिनि! हमी लोगोंके साथ तुम भी यहाँ विहार करोगी। हे सखी! पूर्व-सरोवरपर चलो, वहाँ तुम्हें विधिवत् स्नान कराकर मैं सिद्धिदायक मन्त्र दूँगी।

इस प्रकार उसे ले आकर उसने विधिवत् स्नान कराया और वृन्दावनचन्द्रकी प्रेयसीके उत्तम मन्त्रका दीक्षाविधिके साथ उपदेश किया; पुरश्चरणकी विधि, ध्यान तथा होम-जपकी संख्या भी बतला दी।

सखियोंके लाये हुए सुगन्धित कुसुमोंसे और पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, धूप, दीप तथा भाँति-भाँतिके दिव्य नैवेद्योंसे उसने देवीकी विधिवत् पूजा करके एक लाख मन्त्र-जप किया; फिर विधिपूर्वक हवन करके पृथ्वीपर साष्टांग प्रणाम किया। अनन्तर निर्निमेष दृष्टिसे देखते हुए उसने देवीकी स्तुति की।

उसकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवती श्रीराधिका-देवी वहाँपर प्रकट हुईं। कांचन तथा चम्पाके समान उनकी कमनीय कान्ति थी। प्रत्येक अंगमें सौन्दर्य, लावण्य और माधुर्य था; शरत्कालके कलंकहीन कलाधरके समान उनके मुखकी शोभा थी। स्नेहयुक्त मुग्ध-मुसकान त्रिभुवन-मोहिनी थी। वे भक्तवत्सला वरदायिनी देवी अपने शरीरकी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई बोलीं—

हे शुभे! मेरी सखियोंकी बातें सत्य हैं, इसलिये तुम मेरी प्यारी सखी हो। उठो, चलो, मैं तुम्हारी कामना पूर्ण करती हूँ।

अर्जुनी देवीके मुखसे मनोवांछित वाणी सुनकर पुलकित हो गयी और प्रेम-विह्वल हो नेत्रोंमें आँसू भरकर पुन: देवीके चरणोंपर गिर पड़ी।

तब देवीने अपनी सखी प्रियंवदासे कहा—तुम इसे हाथका अवलम्बन देकर आश्वासन देती हुई मेरे साथ ले आओ। प्रियंवदाने ऐसा ही किया। उत्तर-सरोवरके तटपर पहुँचकर विधिपूर्वक अर्जुनीको नहलाया गया। फिर संकल्प-पूर्वक विधिवत् पूजन कराकर हरिवल्लभा श्रीराधादेवीने गोकुलचन्द्र श्रीकृष्णके मन्त्रका उपदेश किया। वे गोविन्दके संकेतको जानती थीं, अत: उसे उन्होंने अविचल भक्ति प्रदान की और मन्त्रराज मोहनका ध्यान भी बता दिया। इस अनुष्ठानमें नील कमलके समान श्यामल, अलंकारोंसे विभूषित, कोटि कामदेव-सदृश सौन्दर्यशाली तथा रास-

रसके लिये उत्सुक श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान करना चाहिये।

उपर्युक्त बातें अर्जुनीको समझाकर राधाने पुनः प्रियंवदासे कहा—'जबतक इसका उत्तम पुरश्चरण पूर्ण न हो तबतक तुम सखियोंके साथ सावधान होकर इसकी रक्षा करना।' यह कहकर वे स्वयं तो श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंके निकट चली गयीं और प्यारी सखियोंके पास अपनी छाया रख दी।

प्रियंवदाके आदेशसे यहाँ अर्जुनीने गोरोचन, कुंकुम और चन्दन आदि नाना मिश्रित द्रव्योंसे अष्टदल कमलके आकारमें एक यन्त्र बनाया तथा उसमें अद्भुत मोहन-मन्त्रका न्यास किया। इसके बाद ऋतुसम्भव विविध पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, मुखवास, वस्त्र, आभूषण और माला आदिसे वाहन तथा आयुधोंसहित भगवान् श्यामसुन्दरकी पूजा करके उनकी स्तुति तथा नमस्कार भी किया और मन-ही-मन उनका स्मरण करने लगी।

तब भक्तिके वशीभूत हो भगवान् श्यामसुन्दरने मुसकान-भरी दृष्टिसे संकेत करके राधासे कहा—'उस (अर्जुनी)-को यहाँ शीघ्र बुलाओ।' आज्ञा पाते ही देवीने अपनी सखी शारदाको भेजकर उसे तुरन्त बुला लिया।

वह रसिकशेखर श्रीकृष्णचन्द्रके सामने आते ही प्रेमविह्वल हो पृथिवीपर गिर पड़ी। उसे वहाँ सब कुछ अद्भुत दीखने लगा। उसके अंगोंमें स्वेद, पुलक और कम्प आदि सात्त्विक विकार होने लगे। बड़ी कठिनाईसे किसी तरह उठकर जब उसने नेत्र खोले तो सबसे प्रथम वहाँका विचित्र मनोरम स्थान दीख पड़ा। उसके बाद कल्पवृक्षपर दृष्टि पड़ी, वह वृक्ष काम-सम्पदाको देनेवाला था। उसके नीचे रत्नमन्दिर था, उसमें एक रत्नमय सिंहासन रखा था। उसके ऊपर भी अष्टदल-पद्म बना हुआ था। उसमें बायें-दायेंके क्रमसे शंख और पद्म-निधि रखे गये थे। चारों ओर जगह-जगह कामधेनु गौएँ थीं। सब ओर नन्दनवन था, उसमें मलयसमीर बह रहा था।

ऐसे रमणीय स्थानमें भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान थे। उनके अंगकी कान्ति श्यामल थी; अलकावली स्निग्ध, असित एवं भंगुरित थी; मत्त मयूरोंके शिखरसे उनकी चूडा बाँधी गयी थी, बायें कानके पुष्पमय आभूषणपर भ्रमर बैठे थे, दर्पणके समान स्निग्ध कपोल चंचल अलकोंके प्रतिबिम्बसे शोभित हो रहे थे। मस्तकमें सुन्दर तिलक लगा था। तिलके फूल और शुककी चोंचके समान उनकी मनोहर नासिका थी। बिम्बफलके सदृश सुन्दर अरुण अधर थे। वे अपनी मन्द मुसकानसे प्रेमोद्दीपन कर रहे थे। गलेमें मनोहर वनमाला थी और सहस्रों मदोन्मत्त भ्रमरोंसे भरी हुई पारिजातकी सुन्दर माला दोनों स्थूल कन्धोंपर शोभायमान थी। मुक्ताहार तथा कौस्तुभमणिसे वक्षःस्थल विभूषित था, उसमें श्रीवत्सका चिह्न भी था। आजानु लम्बी भुजाएँ मनोहर थीं। नाभि गम्भीर और मध्यभाग सिंहकी कटिसे भी कहीं अधिक सुन्दर था। वे अपने लावण्यसे कोटि-कन्दर्पको पराजित करते थे। वेणुके मनोहर गानसे वे त्रिभुवनको सुखके समुद्रमें निमग्न तथा मोहित कर रहे थे। उनका प्रत्येक अंग प्रेमावेशसे पूर्ण और रास-रससे आलस्ययुक्त हो रहा था।

उनके मुखकी ओर दृष्टि लगाये अनेकों सेविकाएँ यथास्थान खड़ी रहकर उनके संकेतोंको देख रही थीं और सम्मानपूर्वक चामर, व्यजन, माला, गन्ध, चन्दन, ताम्बूल, दर्पण, पानपात्र तथा अन्य क्रीडोपयोगी विविध वस्तुओंको वे पृथक्-पृथक् रख रही थीं।

श्रीमती राधिकादेवी उनके वामभागमें विराजमान होकर प्रसन्नतापूर्वक उनकी आराधना करती हुई हँस-हँसकर उन्हें पान देती थीं।

यह सब देखकर वह अर्जुनी प्रेमावेशसे विह्वल हो गयी। सर्वज्ञ हृषीकेशने उसके भावोंको समझ लिया और क्रीडावनमें उसकी इच्छानुसार उसे सुख दिया। तदनन्तर शारदासे कहा—'इसे शीघ्र ले जाकर पश्चिम सरोवरमें नहलाओ।'

शारदा उसे वहाँ ले गयी और क्रीडासरमें स्नान करनेको कहा। परन्तु भीतर जाते ही वह पुनः अर्जुन बन गयी। उसी समय वहाँ भगवान् श्रीकृष्णने प्रकट होकर जब अर्जुनको खिन्न तथा हताश देखा तो प्रेमपूर्वक हाथसे स्पर्श करके उन्हें फिर पूर्ववत् कर दिया और कहा—'अर्जुन! तुम मेरे प्रिय सखा हो, इस त्रिलोकीमें तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी मेरा रहस्य नहीं जानता। देखना, इसे कहीं प्रकाशित न करना।' [पद्मपुराण]

राधा-माधवका ध्यान एवं उनकी मानस-पूजा

(श्रीबनवारीलालजी गोयनका)

प्रात:कालकी वेला है। यमुनाके पुलिनके निकट एक सुन्दर तमाल वृक्षके नीचे जूहीके पुष्पोंसे सुसज्जित आसनपर श्रीराधा-माधव विराजमान हैं।

श्रीश्यामसुन्दरकी अवस्था लगभग पन्द्रह सालकी है, किशोरीजी उनसे कुछ छोटी लगती हैं।

श्रीश्यामसुन्दर किशोरीजीके गलबइयाँ डाले हुए हैं। उन दोनोंकी देहसे महान् देदीप्यमान नीला और पीला प्रकाश चारों ओर छिटक रहा है। अंग-अंगसे शोभा छिटक रही है। वे अपनी मधुर-मधुर मुसकानसे पशु-पक्षियोंतकको मुग्ध कर रहे हैं।

श्रीश्यामसुन्दरके घुँघराले काले केश हैं। वे बिखर-बिखरकर गालोंपर बीच-बीचमें आते रहते हैं। श्रीश्यामसुन्दर सिरपर मोरपंखका छोटा-सा मुकुट लगाये हुए हैं। माथेपर सुन्दर तिलक किया हुआ है। कानोंमें कुण्डल झिलमिला रहे हैं। काली-काली तीखी आँखें हैं, अति सुकोमल गाल हैं, गालोंके बीचसे अरुणिमा निकलकर चारों ओर छिटक रही है एवं गालोंपर कुण्डलोंकी आभा भी पड़ रही है। वे इतने अधिक कोमल हैं कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। छोटे-छोटे गुलाबी रंगके ओष्ठ हैं। उनपर नित्य ही हलकी-हलकी मुसकान छायी रहती है। जब बीच-बीचमें मुसकराते हैं, उस समय छोटे-छोटे दाँतोंकी पंक्तिके दर्शन होते हैं। वे मानो उज्ज्वल दुग्धसे बने हों। नासिकामें छोटा मोती लटक रहा है। पीताम्बर धारण किये हुए हैं। गलेमें सुन्दर मणियोंका हार सुशोभित है एवं पुष्पहार भी धारण किये हुए हैं। पुष्पहारपर भौंरे मँडरा रहे हैं। एक हाथमें वंशी है। दूसरा हाथ किशोरीजीके कन्धेपर है। अनुपम छटा है। नीली साड़ी पहनी हुई किशोरीजी पासमें बैठी अति शोभायमान लग रही हैं।

मानस-पूजा

आठ सखियाँ पूजाकी सामग्री सजाकर लाती हैं। सखियाँ उन दोनों को प्रणामकर बैठ जाती हैं। उनमेंसे एक सखी अब पूजा आरम्भ कर रही है तथा और सखियाँ पासमें बैठी सब चीजें एक-एक करके प्रस्तुत करती जाती हैं।

एक सोनेके पात्रमें सुगन्धित जल है, अन्य सखी पहलीवाली सखीके हाथमें वह जलका पात्र देती है। वह उस पात्रसे जल लेकर श्रीश्यामसुन्दरके चरणोंके अग्रभागको स्नान कराती है। वह श्रीराधारानीके चरणोंमें जल नहीं लगाती, कारण कि उनमें अभी-अभी कुछ देर पहले ही मेंहदीकी विचित्र-विचित्र तरहकी चित्रकारियाँ चित्रित की गयी हैं। श्रीश्यामसुन्दरके चरणोंको स्नान करानेके पश्चात् उनके हाथोंको धोती हैं। तत्पश्चात् सखी केसरमिश्रित चन्दनसे श्रीश्यामसुन्दरके मस्तकपर छोटी-सी तूलिकासे छोटा-सा तिलक पहलेवाले तिलकपर ही कर देती है। इसी प्रकार श्रीराधारानीके भालपर भी पहलेके किये हुए शृंगारपर ही छोटी-सी तूलिकासे बिन्दी लगा देती है। उसके पश्चात् दोनोंको इत्र लगाती है। इत्र लगानेके पश्चात् दो सुन्दर पुष्पोंके हार उन दोनों प्रिया-प्रियतमके गलेमें पहनाती है।

उसके बाद सखी छोटा-सा दीपक जलाती है और चारों ओर उस दीपको घुमाकर एक किनारे रख देती है। फिर धूपका सौरभ प्रस्तुत करती है। तत्पश्चात् एक सोनेके थालमें विविध प्रकारके व्यंजन जो सखियोंने बड़े चावसे उन दोनोंके लिये बनाये थे, सामने रखकर ग्रहण करवाती है।

दोनों—राधा-माधव बड़े प्रेमसे विविध प्रकारके व्यंजनोंको ग्रहण कर रहे हैं। भोजन करनेके पश्चात् (बची हुई सामग्रीको पानेके लिये सखी थालको अलग ले जाती है और वहाँ सब सखियाँ मिलकर प्रसाद पाती हैं) ठंडा जल पीनेके लिये प्रस्तुत करती है। श्रीराधा-माधवके जल ग्रहण करनेके बाद एक छोटेसे पात्रमें पानका बीड़ा उनको देती है। वे दोनों पानका बीड़ा बड़े प्रेमसे अपने मुखारविन्दमें ले लेते हैं। उसके बाद सोनेके थालमें कपूरकी आरती सजाकर लाती है और बड़े प्रेमसे सब सखियाँ उठकर गाती हुई अपने राधा-माधवकी आरती उतारती हैं।

आरतीके बाद सखियाँ अपनी-अपनी अंजलिमें पुष्प लेकर उन दोनोंके श्रीचरणोंमें डालकर स्वयं भी दोनोंके चरणारविन्दोंमें पड़ जाती हैं।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी-व्रतकी विधि

शिव, विष्णु, अग्नि, भविष्य आदि पुराणोंमें जन्माष्टमी-व्रतका उल्लेख है। विस्तारभयसे सबका सारमात्र नीचे दिया जा रहा है—

यह व्रत भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको किया जाता है। भगवान् श्रीकृष्णका जन्म भाद्रपद कृष्ण अष्टमी, बुधवारको रोहिणी नक्षत्रमें अर्धरात्रिके समय वृषके चन्द्रमामें हुआ था। अत: अधिकांश उपासक उक्त बातोंमें अपने-अपने अभीष्ट योगका ग्रहण करते हैं। शास्त्रमें इसके शुद्धा और विद्धा—दो भेद हैं। उदयसे उदयपर्यन्त शुद्धा और तद्गत सप्तमी या नवमीसे विद्धा होती है। शुद्धा या विद्धा भी समा, न्यूना तथा अधिकाके भेदसे तीन प्रकारकी हो जाती हैं और इस प्रकार अठारह भेद बन जाते हैं; परंतु सिद्धान्तरूपमें अर्धरात्रिमें रहनेवाली तिथि अधिक मान्य होती है। वह यदि दो दिन हो या दोनों दिन न हो तो (सप्तमीविद्धाको सर्वथा त्यागकर) नवमीविद्धाका ग्रहण करना चाहिये।

यह सर्वमान्य और पापघ्न व्रत बाल, कुमार, युवा और वृद्ध सभी अवस्थावाले नर-नारियोंके करनेयोग्य है। इसमें अष्टमीके उपवाससे पूजनकी और नवमी (तिथिमात्र)-के पारणसे व्रतकी पूर्ति होती है। व्रत करनेवालेको चाहिये कि उपवासके पहले दिन लघु भोजन करे। और उपवासके दिन प्रात:स्नानादि नित्यकर्म करके सूर्य, सोम, यम, काल, सन्धि, भूत, पवन, दिक्पति, भूमि, आकाश, खेचर, अमर और ब्रह्मा आदिको नमस्कार करके पूर्व या उत्तरमुख बैठे; हाथमें जल, फल, कुश, फूल और गन्ध लेकर '**ममाखिलपापप्रशमनपूर्वकसर्वाभीष्टसिद्धये श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतमहं करिष्ये**' यह संकल्प करे और मध्याह्नके समय काले तिलोंके जलसे स्नान करके देवकीजीके लिये 'सूतिकागृह' नियत करे। प्रसूतिगृहमें सुकोमल बिछौनेके सुदृढ़ मंचपर अक्षतादिका मण्डल बनवाकर उसपर शुभ कलश-स्थापन करे और उसीपर मूर्ति या चित्र स्थापित करे। मूर्तिमें सद्य:प्रसूत श्रीकृष्णको स्तनपान कराती हुई देवकी हों और लक्ष्मीजी उनका चरणस्पर्श किये हुए हों—ऐसा भाव प्रकट रहे। इसके बाद यथासमय भगवान्‌के प्रकट होनेकी भावना करके अपनी परम्परानुसार पूजन करे। रात्रिमें पूजाके अवसरपर निम्नोक्त रीतिसे संकल्प करे—'**मम चतुर्वर्गसिद्धिद्वारा श्रीकृष्णदेवप्रीतये जन्माष्टमीव्रताङ्गत्वेन श्रीकृष्णदेवस्य यथामिलितोपचारैः पूजनं करिष्ये।**' पूजनमें देवकी, वसुदेव, वासुदेव, बलदेव, नन्द, यशोदा और लक्ष्मी—इन सबका क्रमश: नाम-निर्देश करना चाहिये। अन्तमें '**प्रणमे देवजननीं त्वया जातस्तु वामनः। वसुदेवात् तथा कृष्णो नमस्तुभ्यं नमो नमः॥ सपुत्रार्घ्यं प्रदत्तं मे गृहाणेमं नमोऽस्तु ते।**' से देवकीको अर्घ्य दे और '**धर्माय धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः।**' से श्रीकृष्णको 'पुष्पांजलि' अर्पण करे। तत्पश्चात् जातकर्म, नालच्छेदन, षष्ठीपूजन और नामकरणादि करके '**सोमाय सोमेश्वराय सोमपतये सोमसम्भवाय सोमाय नमो नमः।**' से चन्द्रमाका पूजन करे और फिर शंखमें जल, फल, कुश, कुसुम और गन्ध डालकर दोनों घुटने जमीनसे लगाये और '**क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव। गृहाणार्घ्यं शशांकेमं रोहिण्या सहितो मम॥ ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषाम्पते। नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम्॥**' से चन्द्रमाको अर्घ्य दे और रात्रिके शेष भागको स्तोत्र-पाठादि करते हुए बिताये। उसके बाद दूसरे दिन पूर्वाह्णमें पुन: स्नानादि करके जिस तिथि या नक्षत्रादिके योगमें व्रत किया हो, उसका अन्त होनेपर पारण करे। यदि अभीष्ट तिथि या नक्षत्रादिके समाप्त होनेमें विलम्ब हो तो जल पीकर पारणकी पूर्ति करे।

जन्माष्टमी-व्रतके दिन कुछ लोग कुछ भी ग्रहण न करके निराहार रहते हैं, कुछ लोग दिनमें हलका फलाहार कर लेते हैं तथा कुछ लोग दिनमें कुछ भी ग्रहण न करके भगवान्‌के जन्मोत्सवके पूजन आदिके पश्चात् रात्रिमें फलाहार या अन्नाहार लेते हैं। सामान्यत: मध्यरात्रिके बाद कुछ भी न खानेका विधान है, पर जन्माष्टमी 'मोहरात्रि' है। अतएव इस दिन मध्यरात्रिके पश्चात् भी ब्राह्ममुहूर्त अर्थात् अगले दिनके सूर्योदयसे २ घण्टे २४ मिनट पूर्वतक फलाहार या अन्नाहार—जो भी भगवान्‌को भोग लगा हो—ग्रहण किया जा सकता है।

श्रीराधाजन्माष्टमी—माहात्म्य एवं व्रतविधि

जैसे सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्ण नित्य हैं, समय-समयपर इस भूमण्डलमें उनका आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है, इसी प्रकार सच्चिदानन्दमयी भगवती श्रीराधाजी भी नित्य हैं। वास्तवमें भगवान्की निजस्वरूपा-शक्ति होनेके कारण वे भगवान्से सर्वथा अभिन्न हैं और समय-समयपर लीलाके लिये आविर्भूत-तिरोभूत हुआ करती हैं। नारदपांचरात्र (२।३।५१, ५४)-में कहा गया है—

यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा॥
आविर्भावस्तिरोभावस्तस्याः कालेन नारद।
न कृत्रिमा च सा नित्या सत्यरूपा यथा हरिः॥

जैसे श्रीकृष्ण ब्रह्मस्वरूप हैं तथा प्रकृतिसे परे हैं, वैसे ही श्रीराधाजी भी ब्रह्मस्वरूप, निर्लिप्त तथा प्रकृतिसे परे हैं। भगवान्की भाँति ही उनका समय-समयपर आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है। वस्तुतः वे भी श्रीहरिके सदृश ही अकृत्रिम, नित्य और सत्यस्वरूप हैं।

इसी प्रकार इनका आविर्भाव-महोत्सव तथा उसका महत्त्व भी प्राचीनतम तथा नित्य है। पद्मपुराण-ब्रह्मखण्डके सप्तम अध्यायमें श्रीनारद-ब्रह्माके संवादरूपमें एक इतिहास मिलता है, उसमें नारदजीके पूछनेपर ब्रह्माजी राधा-जन्माष्टमी-व्रतके महान् माहात्म्यका वर्णन करते हुए एक प्राचीन प्रसंग सुनाते हैं। वे कहते हैं—

'वत्स नारद! पहले सत्ययुगमें एक लीलावती नामकी वारांगना थी। उसने बहुत बड़े-बड़े कठोर पाप किये थे। एक दिन धनकी लालसासे वह अपने नगरसे निकलकर एक दूसरे नगरमें गयी। वहाँ उसने एक जगह बहुत लोगोंको एकत्र देखा। वे लोग एक सुन्दर देवालयमें राधाष्टमी-व्रतका उत्सव मना रहे थे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र तथा नाना प्रकारके फल आदिसे भक्तिपूर्वक श्रीराधाजीकी श्रेष्ठ मूर्तिकी पूजा कर रहे थे। उन लोगोंको महोत्सव-परायण देखकर वारांगनाने कौतूहलपूर्वक उन लोगोंसे पूछा—

'पुण्यात्माजनो! आप हर्षमें भरे यह क्या कर रहे हैं? मैं विनयपूर्वक पूछ रही हूँ, कृपा करके बताइये।' इसके उत्तरमें उन राधाव्रतियोंने कहा—

'भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको दिनके समय श्रीराधाजीका वृषभानुके यहाँ यज्ञभूमिमें प्राकट्य हुआ था। हमलोग उसीका व्रत करके महोत्सव मना रहे हैं। इस व्रतसे मनुष्योंके बहुत बड़े-बड़े पापोंका तुरंत नाश हो जाता है।' उनकी बात सुनकर वारांगना लीलावतीने भी व्रत करनेका निश्चय करके व्रत किया। दैवयोगसे उसको सर्पने डँस लिया, इससे उसकी मृत्यु हो गयी। उसने बड़े पाप किये थे, अतएव हाथोंमें पाश तथा मुद्गर लिये भयानक यमदूत आ गये और उसे डाँटने लगे। इसी बीच विष्णुदूतोंने आकर चक्रसे यमपाशको काट दिया। वह वारांगना सर्वथा पापमुक्त हो गयी और उसे वे विष्णुदूत विमानपर चढ़ाकर 'गोलोक' नामक मनोहर दिव्य विष्णुपुरमें ले गये।

ब्रह्माजीने फिर कहा—'इस प्रकार पापोंका नाश

करनेवाले और श्रीराधामाधवको अत्यन्त प्रिय राधाष्टमी-व्रतको जो लोग नहीं करते हैं, वे मूढबुद्धि हैं। जन-जनको चाहिये कि वे सर्वत्र श्रीराधा-जन्माष्टमी-व्रत करने तथा महोत्सव मनानेका सत्प्रयास करें। इसमें उनका और जगत्‌के उन जीवोंका, जो इस व्रत-महोत्सवका सेवन करेंगे, कल्याण होगा, इसमें कोई भी संदेह नहीं है।

श्रीराधापूजाकी अनिवार्य आवश्यकता— श्रीमद्देवीभागवतमें श्रीनारायणने नारदजीके प्रति '**श्रीराधायै स्वाहा**' इस षडक्षर राधामन्त्रकी अति प्राचीन परम्परा तथा विलक्षण महिमाके वर्णन-प्रसंगमें श्रीराधा-पूजाकी अनिवार्यता तथा परम कर्तव्यताका निरूपण करते हुए कहा है—

कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना।
वैष्णवैः सकलैस्तस्मात् कर्तव्यं राधिकार्चनम्॥
कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति॥
राध्नोति सकलान् कामांस्तस्माद् राधेति कीर्तिता॥

(देवीभागवत ९।५०।१६—१८)

'श्रीराधाकी पूजा न की जाय तो मनुष्य श्रीकृष्णकी पूजाका अधिकार नहीं रखता। अतएव समस्त वैष्णवोंको चाहिये कि वे भगवती श्रीराधाकी अर्चना अवश्य करें। ये श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इसलिये भगवान् इनके अधीन रहते हैं। ये भगवान्‌के रासकी नित्य अधीश्वरी हैं। इन श्रीराधाके बिना भगवान् श्रीकृष्ण क्षणभर भी नहीं ठहर सकते। ये सम्पूर्ण कामनाओंका राधन (साधन) करती हैं, इसी कारण इन देवीका नाम 'श्रीराधा' कहा गया है।'

श्रीराधाजीका प्राकट्य भाद्रपद-शुक्लपक्षकी अष्टमीको मध्याह्नके समय श्रीवृषभानुपुरी (बरसाना) या उनके ननिहाल रावलग्राममें हुआ था। कुछ महानुभाव प्रातःकाल प्राकट्य हुआ मानते हैं। सम्भव है, कल्पभेदसे उनकी मान्यता सत्य हो; पर प्राचीन पुराणोंमें मध्याह्नका ही उल्लेख मिलता है।

श्रीराधाके स्वरूप एवं माधुर्यकी महिमा [देवर्षि नारद और भगवान् सदाशिवका संवाद]

नारदजी बोले—हे महाभाग! मैं आपका दास हूँ, प्रणाम करके पूछता हूँ, बतलाइये। श्रीराधादेवी लक्ष्मी हैं या देवपत्नी हैं, महालक्ष्मी हैं या सरस्वती हैं? क्या वे अन्तरंग विद्या हैं या वैष्णवी प्रकृति हैं? कहिये—वे वेदकन्या हैं, देवकन्या हैं अथवा मुनिकन्या हैं?

सदाशिव बोले—हे मुनिवर! अन्य किसी लक्ष्मीकी बात क्या कहें, कोटि-कोटि महालक्ष्मी उनके चरणकमलकी शोभाके सामने तुच्छ कही जाती हैं। हे नारदजी! एक मुँहसे मैं अधिक क्या कहूँ? मैं तो श्रीराधाके रूप, लावण्य और गुण आदिका वर्णन करनेमें अपनेको असमर्थ पाता हूँ। उनकी रूपमाधुरी तो जगत्‌को मोहनेवाले श्रीकृष्णको भी मोहित करनेवाली है।

नारदजी बोले—हे प्रभो! श्रीराधिकाजीके जन्मका माहात्म्य मैं पूरा-पूरा सुनना चाहता हूँ। हे महाभाग! सब व्रतोंमें श्रेष्ठ व्रत श्रीराधा-अष्टमीके विषयमें मुझको सुनाइये। श्रीराधाजीका ध्यान कैसे किया जाता है? हे सदाशिव! उनकी चर्या, पूजा-विधान तथा अर्चन-विशेष—सब कुछ मैं सुनना चाहता हूँ, आप बतलानेकी कृपा करें।

शिवजी बोले—वृषभानुपुरीके राजा वृषभानु महान् उदार थे। वे महान् कुलमें उत्पन्न तथा सब शास्त्रोंके ज्ञाता और श्रीकृष्णके आराधक थे। उनकी भार्या श्रीमती श्रीकीर्तिदा थीं। वे महालक्ष्मीके समान भव्य रूपवाली और परम सुन्दरी थीं। उनके ही गर्भसे शुभदा भाद्रपदकी शुक्लाष्टमीको मध्याह्न कालमें श्रीवृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाजी प्रकट हुईं। वेद-शास्त्र तथा पुराणादिमें जिनका 'कृष्णवल्लभा' कहकर गुणगान हुआ है, वे श्रीराधा सदा श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करनेवाली, साध्वी, कृष्णप्रिया थीं। हे महाभाग! अब मुझसे श्रीराधा-जन्म-महोत्सवमें जो भजन-पूजन, अनुष्ठान आदि कर्तव्य हैं, उन्हें सुनिये। सदा श्रीराधा-जन्माष्टमीके दिन व्रत रखकर उनकी पूजा करनी चाहिये। श्रीराधाकृष्णके

मन्दिरको ध्वजा, पुष्पमाल्य, वस्त्र, पताका, तोरणादिसे सजाकर नाना प्रकारके मंगल द्रव्योंके द्वारा यथाविधि पूजा करनी चाहिये। स्तुतिपूर्वक सुवासित गन्ध, पुष्प, धूपादिसे सुगन्धित करके उस मन्दिरके बीचमें पाँच रंगके चूर्णसे मण्डप बनाकर उसके भीतर षोडश दलके आकारका कमलयन्त्र बनाये। उस कमलके मध्यमें दिव्यासनपर श्रीराधा-कृष्णकी युगल-मूर्ति पश्चिमाभिमुख स्थापित करके ध्यान, पाद्य-अर्घ्यादिके द्वारा क्रमपूर्वक भलीभाँति उपासना करे।

श्रीराधा-माधव-युगलका ध्यान

हेमेन्दीवरकान्तिमञ्जुलतरं श्रीमज्जगन्मोहनं
नित्याभिर्ललितादिभिः परिवृतं सन्नीलपीताम्बरम्।
नानाभूषणभूषणाङ्गमधुरं कैशोररूपं युगं
गान्धर्वाजनमव्ययं सुललितं नित्यं शरण्यं भजे॥

(पद्मपुराण उत्तर० १६२। ३१)

जिनकी स्वर्ण और नीलकमलके समान अति सुन्दर कान्ति है, जो जगत्को मोहित करनेवाली श्रीसे सम्पन्न हैं, नित्य ललिता आदि सखियोंसे परिवृत हैं, सुन्दर नीले और पीत वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा जिनके नाना प्रकारके आभूषणोंसे आभूषित अंगोंकी कान्ति अति मधुर है, उन अव्यय, सुललित, युगलकिशोररूप श्रीराधाकृष्णके हम नित्य शरणापन्न हैं। इस प्रकार युगलमूर्तिका ध्यान करके शालग्राममें अथवा मनोमयी मूर्ति या साक्षात् पाषाण आदिकी मूर्तिमें पुनः सम्यक् रूपसे अर्चना करे।

महाप्रसाद-वितरण, महिमा—भगवान्को निवेदन किये गये गन्ध-पुष्प-माल्य तथा चन्दन आदिके द्वारा समागत कृष्णभक्तोंकी आराधना करे। श्रीराधाजीकी भक्तिमें दत्तचित्त होकर उनके लिये प्रस्तुत नैवेद्य, गन्ध-पुष्प-माल्य तथा चन्दन आदिके द्वारा दिनमें महोत्सव करे। पूजा करके दिनके अन्तमें भक्तोंके साथ आनन्दपूर्वक चरणोदक लेकर महाप्रसाद भक्षण करे। श्रीराधाकृष्णका स्मरण करते हुए रातमें जागरण करे। चाँदी और सोनेकी सुसंस्कृत मूर्ति रखकर उसकी पूजा करे। दूसरी कोई वार्ता न करते हुए नारी तथा बन्धु-बान्धवोंके साथ पुराणादिसे प्रयत्नपूर्वक इष्टदेवता श्रीराधाकृष्णके कथा-कीर्तनका श्रवण करे। इस अष्टमीको दिन-रात एक-एक पहरपर विधिपूर्वक श्रीराधामाधवकी पूजा करे। इस प्रकार महोत्सव करके परम आनन्दित होकर साष्टांग दण्ड-प्रणाम करे। जो पुरुष अथवा नारी राधाभक्तिपरायण होकर श्रीराधा-जन्ममहोत्सव करता है, वह श्रीराधाकृष्णके सांनिध्यमें श्रीवृन्दावनमें वास करता है तथा भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

'राधा' नामकी तथा राधा-जन्माष्टमी व्रतकी महिमा

जो मनुष्य 'राधा-राधा' कहता है तथा स्मरण करता है, वह सब तीर्थोंके संस्कारसे युक्त होकर सब प्रकारकी विद्याकी प्राप्तिमें प्रयत्नवान् बनता है। जो राधा-राधा कहता है, राधा-राधा कहकर पूजा करता है, राधा-राधामें जिसकी निष्ठा है, जो राधा-राधा उच्चारण करता रहता है, वह महाभाग श्रीवृन्दावनमें श्रीराधाकी सहचरी होता है। हे महाभाग! उनका कथा-कीर्तन करो, उनके उत्तम मन्त्रका जप करो और रात-दिन राधा-राधा बोलते हुए नाम-कीर्तन करो। जो मनुष्य कृष्णके साथ राधाका (अर्थात् राधेकृष्ण, राधेकृष्ण) नाम-कीर्तन करता है, उसके माहात्म्यका वर्णन मैं नहीं कर सकता और न उसका पार पा सकता हूँ। गंगा,

गया और सरस्वती सदा हितकारिणी नहीं होती हैं; परंतु राधा-नाम-स्मरण कदापि निष्फल नहीं जाता, यह सब तीर्थोंका फल प्रदान करता है। श्रीराधाजी सर्वतीर्थमयी हैं तथा सर्वैश्वर्यमयी हैं। श्रीराधा-भक्तके घरसे कभी लक्ष्मी विमुख नहीं होती। यह सब सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजीने प्रणत होकर यथोक्त रीतिसे श्रीराधाष्टमीमें यजन-पूजन किया। जो मनुष्य इस लोकमें यह राधा-जन्माष्टमी-व्रतकी कथा श्रवण करता है, वह सुखी, मानी, धनी और सर्वगुणसम्पन्न हो जाता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रीराधाका मन्त्र-जप करता है अथवा नाम-स्मरण करता है, वह धर्मार्थी हो तो धर्म प्राप्त करता है, अर्थार्थी हो तो धन पाता है, कामार्थी पूर्णकाम हो जाता है और मोक्षार्थीको मोक्ष प्राप्त होता है। (पद्मपुराण उ०ख० १६२-१६३ का कुछ अंश)

श्रीराधा-प्राकट्यकी तिथि और काल—

वृषभानुरिति ख्यातो जज्ञे वैश्यकुलोद्भवः।
सर्वसम्पत्तिसम्पन्नः सर्वधर्मपरायणः॥
उवाह कीर्तिदानाम्नीं गोपकन्यामनिन्दिताम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नां प्रतप्तकनकप्रभाम्॥
वृषभानुर्महाभक्तः कीर्तिदायास्तपोबलात्।
अस्माद् विनयबाहुल्यात् तत्कन्या राधिकाभवत्॥
भाद्रे मासि सिते पक्षे अष्टमी या तिथिर्भवेत्।
अस्यां दिनार्द्धेऽभिजिते नक्षत्रे चानुराधिके॥
राजलक्षणसम्पन्नां कीर्तिदासूत कन्यकाम्।
अतीवसुकुमाराङ्गीं सितरश्मिसमप्रभाम्।
त्रैलोक्याद्भुतसौन्दर्यां दोषनिर्मुक्तविग्रहाम्॥

(भविष्यपुराण*)

वैश्यकुलमें वृषभानु नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, वे सभी सम्पदाओंसे सम्पन्न तथा सभी धर्मोंके अनुष्ठानमें परायण थे। उन्होंने कीर्तिदा नामकी अनिन्द्य सुन्दरी एक गोपकन्यासे विवाह किया, जो सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा तपाये हुए सोनेकी-सी कान्तिवाली थी। वृषभानु महान् भक्त थे। कीर्तिदाके तपोबलसे तथा विनयकी पराकाष्ठासे उनके राधिका नामकी कन्या हुई। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको मध्याह्नकालमें अभिजित् मुहूर्त और अनुराधा नक्षत्रके योगमें कीर्तिदा रानीने राजचिह्नोंसे सुशोभित इस कन्याको जन्म दिया। उसके अंग-प्रत्यंग अत्यन्त सुकुमार थे, जिनसे चन्द्रमाकी-सी ज्योति निकल रही थी, उसका सौन्दर्य त्रिलोकीमें विलक्षण था और शरीर सब प्रकारके दोषोंसे सर्वथा मुक्त था।

श्रीराधाजीके प्राकट्यका कारण

गर्गसंहितामें आता है—राजा बहुलाश्वके पूछनेपर श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् तुम उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका श्रवण करो। वह पवित्र एवं कल्याणस्वरूप है। केवल कंसका संहार ही भगवान्के अवतारमें हेतु नहीं है। वे पृथ्वीपर संतजनोंकी रक्षाके लिये पधारे थे। राजन्! भगवान्ने ही अपनी महाशक्तिको प्रेरणा दी। अतः महाशक्तिने वृषभानुकी पत्नीके हृदयमें प्रवेश किया और वे ही राधिका नामसे प्रकट हुईं। उनका अवतार एक भव्य भवनमें हुआ। वह स्थान यमुनाके तटपर निकुंज-वनमें था। उस समय भाद्रपदका महीना था। शुक्लपक्ष एवं अष्टमी तिथि थी। मध्याह्नका समय था। आकाशमें मेघ छाये हुए थे। उस समय वृषभानु-पत्नी कीर्तिको कन्या दिखायी दी। शरत्कालीन चन्द्रमाकी भाँति उसकी कान्ति थी। रूप मनको हरनेवाला था। अतः वे अत्यन्त आनन्दमें भर गयीं। तुरन्त उन्होंने मंगल-विधान करवाया और पुत्रीके कल्याणकी कामनासे दो लाख गौएँ ब्राह्मणोंको दान कीं। श्रेष्ठ देवताओंको भी जिनका दर्शन मिलना कठिन है, मनुष्य करोड़ों जन्मोंतक तप करते हैं, परंतु जिनका साक्षात् नहीं कर पाते, वे ही श्रीराधिकाजी वृषभानुके यहाँ स्वयं प्रकट हुईं। गोपियोंने उनका लालन-पालन किया। यह प्रायः सभी जानते हैं। सखियाँ पालनेमें राधिकाजीको झुलाया करती थीं।

वह पालना सुवर्णसे बनाया गया था। उसमें रत्न जड़े हुए थे। चारों ओर चन्दन छिड़का गया था। प्रतिदिन राधिकाजीका श्रीविग्रह बढ़ता जाता था। ठीक

* भविष्यपुराण बंगला लिपिमें मुद्रित संस्करण।

उसी प्रकार, जैसे शुक्लपक्षमें प्रतिदिन बढ़ते हुए प्रकाशसे चन्द्रमाकी कलामें विस्तार होता जाता है। जो रासमण्डलको आह्लादित करनेवाली स्वच्छ चाँदनी हैं, जिन्होंने वृषभानुके भवनको अनन्त उज्ज्वल दीपावलियोंके समान प्रकाशित कर दिया है तथा जो गोलोकमें चूडामणिके रूपमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णके गलेकी हार हैं, उन पूजनीया राधिकाजीका ध्यान करके मैं पृथ्वीपर विचर रहा हूँ।'

श्रीवृषभानु तथा श्रीकीर्तिजी पूर्वजन्ममें कौन थे?

तदनन्तर बहुलाश्वके पूछनेपर नारदजीने श्रीवृषभानु तथा श्रीकीर्तिजीके पूर्वजन्म तथा वरदानका इतिहास सुनाया। देवर्षि नारदजी बोले—एक राजा नृग थे। उनके यहाँ सुचन्द्र नामक पुत्रका जन्म हुआ। उन्हें साक्षात् भगवान्‌का अंश माना जाता था। अर्यमा आदि पितरोंके यहाँ संकल्पमात्रसे तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। तीनों बड़ी ही कमनीय-मूर्ति थीं। उनके नाम थे—कलावती, रत्नमाला और मेनका। कलावती सुचन्द्रके साथ ब्याही गयी थीं। रत्नमाला विदेह (जनक)-को समर्पित कर दी गयीं और गिरिराज हिमालयने मेनकाका पाणिग्रहण किया। पितरोंने अपनी रुचिके अनुसार ब्राह्मविधिसे ये कन्याएँ दान कीं। रत्नमालासे सीताजी प्रकट हुईं। मेनकाके गर्भसे पार्वतीजीका अवतार हुआ। महामते! इन दोनोंकी कथाएँ पुराणोंमें जगह-जगह वर्णित हैं। तदनन्तर, पत्नी कलावतीको साथमें लेकर सुचन्द्र गोमती नदीके तटपर स्थित एक वनमें चले गये। उन्होंने ब्रह्माजीकी तपस्या की। तत्पश्चात् ब्रह्माजी वहाँ पधारे और उन्होंने सुचन्द्रको वरदान दिया—

'तुमलोग मेरे साथ स्वर्गमें चलो और वहाँ नाना प्रकारके आनन्दका उपभोग करो। द्वापरके अन्तमें गंगा और यमुनाके बीच, भारतवर्षमें तुम्हारा जन्म होगा। तुम्हीं दोनोंसे स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णकी प्राण-प्रिया देवी राधिकाजी पुत्रीके रूपमें प्रकट होंगी।

इस प्रकार ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे भूमण्डलपर कीर्ति तथा वृषभानु उत्पन्न हुए। कन्नौज देशमें एक राजा थे। भलन्दन नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। उन्हींके यहाँ यज्ञकुण्डसे कलावतीका प्रादुर्भाव हुआ। कलावती अपने पूर्वजन्मकी सारी बातें जानती थीं। सुरभानुके घर सुचन्द्रका जन्म हुआ। उस समय वे वृषभानु नामसे विख्यात हुए। उन्हें भी पहले जन्मका स्मरण था। गोपोंमें उनकी प्रधानता थी। नन्दजीकी बुद्धि बड़ी निर्मल थी। उन्होंने दोनोंका परस्पर सम्बन्ध जोड़ दिया। उन दोनोंको पूर्वजन्मकी स्मृति तो थी ही। अतः वे दोनों चाहते भी ऐसा ही थे। जो मनुष्य इस वृषभानु और कलावतीके उपाख्यानका श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। अन्तमें वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके परमधामका अधिकारी भी होता है। (गर्गसंहिता १।८)

वात्सल्यमयी वृद्धा

एक भक्तिमती वृद्धा श्रीराधाके बालरूपका ध्यान कर रही थी। ध्यानमें श्रीराधाने काजल न लगवानेका हठ पकड़ लिया। वह भाँति-भाँतिसे उनको फुसला रही थी। वह कह रही थी कि 'तू काजल लगाये बिना कन्हैयासे खेलने जायगी तो वह तेरी हँसी उड़ायेगा।' यह कहकर वह काजल लगानेकी कोशिश करने लगी। इससे काजल फैल गया और श्रीराधाकी आँखोंमें जल भर आया। यह देखकर वृद्धाने अपने आँचलसे आँसुओंको पोंछ दिया। जब उसकी आँखें खुलीं, तब उसने देखा कि उसके आँचलमें श्रीराधाके दिव्य अश्रुओंसे सिंचित काजल लगा है। वह यह देखकर गद्‌गद हो गयी और अपने प्रति श्रीराधाकी कृपा देखकर आत्म-विस्मृत हो गयी। उसके नयनोंसे अविरल प्रेमाश्रु बहने लगे। कहते हैं कि वह दिव्य कज्जल वृद्धाके आँचलमें दस-बारह घण्टेतक रहा। तदनन्तर वह स्वयमेव अन्तर्हित हो गया।

❊ श्रीराधा-माधवके विविध मन्त्र ❊

[श्रीराधा-माधवकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये शास्त्रोंमें भगवान् श्रीकृष्ण, गोपीश्वरी श्रीराधिकाजी और उनके युगलस्वरूपके अनेक मन्त्रोंका विधान है। उनमेंसे कुछको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। श्रद्धा-विश्वासपूर्वक इनमेंसे किसी भी मन्त्रका आश्रय ग्रहण करनेपर श्रीराधा-कृष्णकी संनिधि प्राप्त हो सकती है। मन्त्रोंके प्रयोगकी पूर्ण विधि स्थान-संकोचके कारण यहाँ नहीं दी जा रही है। साधकोंको अपने अभीष्ट मन्त्रके ध्यान, न्यास, पीठ-पूजन आदिकी विधि 'मन्त्रमहार्णव', 'मन्त्रमहोदधि', 'शारदातिलक' इत्यादि ग्रन्थोंमें देखनी चाहिये अथवा किन्हीं योग्य विद्वान्से पूछनी चाहिये। मन्त्रोंमें प्रधान सहायक श्रद्धा-विश्वास ही है। मन्त्र तो वस्तुतः सद्गुरुसे ही ग्रहण करना चाहिये। सद्गुरु न प्राप्त हों तो किसी शुभ दिनमें जब चित्त भगवान्को पानेके लिये आतुर हो—मन-ही-मन भगवान्को परम गुरु मानकर उन्हींसे मानस-मन्त्र ग्रहण कर ले। गोपीभावके उपासकोंको ललितादि किसी महान् प्रेमिका गोपीको गुरु मानकर उनसे मानस-मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। दीक्षाके अनेक भेद हैं, परंतु वे सब तान्त्रिक साधकोंके लिये जानने आवश्यक हैं। भक्तिके साधकोंको उनकी उतनी आवश्यकता नहीं है।—सम्पादक]

कृष्णमन्त्र

❊ *द्वादशाक्षर मन्त्र—*

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।'

(जप-संख्या—१२ लाख)

❊ *बालगोपाल अष्टाक्षरमन्त्र—*

'ॐ गोकुलनाथाय नमः।'

❊ *बालगोपालमन्त्र—*

(१) **'ॐ क्लीं कृष्ण क्लीं नमः।'**

(२) **'ॐ क्लीं कृष्ण क्लीं।'**

❊ *बालगोपालके अट्ठारह प्रसिद्ध मन्त्र—*

बालगोपालके अठारह मन्त्र बहुत ही प्रसिद्ध हैं। किसी एकके द्वारा भगवान्की आराधना करनेसे साधकका अभीष्ट सिद्ध होता है। यहाँ उन मन्त्रोंका संक्षेपमें स्वरूपनिर्देश किया जाता है—

(१) **ॐ कृः।** (एकाक्षर)

(२) **ॐ कृष्ण।** (द्व्यक्षर)

(३) **ॐ क्लीं कृष्ण।** (त्र्यक्षर)

(४) **ॐ क्लीं कृष्णाय।** (चतुरक्षर)

(५) **ॐ कृष्णाय नमः।** (पञ्चाक्षर)

(६) **ॐ क्लीं कृष्णाय क्लीं।** (पञ्चाक्षर)

(७) **ॐ गोपालाय स्वाहा।** (षडक्षर)

(८) **ॐ क्लीं कृष्णाय स्वाहा।** (षडक्षर)

(९) **ॐ क्लीं कृष्णाय नमः।** (षडक्षर)

(१०) **ॐ कृष्णाय गोविन्दाय।** (सप्ताक्षर)

(११) **ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय क्लीं।** (सप्ताक्षर)

(१२) **ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय।** (अष्टाक्षर)

(१३) **ॐ दधिभक्षणाय स्वाहा।** (अष्टाक्षर)

(१४) **ॐ सुप्रसन्नात्मने नमः।** (अष्टाक्षर)

(१५) **ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं।** (नवाक्षर)

(१६) **ॐ क्लीं ग्लौं श्यामलाङ्गाय नमः।** (नवाक्षर)

(१७) **ॐ बालवपुषे कृष्णाय स्वाहा।** (दशाक्षर)

(१८) **ॐ बालवपुषे क्लीं कृष्णाय स्वाहा।** (एकादशाक्षर)

प्रातःकालके सारे नित्यकृत्य समाप्त होनेके पश्चात् इनमेंसे किसी एकका जप करना चाहिये। इन सब मन्त्रोंके ऋषि नारद हैं, गायत्री छन्द है और श्रीकृष्ण देवता हैं।

❊ *पौराणिक मन्त्र—*

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमान मुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्त्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥

(श्रीमद्भागवत १०। ३२। २)

—इस मन्त्रकी एक माला जप करके **'ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय**

स्वाहा' इस मन्त्रकी कम-से-कम ११ मालाओंका जप प्रतिदिन शुद्ध होकर करे। ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक है।

❊ *कल्पवृक्षस्वरूप अष्टाक्षर कृष्ण-मन्त्र—*
'श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः।'
(देवीभागवत ९।४८।१५-१६)

❊ *षडक्षर कृष्ण-मन्त्र—*
'ॐ क्लीं कृष्णाय नमः।'

❊ *पुराणोक्त कृष्ण-मन्त्र—*
'जय कृष्ण नमस्तुभ्यम्'

फाल्गुनके शुक्लपक्षमें 'सुगतिद्वादशी'का व्रत करनेवाला '**जय कृष्ण नमस्तुभ्यम्**' मन्त्रसे एक वर्षतक श्रीकृष्णकी पूजा करे। ऐसा करनेसे मनुष्य भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त कर लेता है।
(अग्निपुराण १८८।१४)

❊ *श्रीवल्लभाचार्यद्वारा प्रकटित शुद्धाद्वैत सम्प्रदायका अष्टाक्षर भगवन्नाम-महामन्त्र—*
'श्रीकृष्णः शरणं मम।'

❊ *गोपाल-गायत्री—*
ॐ कृष्णाय विद्महे दामोदराय धीमहि तन्नः कृष्णः प्रचोदयात्।

❊ **पुत्रप्रद चार कृष्ण-मन्त्र—**
(१) *पुत्रप्रद कृष्ण-मन्त्र (१)—*
'ॐ नमो भगवते जगदात्मसूतये नमः।'
(जप-सं.—३ लाख; फल—पुत्र-प्राप्ति)

(२) *पुत्रप्रद कृष्ण-मन्त्र (२)—*
'देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥'
(जप-सं.—१ लाख; फल—पुत्र-प्राप्ति)

प्रौढ़ावस्थामें भी पुत्र न हो तो यज्ञोपवीत धारण करके श्रीकृष्ण या गणेशके मन्दिरमें अथवा गोशाला या पीपल, गूलर या कदम्ब-वृक्षके नीचे बैठकर कमल, कदम्ब या तुलसीकी मालापर इस मन्त्रका प्रतिदिन पाँच हजार, ढाई हजार या एक सहस्र जप करे। इस प्रकार एक लाख जप पूरा हो जानेपर दशांश हवन, तर्पण, मार्जनकर ब्राह्मणोंको खीर, मालपूआ, पूड़ीका भोजन कराये। ऐसा करनेसे श्रीकृष्णकी कृपासे पुत्र प्राप्त होता है।

(३) *पुत्रप्रद कृष्ण-मन्त्र (३)—*
'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं
देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥'
(जप-सं.—३ लाख; फल—पुत्र-प्राप्ति)

(४) *सनत्कुमारोक्त सन्तानगोपालमन्त्र—*
ॐ देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥
(जप-सं.—३ लाख; फल—पुत्र-प्राप्ति)

राधाकृष्णयुगलमन्त्र
[युगलस्वरूपकी प्राप्तिके लिये मन्त्र]

❊ *एकादशाक्षर मन्त्र—*
ॐ क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।
(जप-संख्या—१० लाख)

❊ *त्रिविध त्रयोदशाक्षर मन्त्र—*
(१) ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।
(जप-संख्या—५ लाख)
(२) ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।
(जप-संख्या—५ लाख)
(३) ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।
(जप-संख्या—५ लाख)

❊ *अष्टादशाक्षर मन्त्र—*
(१) 'क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।'
(२) 'ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा।' (जप-संख्या—५ लाख)
(गोपालतापनी उपनिषद्)

❊ *दशाक्षर मन्त्र—*

'ॐ गोपीजनवल्लभाय नमः।'

❊ **पंचपदीय 'मन्त्र-चिन्तामणि' नामक दो युगल-मन्त्र—**

(१) षोडशाक्षर मन्त्र—

'गोपीजनवल्लभचरणान् शरणं प्रपद्ये।'

(२) दशाक्षर मन्त्र—

'नमो गोपीजनवल्लभाभ्याम्।'

जो मनुष्य श्रद्धा या अश्रद्धासे भी इस पंचपदीयका जप कर लेता है, उसे निश्चय ही श्रीकृष्णके प्यारे भक्तोंका सान्निध्य प्राप्त होता है। इस मन्त्रको सिद्ध करनेके लिये न तो पुरश्चरणकी अपेक्षा पड़ती है और न न्यास-विधानका क्रम ही अपेक्षित है। देश-कालका भी कोई नियम नहीं है। अरि और मित्र आदिके शोधनकी भी आवश्यकता नहीं है। सभी मनुष्य इस मन्त्रके अधिकारी हैं। इस मन्त्रके ऋषि शिव हैं, बल्लवी-वल्लभ श्रीकृष्ण इसके देवता हैं तथा प्रियासहित भगवान् गोविन्दके दास्यभावकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। यह मन्त्र एक बारके ही उच्चारणसे कृतकृत्य कर देता है। (पद्मपुराण, पातालखण्ड)

❊ *अष्टाक्षर मन्त्र—*

(१) 'क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।'

(२) 'ॐ क्लीं राधाकृष्णाभ्यां नमः।'

❊ *बीजात्मक मन्त्र—*

'ॐ ह्रीं श्रीं।'

राधामन्त्र

❊ **षडक्षर राधामन्त्र—**

'श्रीराधायै स्वाहा।'

यह मन्त्र धर्म, अर्थ आदिको प्रकाशित करने-वाला है।

❊ **सप्ताक्षर राधामन्त्र—**

(१) ॐ ह्रीं राधिकायै नमः।

(२) ॐ ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा।

❊ **अष्टाक्षर राधामन्त्र—**

(१) ॐ ह्रीं श्रीराधिकायै नमः।

(२) ॐ ह्रीं श्रीं राधिकायै नमः।

(जप-सं.—१६ लाख; फल—सर्वार्थ-सिद्धि)

❊ *श्रीराधा वाञ्छाचिन्तामणि महामन्त्र—*

(१) 'ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा।'

(२) 'ॐ ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा।'

(देवीभागवत ९।५०।९-१२)

❊ *श्रीराधा षडक्षरी महाविद्याका बीजमन्त्र—*

'रां ओं आं यं स्वाहा।' (नारदपंचरात्र)

❊ *प्रेमभक्तिप्रदायक राधामन्त्र—*

'ॐ प्रेमधनरूपिण्यै प्रेमप्रदायिन्यै श्रीराधायै स्वाहा।'

❊ *श्रीराधा-गायत्री—*

ॐ ह्रीं राधिकायै विद्महे गान्धर्विकायै धीमहि तन्नो राधा प्रचोदयात्।

यज्जापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम्॥

जिसका मात्र एक बार उच्चारण गोकुलपति श्रीकृष्णको तत्क्षण आकर्षित करनेवाला है, जिससे प्रेमियोंके मनमें अर्थ-धर्मादि समस्त पुरुषार्थोंमें तुच्छताका स्फुरण होने लगता है, एवं जिस नामसे अंकित मन्त्रके जपमें माधव श्रीकृष्ण भी सदा-सर्वदा प्रीतिपूर्वक संलग्न रहते हैं, वे ही अत्यद्भुत 'राधा' नामके दो वर्ण मेरे हृदयमें स्फुरित हों। [**गोस्वामी श्रीहितहरिवंशकृत श्रीराधासुधानिधि**]

श्रीराधामाधवविषयक कतिपय अनुष्ठान

[कुछ पारमार्थिक एवं लौकिक सरल अनुष्ठान]

[१]

श्रीराधा-माधवप्रेमकी प्राप्तिके लिये

साधक भक्त स्नान करनेके बाद श्रीराधामाधव-प्रेमप्राप्तिके लिये सर्वप्रथम भगवान् श्रीराधामाधवके युगलस्वरूपवाले किसी मनभावन चित्रपटको सामने रखकर उसका पंचोपचार पूजन करे, तत्पश्चात् शुद्ध वस्त्र धारणकर, शुद्ध आसनपर बैठकर श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित चारों श्लोकों (१० । ३३ । २२—२५)-को, श्रीमद्भागवतके ही निम्नलिखित (१० । ३३ । ४०) श्लोकके द्वारा सम्पुटित करते हुए कम-से-कम २१ पाठ प्रतिदिन करे। पाठके समय घृतका दीपक प्रज्वलित रखना चाहिये।

गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड् गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन।
मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः॥
ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गसङ्गघृष्टस्रजः स कुचकुंकुमरञ्जितायाः।
गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद् वाः श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः॥
सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग।
वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः॥
ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे।
चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः॥

(श्रीमद्भागवत १० । ३३ । २२—२५)

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

(श्रीमद्भागवत १० । ३३ । ४०)

इस प्रकार ३३ दिन पाठ करनेपर मन्त्र सिद्ध हो जाता है। फिर जबतक भगवत्प्रेमका प्रादुर्भाव न हो जाय, तबतक पाठ करते रहना चाहिये। प्रेम प्राप्त करनेकी तीव्र वेदनापूर्ण उत्कण्ठाके साथ ही—भगवान् श्रीराधा-माधव शीघ्र ही अपना प्रेम अवश्य ही प्रदान करेंगे, ऐसा 'दृढ़ विश्वास' करके पाठ करना चाहिये।

[२]

भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी प्राप्तिके लिये

निम्नलिखित स्तोत्र माहेश्वरतन्त्रके ४७वें पटलसे दिया जा रहा है। इस स्तोत्रकी विशेषता क्या है—इस विषयमें पार्वतीजी प्रश्न करती हैं कि 'शिवजी! बिना जपके, बिना सेवाके श्रीकृष्ण प्रसन्न हों, ऐसा कोई उपाय हो तो वह मुझे बताइये।' इसके उत्तरमें श्रीशिवजी कहते हैं—'हे पार्वतीजी! बिना जप, बिना सेवा एवं बिना पूजाके भी केवल जिस स्तोत्रमात्रसे ही श्रीकृष्णकृपा प्राप्त हो सकती है, वह स्तोत्र मैं तुम्हारे लिये कहता हूँ।' यथा—

पार्वत्युवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छमि यथा कृष्णः प्रसीदति। विना जपं विना सेवां विना पूजामपि प्रभो॥ १॥

यथा कृष्णः प्रसन्नः स्यात्तमुपायं वदाधुना। अन्यथा देवदेवेश पुरुषार्थो न सिद्ध्यति॥ २॥

शिव उवाच

साधु पार्वति ते प्रश्नः सावधानतया शृणु। विना जपं विना सेवां विना पूजामपि प्रिये॥ ३॥
यथा कृष्णः प्रसन्नः स्यात्तमुपायं वदामि ते। जपसेवादिकं चापि विना स्तोत्रं न सिद्ध्यति॥ ४॥
कीर्तिप्रियो हि भगवान् परमात्मा पुरुषोत्तमः। जपस्तन्मयतासिद्ध्यै सेवा स्वाचाररूपिणी॥ ५॥
स्तुतिः प्रसादनकरी तस्मात् स्तोत्रं वदामि ते।

अथ ध्यानम्

सुधाम्भोनिधिमध्यस्थे रत्नद्वीपे मनोहरे॥ ६॥
नवखण्डात्मके तत्र नवरत्नविभूषिते। तन्मध्ये चिन्तयेद् रम्यं मणिगेहमनुत्तमम्॥ ७॥
परितो वनमालाभिर्ललिताभिर्विराजिते। तत्र संचिन्तयेच्चारु कुट्टिमं सुमनोहरम्॥ ८॥
चतुःषष्ट्या मणिस्तम्भैश्चतुर्दिक्षु विराजितम्। तत्र सिंहासने ध्यायेत् कृष्णं कमललोचनम्॥ ९॥
अनर्घ्यरत्नजटितमुकुटोज्ज्वलकुण्डलम्। सुस्मितं सुमुखाम्भोजं सखीवृन्दनिषेवितम्॥ १०॥
स्वामिन्याश्लिष्टवामाङ्गं परमानन्दविग्रहम्। एवं ध्यात्वा ततः स्तोत्रं पठेद्भुवि जितेन्द्रियः॥ ११॥

'सुधासागरके मध्यभागमें मनोहर रत्नद्वीप शोभा पाता है। उसके नौ खण्ड हैं। वह द्वीप नूतन रत्नोंसे विभूषित है। उस रत्नद्वीपके बीचमें परम उत्तम रमणीय मणिमय भवनका चिन्तन करे। वह भवन सब ओरसे ललित वनमालाओंद्वारा विभूषित एवं सुशोभित हो रहा है। उस भवनके भीतर परम मनोहर अतिरमणीय मणिजटित पक्का आँगन है—ऐसा ध्यान करे। उस आँगनकी चारों दिशाओंमें (सोलह-सोलहके क्रमसे) चौंसठ मणिनिर्मित खम्भे विराजित हैं। उस आँगनमें एक सुन्दर सिंहासन है, जिसके ऊपर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं। उनके स्वरूपका इस प्रकार चिन्तन करे—वे मस्तकपर अमूल्य रत्नजटित मुकुट और कानोंमें उज्ज्वल कुण्डल धारण किये मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं। उनकी वह मुसकान बड़ी मनोरम है। उसके कारण उनके मुखारविन्दका सौन्दर्य और भी खिल उठा है। झुण्ड-की-झुण्ड सखियाँ उनकी सेवामें लगी हैं। स्वामिनी श्रीराधा उनके वामांगसे सटी बैठी हैं। श्रीहरिका श्रीविग्रह परमानन्दमय है।'

इस प्रकार ध्यान करके इन्द्रियोंको पूर्णतः वशमें रखते हुए स्तोत्रका पाठ करे।

अथ स्तोत्रम्

कृष्णं कमलपत्राक्षं सच्चिदानन्दविग्रहम्। सखीयूथान्तरचरं प्रणमामि परात्परम्॥ १२॥
शृङ्गाररसरूपाय परिपूर्णसुखात्मने। राजीवारुणनेत्राय कोटिकन्दर्परूपिणे॥ १३॥
वेदाद्यगम्यरूपाय वेदवेद्यस्वरूपिणे। अवाङ्मनसविषयनिजलीलाप्रवर्तिने॥ १४॥
नमः शुद्धाय पूर्णाय निरस्तगुणवृत्तये। अखण्डाय निरंशाय निरावरणरूपिणे॥ १५॥
संयोगविप्रलम्भाख्यभेदभावमहाब्धये। सदंशविश्वरूपाय चिदंशाक्षररूपिणे॥ १६॥
आनन्दांशस्वरूपाय सच्चिदानन्दरूपिणे। मर्यादातीतरूपाय निराधाराय साक्षिणे॥ १७॥
मायाप्रपञ्चदूराय नीलाचलविहारिणे। माणिक्यपुष्परागाद्रिलीलाखेलप्रवर्तिने॥ १८॥
चिदन्तर्यामिरूपाय ब्रह्मानन्दस्वरूपिणे। प्रमाणपथदूराय प्रमाणाग्राह्यरूपिणे॥ १९॥
मायाकालुष्यहीनाय नमः कृष्णाय शम्भवे। क्षरायाक्षररूपाय क्षराक्षरविलक्षिते॥ २०॥
तुरीयातीतरूपाय नमः पुरुषरूपिणे। महाकामस्वरूपाय कामतत्त्वार्थवेदिने॥ २१॥
दशलीलाविहाराय सप्ततीर्थविहारिणे। विहाररसपूर्णाय नमस्तुभ्यं कृपानिधे॥ २२॥

विरहानलसंतप्तभक्तचित्तोदयाय च । आविष्कृतनिजानन्दविफलीकृतमुक्तये ॥ २३ ॥
द्वैताद्वैतमहामोहतमः पटलपाटिने । जगदुत्पत्तिविलयसाक्षिणेऽविकृताय च ॥ २४ ॥
ईश्वराय निरीशाय निरस्ताखिलकर्मणे । संसारध्वान्तसूर्याय पूतनाप्राणहारिणे ॥ २५ ॥
रासलीलाविलासोर्मिपूरिताक्षरचेतसे । स्वामिनीनयनाम्भोजभावभेदैकवेदिने ॥ २६ ॥
केवलानन्दरूपाय नमः कृष्णाय वेधसे । स्वामिनीकृपयानन्दकन्दलाय तदात्मने ॥ २७ ॥
संसारारण्यवीथीषु परिभ्रान्तामनेकधा । पाहि मां कृपया नाथ त्वद्वियोगाधिदुःखिताम् ॥ २८ ॥
त्वमेव मातृपित्रादिबन्धुवर्गादयश्च ये । विद्या वित्तं कुलं शीलं त्वत्तो मे नास्ति किञ्चन ॥ २९ ॥
यथा दारुमयी योषिच्चेष्टते शिल्पिशिक्षया । अस्वतन्त्रा त्वया नाथ तथाहं विचरामि भोः ॥ ३० ॥
सर्वसाधनहीनां मां धर्माचारपराङ्मुखाम् । पतितां भवपाथोधौ परित्रातुं त्वमर्हसि ॥ ३१ ॥
मायाभ्रमणयन्त्रस्थामूर्ध्वाधो भयविह्वलाम् । अदृष्टनिजसंकेतां पाहि नाथ दयानिधे ॥ ३२ ॥
अनर्थेऽर्थदृशं मूढां विश्वस्तां भयदस्थले । जागृतव्ये शयानां मामुद्धरस्व दयापर ॥ ३३ ॥
अतीतानागतभवसंतानविवशान्तराम् । बिभेमि विमुखीभूय त्वत्तः कमललोचन ॥ ३४ ॥
मायालवणपाथोधिपयः पानरतां हि माम् । त्वत्सांनिध्यसुधासिन्धुसामीप्यं नय माचिरम् ॥ ३५ ॥
त्वद्वियोगार्तिमासाद्य यज्जीवामीति लज्जया । दर्शयिष्ये कथं नाथ मुखमेतद्विडम्बनम् ॥ ३६ ॥
प्राणनाथवियोगेऽपि करोमि प्राणधारणम् । अनौचिती महत्येषा किं न लज्जयते हि माम् ॥ ३७ ॥
किं करोमि क्व गच्छामि कस्याग्रे प्रवदाम्यहम् । उत्पद्यन्ते विलीयन्ते वृत्तयोऽब्धौ यथोर्मयः ॥ ३८ ॥
अहं दुःखाकुला दीना दुःखहा न भवत्परः । विज्ञाय प्राणनाथेदं यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ३९ ॥
ततश्च प्रणमेत् कृष्णं भूयो भूयः कृताञ्जलिः । इत्येतद् गुह्यमाख्यातं न वक्तव्यं गिरीन्द्रजे ॥ ४० ॥
एवं यः स्तौति देवेशि त्रिकालं विजितेन्द्रियः । आविर्भवति तच्चित्ते प्रेमरूपी स्वयं प्रभुः ॥ ४१ ॥

संस्कृतसे अनभिज्ञ पाठकगण स्तोत्रका अर्थ* समझकर दिनमें तीन बार प्रातः, सायं एवं मध्याह्नमें पाठ करेंगे तो अनन्तगुना लाभ मिल सकेगा। यह पाठ प्रतिदिन बिना लाँघा चलना चाहिये। रोग आदिके समय अशक्ति होनेपर किन्हीं सदाचारी ब्राह्मणद्वारा कराया जा सकता है। तीव्र उत्कण्ठाके साथ-साथ ब्रह्मचर्यका पालन और इन्द्रिय-संयम आवश्यक है। इससे भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा उनके दिव्य प्रेमकी प्राप्ति होती है।

[३]

भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये

(१)

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये । सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥

(श्रीमद्भागवत १० । ३० । ७)

—इस मन्त्रको बिल्वकाष्ठकी छोटी-सी पीठिका (चौकी) बनवाकर तुलसीकाष्ठकी ही कलमसे लिखकर रोज षोडशोपचारसे पूजन करे और कम-से-कम ३२००० जप-संख्या पूरी करे। ब्रह्मचर्यका अखण्ड पालन करे और सत्यका आचरण करे।

* गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित लघु पुस्तिका 'भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी प्राप्तिके लिये' (कोड ३८३)-में यह स्तोत्र सानुवाद प्रकाशित है।

(२)

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम्।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम्॥

(श्रीमद्भागवत १०। ३१। १८)

—इस मन्त्रकी एक मालाका जप करके '**ॐ गोपीजनवल्लभाय नमः**' मन्त्रकी ११ मालाका प्रतिदिन जप करे। ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक है।

(३)

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः। पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥

(श्रीमद्भागवत १०। ३२। २)

—इस मन्त्रकी एक मालाका जप करके '**ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**'—इस मन्त्रकी कम-से-कम ११ मालाओंका जप प्रतिदिन शुद्ध होकर करे।

[४]

श्रीराधाजीका आश्रय एवं लौकिक समृद्धि पानेके लिये

कृपयति यदि राधा बाधिताशेषबाधा किमपरमवशिष्टं पुष्टिमर्यादयोर्मे।
यदि वदति च किंचित् स्मेरहासोदितश्रीद्विजवरमणिपङ्क्त्या मुक्तिशुक्त्या तदा किम्॥

श्यामसुन्दर शिखण्डशेखर स्मेरहास्य मुरलीमनोहर।
राधिकारसिक मां कृपानिधे स्वप्रियाचरणकिङ्करीं कुरु॥
प्राणनाथ वृषभानुनन्दिनीश्रीमुखाब्जरसलोलषट्पद।
राधिकापदतले कृतस्थितिं त्वां भजामि रसिकेन्द्रशेखर॥
संविधाय दशने तृणं विभो प्रार्थये व्रजमहेन्द्रनन्दन।
अस्तु मोहन तवातिवल्लभा जन्मजन्मनि मदीश्वरी प्रिया॥

(गो० श्रीविट्ठलनाथकृत श्रीराधाप्रार्थना-चतुःश्लोकी)

× × × ×

स्तोत्रं च सामवेदोक्तं प्रपठेद्भक्तिसंयुतः। राधा रासेश्वरी रम्या रामा च परमात्मनः॥
रासोद्भवा कृष्णकान्ता कृष्णवक्षःस्थलस्थिता। कृष्णप्राणाधिदेवी च महाविष्णोः प्रसूरपि॥
सर्वाद्या विष्णुमाया च सत्या नित्या सनातनी। ब्रह्मस्वरूपा परमा निर्लिप्ता निर्गुणा परा॥
वृन्दा वृन्दावने सा च विरजातटवासिनी। गोलोकवासिनी गोपी गोपीशा गोपमातृका॥
सानन्दा परमानन्दा नन्दनन्दनकामिनी। वृषभानुसुता शान्ता कान्ता पूर्णतमा च सा॥
काम्या कलावती कन्या तीर्थपूता सती शुभा। सप्तत्रिंशच्च नामानि वेदोक्तानि शुभानि च॥
सारभूतानि पुण्यानि सर्वनामसु नारद। यः पठेत् संयतः शुद्धो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः॥
इहैव निश्चलां लक्ष्मीं लब्ध्वा याति हरेः पदम्। हरिभक्तिं हरेर्दास्यं लभते नात्र संशयः॥

(श्रीनारदपंचरात्रे श्रीराधायाः सप्तत्रिंशन्नामस्तोत्रम्)

प्रतिदिन श्रीराधिकाजीके चित्रपटका पञ्चोपचारसे पूजन करके उपर्युक्त स्तोत्रोंका परम श्रद्धा तथा दृढ़ विश्वासके साथ तीन-तीन पाठ करना चाहिये। ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक है।

[५]

—श्रीराधारमण भगवान् श्रीकृष्णसे सब प्रकारकी मनोकामनाकी पूर्तिके लिये—

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नमो भगवते राधाप्रियाय राधारमणाय गोपीजनवल्लभाय ममाभीष्टं पूरय पूरय हुं फट् स्वाहा॥

इस मन्त्रको कदम्बकाष्ठकी छोटी पीठिका (चौकी)-पर अष्टगन्ध अथवा कपूर और केशरसे अनारकी कलमसे लिखकर षोडशोपचारसे पूजन करे। परंतु प्रतिदिनका जप १८०० से कम नहीं होना चाहिये। कुल जप-संख्या सवा लाख है। फिर साढ़े बारह हजार दशांश होमके लिये जप करना चाहिये।

[६]

—भगवान् श्रीकृष्णकी शरणागति और उनका आश्रय प्राप्त करनेके लिये—

मन्त्रोंकी भाँति ही यन्त्र भी बड़े प्रभावशाली होते हैं। कुछ यन्त्रोंके साथ मन्त्र भी होते हैं और कुछ केवल अङ्कात्मक यन्त्र होते हैं। विभिन्न यन्त्र, विभिन्न कार्योंकी सिद्धि और रोगनिवृत्ति आदिके लिये काममें लाये जाते हैं। प्रत्येक यन्त्र साधारणतया भोजपत्रपर अष्टगन्धसे लिखकर, ताँबेके ताबीजमें भरकर, गुग्गुलका धूप देकर स्त्रियोंके बायें हाथ या गलेमें एवं पुरुषोंके दाहिने हाथ या गलेमें बाँधा जाता है। मन्त्रात्मक यन्त्र हो तो चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार जप करके यन्त्रका पूजन कर लेना चाहिये। केवल यन्त्र हो तो उसका पूजनमात्र कर लेना चाहिये। विश्वासपूर्वक इनका सेवन करनेसे लाभ होता है। यहाँ ऐसा ही एक यन्त्र प्रस्तुत है—

भगवान् श्रीकृष्णकी शरणागति और उनका आश्रय प्राप्त करनेके लिये विश्वासपूर्वक नीचे लिखे बीसा यन्त्रका पंचोपचारसे पूजन करके प्रतिदिन '**श्रीकृष्णः शरणं मम**' इस मन्त्रकी (१०८ तुलसीके दानोंकी) ५ माला श्रद्धा-भक्तिपूर्वक जप करे।

यह बीसा यन्त्र ताँबेके पत्तरपर खुदवाकर श्रीगंगाजी या श्रीयमुनाजीके जलसे धोकर धूप देकर पूजामें रखे।

श्रीराधास्तोत्रम्

राधे राधे च कृष्णेशे कृष्णप्राणे मनोहरे। भक्तधामप्रदे देवि राधिके त्वं प्रसीद मे॥ १॥
रहःकेलिसुखस्थाने सखीप्रेमकरेऽनघे। कृष्णोत्कर्षकरे नित्यं राधिके त्वं प्रसीद मे॥ २॥
भक्तानानन्दसंदोहवर्द्धिनि ज्येष्ठचिन्तने। कोटिचन्द्रार्कसंहर्त्री राधिके त्वं प्रसीद मे॥ ३॥
गौरांगि नीलाम्बरधरे कृष्णप्रेमाब्धिधारिणि। पीताम्बरप्रदे कृष्णे राधिके त्वं प्रसीद मे॥ ४॥
किरीटकेयूरधरे नूपुराभातपादुके। बहुभूषणसंयुक्ते राधिके त्वं प्रसीद मे॥ ५॥
इति गदितमनाद्यं राधिका स्तोत्रमाद्य सुरनरगणमुख्यैर्नागगन्धर्वसाध्यैः।
पठितमपि रहस्यं साधुभिश्चैकवारं नयति परमदिव्ये धाम्नि कृष्णः स्वभक्तान्॥ ६॥

॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितायां श्रीराधास्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

श्रीराधा-माधवके यन्त्र

(श्रीगोपालचन्द्रजी घोष)

[देवोपासनाके क्रममें यन्त्रको विशेष महत्त्वपूर्ण माना जाता है। बीज, अंक, रेखा आदिसे परिकल्पित यन्त्र इष्टका समष्ट्यात्मक विग्रह होता है, जिसके माध्यमसे शास्त्रीय निर्देशोंके अनुगत होकर साधक अपने इष्टका साक्षात्कार कर पानेमें समर्थ होते हैं। युगलस्वरूप श्रीराधा-माधवके उपासकोंके उद्देश्यसे यहाँ राधिकायन्त्र तथा गोपालयन्त्र संक्षिप्त विधिके साथ दिये जा रहे हैं। इन यन्त्रोंद्वारा उनकी उपासनापद्धतिके तन्त्रागम-ग्रन्थोंमें कई भेद तथा मतमतान्तर भी मिलते हैं। वस्तुतः यह विषय परम्परागम्य है; पर प्राच्यसाधनाकी इस विधाके प्रति जिज्ञासु पाठकोंके आकर्षणको देखते हुए यहाँ इसका संकेत मात्र किया जा रहा है। यदि शुद्ध यन्त्र मिलना कठिन हो तो भक्तिपूर्वक श्रीराधामाधवकी किसी मनभावन प्रतिमाका सांगोपांग पूजन करना ही सर्वश्रेष्ठ एवं निरापद है। —सम्पादक]
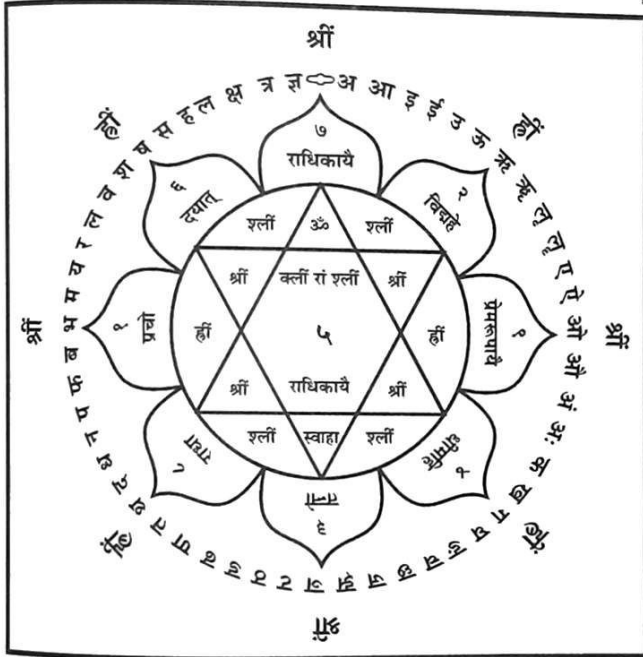
श्रीराधिका-यन्त्र
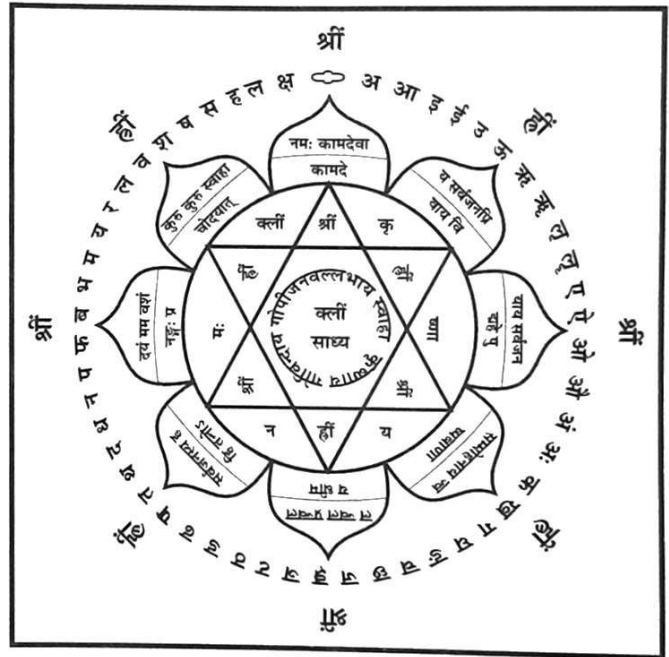
श्रीगोपाल-यन्त्र

श्रीराधिकाजीका यह यन्त्र राधिका-पंचदशी-यन्त्र कहलाता है। इसका राधाष्टमी (भाद्रपद शु० ८)-के दिन, दीपावली (कार्तिक अमावस्या)-या होलिका पर्व (फाल्गुन पूर्णिमा)-में ताम्र, स्वर्ण, रजत पत्रपर खुदवाकर अथवा भोजपत्रपर अष्टगन्धसे रचनाकर अभिषेक* करना चाहिये। पंचगव्य, पंचामृत, गंगाजल अथवा यमुनाजलसे स्नान करानेके पश्चात् रक्तवस्त्र या पीतवस्त्रपर यन्त्रको रखकर पंचोपचार, दशोपचार अथवा षोडशोपचारसे यथासाध्य पूजनकर नित्य पूजामें रखे। स्व-सम्प्रदायानुसार राधामन्त्रसे पूजन करे। यदि साथमें अंकित गोपालयन्त्रको भी उपर्युक्त विधिसे प्रतिष्ठितकर, उभय यन्त्रोंको नित्य पूजामें रखे, तो श्रीराधाकृष्ण-युगलकी कृपाप्राप्ति हो सकती है। साथ-ही-साथ मनोवांछित कामनाएँ सिद्ध होती हैं। श्रीगोपालयन्त्र तो प्रायः उपलब्ध हो जाता है, परंतु श्रीराधायन्त्र सहसा दृष्टिगोचर नहीं होता। यह यन्त्र हमें निम्बार्कसम्प्रदायके गोलोकवासी बाबा श्रीश्यामदासजी महाराजसे सन् १९६४ई० में प्राप्त हुआ था। वस्तुतः बहुत प्रार्थना करनेपर उनके सेव्य ताम्रफलकपर अंकित उभय यन्त्रोंको हमने कागजपर उतार लिया था। उनसे ही इस यन्त्रकी महिमा अवगत हुई। उन्हें वनवासी किन्हीं गौड़ीय सन्तने पूजाहेतु दिया था। **[प्रेषिका—श्रीमती प्रगतिजी शर्मा]**

---

* अभिषेक धातु आदिपर बने यन्त्रका ही किया जाता है, अष्टगन्धादिसे लिखे यन्त्रके निमित्त जलका मात्र प्रोक्षण ही करना चाहिये।

प्रातः स्तवराज

प्रातः स्मरामि युगकेलिरसाभिषिक्तं
वृन्दावनं सुरमणीयमुदारवृक्षम्।
सौरीप्रवाहवृतमात्मगुणप्रकाशं
युग्माङ्घ्रिरेणुकणिकाञ्चितसर्वसत्त्वम्॥ १॥

जहाँपर सगुण हुए परमात्माके दिव्य लीलागुणोंका प्रकाश हुआ है, जो यमुनाजीके जलप्रवाहसे आवेष्टित, अतीव रमणीय तथा वांछित फल देनेवाले वृक्षोंसे समन्वित है और जिसमें अवस्थित सकल प्राणिसमुदाय युगल-स्वरूपकी चरण-धूलिसे परिपूत है। राधामाधव-युगलके लीलारससे अभिषिञ्चित ऐसे श्रीवृन्दावनधामका मैं प्रात:काल स्मरण करता हूँ॥ १॥

प्रात:स्मरामि दधिघोषविनीतनिद्रं
निद्रावसान-रमणीयमुखानुरागम्।
उन्निद्र-पद्मनयनं नवनीरदाभं
हृद्यानवद्यललनाञ्चितवामभागम्॥ २॥

दधिमन्थनघोषके कारण जिनकी निद्रा निवृत्त हो चुकी है, सोकर उठनेपर अलसाया हुआ जिनका अनुरागरंजित मुख अतिमनोहर प्रतीत हो रहा है, जो खिले हुए कमलके सदृश नेत्रों तथा नवीन मेघ-सी कान्तिवाले हैं तथा जिनके वामांगमें विशुद्ध स्वरूपवाली परम सुन्दरी श्रीराधा शोभायमान हैं—ऐसे (श्यामसुन्दर)-का मैं प्रात:काल स्मरण करता हूँ॥ २॥

प्रातर्भजामि शयनोत्थितयुग्मरूपं
सर्वेश्वरं सुखकरं रसिकेशभूपम्।
अन्योन्यकेलिरसचिह्नसखीदृगौघं
सख्यावृतं सुरतकाममनोहरञ्च॥ ३॥

जिनकी पारस्परिक विलासलीलाएँ सखियोंके अवलोकनका विषय हैं, जो सर्वेश्वर, सुखप्रद, रसिक-भक्तोंका परमाश्रय, सहचरीवृन्दसे आवृत तथा रति-कामकी शोभाका अतिक्रमण करनेवाले सौन्दर्यसे समन्वित हैं। शयनसे उठे हुए ऐसे श्रीराधा-माधव युगल स्वरूपका मैं प्रात:काल भजन करता हूँ॥ ३॥

प्रातर्भजे सुरतसारपयोधिचिह्नं
गण्डस्थलेन नयनेन च सन्दधानौ।
रत्याद्यशेषशुभदौ समुपेतकामौ
श्रीराधिकावरपुरन्दरपुण्यपुञ्जौ॥ ४॥

विलासरससिन्धुके (विलोडनसे उत्पन्न हुए रत्नोंके सदृश प्रतीत होनेवाले) चिह्नोंको नेत्रों तथा कपोलोंपर धारण किये हुए, प्रेमाभक्ति आदि समस्त शुभ फलोंको प्रदान करनेवाले, आप्तकाम तथा पुरन्दर (नन्दजी एवं वृषभानुजी)-के पुण्यसमूहरूप श्रीराधा-माधवका मैं प्रात:काल भजन करता हूँ॥ ४॥

प्रातर्धरामि हृदयेन हृदीक्षणीयं
युग्मस्वरूपमनिशं सुमनोहरञ्च।
लावण्यधाम ललनाभिरुपेयमान-
मुत्थाप्यमानमनुमेयमशेषवेषैः ॥ ५॥

व्रजसुन्दरियों (की अनन्य प्रीतिके कारण उन)-के प्राप्यरूप तथा उनके द्वारा प्रभातवेलामें जगाये जाते हुए, सभी प्रकारकी वेष-रचनाओंसे समन्वित हुए जो चिन्तनका विषय बनते हैं, जो निरतिशय सौन्दर्यके आश्रय तथा (भक्तोंके द्वारा) अन्त:करणमें निरन्तर चिन्तनयोग्य हैं—ऐसे उन राधा-माधवके युगल स्वरूपका मैं प्रात:काल अपने हृदयमें ध्यान करता हूँ॥ ५॥

प्रातर्ब्रवीमि युगलावपि सोमराजौ
राधामुकुन्दपशुपालसुतौ वरिष्ठौ।
गोविन्दचन्द्रवृषभानुसुतावरिष्ठौ
सर्वेश्वरौ स्वजनपालनतत्परेशौ॥ ६॥

वृषभानु गोपकी पुत्री श्रीराधा तथा (नन्द-)-गोपात्मज गोविन्दचन्द्र मुकुन्द—जो स्वजनोंके पालनमें तत्पर, सर्वातिशायी, ऐश्वर्यसम्पन्न, सबके स्वामी, परमोत्कृष्ट तथा सोमवंशको विभूषित करनेवाले हैं। ऐसे उस राधामाधव-युगलका मैं प्रात:काल कीर्तन करता हूँ॥ ६॥

प्रातर्नमामि युगलांघ्रिसरोजकोश-
मष्टाङ्गयुक्तवपुषा भवदु:खदारम्।
वृन्दावने सुविचरन्तमुदारचिह्नं
लक्ष्म्या उरोजधृतकुङ्कुमरागपुष्टम्॥ ७॥

भगवती लक्ष्मीके वक्ष:स्थलमें विलिप्त कुंकुमद्रवसे जो आरंजित हैं, (ध्वज-वज्र आदि) उदार चिह्नोंसे जो समलंकृत हैं और वृन्दावनमें मनोहर रीतिसे विचरण कर रहे हैं। राधामाधवयुगलके उन भवदु:खहारी तथा कमलकोशके सदृश (सुकोमल) श्रीचरणोंकी मैं अष्टांगप्रणामोद्यत शरीरसे वन्दना करता हूँ॥ ७॥

प्रातर्नमामि वृषभानुसुतापदाब्जं
नेत्रालिभि: परिणुतं व्रजसुन्दरीणाम्।
प्रेमातुरेण हरिणा सुविशारदेन
श्रीमद्व्रजेशतनयेन सदाऽभिवन्द्यम्॥ ८॥

परमकुशल व्रजेन्द्रनन्दन श्रीहरि प्रीतिपरवश होकर जिनका सतत अभिनन्दन करते हैं तथा व्रजांगनाओंके लोचनभृंग चारों ओर मँडराते हुए जिनका सेवन करते हैं, वृषभानुसुता श्रीराधाके ऐसे चरणकमलोंकी मैं प्रात:काल वन्दना करता हूँ॥ ८॥

सञ्चिन्तनीयमनुमृग्यमभीष्टदोऽहं
संसारतापशमनं चरणं महार्हम्।
नन्दात्मजस्य सततं मनसा गिरा च
संसेवयामि वपुषा प्रणयेन रम्यम्॥ ९॥

जो (ब्रह्मादि देवताओंद्वारा भी) अन्वेषण किये जानेयोग्य, अभिमत फलोंको प्रदान करनेवाले, सांसारिक तापोंके शामक, सर्वातिशायि तथा भली-भाँति चिन्तनीय हैं, नन्दनन्दन श्रीकृष्णके ऐसे मनोहर श्रीचरणोंकी मैं निरन्तर मन, वाणी तथा शरीरसे प्रीतिपूर्वक सेवा करता हूँ॥ ९॥

प्रात: स्तवमिमं पुण्यं प्रातरुत्थाय य: पठेत्।
सर्वकालं क्रियास्तस्य सफला: स्यु: सदा ध्रुवा:॥ १०॥

इस प्रात:कालीन पवित्र (युगल) स्तवनका जो साधक प्रभातवेलामें प्रबुद्ध होकर पाठ करेगा, उसकी सभी सत्क्रियाएँ सदा-सर्वदा सफल एवं नियत परिणामवाली होंगी॥ १०॥ [श्रीनिम्बार्काचार्यप्रणीत प्रात:स्तवराज]

'श्रीराधे, मोहि अपनौ कब करिहौ'

(श्रीभारतेन्दुजी हरिश्चन्द्र)

श्रीराधे, मोहि अपनौ कब करिहौ।
जुगल रूप रस अमित माधुरी कब इन नैननि भरिहौ।
कब या दीन हीन निज जन पै ब्रज कौ बास बितरिहौ।
'हरीचंद' कब भव बूड़त तैं भुज धरि धाइ उबरिहौ॥

श्रीयुगलकिशोराष्टक

नवजलधरविद्युद्द्योतवर्णौ प्रसन्नौ वदननयनपद्मौ चारुचन्द्रावतंसौ।
अलकतिलकभालौ केशवेशप्रफुल्लौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ॥ १॥
वसनहरितनीलौ चन्दनालेपनाङ्गौ मणिमरकतदीप्तौ स्वर्णमालाप्रयुक्तौ।
कनकवलयहस्तौ रासनाट्यप्रसक्तौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ॥ २॥
अति मधुरसुवेशौ रङ्गभङ्गीत्रिभङ्गौ मधुरमृदुलहास्यौ कुण्डलाकीर्णकर्णौ।
नटवरवररम्यौ नृत्यगीतानुरक्तौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ॥ ३॥
विविधगुणविदग्धौ वन्दनीयौ सुवेशौ मणिमयमकराद्यैः शोभिताङ्गौ स्फुरन्तौ।
स्मितनमितकटाक्षौ धर्मकर्मप्रदत्तौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ॥ ४॥
कनकमुकुटचूडौ पुष्पितोद्भूषिताङ्गौ सकलवननिविष्टौ सुन्दरानन्दपुञ्जौ।
चरणकमलदिव्यौ देवदेवादिसेव्यौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ॥ ५॥

जिनका वर्ण क्रमशः नवीन जलपूर्ण मेघ एवं विद्युच्छटाके समान है, जिनके मुखपर सदा प्रसन्नता छायी रहती है, जिनके मुख एवं नेत्र कमलके समान प्रफुल्लित हैं, जिनके मस्तकपर क्रमशः मयूरपिच्छका मुकुट एवं स्वर्णमय चन्द्रिका सुशोभित है, जिनके ललाटपर सुन्दर तिलक किया हुआ है और अलकावली बिथुरी हुई है और जो अद्भुत केशरचनाके कारण फूले-फूले-से लगते हैं, अरे मेरे मन! तू उन श्रीराधिका एवं श्रीकृष्णचन्द्रका ही निरन्तर सेवन कर॥ १॥

जिनके श्रीअंगोंपर क्रमशः पीले और नीले वस्त्र सुशोभित हैं, जिनके श्रीविग्रह चन्दनसे चर्चित हो रहे हैं, जिनकी अंगकान्ति क्रमशः मरकतमणि एवं स्वर्णके सदृश है, जिनके वक्षःस्थलपर स्वर्णहार सुशोभित है, हाथोंमें सोनेके कंगन चमक रहे हैं और जो रासक्रीडामें संलग्न हैं, अरे मन! उन श्रीवृषभानुकिशोरी एवं श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका ही नित्य सेवन किया कर॥ २॥

जिन्होंने अत्यन्त मधुर एवं सुन्दर वेष बना रखा है, जो अत्यन्त मधुर भङ्गीसे त्रिभङ्गी होकर स्थित हैं, जो मधुर एवं मृदुल हँसी हँस रहे हैं, जिनके कानोंमें कुण्डल एवं कर्णफूल सुशोभित हैं, जो श्रेष्ठ नट एवं नटीके रूपमें सुसज्जित हैं तथा नृत्य एवं गीतके परम अनुरागी हैं, अरे मन! उन राधिका-कृष्णचन्द्रका ही तू भजन किया कर॥ ३॥

जो विविध गुणोंसे विभूषित हैं और सदा वन्दनके योग्य हैं, जिन्होंने अत्यन्त मनोहर वेष धारण कर रखा है, जिनके श्रीअंगोंमें मणिमय मकराकृत कुण्डल आदि आभूषण सुशोभित हैं, जिनके अंगोंसे प्रकाशकी किरणें प्रस्फुटित हो रही हैं, जिनके नेत्रप्रान्तोंमें मधुर हँसी खेलती रहती है और जो हमारे धर्म-कर्मके फलस्वरूप हमें प्राप्त हुए हैं, अरे मन! उन वृषभानुकिशोरी एवं नन्दनन्दन श्रीकृष्णमें ही सदा लवलीन रह॥ ४॥

जो मस्तकपर स्वर्णका मुकुट एवं सोनेकी ही चन्द्रिका धारण किये हुए हैं, जिनके अंग-प्रत्यंग फूलोंके शृंगार एवं विविध आभूषणोंसे विभूषित हैं, जो व्रजभूमिके समस्त वनप्रान्तोंमें प्रवेश करके नाना प्रकारकी लीलाएँ रचते रहते हैं, जो सौन्दर्य एवं आनन्दके मूर्तरूप हैं, जिनके चरणकमल अत्यन्त दिव्य हैं और जो देवदेव महादेव आदिके भी आराध्य हैं, अरे मन! उन श्रीराधा-कृष्णका ही तू निरन्तर चिन्तन किया कर॥ ५॥

अतिसुवलितगात्रौ गन्धमाल्यैर्विराजौ कतिकतिरमणीनां सेव्यमानौ सुवेशौ।
मुनिसुरगणभाव्यौ वेदशास्त्रादिविज्ञौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ॥ ६॥
अतिसुमधुरमूर्ती दुष्टदर्पप्रशान्ती सुरवरवरदौ द्वौ सर्वसिद्धिप्रदानौ।
अतिरसवशमग्नौ गीतवाद्यप्रतानौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ॥ ७॥
अगमनिगमसारौ सृष्टिसंहारकारौ वयसि नवकिशोरौ नित्यवृन्दावनस्थौ।
शमनभयविनाशौ पापिनस्तारयन्तौ भज भजतु मनो रे राधिकाकृष्णचन्द्रौ॥ ८॥

इदं मनोहरं स्तोत्रं श्रद्धया यः पठेन्नरः।
राधिकाकृष्णचन्द्रौ च सिद्धिदौ नात्र संशयः॥ ९॥

॥ इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितं श्रीयुगलकिशोराष्टकं सम्पूर्णम्॥

जिनके अंगोंका संचालन अत्यन्त मधुर प्रतीत होता है, जो नाना प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंका लेप किये हुए और नाना प्रकारके पुष्पोंकी मालाओंसे सुसज्जित हैं, असंख्य व्रजसुन्दरियाँ जिनकी सेवामें सदा संलग्न रहती हैं, जिनका वेश अत्यन्त मनोमोहक है, बड़े-बड़े देवता एवं मुनिगण भी जिनका ध्यानमें ही दर्शन कर पाते हैं और जो वेद-शास्त्रादिके महान् पण्डित हैं, अरे मन! तू उन कीर्तिकुमारी एवं यशोदानन्दनका ही ध्यान किया कर॥ ६॥

जिनका श्रीविग्रह अत्यन्त मधुर है, जो दुष्टजनोंके दर्पको चूर्ण करनेमें परम दक्ष हैं, जो बड़े-बड़े देवताओंको भी वर देनेकी सामर्थ्य रखते हैं और सब प्रकारकी सिद्धियोंको प्रदान करनेवाले हैं, जो सदा ही परमोत्कृष्ट प्रेमके वशीभूत होकर आनन्दमें मग्न रहते हैं तथा गीतवाद्यका विस्तार करते रहते हैं, अरे मन! उन्हीं राधा-कृष्णकी तू भावना किया कर॥ ७॥

जो अगम्य वेदोंके सारभूत हैं, सृष्टि और संहार जिनकी लीलामात्र हैं, जो सदा नवीन किशोरावस्थामें प्रकट रहते हैं, वृन्दावनमें ही जिनका नित्य-निवास है, जो यमराजके भयका नाश करनेवाले और पापियोंको भी भवसागरसे तार देनेवाले हैं, अरे मन! तू उन राधिका-कृष्णचन्द्रको ही भजता रह॥ ८॥

इस मनोहर स्तोत्रका जो कोई मनुष्य श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा, उसके मनोरथको श्रीराधा-कृष्ण निस्संदेह पूर्ण करेंगे॥ ९॥

॥ इस प्रकार श्रीमद्रूपगोस्वामीविरचित श्रीयुगलकिशोराष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

विभुरपि कलयन् सदाभिवृद्धिं गुरुरपि गौरवचर्यया विहीनः।
मुहुरुपचितवक्रिमापि शुद्धो जयति मुरद्विषि राधिकानुरागः॥

(दानकेलिकौमुदी)

'विभु (पूर्ण) होनेपर भी सदा वर्धनशील, गुरु (सर्वोत्कृष्ट) होनेपर भी गौरव—अहंकार आदिसे रहित और बढ़ी हुई वक्रिमाके होते हुए भी जो शुद्ध (निर्मल) है—मुरारि श्रीकृष्णके प्रति श्रीराधिकाका वह अनुराग सदा विजयशाली है।'

श्रीराधाकृपाकटाक्षस्तोत्र

मुनीन्द्रवृन्दवन्दिते त्रिलोकशोकहारिणि
प्रसन्नवक्त्रपङ्कजे निकुञ्जभूविलासिनि।
व्रजेन्द्रभानुनन्दिनि व्रजेन्द्रसूनुसङ्गते
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्॥

राजा वृषभानुकी लाड़िली श्रीराधिके! मुनीन्द्र-वृन्द आपके चरणोंकी वन्दना करते हैं, आप तीनों लोकोंका शोक दूर करनेवाली हैं, आपका मुखकमल सदा प्रफुल्लित रहता है, आप निकुंज-भवनमें विलास करनेवाली और श्रीव्रजराजकुमारकी संगिनी हैं, आप मुझे इस लोकमें अपने कृपाकटाक्षका पात्र कब बनायेंगी?

अशोकवृक्षवल्लरीवितानमण्डपस्थिते
प्रवालबालपल्लवप्रभारुणाङ्घ्रिकोमले।
वराभयस्फुरत्करे प्रभूतसम्पदालये
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्॥

अपार ऐश्वर्यकी भण्डार श्रीराधिके! आप अशोकवृक्षकी लताओंके वितानसे सुशोभित मण्डपमें विराजमान रहती हैं, आपके कोमल चरण मूँगे तथा नवीन लाल-लाल पल्लवोंके सदृश अरुण वर्णके हैं, आपके वरद हस्त सदा अभयदान देनेके लिये उद्यत रहते हैं, आप मुझे इस लोकमें अपने कृपाकटाक्षका पात्र कब बनायेंगी?

अनङ्गरङ्गमङ्गलप्रसङ्गभङ्गुरभ्रुवां
सुविभ्रमैः ससम्भ्रमैर्दृगन्तबाणपातनैः।
निरन्तरं वशीकृतप्रतीतनन्दनन्दने
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्॥

प्रेम-क्रीड़ाके रंग-मंचपर मंगलमय प्रसंगमें बाँकी भृकुटियोंके साथ सहसा परम विस्मयकारक कटाक्षरूप बाणोंकी वर्षासे श्रीनन्दनन्दनको विश्वासपूर्वक निरन्तर वशमें कर लेनेवाली श्रीराधिके! आप मुझे इस लोकमें अपने कृपाकटाक्षका पात्र कब बनायेंगी?

तडित्सुवर्णचम्पकप्रदीप्तगौरविग्रहे
मुखप्रभापरास्तकोटिशारदेन्दुमण्डले।
विचित्रचित्रसंचरच्चकोरशावलोचने
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्॥

श्रीराधिके! आपका श्रीविग्रह बिजली, स्वर्ण तथा चम्पाके पुष्पके समान सुनहली कान्तिसे देदीप्यमान गौर वर्णका है, आपके मुखकी प्रभा करोड़ों शारदीय चन्द्र-मण्डलोंको परास्त करनेवाली है, आपके नेत्र चंचल चकोर-शावकके समान विचित्र भावभंगिमासे संचरित होते हैं, आप मुझे इस लोकमें अपने कृपाकटाक्षका पात्र कब बनायेंगी?

मदोन्मदातियौवने प्रमोदमानमण्डिते
प्रियानुरागरञ्जिते कलाविलासपण्डिते।
अनन्यधन्यकुञ्जराजकामकेलिकोविदे
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्॥

प्रियतमके अनुरागमें अनुरक्त श्रीराधिके! आप अपने अपूर्व रूप-यौवनके मदमें मत्त, प्रमोदमय मानसे विभूषित, क्रीडाकलामें कुशल और सर्वातिशय महिमाशाली कुंजराज श्रीकृष्णकी प्रेम-क्रीड़ाओंको जाननेवाली हैं, आप मुझे इस लोकमें अपने कृपाकटाक्षका अधिकारी कब बनायेंगी?

अशेषहावभावधीरहीरहारभूषिते
प्रभूतशातकुम्भकुम्भकुम्भिकुम्भसुस्तनि।
प्रशस्तमन्दहास्यचूर्णपूर्णसौख्यसागरे
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्॥

अनन्त हाव-भाव, धीरता और रत्नहारसे विभूषिता श्रीराधिके! आपके उरोज सुवर्ण-कलश तथा हस्ति-कुम्भके समान उन्नत एवं सुन्दर हैं तथा आपका प्रशस्त मन्द-हास्य तरंगोंसे परिपूर्ण आनन्दसिन्धुके समान है, आप मुझे इस लोकमें अपने कृपाकटाक्षका पात्र कब बनायेंगी?

मृणालबालवल्लरीतरङ्गरङ्गदोर्लते
लताग्रलास्यलोलनीललोचनावलोकने।
ललल्लुलन्मिलन्मनोज्ञमुग्धमोहनाश्रये
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्॥

श्रीराधिके! आपकी भुजाएँ जल-तरंगोंके द्वारा प्रकम्पित नव-कमल-नालके समान कोमल हैं, आप लताओंके हिलते हुए अग्रभागके सदृश चंचल रतनारे

नेत्रोंसे अवलोकन करती हैं और प्रलुब्ध होकर मिलनकी आकांक्षासे ललचाये हुए पीछे-पीछे फिरनेवाले मनोज्ञ मनमोहनकी आश्रय-प्रदायिका हैं, आप मुझे इस लोकमें अपने कृपाकटाक्षका अधिकारी कब बनायेंगी?

सुवर्णमालिकार्चिते त्रिरेखकम्बुकण्ठगे
त्रिसूत्रमंगलीगुणत्रिरत्नदीप्तिदीधिते ।
सलोलनीलकुन्तले प्रसूनगुच्छगुम्फिते
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्॥

श्रीराधिके! आपका कण्ठ सुवर्णमालाओंसे अलंकृत एवं त्रिरेखांकित शंखके समान है और उसमें बँधे हुए मांगलिक त्रिसूत्र और त्रिरत्नोंकी प्रभासे उद्दीप्त हो रहा है। आपके हिलते काले घुँघराले केशोंमें सुन्दर पुष्पगुच्छ गुँथे हुए हैं, आप मुझे इस लोकमें अपने कृपाकटाक्षका पात्र कब बनायेंगी?

नितम्बबिम्बलम्बमानपुष्पमेखलागुण-
प्रशस्तरत्नकिङ्किणीकलापमध्यमञ्जुले।
करीन्द्रशुण्डदण्डिकावरोहसौभगोरुके
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्॥

श्रीराधे! आपका कटि-प्रदेश ऐसी उत्तम रत्नजटित करधनीसे सुशोभित है, जिसमें लटकते हुए रत्नजटित स्वर्ण-पुष्पोंके समूह झनकार कर रहे हैं तथा आपका ऊरुभाग हाथीकी सूँड़के समान चढ़ाव-उतारवाला होनेसे अत्यन्त मनोहर है, आप मुझे इस लोकमें अपने कृपाकटाक्षका पात्र कब बनायेंगी?

अनेकमन्त्रनादमञ्जुनूपुरारवस्खलत्-
समाजराजहंसवंशनिक्वणातिगौरवे ।
विलोलहेमवल्लरीविडम्बिचारुचङ्क्रमे
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्॥

श्रीराधे! आपके चरणकमलोंमें अनेक निगमागम-मन्त्रोंकी ध्वनिके समान सुन्दर झनकार करनेवाले स्वर्णमय नूपुर कूजते हुए अत्यन्त मनोहर राजहंसोंकी पंक्ति-सदृश प्रतीत होते हैं तथा चलते समय आपके सुन्दर अंगोंकी छवि ऐसी शोभा देती है, मानो सुवर्ण-लता लहरा रही हो, आप मुझे इस लोकमें अपने कृपाकटाक्षका पात्र कब बनायेंगी?

अनन्तकोटिविष्णुलोकनम्रपद्मजार्चिते
हिमाद्रिजापुलोमजाविरञ्चिजावरप्रदे ।
अपारसिद्धिवृद्धिदिग्धसत्पदाङ्गुलीनखे
कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम्॥

श्रीराधे! अनन्त कोटि विष्णुलोकोंकी अधिष्ठात्री श्रीलक्ष्मीजीसे भी आप पूजित हैं, आप श्रीपार्वती, इन्द्राणी एवं सरस्वतीजीको भी वर प्रदान करनेवाली हैं, आपके पदपद्मोंके एक नखमात्रका ही ध्यान अपार सिद्धियोंकी वृद्धि करनेवाला है, आप मुझे इस लोकमें अपने कृपाकटाक्षका पात्र कब बनायेंगी?

मखेश्वरि क्रियेश्वरि स्वधेश्वरि सुरेश्वरि
त्रिवेदभारतीश्वरि प्रमाणशासनेश्वरि।
रमेश्वरि क्षमेश्वरि प्रमोदकाननेश्वरि
व्रजेश्वरि व्रजाधिपे श्रीराधिके नमोऽस्तु ते॥

व्रजेश्वरी श्रीराधिके! आप सम्पूर्ण यज्ञों तथा शुभकर्मोंकी ईश्वरी हैं। स्वधेश्वरि! आप देवगणों, [ऋक्, यजु:, साम] त्रिवेद-मन्त्रों एवं प्रामाणिक सत्-शास्त्रोंकी ईश्वरी हैं। व्रजाधिपे! आप रमा, क्षमा एवं प्रमोद-काननकी ईश्वरी हैं, आपको नमस्कार है।

इतीदमद्भुतस्तवं निशम्य भानुनन्दिनि
करोतु संततं जनं कृपाकटाक्षभाजनम्।
भवेत्तदैव संचितत्रिरूपकर्मनाशनं
लभेत्तदा व्रजेन्द्रसूनुमण्डलप्रवेशनम्॥

हे श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधिके! मेरी इस अद्भुत स्तुतिको श्रवणकर आप सदाके लिये इस दीनको कृपावलोकनका पात्र बना लीजिये। उक्त अभिलाषाकी पूर्ति होते ही मेरे संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण—ये तीनों तरहके कर्म विनष्ट हो जायँगे और तत्क्षण श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके मण्डल (नित्य तथा दिव्य लीला)-में मेरा प्रवेश हो जायगा।

राकायां च सिताष्टम्यां दशम्यां च विशुद्धया।
एकादश्यां त्रयोदश्यां यः पठेत्साधकः सुधीः॥
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति साधकः।
राधाकृपाकटाक्षेण भक्तिः स्यात् प्रेमलक्षणा॥

जो विद्वान् साधक शुद्ध-बुद्धिपूर्वक पूर्णिमा, शुक्ल-पक्षकी अष्टमी, दशमी, एकादशी या त्रयोदशीके दिन

उक्त श्रीकृपाकटाक्ष-स्तोत्रका पाठ करेगा, वह साधक जिस-जिस इष्ट वस्तुकी कामना करेगा, वह सब उसे मिल जायगी। साथ ही श्रीराधाजीके कृपाकटाक्षके प्रभावसे प्रेमलक्षणा-भक्ति भी प्राप्त हो जायगी।

ऊरुमात्रे नाभिमात्रे हृन्मात्रे कण्ठमात्रके।
राधाकुण्डजले स्थित्वा यः पठेत्साधकः शतम्॥
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्याद् वाञ्छितार्थफलं लभेत्।
ऐश्वर्यं च लभेत् साक्षात् दृशा पश्यति राधिकाम्॥

जो साधक जंघा, नाभि, छाती तथा कण्ठपर्यन्त राधा-कुण्डके जलमें खड़ा होकर इस स्तोत्रका सौ बार पाठ करेगा, उसके समस्त प्रयोजन सिद्ध हो जायँगे तथा उसे मनोवांछित फल और ऐश्वर्यकी उपलब्धि होगी एवं साक्षात् श्रीराधिकाजीका दर्शन प्राप्त होगा।

तेन सा तत्क्षणादेव तुष्टा दत्ते महावरम्।
येन पश्यति नेत्राभ्यां तत्प्रियं श्यामसुन्दरम्॥

उसके कारण वे उसी क्षण प्रसन्न होकर उसे महान् वर प्रदान करेंगी, जिसके फलस्वरूप वह श्रीराधिकाजीके प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरका भी अपने नेत्रोंसे साक्षात् दर्शन करेगा।

नित्यलीलाप्रवेशं च ददाति श्रीव्रजाधिपः।
अतः परतरं प्राप्यं वैष्णवानां न विद्यते॥

ऐसे भक्तको श्रीव्रजेश नित्यलीला-प्रवेशका अधिकार प्रदान करते हैं, जिससे बढ़कर वैष्णवोंके लिये प्राप्त करनेयोग्य अन्य कोई वस्तु नहीं है।

गोपिकाविरहगीत

एहि मुरारे कुञ्जविहारे एहि प्रणतजनबन्धो।
हे माधव मधुमथन वरेण्य केशव करुणासिन्धो।
(ध्रुवपदम्)
रासनिकुञ्जे गुञ्जति नियतं भ्रमरशतं किल कान्त।
एहि निभृतपथपान्थ।
त्वामिह याचे दर्शनदानं हे मधुसूदन शान्त॥ १॥
शून्यं कुसुमासनमिह कुञ्जे शून्यः केलिकदम्बः।
दीनः केकिकदम्बः।
मृदुकलनादं किल सविषादं रोदिति यमुनास्वम्भः॥ २॥
नवनीरजधरश्यामलसुन्दर चन्द्रकुसुमरुचिवेश।
गोपीगणहृदयेश।
गोवर्धनधर वृन्दावनचर वंशीधर परमेश॥ ३॥
राधारञ्जन कंसनिषूदन प्रणतिस्तावकचरणे।
निखिलनिराश्रयशरणे।
एहि जनार्दन पीताम्बरधर कुञ्जे मन्थरपवने॥ ४॥

हे मुरारे! हे प्रणतजनोंके बन्धु! विहार-कुंजमें आइये, आइये। हे माधव! हे मधुमथन! हे पूजनीय! हे केशव! हे करुणासिन्धो! पधारिये। हे अद्वैतपथके पथिक! हे नाथ! रासनिकुंजमें सैकड़ों भ्रमर गूँज रहे हैं, पधारिये; हे शान्तिमय मधुसूदन! आपके दर्शनदानकी हम याचना करती हैं॥ १॥ हे नाथ! आपके इस क्रीडास्थल कुंजमें बिछा हुआ यह कुसुमासन और यह लीला-कदम्ब, सब आपके बिना सूना मालूम हो रहा है; मयूर आदि पक्षीगण दीन हो रहे हैं, मृदु कलरव करता हुआ श्रीयमुनाजीका निर्मल जल भी आपके वियोगमें शोकके साथ रोता-सा जान पड़ता है॥ २॥ हे नवीन कमल धारण करनेवाले! हे मेघकी-सी श्यामल सुन्दरतावाले! हे मोरपंख और पुष्पोंसे सुशोभित वेषधारी गोपीजनोंके हृदयेश! हे गोवर्धनधारी! वृन्दावन-विहारी! मुरलीधर! हे प्रभो! पधारिये॥ ३॥ हे राधिकाजीको प्रसन्न करनेवाले! कंसको मारनेवाले! सभी निराश्रयोंको आश्रय देनेवाले आपके चरणोंमें हमारा प्रणाम है, हे जनार्दन! पीताम्बरधारी! हे प्रभो! इस मन्द-मन्द वायुवाले कुंजमें पधारिये! पधारिये!! पधारिये!!!॥ ४॥

॥ इति श्रीगोपिकाविरहगीतं सम्पूर्णम्॥

॥ इस प्रकार श्रीगोपिकाविरहगीत सम्पूर्ण हुआ॥

श्रीराधास्तोत्र

उद्धव उवाच

वन्दे राधापदाम्भोजं ब्रह्मादिसुरवन्दितम्।
यत्कीर्तिकीर्तनेनैव पुनाति भुवनत्रयम्॥ १॥
नमो गोलोकवासिन्यै राधिकायै नमो नमः।
शतशृङ्गनिवासिन्यै चन्द्रवत्यै नमो नमः॥ २॥
तुलसीवनवासिन्यै वृन्दारण्यै नमो नमः।
रासमण्डलवासिन्यै रासेश्वर्यै नमो नमः॥ ३॥
विरजातीरवासिन्यै वृन्दायै च नमो नमः।
वृन्दावनविलासिन्यै कृष्णायै च नमो नमः॥ ४॥
नमः कृष्णप्रियायै च शान्तायै च नमो नमः।
कृष्णवक्षःस्थितायै च तत्प्रियायै नमो नमः॥ ५॥
नमो वैकुण्ठवासिन्यै महालक्ष्म्यै नमो नमः।
विद्याधिष्ठातृदेव्यै च सरस्वत्यै नमो नमः॥ ६॥
सर्वैश्वर्याधिदेव्यै च कमलायै नमो नमः।
पद्मनाभप्रियायै च पद्मायै च नमो नमः॥ ७॥
महाविष्णोश्च मात्रे च पराद्यायै नमो नमः।
नमः सिन्धुसुतायै च मर्त्यलक्ष्म्यै नमो नमः॥ ८॥
नारायणप्रियायै च नारायण्यै नमो नमः।
नमोऽस्तु विष्णुमायायै वैष्णव्यै च नमो नमः॥ ९॥
महामायास्वरूपायै सम्पदायै नमो नमः।
नमः कल्याणरूपिण्यै शुभायै च नमो नमः॥ १०॥
मात्रे चतुर्णां वेदानां सावित्र्यै च नमो नमः।
नमो दुर्गविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः॥ ११॥
तेजःसु सर्वदेवानां पुरा कृतयुगे मुदा।
अधिष्ठानकृतायै च प्रकृत्यै च नमो नमः॥ १२॥
नमस्त्रिपुरहारिण्यै त्रिपुरायै नमो नमः।
सुन्दरीषु च रम्यायै निर्गुणायै नमो नमः॥ १३॥
नमो निद्रास्वरूपायै निर्गुणायै नमो नमः।
नमो दक्षसुतायै च नमः सत्यै नमो नमः॥ १४॥
नमः शैलसुतायै च पार्वत्यै च नमो नमः।
नमो नमस्तपस्विन्यै ह्युमायै च नमो नमः॥ १५॥
निराहारस्वरूपायै ह्यपर्णायै नमो नमः।
गौरीलोकविलासिन्यै नमो गौर्यै नमो नमः॥ १६॥

उद्धवजीने कहा—मैं श्रीराधाके उन चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा वन्दित हैं तथा जिनकी कीर्तिके कीर्तनसे ही तीनों भुवन पवित्र हो जाते हैं। गोलोकमें वास करनेवाली राधिकाको बारम्बार नमस्कार। शतशृंगपर निवास करनेवाली चन्द्रवतीको नमस्कार-नमस्कार। तुलसीवन तथा वृन्दावनमें बसनेवालीको नमस्कार-नमस्कार। रासमण्डलवासिनी रासेश्वरीको नमस्कार-नमस्कार। विरजाके तटपर वास करनेवाली वृन्दाको नमस्कार-नमस्कार। वृन्दावनविलासिनी कृष्णाको नमस्कार-नमस्कार॥ १—४॥ कृष्णप्रियाको नमस्कार। शान्ताको पुनः-पुनः नमस्कार। कृष्णके वक्षः-स्थलपर स्थित रहनेवाली कृष्णप्रियाको नमस्कार-नमस्कार। वैकुण्ठवासिनीको नमस्कार। महालक्ष्मीको पुनः-पुनः नमस्कार। विद्याकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीको नमस्कार-नमस्कार। सम्पूर्ण ऐश्वर्योंकी अधिदेवी कमलाको नमस्कार-नमस्कार। पद्मनाभकी प्रियतमा पद्माको बारम्बार प्रणाम। जो महाविष्णुकी माता और पराद्या हैं; उन्हें पुनः-पुनः नमस्कार। सिन्धुसुताको नमस्कार। मर्त्यलक्ष्मीको नमस्कार-नमस्कार॥ ५—८॥ नारायणकी प्रिया नारायणीको बारम्बार नमस्कार। विष्णुमायाको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। वैष्णवीको नमस्कार-नमस्कार। महामाया-स्वरूपा सम्पदाको पुनः-पुनः नमस्कार। कल्याणरूपिणीको नमस्कार। शुभाको बारम्बार नमस्कार। चारों वेदोंकी माता और सावित्रीको पुनः-पुनः नमस्कार। दुर्गविनाशिनी दुर्गादेवीको बारम्बार नमस्कार। पहले सत्ययुगमें जो सम्पूर्ण देवताओंके तेजोंमें अधिष्ठित थीं; उन देवीको तथा प्रकृतिको नमस्कार-नमस्कार। त्रिपुरहारिणीको नमस्कार। त्रिपुराको पुनः-पुनः नमस्कार। सुन्दरियोंमें परम सुन्दरी निर्गुणाको नमस्कार-नमस्कार॥ ९—१३॥ निद्रास्वरूपाको नमस्कार और निर्गुणाको बारम्बार नमस्कार। दक्षसुताको नमस्कार और सत्याको पुनः-पुनः नमस्कार। शैलसुताको नमस्कार और पार्वतीको बार-बार नमस्कार। तपस्विनीको नमस्कार-नमस्कार और उमाको बारम्बार नमस्कार। निराहारस्वरूपा अपर्णाको पुनः-पुनः नमस्कार। गौरीलोकमें विलास

नमः कैलासवासिन्यै माहेश्वर्यै नमो नमः।
निद्रायै च दयायै च श्रद्धायै च नमो नमः॥ १७॥

नमो धृत्यै क्षमायै च लज्जायै च नमो नमः।
तृष्णायै क्षुत्स्वरूपायै स्थितिकर्त्र्यै नमो नमः॥ १८॥

नमः संहाररूपिण्यै महामार्यै नमो नमः।
भयायै चाभयायै च मुक्तिदायै नमो नमः॥ १९॥

नमः स्वधायै स्वाहायै शान्त्यै कान्त्यै नमो नमः।
नमस्तुष्ट्यै च पुष्ट्यै च दयायै च नमो नमः॥ २०॥

नमो निद्रास्वरूपायै श्रद्धायै च नमो नमः।
क्षुत्पिपासास्वरूपायै लज्जायै च नमो नमः॥ २१॥

नमो धृत्यै क्षमायै च चेतनायै नमो नमः।
सर्वशक्तिस्वरूपिण्यै सर्वमात्रे नमो नमः॥ २२॥

अग्नौ दाहस्वरूपायै भद्रायै च नमो नमः।
शोभायै पूर्णचन्द्रे च शरत्पद्मे नमो नमः॥ २३॥

नास्ति भेदो यथा देवि दुग्धधावल्ययोः सदा।
यथैव गन्धभूम्योश्च यथैव जलशैत्ययोः॥ २४॥

यथैव शब्दनभसोर्ज्योतिःसूर्यकयोर्यथा।
लोके वेदे पुराणे च राधामाधवयोस्तथा॥ २५॥

चेतनं कुरु कल्याणि देहि मामुत्तरं सति।
इत्युक्त्वा चोद्धवस्तत्र प्रणनाम पुनः पुनः॥ २६॥

इत्युद्धवकृतं स्तोत्रं यः पठेद् भक्तिपूर्वकम्।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते हरिमन्दिरम्॥ २७॥

न भवेद् बन्धुविच्छेदो रोगः शोकः सुदारुणः।
प्रोषिता स्त्री लभेत् कान्तं भार्याभेदी लभेत् प्रियाम्॥ २८॥

अपुत्रो लभते पुत्रान् निर्धनो लभते धनम्।
निर्भूमिर्लभते भूमिं प्रजाहीनो लभेत् प्रजाम्॥ २९॥

रोगाद् विमुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः॥ ३०॥

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः॥ ३१॥

करनेवाली गौरीको बारम्बार नमस्कार। कैलासवासिनीको नमस्कार और माहेश्वरीको नमस्कार-नमस्कार। निद्रा, दया और श्रद्धाको पुनः-पुनः नमस्कार। धृति, क्षमा और लज्जाको बारम्बार नमस्कार। तृष्णा, क्षुत्स्वरूपा और स्थितिकर्त्रीको नमस्कार-नमस्कार॥ १४—१८॥ संहार-रूपिणीको नमस्कार और महामारीको पुनः-पुनः नमस्कार। भया, अभया और मुक्तिदाको नमस्कार-नमस्कार। स्वधा, स्वाहा, शान्ति और कान्तिको बारम्बार नमस्कार। तुष्टि, पुष्टि और दयाको पुनः-पुनः नमस्कार। निद्रास्वरूपाको नमस्कार और श्रद्धाको नमस्कार-नमस्कार। क्षुत्पिपासा-स्वरूपा और लज्जाको बारम्बार नमस्कार। धृति, चेतना और क्षमाको बारम्बार नमस्कार। जो सबकी माता तथा सर्वशक्तिस्वरूपा हैं; उन्हें नमस्कार-नमस्कार। अग्निमें दाहिका-शक्तिके रूपमें विद्यमान रहनेवाली देवी और भद्राको पुनः-पुनः नमस्कार। जो पूर्णिमाके चन्द्रमामें और शरत्कालीन कमलमें शोभारूपसे वर्तमान रहती हैं; उन शोभाको नमस्कार-नमस्कार॥ १९—२३॥ देवि! जैसे दूध और उसकी धवलतामें, गन्ध और भूमिमें, जल और शीतलतामें, शब्द और आकाशमें तथा सूर्य और प्रकाशमें कभी भेद नहीं है; वैसे ही लोक, वेद और पुराणमें—कहीं भी राधा और माधवमें भेद नहीं है; अतः कल्याणि! चेत करो। सति! मुझे उत्तर दो। यों कहकर उद्धव वहाँ उनके चरणोंमें पुनः-पुनः प्रणिपात करने लगे॥ २४—२६॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस उद्धवकृत स्तोत्रका पाठ करता है; वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें वैकुण्ठमें जाता है। उसे बन्धुवियोग तथा अत्यन्त भयंकर रोग और शोक नहीं होते। जिस स्त्रीका पति परदेश गया होता है, वह अपने पतिसे मिल जाती है और भार्यावियोगी अपनी पत्नीको पा जाता है। पुत्रहीनको पुत्र मिल जाते हैं, निर्धनको धन प्राप्त हो जाता है, भूमिहीनको भूमिकी प्राप्ति हो जाती है, प्रजाहीन प्रजाको पा लेता है, रोगी रोगसे विमुक्त हो जाता है, बँधा हुआ बन्धनसे छूट जाता है, भयभीत मनुष्य भयसे मुक्त हो जाता है, आपत्तिग्रस्त आपद्से छुटकारा पा जाता है और मलिन कीर्तिवाला उत्तम यशस्वी तथा मूर्ख पण्डित हो जाता है॥ २७—३१॥

श्रीराधे! वृषभानुनन्दिनी! मुरलीधर जय नन्दकिशोर!

(पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम' साहित्याचार्य)

(१)

[गोपीकी विरह-भावना]

लख चौरासीके चक्करमें बनकर विषयोंका चेरा,
जाने कितने युगों-युगोंसे भटक रहा है मन मेरा।
दुखद भ्रान्तियोंमें ही मैंने सुखद शान्तिका पथ हेरा,
चाहा था प्रकाश दिनमणिका, मिला रातका अंधेरा।
बल, पौरुष कुछ काम न देता, करो नाथ! करुणाकी कोर!
श्रीराधे! वृषभानुनन्दिनी! मुरलीधर! जय नन्दकिशोर!॥

कबतक मैं निज प्राण-युगलकी पदसेवासे दूर रहूँ?
कारागृहमें बद्ध-सदृश यों विवश रहूँ मजबूर रहूँ?
कैसा परदा पड़ा दृगोंपर अन्धकार-सा है छाया?
श्याम और श्यामाकी सुन्दर कहाँ छिपी वह छबि-छाया?
प्रिया और प्रियतमके सम्मुख कब बोलूँगी करयुग जोर—
'श्रीराधे! वृषभानुनन्दिनी! मुरलीधर! जय नन्दकिशोर!'॥

माना मैंने हुआ कभी है मुझसे महा-महा अपराध,
निरवधि विरह प्रिया-प्रीतमका जिसका है यह दण्ड अबाध।
तो भी हे प्राणेश-युगल! तुम दीनबन्धु अति दयानिधान,
क्षमाशील! निज ओर देख फिर अपना लो, कर क्षमा-प्रदान।
प्रिय-दर्शनकी मधुर-सुधाको तरस रहे ये नयनचकोर,
श्रीराधे! वृषभानुनन्दिनी! मुरलीधर! जय नन्दकिशोर!॥

सूनी लगतीं दसों दिशाएँ पलभरको भी चैन नहीं,
चिन्तामें ही दिन बीते, लगते निशि भी हैं नैन नहीं।
व्यथित प्राण हैं छेद रहा यह विरह शोक बन शूल मुझे,
शान्ति तभी, जब मिले श्याम-श्यामा-चरणोंकी धूल मुझे।
कोमलचित्त कृपालु! कहाँ हो छिपे हुए कर हृदय कठोर,
श्रीराधे! वृषभानुनन्दिनी! मुरलीधर! जय नन्दकिशोर!॥

वृन्दावनकी नवल नागरी! नटवर नागर नँद-नन्दन!
प्राणेश्वरि! प्राणेश! तुम्हें है सदा हमारा अभिवन्दन।
रासेश्वरि! रसरंगिणि! रसमयि! रसिक-शिरोमणि नव रसराज!
आह्लादिनि! सच्चिदानन्द! सुन लो पुकार प्राणोंकी आज।
जयति श्यामघन रसिक चातकी, जय श्यामा मुख चद चकोर!
श्रीराधे! वृषभानुनन्दिनी! मुरलीधर! जय नन्दकिशोर!

(२)

[गोपीकी सेवा-भावना]

साध यही, कब प्रात कुंजसे निर्गत तुम्हें समोद-निहार,
बलिहारी जाऊँ सँवार कर अस्त-व्यस्त सारे शृंगार।
स्वागत हित युग जीवन-धनको पहनाकर शुचि सुन्दर हार,
दृग-अभिराम श्याम-श्यामाकी बोल उठूँ जय, जय-जयकार।
गाऊँ प्रमुदित नाच-नाचकर वनमें मचा-मचाकर शोर।
श्रीराधे! वृषभानुनन्दिनी! मुरलीधर जय नन्दकिशोर!॥

प्राणेश्वरि! निज चरण-किंकरीके कब डाल गलेमें बाँह,
मन्थर गतिसे स्नान-सदनकी ओर चलोगी सहित उछाह?
बिठा स्वर्ण-सिंहासनपर कब सादर तुम्हें निहार-निहार,
स्नान और पूजनके सत्वर संचित कर सारे संभार।
श्रवण सुखद पद तुम्हें सुनाऊँगी अतिशय आनन्दविभोर,
श्रीराधे! वृषभानुनन्दिनी मुरलीधर जय नन्दकिशोर!॥

पद-समीप रख स्वर्णपीठिकाके ऊपर कंचनका थाल,
धोऊँगी कब चरण तुम्हारे कालिन्दीजलसे तत्काल।
निज अलकावलिसे अंचलसे पोंछ पुनः वे चरणसरोज,
स्वर्णपात्रमें रख उनका शृंगार करूँगी मैं हर रोज।
नृत्य करेगा कब गा-गाकर प्रति-क्षण मतवाला मन मोर,
श्रीराधे! वृषभानुनन्दिनी! मुरलीधर जय नन्दकिशोर!॥

मंजु महावरसे रच-रचकर विविध लता-बेलोंके चित्र,
लाऊँगी कब उन चरणोंमें नित नूतन सौन्दर्य विचित्र।
पहना कर मणिमय नूपुर मंजीर आदि फिर विविध प्रकार,
प्रेमसहित पूजूँगी अर्पित कर अनेक अनुपम उपचार।
उर-वीणाके तारोंपर बस यही गूँजता हो सब ओर,
श्रीराधे! वृषभानुनन्दिनी! मुरलीधर जय नन्दकिशोर!॥

उद्वर्तित, सुस्नात, विभूषित तनमें धृत नूतन परिधान,
कर-किसलय, कोमल कपोलमें रम्य रुचिर रचना अम्लान।
चारु चन्द्रिका कुसुम-मालयुत केशपाश कमनीय सँवार,
रूपराशि, लावण्यजलधि तुम परमानन्द-पयोधि अपार।
कब सखियोंके संग चलोगी प्रिय-दर्शन हित वनकी ओर,
श्रीराधे! वृषभानुनन्दनी! मुरलीधर जय नन्दकिशोर!॥

श्रीराधा-माधवकी आरती

श्रीराधिकाजीकी आरती

आरति श्रीवृषभानुललीकी।
सत-चित-आनँद-कन्द-कलीकी ॥ टेक ॥

भयभंजिनि भव-सागर-तारिणि,
पाप-ताप-कलि-कल्मष-हारिणि ,
दिव्यधाम गोलोक-विहारिणि,
जनपालिनि जगजननि भलीकी।
आरति श्रीवृषभानुललीकी ॥ १ ॥

अखिल विश्‍व-आनन्द-विधायिनि,
मंगलमयी सुमंगलदायिनि,
नँदनंदन-पदप्रेम प्रदायिनि,
अमिय-राग-रस रंग-रलीकी।
आरति श्रीवृषभानुललीकी ॥ २ ॥

नित्यानन्दमयी आह्लादिनि,
आनँदघन-आनंद-प्रसाधिनि ,
रसमयि, रसमय-मन-उन्मादिनि,
सरस कमलिनी कृष्ण-अलीकी।
आरति श्रीवृषभानुललीकी ॥ ३ ॥

नित्य निकुंजेश्‍वरि राजेश्‍वरि,
परम प्रेमरूपा परमेश्‍वरि,
गोपिगणाश्रयि गोपिजनेश्‍वरि,
विमल विचित्र भाव-अवलीकी।
आरति श्रीवृषभानुललीकी ॥ ४ ॥

श्रीराधामाधव-युगलकी आरती

आरति राधा-राधावर की।
महाभाव रसराज-प्रवर की ॥ टेक ॥

स्याम बरन पीतांबरधारी।
हेम बरन तन नीली सारी।
सदा परस्पर सुख-संचारी।
नील कमल कर मुरलीधर की।
आरति राधा-राधावर की ॥ १ ॥

चारु चन्द्रिका मन-धन-हारी।
मोर-पिच्छ सुन्दर सिरधारी।
कुंजेश्‍वरि नित कुंजबिहारी।
अधरनि मृदु मुसुकान मधुर की।
आरति राधा-राधावर की ॥ २ ॥

प्रेम दिनेस कामतम-हारी।
रहित सुखेच्छा निज, अविकारी।
आश्रय-विषय परस्पर-चारी।
पावन परम मधुर रसधर की।
आरति राधा-राधावर की ॥ ३ ॥

निज-जन-नेह अमित विस्तारी।
उर पावन रस-संग्रहकारी।
दिव्य सुखद, दुख-दैन्य-विदारी।
भक्त-कमल हित हिय-सरवरकी।
आरति राधा-राधावर की ॥ ४ ॥

श्रीराधामाधवका नित्य-निवास दिव्य गोलोकधाम

(पं० श्रीशिवनाथजी दूबे)

पूर्ववर्ती प्रलयकालमें करोड़ों प्रभाकरकी प्रभाके समान ज्योतिपुंज प्रसरित था। वह ज्योतिपुंज निखिल सृष्टिके नियामक परमात्माका उज्ज्वल तेज तथा अनन्त विश्वका हेतु है। उस तेजके मध्य सुन्दर तीनों लोक स्थित हैं। उन तीनों लोकोंके ऊपर गोलोकधाम है, जो परमात्माकी भाँति दिव्य तथा नित्य है।

वहाँ एक अत्यन्त निर्मल एवं मनोहर सरिता प्रवाहित है, जिसके तटपर मणि, मुक्ता और अनेक प्रकारके बहुमूल्य रत्न बिखरे रहते हैं और उसके दूसरी ओर पचास करोड़ योजन लम्बा, दस करोड़ योजन चौड़ा एवं एक करोड़ योजन ऊँचा विशाल एवं मनोहर पर्वत स्थित है। इस पर्वतकी चोटियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं।

इस गिरीन्द्रके मनोरम शिखरपर दस योजन विस्तृत अत्यन्त कमनीय एवं सुरम्य रासमण्डल है। इसके मध्य एक सहस्र पुष्पोद्यान, एक सहस्र कोटि रत्नमण्डप हैं और चतुर्दिक् सुरतरुकी पंक्तियाँ सुशोभित हैं। वह सुविस्तृत, सुन्दर, समतल और सुचिक्कण है। चन्दन, कस्तूरी, अगर और कुंकुमसे वह सजा रहता है। उसपर दही, लावा, सफेद धान्य और दूर्वादल बिखरे रहते हैं। रेशमी सूतोंसे गुँथे नव-चन्दन-पल्लवोंकी बन्दनवारों और कदली-स्तम्भोंसे वह घिरा है। उत्तम रत्नोंके सारभागसे निर्मित करोड़ों मण्डप और उनमें प्रज्वलित रत्नमय प्रदीप उक्त मण्डलकी नित्य नवीन शोभा बढ़ाते हैं। उनके भीतर अनन्त सौन्दर्य-प्रसाधन प्रस्तुत रहते हैं। वह सम्पूर्ण रास-मण्डल अत्यन्त सुगन्धित सुमनों एवं धूपोंसे सदा सुवासित रहता है।

पर्वतके बाहर विरजा नामकी नदी है। उसके तटपर एक सुन्दर वन है। उसे 'वृन्दावन' कहते हैं। यह वन श्रीप्रिया-प्रियतमकी क्रीड़ाका स्थल है। ये सब तीन करोड़ योजन लंबे-चौड़े सुविस्तृत क्षेत्रमें मण्डलाकार फैले हुए गोलोकधामके अन्तर्गत हैं।

इस धामकी दिव्य भूमि रत्नमयी है। इसके चतुर्दिक् रत्नमय प्राचीर हैं। इसके चार प्रधान द्वार हैं। प्रत्येक द्वारपर असंख्य गोप-रक्षक हैं। इसके भीतर कृष्ण-भृत्य गोपोंके पचास करोड़, कृष्णभक्तोंके सौ करोड़ और कृष्णपार्षदोंके लिये एक-से-एक सुन्दर, नाना प्रकारके रत्नोंसे जटित एक करोड़ आश्रम हैं। इसके अनन्तर श्रीकृष्णकी प्राणप्यारी गोपियों एवं दासियोंके भी अनेक अतिशय सुन्दर एवं सुखद भवन हैं।

इसके आगे एक अत्यन्त विशाल अक्षयवट है। उसका मूल पचास योजन और उसका ऊपरी भाग सौ योजन विस्तीर्ण है। इस वटवृक्षके सहस्रों विशाल स्कन्ध एवं अगणित शाखाएँ हैं। इसमें रत्नमय फल हैं। इस विशाल वटवृक्षकी सघन शीतल छायामें श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके वेषमें अनेक गोपबालकोंका समूह क्रीड़ा करता है।

इससे कुछ ही दूर सिन्दूरी रंगके पत्थरोंसे निर्मित राजमार्ग है, जिसके दोनों ओर इन्द्रनील, पद्मराग प्रभृति रत्नोंसे निर्मित पंक्तिबद्ध अट्टालिकाएँ सुशोभित हैं। ये अट्टालिकाएँ भाँति-भाँतिके सुन्दर सुगन्धित पुष्पोंसे सुसज्जित हैं। गोपांगनाएँ रत्नोंके आभरण धारणकर इन्हीं भवनोंमें क्रीड़ा किया करती हैं।

इसके अनन्तर श्रीकृष्णकी प्राणप्रिया रासरासेश्वरी श्रीराधारानीका अत्यन्त अद्भुत एवं अनुपम सुन्दर महल

है। इसके अत्यन्त विशाल एवं सुन्दर सोलह द्वार हैं। इस विशाल भवनमें एक सौ इतर भवन हैं। इसके चतुर्दिक् विशाल प्रासाद एवं सैकड़ों अद्भुत अलौकिक पुष्प-वाटिकाएँ हैं। श्रीराधारानीके महलके बाहर शृंग पर्वत एवं उसके अनन्तर विरजा नदी है। श्रीकृष्णके स्तवनके लिये देवगण यहाँ आया करते हैं।

अप्राकृत आकाश अथवा परम व्योममें स्थित उस श्रेष्ठ धामको श्रीकृष्णने अपनी योगशक्तिसे धारण कर रखा है। वहाँ आधि, व्याधि, जरा, मृत्यु तथा शोक और भयका नाम नहीं है। वहाँ छहों ऋतुएँ सदा विद्यमान रहती हैं। प्रलयकालमें वहाँ श्रीकृष्ण रहते हैं और सृष्टिकालमें वह गोप-गोपियोंसे भरा रहता है। गोलोकसे नीचे पचास करोड़ योजन दूर दक्षिण भागमें वैकुण्ठ और वाम भागमें शिवलोक है। ये दोनों लोक भी गोलोकके समान ही मनोहर और सुखदायक हैं।

गोलोकके भीतर भी अत्यन्त परमानन्ददायिनी मनोहर ज्योति है। योगीजन योग एवं ज्ञान-दृष्टिसे उसीका चिन्तन करते हैं। वह ज्योति निराकार एवं परात्पर ब्रह्म है। उस ज्योतिमें सजल जलधरकी भाँति श्यामल अंगकान्तिवाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण रत्नसिंहासनपर आसीन हैं। उनके विशाल नेत्र विकसित अरुण कमलके समान लाल एवं मनोहर हैं। मुखारविन्दकी शोभा शरद्की पूर्णिमाके सुधांशुकी छटाको लज्जित करती है। उनकी दो भुजाएँ हैं। एक करकमलमें पीयूषवर्षिणी मुरली विराजित है। उनके परम दिव्य श्रीअंगोंपर पीताम्बर शोभा पाता है और वे अपनी मधुर मुसकानसे सहज ही सबके प्राण और मन मोहे लेते हैं। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्स एवं मस्तकपर उत्तम रत्नसारसे निर्मित अनुपम किरीट जगमगाता रहता है। उनके सम्पूर्ण श्रीअंग चन्दनसे चर्चित एवं कस्तूरी और कुंकुमसे अलंकृत हैं। उनके गलेमें आजानुलम्बिनी वनमाला विराजित है। वे ही परब्रह्म परमात्मा सबके आदिकारण, निर्विकार, परिपूर्णतम, सर्वव्यापी, अविनाशी, सनातन भगवान् हैं।

तन्त्रके मतानुसार गंगाप्रभृति पावनतम सरिताएँ एवं इन्द्रादि देवगण इसी स्थानपर उपस्थित रहते हैं। ब्रह्मवैवर्त-पुराणके अनुसार यहाँ श्रीकृष्ण अपनी पीयूषवर्षिणी वंशी अनेक स्वरोंमें बजाकर सबके मन और प्राण आनन्दित करते हैं और भक्तवत्सला श्रीराधिका भी प्राणप्रिय भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उन श्रीकृष्णके वाम भागमें उपस्थित रहती हैं।

परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्णके इस गोलोककी महिमा अनिर्वचनीय है। योगीन्द्र-मुनीन्द्र ध्यानमें भी इसके दर्शन नहीं कर पाते। जिनके हृदयमें संसारकी अतिशय अनासक्ति एवं श्रीराधाकृष्णके प्रति दृढ़ प्रीति है और जो सांसारिक कामनाओंको त्यागकर 'राधाकृष्ण' के मंगलमय नामका जप करते रहते हैं; उन्हें ही श्रीराधाकृष्णकी कृपासे इस अवाङ्मनसगोचर (वाणी एवं मनसे परे) पावनतम सुखद लोकको प्राप्ति होती है।

कुसुमसरोवरकी मधुर लीला

एक दिन प्रातःकाल श्रीराधाजी अपनी सहेलियोंके साथ पुष्प चयन करनेके लिये कुसुमसरोवरके तटपर उपस्थित हुईं। कुसुमसरोवरके तटपर बेली, चमेली, जूही, कनेर, चंपक आदि विविध प्रकारके पुष्प खिल रहे थे। श्रीराधाजी एक वृक्षकी टहनीमें प्रचुर पुष्पोंको देखकर उस टहनीको हाथसे पकड़कर दूसरे हाथसे पुष्पोंका चयन करने लगीं। इधर कौतुकी श्रीकृष्णने श्रीराधाको यहाँ पुष्प चयन करनेके लिये आती हुई जानकर पहलेसे ही उस वृक्षकी डालपर चढ़कर अपने भारसे उसे नीचे झुका दिया और स्वयं डालपर पत्तोंकी आड़में छिप गये, जिससे श्रीराधाजी उन्हें देख न सकें। श्रीराधाजी पुष्पचयनमें विभोर थीं। उसी समय कृष्ण दूसरी डालपर चले गये, जिससे वृक्षकी डाल काफी ऊपर उठ गयी। श्रीराधाजी भी उस डालको पकड़े हुए ऊपर उठ गयीं। फिर तो वे बचानेके लिये चिल्लाने लगीं। उसी समय श्रीकृष्णने पेड़की डालसे कूदकर डालीमें टंगी हुई श्रीराधाजीको गोदमें पकड़कर उतारा। इधर सखियाँ यह दृश्य देखकर बड़े जोरसे ताली बजाकर हँसने लगीं। श्रीराधाजी श्रीकृष्णके आलिंगनपाशसे मुक्त होकर श्रीकृष्णकी भर्त्सना करने लगीं। [प्रेषक—श्रीरामजी शास्त्री]

श्वेतद्वीप—महागोलोक

(महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज, एम० ए०, डी० लिट्०)

प्राचीन वैष्णव-साहित्यकी आलोचना करनेपर विभिन्न ग्रन्थोंमें श्वेतद्वीपका नाम देखनेमें आता है। पांचरात्र आगम तथा विभिन्न प्राचीन वैष्णव-ग्रन्थोंका विशेषरूपसे अनुसन्धान करनेपर श्वेतद्वीपका थोड़ा-बहुत परिचय मिलता है। प्रसिद्धि है कि नारदजीको श्वेतद्वीपमें नारायणके दर्शन हुए थे। वहाँ उपस्थित होकर नारायणके स्वरूपका दर्शन प्राप्त कर लेनेके बाद उनके मनमें हुआ था कि इस बार सचमुच भगवान्‌के दर्शन मिल गये और इससे उनके हृदयमें प्रसन्नता हुई थी। परंतु नारायणने उनके भ्रमको मिटाते हुए कहा था कि 'नारद! तुमने जिस स्वरूपका दर्शन किया है, वह सत्य नहीं है; वह मायिक है।' ऐसा उन्होंने स्पष्ट कह दिया था—

'माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद।'

अर्थात् देवर्षि नारदने भगवान्‌के जिस रूपका दर्शन किया था, वह भगवान्‌का मायिक रूप था।

श्वेतद्वीपके सम्बन्धमें विभिन्न मत पाये जाते हैं। वर्तमान विद्वत्समाजका मत मैं नहीं मानता। वह प्राचीन विचारके अनुरूप नहीं है। इस प्रसंगमें स्वर्गीय सर व्रजेन्द्रनाथ शीलके रोमनगरमें एकत्रित दार्शनिकोंकी उपस्थितिमें प्रकाशित एक व्याख्यानमें इस सम्बन्धमें एक मत प्रचरित हुआ था। वह लौकिक दृष्टिके ऊपर आधारित है। परंतु हमारे देशमें भी कभी-कभी वैष्णव-सम्प्रदायोंमें मतभेद देखनेमें आता है। अधिकांश लोगोंकी धारणा है कि श्वेतद्वीप 'गोलोकधाम' का ही दूसरा नाम है। इस महाद्वीपमें साक्षात्‌रूपमें भी उपस्थित हुआ जा सकता है तथा क्रममार्गका अवलम्बन करके भी उपस्थित हुआ जा सकता है। श्वेतद्वीप या गोलोक भगवत्प्रेम या आनन्द-आस्वादनका मुख्य स्थान है। जो लोग क्रममार्गसे इस स्थानमें प्रवेश करते हैं, वे वैकुण्ठ भेद करके अर्थात् वैकुण्ठका ऐश्वर्य और आनन्द आस्वादन करनेके बाद इस स्थानमें प्रवेश कर पाते हैं। जो लोग अधिक भाग्यवान् हैं, वे क्रममार्गका आश्रय लिये बिना ही श्वेतद्वीपमें प्रवेश करते हैं। श्वेतद्वीप पांचरात्र आगमके अनुसार चतुरस्त्र (चौकोर) है।

महाभारतमें जो श्वेतद्वीपका वर्णन है, अर्थात् जहाँ नारदजी उपस्थित हुए थे, वह मूल श्वेतद्वीपका छायामात्र जान पड़ता है; क्योंकि मूल श्वेतद्वीप द्विभुज नरदेह-रूप श्रीकृष्णकी विहारभूमि है। इसी कारण इसको गोलोकका ही दूसरा नाम माना जाता है। परंतु नारदजी जहाँ गये थे, उसके अधिष्ठाता थे—चतुर्भुज नारायण। वैष्णव सम्प्रदायविशेषकी दृष्टिमें नारायणमूर्ति श्रीकृष्णमूर्तिका विलास है, ठीक इसी प्रकार उनका आभासस्वरूप श्वेतद्वीप मूल श्वेतद्वीपकी छायामात्र है।

यह जो चतुरस्त्र श्वेतद्वीपकी बात कही गयी है, इसके भीतर एक और चतुरस्त्र है। उसका नाम है—महावृन्दावन। इस महावृन्दावनके मध्यमें सहस्त्रदल कमलके आकारमें एक भूमि देखी जाती है, उसका नाम है—गोकुल। उसके ठीक मध्य-स्थलमें अर्थात् कर्णिकामें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका निजधाम विराजमान है। महावृन्दावन और श्वेतद्वीपके मध्यस्थलमें असंख्य दिव्यलोक समुद्रमध्यस्थित द्वीपपुंजोंके समान विराजमान हैं। ये लोक अनन्त वैचित्र्यसे पूर्ण हैं। वहाँके व्यक्ति भी विचित्र प्रकृतिसम्पन्न हैं। इन सब लोकोंमें प्रत्येक ही एक प्रकारके 'गोलोक' कहलाते हैं। अर्थात् 'महागोलोक' के अन्तर्गत ये सब खण्ड-गोलोकस्वरूप हैं। ज्ञात होता है कि हमारे देशके मध्य-युगके संत लोग इस प्रकारके आनन्दमय द्वीपोंका पता पा चुके थे। गोलोकधामके मध्यबिन्दुमें भगवान्‌का महासिंहासन विराजमान है, जहाँ श्रीराधा-कृष्णके युगलस्वरूपके दर्शन होते हैं। माथुर-मण्डल अर्थात् गोलोक नामक श्वेतद्वीपके भीतर मण्डलाकार असंख्य पुर या नगर हैं। प्रत्येक नगरके साथ गोकुलका सम्पर्क वर्तमान है।

व्रजमण्डल [मथुरा-वृन्दावन]—एक परिचय

व्रजमण्डल (मथुरा-वृन्दावन)-माहात्म्य

इतिहास-पुराणोंमें मथुराके चार नाम आते हैं—मधुपघ्न, मधुपुरी, मधुरा तथा मथुरा। सबोंका सम्बन्ध मधुदैत्यसे है, जिसे मारकर शत्रुघ्नजीने ऋषियोंका क्लेश दूर किया था। भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मस्थली तथा लीलाभूमि होनेसे इसका माहात्म्य अनन्त है। वाराहपुराणमें भगवान्के वचन हैं—

न विद्यते च पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे।
समानं मथुराया हि प्रियं मम वसुन्धरे॥
सा रम्या च सुशस्ता च जन्मभूमिस्तथा मम।

(१५२।८-९)

'पृथ्वी! पाताल, अन्तरिक्ष (भूमिसे ऊपर स्वर्गादि-लोक) तथा भूलोकमें मुझे मथुराके समान कोई भी प्रिय (तीर्थ) नहीं है। वह अत्यन्त रम्य, प्रशस्त मेरी जन्मभूमि है।'

महामाघ्यां प्रयागे तु यत् फलं लभते नरः॥
तत् फलं लभते देवि मथुरायां दिने दिने।

(१५२।१३-१४)

'महामाघी (माघमासमें जब पूर्णिमाको मघा नक्षत्र हो)-के दिन प्रयागमें जो स्नानादिका फल है, वह मथुरामें प्रतिदिन सामान्यतः प्राप्त होता रहता है।'

पूर्णं वर्षसहस्त्रं तु वाराणस्यां हि यत् फलम्।
तत् फलं लभते देवि मथुरायां क्षणेन हि॥

(१५२।१५)

हजार वर्ष काशीवासका जो फल है, वह मथुराके एक क्षण वासका है।

कार्तिक्यां चैव यत्पुण्यं पुष्करे तु वसुन्धरे।
तत्फलं लभते देवि मथुरायां जितेन्द्रियः॥

(१५२।१६)

'वसुन्धरे! कार्तिकी (कार्तिककी पूर्णिमा)-को जो पुष्करमें वसनेका पुण्य है, वही जितेन्द्रियको मथुरावाससे प्राप्त होता है।'

विष्णुपुराण (६।८)-में यहाँ जन्माष्टमी, यमद्वितीया तथा ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशीके स्नान तथा भगवद्दर्शनका विपुल माहात्म्य बताया गया है।

व्रजमण्डलके अन्तर्गत १२ वन हैं—मधुवन, कुमुदवन, काम्यकवन, बहुलवन, भद्रवन, खादिरवन, श्रीवन, महावन, लोहजंघवन, बिल्ववन, भाण्डीरवन तथा वृन्दावन। इन सभी वनोंका विपुल माहात्म्य है, फिर वृन्दावनका तो कहना ही क्या! इसे पृथ्वीका परमोत्तम तथा परम गुप्त भाग कहा गया है—

गुह्याद् गुह्यतमं रम्यं मध्यं वृन्दावनं भुवि।
अक्षरं परमानन्दं गोविन्दस्थानमव्ययम्॥

(पद्मपुराण, पातालखण्ड ६९।७१)

यह साक्षात् भगवान्का शरीर है, पूर्ण ब्रह्मसुखका आश्रय है। यहाँकी धूलिके स्पर्शसे भी मोक्ष होता है, अधिक क्या कहा जाय—

गोविन्ददेहतोऽभिन्नं पूर्णब्रह्मसुखाश्रयम्।
मुक्तिस्तत्र रजःस्पर्शात् तन्माहात्म्यं किमुच्यते॥

(पद्म० पा० ६९।७२)

कहा जाता है कि एक बार मुक्तिने भगवान् माधवसे पूछा—'केशव! मेरी मुक्तिका उपाय बतलाओ।' प्रभुने कहा, 'बस जब व्रज-रज तेरे सिरपर उड़कर पड़ जाय तब तू अपनेको मुक्त हुआ समझ'—

मुक्ति कहै गोपाल सों, मेरी मुक्ति बताय।
ब्रज-रज उड़ि माथे परे, मुक्ति मुक्त हो जाय॥

धन्य है व्रज-रजकी महिमा!

मथुरा-वृन्दावन

मथुरा-वृन्दावनका अर्थ है पूरा माथुरमण्डल या व्रजमण्डल, जिसका विस्तार ८४ कोस बताया गया है। मथुरा व्रजके केन्द्रमें है। व्रजके तीर्थोंमेंसे कहीं जाना हो, प्रायः मथुरा आना पड़ता है। मथुराके चारों ओर व्रजके तीर्थ हैं। मथुरासे विभिन्न दिशाओंमें उनकी अवस्थिति होनेके कारण प्रायः एकसे दूसरे तीर्थ जानेके लिये मथुरा होकर जाना पड़ता है।

मथुराका प्राचीन नाम मधुरा या मधुवन है। भगवान् श्रीकृष्णने तो द्वापरके अन्तमें यहाँ अवतार लिया; किंतु यह क्षेत्र तो अनादिकालसे परम पावन माना जाता है। सृष्टिके प्रारम्भमें ही स्वायम्भुव मनुके पौत्र ध्रुवको देवर्षि नारदजीने मधुवनमें जाकर भगवदाराधन करनेका उपदेश दिया और बताया—**'पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः।'** परम पवित्र मधुवनमें श्रीहरि नित्य सन्निहित रहते

हैं। ध्रुवने यहाँ तपस्या की और यहीं उन्हें भगवद्दर्शन हुआ।

द्वापरमें यह स्थान शूरसेनवंशीय क्षत्रियोंकी राजधानी बना और यहीं श्रीकृष्णचन्द्रने अवतार ग्रहण किया।

मथुरामें श्रीयमुनाजीके किनारे २४ मुख्य घाट हैं, जिनमें बारह घाट विश्रामघाटसे उत्तर और ग्यारह दक्षिण हैं। उनके नाम हैं—१. विश्रामघाट, २. प्रयागघाट, ३. कनखल, ४. बिन्दुघाट, ५. बंगालीघाट, ६. सूर्यघाट, ७. चिन्तामणिघाट, ८. ध्रुवघाट, ९. ऋषिघाट, १०. मोक्षघाट, ११. कोटिघाट, १२. बुद्धघाट—ये दक्षिणकी ओर हैं। उत्तरके घाट हैं—१३. गणेशघाट, १४. मानसघाट, १५. दशाश्वमेधघाट, १६. चक्रतीर्थघाट, १७. कृष्णगंगाघाट, १८. सोमतीर्थघाट, १९. ब्रह्मलोकघाट, २०. घण्टाभरणघाट, २१. धारापतनघाट, २२. संगमतीर्थघाट, २३. नवतीर्थघाट, २४. असीकुण्डाघाट।

विश्रामघाट इनमें मुख्य घाट है। यहाँ कंसवधके पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्रने विश्राम किया था। यहाँ सायंकालीन यमुनाजीकी आरती दर्शनीय होती है। यम-द्वितीयाको यहाँ स्नानार्थियोंका मेला होता है। घाटके पास ही श्रीवल्लभाचार्यजीकी बैठक है। ध्रुवघाटके पास ध्रुव-टीलेपर छोटे मन्दिरमें ध्रुवजीकी मूर्ति है। असीकुण्डाघाट वाराहक्षेत्र कहा जाता है। यहाँ वाराहजी तथा गणेशजीकी मूर्तियाँ हैं। मथुराके चारों ओर चार शिवमन्दिर हैं—पश्चिममें भूतेश्वर, पूर्वमें पिप्पलेश्वर, दक्षिणमें रंगेश्वर और उत्तरमें गोकर्णेश्वर। मानिक चौकमें नीलवाराह तथा श्वेतवाराहकी मूर्तियाँ हैं। प्राचीन मथुरा नगर वहाँ था, जहाँ आज केशवदेवका कटरा है। वहाँ जन्मभूमि-स्थानपर वज्रनाभका बनवाया श्रीकेशवदेवका मन्दिर था, जिसे तुड़वाकर औरंगजेबने मसजिद बनवा दी। मसजिदके पीछे दूसरा केशवदेव-मन्दिर बन गया है। मन्दिरके पास पोतराकुण्ड नामक विशाल कुण्ड है। इसके पास ही कृष्ण-जन्मभूमिका मन्दिर है। यहाँ एक पुराना गंगाजीका मन्दिर भी है। इसी ओर भूतेश्वर महादेवके पास कंकाली टीलेपर कंकाली देवीका मन्दिर है। इसके आगे बलभद्रकुण्ड तथा बलदेवजी और जगन्नाथजीके मन्दिर हैं।

श्रीद्वारिकाधीशजी—यह नगरका सबसे प्रसिद्ध भगवद्विग्रह है। इसकी सेवा-पूजा वल्लभ-सम्प्रदायके अनुसार होती है।

गतश्रमनारायण-मन्दिर—द्वारिकाधीश-मन्दिरके दाहिनी ओर यह मन्दिर है। इसमें श्रीकृष्ण-मूर्तिके एक ओर श्रीराधा तथा दूसरी ओर कुब्जाकी मूर्ति है।

वाराह-मन्दिर—द्वारिकाधीश-मन्दिरके पीछे यह मन्दिर है।

गोविन्दजीका मन्दिर—वाराह-मन्दिरसे कुछ आगे यह मन्दिर है। इसके आगे स्वामीघाटपर विहारीजीका मन्दिर है। इसी घाटपर गोवर्धननाथजीका विशाल मन्दिर है।

श्रीरामजीद्वारेमें श्रीराममन्दिर है और वहीं श्रीगोपालजीकी अष्टभुजी मूर्ति है। इसीके पास कीलमठ गलीमें स्वामी कीलजीकी गुफा है। इनका बेनीमाधव-मन्दिर प्रयागघाटपर है। तुलसी-चौतरेपर श्रीनाथजीकी बैठक है। आगे चौबच्चामें वीरभद्रेश्वर-मन्दिर है। वहीं शत्रुघ्नजीका मन्दिर है। इसके पास ही गोपाल-मन्दिर है। होली दरवाजेके पास वज्रनाभद्वारा स्थापित कंस-निकन्दनमन्दिर है। आगे दाऊजीका मन्दिर है। महोलीकी पौरमें पद्मनाभजीका मन्दिर है। ये भी वज्रनाभद्वारा स्थापित हैं। डोरीबाजारमें गोपीनाथजीका मन्दिर है। घीयामण्डीमें दो राममन्दिर हैं। उनके आगे दीर्घविष्णुका मन्दिर है। सीतलापाइसामें मथुरा देवी और गजापाइसामें दाऊजीके एक चरणका चिह्न है। रामदास-मंडीमें मथुरानाथ तथा मथुरानाथेश्वर शिवके प्राचीन मन्दिर हैं। बंगालीघाटपर वल्लभ-सम्प्रदायके चार मन्दिर हैं। ध्रुवटीलेपर ध्रुवजीके चरण-चिह्न हैं। पहले श्रीनिम्बार्काचार्यके पूज्य श्रीसर्वेश्वर और विश्वेश्वर शालग्राम यहीं थे, जो अब क्रमशः सलेमाबाद और छत्तीसगढ़में विराजमान हैं। सप्तर्षि-टीलेपर सप्तर्षियों तथा अरुन्धतीजीकी मूर्तियाँ हैं। गऊघाटपर श्रीराधा-विहारीजीका मन्दिर है। आगे मथुराके पश्चिममें टीलेपर महाविद्यादेवीका मन्दिर है। वहाँ नीचे एक कुण्ड है, पशुपति महादेवका मन्दिर है और सरस्वती-नाला है। उसके आगे सरस्वती-कुण्ड और सरस्वती-मन्दिर हैं। आगे चामुण्डा-मन्दिर है। यह चामुण्डा-मन्दिर ५१ शक्तिपीठोंमें एक है। यहाँ सतीके केश गिरे थे। यहाँसे मथुरा लौटते समय अम्बरीष-टीला मिलता है,

जहाँ अम्बरीषने तप किया था।

मथुरा-परिक्रमा

मथुरां समनुप्राप्य यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणाम्।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥

(वाराहपुराण १५९। १४)

जो मथुराके प्राप्त होनेपर उसकी प्रदक्षिणा करता है, उसने सातों द्वीपवाली पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर ली।

प्रत्येक एकादशी तथा अक्षयनवमीको मथुरा-परिक्रमा होती है। देवशयनी तथा देवोत्थानी एकादशीको मथुरा-वृन्दावनकी सम्मिलित परिक्रमा की जाती है। वैशाख-शुक्ला पूर्णिमाको भी रात्रिमें परिक्रमा की जाती है, जिसे 'वन-विहार' कहते हैं। परिक्रमामें मथुराके सब मुख्य दर्शनीय स्थान आ जाते हैं।

वृन्दावन

मथुरासे ६ मील उत्तर वृन्दावन है। किंतु रेलसे जानेपर उसकी दूरी ९ मील होती है। वृन्दावनकी परिक्रमा ४ मीलकी है। बहुत-से लोग प्रतिदिन परिक्रमा करते हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कथा है कि सत्ययुगमें महाराज केदारकी पुत्री वृन्दाने यहीं श्रीकृष्णको पतिरूपमें पानेके लिये दीर्घकालतक तपस्या की थी। श्यामसुन्दरने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया। श्रीराधा-कृष्णकी निकुंज-लीलाओंकी प्रधान रंगस्थली वृन्दावनकी अधिष्ठात्री श्रीवृन्दादेवी हैं। इसलिये भी इसे वृन्दावन कहते हैं।

दर्शनीय स्थान

परिक्रमा-क्रममें पहले यमुनातटपर कालियह्रद आता है, जहाँ नन्दनन्दनने कालिय नागको नाथा था। वहाँ कालियमर्दनकर्ता भगवान्‌की मूर्ति है। उसके आगे युगलघाट है, जहाँ युगलकिशोरजीका मन्दिर है। इसके पास ही मदनमोहनजीका मन्दिर है। श्रीसनातन गोस्वामीजीको प्राप्त मदनमोहनजी तो अब करौली (राजस्थान)-में विराजमान हैं। अब मन्दिरमें मदनमोहनजीकी दूसरी मूर्ति है।

इसके पश्चात् महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवके स्नेहपात्र अद्वैताचार्य गोस्वामीकी तपोभूमि अद्वैतवट है। वहीं अष्टसखियोंका मन्दिर है। उससे आगे स्वामी श्रीहरिदासजीके आराध्य श्रीबाँकेविहारीजीका मन्दिर है। इस मन्दिरकी अनेक विशेषताएँ हैं। श्रीविहारीजीके दर्शन लगातार नहीं होते, बीच-बीचमें पर्दा आ जाता है। केवल अक्षय तृतीयाको उनके चरणोंके दर्शन होते हैं। केवल शरत्पूर्णिमाको वे वंशी धारण करते हैं और केवल एक दिन श्रावण शुक्ला ३ को झूलेपर विराजमान होते हैं।

आगे श्रीहितहरिवंशजीके आराध्य श्रीराधावल्लभजीका मन्दिर है। फिर दानगली, मानगली, यमुनागली, कुंजगली तथा सेवाकुंज हैं। सेवाकुंजमें रंगमहल नामक छोटा मन्दिर है, जिसमें श्रीराधा-कृष्णके चित्रपट हैं। इसमें ललिता-बाग है। सेवाकुंजके सम्बन्धमें यह प्रसिद्ध है कि वहाँ रात्रिमें प्रतिदिन साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णकी रास-लीला होती है। इसीलिये वहाँ रात्रिमें कोई रहने नहीं पाता। पशु-पक्षीतक सायंकाल होते-होते वहाँसे चले जाते हैं।

शृंगारवटमें श्रीराधिकाजीकी बैठक है। लोई-बाजारमें सवा मनके शालग्रामजीका मन्दिर है। आगे साह-विहारीजीका संगमरमरका मन्दिर है। साह-विहारीजी लखनऊके नगरसेठ लाला कुंदनलालजी फुंदनलालजीके आराध्य हैं—जो अपनी अपार सम्पत्तिको त्यागकर वृन्दावनमें अत्यन्त विरक्तरूपमें रहने लगे थे और ललितकिशोरी एवं ललितमाधुरीके नामसे जिनके सुमधुर पद उपलब्ध हैं। उसके पास निधिवन है, जहाँ स्वामी हरिदासजी विराजते थे और जहाँ श्रीबाँकेविहारीजी प्रकट हुए। श्रीबाँकेविहारीजीरूप परम निधिके प्राकट्यका स्थल होनेसे ही इसे निधिवन कहते हैं।

निधिवनके पास ही श्रीराधारमणजीका मन्दिर है। ये श्रीश्रीचैतन्यदेवके कृपापात्र श्रीगोपालभट्टजीके आराध्य हैं। यह श्रीविग्रह शालग्राम-शिलासे स्वत: प्रकट हुआ है। इसके आगे श्रीगोपीनाथजीका मन्दिर है। श्रीगोपीनाथजीकी प्राचीन मूर्ति मुसलमानी उपद्रवके समय जयपुर चली गयी और वहीं विराजमान है। अब दूसरा श्रीविग्रह है।

वंशीवटके पास श्रीगोकुलानन्द-मन्दिर है। वंशीवटमें श्रीराधाकृष्णके चरण-चिह्न हैं। उसके आगे महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीकी बैठक है। वहीं आगे श्रीगोपेश्वरनाथ महादेवका मन्दिर है। इनके दर्शनके बिना वृन्दावन-यात्रा पूर्ण नहीं मानी जाती है।

आगे श्रीलालाबाबूका मन्दिर है। इसके पीछेकी ओर जगन्नाथघाटपर श्रीजगन्नाथजीका मन्दिर है। यहाँकी मूर्ति कलेवर-परिवर्तनके समय श्रीजगन्नाथपुरीसे लायी गयी थी।

लालाबाबूके मन्दिरके पास सम्मुख दिशामें ब्रह्मकुण्ड

है। यहीं श्रीकृष्णचन्द्रने गोपोंको ब्रह्म-दर्शन कराया था। इससे लगा हुआ श्रीरंगजीका मन्दिर है। दक्षिण भारतकी शैलीका, श्रीरामानुज-सम्प्रदायका यह विशाल एवं भव्य मन्दिर है। इस मन्दिरके उत्सवोंमेंसे पौषका ब्रह्मोत्सव तथा चैत्रका वैकुण्ठोत्सव मुख्य है। श्रीरंगजीके मन्दिरके सम्मुख श्रीगोविन्ददेवजीका प्राचीन मन्दिर है। श्रीगोविन्दजी वज्रनाभद्वारा स्थापित थे, जिनकी मूर्ति श्रीरूपगोस्वामीको मिली थी। यवन-उपद्रवके समय यह मूर्ति जयपुर चली गयी और वहाँके राजमहलमें विराजमान है। इसके पीछे अब गोविन्द-देवजीका दूसरा मन्दिर है। श्रीरंगजीके मन्दिरके पीछे ज्ञानगुदड़ी स्थान है। यह विरक्त महात्माओंकी भजनस्थली है, अब वहाँ एक श्रीराममन्दिर है और टट्टीस्थानका मन्दिर है। कहते हैं उद्धवजीका श्रीगोपीजनोंके साथ संवाद यहीं हुआ था।

मथुराकी सड़कपर जयपुरके महाराजका बनवाया विशाल मन्दिर है। उसके सामने तड़ासके राजा वनमाली-दासका बनवाया मन्दिर है। इसे 'जमाई बाबू' का मन्दिर कहते हैं। राजाकी पुत्री इन्हें अपना पति मानती थी। अविवाहित अवस्थामें ही उसका देहान्त हो गया था।

वृन्दावन मन्दिरोंका नगर है! वहाँ प्रत्येक गलीमें, घर-घरमें मन्दिर हैं। उन सब मन्दिरोंका वर्णन कर पाना कठिन है। कुछ मुख्य मन्दिरोंकी ही चर्चा यहाँ की गयी है।

यह स्मरण रखनेकी बात है कि मथुरा-वृन्दावनपर विधर्मियोंके आक्रमण बार-बार हुए हैं। प्राचीनकालसे हूण, शक आदि जातियाँ इसे नष्ट करती रही हैं। जैनोंमें भी जब प्रबल संकीर्णताका ज्वार आया था—मथुरा उनसे आक्रान्त हुई थी। उसके पश्चात् तीन बार यवनोंने इस पुनीत तीर्थको ध्वस्त किया। इसीका परिणाम यह है कि यहाँ प्राचीन मन्दिर रह नहीं गये हैं। वृन्दावनमें ६०० वर्षसे पुराना कोई मन्दिर नहीं है। व्रजमें प्राचीन तो भूमि है, श्रीयमुनाजी हैं और गिरिराज गोवर्धन हैं।

गोकुल

यह स्थान मथुरासे ६ मील यमुनाके दूसरे तटपर है।

महावन

यह गोकुलसे एक मील दूर है। यहाँ नन्दभवन है।

बलदेव

महावनसे ६ मीलपर यह गाँव है। यहाँ दाऊजीका प्रसिद्ध मन्दिर है। क्षीरसागर नामक सरोवर है।

नन्दगाँव

मथुरासे यह स्थान २९ मील दूर है। यहाँ एक पहाड़ीपर श्रीनन्दजीका मन्दिर है—जिसमें नन्द, यशोदा, श्रीकृष्ण-बलराम, ग्वालबाल तथा श्रीराधाजीकी मूर्तियाँ हैं। यहाँ नीचे पामरी-कुण्ड नामक सरोवर है।

बरसाना

यह स्थान मथुरासे ३५ मील दूर है। इसका प्राचीन नाम बृहत्सानु, ब्रह्मसानु या वृषभानुपुर है। यह पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी ह्लादिनीशक्ति एवं प्राणप्रियतमा नित्यनिकुंजेश्वरी श्रीराधाकिशोरीकी पितृभूमि है। यह लगभग दो सौ फुट ऊँचे एक पहाड़की ढालपर बसा हुआ है, जो दक्षिण-पश्चिमकी ओर चौथाई मीलतक चला गया है। इसी पहाड़ीका नाम बृहत्सानु या ब्रह्मसानु है, जिस प्रकार नन्दगाँवकी पहाड़ीको शिवजीका एवं गिरिराज गोवर्द्धनको विष्णुका स्वरूप माना गया है, वैसे ही इस पहाड़ीको साक्षात् ब्रह्माजीका स्वरूप मानते हैं, इसके चार शिखर ही ब्रह्माजीके चार मुख माने गये हैं। इन्हीं शिखरोंमेंसे एकपर मोरकुटी (जहाँ श्यामसुन्दर मोर बनकर श्रीराधाकिशोरीको रिझानेके लिये नाचे थे), दूसरेपर मानगढ़ (जहाँ श्यामसुन्दरने मानवती किशोरीको मनाया था), तीसरेपर विलासगढ़ (जो श्रीमतीका विलासगृह है) तथा चौथे शिखरपर दानगढ़ है, जहाँ प्रिया-प्रियतमकी दानलीला सम्पन्न हुई थी और श्यामसुन्दरने श्रीकिशोरी तथा उनकी सखियोंका दधि-माखन लूट-लूटकर खाया था और अपने ग्वालबालोंको खिलाया था। बरसानेके दूसरी ओर एक छोटी पहाड़ी और है, इन दोनों पहाड़ोंकी द्रोणी (खोह)-में बरसाना ग्राम बसा है। दोनों पर्वत जहाँ मिलते हैं, वहाँ एक ऐसी तंग घाटी है कि अकेला मनुष्य भी उसमेंसे कठिनाईसे निकल सकता है। दोनों पहाड़ोंका अंगरूप नावके से आकारका एक ही पत्थर है, जो धरतीपर जम रहा है। इसकी विचित्रता देखते ही बनती है। यहीं श्यामसुन्दरने गोपियोंको घेरा था। इसीको साँकरी खोर (संकीर्ण पथ) कहते हैं। यहाँ फाल्गुन शुक्ला अष्टमी, नवमी एवं दशमीको होलीकी लीला होती है।

पहाड़पर कई मन्दिर हैं, जिनमें प्रधान मन्दिर सेठ हरगुलालजी बेरीवालेके द्वारा पुनर्निर्मित श्रीलाड़िलीजीका

प्राचीन एवं विशाल मन्दिर है। सीढ़ियोंपर चढ़कर जब मन्दिरको जाते हैं, तब रास्तेमें वृषभानुजीके पिता महीभानुजीका मन्दिर मिलता है। सीढ़ियोंके नीचे पर्वतके मूलमें दो मन्दिर और हैं—एक राधाकिशोरीकी प्रधान अष्टसखियों (ललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रंगदेवी, तुंगविद्या एवं सुदेवी)-का है तथा दूसरा वृषभानुजीका है, जिसमें वृषभानुजीकी बड़ी विशाल मूर्ति है, एक ओर श्रीकिशोरी सहारा दिये खड़ी हैं, दूसरी ओर उनके बड़े भाई तथा श्यामसुन्दरके प्रिय सखा श्रीदामा खड़े हैं।

यहाँ भानोखर (भानुपुष्कर) नामका सुन्दर पक्का तालाब है, जो मूलतः वृषभानुजीका बनाया हुआ कहा जाता है। उसके समीप ही राधाकिशोरीकी माता श्रीकीर्तिदाजीके नामसे कीर्तिकुण्ड नामका तालाब बना हुआ है। भानोखरके किनारे एक जलमहल है, जिसके दरवाजे सरोवरमें जलके ऊपर खुले हुए हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ दो सरोवर और हैं—एकका नाम मुक्ताकुण्ड और दूसरेका पीरी पोखर (प्रियाकुण्ड)। पीरी पोखरमें कहते हैं प्रियाजी अपने श्रीअंगोंका उद्वर्तन करके स्नान करती थीं। यहाँ यह भी प्रसिद्ध है कि श्रीकिशोरीने (विवाहके पीछे) अपने पीले हाथ यहीं धोये थे। इसीसे इसका नाम पीरी (पीली) पोखर हो गया। पास ही चिकसौली (चित्रशाला) ग्राम है।

गोवर्धन

मथुरासे गोवर्धन १६ मील और बरसानेसे १४ मील दूर है। गोवर्धन एक छोटी पहाड़ीके रूपमें है, जिसकी लम्बाई लगभग ४ मील है। ऊँचाई बहुत थोड़ी है, कहीं-कहीं तो भूमिके बराबर है। गिरिराज गोवर्धनकी परिक्रमा बराबर होती है। कुल परिक्रमा १४ मीलकी है। बहुत-से लोग दण्डवत् करते हुए परिक्रमा करते हैं। एक स्थानपर १०८ दण्डवत् करके तब आगे बढ़ना और इसी क्रमसे लगभग तीन वर्षमें परिक्रमा पूरी करना यहाँ बहुत बड़ा तप माना जाता है।

गोवर्धन बस्ती प्रायः मध्यमें है। उसमें मानसी गंगा नामक एक बड़ा सरोवर है। परिक्रमा-मार्गमें गोविन्दकुण्ड, राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, कुसुमसरोवर आदि अनेक सुन्दर सरोवर मिलते हैं। इन सब पवित्र तीर्थोंकी नामावली व्रज-परिक्रमा-वर्णनमें दी जा रही है।

व्रज-परिक्रमा

व्रज ८४ कोस कहा जाता है। प्रतिवर्ष वर्षा-शरद्में कई परिक्रमा-मण्डलियाँ व्रज-परिक्रमाके लिये निकलती हैं। इनमें एक यात्रा 'रामदल' के नामसे विख्यात है। इस दलमें प्रायः पुरुष एवं साधु होते हैं। १६ दिनमें यह दल परिक्रमा कर आता है। दूसरी यात्रा वल्लभकुलके गोस्वामियोंकी है। इसमें डेढ़ महीनेके लगभग लगता है। इसमें गृहस्थ अधिक होते हैं। फाल्गुनमें भी एक यात्रा होती है, इसमें भी गृहस्थ अधिक होते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलाओंसे सम्बन्धित अनेक तीर्थस्थल व्रजके परिक्रमा-पथमें आते हैं, जिनमें कतिपय प्रमुख स्थलोंका यहाँ क्रमशः उल्लेख किया जा रहा है। व्रजक्षेत्रमें मधुवन, तालवन (धेनुकासुरवधस्थल)-दतियागाँव (दन्तवक्रवधस्थल), पूतनाकी वासभूमि—खेचरीगाँव, राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, अड़ींग (अरिष्टासुरवधस्थान), ललितादि सखियोंके कुण्ड, कुसुमसरोवर, गोवर्धन, जमनाउतो गाँव (यमुनानिकुंज तथा कुम्भनदासजीका गाँव), पारासौली (वल्लभमतमें आदि वृन्दावन), श्यामढाक, जतीपुरा, रुद्रकुण्ड, निम्बग्राम (निम्बार्काचार्यका जन्मस्थान), आदि बदरी, कामवन (काम्यकवन), कनवारोगाँव (राम-कृष्णका कर्णवेध-स्थल), ऊँचोगाँव, बरसाना, गह्वरवन, प्रेमसरोवर, संकेत (राधा-कृष्णका मिलनस्थान), नन्दगाँव, सीपरसों (यहीं श्रीकृष्णने गोपांगनाओंको आश्वस्त किया था—मैं परसों आ जाऊँगा), करहला (ललिताजीकी जन्मभूमि और रासलीलाके पुनः समारम्भकी स्थली), रासौली गाँव, दहगाँव, चीरगाँव (चीरहरणलीलाका स्थान), वत्सवन (ब्रह्माजीको यहीं मोह हुआ था), अक्रूरघाट, भतरौड (द्विजपत्नियोंपर यहीं कृपा की थी), वृन्दावन, मँड्यारी (यहीं मुंजवनमें दावाग्निपान किया था), भाण्डीरवन (श्रीराधा-कृष्णकी विवाह-स्थली), माँटगाँव, खेलनवन, बृहद्वन, ब्रह्माण्डघाट (मृद्भक्षण-लीला) महावन, गोकुल, रावल (श्रीराधाजीका ननिहाल, जहाँ उनका जन्म भी हुआ था।) तथा जुरहरा—ये प्रमुखतम स्थान माने जाते हैं, जिनका श्रीराधा एवं श्रीकृष्णकी लीलाओंसे विशेष सम्बन्ध है। यथार्थमें तो समग्र व्रजभूमि ही भगवद्धाम है, जिसका कण-कण अपरिमित महिमा-सम्पन्न तीर्थोचित गौरवको धारण करता है।

श्रीविष्णुस्वामि-सम्प्रदाय और व्रज-मण्डल

(आचार्य श्रीछबीलेवल्लभजी गोस्वामी शास्त्री, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

श्रीविष्णुस्वामि-सम्प्रदायका प्रभाव आज व्रज-प्रदेशमें कम रह गया है; परंतु प्राचीन इतिहास देखनेपर निश्चय होता है कि मध्ययुगमें तथा उसके कुछ काल पश्चात्तक अवश्य ही इस सम्प्रदायकी व्रजमें प्रमुखता रही होगी। आगे चलकर विष्णुस्वामि-मतको आधार बनाकर महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीने पुष्टि-सम्प्रदायकी स्थापना की, जिससे विष्णुस्वामि-सम्प्रदायकी मूल परम्परा क्रमशः लुप्त होती गयी। प्रस्थानत्रयीपर विष्णुस्वामि-रचित भाष्यका अप्राप्त होना भी इसके प्रचारमें बाधारूप बन गया। इतना सब होते हुए भी व्रजके विभूतिस्तम्भस्वरूप कुछ प्राचीन स्थान आज भी विष्णुस्वामि-सम्प्रदायके प्रमुख केन्द्र हैं। कुछ स्थान तो इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि वे व्रजके ही नहीं, अपितु भारतीय इतिहासके प्रकाशमान पृष्ठोंमें सम्मानसूचक पदपर प्रतिष्ठित हैं। इन्हीं स्थानोंके उत्थान-पतनमें व्रजका इतिहास सन्निहित है। कुछ प्रमुख स्थानोंका परिचय यहाँ दिया जाता है।

निधिवन-निकुंज

यह निधिवन तथा निधुवन दोनों ही नामोंसे प्रख्यात है। कई महानुभावोंकी वाणियोंके अनुसार यही श्रीकृष्णकी महारास-स्थली है। निधुवन (रमण-स्थली) नाम इसीका द्योतक है। रसिक-शिरोमणि आशुधीरात्मज श्रीस्वामी हरिदासजीकी भजन-स्थली एवं श्रीबाँकेबिहारीजीका प्राकट्य-स्थान तथा स्वामी हरिदासजीका समाधिस्थल होनेसे यह भक्तों, कलाकारों एवं साहित्यकारोंका सहज आकर्षण-केन्द्र बना हुआ है। निधिस्वरूप श्रीबाँके-बिहारीजीका प्राकट्य-स्थान होनेके कारण भी इसे निधिवन कहते हैं। यह वही वन है, जिसका वर्णन करके पौराणिककालसे आजतकके कवि वृन्दावनके प्रति अपनी भावना समर्पित करते चले आ रहे हैं। कविरत्न श्रीसत्यनारायणकी वेदनाभरी भावना किस मानव-हृदयमें चमत्कार नहीं उत्पन्न कर देती—

पहिले को-सो अब न तिहारो यह बृंदाबन।
याके चारों ओर भये बहुबिध परिवर्तन॥
बने खेत चौरस नये, काटि घने बनपुंज।
देखन कूँ बस रहि गये, निधिबन सेवाकुंज॥

प्राचीन वाणी-साहित्य निधिवनकी स्थितिको गोलोकसे भी परेकी मानता है।

लोकन ते ऊँचो गोलोक जाहि बेद कहैं,
रावरो बराबरी में फीको निधिबन सों।

स्वामी हरिदासजी ललिता सखीके अवतार थे। आपका जन्म १५६९ वि० में हुआ था। जन्म-स्थान हरिदासपुर (अलीगढ़के पास)-से अपने पिता श्रीआशुधीरजीसे वैष्णवीय दीक्षा लेकर सर्वप्रथम यहाँ आपने ही आकर निवास किया था। फिर क्या था? कमल खिला नहीं कि भौंरे आकर मँड़राने लगे। तानसेन, बैजूबावरा, रामदास संन्यासी, गोपालराय आदि इसी रसमयी भूमिमें स्वामीजीका शिष्यत्व प्राप्त करके विश्वविख्यात संगीतज्ञ बन गये। नरपालोंकी कौन कहे, सम्राट् भी आकर चरणोंमें लोटने लगे। रसिक भक्त-मण्डलीका तो निधिवन तीर्थ ही बन गया। श्रीस्वामी हरिदासजीके पश्चात् अद्यावधि श्रीस्वामीजीके अनुज एवं प्रधान शिष्य श्रीजगन्नाथजीके वंशज गोस्वामिगण श्रीनिधिवनराजकी प्राणोंसे भी अधिक देख-भाल तथा उसके अस्तित्वको बनाये रखनेकी भरसक चेष्टा करते चले आ रहे हैं। निधिवनमें स्वामीजीकी भजन-स्थली, रंगमहल, वंशीचोरी तथा श्रीस्वामीजीकी, श्रीजगन्नाथजीकी, आशुधीरजीकी, श्रीविट्ठल-विपुलजीकी, श्रीविहारिनदेवजीकी तथा अनेकों गोस्वामियोंकी समाधियाँ बनी हुई हैं। श्रीविहारीजीका प्राचीन मन्दिर भी यहीं है। श्रीनिधिवनराज आज वृन्दावनका गौरव है।

श्रीबाँकेविहारीजीका मन्दिर

यह वृन्दावनका प्रमुख मन्दिर है, जहाँपर नित्यप्रति सहस्रों दर्शनार्थी आते हैं। श्रीविहारीजी महाराज स्वामी श्रीहरिदासजीके सेव्य श्रीविग्रह हैं। पूर्वमें बहुत समयतक आपका अर्चन-वन्दन प्राकट्य-स्थल निधिवनमें ही होता रहा। अनेकों कारणोंसे सं० १८४४ के आसपास,

वर्तमान मन्दिरके निर्माणसे पूर्व उसीमें श्रीविहारीजी महाराजकी सेवा-व्यवस्था होने लगी। वर्तमान विशाल मन्दिरमें सं० १९२१ में श्रीविहारीजी महाराज पधारे। वर्तमान कालमें विष्णुस्वामि-सम्प्रदायका प्रमुख केन्द्र श्रीबाँकेविहारीजीका मन्दिर है। श्रीविहारीजीकी बाँकी अदाकी झाँकी सर्वप्रसिद्ध है। वृन्दावन ही नहीं, अपितु

भारतके कोने-कोनेमें श्रीविहारीजीका यश सुनायी पड़ता है। कहींसे कोई भी यात्री जब श्रीवृन्दावनके लिये रेलपर सवार होता है, तब वह प्रेमसे 'श्रीवृन्दावनविहारी लालकी जय' बोलकर अपनी भक्ति-भावनाको श्रीविहारीजीके चरणोंमें समर्पित करता है। धार्मिक जनोंकी भावनाके केन्द्र तो श्रीबाँकेविहारीजी महाराज हैं ही, अनेकों नास्तिकोंको भी उनके सम्मुख मस्तक टेकते देखा गया है। असीम सौन्दर्यपरमानन्दस्वरूप श्रीबाँके-विहारीजी महाराजके सहस्रों ही लोकोत्तर चरित्र हैं। स्वामी हरिदासजीके साथ की गयी केलि-क्रीड़ाओंको तो कह ही कौन सकता है, अन्य भक्तोंके साथ भी जो लीलाएँ उन्होंने की हैं, उनकी गणना नहीं हो सकती।

भक्त रसखानकी वाणी सुनिये—

अंग हि अंग जड़ाव जड़े अरु सीस बनी पगिया जरतारी।
मोतिन माल हिये लटकै लटुआ लटकैं लट घूँघरवारी॥
पूरब पुन्यन ते रसखानि ये माधुरी मूरति आन निहारी।
देखत नैननि ताकि रही झुकि झाँकि झरोकनि बाँकेबिहारी॥

श्रीविहारीजीके मन्दिरके आसपास अनेकों मन्दिर श्रीविष्णुस्वामि-सम्प्रदायके हैं, जिनमें प्रमुखतया श्रीछैल-विहारी, श्रीराधाविहारी, श्रीलाड़िलीविहारी, श्रीनवलविहारी, श्रीयुगलविहारी, श्रीमुलतान-विहारी आदिके मन्दिर प्रसिद्ध हैं।

श्रीकलाधारीजीका मन्दिर

यह मन्दिर बहुत प्राचीन है। इसमें श्रीगोवर्धननाथकी बहुत ही सुन्दर मूर्ति है। इसी मन्दिरमें श्रीनानकदेवजीके सेव्य श्रीव्रजमोहनजीकी मूर्ति भी बहावलपुर (पाकिस्तान)-से आकर यहाँ विराज रही है। श्रीनानकदेवजीने इन्हींको दूध पिलाया था। यहींपर मुलतानके श्रीमदनमोहनजी महाराज भी विराज रहे हैं।

श्रीकलाधारीजीका बगीचा

श्रीनामदेवजीकी गद्दीके महन्त श्रीगोस्वामी यमुनादासजीको यह बगीचा भेंटमें प्राप्त हुआ था। वृन्दावनमें यही एक ऐसा साधुसेवी स्थान है, जहाँपर कहींसे भी कोई भी वैष्णव साधु आकर जबतक चाहे निवास कर सकता है। उसकी सेवा बराबर की जाती है।

विष्णुस्वामी-अखाड़ा

यह अखाड़ा ज्ञानगुदड़ीमें स्थित है।

राधाकुण्ड-स्थित पुराना मन्दिर

राधाकुण्ड और कृष्णकुण्डके मध्यमें श्रीविहारीजी महाराजका बड़ा पुराना मन्दिर है। यहींपर स्वामी श्रीहरिदासजीकी भजन-स्थली है। यह मन्दिर वृन्दावनके श्रीबाँकेविहारीजीके गोस्वामियोंके अधिकारमें है। मन्दिरसे ही यहाँकी सब व्यवस्था चलती है।

गोवर्धन

यहाँ श्रीहरदेवजीका प्राचीन एवं प्रसिद्ध मन्दिर है। पुराणोंके आधारपर व्रजमें जिन चार देवों एवं चार महादेवोंकी स्थापना श्रीकृष्णके प्रपौत्र श्रीवज्रनाभने की थी, उनमें श्रीहरदेवजीका ही चौथा स्थान है।

इसके अतिरिक्त व्रजके विभिन्न गाँवों आदिमें भी विष्णुस्वामी-सम्प्रदायसे सम्बन्धित अनेक छोटे-बड़े मन्दिर विद्यमान हैं।

व्रजमण्डलमें निम्बार्क-सम्प्रदायके तीर्थस्थल

(पं० श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदान्ताचार्य, पंचतीर्थ)

श्रीसुदर्शन-कुण्ड (निम्बग्राम)

यह प्राचीन पूजनीय तीर्थ गिरिराजकी तलहटीमें स्थित गोवर्धन ग्रामसे पश्चिम, डेढ़ मीलकी दूरीपर बरसाना जानेवाली सड़कके सन्निकट है।

कहा जाता है, आन्ध्रप्रदेशसे श्रीनिम्बार्काचार्यके पितृदेव श्रीअरुण ऋषि और माता जयन्तीदेवी वृन्दावन आ गये थे। वहाँ आकर श्रीगिरिराजकी एक कन्दरामें दोनों दम्पती भजन-साधन करने लगे। इसी स्थलपर श्रीजयन्तीनन्दनने यतियोंको एक निम्ब-वृक्षपर सूर्य (दिव्य ज्योति)-का साक्षात्कार करवाया था, तभीसे आपकी भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्य नामसे प्रख्याति हुई। इसी स्थलपर आपने गीता, उपनिषद् और ब्रह्मसूत्रोंपर वृत्तियाँ लिखी थीं; उनमें केवल ब्रह्मसूत्रकी वृत्ति ही इस समय उपलब्ध होती है।

सुदर्शन महाबाहो! कोटिसूर्यसमप्रभ।
अज्ञानतिमिरान्धानां विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय॥

भगवान्‌की इस आज्ञाके आधारपर आपको श्रीसुदर्शनका अवतार माना गया है। श्रीवेदव्यासजीने भी सम्मानसूचक शब्दोंमें एक जगह लिखा है—

निम्बार्को भगवान् येषां वाञ्छितार्थप्रदायकः।
उदयव्यापिनी ग्राह्या काले* तिथिरुपोषणे॥

वर्तमान भविष्यपुराणमें यह श्लोक हो या न हो, किंतु १२वीं शताब्दीके हेमाद्रि आदि सभी विद्वानोंने परम्परानुसार इसे उद्धृत किया है।

उपवासके लिये उदय-व्यापिनी तिथिके ग्रहण (कपाल-वेध)-की परिपाटीपर आपने ही अधिक बल दिया था। तदनुसार इस सम्प्रदायमें यह परम्परा अविच्छिन्नरूपसे चली आ रही है।

श्रीगिरिराजके प्रतिदिन क्रमशः अन्तर्हित होनेके कारण आजकल इस तीर्थ-स्थलका श्रीगिरिराजसे डेढ़-दो मीलका अन्तर पड़ गया है; यहाँ जो गुफा थी, वह भी अन्तर्हित हो गयी है। प्राचीन वृक्षावलीसे ढका हुआ एक पुराना जलाशय है, जिसे श्रीसुदर्शन-कुण्ड अथवा निम्बार्क-सरोवर कहते हैं। समीपमें ही एक छोटी-सी बस्ती है, जो आचार्यश्रीके नामपर ही 'निम्ब-ग्राम' कहलाती है। यहाँ एक ही पुराना मन्दिर है, जिसमें श्रीनिम्बार्क-भगवान्‌की ही प्रधान प्रतिमा है। निम्ब-ग्राम और आस-पासके सभी वर्णोंके व्यक्ति श्रीनिम्बार्क-भगवान्‌को ही अपना प्रिय इष्टदेव मानते हैं।

दक्षिण-हैदराबादसे पूर्व ६ मील दूर आदिलाबादसे सम्प्राप्त 'श्रीनिम्बादित्य-प्रासाद' के एक शिलालेखसे पता चलता है कि वि० की ११वीं शताब्दीतक दक्षिण-भारतमें भी भगवान् श्रीनिम्बार्क—निम्बादित्यकी पूजा होती थी।

श्रीनारद-टीला

यह तीर्थस्थल मथुराके पूर्वोत्तरभागमें श्रीयमुना-तटके सन्निकट है; यहाँ श्रीनारदजीने तपश्चर्या की थी, इसीसे इसका नाम नारद-टीला पड़ा। पश्चात् यह स्थल श्रीनारदजीके शिष्य श्रीनिम्बार्क और उनकी परम्परामें होनेवाले सभी आचार्योंका प्रधान निवास-स्थान रहा। श्रीनारदजीकी प्रतिमा यहाँ विराजमान है। जगद्विजयी श्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्य, व्रजभाषा-साहित्यके आदि वाणीकार श्रीश्रीभट्टजी तथा महावाणीकार श्रीहरिव्यासदेवाचार्य—इन तीनों आचार्योंकी यहाँ समाधियाँ हैं।

श्रीध्रुव-टीला

मथुराके पूर्वभागमें श्रीनारद-टीलाके सन्निकट यमुना-तटपर ही श्रीध्रुव-टीला है। श्रीनारदजीके उपदेशानुसार श्रीध्रुवजीने यहाँ तपश्चर्या की थी, जिसका श्रीमद्भागवतादि पुराणोंमें उल्लेख है। व्रजभाषा-साहित्यके आदि वाणीकार श्रीश्रीभट्टजीका आविर्भाव यहीं हुआ था।

---

* कहीं-कहीं 'कुले' ऐसा भी पाठ मिलता है।

सप्तर्षि-टीला

मथुराके प्रसिद्ध तीर्थस्थल श्रीनारद-टीला और ध्रुव-टीलाके सन्निकट ही यह प्राचीन दर्शनीय स्थल है। कहा जाता है, यहाँ विश्वामित्र आदि सात ऋषियोंने प्राचीन समयमें तपश्चर्या की थी।

असकुण्डा

मथुरासे अत्यन्त सटा हुआ श्रीयमुनाके तटपर ही यह स्थल है। यहाँ श्रीहनुमान्‌जीकी एक प्राचीन चमत्कारपूर्ण मूर्ति है। यह पुनीत स्थल परम्परासे ही श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायसे सम्बद्ध है।

पोतराकुण्ड

मथुराके पश्चिमी भागमें श्रीकेशवदेवजीके मन्दिरके सन्निकट ही यह एक प्राचीन विशाल कुण्ड है। भगवान् श्रीकृष्णके अवतारसे पूर्व भी यह सुन्दर जलाशय था। कहा जाता है, श्रीदेवकीजीने यहाँ ही पोतरा धोये थे और जल-पूजा की थी। इसी कारण इसकी 'पोतराकुण्ड' संज्ञा हुई। यहाँपर १३वीं शताब्दीमें श्रीकेशवकाश्मीरि-भट्टाचार्य विराजे थे। उन्होंने ही श्रीकेशवदेवके मन्दिर और कुण्डका जीर्णोद्धार करवाया था।

राधाकुण्ड

व्रजके तीर्थोंमें श्रीराधाकुण्ड और श्यामकुण्ड बड़े
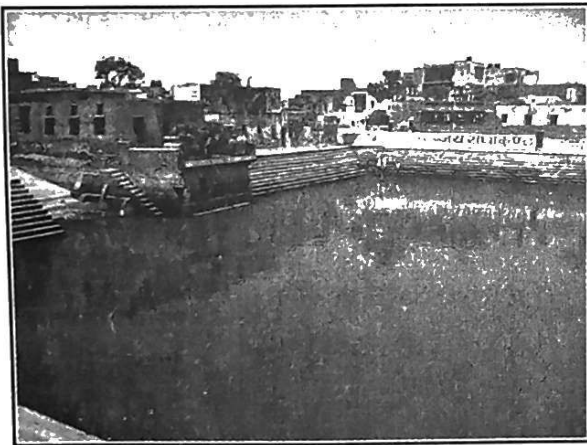
महत्त्वपूर्ण तीर्थ माने जाते हैं, उनमें भी श्रीराधा-कुण्डका सम्मान अधिक है।

ऊर्ध्वाम्नायतन्त्रमें लिखा है कि कण्ठपर्यन्त अथवा हृदयपर्यन्त, नाभिपर्यन्त अथवा जंघापर्यन्त ही श्रीराधाकुण्डके जलमें स्थित होकर जो साधक श्रीराधा-कृपा-कटाक्ष-स्तोत्रका पाठ करे, उसकी वाणी समर्थ हो जाती है, उसे श्रीस्वामिनीजीका भी साक्षात्कार हो जाता है। वे उस साधकपर सन्तुष्ट होकर ऐसा वर देती हैं, जिससे उसे श्रीश्यामसुन्दरके दर्शन प्राप्त हो जाते हैं।

ललिताकुण्ड

जिस प्रकार श्रीश्यामसुन्दरकी प्रसन्नताके लिये श्रीराधाकिशोरीकी आराधना अपेक्षित है, वैसे ही श्रीराधाकिशोरीकी प्रसन्नताके लिये श्रीललिता आदि अष्टसखियोंकी उपासना परम आवश्यक है। श्रीराधाकुण्डकी भाँति ही श्रीललिताकुण्डका भी विशिष्ट महत्त्व है। यह कुण्ड श्रीराधाकुण्डके समीपमें ही है।

भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यने अपने परम प्रिय पट्टशिष्य श्रीश्रीनिवासाचार्यको यही आदेश दिया था कि तुम 'श्रीललिताकुण्डपर निवास करते हुए वहीं आराधना करो।' श्रीगुरुदेवकी आज्ञा पाकर वे निम्बग्रामसे श्रीललिता-संगमपर पहुँचे। वहाँ गुरूपदिष्ट मन्त्रका आपने अनुष्ठान किया। थोड़े ही दिनोंमें उनको श्रीललिताजीका साक्षात्कार हुआ और उन्हींके अनुग्रहसे फिर श्रीयुगलकिशोरके दर्शन मिले।

यहींपर उन्होंने श्रीनिम्बार्काचार्यकृत वेदान्त-पारिजात-सौरभ (ब्रह्मसूत्रोंकी संक्षिप्त वृत्ति)-पर 'वेदान्त-कौस्तुभ' नामक ललित भाष्य लिखा। श्रीनिवासाचार्यके लीला-विस्तारके पश्चात् उनके पट्टशिष्य श्रीविश्वाचार्यके समयमें यहाँपर श्रीनिवासाचार्यके चरण-चिह्नोंकी स्थापना हुई। छोटा-सा मन्दिर भी बनवाया गया। यह ऐतिहासिक प्राचीन तीर्थस्थल है। यहाँ ठाकुर श्रीललितविहारीके दर्शन हैं।

गोविन्दकुण्ड (आन्यौर)

गिरिराजके तीर्थोंमें यह पुराण-प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। जब इन्द्रके कोपसे भगवान्‌ने व्रजकी रक्षा की और इन्द्रका अभिमान दूर हुआ। तब उन्होंने श्रीश्यामसुन्दरका सुरभी-पयसहित स्वर्गगंगाके जलसे अभिषेक कराया तथा भगवान्‌को 'गोविन्द' शब्दसे सम्बोधितकर विनयपूर्वक प्रार्थना की। उसी अभिषेकके दुग्ध और जलका यह कुण्ड माना जाता है। बृहन्नारदीयपुराणमें यहाँके स्नानमात्रसे मोक्ष-प्राप्ति बतलायी गयी है। यही बात स्कन्दपुराणसे अभिव्यक्त होती है—

यत्राभिषिक्तो भगवान् मघोना यदुवैरिणा।
गोविन्दकुण्डं तज्जातं स्नानमात्रेण मोक्षदम्॥

मन्दिरमें यहाँ श्रीगोविन्दविहारीके दर्शन हैं। यहाँसे ईशानकोणमें विद्याधरकुण्ड और गन्धर्व-तलाई हैं। इनके सन्निकट ही श्रीचतुरचिन्तामणिदेव नागाजीकी लाल पत्थरकी बनी हुई शिखरदार प्राचीन समाधि है। यह श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायका एक प्राचीन ऐतिहासिक स्थल है। जयपुरके प्रसिद्ध साहित्यसेवी पण्डित श्रीमथुरानाथजी भट्टके पूर्वज श्रीमण्डनकविने स्वरचित 'जयसाह-सुजस' ग्रन्थमें लिखा है कि वि० सं० १७०० के लगभग श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश श्रीनारायणदेवाचार्यजीने अपने गुरुदेव श्रीहरिवंशजीके स्मृति-उत्सवमें यहाँ लाखों वैष्णवोंका एक बृहत्सम्मेलन किया था।

नारदकुण्ड

श्रीगिरिराजकी परिक्रमाके पूर्वभागमें यह प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। यहाँ भगवान् श्रीनिम्बार्काचार्यके दीक्षागुरु देवर्षि श्रीनारदजीने तपश्चर्या की थी।

भगवान् श्रीश्यामसुन्दर गिरिराजपर गोचारण-लीला करते थे। यहाँके भिन्न-भिन्न स्थलोंमें उनका पदार्पण होता था। आगे चलकर उपासक भक्तोंने उनके चरणोंके प्रतीक-रूप चरण-प्रतिमाएँ स्थापित कीं और उनका ध्यान तथा आराधन-पूजन करने लगे।

यहाँ एक स्वच्छ जलका कुण्ड है, जिसमें स्नान-आचमन करके जो कोई भगवान् देवर्षि श्रीनारदजीकी वन्दना करता है, उसे श्रीनारदजी आत्मज्ञान कराते हैं।

इस स्थलमें एक दर्शनीय प्राचीन मन्दिर है, जिसमें सदासे श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके सिद्ध महापुरुष और अनेकों साधक संत रहते आये हैं। गिरिराजके दर्शनीय और पूजनीय स्थलोंमें यह एक माना हुआ प्राचीन तीर्थस्थल है।

किलोलकुण्ड

श्रीनारदकुण्डसे थोड़ी ही दूरीपर गिरिराजकी परिक्रमामें यह दर्शनीय पुनीत स्थल है। कहा जाता है, श्रीयुगलकिशोरने यहाँ विविध बाललीलाएँ की हैं। उन्हीं क्रीडा-कल्लोलोंका प्रतीक यह किलोलकुण्ड है। चारों ओर सघन और पुराने कदम्ब-वृक्षोंसे आवृत यह स्थल बड़ा ही मनोरम है। एक कुण्ड है, जिसे २०० वर्ष पूर्व यहाँके अधिष्ठित महन्तजीने पक्का बनवा दिया था। कुण्डपर श्रीकिलोलबिहारीजीका मन्दिर है।

ब्रजकी रहनी

[ब्रजभाषामें]

(गोलोकवासी सन्त श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

काहूसौं क्रोध-विरोध न करै, काहू की निन्दा-स्तुति न करै। कोई पाप न बनै, इसलिये बार-बार अपने मनकूँ संसारसौं हटायकैं इन राधामाधवमें लगावै। फिर देखौ आनन्दकी बाढ़ छाय जायगी। जो कछु करै पूरी सत्यता-सौं करै। पूरी सत्यतासौं वृत्तिकूँ इनमें लगावै, साथ ही निरन्तर इनकौ नाम-जप करते-करते इनकी यादमें तड़फि-तड़फिकैं, रमतौ रहै, जैसैं इनके मथुरा चले जायबेके पीछे ब्रजबाला, ब्रजवासी, इनकूँ तड़फि-तड़फिकैं, रोय-रोयकैं जीये, वैसैं ही जीवै, यही है ब्रजकी रहनी। बिना रहनीके धामकौ वास्तविक स्वरूप समझमें नहीं आवै है।

जन्मदिन अथवा काहू विशेष उत्सव, पर्व, त्यौहारके मनायबेकौ यह उद्देश्य हौनौं चहिए कि वा दिनसौं श्रीजीवनधनको स्मरण-चिन्तन पूर्वकी अपेक्षा अधिक बढ़नौ चहिए।

संकल्प तौ बनिंगे ही। भले ही संसारके ताँईं बनैं अथवा इनके ताँईं बनैं। अब अपनौं परम कर्तव्य है कि संकल्प बनैं केवल और केवल इनके ताँईं हीं। काहू प्रेमीकौ जीवन पढ़ै तौ पढ़िकैं यही संकल्प बनावै कि कबहूँ मैं हूँ ऐसौ प्रेमी बनूँगौ का? गोपीनकौ विरह देखिकैं संकल्प बनावै कि कबहूँ मोहूकूँ ऐसौ विरह प्राप्त होयगौ का? यशोदा मैयासौं माँगै कि आपकी कृपासौं हमारौ हू कन्हैयाँमें ऐसौ प्रगाढ़ प्रेम होयगौ का?

व्रजधामकी अनूठी महिमा

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी)

जिस प्रकार विश्वभरमें भारत आध्यात्मिक गुरुके रूपमें प्रसिद्ध रहा है, उसी प्रकार भारतमें व्रजभूमि भक्तिका केन्द्र मानी जाती है। पुराणों एवं वेदोंमें व्रजभूमिका भारी महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

व्रज रज तजि अनत न जाऊँ।

अर्थात् मैं व्रजकी पावन रजको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाता।

'ब्रह्मपुराण' में लिखा है, भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तोंसे कहते हैं—

जहाँतक व्रजभूमिकी सीमा है तथा उसमें जो नदी, वन, उपवन, गिरि, सरोवर, कुण्ड आदि हैं; उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखने एवं पूजन करनेसे ही मानवका कल्याण है।

व्रजभूमिको भक्ति एवं मुक्तिकी भूमि बताते हुए नारदपुराणमें कहा गया है—'अस्सी कोसके व्रज-मण्डलमें स्थित किसी भी कुण्ड तथा नदीमें स्नान करने तथा उसके किनारे भक्ति करनेसे श्रीविष्णुभक्ति सुगमतासे प्राप्त होती है। व्रजवासियोंके विशुद्ध प्रेममें मग्न हो श्रीकृष्ण सदा व्रजमें विचरण करते रहते हैं।'

पद्मपुराणके पातालखण्डमें लिखा है—

'सहस्र पंखुड़ियोंसे युक्त कमलका मध्यकोष वृन्दावन है। उसके स्पर्शमात्रसे पृथ्वी तीनों लोकोंमें धन्य हुई है।'

विविध धर्माचार्योंने भी व्रजमहिमाका वर्णन किया है। आदिशंकराचार्यने प्रार्थना की थी—

'कब मेरा ऐसा भाग्य उदित होगा, जब मैं श्रीवृन्दावनमें श्रीयमुनाके किनारे भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिमें अपने दिन व्यतीत कर सकूँगा।'

श्रीनिम्बार्काचार्यजी महाराजने व्रज-वृन्दावनकी महिमा इन शब्दोंमें प्रकट की है—

'श्रीयुगलसरकारके प्रेमरससे जिसका अभिषेक होता रहता है, जो रमणीय है, जहाँके वृक्ष भी मनोवांछित वस्तु देनेमें समर्थ हैं, परम पावन यमुनाके जलप्रवाहने जिसे सब ओरसे घेर रखा है, जहाँका प्रत्येक जीव-जन्तु श्रीव्रजराज-किशोरीकी चरणरेणु-कणिकासे पवित्र है, उस वृन्दावनका मैं प्रात:काल स्मरण करता हूँ।'

यद्यपि श्रीरामानन्दाचार्य भगवान् श्रीरामके उपासक थे, किंतु उन्होंने भी 'श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर' में व्रजभूमिकी महत्ता भावविभोर होकर प्रकट की है। वे कहते हैं—

'श्रीव्रजधाममें निवास जीवोंको सांसारिक सन्तापोंसे मुक्ति देनेवाला है। यहाँपर गोपवेशधारी श्रीनन्दनन्दनका पूजन, अर्चन एवं स्मरण करना चाहिये। व्रजभूमि और व्रजरजकी पावनताका वर्णन वाणीसे नहीं किया जा सकता है।'

श्रीरामानन्दाचार्य श्रीनिकुंजवृन्दावनको भूतलपर अद्भुत धाम मानते थे। वे लिखते हैं—

'वृन्दावन एवं गोवर्धन भगवान्के हृदय हैं, अत: इनमें निवाससे भगवत्प्राप्ति होती है।'

श्रीवल्लभाचार्यजीने भी व्रजभूमिको मुक्तिभूमि मानकर उसकी स्तुति की है। वे कामना करते हैं—'उद्धवजीकी तरह मेरा हृदय भी गोकुल एवं वृन्दावनमें रमा रहे।'

वल्लभाचार्यजी श्रीकृष्णसे प्रार्थना करते हैं—

'मुझे न मोक्ष चाहिये न स्वर्ग, न योगसिद्धि चाहिये, न ज्ञानकी आवश्यकता है, केवल व्रजभूमिवास, आपका भोग लगा प्रसाद एवं चरणोदककी ही आकांक्षा है।'

महाकवि सूरदासजीने अपनी रचनाओंका माध्यम भगवान् श्रीकृष्ण एवं व्रजभूमिकी महत्ताको बनाया है। सूरदासजी श्रीकृष्णके मुखसे कहलवाते हैं—

वृन्दावन मोकौं अति भावत,
सुनहु सखा तुम सुबल श्रीदामा
व्रज तै बन गौ चारण आवत।
कामधेनु सुरतरु सुख जितने
रमा सहित वैकुण्ठ भुलावत,
इहि वृन्दावन इहि जमुना तट
ये सुरभी अति सुखद चरावत॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलाभूमि वन्दनीय अभिनन्दनीय रही है। [**प्रेषक—श्रीविजेन्द्रजी गोयल**]

'कहाँ लौं कहिए ब्रज की बात'

(पं० श्रीगोपालप्रसादजी व्यास)

जि मन करै है कै जा लेख कूँ अपनी मिठबोलनी, रसघोलनी ब्रजभाषामें ही च्यौं न लिखैं? परंतु नहीं, भारतके राष्ट्रीय जागरण और हिन्दीके अरुणोदयकी वेलामें ही हमारे अग्रचेता पूर्वजोंने यह अलिखित समझौता और दृढ़ संकल्प कर लिया था कि भाई, तुम लिखो गद्य और हमसे बन पड़ेगा तो रचते रहेंगे पद्य। संवर्धन रहा आजसे हिन्दीके लिये और संरक्षण रहा व्रजभाषाके लिये। संप्रेषण हिन्दीका और सर्वेक्षण व्रजभाषाका। इस तरह प्रयाग पहुँचते-पहुँचते ही ब्रजकी कलित कालिंदी राष्ट्रभाषाकी पावन गंगामें स्वेच्छासे समाहित हो चुकी थी। पूर्वजोंके ऐसे ऐतिहासिक समझौते और शुद्ध संकल्पको हम तोड़ेंगे नहीं। माना कि ब्रज हमारे रोम-रोममें बसा है, चित्तपर चढ़ा है और उसके साहित्यकी सुघराई तथा ब्रजकी लुनाई हमपर ऐसी छाई है कि *'मन ह्वै जात अजौं वहै कालिंदी के तीर।'* जैसे-जैसे हम ब्रज-रसमें पैठते हैं, उसके चन्द्रसरोवरमें अवगाहन करते हैं, गोवर्धन गिरिराज महाराजकी परिक्रमा देते हैं, ब्रज-साहित्यका अवलोकन करते हैं, उसके स्वर्णिम अतीतमें झाँकते हैं तो मन वृन्दावन हो जाता है। मथुरा मनोहर लगने लगती है। गोकुल, नंदगाँव, बरसाना, परम रासस्थली अर्थात् वृन्दावनका परमानन्द और महारास हमारी मनोभूमिपर अवतरित हो जाता है। बाँसुरिया बज उठती है। मोर नाचने लगते हैं। कोकिलें कूकने लगती हैं। यमुना लहर-लहर हो जाती है। धौरी-धूमर और काजर गायें कहीं हूकती और कहीं हूलती दिखायी देती हैं, तो कहीं बछिया-बच्छे उछल-कूद मचाते मिलते हैं। तरु, लता, गुल्म, कुंज और कुटीर, सर-सरोवर, मन्दिर-मठ, टीले, स्तूप, हरीभरी छोटी-छोटी पहाड़ियाँ, कोरे और भोरे ग्वाल तथा गोरी और चिरकिशोरी गोपियाँ एवं उनके सर्वस्व युगल प्रिया-प्रियतम राधाकृष्ण हमारे मनके हिंडोलेपर ऐसे झूलने लगते हैं कि जैसे महाकवि देव कह रहे हों—*'झूलत है हियरा हरि कौ, हिय माहि तिहारे हरा के हिंडोरे।'*

ब्रज ससीम नहीं, असीम

लोग ब्रजको सीमाओंमें बाँधते हैं कि गोकुल ही ब्रज है। कोई कहते हैं नहीं, वृन्दावन ही ब्रज है। कोई गिरि गोवर्धनकी तलहटीमें बसे हुए गाँवोंको, यानी जहाँ-जहाँसे गोवर्धन दिखायी देता है, ब्रज बताते हैं। कोई कहते हैं ब्रज चौरासी कोसमें फैला हुआ है— ***'ब्रज चौरासी कोस में चार गाम निज धाम। वृंदावन अरु मधुपुरी बरसानौ नँदगाम॥'*** कुछका मानना है कि ब्रज मथुरा जनपदतक ही सीमित नहीं है। ब्रजभाषा जहाँ-जहाँ बोली जाती है, ब्रजकी व्यापकताकी परिधि वहीं-वहींतक जानिये। अर्थात् अलीगढ़, आगरा, एटा, इटावा, मैनपुरी आदि इधर और धौलपुर, ग्वालियर, बुन्देलखण्ड, झाँसीतक उधर, फिर डीग, भरतपुर, बयाना, करौली, अलवर आदि जिलोंमें भी तो ब्रजभाषा और ब्रज-भावनाकी लटक पूरी तरह विद्यमान है। कुछ इस बृहत्तर ब्रजसे भी सन्तुष्ट नहीं हैं। वे कहते हैं कि कृष्णकी रसमयी लीलाभूमि ही नहीं, जहाँ-जहाँसे कृष्णका रथ गुजरा है, जहाँ वह बसे हैं और जहाँ-जहाँतक उनकी गीताका सन्देश है, वह सब ब्रज ही है। अर्थात् ब्रज ससीम नहीं, असीम है। वह नयन-पथगामी भी है और पलक-कपाट लगानेके बाद भावुकोंके भावना-जगत्में भी अखण्ड रूपसे विद्यमान है।

भारतमें ब्रजभाषा कहाँ नहीं रची गयी? कहाँ बोली और समझी नहीं गयी? भारतके किस क्षेत्रने अपनेको ब्रजमय अनुभव नहीं किया? कहाँके आध्यात्मिक आचार्योंने यह स्वीकार नहीं किया कि ब्रजके अवतारी महापुरुष भगवान् कृष्ण स्वयं ही हैं?—**'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं'**। इस मान्यतापर आगे बढ़ें तो एशियामें महाभारतकी कथाओंके रूपमें और शेष विश्वमें हरे राम-हरे कृष्ण आन्दोलनके रूपमें ब्रज दुनियाके किस छोरमें व्याप्त नहीं है? इस व्यापकताका रहस्य क्या है? इसपर कुछ विचार करें।

भारत माँका हृदय

भौगोलिक दृष्टिसे देखें तो ब्रज भारतका हृदयस्थल है। ऐतिहासिक दृष्टिसे देखें तो भारतकी दो-दो राजधानियों

दिल्ली और आगराके बीचमें अवस्थित मुख्य ब्रज भारतकी कर्मस्थली, योगस्थली, भक्तिस्थली, साधनास्थली ही नहीं, रंगस्थली और शक्तिस्थली भी रहा है। ज्ञात इतिहासमें जितने व्यापक स्तरोंपर भाँति-भाँतिके द्वन्द्व, युद्ध, जय-पराजय, उत्थान-पतन और विनाश एवं निर्माणके जितने विविध आयामोंसे यह ब्रज गुजरा है तथा बिगड़-बिगड़कर बना है और आजकी अभावग्रस्त परिस्थितियोंमें भी अपने अस्तित्वको बनाये रखकर सिर ऊँचा करके खड़ा हुआ है, उसे कौन भूल सकता है? उसे कैसे भुलाया जा सकता है? ब्रज भारतकी महत्ताका, राष्ट्रकी सांस्कृतिक एकताका, साहित्यका, कलाका और आध्यात्मिकताका प्रतीक है। भारतमाताका हृदय है न! इसके स्पन्दनोंसे ही सम्पूर्ण राष्ट्रमें शुद्ध रक्तका, अजस्र ऊर्जाका और दिव्यताका अखण्ड रस प्रवाहित हुआ है। पूछो दक्षिणके आचार्योंसे। महाराष्ट्रके सन्तोंसे। गुजरातके आबाल-वृद्ध नर-नारियोंसे। गिरिधर गोपालके रंगमें रँगे मीराके प्रदेश राजस्थानसे। गुरुओंके प्रदेश पंजाबसे। वैष्णो देवीकी भूमि जम्मू-कश्मीरसे। **'भज गोविंदम्। भज गोविंदम्॥'** के गायक आदि शंकराचार्यके प्रदेश केरलसे। राधाकुण्ड और गोवर्धनमें अपनी इहलीला समाप्त करनेवाले उड़ीसावासियोंसे। ब्रज-बुलिमें रचना करनेवाले पूर्वांचल प्रदेशोंसे। ब्रजका ग्वाल-बाल बननेकी कामना करनेवाले विश्ववन्द्य कवीन्द्र रवीन्द्रसे। महाकवि सुब्रह्मण्यम भारतीसे। महारासको अपना महाप्राण अनुभव करनेवाले मणिपुरके लोगोंसे और किससे नहीं? सभी यह कहते सुने जायँगे—***'मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।'***

जबसे हड़प्पा और मोहनजोदड़ो तथा सिन्धुघाटीकी सभ्यताकी खोजका सिलसिला प्रारम्भ हुआ है, तबसे पुरातत्त्ववेत्ताओंका ध्यान ब्रजके भग्नावशेषों, चैत्यों, स्तूपों, टीलों, प्राप्त मूर्तियोंपर भी गया है। फलस्वरूप उत्खननपर उत्खननकी शृंखलाओंसे प्राप्त प्रागैतिहासिक सामग्रियाँ यह सिद्ध करती जाती हैं कि भारतकी केन्द्रीय संस्कृति और इतिहासके जितने अनूठे रत्न ब्रज-वसुन्धरामें छिपे हैं, उतने भारतमें कदाचित् कहीं नहीं। जानो फाह्यानसे। पूछो ह्वेनसांगसे। मुगलकालमें बादशाहोंद्वारा लिखी या लिखवायी गयी तवारीखोंसे। जानो ग्राउस क्या कहता है? ग्रियर्सन क्या कह गये हैं? और कुछ नहीं तो प्राचीन ब्रज-वैभवके दर्शनके लिये एक बार मथुराके पुरातात्त्विक संग्रहालयमें मत्था अवश्य टेक लीजिये। ब्रजकी कला और संस्कृतिकी उपलब्धियोंकी एक छोटी-सी मनोहर झाँकीसे ही आपका मन गौरवान्वित और तृप्त हो जायगा। यह तो प्रथम चरण है, शुभारम्भ है। उत्खनन, अन्वेषण और अनुशीलन होता रहे तो ब्रजकी सांस्कृतिक धरोहरके ऐसे चार संग्रहालय और स्थापित किये जा सकते हैं, जो निश्चय ही कालान्तरमें यह सिद्ध करनेमें समर्थ होंगे कि भारतीय सभ्यता, संस्कृति, इतिहास और कलाओंका केन्द्र पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिणसे अधिक वास्तविक रूपमें ब्रजभूमिमें ही अवस्थित था और है।

वैदिक अवधारणाके अनुसार ब्रज गोलोक रहा है। यहाँकी लम्बे-लम्बे सींगोंवाली पुष्ट गायों, गोचर भूमि और मनोरम प्राकृतिक छटाको देखनेके लिये देवता भी तरसते थे। वैष्णवोंके मतानुसार भी ब्रज भूतलपर गोलोकधाम है। मथुरा वैकुण्ठपुरी है। गोपियाँ वेदोंकी ऋचाएँ हैं। ग्वालबाल वैकुण्ठनाथके पार्षदोंके रूपमें यहाँ अवतरित हुए थे। राजनीतिक दृष्टिसे देखें तो पश्चिमकी ओरसे आनेवाले आक्रान्ताओंने जबतक दिल्ली और आगरा अर्थात् ब्रजक्षेत्रपर फतहयाबी हासिल नहीं कर ली, तबतक वे जहाँपनाह, शहंशाह और अकबर नहीं बन पाये। डच, पुर्तगाली और फ्रांसीसी छोटे-छोटे क्षेत्रोंपर कब्जा करके बैठ गये और ब्रजकी ओर नहीं बढ़े तो उन्हें महत्त्व नहीं मिला। अंग्रेज भी जबतक कलकत्ताको राजधानी बनाये रहे, भारतके शासक नहीं हो सके। ब्रजको कब्जाकर ही उन्होंने दिल्ली तख्तको कायम किया।

ब्रज एक भावलोक

क्यों भारतका जन-गण-मन ब्रज-वसुन्धराकी ओर आकृष्ट हुआ? क्यों शताब्दियोंतक ब्रजभाषा भारतकी साहित्यिक भाषा रही? क्यों भारतके लाखों-लाखों लोग प्रतिवर्ष ब्रजकी ओर अनन्त कष्ट और असुविधाएँ

झेलकर भी दौड़ते हैं? क्यों प्रदूषणसे युक्त यमुना और कुण्ड-सरोवरोंमें आचमन और स्नान करके अपनेको धन्य मानते हैं? ब्रज-रज जहाँ अब कहनेको ही बची है, क्यों उसमें लेट-लेटकर गिरिराज गोवर्धनकी सात कोसकी दंडौती परिक्रमा करते हैं? क्यों गरमियोंमें छोटेसे नालेकी तरह बहनेवाली यमुनाके सम्बन्धमें कहते हैं—'*तेरौ दरस मोहे भावै श्रीयमुने*'? क्यों लिखा वल्लभाचार्यने 'यमुनाष्टक'—'**नमामि यमुनामहं सकल-सिद्धिहेतुम् मुदा**' क्यों एक छोटी-सी पहाड़ीको लोग गिरिराज महाराज कहते हैं? क्यों '*बोलत हेला, बचनंत गारी*' के लिये प्रसिद्ध ब्रजवासियोंको कहा गया—'*ब्रज के परम सनेही लोग*'? धर्मकी दुकानोंपर लुटते-पिटते और आजके यथार्थसे सुपरिचित व्यक्तियोंकी भी यही आकांक्षा है—'*एहो विधिना तोपै अँचरा पसार मांगौं, जनम-जनम दीजो याही ब्रज बसिबौ।*' क्यों रसखान नन्दकी गायें बनना चाहते हैं? क्यों पंछी बनकर ब्रजके वृक्षोंपर बसेरा करनेकी कामना करते हैं? यदि पत्थर भी बनना पड़े तो उनकी प्रार्थना है कि गिरि गोवर्धनकी शिला ही उन्हें बनाया जाय? क्या ये मात्र पद्य या गीत हैं? केवल कविता कहेंगे इन्हें? नहीं, यह ब्रजका भावलोक है। इसका भूगोल, इतिहास, राजनीति और भौतिकतासे कोई सम्बन्ध नहीं, रसिकों और भक्तोंके हृदयमें ब्रज आनन्दधामके रूपमें अवस्थित है। इस आनन्दधाममें ही उनके सच्चिदानन्द आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र अहर्निश निवास करते हैं। अनहद नादकी तरह उनकी मनोहर मुरलिया मन-प्राणमें गूँजा करती है। नयनोंमें उन्हींकी छवि छायी रहती है। गाते हैं—'*बसो मेरे नैनन में नंदलाल।*' या '*मेरे तो गिरिधर गुपाल, दूसरो न कोई।*' सूरदास इसी अद्वैत भावको आन्तरिक आस्थासे अभिव्यक्त करते हुए इस तरह कहते हैं—'*ऊधो, मन न भए दस-बीस। एक हुतौ सो गयौ स्याम संग, को आराधै ईस?*' वैष्णव आचार्य लिख गये हैं—'**कृष्ण एव गतिर्मम**' और वल्लभाचार्य गीताके अन्तिम श्लोक—'**यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥**' के आधारपर अपने अनुयायियोंको मन्त्र देते हैं—'**श्रीकृष्णः शरणम् मम।**' इस तरह ब्रजकी गीता ही श्रीकृष्णके उपदेशके रूपमें सर्वमान्य सर्वधर्म-ग्रन्थ बन गयी है।

ब्रजको जानना है, तो श्रीकृष्णको जानना ही पड़ेगा। गोपालकके रूपमें सही। कृषिके उन्नायकके रूपमें सही। ब्रजके लोकनायकके रूपमें ही सही। ललित लीलाधरके रूपमें ही सही। आततताइयोंके संहारकके रूपमें ही सही। राष्ट्रको समृद्धिके शिखरपर पहुँचानेवाले द्वारावतीके संस्थापकके रूपमें ही सही। भारतकी केन्द्रीय सत्तामें धर्मराजको स्थापित करनेवालेके रूपमें ही सही। परम आसक्ति और चरम निरासक्तिको अपने दोनों हाथोंमें धारण करनेवाले नर-नारायणके रूपमें ही सही। महापुरुष और महानेता ही सही। भगवान् ही सही। श्रीकृष्णके बिना ब्रजके मानसमें प्रविष्ट होनेकी कोई अन्य राह ही नहीं है। जिज्ञासुओंको, चाहे वे नास्तिक हों या आस्तिक, ब्रज-तत्त्वको जाननेके लिये श्रीकृष्णकी शरणमें जाना ही होगा।

ब्रजका सन्देश

क्या है श्रीकृष्णके रूपमें ब्रजका सन्देश? चिदानन्द। कर्मके प्रति आसक्त होते हुए भी निरासक्तिका शाश्वत भाव। रूप, माधुर्य, स्नेह और संयोगमेंसे गुजरते हुए चिरविरहकी लालसा। यह विरह ही योग है। यह विरह ही भक्ति है। यह विरह ही जीवन-दर्शन है। यही साहित्यका शाश्वत सत्य है। यही ब्रज-वल्लवियों और उनकी स्वामिनी राधारानीका सच्चा स्वरूप है। यही भुक्तिके साथ-साथ मुक्तिका मार्ग भी है।

आजके सन्दर्भमें यदि इस सन्देशको और अधिक नामांकित करना चाहें तो है—'**चरैवेति चरैवेति।**' चलते चलो, बढ़ते चलो! क्योंकि यही जीवनकी गति है, प्रगति है। बिना थके चलो। आनन्दके साथ बढ़ो। परम आनन्दकी ओर बढ़ो। श्रीकृष्णका जीवनवृत्त यही तो कहता है—जन्म लेते ही मथुराके कारागारसे चल पड़े। बाल्यावस्थासे निकलते ही वृन्दावनकी ओर चल पड़े। तरुणाई आते ही मथुराकी ओर गमन किया। मथुरामें भी नहीं रुके, चल पड़े द्वारावतीकी ओर। वहाँका वैभव भी उन्हें नहीं बाँध सका। वह चलते रहे हस्तिनापुरकी ओर, इन्द्रप्रस्थकी ओर। जहाँ-

जहाँ व्यथा-पीड़ित पाण्डवोंको जाना पड़ा, उनकी ओर। धर्मराजके अनुज महाबाहु अर्जुनकी सहायताके लिये देश-देशान्तरोंकी ओर। यानी महाभारतकी ओर। फिर अपने रथपर बिठाकर अर्जुनको ले चले कौरव-पाण्डवोंकी सेनाके मध्यकी ओर। अपने सखा और भक्त अर्जुनको ले चले विरक्तिसे हटाकर योगकी ओर। अकर्मण्यताके बोधको नष्ट करके कर्मयोगकी ओर। कर्मको ले चले संघर्षकी ओर। यहीं नहीं रुके, ईश्वरकी विराट् विभुताका दर्शन कराकर ले चले अर्जुनको अपनी, यानी अनन्त सत्ताकी ओर। पाण्डवोंको चक्रवर्ती राज देकर भी वे उनके पास नहीं रुके। लौट चले द्वारिकापुरीकी ओर। धन, वैभव, सुरा और सुन्दरियोंके जालमें फँसे अहंकारी यादवोंको अन्तमें ले चले विनाश-सागरकी ओर—चलो आपसमें ही लड़ मरो। भौतिक सम्पत्ति अन्तमें विनाशका कारण होती है—चलते-चलते कह गये श्रीकृष्ण। ऐसा अद्भुत व्यक्तित्व, ऐसा सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त, लोकरंजक, लोकरक्षक और सच्चिदानन्दसंदोह ब्रजके अतिरिक्त किसी औरने अवतरित किया है? यही ब्रजका महत्त्व है। यही ब्रजका सन्देश है। कहनेको बहुत है। क्या-क्या कहें? कैसे कहें? यहाँ तो केवल इतना ही कहते हैं—***'कहाँ लौं कहिए ब्रज की बात।'***

अन्तरकी पीर न कहना

[यमुनाजीके माध्यमसे राधाद्वारा माधवको सन्देश भेजना]

(श्रीमती शान्तिजी अग्रवाल)

कहना प्यार हृदय का उनसे
पर अन्तर की पीर न कहना!

कहना, 'तेरी राधा रानी
नित मेरे तट पर आती है।
तेरे कर की छुई गगरिया
अपने कर भर ले जाती है॥'
पर तुझको कितना दे जाती
नत नयनों का नीर, न कहना।
कहना प्यार हृदय का उनसे
पर अन्तर की पीर न कहना॥

कहना, 'पूनम की रातों में
सुधि बरबस जब आ जाती है,
मधुवन के परिचित कुंजों में
जाकर मन बहला आती है॥'
लेकिन कितना कर लाती है
गीला तन का चीर, न कहना।
कहना प्यार हृदय का उनसे
पर अन्तर की पीर न कहना॥

कहना, 'तेरी अमराई में
फिर से बौर लगा है आने।
बौराई डालों पर कोयल,
फिर से गीत लगी है गाने॥'
पर उनको सुन हो उठता है
कितना हृदय अधीर, न कहना।
कहना प्यार हृदय का उनसे
पर अन्तर की पीर न कहना॥

कहना, 'राधा साँझ सबेरे
जसुदा के द्वारे जाती है।
तेरी काली धौली गैया
अपने हाथों दुह आती है॥'
भरता कितना पात्र, धरा पर
गिरता कितना क्षीर, न कहना।
कहना प्यार हृदय का उनसे
पर अन्तर की पीर न कहना॥

कहना, 'राधा मेरे तट पर
मंगल-दीप जला जाती है।
आयेंगे दो चार दिवस में
मैया को समझा आती है॥'
किंतु निराशा में आशा का
डूबा जाता तीर, न कहना।
कहना प्यार हृदय का उनसे
पर अन्तर की पीर न कहना॥

श्रीराधाके नाम-रूप और उनकी उपासनाकी सनातनता

कुछ महानुभावोंका कथन है कि श्रीकृष्णचरित्रमें गोपीचरित्रका, खास करके श्रीराधाचरित्रका समावेश अत्यन्त आधुनिक है। कुछ लोग तो यहाँतक कहते हैं कि 'अधिक-से-अधिक तीन-चार सौ वर्षोंसे ही इसका प्रचलन हुआ है। न तो प्राचीन ग्रन्थोंमें राधाका नाम है, न खास प्राचीनतम पुराणोंमें ही। श्रीमद्भागवतमें भी राधाका नाम नहीं है।' यद्यपि सिद्ध तथा साधक भक्तोंकी दृष्टिमें इन सब आलोचनाओंका तनिक भी महत्त्व नहीं है। सिद्ध तो अपने प्रत्यक्ष अनुभवसे भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीराधा और श्रीगोपीजनकी सत्यताको जान चुके हैं तथा साधक अपनी श्रद्धाकी आँखोंसे नित्य ही उनको देखते रहते हैं—पर सभीके लिये ऐसी बात नहीं है। ऐसे लोगोंके लिये यह निवेदन है कि श्रीराधा नित्य हैं और श्रीराधाका नाम तथा उनकी उपासना सनातन है।

महाकवि भासके द्वारा रचित 'बालचरित' नाटकमें गोपियोंका प्रसंग तथा उनके रूप-सौन्दर्यका बड़ा सुन्दर वर्णन आता है। भासका समय विद्वान् लोग ईसापूर्व चतुर्थ शतीसे लेकर ईसाकी तृतीय शती मानते हैं। तृतीय शती भी माना जाय तो भी 'बालचरित' अबसे लगभग १७०० वर्ष पूर्वकी रचना है।

'हाल'की 'गाहासत्तसई' (गाथासप्तशती)-की रचना ईसाकी प्रथम शतीमें तो मानी ही जाती है; क्योंकि हालका संस्कृत नाम शालिवाहन था, जो ईसाकी प्रथम शतीमें प्रतिष्ठानपुरमें राज्य करते थे। उनका कथन है कि प्राकृतकी करोड़ों गाथाओंमेंसे चुनकर उन्होंने यह सरस संग्रह किया है। अतएव इन गाथाओंको उनसे भी पहलेकी मानना पड़ता है। इस 'गाहासत्तसई' में श्रीराधिका (राहिआ), कृष्ण (कण्ह) और श्रीकृष्णजननी यशोदा (जसोआ) तथा व्रजवधू गोपांगनाओं (बअबहूहिं)-का स्पष्ट उल्लेख है। देखिये—

अज्जबि बालो दामोअरो त्ति इअ जप्पिअइ जसोआए।
कण्ह-मुह-पेसिअच्छं निउअं हसिअं बअबहूहिं॥

श्लोकका संस्कृतरूप है—

अद्यापि बालो दामोदर इति इह जल्प्यते यशोदया।
कृष्णमुखप्रेषिताक्षं निभृतं हसितं व्रजवधूभिः॥

हालकी सप्तशतीमें एक और श्लोक है—

मुह मारुएण तं कण्ह गोरअं राहिआए अवणेन्तो।
एदाणं बल्लवीणं अण्णाणं वि गोरअं हरसि॥

इसका संस्कृतरूप है—

मुखमारुतेन त्वं कृष्ण गोरजो राधिकाया अपनयन्।
एतासां बल्लवीनामन्यासामपि गौरवं हरसि॥

गाथासप्तशतीका एक श्लोक श्रीरूपगोस्वामीने उज्ज्वलनीलमणिमें उद्धृत किया है—

लीलाहि तुलिअसेलो रक्खउ वो राहिआत्थनप्फसे।
हरिणो पढमसमागमसज्झस वेवल्लियो हत्थो॥

इसी श्लोकके अनुरूप एक श्लोक 'सदुक्तिकर्णामृत' में मिलता है—

यो लीलया गोकुलगोपनाय गोवर्धनं भूधरमुद्दधार।
स्विन्नः सकम्पः स बभूव राधापयोधरक्ष्माधरदर्शनेन॥

महाकवि कालिदासने मेघदूतमें गोपवेशधारी विष्णुका वर्णन किया है और रघुवंशमें इन्दुमतीके स्वयंवरमें जिस प्रकार वृन्दावनके सौन्दर्यका वर्णन किया गया है, उससे पता लगता है कि कवि व्रजसौन्दर्यकी स्मृतिसे मुग्ध हो गया है।

श्रीनिम्बार्काचार्यको उनके भक्तगण तो द्वापरके अन्तमें प्रकट मानते हैं, पर आधुनिक विद्वान् उनका समय १२वीं शताब्दी मानते हैं। उन्होंने स्पष्टरूपसे अपने सम्प्रदायमें श्रीराधाकृष्ण-उपासनाका प्रवर्तन किया था। उनकी रचनाओंमें राधाका नाम प्रचुरतासे आता है। उनकी वेदान्तकामधेनु 'दशश्लोकी' का यह श्लोक देखिये—

अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥

पंचतन्त्रकी रचना लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व हुई थी, उसमें वर्णन है कि एक तन्तुवाय (बुनकर)-का पुत्र श्रीकृष्ण बनकर अपने सूत्रधार मित्रकी सहायतासे लकड़ीके बने गरुड़पर सवार होकर किसी राजाके अन्त:पुरमें पहुँच गया और उसने अपनी प्रणयिनी राजकन्यासे कहा—

'सुभगे! सत्यमभिहितं भवत्या परं किंतु राधा नाम मे भार्या गोपकुलप्रसूता प्रथममासीत्।'

बारहवीं शतीका भक्त जयदेवरचित प्रसिद्ध 'गीतगोविन्द' तो राधापर ही आधारित है।

प्राय: बारह सौ वर्ष पूर्व हुए भट्टनारायणने अपने 'वेणीसंहार' नाटकके मंगलाचरणके श्लोकमें '**श्रीहरिचरणयोरञ्जलिरयम्**' अर्पण करते हुए प्रार्थना की है—

कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशितपदस्योद्भूतरोमोद्गते-
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु वः॥

लगभग एक हजार वर्ष पूर्व संकलित नेपालमें प्राप्त 'कवीन्द्रवचन-समुच्चय' में भी राधाका नाम है—

× × धेनुदुग्धकलशानादाय गोप्यो गृहं
दुग्धे वष्कयिणीकुले पुनरियं राधा शनैर्यास्यति।
इत्यस्य व्यपदेशगुप्तहृदयः कुर्वन् विविक्तं व्रजं
देवः कारणनन्दसूनुरशिवं कृष्णः स मुष्णातु वः॥

कवि क्षेमेन्द्रके दशावतारचरितमें राधाका उल्लेख है—

इत्यभून्मदनोद्दामयौवने कालियद्विषि।
गोपांगनानां संरम्भगर्भोपालम्भविभ्रमः॥
प्रीत्यै बभूव कृष्णस्य श्यामानिचयचुम्बिनः।
जाती मधुकरस्येव राधैवाधिकवल्लभा॥

प्राय: एक हजार वर्ष पूर्व काश्मीरके प्रसिद्ध आलंकारिक विद्वान् आनन्दवर्धनके 'ध्वन्यालोक' ग्रन्थमें उद्धृत किसी पूर्ववर्ती कविके द्वारा रचित दो श्लोकोंमें श्रीराधा-कृष्णकी लीलाओंका वर्णन है—

तेषां गोपवधूविलाससुहृदां राधारहःसाक्षिणां
क्षेमं भद्र कलिन्दशैलतनयातीरे लतावेश्मनाम्।
विच्छिन्ने स्मरतल्पकल्पनमृदुच्छेदोपयोगेऽधुना
ते जाने जरठीभवन्ति विगलन्नीलत्विषः पल्लवाः॥
दुराराधा राधा सुभग यदनेनापि मृजत-
स्तवैतत् प्राणेशाजघनवसनेनाश्रु पतितम्।
कठोरं स्त्रीचेतस्तदलमुपचारैर्विरम हे
क्रियात् कल्याणं वो हरिरनुनयेष्वेवमुदितः॥

इसके अतिरिक्त दक्षिणके बहुत-से प्राचीन ग्रन्थोंमें राधाका उल्लेख है। भक्तकवि बिल्वमंगलका 'कृष्ण-कर्णामृत' तो श्रीराधा-कृष्णलीलासे ही ओतप्रोत है।

वेदमें 'राधस्' आदि शब्द बहुत जगह आये हैं। इसके विभिन्न अर्थ किये गये हैं। हो सकता है कि वेदके कोई विशिष्ट विद्वान् इसका स्पष्ट 'राधा' ही अर्थ करें।

महाभारतके प्रसिद्ध टीकाकार महान् विद्वान् श्रीनीलकण्ठजीने ऋग्वेदके बहुत-से मन्त्रोंके भगवान् श्रीकृष्णके लीलापरक अर्थ किये हैं। उनका इस विषयपर एक ग्रन्थ ही है—जिसका नाम है 'मन्त्रभागवत'। इसमें नीलकण्ठजीने निम्नलिखित मन्त्रमें राधाके दर्शन किये हैं—

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
प्रपिन्वध्वमिषयन्ती सुराधा आवक्षाणाः पृणध्वं यात शीभम्॥

(ऋग्वेद ३। ३३। १२)

राधाजी गोपांगनाओंमें सर्वोपरि महत्त्व रखती हैं—इसलिये यहाँ उन्हें 'सुराधा' कहा गया है।

इसके अतिरिक्त ऋक्-परिशिष्टके नामसे निम्नलिखित श्रुति निम्बार्क-सम्प्रदायके उदुम्बरसंहिता, वेदान्तरत्नमंजूषा, सिद्धान्तरत्न आदि ग्रन्थोंमें तथा श्रीश्रीजीव गोस्वामीके प्रसिद्ध ग्रन्थ श्रीकृष्णसंदर्भ अनुच्छेद १८९ में उद्धृत की हुई मिलती है—

'राधया माधवो देवो माधवेन च राधिका। विभ्राजन्ते जनेष्वा। योऽनयोर्भेदं पश्यति स मुक्तः स्यान्न संसृतेः।'

अर्थात् 'भगवान् श्रीमाधव श्रीराधाके साथ और श्रीराधा श्रीमाधवके साथ सुशोभित रहती हैं। मनुष्योंमें जो कोई इनमें अन्तर देखता है, वह संसारसे मुक्त नहीं होता।'

वैष्णव-दार्शनिक श्रीबलदेव विद्याभूषणने अपने 'प्रमेयरत्नावली' नामक ग्रन्थ (१।१५)-में अथर्ववेदीय

पुरुषबोधिनी श्रुतिका यह मन्त्रांश उद्धृत किया है—

'गोकुलाख्ये माथुरमण्डले'''' द्वे पार्श्वे चन्द्रावली राधिका च,''''यस्या अंशे लक्ष्मीदुर्गादिका शक्तिः।'

कई उपनिषदोंमें राधाके नाम और प्रसंग हैं। भगवान् शंकराचार्य—जिनको सम्प्रदाय-मतसे ईसापूर्व चौथी शताब्दीमें अवतरित मानते हैं, अपने यमुनाष्टकमें कहते हैं—

'विधेहि तस्य राधिकाधवाङ्घ्रिपंकजे रतिम्।'

'हे यमुने! राधिकावल्लभके चरणकमलमें रति प्रदान कीजिये।'

श्रीमद्भागवतमें और विष्णुपुराणमें भी प्रच्छन्नरूपसे राधाका उल्लेख है। इसके सिवा पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, भविष्यपुराण, श्रीमद्देवीभागवत, मत्स्यपुराण, आदिपुराण, वायुपुराण, वराहपुराण, नारदीयपुराण, गर्गसंहिता, सनत्कुमारसंहिता, नारदपांचरात्र, राधातन्त्र आदि अनेकों ग्रन्थोंमें 'राधा-महिमा' का स्पष्ट उल्लेख है। इससे यह कहना सर्वथा भ्रम है कि राधा-कथाका समावेश या राधा-नामका प्रचार तीन-चार सौ वर्षसे ही हुआ है। उपर्युक्त प्रमाण भक्त-प्रेमियोंके लिये नहीं दिये गये हैं, वे तो शंकाशील बुद्धिवादी पुरुषोंकी शंका-निवृत्तिके लिये हैं। पर संदेहवादी पुरुषोंका संदेह इससे पूर्णतया निवृत्त हो ही जायगा, यह नहीं कहा जा सकता। हाँ, संदेहवादी पुरुषोंके तर्कसे श्रद्धालु लोग भ्रममें न पड़ जायँ, इसमें यह विवेचन सहायक हो सकता है।

श्रुतिवाक्योंमें कृष्णभक्तोंकी भावुकता

ऋग्वेदकी **'कृष्णं नियानम्'** यह श्रुति बतलाती है कि कृष्णके भक्त अत्यन्त भावुक हुआ करते हैं। नीतिश्लोकमें इसी श्रुतिका भावानुवाद प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि भगवान्‌का संयोग रहनेपर वे तो आसमानमें उड़ने लगते हैं, पर उनका वियोग होनेपर चेतनाशून्य हो जमीनपर गिरने और लोटने लगते हैं—

उद्यतां दिवि संयोगे वियोगे पतनं भुवि।
कृष्णानुरक्तभक्तानां ब्रूते कृष्णमिति श्रुतिः॥

तात्पर्य यह कि भक्तोंके लिये भगवान्‌का संयोग बहुत बड़ा आधारस्तम्भ है। इसीलिये तो वे अधर आकाशमें बिना पंख उड़ने लगते हैं, पर जब उनका वियोग होता है तो स्थिर आधार पृथ्वी भी उन्हें खड़ा रखनेकी सामर्थ्य नहीं रख पाती। वे पृथ्वीपर लोटने लगते हैं। सचमुच उनकी भावुकता अद्भुत है!

श्रीमद्भागवत (दशम स्कन्ध अ० ३९)-में नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रके वृन्दावनसे मथुरा चले जानेपर उनके प्रिय भक्त व्रजवासियोंकी विरह-दशाका विस्तारके साथ बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है। अतः वह प्रसिद्ध कथा पुनः यहाँ न देकर श्रुतिने व्रजवासियोंका जो तत्कालीन चित्र खींचा है, वही देना पर्याप्त होगा, जो निम्न ऋचासे स्पष्ट है—

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
त आववृत्रन् त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते॥

(ऋक्० १। १६४। ४७)

अर्थात् 'जब श्रीकृष्णने वृन्दावनसे मथुराके लिये प्रस्थान किया और व्रजवासी उन्हें विदा देकर लौटे तो उनकी आँखोंसे अविरल अश्रुधाराएँ बहने लगीं, जिससे सारी व्रजभूमि क्षणमात्रमें न केवल सिक्त, प्रत्युत पंकिल भी हो उठी। जो व्रजवासी नन्दनन्दन त्रिलोकीपति श्रीकृष्णके साथ भोजन, वार्तालाप, हास-परिहास, क्रीडा-लीला आदि करते हुए हर्षित हो आकाशमें दो-दो हाथ उछलते थे, आज वे ही चेतनाशून्य हो राजमार्गपर लोट रहे हैं। उनका परम प्रिय श्रीकृष्ण आज उन्हें छोड़ मथुरा चला जा रहा है। वे उसका विरह सह नहीं पा रहे हैं। उनका हृदय टूक-टूक हुआ जा रहा है। इस आख्यानका उल्लेख ऋग्वेदके अतिरिक्त अथर्ववेद (६। २२। १, ९। १०। २२, १३। ३। ९), तैत्तिरीयसंहिता ३। १। ११। ४ एवं निरुक्त (७। १४)-में भी प्राप्त होता है।

पुराणोंमें राधा-माधव

पुराण-वाङ्मयमें कृष्ण-चरित प्रचुररूपमें प्रायः सर्वत्र निबद्ध है, कृष्णके बाल-चरितके अतिरिक्त उनके गोपीप्रेम एवं रासलीलाके मधुर-प्रसंग भी पर्याप्त मिलते हैं। परंतु श्रीराधाजीका वर्णन खोजनेपर कुछ ही पुराणोंमें कठिनतासे प्राप्त होता है; क्योंकि कई पुराणोंमें जहाँ श्रीराधाजीका स्पष्ट वर्णन प्राप्त है, जैसे पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, देवीभागवत इत्यादि तो वहीं अनेक पुराणोंमें उनका नाम दिये बिना ही सांकेतिक शैलीमें गोपीविशेषका विवरण प्राप्त होता है। यथा श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण इत्यादि। इसके अनेक कारण हैं। आधुनिक ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे विचार करनेवाले विद्वान् भले ही उनसे सन्तुष्ट हों अथवा न हों; पर श्रद्धा-विश्वाससे सम्पन्न भक्त-हृदय विद्वानोंके लिये वे सन्तोषजनक ही नहीं अपितु पर्याप्त भी हैं। जहाँतक श्रीमद्भागवतमें 'राधा' नाम न होनेका प्रश्न है तो इसका उत्तर यह है कि श्रीमद्भागवतमें तो यों श्रीयशोदाजीको छोड़कर किसी भी गोपीका नाम नहीं है, इसलिये राधाजीका नाम न होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; परंतु भागवतमें श्रीराधा हैं, यद्यपि वे दूधमें घृतकी भाँति अप्रकट हैं। भगवद्भक्त अनुभवी टीकाकारोंने श्रीराधिकाजीका भागवतमें प्रत्यक्ष किया है और उन्होंने संकेत भी किये हैं—

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः॥

(श्रीमद्भा० २। ४। १४)

'**सात्वत**—भक्तोंके पालक, कुयोगियोंके लिये दुर्ज्ञेय प्रभुको हम नमस्कार करते हैं। वे भगवान् कैसे हैं? **स्वधामनि**—अपने धाम वृन्दावनमें; **राधसा**—श्रीराधाके साथ; **रंस्यते**—क्रीड़ा करनेवाले हैं और वे राधा कैसी हैं? जिन्होंने समानता और आधिक्यको निरस्त कर दिया है अर्थात् जिनसे बढ़कर तो क्या, समानता करनेवाला भी कोई नहीं है।'

अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३०। २८)

रास-प्रसंगमें एक गोपी कहती है—'अवश्य ही सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी वे 'आराधिका' (आराधन करनेवाली राधिका) होंगी। इसीलिये उनपर प्रसन्न होकर हमारे प्यारे श्रीकृष्णने हमको छोड़ दिया है और उन्हें एकान्तमें ले गये हैं।'

'राध्' धातुसे राधा शब्द बनता है और इसी प्रकार सकारान्त 'राधस्' शब्द भी 'राध्' धातुसे ही बनता है।

इस प्रकार गहराईसे देखनेवालोंको श्रीमद्भागवतमें, लीलामें तथा शब्दोंमें भी श्रीराधाके स्पष्ट दर्शन होते हैं।

वस्तुतः श्रीमद्भागवतका हृदय है—दशम स्कन्ध और दशमस्कन्धका हृदय है—रासपंचाध्यायी। इस रासपंचाध्यायीकी प्राण गोपिकाशिरोमणि श्रीराधारानीजी हैं। परंतु केवल अधिकारी रसिक भक्तोंके लिये प्रकाश्य जानकर इसमें उनका प्रत्यक्ष वर्णन न करके परोक्ष वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार विष्णुपुराणमें पंचम अंशके अड़तीस अध्यायोंमें कृष्ण-चरित वर्णित है। इनमेंसे तेरहवें अध्यायमें रासलीलाका वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ भी भागवतकी तरह एक अनाम पुण्यशालिनी गोपीका वर्णन दिया गया है, जिसे लेकर कृष्ण एकान्तमें चले गये हैं। ब्रह्मपुराणके १८९वें अध्यायमें भी यही विवरण संक्षेपमें प्राप्त होता है।

राधाके विस्तृत वर्णन, विविध लीला-कथाएँ जिन वैष्णव पुराणोंमें प्राप्त होती हैं, उनमें पद्मपुराण एवं ब्रह्मवैवर्त्तपुराणका स्थान सर्वोपरि है। इनमें पद्मपुराणका ब्रह्मखण्ड एवं पातालखण्ड नामक भाग तो राधा-कृष्णकी अनेक लीलाओंसे ओत-प्रोत है। इनमें राधाके

माहात्म्य, जन्म, लीला-कथाएँ, अन्त:कथाएँ तथा विरह सभी विस्तारसे वर्णित हैं। कुछ संस्करणोंमें ब्रह्मखण्ड स्वर्गखण्डमें ही समाविष्ट मिलता है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके 'कृष्णजन्मखण्ड' नामक बृहद् खण्डके १३१ अध्यायोंमें कृष्णका चरित बड़े समारोहपूर्वक प्रस्तुत किया गया है। इसमें राधाजीके आदर्श नारीरूपका सुन्दर चित्रण करते हुए उन्हें कृष्णकी स्वकीय शक्ति बताया गया है। इसी क्रममें भाण्डीरवनमें कृष्णके साथ उनके विवाहका वर्णन किया गया है, जिसे ब्रह्माजीने स्वयं पुरोहित बनकर सम्पन्न कराया है। इस पुराणमें कृष्णकी रासलीला, मथुरागमन, राधा आदि गोपियोंकी विरहव्यथा, उद्धवका राधाजीसे मार्मिक वार्तालाप, उद्धवद्वारा राधाजीकी स्तुति, सिद्धाश्रममें राधा-कृष्णकी पुन: भेंटसे लेकर राधाके गोलोक-गमनतकका सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णित है। राधा एवं कृष्णतत्त्वका उद्घाटन, उनके नामोंकी व्युत्पत्ति एवं कीर्तन आदिका माहात्म्य इस पुराणमें कई स्थलोंपर आया है। इसीलिये ब्रह्मवैवर्तपुराणको श्रीराधामाधवकी लीलाओंके प्रसंगमें प्राचीनकालसे अत्यन्त आदरणीय स्थान प्राप्त है।

इसके अतिरिक्त भी अन्य शैव, शाक्त एवं वैष्णव पुराणोंमें राधा-माधवके अल्पाधिक विवरण प्राप्त होते हैं। जैसे—आदिपुराण नामक उपपुराणमें 'कीर-भृंग-संवाद' के रूपमें निबद्ध १२वें अध्यायमें राधाके जन्मादि, वंश, माता, पिता, विवाह तथा उनके श्रीदामा आदि चार भाइयोंका ऐतिहासिक विवरण दिया गया है। स्थानाभावके कारण यहाँ अत्यन्त सांकेतिक रूपसे यह संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है।

'मैं गोपी गोपीनाथकी'

(पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम', साहित्याचार्य)

जाने कबसे भटक रही थी भ्रान्ति-भँवरमें भूलमें?
बहती रुकती ठहर न पाती मझधारामें कूलमें।
फूल समझती थी काँटेको काँटा देखा फूलमें,
मधुर अमृत फल खोज रही थी अरणी और बबूलमें॥
संत-कृपा! ध्वनि पड़ी कानमें प्रियतमके गुण-गाथकी,
सहसा आयी याद अहो! मैं गोपी गोपीनाथकी॥

मैं ही केवल नहीं संगिनी! तुम भी गोपकिशोरिका,
गोप एक गोपीवल्लभ हैं, बाकी सब हैं गोपिका।
प्रेममार्गकी अनन्यताके व्रतकी हम सब रोपिका,
सावधान! इस मर्यादाकी बनो नहीं तुम लोपिका॥
याद रहे—'हम सब चेरी हैं, उन अनाथके नाथकी।
मैं गोपी गोपीनाथकी॥

भूल गयीं तुम अरी गोपियो! अपने प्रेम-प्रबन्धको,
अपने उस स्वरूपको भूलीं अपने उस सम्बन्धको।
अन्धकूप है घोर सामने, ठहरो ठहरो बावली!
तुम अंधी-सी चली जा रहीं बना अग्रणी अन्धको॥
डिगने दो मत पाँव कभी! तुम रख लो लज्जा माथकी।
मैं गोपी गोपीनाथकी॥

याद करो—उस परम व्योमको सच्चित् सुखमय धामको,
विरजातटको, गोवर्धनको, गौओंको, घनश्यामको।
रसिक प्रिया-प्रियतमको उनकी लीला ललित ललामको,
अष्टयाम सेवाको उनकी उनके पावन नामको॥
प्राणसँघाती वे हम सबके हम हैं उनके साथकी।
मैं गोपी गोपीनाथकी॥

जगके वैभव-भोग लुभाते? भोग नहीं ये रोग हैं!
प्रेमधामसे दूर सदा ही भवके भोगी लोग हैं।
योगी जाते सिर्फ वहाँपर प्रेम वहाँका योग है,
जिससे सुलभ युगल प्रियतमकी सेवाका संयोग है॥
सूत्रधार हम-सबके वे, हम पुतली उनके हाथकी।
मैं गोपी गोपीनाथकी॥

श्रीमाहेश्वरतन्त्रमें परब्रह्म-तत्त्वकी रास-लीला

(पं० श्रीश्यामबिहारीजी दुबे)

'तन्त्र' शब्द प्रायः किसी शास्त्रविशेष या दार्शनिक सिद्धान्तका बोध करानेके लिये प्रयुक्त होता है। इसमें विभिन्न देवी-देवताओंकी पूजा-पद्धति एवं उनके दार्शनिक मतका प्रतिपादन होता है। इसे तन्त्र इसलिये कहा जाता है; क्योंकि यह आध्यात्मिक तत्त्वों और मन्त्रोंके महान् अर्थका विस्तार करता है तथा विपत्तियोंसे हमारी रक्षा करता है—

तनोति विपुलानर्थान् तत्त्वमन्त्रसमन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात् तन्त्रमित्यभिधीयते॥

भगवान् शिव और पार्वतीके संवादके रूपमें माहेश्वरतन्त्रका वर्णन आता है। यह ५१ पटलों और ३०६० श्लोकोंमें निबद्ध है। भगवान् शिव कहते हैं हे पार्वति! मेरे द्वारा चौंसठ तन्त्र कहे गये हैं—**'चतुःषष्टीनि तन्त्राणि मयैवोक्तानि पार्वति।'** उन तन्त्रोंमें मायामें पड़े हुए जीवोंके लिये मात्र मायामयी विद्याओंका ही वर्णन है, परंतु यह माहेश्वरतन्त्र, जिसे मैंने समाधिमें सुना था, वह ब्रह्मज्ञानप्रिय जिज्ञासुओंके प्रबोधका साधनीभूत है—ऐसा मेरा मत है। अतः इस माहेश्वरतन्त्रका ईश्वरके तत्त्वज्ञानके अतिरिक्त कोई अन्य प्रयोजन नहीं है—

मायिकं वर्णितं सर्वं मायाजीवोपयोगिकम्।
इदं माहेश्वरं तन्त्रं समाधौ यच्छ्रुतं मया॥
प्रबोधसाधनीभूतं प्रियाणामिति मे मतम्।
अन्यथेश्वरविज्ञानान्नान्यदेतत्प्रयोजनम्॥

(माहेश्वरतन्त्र २६। १४-१५)

पार्वतीजीके ब्रह्मसम्बन्धी प्रश्न करनेपर भगवान् शिव कहते हैं—चित्रूप ब्रह्म श्रेष्ठ है, नित्य है, अक्षर है और अव्यय है। वही ब्रह्म बाललीला-विनोदकी भाँति करोड़ों ब्रह्माण्डसमूहोंकी रचना करता है और उनका संहार भी करता है, फिर भी वह निर्विकार ही रहता है। उस अक्षर (जिसका कभी क्षरण नहीं होता उस)-ब्रह्मसे भी ऊपर परमानन्द-सुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो अनेक प्रकारकी क्रीड़ाओंद्वारा नित्य वृन्दावनमें आनन्द करनेवाले तथा रसके समुद्र हैं—

चिद्रूपं ब्रह्म परमं नित्यमक्षरमव्ययम्।
बाललीलाविनोदेन कोटिब्रह्माण्डसंहतीः॥
सृजते संहरत्येव निर्विकारं तथापि यत्॥
तस्मादप्यक्षरादूर्ध्वं परमानन्दसुन्दरम्।
नित्यवृन्दावनानन्दि नानाक्रीडारसार्णवम्॥

(माहेश्वरतन्त्र ७। ६-७)

भगवान् शिव आगे कहते हैं—हे सुन्दरि! अक्षरब्रह्म और पुरुषोत्तमसंज्ञक परमात्मा—दोनों एक ही हैं, लीलाके कारण ही उनमें भेद है—

अक्षरः परमात्मा च पुरुषोत्तमसंज्ञकः।
उभावप्येक एवार्थौ लीलाभेदेन सुन्दरि॥

(माहेश्वरतन्त्र ७। ७९)

इस ग्रन्थमें परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण और उनकी प्रिया श्रीराधारानीकी दिव्य लीलाका वर्णन है। इस सन्दर्भमें भगवान् शिव पार्वतीजीसे कहते हैं—

दिदृक्षा ह्यक्षरस्यासील्लीलाया दर्शने प्रिये।
पूर्णप्रियाप्रेम पश्ये विलसत्पुरुषोत्तमे॥

(माहेश्वरतन्त्र ७। ८१)

अर्थात् हे प्रिये! लीलाविलासमें अक्षरब्रह्मकी दिदृक्षा (अपनी लीलाको देखनेकी कामना) ही कारण है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उन परम पुरुषकी अपनी आह्लादिनी शक्तिके प्रति जो सनातन अनुरक्ति है, वही उनमें समग्रतया विलसित हो रही है।

आगेकी कथामें शिवजी कहते हैं—हे महेश्वरि! परमानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण नन्दके घरमें उत्पन्न हुए और उनकी प्रियाएँ व्रजमें गोपकन्याओंके रूपमें उत्पन्न हुईं। उस समय लीलापुरुषोत्तम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने उनकी कामनाओंकी पूर्तिके लिये उनके साथ रासलीला की—

श्रीकृष्णः परमानन्दो नन्दगेहेऽभवत्तदा।
गोपकन्यामिषेणैव ह्याविर्भूतास्ततः प्रियाः॥

तत्कामपूर्त्तये साक्षात् श्रीकृष्णः पुरुषोत्तमः।
रासलीलां प्रकुर्वाणो रमयामास ताः प्रियाः॥

(माहेश्वरतन्त्र २२।२०-२१)

जब-जब परब्रह्म परमात्माका सगुणरूपमें अवतरण होता है, तो उनके साथ ही उनकी शक्ति और परिकर भी उत्पन्न होते हैं। कृष्णावतार भगवान्‌का लीला-पुरुषोत्तम अवतार था, अतः उनके साथ ही सखियोंसहित राधिकाजी भी आविर्भूत हुईं। श्रीराधिकाजी, जो सब सखियोंकी स्वामिनी हैं, उन्होंने वृषभानुके घरमें जन्म लिया तथा अन्य सखियोंने मथुरामण्डलस्थित गोकुलमें विभिन्न गोपोंके घरमें गोपियोंके रूपमें जन्म लिया। माहेश्वरतन्त्रमें इसका वर्णन करते हुए भगवान् शिव कहते हैं—

स्वामिनीसहिताः सर्वाः सख्यस्तन्मुखपङ्कजम्।
वीक्ष्यमाणा इवातस्थुः प्रभुश्चापि तथा स्थितः॥
वासनांशैर्गताः सर्वा मथुरामण्डलस्थिते।
गोकुले गोपिका जाता गोपगेहेषु ताः पृथक्॥
वृषभानुगृहे जाता राधिकेति च विश्रुता।
स्वामिनीवासनालेशः केनाप्यंशेन सुन्दरि॥

(माहेश्वरतन्त्र ९।२—४)

वस्तुतः गोलोकमें श्रीराधामाधवकी लीला नित्य है, कृष्णावतारके समय वृन्दावनमें हुई रासलीला उसीके प्रतिबिम्बकी भाँति थी। उस लीलाके विषयमें पार्वतीजी पूछती हैं—

कीदृशी सा भवेल्लीलानुभूता निगमैः कथम्।
शब्दात्मकः कथं वेदो रसानुभवमर्हति॥
एतदाख्याहि भगवन् यदि योग्यं भवेन्मम।

(माहेश्वरतन्त्र ४८।१६-१७)

अर्थात् वह गोलोकलीला कैसी होती है? वेदोंके द्वारा वह कैसे अनुभूत हुई; क्योंकि वेद तो शब्दात्मक हैं, वे कैसे रसका अनुभव करेंगे? हे भगवन्! यदि यह मुझसे कहनेयोग्य हो तो कहिये।

शिवजीने कहा—हे पार्वति! एक बार वेदोंने परब्रह्म परमात्माकी स्तुतिकर कहा—हे प्रभो! आप निर्गुण ब्रह्ममें आपके विभिन्न रूपोंका अविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है, अतः आप अपने निर्गुणसे अलग सगुण रूपका दर्शन करायें। इस प्रकार वेदोंके बारम्बार प्रार्थना करनेपर वहाँ गोलोक-लीला प्रकट हो गयी। वेदोंने देखा कि यमुनाजीका मनोरम तट हैं, अनेक श्रेष्ठ वृक्षसमूहोंसे युक्त वृन्दावन है, मनोहर कुंज हैं; गायों और गोपियोंके समूह हैं, पक्षी कलरव कर रहे हैं; वहाँ नवनीरदश्याम श्रीकृष्ण मोरपंखका मुकुट सिरपर धारण किये वंशी बजा रहे हैं। उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा है। वे भगवान् श्रीकृष्ण करोड़ों सूर्योंकी प्रभासे शोभायमान विग्रहवाले हैं, वे करोड़ों चन्द्रमाओंके दर्पका हरण करनेवाले हैं, उनके श्रीविग्रहकी कान्ति करोड़ों कामदेवोंकी कान्तिको तिरस्कृत कर रही है और वे करोड़ों समुद्रोंके समान गम्भीर हैं। उन लावण्यनिधि भगवान् श्रीकृष्णको गोपियों और पार्श्वस्थित राधाजीके साथ देखकर श्रुतियाँ अत्यन्त विस्मित हुईं। कोई गोपी उन्हें चँवर डुला रही थी, कोई उनके सम्मुख दोनों हाथ जोड़े खड़ी थी, कोई गोपी मणिमयी दीपपंक्ति सजाकर राधा-माधवके मुखकी आरती उतार रही थी—

काचिद् गोपी सचमरकरा बीजयन्ती स्वकान्तं
काचिच्चाग्रे करयुगपुटं कृत्य तस्थौ निरीहा।
काचित् स्थाल्यां मणिगणमयीं कृत्य दीपावलिं तां
राधाकृष्णप्रतिमुखगता कुर्वती दीपकृत्यम्॥

(माहेश्वरतन्त्र ५०।४५)

कोई गोपी कृष्णके मुखको देखकर चित्रलिखित-सी खड़ी थी तो कोई कृष्णके करकमलोंको अपने हृदय-देशपर स्थापित कर रही थी। कोई उनके चरण कमलोंको अपने सिरपर रखे थी, कोई नृत्य कर रही थी तो कोई ताली बजाकर कृष्ण-कीर्तन करती हुई नृत्य कर रही थी।

इस प्रकार वृन्दावनमें रासके रसानन्दमें उन्मत्त गोपियोंके मध्यमें स्थित श्रीकृष्णको देखकर श्रुतियोंने प्रणाम किया और भगवान्‌के 'वर माँगो' कहनेपर कहा—हे प्रभो! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं तो जैसे आपके साथ आपकी प्रिया गोपियाँ शोभित होती हैं, वैसी

ही लालसासे हम लोगोंका भी मन आकुलित है—

विलसन्ति यथा गोप्यस्त्वत्प्रिया भवता सह।
जायते च तथास्माकं रिरंसाकुलितं मनः॥

(माहेश्वरतन्त्र ५०।५०)

इसपर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे श्रुतियो! तुम्हारी यह कामना आकाशकुसुमके समान दुर्लभ है, मेरे इस गोलोकधामको वेदमार्गसे कोई नहीं प्राप्त कर सकता, फिर भी पद्मकल्पमें मथुरामण्डलमें गोलोकलीलाके आश्रयभूत वृन्दावनका अवतरण होगा, उसी समय तुम लोग भी मेरी प्रियाओंके साथ पुरुषत्वको छोड़कर कामिनीभावको प्राप्त कर रहोगी।

इस प्रकार वृन्दावनकी रासलीला नित्य है, जो नित्य गोलोकधाममें होती है। भगवान् शंकर कहते हैं—हे शिवे! रासलीलारूपी रससमुद्रके पार जानेमें कौन समर्थ है? मैंने जो वर्णन किया, वह तो संकेतमात्र है—

रासलीलारसाम्भोधेः पारं गन्तुं क ईश्वरः।
दिङ्मात्रदर्शनं विद्धि यन्मया वर्णितं शिवे॥

(माहेश्वरतन्त्र ५०।६८)

श्रीराधाका माधवके प्रति अनन्य प्रेमभाव

गोपीनां पशुपेन्द्रनन्दनजुषो भावस्य कस्तां कृती
विज्ञातुं क्षमते दुरूहपदवीसञ्चारिणः प्रक्रियाम्।
आविष्कुर्वति वैष्णवीमपि तनुं तस्मिन् भुजैर्जिष्णुभि-
र्यासां हन्त चतुर्भिरद्भुतरुचिं रागोदयः कुञ्चति॥

(ललितमाधव)

'गोपांगनाओंके पशुपेन्द्रनन्दन (नन्दनन्दन)-निष्ठ और दुरूह मार्गपर चलनेवाले भावकी प्रक्रियाको (एकमात्र व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही गोपियोंके इस कान्ता-प्रेमके विषयालम्बन हैं—इस भावकी पद्धतिको) समझनेमें कौन कृती व्यक्ति समर्थ है? क्योंकि आश्चर्यका विषय है कि अपने द्विभुज रूपको छिपानेके लिये स्वयं श्रीनन्दनन्दन ही यदि अपने शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी विजयशील चार भुजाओंके द्वारा सुशोभित अपनी ही विष्णुमूर्ति प्रकट करते हैं तो उससे भी गोपांगनाओंके अनुरागका उल्लास—कान्ताभावका प्रेम संकुचित हो जाता है।'

किसी कल्पमें एक समय श्रीकृष्णके विरहसे अधीर होकर श्रीराधाजी यमुनामें कूद पड़ी थीं; यह देखकर विशाखादि सखियाँ भी यमुनामें कूद गयीं। तब सूर्यसुता यमुनाजी उनको सूर्यलोकमें ले जाकर सूर्यदेवताकी देख-रेखमें छोड़ आयीं। वहाँ भी श्रीकृष्णके वियोगमें राधाजी अत्यन्त व्याकुल हो गयीं। तब सूर्यपत्नी छायाने श्रीराधाको सान्त्वना प्राप्त करानेके लिये एक उपाय सोचा। छायादेवीने विचार किया कि 'सूर्यमण्डल-मध्यवर्ती श्रीनारायण स्वरूपतः श्रीकृष्णसे अभिन्न हैं। अतः सूर्यमण्डल-स्थित नारायण ही श्रीराधाके प्रियतम हैं, उनसे मिलते ही श्रीराधाको सान्त्वना प्राप्त हो जायगी।' यह सोचकर उन्होंने राधासे कहा—'राधे! तुम व्याकुल मत होओ, तुम्हारे प्राणवल्लभ इस सूर्यमण्डलमें ही स्थित हैं।' छायादेवीकी बात सुनकर राधा-सखी विशाखाने छायासे जो कुछ कहा था, वही उपर्युक्त श्लोकमें है। विशाखाने इससे छायादेवीको यह समझाया कि 'तुम समझती हो विष्णुमूर्तिके दर्शन करते ही श्रीराधाकी विरह-व्यथा शान्त हो जायगी; पर यह तुम्हारी भ्रान्त-धारणा है। इस ऐश्वर्यमयी विष्णुमूर्तिकी बात तो दूर, स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन भी कौतुकवश अपने व्रजके सारे माधुर्यको ज्यों-का-त्यों बनाये हुए ही यदि चतुर्भुज रूप धारण कर लेते हैं तो उस पूर्ण-माधुर्यमय चतुर्भुज रूपको देखकर ही श्रीराधाका कान्ताभाव संकुचित हो जाता है। वरं राधाके सामने ऐश्वर्यप्रधान चतुर्भुज रूप ठहर ही नहीं सकता। वस्तुतः वे वेणुकरधारी गोपवेश नवकिशोर नटवर श्यामसुन्दरके सिवा अन्य किसी रूपको देखना जानती ही नहीं, तब विष्णुस्वरूपकी क्या बात है!'

जयदेव—वृष्टि और सृष्टिके कवि

(श्रीनर्मदाप्रसादजी उपाध्याय)

पावससे अपने मंगलश्लोकको अभिषिक्तकर, वसन्तके रससे अपनी रचनाके शब्द-शब्दको रच देनेवाले श्रीजयदेव वृष्टि और सृष्टिके महाकवि हैं। 'गीतगोविन्द' के मंगलश्लोकमें वर्षा है; किंतु उसके बाद कहीं वर्षा नहीं है, सिर्फ सृष्टि-ही-सृष्टि है—वासन्ती रासकी, आकुल मनके आसकी, राधाके मानकी, कोयलके तानकी और अन्तत: राधाके इस उद्‌गानकी कि वे कृष्णसे कहें कि तुम अपनी तरह रच दो। यह समूचा काव्य वृष्टिसे आरम्भ होता है और नयी सृष्टिकी मनुहारपर विराम पाता है। 'गीतगोविन्द' के रचनाकार जयदेव भारतीय मनीषाके उस उत्कर्षके प्रतिनिधि हैं, जो प्रीतिके गीत तो रचती है; लेकिन ये गीत ऐसे हैं, जिनमें अध्यात्मकी अनुभूतिके स्वर निरन्तर गुंजित होते रहते हैं। 'गीतगोविन्द' को केवल घोर शृंगारिक काव्य कहना हमारी मनीषापरम्पराके मूल तत्त्वकी पहचानको ही नकारना है। 'गीतगोविन्द' एक चिर अभिलाषाका, सनातन आकुलताका काव्य है। यह मोक्षका भी मोक्ष है।

श्रीजयदेवका जन्म 'किन्दुबिल्व' अथवा केंदुली नामक ग्राममें हुआ था। यह स्थान पश्चिम बंगालके वीरभूमि जिलेके बोलपोर थानेके अन्तर्गत आता है। जयदेवके जीवन-चरितके सम्बन्धमें नाभादासने भक्तमाल (लगभग १५७८ ई०)-में विवरण दिया है। उनके प्रारम्भिक जीवनके विषयमें बहुत कम जानकारी मिलती है, किंतु यह स्पष्ट है कि उन्हें अपने जीवनके आरम्भिक कालमें ही संस्कृतका बहुत अच्छा ज्ञान हो गया था। नाभादास उन्हें गीतात्मकताका अवतार कहते हैं।

जयदेवके जीवनकी घटनाओंके सम्बन्धमें कोई विशद तथा प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती। यह ज्ञात होता है कि उनके माता-पिताकी मृत्यु उनके बचपनमें ही हो गयी थी तथा अत्यन्त विपन्न-अवस्थामें उनका बचपन निरन्तर भटकते हुए बीता। डॉ० एम० एम० रन्धावाने लिखा है कि केवल एक पीतलका कटोरा उनकी सम्पत्ति थी और यह यायावर कवि कभी किसी पेड़के नीचे दो रात्रिसे अधिकका समय व्यतीत नहीं कर पाता था।

जयदेवके जन्मके सम्बन्धमें यह किंवदन्ती प्रचलित है कि जयदेवके पिता पण्डित भोजदेवके पास प्रचुर धन था, किंतु सन्तानके अभावमें वे सदैव दुखी रहते थे। राधादेवी (रामादेवी) पुत्र-प्राप्तिके लिये निरन्तर व्रत-उपवास रखा करती थीं। एक दिन साधुके वेशमें प्रकट होकर भगवान्‌ने उन्हें आज्ञा दी कि तीर्थयात्रा करो। तब पण्डित भोजदेवने जगन्नाथपुरीकी यात्रा की तथा रथयात्राके समय जगन्नाथजीकी स्मृतिमें एक अष्टक रचा और उसका गान किया। अष्टककी टेक थी ***'जगन्नाथ: स्वामी नयनपथगामी भवतु मे'।*** जब अष्टकका पाठ समाप्त हो गया तब एक आश्चर्यजनक घटना घटी। भगवान् श्रीपुरुषोत्तमके श्रीअंगसे एक तेजपुंज प्रकट हुआ और वह भोजदेवजीके शरीरमें समा गया। इसके बाद एक निश्चित समय पूर्ण होनेपर उनके यहाँ एक पुत्रका जन्म हुआ, जिसका नाम जयदेव रखा गया।

माता-पिताविहीन होनेके पश्चात् जयदेवका भटकना आरम्भ हुआ। वे मथुरा-वृन्दावन घूमे और राधा-माधवकी प्रचलित कहानियोंको सुना। अन्तत: वे जगन्नाथपुरी आये। जगन्नाथपुरीमें देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण सपत्नीक भगवान् जगन्नाथकी आराधना कर रहा था; उसने भगवान् जगन्नाथसे प्रार्थना की कि यदि उसे कोई सन्तति होगी तो वह उसे उनकी सेवामें समर्पित कर देगा। कालान्तरमें उसके यहाँ एक कन्याका जन्म हुआ, जिसका नाम उसने पद्‌मावती रखा। पद्‌मावती अत्यन्त रूपवती एवं नृत्यनिपुणा थी। जब वह विवाहयोग्य हुई, तो भगवान् जगन्नाथने

देवशर्माको स्वप्नमें आदेश दिया कि इसे तुम मेरे ही स्वरूप जयदेवको समर्पित कर दो। जयदेव यद्यपि इच्छुक नहीं थे; किंतु पद्मावतीके यह कहनेपर कि मैं अब आपकी दासी हूँ, आप चाहें तो मुझे साथ रखें या मेरा परित्याग करें, मैं आपके दासत्वका परित्याग नहीं करूँगी; जयदेवने पद्मावतीसे विवाह कर लिया।

जयदेवने पद्मावतीका उल्लेख 'गीतगोविन्द' में प्रथम सर्गमें ही किया है—

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा
पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती॥

जयदेवकी एक पत्नी श्रीरोहिणीदेवीका उल्लेख भी मिलता है। वे पंजाबके सारस्वत गोस्वामी पूर्णचन्द्रकी कन्या थीं। यह प्रख्यात है कि जयदेव मृदंग बजाते थे और पद्मावती 'गीतगोविन्द' की अष्टपदियोंपर नृत्य करती थीं। 'दशावतार' पर पद्मावतीके द्वारा मोहक नृत्य किये जानेका भी उल्लेख है। जयदेव और पद्मावतीका वैवाहिक जीवन सुखी था। यह उल्लेख भी मिलता है कि जयदेवको व्रजयात्राके समय यमुनाकी तरंगोंके बीच राधा-माधवका विग्रह मिला था, जिसे वे सदैव अपने साथ रखते थे।

'गीतगोविन्द' और जयदेवसे जुड़ी प्रचलित अनेक किंवदन्तियोंमेंसे एक यह भी है कि जब वे दशम सर्गपर पहुँचे, तब एक व्यवधान उत्पन्न हुआ, जिसके कारण वे उस श्लोकको पूर्ण करनेमें हिचके। जयदेव लिखना चाहते थे, हे राधिके! मेरी ताप-शान्तिके लिये अपना चरणकमल मेरे सिरपर रख दीजिये—

स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं धेहि पदपल्लवमुदारम्।
ज्वलति मयि दारुणो मदनकदनानलो हरतु तदुपाहितविकारम्॥

लेकिन वे यह लिख नहीं पाये। अपने प्रभुके बारेमें ऐसा लिख पानेका साहस उनमें नहीं हुआ। वे इस श्लोकको अधूरा छोड़कर स्नान करने चले गये। जयदेवके जानेके कुछ देर बाद भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं जयदेवका वेश धारणकर उनके घर पहुँचे। पद्मावतीने जो भोजन तैयार किया था, वह भोजन उन्होंने किया, फिर पद्मावतीसे ग्रन्थ माँगकर इस श्लोकको पूर्णकर, शय्यापर विश्राम करने चले गये। इसी समय जब जयदेव लौटे, तो उन्होंने पद्मावतीको भोजन करते देखा। दोनों ही विस्मयसे पूर्ण थे। जयदेव चकित थे कि पद्मावती बिना उन्हें भोजन कराये कैसे भोजन कर रही है और पद्मावती विस्मित थी कि ये कौन-से जयदेव हैं? पद्मावतीने जब समूचा वृत्तान्त सुनाया, तो जयदेवने पोथी माँगी। पोथीपर श्लोक पूर्ण था और वह शय्या खाली थी। तब जयदेवने भी उस प्रसादको ग्रहण किया, जो भगवान् उस थालीमें छोड़ गये थे।

एक और किंवदन्ती यह है कि एक मालीकी कन्या पुरीमें जगन्नाथमन्दिरके पास बैंगनकी बाड़ीमें बैंगन तोड़ती जा रही थी और पाँचवें सर्गकी अष्टपदी भाव-विभोर हो गा रही थी—

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम्।
न कुरु नितम्बिनि! गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम्॥

इसे सुनकर स्वयं जगन्नाथजी उस कन्याके पीछे-पीछे हो लिये; वे उसका अनुसरण करने लगे, उनके वस्त्र झाड़ियोंमें उलझकर फट गये, लेकिन वे तबतक उस कन्याका अनुसरण करते रहे, जबतक कि वह गीत समाप्त नहीं हो गया। दूसरी सुबह जब पुरीके राजा मन्दिर गये और उन्होंने जगन्नाथजीके फटे वस्त्र देखे, तभीसे उन्होंने प्रतिबन्ध लगा दिया कि 'गीतगोविन्द' स्वच्छ एवं पवित्र स्थानपर ही गाया जाना चाहिये। पुरीमें आज भी यह गीत जगन्नाथजीकी मूर्तिके सम्मुख उनके विश्राम करनेके पूर्व गाया जाता है।

एक किंवदन्ती यह भी है कि एक बार पद्मावतीने निश्चय किया कि वह जगन्नाथजीको अत्यन्त पवित्र वस्तु अर्पित करेगी। उसने यह प्रण किया कि वह एक मासमें तुलसीके पत्रदलोंपर चन्दन एवं इत्रसे 'गीतगोविन्द' को लिखेगी तथा उन पत्रदलोंको

भगवान्‌को समर्पित करेगी, अन्यथा प्राण-त्याग कर देगी। समय कम था, किंतु अचानक दो रहस्यमय साधुओंने आकर यह कार्य पूर्ण कर दिया। पद्मावती निश्चित दिन उन पत्रदलोंको लेकर मन्दिर गयी; लेकिन पुजारियोंके अनुमति न देनेके कारण उसने उन पत्रदलोंको समुद्रमें प्रवाहित कर दिया। दूसरे दिन जब पट खुले, तो देखा गया कि जगन्नाथजीकी मूर्ति उन्हीं तुलसीके 'गीतगोविन्द' रचित पत्रदलोंसे आवेष्टित है।

एक और कथा यह है कि उड़ीसाके कवि तथा विद्वान् राजा पुरुषोत्तमदेव गणपतिने 'गीतगोविन्द' की प्रशंसा सुन 'अभिनवगीतगोविन्द' नामक ग्रन्थ की रचना की। उसने चाहा कि इस ग्रन्थको 'गीतगोविन्द' से श्रेष्ठ माना जाय; किंतु पण्डितोंने यह अस्वीकार कर दिया, तब दोनों ग्रन्थ भगवान्‌के कक्षमें रख दिये गये। दूसरे दिन जब द्वार खुले, तो देखा कि जयदेवका 'गीतगोविन्द' भगवान्‌के वक्षःस्थलपर रखा हुआ था तथा राजाका ग्रन्थ फर्शपर पड़ा था। तबसे राजा 'गीतगोविन्द' का भक्त हो गया।

कहा जाता है कि चैतन्यदेव 'गीतगोविन्द' की प्रत्येक अष्टपदीको मन्त्र मानते थे और उन्हें गाते-गाते उनकी समाधि लग जाती थी।

एक कथा यह भी है अत्यन्त वृद्ध होनेके बावजूद, जयदेव नित्य पैदल गंगास्नानको जाते थे; तब स्वयं गंगाने कहा कि वे जयदेवके घरके निकट एक बावड़ीमें रहेंगी। जयदेव जब पद्मावतीके साथ स्नान करने गये, तब वहाँ गंगा प्रादुर्भूत हो उठीं।

जयदेवके बारेमें यह भी कहा जाता है कि वे अद्भुत संगीतज्ञ थे। एक बार बुधन मिश्र नामक एक गायक राजा लक्ष्मणसेनकी सभामें आया। उसके गायनके कारण समीपवर्ती वृक्षकी पत्तियाँ नीचे गिरने लगीं तथा वह वृक्ष पत्र-विहीन हो गया; किंतु पद्मावतीने आपत्ति की कि जयदेव ही सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ हैं। तब जयदेवने रागबसन्त गाया और जो पत्तियाँ नीचे गिर गयी थीं, वे फिर उस वृक्षपर लग गयीं।

इसी प्रकारकी अनेक किंवदन्तियाँ जयदेवके चरित्र और 'गीतगोविन्द' से जुड़ी हैं। निश्चय ही इनका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है; किंतु इन किंवदन्तियों, आख्यानों और कथाओंका जनमते जाना ही यह प्रमाणित करता है कि जयदेव और 'गीतगोविन्द' दोनोंकी कितनी अपूर्व लोकप्रियता अपने समयमें और बादके आनेवाले समयमें रही होगी।

जयदेवकी मृत्युके स्थानके सम्बन्धमें भी विवादकी स्थिति है। एक धारणाके अनुसार केन्दुली ग्राममें ही उनकी मृत्यु हुई तथा वहीं उनकी देहको समाधि दी गयी; किंतु एक मान्यता यह भी है कि वह समाधि किसी तान्त्रिक साधुकी है, जिसे जयदेवकी समाधि समझ लिया गया है। वस्तुतः अपने अन्तिम दिनोंमें जयदेव अपने राधा-माधव विग्रहको लेकर वृन्दा-वन चले गये थे तथा वहीं उनका अवसान हुआ। उनके अवसानकी सुनिश्चित तिथिकी पुष्टि नहीं होती।

चैतन्यसम्प्रदाय एवं सहजियासम्प्रदायके लोग जयदेवको अपने-अपने सम्प्रदायोंका प्रमुख मानते हैं, जबकि वल्लभवैष्णव उन्हें अपने सम्प्रदायका उत्तम पुरुष मानते हैं। इस सम्प्रदायकी मध्य अवस्थामें जयदेवका नाम मुख्य रूपसे लिया गया है—

विष्णुस्वामिसमारम्भां जयदेवादिमध्यमाम्।
श्रीमद्वल्लभपर्यन्तां स्तुमो गुरुपरम्पराम्॥

यह भी उल्लेखनीय है कि जयदेव नामके कई अन्य कवि भी हुए तथा कई ग्रन्थोंके रचनाकारके रूपमें राजा लक्ष्मणसेनके सभारत्न जयदेवका नाम लिया जाता है। भारतेन्दुका यह निष्कर्ष है—'लोग कहते हैं कि जयदेवने 'गीतगोविन्द' के अतिरिक्त एक ग्रन्थ 'रतिमंजरी' भी बनाया था, किंतु यह अमूलक है। गीतगोविन्दकारकी लेखनीसे रतिमंजरी-जैसा जघन्य काव्य निकले, यह कभी सम्भव नहीं। गंगाकी स्तुतिमें एक सुन्दर पद जयदेवजीका बनाया हुआ हो तो हो।'

'सदुक्तिकर्णामृत' में जयदेवके नामसे कतिपय पद्य

मिलते हैं; किंतु इनके बारेमें यह सुनिश्चित नहीं है कि ये जयदेवके ही हैं। 'गुरुग्रन्थसाहिब' में भी दो पद ब्रजभाषामें जयदेवके नामसे मिलते हैं; किंतु इनके सम्बन्धमें भी सन्दिग्धताकी स्थिति है। एक ग्रन्थ 'चन्द्रालोक' के रचयिता भी जयदेव हैं; किंतु यह जयदेव 'गीतगोविन्द' के जयदेवसे सर्वथा भिन्न हैं, क्योंकि इसी ग्रन्थमें रचनाकारका अपर नाम 'पीयूषवर्ष' दिया हुआ है। प्रसन्नराघव नामक एक नाटक भी जयदेवद्वारा रचित कहा जाता है; किंतु विद्वानोंने इसके सम्बन्धमें भी सिद्ध किया है कि यह नाटक 'गीतगोविन्दकार' जयदेवद्वारा रचित नहीं है।

जयदेवके सम्बन्धमें संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला, उड़िया और अँगरेजीके विद्वानोंने बहुत शोधकर काफी सामग्री जुटायी है। उपर्युक्त विवरण उसकी एक सहज झाँकी-भर है। जयदेव वास्तवमें वृष्टि और सृष्टिके कवि हैं। उनके इस गीतिकाव्यका माधुर्य-जल अपने रचे जानेके बादसे ही हर युगकी मानस पगडण्डियोंपर छलका है, ये पगडण्डियाँ भीगी हैं और इस निरन्तर भीगते रहनेके कारण हमारे मानसके आर्द्र धरातलने रचावके नित नये अध्याय लिखे, उनकी सृजन-यात्रा कभी थमी नहीं, रचनाशीलताने कभी विराम नहीं पाया। जयदेव-जैसे महाकवियोंका यही वैशिष्ट्य है कि वे किसी एक युगमें जनमते हैं; लेकिन हर आनेवाले युगको 'गीतगोविन्द' बना देते हैं। [प्रेषक—श्रीरामशंकरजी द्विवेदी]

गीतगोविन्दके अधिकारी

सचमुच श्रीगीतगोविन्द बहुत ही उत्तम रसमय काव्य है और इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी विलास-लीलाओंका वर्णन है; परंतु जिनका भगवान् श्रीकृष्णमें पूर्णतया भगवद्भाव न हो और जिनका मन विषयोंसे सर्वथा न हट गया हो, उन्हें गीतगोविन्द कभी नहीं पढ़ना चाहिये। खास करके जो लोग विषय-बुद्धिसे गीतगोविन्द पढ़ते हैं, उनको तो हर तरहसे हानि ही होती है। गीतगोविन्दके प्रारम्भमें एक पद्य है—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्॥

'यदि लीलामय स्वयं भगवान् श्रीहरिके स्मरणमें मन सरसभावसे अनुरक्त हो, यदि उनकी दिव्य विलास-कला जाननेका कौतूहल हो, तभी जयदेवकी मधुर कोमलकान्त पदावलीको सुनो।'

इसमें स्वयं भगवान् श्यामसुन्दरने अपनी लीलारसमयी स्वरूपाशक्ति गोपांगनाओंके साथ, अपनी ही आह्लादिनी शक्ति राधामुख्या व्रजदेवियोंके साथ कालिन्दीकूलके कुसुमित कुंजकाननमें जो दिव्य भगवत्स्वरूपभूता केलिविलासरूपा लीलाएँ की हैं, उनका सरस वर्णन है। प्राकृत नायक-नायिकाका विलासवर्णन कदापि नहीं है। इस प्रकारकी जिनकी दृढ़ मति हो और जो श्रीराधा-माधवके लीला-स्मरणमें लौकिक कामसंकल्पशून्य दिव्य रसास्वादका अनुभव करते हों, केवल वे ही इसके पढ़नेके अधिकारी हैं।

'गीतगोविन्द' पर बहुत-सी टीकाएँ हैं, एक वैष्णव विद्वान्ने निम्नलिखित टीकाएँ बतलायी हैं—

१-नारायणकृत 'प्रद्योतनिका', २-पुजारीगोस्वामीकृत 'बालबोधिनी', ३-जगद्धरकृत 'भावार्थदीपिका', ४-शंकरमिश्रकृत 'रसमंजरी', ५-रंगनाथकृत 'गीतगोविन्दमाधुरी', ६-कृष्णदत्तकृत 'गंगा', ७-राणा कुम्भकृत 'रसिकप्रिया', ८-नारायण कविराजकृत 'सर्वांगसुन्दरी', ९-रसमयदासकृत, १०-मिश्रकान्तकृत, ११-मानांककृत, १२-परमानन्दकृत और १३-कुमारखानकृत। इनके अतिरिक्त जर्मन विद्वान् श्रीऔफ्रेक्टके द्वारा संकलित सूचीमें २२ टीकाओंके नाम और दिये हैं। कुछ आधुनिक विद्वानोंकी भी टीकाएँ सुनी गयी हैं।

निकुंजलीलाका अप्रतिम काव्य—राधासुधानिधि

(म०म० देवर्षि श्रीकलानाथजी शास्त्री)

अनन्त शक्तियोंके आदिस्रोत, योगेश्वर एवं नटनागर, व्रजराज श्रीकृष्णकी भक्तिसरिताने अनेक सहस्राब्दियोंसे हमारे देशको जो रसपान कराया है, वह सुविदित है। श्रीकृष्णकी मधुरभक्तिने लाखों भक्तोंके हृदयोंमें अमिट स्थान बनाया है, लाखों पृष्ठोंका साहित्य उसपर रचा गया है। 'रसराज व्रजेश्वर श्रीकृष्ण', जिन्होंने विश्वको अपने प्रेमके वशीभूत कर लिया है, वे किसीके प्रेमके वशीभूत हुए हैं तो वह श्रीराधा हैं, इस मान्यताने ***मधुरा*** भक्तिमें जो नया युग प्रारम्भ कर दिया था, उसके बारेमें अधिक विस्तारकी आवश्यकता नहीं। श्रीमद्भागवतमें उनका नाम है या नहीं, '**अनयाराधितो नूनम्**' आदिमें संकेतित है तो क्यों आदि विवादोंमें जानेकी आवश्यकता नहीं। इसपर भी विस्तारकी आवश्यकता नहीं कि कौन-सा सम्प्रदाय राधाको माधवकी प्रेयसी और ***अनुद्वाहिता*** (कुमारी) मानता है, कौन-सा सम्प्रदाय ***परकीया*** किंतु कृष्णमें अलौकिक प्रेम रखनेवाली मानता है, कौन-सा यह मानता है कि किसी कल्पमें ब्रह्माने दोनोंका विवाह करवाया था। वस्तु-स्थिति यह है कि राधा मधुरभक्तिकी अद्भुत प्रेरणास्रोत रही हैं। कहीं वे कृष्णभक्तिकी प्रेरक और साधक रही हैं, कहीं भक्तोंकी स्वयं ही परम आराध्या, साध्या बन गयी हैं। राधाको ही आराध्या मानते हुए व्रजक्षेत्रमें कुछ भक्तिकेन्द्र सदियोंसे मधुर भक्तिकी सरिता बहाते रहे हैं—यह तथ्य साहित्यके इतिहासको भी ज्ञात है, भक्तिके इतिहासको भी। साहित्यके इस इतिहासका शुभारम्भ जयदेवके गीतगोविन्दने किया हो या प्राकृतके सरस साहित्यने; इसपर भी चिन्तनकी आवश्यकता नहीं। वे ह्लादिनी शक्ति हैं या कुछ और भी; इस दार्शनिक रहस्यपर भी यहाँ कुछ कहना उपयुक्त नहीं होगा।

राधाको भक्तिका आलम्बन मानते हुए संस्कृतमें भी अनेक अद्भुत एवं सरस काव्य लिखे गये हैं, व्रजभाषा तथा अन्य भाषाओंमें भी। ऐसे काव्योंकी अग्रणी पंक्तिमें आता है मध्यकालीन अतिसरस संस्कृत काव्य 'राधारससुधानिधि'; जिसे राधासुधानिधि या रससुधानिधि भी कहा जाता है। श्रीकृष्णकी मधुर भक्तिके वन्दनीय आचार्य श्रीहितहरिवंशजीका संस्कृतके विभिन्न छन्दोंमें निबद्ध २७० सरस मुक्तक पद्योंमें लिखा यह काव्य कथ्य और शिल्प दोनोंकी दृष्टिसे अत्यन्त हृदयावर्जक, सुमधुर और प्रेरक है। यही कारण है कि चैतन्य सम्प्रदायके कुछ आचार्य इसे स्वयं श्रीकृष्णचैतन्यका कृपाप्रसाद मानते हैं। राधा-कृष्णकी लीलाओंपर चैतन्य सम्प्रदायके आचार्योंने गद्य और पद्यमें अप्रतिम सरस जो काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं, उन्हें संस्कृत काव्येतिहासमें अमर रचनाएँ माना ही गया है। इसे भी चैतन्य सम्प्रदाय अपने साहित्यका अंग मानने लगा है।

राधासुधानिधिकी अनुवर्ती काव्यधारा

यह तो वैष्णव जगत्में तथा संस्कृत काव्यरसिकोंमें सुविदित ही है कि व्रजभूमिके मूर्धन्य सन्त भक्तशिरोमणि कविप्रवर श्रीहितहरिवंशजीकी अमर और रसमयी काव्य-रचना 'राधारससुधानिधि'; जो नटनागरके साथ उनकी अमर प्रेयसी राधाकी निकुंजलीलाका वर्णन करती है, उसकी प्रमुख विशेषता है सखीभावको आधार मानकर कविद्वारा एक सखीके रूपमें अपनी स्वामिनी राधाकी माधवके साथ हुई भाँति-भाँतिकी लीलाओं, विलासों, क्रीडाओं, रतियों और अठखेलियोंका चित्रण करना। इसकी शैली इतनी प्रांजल, सरस, सुललित और प्रवाहमयी है कि इसे पढ़ते ही विद्वान् पाठक समझ सकते हैं कि बिना किसी अलौकिक प्रतिभाके ऐसी वाणी निकल ही नहीं सकती। कवि अपनेको सखी मानकर ही पद्य लिखता है।

राधारससुधानिधिसे प्रेरित होकर अनेक काव्य रचनाएँ इसके बाद अवतीर्ण होती रहीं। इनमें प्रमुख रचना थी महाप्रभु श्रीहितहरिवंशजीके आत्मज श्रीहितकृष्णचन्द्रजीद्वारा प्रणीत ७० पद्योंमें निबद्ध संस्कृत-कृति, जिसका नाम उन्होंने रखा 'श्रीराधा-उपसुधानिधि'। यह उसकी अनुवर्ती रचना है, यह इसीसे स्पष्ट हो जाता है। इसकी विशेषता यह है

कि यह पूरी अनुष्टुप् छन्दमें निबद्ध है, सखीभाव इसमें स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है और प्रत्येक पद्यमें सखीद्वारा श्रीराधाको सम्बोधितकर अपने प्रियतमके साथ हुई उनकी विभिन्न लीलाओंका उल्लेख इसका प्रमुख प्रतिपाद्य है।

इसका हिन्दी अनुवाद श्रीहरिदासजी महाराजने अतीव सरल, प्रांजल और प्रवाहमयी शैलीमें किया है, जिसमें वैदुष्य तथा भक्तिका मणिकांचनसंयोग दर्शनीय है।

टीकाएँ एवं अनुवाद

राधारससुधानिधिपर संस्कृत और हिन्दीमें टीकाएँ भी लिखी गयी हैं, पद्यानुवाद भी किये गये हैं, भावानुवाद भी। बीसवीं सदीके विख्यात हितहरिवंशीय आचार्य श्रीहितदासजीने इसका 'हितरससुधानिधि' नामक सरल हिन्दी अनुवाद किया है।

राधासुधानिधिके सरस पद्य पाठकको प्रेमरसकी उस दुनियाँमें ले जाते हैं, जहाँ इस संसारका कोई बन्धन नहीं है, रसराज नटनागरके प्रति उनके रसमें डूबी सखियों और परम प्रेमपात्र राधाकी निकुंजलीलाओंकी झलक ही वर्ण्य विषय है। ये पद्य किसी रसनिमग्न सखीके उद्गारोंके रूपमें लिखे गये हैं। वह सखी कभी यह अभिलाषा व्यक्त करती है कि विहारके अनन्तर श्रीकृष्णद्वारा चर्वित ताम्बूलको श्रीराधा कब मुझे सेवनके लिये दे देंगी (प० सं० १५५)। कब मैं राधाके चरणोंको देख सकूँगी (प० सं० १०३)।

येषां प्रेक्षां वितरति नवोदारगाढानुरागान्
मेघश्यामो मधुरमधुरानन्दमूर्तिर्मुकुन्दः।
वृन्दाटव्यां सुमहिमचमत्कारकारीण्यहो किं
तानि प्रेक्षेऽद्भुतरसनिधानानि राधापदानि॥

अधिकतर पद्योंमें राधा और माधवकी सरस लीलाओंका, उनके परिवेशका, निकुंजका, शृंगारका, माधुर्यका ललित वर्णन है। यह लालित्य, यह अलौकिक सरसताकी भावना ही मधुरभक्तिकी संजीवनी है, जो इस काव्यमें वर्णित हो गयी है।

श्रीराधामाधवकी एक अद्भुत लीला

एक समय माता यशोदा रसोईघरमें भोजन बना रही थीं। श्रीकृष्ण बाहर दालानमें खीरका भोग लगाकर आनन्द ले रहे थे, तभी बाहरसे राधिका सिरसे लेकर पैरोंतक अपना सुन्दर शृंगारकर दरवाजेसे धीरे-धीरे दबे-पैर कृष्णके नजदीक आयीं। उसी समय भीतरसे माताने कृष्णसे खीरके बारेमें पूछा—'कन्हैया! खीर कैसी बनी? उधर राधिकाने इशारेसे अपने शृंगारके बारेमें पूछा—'कैसी बनकर आयी?'

माता और राधिका दोनोंके प्रश्न थे—कैसी बनी? और कैसी बनकर आयी? उस समय कृष्णने दोनोंको एक ही बात कहकर संतुष्ट कर दिया। वे बोले—

कहा कहौं कैसी बनी माँग तजौं नहि ठौर।
मो मन में ऐसी बसी तनक पिला दो और॥

माताके लिये तो अर्थ हुआ—हे माता! इस खीरके बारेमें क्या कहूँ! इतनी अच्छी बनी कि पेटमें जगह न होनेपर भी मैंने माँगना नहीं छोड़ा। यह मेरे मनमें ऐसी समा गयी है कि अब आप ही थोड़ी और पिला दो।

उधर राधिकाके लिये अर्थ हुआ—'हे राधिका! तुम्हारे शृंगारके बारेमें क्या कहूँ? कैसी बनकर आयी हो कि तुमने सिरकी माँगसे लेकर पैरोंतक कोई जगह नहीं छोड़ी है। तुम मेरे मनमें ऐसी बस गयी हो कि, अपना हाथ आगे कर दो, जिसे मैं छू सकूँ। प्रेम कर सकूँ।

यह कृष्णकी अनूठी सुन्दर वाक्चतुराई थी। एक पत्थरसे दो शिकार करना। एक ही उत्तरसे दोनोंको संतुष्ट करना।—वैद्य श्रीमोहनलालजी गुप्ता

पण्डितराज जगन्नाथकी कृष्णभक्ति

विलक्षण प्रतिभाके धनी पण्डितराज जगन्नाथ जहाँ एक ओर मान्य काव्यशास्त्री एवं रससिद्ध कवि थे, वहीं दूसरी ओर उनके पद्योंमें उल्लसित होता हुआ कृष्णलीलामाधुर्य उनके अनन्य समर्पणकी संस्तुति करता है। पण्डितराजके पिता काशीनिवासी विद्वान् पं० श्रीपेरुभट्टजी थे एवं माता लक्ष्मी देवी थीं। इनके पूर्वपुरुष मूलतः आन्ध्रदेशीय थे। पण्डितराज शाहजहाँके सभापण्डित एवं उसके ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोहके गुरु थे। संस्कृत काव्यशास्त्रका मान्य ग्रन्थ 'रसगंगाधर' इन्हींकी कृति है। इसके अतिरिक्त पण्डितराजने 'लहरी' संज्ञक लघु काव्योंका भी प्रणयन किया, जिनमें 'गंगालहरी' नितान्त प्रसिद्ध हुई। इनके काव्योंमें स्थान-स्थानपर श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्यादिका उल्लास हुआ है। यशोदाजीके भयसे प्रकम्पित श्रीकृष्णका स्वरूप-चित्रण करते हुए पण्डितराज कहते हैं—

मा कुरु कशां कराब्जे करुणावति कम्पते मम स्वान्तम्।
खेलन् न जातु गोपैरम्ब विलम्बं करिष्यामि॥

हे करुणामयि माँ! मेरे हाथपर छड़ीसे प्रहार मत कर, मेरा मन बहुत घबरा रहा है, अब मैं कभी भी ग्वाल-बालोंके साथ खेलता हुआ विलम्ब नहीं करूँगा।

भामिनीविलासमें पण्डितराज भगवान् श्रीकृष्णके चमत्कारी मन्दहास्यका चित्रण करते हुए कहते हैं—

रे चेतः कथयामि ते हितमिदं वृन्दावने चारयन्
वृन्दं कोऽपि गवां नवाम्बुदनिभो बन्धुर्न कार्यस्त्वया।
सौन्दर्यामृतमुद्गिरद्भिरभितः सम्मोह्य मन्दस्मितै-
रेष त्वां तव वल्लभांश्च विषयानाशु क्षयं नेष्यति॥

'अरे चित्त! मैं यह तेरे हितकी बात कहता हूँ कि वृन्दावनमें गौओंको चरानेवाले किसी नवीन मेघके समान श्यामल (गोपकिशोर)-को तू अपना मित्र मत बना लेना; क्योंकि वह सौन्दर्यामृत बरसानेवाले मन्द-हास्यसे सब प्रकारसे मोहित करके तुझे और तेरे प्रिय (इन्द्रिय-) विषयोंको शीघ्र ही विनष्ट कर देगा।'

एक अन्य पद्यमें अपने जीवात्माको सम्बोधित करते हुए पण्डितराजकी भावमाधुरी आस्वादनीय है—

मृद्वीका रसिता सिता समशिता स्फीतं च पीतं पयः
स्वर्यातेन सुधाऽप्यधायि कतिधा रम्भाधरः खण्डितः।
सत्यं ब्रूहि मदीयजीव भवता भूयो भवे भ्राम्यता
कृष्णेत्यक्षरयोरयं मधुरिमोद्गारः क्वचिल्लक्षितः॥

'ऐ मेरे जीव! तुमने द्राक्षाका रसास्वादन किया, रुचिपूर्वक मिसरी खायी, सुस्वादु दुग्ध भी पिया और स्वर्ग जानेपर अनेकों बार अमृत तथा रम्भाका अधरासव भी पिया ही होगा, परंतु सच-सच बताना कि पुनः-पुनः संसारका परिभ्रमण करते हुए तुमने 'कृष्ण' नामके दो अक्षरोंमें माधुर्यका जैसा उद्गार है, वैसा कहीं और भी देखा है।'

इस प्रकारके भक्तितरल मधुर भावोंसे सहज ही पण्डितराजकी श्रीकृष्णविषयक परम अनुरक्तिका परिचय मिलता है।

'भवबाधाहर राधाप्राणाधार'

(भट्ट श्रीमथुरानाथजी शास्त्री)

कोटिकामसमसुन्दर नन्दकिशोर। जय जय श्रीराधामुखचन्द्रचकोर॥
जय वृषभानुकिशोरीनयनानन्द। जय विह्वलव्रजवनितालीलाकंद॥
जय जय जगदानन्दन नन्दकुमार। भवबाधाहर राधाप्राणाधार॥

करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर तथा श्रीराधामुखचन्द्रके लिये चकोर बने हुए श्रीनन्दकिशोर! तुम्हारी जय हो, जय हो। श्रीवृषभानुकिशोरीके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले तथा विरहसे विकल हुई व्रजवनिताओंको लीलाका सुख प्रदान करनेवाले प्रभो! तुम्हारी जय हो, जय हो। जगत्को हर्षित करनेवाले तथा अपने भक्तोंकी जन्म-मृत्युरूप बाधाको हरनेवाले, श्रीराधाके प्राणाधार नन्दकुमार! तुम्हारी जय हो, जय हो। [गोविन्दवैभवम्]

'राधाचरितम्' में श्रीराधाजीका कर्मयोग

(डॉ० सुश्री लज्जाजी पन्त (भट्ट))

कर्मयोग अर्थात् परमात्माको प्राप्त करनेकी, पूर्ण आनन्द प्राप्त करनेकी, सुखी होनेकी एक ऐसे प्रकारकी साधना-पद्धति; जिसके अन्दर मनुष्यके कर्मको मुख्यत: उपयोगमें लिया गया है। संसारको त्यागकर नहीं बल्कि संसारमें रहकर समस्त कार्यों, कर्तव्योंके रहस्यको समझकर परमात्माको प्राप्त करनेकी साधना-पद्धति कर्मयोग है। कर्मयोग अर्थात् कर्मके आश्रयवाली साधनापद्धति, कर्मको प्रमुख स्थान देकर परमात्माको प्राप्त करनेकी जो साधनापद्धति ऋषि-मुनियोंने रची है, उसका अनुष्ठान करनेवाला है—कर्मयोगी अर्थात् कर्मयोग-सिद्धान्तके रहस्यको समझकर उसके अनुरूप आचरण करनेवाला। यह योगशब्द महत्त्वपूर्ण होनेके कारण गीतामें भी विस्तारसे वर्णित है।

'डुकृञ् करणे' धातुसे निष्पन्न कर्मशब्द नानार्थक है, विभिन्न ग्रन्थोंमें इसके भिन्न-भिन्न अर्थ किये गये हैं। आधुनिक साहित्यकार महाकवि हरिनारायण दीक्षितद्वारा रचित महाकाव्य 'राधाचरितम्' एक भक्तिरस-प्रधान महाकाव्य है। बाईस सर्गोंके इस महाकाव्यमें दीक्षितजीने कर्मयोगको प्रमुख स्थान दिया है। यहाँ श्रीराधाजीने कर्मको कर्तव्य मानकर करनेपर जोर दिया है, इसकी सर्वप्रथम झलक हमें राधाजीके **'न रोचते मे न च कर्मयोगिने'** इस कथनके माध्यमसे मिलती है। व्रजवासियोंमें जब-जब दीनता घर कर लेती है तो राधाजी उन्हें उत्साहित करते हुए कहती हैं कि यह दीनता न तो मुझे अच्छी लगती है और न ही कर्मयोगी श्रीकृष्णको। श्रीराधाके माध्यमसे भगवान् श्रीकृष्णके कर्मयोगीस्वरूपका वर्णन कविद्वारा किया गया है।

'राधाचरितम्' महाकाव्यके द्वितीय सर्गमें राधाजीद्वारा कर्मयोगके लिये व्रजवासियोंको प्रेरित करनेका निर्णय लिया जाता है। अत: श्रीराधा एक सभाका आयोजनकर व्रजवासियोंको कर्मयोगके लिये प्रेरित करती हैं। उनका मानना है कि सद्गुणी पुरुष दु:खकी आँधीमें भी तथा प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी सुख-सम्पत्तिके लिये प्रयत्न करते हैं। कर्मयोगियोंका लक्षण वे बताती हैं—

दह्यमाना भवन्तोऽपि प्रेयसां विरहाग्निना।
त्यजन्ति नैव कर्तव्यं जीवने कर्मयोगिन:॥

अर्थात् कर्मयोगी व्यक्ति अपने जीवनमें प्रियजनोंके वियोगकी आगमें झुलसते रहनेके पश्चात् भी अपने कर्तव्यपथसे विचलित नहीं होते, यानी अपने कर्तव्यका परित्याग नहीं करते। अपने श्रेय तथा प्रेयसे युक्त कार्योंको उत्साहपूर्वक करते हुए ही वे लोग सौ वर्षतक जीवित रहते हैं। मनुष्य अपने करनेयोग्य कार्योंसे ही अपने प्राप्तव्यको प्राप्त करता है, पूजा, पाठ, जप, यज्ञ, तीर्थस्थान तथा देवी-देवता उन्हींको फल देते हैं, जो कर्मयोगी होते हैं अर्थात् कर्तव्यकर्म करते हैं। कर्मकी विशेषताका वर्णन भी **'राधाचरित-काव्य'** में किया गया है—

सुखं च दु:खं च यशोऽयशस्तथा
मानोऽपमानो विजय: पराजय:।
हानिश्च लाभश्च शुभाशुभादिकं
स्वकर्मवृक्षस्य फलान्यसंशयम्॥

संसारमें मनुष्य अपनी इच्छासे जैसा और जितना अच्छा या बुरा कर्म करता है, वह विधाताकी इच्छासे उसका वैसा और उतना ही फल पाता है। कर्मकी महत्ता बताते हुए श्रीराधाजी कहती हैं—

आप लोग यदि इस कर्मयोगका पालन करेंगे; तो अपने जीवनमें चतुर्मुखी सफलता प्राप्त करेंगे। आप सभी कर्मयोगियोंके साथ मैं हमेशा निवास करूँगी और श्रीकृष्णके समान आचरण करती हुई मैं आप लोगोंका मार्ग-निर्देशन करूँगी; क्योंकि जो लोग अपने जीवन-रूपी समुद्रको सुखपूर्वक पार करना चाहते हैं; उनके लिये यह कर्मयोग जहाजके समान कार्य करता है—

वत्स्याम्यहं सदा साकं भवद्भिः कर्मयोगिभिः।
कृष्णन्ती च करिष्यामि भवतां मार्गदर्शनम्॥
सुखेन ये तितीर्षन्ति जना जीवनसागरम्।
तत्कृते कर्मयोगोऽयं पोतायते न संशयः॥

'राधाचरितम्' में वर्णित है कि कर्मसे सफलता मिलती है, कर्मसे सुख-सम्मानकी प्राप्ति होती है, कर्मसे कामनाकी पूर्ति होती है तथा मोक्ष नामक पुरुषार्थकी प्राप्तिमें भी कर्मकी निष्कामता ही कारण बनती है। विधाताने मनुष्यको कर्म करनेकी कुशलता प्रदान करके उसपर बहुत बड़ा उपकार किया है। इसी कर्मके बलपर वह पृथ्वीमें अन्य सभी प्राणियोंमें श्रेष्ठ माना जाता है। जो लोग अपने इस कर्मरूपी हथियारको त्यागकर विहित आचारके प्रति उदासीन होते हैं, उनकी जीवनके संग्राममें निश्चित ही हार हो जाती है—

कर्महीना अकर्मण्यास्ते कर्तव्यपराङ्मुखाः।
धराया मातृभूताया भारभूता भवन्ति ते॥

भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधाकी कर्मठताका परिचय देते हुए कहते हैं कि पूर्वकालमें सीताने जो कार्य रामके लिये नहीं किये, शिवानीने जो कार्य शिवके लिये नहीं किये और किसी भी महिलाने जो कार्य किसी भी पुरुषके लिये नहीं किये, वही कार्य श्रीराधाने उनके लिये किये तथा उनकी कीर्तिमें वृद्धि की। अकर्मसे कर्म करना अच्छा है; क्योंकि कर्म न करनेसे शरीरका निर्वाह भी नहीं होता। अकर्मसे कर्म विशेष अच्छा है इसके समर्थनमें महाकाव्यमें कई तथ्य प्रस्तुत हैं। इस प्रकार कर्म अपरिहार्य तो है किंतु यह भी ज्ञेय है कि आसक्ति-पूर्वक किये जानेपर कर्म बन्धनमें डालनेवाला भी है।

'राधाचरितम्' में श्रीराधाजी प्रेरणा देती हैं कि अपनी सीमाओंमें रहते हुए व्यक्तिको मर्यादानुसार कर्म करते रहना चाहिये।

स्वसुख-वांछाकी कल्पनाका भी अभाव

एक बड़ी सुन्दर निकुंजलीला है। एक सखीने एक दिन ऐसा नख-शिख शृंगार किया कि जो प्राणप्रियतम श्यामसुन्दरको परम सुख देनेवाला था। उसने दर्पणमें देखा और वह चली श्यामसुन्दरको दिखाकर उन्हें सुखी करनेकी मधुर लालसासे। प्रियतम श्यामसुन्दर निभृत निकुंजमें कोमल कुसुम और किसलयकी सुरभित शय्यापर शयन कर रहे हैं। अलसायी आँखोंमें नींद छायी है; बीच-बीचमें पलक खुलती है, पर तुरंत ही बंद हो जाती है। प्रेममयी गोपी आयी है अपनी शृंगारसुषमासे श्यामसुन्दरको सुखी करनेके लिये। उसके मनमें स्व-सुखकी तनिक भी वांछा नहीं है। पर श्यामसुन्दर सो रहे हैं। वह चाहती है, एक बार देख लेते तो उन्हें बड़ा सुख होता। उसके हाथमें कमल था, उसके परागको वह उड़ाने लगी। सोचा, कोई परागकण प्रियतम श्यामसुन्दरके नेत्रोंमें पड़ जायगा तो कुछ क्षण नेत्र खुले रह जायँगे। इतनेमें वे मेरे शृंगारको देख लेंगे, उन्हें परम सुख होगा।

इसी बीचमें नित्यनिकुंजेश्वरी श्रीराधारानी वहाँ आ पहुँचीं। उन्होंने प्यारी सखीसे पूछा—'क्या कर रही हो?' सखीने सब बताया। श्रीराधारानी स्वयं स्वभावसे ही श्यामसुन्दरका सुख चाहती हैं, पर यहाँ सखीकी यह चेष्टा उन्हें ठीक नहीं लगी। उन्होंने कहा—'सखी! तुम्हारा मनोभाव बड़ा मधुर है; पर श्यामसुन्दरको जब तुम सुखी देखोगी, तब तुम्हें अपार सुख होगा न? किंतु श्यामसुन्दरके इस सुखसे तुमको तभी सुख मिलेगा, जब उनकी सुखनिद्रामें विघ्न उपस्थित होगा। इस आत्मसुखके लिये उनकी सुखनिद्रामें बाधा उपस्थित करना कदापि उचित नहीं है।' सखीने केवल श्रीकृष्ण-सुखके लिये ही शृंगार किया था; परंतु इसमें भी स्व-सुखकी छिपी वासना थी, इस बातको वह नहीं समझ पायी थी। प्रेमतत्त्वका सूक्ष्म दर्शन करनेवाली प्रेमस्वरूपा श्रीराधिकाजीने इसको समझा और सखीको रोक दिया। सखी प्रेमतत्त्वका सूक्ष्म परिचय पाकर प्रसन्न हो गयी।

प्राचीन संस्कृत रूपकोंमें श्रीराधा-माधव

(डॉ० श्रीश्रीनिवासजी पाण्डेय, नव्यव्याकरण-पुराणेतिहासाचार्य, एम०ए०, पी-एच०डी०)

परा प्रीतिके आलम्बनस्वरूप श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण—इन दो महाविभूतियोंकी परता (महनीयता)-की सविशेष स्थापनाके कारण 'द्वापर' की द्वापरता सिद्ध है। वस्तुतः इस युगकी सर्वाधिक उल्लेखनीय-वन्दनीय तो यह युगल मूर्ति ही है, जिसके पारमार्थिक ऐक्यको युग (युग्म)-रूपतामें परिणत करनेके कारण द्वापर—द्वापर (राधामाधव-द्वयपरक) भी है और युग भी। कलियुगका सन्धिकालीन द्वापर जहाँ इन दोनों लीलाविग्रहोंके अवतरणका साक्षी बना, वहीं तत्कालीन सारस्वत चेतनासे अभिप्रेरित हो अद्यावधि रचे जाते हुए भारतीय साहित्यपर शिखिपिच्छ-मौलि श्रीकृष्णके वेणुनादके साथ-साथ श्रीवृषभानुनन्दिनीके चरणनूपुरोंकी झंकारका प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

संस्कृतश्रीने दृश्य तथा श्रव्य उभयविध काव्योंकी पुष्पांजलिसे श्रीराधामाधवयुगलकी भव्य सपर्या सम्पन्न की है। श्रव्यकाव्य श्रवणयोग्य होते हैं तथा दृश्यकाव्य अभिनेय होते हैं। दृश्यकाव्यको ही नाट्य, रूप, रूपक आदि नामोंसे कहा जाता है। यह दो प्रमुख वर्गोंमें विभक्त है—रूपक तथा उपरूपक। श्रीराधामाधवके शाश्वत ऐक्य तथा प्रीतिकी सान्द्रताको निमित्त बनाकर अनेक कृतिकारोंने रूपकों-उपरूपकोंका प्रणयन किया, जिनमें अनन्तदेव, रूपगोस्वामी, भेज्जलकवि, जीवराम याज्ञिक, मथुरादास, हर्षनाथ झा आदि कृतिकार विशेष उल्लेखनीय हैं।

सोलहवीं सदीके उत्तरार्धमें हुए अनन्तदेवने 'मनोऽनुरंजनम्' नामक पंचांकात्मक श्रेष्ठ नाटक लिखा। इसके पाँचवें अंकमें विशेष उल्लासके साथ कविने राधा-माधवके प्रणयविलास, महारास आदिका भावपूर्ण चित्रण किया है। माधवके गोपिकाओंके प्रति अनुरागको देखकर गोपीवेशधारिणी महालक्ष्मीका परिहास आदि घटनाएँ नाटककी श्रीवृद्धि करती हैं। श्रीअभिनवगुप्तने नाट्यशास्त्रकी अभिनवभारती टीकामें (दसवीं सदीके) महाकवि भेज्जलद्वारा प्रणीत 'राधाविप्रलम्भ' नामक रासकांक (उपरूपकका एक प्रकार)-का उल्लेख किया है, इस समय इसके कतिपय श्लोक ही प्राप्त हो पाते हैं। काव्यमालाके ४६वें गुच्छकमें 'वृषभानुजा' नामक एक नाटिका प्रकाशित हुई थी। इसके प्रणेता प्रयागके समीपके रहनेवाले मथुरादासकवि थे। इनका समय पन्द्रहवीं सदी है। इस चतुरंकात्मिका नाटिकाकी पदावलीपर जयदेवका सुस्पष्ट प्रभाव अंकित है।

सोलहवीं सदीमें जनमे परम वैष्णव श्रीरूपगोस्वामीने राधा-माधवविषयक दृश्य तथा श्रव्य—उभयविध काव्योंका प्रणयन किया। इनके नाट्यसाहित्यके अन्तर्गत ललितमाधव, विदग्धमाधव (नाटक) तथा दानकेलिकौमुदी (भाणिका) विशेष चमत्कृतिपूर्ण रचनाएँ हैं। विदग्धमाधवमें श्रीकृष्णकी विदग्धता तथा परकीयाभावापन्न श्रीराधाकी विशुद्ध प्रीतिका समुचित निदर्शन कविने किया है। ललितमाधवमें भी श्रीराधामाधवकी पावन प्रीतिगाथा ही निबद्ध है, किंतु इसमें वस्तुगत वैचित्र्य है—श्रीराधा तथा उनकी सखियोंका कृष्ण-विरहको न सह पानेके कारण विविध उपायोंसे प्राणोत्सर्ग करना और जन्मान्तरमें सत्यभामा आदिके रूपमें पुनः श्रीकृष्णको प्राप्त करना। दानकेलिकौमुदीमें भी श्रीराधामाधवकी मधुर लीलाएँ कविने चित्रित की हैं। इस ग्रन्थके संवादोंमें मधुर हास्य अभिव्यंजित हुआ है। इसके संवादोंकी वक्रता विशेष आवर्जक प्रतीत होती है, जैसे श्रीराधा कहती हैं कि **वक्रस्त्रिधा त्वमादौ मध्ये चान्ते च वंशिकारसिक!** कृष्ण! तुम त्रिभंगललित (तीन जगहसे टेढ़े) हो तो कृष्ण कहते हैं **वाचि कचे भ्रुवि दृष्टौ स्मिते प्रयाणेऽवगुण्ठने हृदि च। त्वामित्थ-मष्टवक्रामष्टावक्रायितां वन्दे॥** किशोरी! तुम तो अष्टावक्र (वाणी, केश, भ्रू, दृष्टि, चाल, मुसकान, घूँघट तथा हृदय—इन आठ जगहसे टेढ़ी) हो।

इन कृतियोंके अतिरिक्त भी अनेक मंजुल कृतियोंमें श्रीराधा-माधवकी पावन प्रीति तथा उनके पारमार्थिक ऐक्यका चित्रणकर महाकवियोंने इस पावन युगलकी सारस्वत समर्चना की है।

हिन्दीके आधुनिक काव्य साहित्यमें राधा-कृष्ण

(श्रीरामकिशोरसिंहजी 'विरागी')

हिन्दी साहित्यके इतिहासको चार भागोंमें विभक्तकर अध्ययन किया जाता है और इन चारों भागों (कालों)-में राधा-कृष्णसे सम्बन्धित वर्णन आये हैं। हिन्दी साहित्यके आदिकाल (वीरगाथाकाल)-में प्रायः वीररसकी रचनाएँ हुई हैं। फिर भी इस कालमें राधा-माधवपरक भक्तिप्रधान काव्य भी लिखे गये हैं। इनमें विद्यापति प्रमुख कवि हैं। इसके बाद भक्तिकाल आता है। इसमें राधा-कृष्णके प्रति अपार और अगाध भक्ति प्रदर्शित की गयी है। अष्टछापके कवियोंने श्रीकृष्ण-भक्तिपर प्रमुखतासे काव्य-रचना की है। जिनमें महाकवि सूरदास प्रधान माने गये हैं। तदनन्तर रीतिकाल (शृंगारकाल) आता है। इसमें भी राधा-कृष्णसे सम्बन्धित काव्य लिखे गये हैं। रीतिकालके ये काव्य प्रायः शृंगारिक हैं, फिर भी बिहारीलालके काव्यमें प्रचुर भक्तिभाव है। उनके प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ—'बिहारीसतसई' का प्रारम्भ प्रार्थनात्मक मंगलाचरणसे होता है और यह राधाके प्रति है। 'बिहारीसतसई' का पहला दोहा 'राधा' की भक्तिसे सम्बन्धित है—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परै, श्याम हरित दुति होय॥

अब रही आगे आधुनिककालकी बात तो आधुनिक-कालमें भी राधा-कृष्णपरक काव्य प्रचुर मात्रामें रचे गये हैं। मुक्तक पद्य और कविताएँ तो भरी पड़ी हैं। इस आधुनिक हिन्दी साहित्यमें भी चार ऐसे महाकवि हो गये हैं, जिन्होंने राधामाधवपरक प्रसिद्ध काव्यरचनाएँ की हैं।

इन कवियों और इनकी रचनाओंसे सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔधजी' का काव्य है—'प्रियप्रवास'! जब कंसके अत्याचारसे जन-जनको मुक्ति दिलानेके लिये प्रिय (कृष्ण) मथुरा जाते हैं और फिर मथुरासे द्वारकातक पहुँचते हैं। तब एक लम्बी अवधि (सौ वर्षोंतक)-के लिये वे राधासे अलग हो जाते हैं। उनकी इसी लोकयात्राको संकेतसे प्रवास कहा गया है। इसमें प्रिय (कृष्ण)-का 'प्रवास' वर्णित हुआ है, इसीलिये इस ग्रन्थका नाम 'प्रियप्रवास' सार्थक है। इस काव्यकी निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

कमल-लोचन कृष्ण वियोग की।
अशनि-पात-समा यह सूचना।
परम आकुल गोकुल के लिये।
अति अनिष्टकरी घटना हुई॥
गिन-गिन नभ तारे ऊब आँसू बहा के।
यदि निज-निशि होती कश्चिदाती बिताती।
वह ढिग उसके भी रात्रि में ही सिधाती।
निज अनुपम राधा नाम की सार्थता से॥
सच्चे स्नेही अवनिजन के देशके श्याम जैसे।
राधा जैसी सदय-हृदया विश्वप्रेमानुरक्ता।
हे विश्वात्मा! भरत भुवके अंक में और आवें।
ऐसी व्यापी विरह-घटना किन्तु कोई न होवे॥

(२) मैथिलीशरण गुप्त—मैथिलीशरण गुप्तजीका काव्य है—'द्वापर'।'द्वापर' नामक इस 'काव्य' में गुप्तजीने राधा-कृष्णसे सम्बन्धित भावोंका वर्णन किया है। गुप्तजीने विभिन्न अनुक्रमोंमें इस काव्य-रचनाको सजाया है। ये अनुक्रम हैं—मंगलाचरण, श्रीकृष्ण, राधा, यशोदा, विधृता, बलराम, ग्वाल-बाल, नन्द, कुब्जा, उद्धव, गोपी तथा सुदामा।

राधा-कृष्णसे सम्बन्धित इस काव्यकी कुछ मार्मिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

मैं भी रोने लगा देखकर
उसकी दारुण बाधा,
'शुभे! शान्त हो, ब्रज में बैठी
मेरी बेटी राधा।

किंतु वस्तुतः मैं बेटी को
आज विदा कर आया;
पुत्र रूप में ही राधाको
यहाँ नन्द ने पाया।

(३) आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री—आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्रीजीकी काव्य-रचना है 'राधा'। इस काव्यमें वर्णित इन पंक्तियोंसे राधाभावको समझा जा सकता है—

कहती मुरली मधुदूती सुमधुर वाणी,
राधा 'उनके' उर अन्तःपुर की रानी।
हम गले पड़ें, राधा मनकी मणि-माला,
है मृगी वही, हमने डाली मृगछाला।
कहतीं हमने मधुवन की छानी छाया,
है शुद्ध ज्ञान 'वह' राधा उनकी माया।

× × ×

जो राधाको पहचान रहा ज्वाला से,
वह पहचानेगा उन्हें तिलक, माला से?

× × ×

वह करे प्रशंसा या निन्दा, है राधा
उच्छल-जल, वन्या या सुरसरित अगाधा॥

(घ) डॉ० धर्मवीर भारती—'कनुप्रिया' इनके लघु काव्यग्रन्थका नाम है। बोलचालकी भाषामें कृष्णको 'कनु' कहा जाता है। 'कृष्णप्रिया'—'कनुप्रिया'—राधा। मूलतः यह काव्य भी 'राधा-भाव' पर ही केन्द्रित है।

काव्यकी ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

बिना मेरे कोई भी अर्थ कैसे निकल पाता
तुम्हारे इतिहास का
शब्द शब्द शब्द
राधाके बिना
सब
रक्त के प्यासे
अर्थहीन शब्द!

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी काव्य-साहित्यमें भी राधा-कृष्णका वर्णन आया है और विभिन्न महाकवियोंने राधा-कृष्णको अपने काव्योंमें महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

महामना मालवीयजीकी राधिकारानी

(श्रीसुधेन्दुजी शर्मा)

'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय'के संस्थापक महामना पं० मदनमोहन मालवीय हिन्दूसंस्कृति-रक्षक, हिन्दीप्रेमी और समाज-सुधारकके साथ-साथ रससिद्ध कवि भी थे। काव्यके प्रति उनकी अद्भुत रुचि थी। अनेकानेक सामाजिक एवं राष्ट्रीय कार्योंमें लगे रहनेपर भी पूज्य मालवीयजीने अपनी काव्याभिरुचिको सदैव जाग्रत् रखा। काव्यक्षेत्रमें वे 'मकरन्द' उपनामसे जाने जाते थे।

मालवीयजीके समय आजकी तरह कवि-सम्मेलन नहीं होते थे। उन दिनों कवियोंकी गोष्ठियाँ हुआ करती थीं या विभिन्न काव्य एवं कवि-संस्थाओंके माध्यमसे कवि एवं काव्यरसिक श्रोता एकत्र होते थे। उनमें कवियोंको कोई समस्या दी जाती थी, जिसके आधारपर वे अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करते थे। इस प्रकार आजकी तरह उन दिनों कवि स्वतन्त्र नहीं रहता था, बल्कि उसे अपने भाव दी गयी एक पंक्ति, चरण या शब्दमें बाँधने होते थे, जो एक कठिन काम है। किंतु इससे कवियोंकी आशु-कवित्व-प्रतिभा, सूझबूझ, और कल्पनाकी परीक्षा होती थी। मालवीयजी भी ऐसी गोष्ठियोंमें भाग लेते थे और विभिन्न समस्याओंपर पूर्तियाँ करते थे।

मालवीयजी अनन्य धर्मपरायण व्यक्ति थे। महामनाकी राधाकृष्णके प्रति अतीव भक्ति थी। राधा-कृष्णके प्रति उनके सरस भक्तिभावके परिचायक निम्नलिखित पद देखिये—

इन्दु सुधा बरस्यो नलिनीन पै,
वै न बिना रविके हरखानीं,
त्यौं रवि तेज दिखायी तऊ,
बिन इन्दु कुमोदिनी ना बिकसानी।
न्यारौ कहूँ यह प्रीतिकी रीति,
नहीं 'मकरन्द' जू जात बखानी,

साँवरे कामरीवारे गुपाल पै,
रीझि लटू भईं राधिका रानी॥

मालवीयजीने अनेक दृष्टान्तोंसे प्रस्तुत छन्दमें यह सिद्ध किया है कि प्रीतिकी रीति कुछ अनोखी होती है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। नलिनी चन्द्रसुधाके बरसनेपर भी हर्षित (विकसित) नहीं होती, रवि-किरणोंके रहनेपर भी कुमुदिनीको चन्द्र-किरणोंका अभाव खटकता है। वह चन्द्र-किरणोंके दरस और परससे ही सरस हो विकसित होती है। प्रीतिकी यह रीति विचित्र ही है, जिसका वर्णन कठिन है। इसीलिये तो काली कमली ओढ़े गोपाल (श्रीकृष्ण)-पर गौरवर्णवाली राधिकारानी लट्टू हो (रीझ) गयीं।

न सिर्फ राधिकारानी कृष्णपर लट्टू हैं, बल्कि कृष्णका हृदय भी राधामें अनुरक्त है। श्रीकृष्णका प्रेमी हृदय राधिकारानीसे कुछ माँग रहा है—

माँगत मोतिन माल नहीं,
नहिं माँगत हौं कछु भोजन-पानी,
सारी न माँगत हौं 'मकरन्द',
तिहारी अनेक सुगन्ध बसानी।
माँगत हौं अधरा-रस, रंचक,
सोउ न दीजहु हे सनमानी,
सूमती एती तुझे नहीं चाहिए,
बाचती हौ चहुँ राधिका रानी॥

राधा रानी हैं, कृष्ण उनसे न तो मौक्तिकमाल चाहते (माँगते) हैं, न कुछ भोजन-पानी (द्रव्य) और न (पहननेके लिये) उनके सुकोमल शरीरकी सुगन्ध-वासित साड़ी ही। वे तो केवल थोड़ा-सा 'अधर-रस' ही चाहते हैं। लेकिन राधा ऐसी कृपणहृदया हैं कि वह भी नहीं देतीं। कृष्ण खिन्न हो जाते हैं और कहते हैं, 'हे राधा! तू रानी कहलाती है, इसलिये तुझे इस प्रकारकी कृपणता नहीं दिखानी चाहिये। तुझे तो अधर-रस मुझे दे ही देना चाहिये।' इस प्रकार राधिकारानीकी 'सूमता' चित्रितकर मालवीयजीने बड़ी ही सरस एवं नूतन कविकल्पनाकी प्रस्तुति की है।

निम्नलिखित छन्दमें मालवीयजीने राधिकारानीके 'मान' का वर्णन किया है। वे श्रीकृष्णसे रूठी हुई हैं।

वे कबके उत ठाड़े अहैं,
इत बैठी अहौ तुम नारि चुपानी,
थाको तुम्हें समुझावत स्याम हैं,
ऐसी न रावरी बानि न जानी।
मोहि कहा पै यहै 'मकरन्द' हू,
जो कहूँ खीझि कै रूसन ठानी,
आजु मनाये न मानती हौ,
कल्ह आपु मनाइहौ राधिका रानी॥

राधिकारानीके मानका वर्णन करते हुए मालवीयजीने राधिकाकी 'क्षणे रुष्टा, क्षणे तुष्टा रुष्टा तुष्टा क्षणे क्षणे' प्रकृतिका बड़ा सरस वर्णन किया है। उधर श्याम न जाने कबसे खड़े हैं, और इधर राधा मुँह फुलाये चुपचाप बैठी हैं, गोपियाँ समझा-समझाकर थक गयीं, लेकिन वे मनानेसे मानती ही नहीं। यदि राधाके इस 'मान' से खीझकर श्रीकृष्ण भी रूठनेकी ठान लें तो, जो राधिकारानी आज मनानेसे नहीं मान रही हैं, कल वे स्वयं श्यामको मनायेंगी।

और, यह राधा-कृष्णकी होली भी देखिये—

धूम मची व्रज फागुकी आजु,
बजै डफ झाँझ, अबीर उड़ानी,
ताकि चले पिचुका, दुहूँ ओर,
गलीनमें रंगकी धार बहानी।
भीगें भिगावें ठड़े 'मकरन्द',
दुहूँ लखि शोभा न जात बखानी,
ग्वालन साथ इतै नन्दलाल,
उतै संग आलिन राधिका रानी॥

व्रज-भूमिमें फागकी धूम मच गयी, डफ-झाँझके बीच अबीर उड़ने लगा। ग्वाल-बालोंके साथ एक ओर श्रीकृष्णकी टोली है, दूसरी ओर राधिकारानी अपनी गोपी-सखियोंके दलके साथ। दोनों ओरसे पिचकारी एक-दूसरेपर ताक (लक्ष्य) कर चलायी जा रही है, गलियोंमें रंगकी धारा बह चली है। स्वयं भींगते हुए और दूसरेको भिंगोते हुए उन राधा-कृष्णकी शोभा अवर्णनीय है।

वल्लभमतमें कृष्णोपासना

(पण्डित श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न)

श्रीवल्लभमतके संस्थापक जगद्‌गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्यने अपने मतको दो भागोंमें विभाजित किया है। उन्होंने ज्ञानक्षेत्रमें बुद्धिप्रधान ज्ञानमार्गीय जीवोंके सांसारिक दु:खोंकी आत्यन्तिकी निवृत्तिके लिये 'शुद्धाद्वैत' मतकी स्थापना की और दूसरी ओर भक्तिक्षेत्रमें हृदयप्रधान नि:साधन जीवोंके लिये पुष्टिमार्गकी स्थापनाकर पूर्णपुरुषोत्तम परब्रह्म श्रीकृष्णके साकार विग्रहकी वात्सल्यमयी सेवापद्धति प्रचलित की। वे नवरत्नमें श्रीकृष्णकी अपूर्वता सिद्ध करते हुए श्रीकृष्णभजनका उपदेश देते हैं—

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः॥

'सब प्रकारसे सदैव '**श्रीकृष्णः शरणं मम**' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए ही रहना चाहिये। यह मेरी सम्मति है।'

इस प्रकारके उपदेशके अनन्तर जब जीवमें सात्त्विक भावोंकी अभिवृद्धि होती है, तब उसका हृदय प्रभुके साक्षात्कारके लिये व्याकुल हो उठता है तथा संसारासक्ति शिथिल हो जाती है, तब उसे आचार्य 'ब्रह्मसम्बन्ध' (आत्मनिवेदन) की दीक्षासे पावन करते हैं। भगवल्लीलाका अनुभव कराते हैं और श्रीकृष्णके स्वरूपकी सेवाका अधिकार प्रदान करते हैं।

'शुद्धाद्वैत' ज्ञानमार्गके पथिकोंका सम्बल है, तो '**पुष्टिमार्ग**' भक्तिसाधकोंके लिये जीवनतरणि है। यह मार्ग उपासनामार्गसे भिन्न है। इसमें सेवाकी महत्ता है। सेवामें अविहित स्नेहकी प्रगाढ़ता है। भगवद्-अनुग्रह ही इसका फल है। '**सेवा च पुष्टिमार्गे सस्नेहा कृपाफलं चैतत्।**' यह सेवा भक्ति-मार्गका अंग है। भक्तिका धात्वर्थ भी सेवा है। सेवामें सेव्यके सम्पूर्ण सुखका सस्नेह आग्रह होनेके कारण सेव्यके सुखानुकूल ही परिचर्याका विधान है। इसीसे यहाँकी सेवापद्धति षड्‌ऋतुओंके अनुकूल ही निर्मित हुई है। यहाँ सेवामें कालनियामकता बाधक नहीं, न सेवामें शुद्धिके हेतु देशादि परिशुद्धिकी आवश्यकता है। वेदमन्त्रोंसे पूजा-अर्चा नहीं होती, आवाहन-विसर्जनकी रीति नहीं है। प्रभुका स्वरूपमें नित्य अधिष्ठान रहता है। गुरुकी आज्ञाको सेवामें मुख्यता दी गयी है। यहाँके मन्दिर नन्दालय (नन्दगृह) हैं। मन्दिरका प्रत्येक स्थल भावनामय है। प्रत्येक वस्तु भावनामय है। स्वरूप या श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा आचार्यके करस्पर्शसे होती है। परब्रह्म नन्द-राजकुमारका बालरूप ही सेव्य है या लीला-विग्रह। सेवामें वात्सल्यभावकी मुख्यता है; किंतु सख्य, माधुर्य, दास्यभावका भी संयोग है।

श्रीकृष्णसेवाके दो प्रकार वर्णित किये गये हैं— एक बाह्य-सेवा, दूसरी आभ्यन्तर-सेवा। बाह्य-सेवा क्रियात्मक सेवा है, जिसमें 'तनुजा' 'वित्तजा' का ग्रहण है। सिद्धान्तमुक्तावलीके अनुसार इसमें प्रभुके प्रति चेतस्की प्रवणता आवश्यक है। तभी तनुजा-वित्तजा-सेवा सिद्ध होती है।

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।

'चित्तको प्रभुमें तल्लीन कर देना ही 'सेवा' है और उसकी सिद्धिके लिये 'तनुजा' शरीरसे और 'वित्तजा' द्रव्यसे प्रभुकी सेवा मन लगाकर करे।'

सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया।
अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्॥

(नवरत्न ७)

'श्रीगुरुदेवके आज्ञानुसार प्रभुकी सेवा करनी चाहिये। किसी समय प्रभुकी इच्छासे उसमें किसी प्रकारकी अड़चन आ पड़े और गुरुकी प्रथम आज्ञाके अनुसार सेवा न बन सके तो कोई चिन्ताकी बात नहीं। वैष्णवको चाहिये कि वह चित्तको सेवापरायण रखकर सुखपूर्वक रहे।'

आभ्यन्तर-सेवा, जिसे भावात्मक सेवा भी कहते हैं। इसमें मानसी सेवाका निर्देश है। सिद्धान्तमुक्तावलीके अनुसार श्रीकृष्णकी सेवा सदा करनी चाहिये। उसमें मानसी सेवा सबसे उत्तम और परम फलरूप मानी

जाती है—

'कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता।'

सेवाका प्रारम्भ

वल्लभमतमें सेवाका प्रारम्भ उस समयसे हुआ है, जब श्रीमद्वल्लभाचार्य भगवदाज्ञाके अनुसार गिरिराजपर पधारे थे। उन्होंने परम प्रभुके लिये नवीन गृह (मन्दिर)-का निर्माण करा, स्वरूपकी प्रतिष्ठा की और सेवाकी समुचित व्यवस्था की। आचार्यके पश्चात् आचार्यके पुत्र श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरणने सेवामें अनेक प्रकारका सुधार, विस्तार तथा परिवर्धन किया। श्रीनवनीतप्रियजी आदि स्वरूपोंकी स्थापनाकर मार्गकी रीति-नीति निश्चित की। अपने सातों पुत्रों श्रीगिरिधरजी, श्रीगोविन्दजी, श्रीबालकृष्णजी, श्रीगोकुलनाथजी, श्रीरघुनाथजी, श्रीयदुनाथजी और श्रीघनश्यामजीको सेवाका रहस्य समझाकर उनकी इच्छाके अनुसार सम्प्राप्त स्वरूपों—श्रीनाथजी, श्रीनवनीतप्रियजीके अतिरिक्त निधि-स्वरूप श्रीमथुराधीशजी (कोटा), श्रीविट्ठलनाथजी (नाथद्वारा), श्रीद्वारिकानाथजी (काँकरोली), श्रीगोकुल-नाथजी (गोकुल), श्रीगोकुलचन्द्रमाजी (कामवन), श्रीबालकृष्णजी (सूरत) और श्रीमदनमोहनजी (कामवन)-को सेवार्थ प्रदान किया।

वल्लभमतमें सेवा-विटपका बीजारोपण श्रीमदाचार्यने किया तो पल्लवित-पुष्पित श्रीमत्प्रभुचरण श्रीविट्ठल-नाथजीने किया तथा फलित श्रीहरिरायजीने किया।

प्रभुकी सेवाके दो रूप निर्धारित हैं—

नित्यसेवा—

जिसमें मंगला, शृंगार, गोपीवल्लभ-भोग, राज-भोग, उत्थापन-भोग, सन्ध्या, आरती, शयन एवं उत्सवोंकी विशिष्ट सेवा भी होती है।

नैमित्तिक सेवा—

इसमें सारे वर्षभरके उत्सवोंकी सेवा है, जिसमें चार मुख्य अवतारोंकी जयन्तियाँ, यहाँके आचार्योंकी जयन्तियाँ, सांस्कृतिक उत्सव, रक्षाबन्धन, दीपावली, अन्नकूट, दशहरा, होलिका, दोलोत्सव तथा संवत्सर, अक्षयतृतीया, ज्येष्ठाभिषेक, रथयात्रा, सावनके हिंडोले, जलके मनोरथ, देवोत्थापन, शरत्पूर्णिमा, साँझीके उत्सव आदि हैं।

ऋतुओंके अनुसार उत्सवोंमें सोने-चाँदीके बँगले, विविध प्रकारके खस, चन्दन, पुष्प, कलिकाओं तथा काँचके बँगले, हिंडोले, पलने आदिका उपयोग होता है। जलके मनोरथोंमें नौका आदिका।

सेवाके अंग—भोग, राग, शृंगार

भोग—बालकृष्णको ऋतुओंके अनुसार विविध प्रकारके व्यंजन, पक्वान्न समर्पित किये जाते हैं, जिसमें फल, मेवा, दूध-घट, बालभोगकी सखडीकी सामग्री रहती है। अन्नकूट, दोलोत्सव, जन्माष्टमी आदिके अवसरपर विशेष भोग-सामग्रीकी व्यवस्था है।

राग—प्रत्येक दर्शनमें और प्रत्येक उत्सवमें अष्टछापके कवियों एवं वल्लभसम्प्रदायके अन्य कवियों, जयदेव आदिकी अष्टपदियोंके कीर्तन होते हैं, ऋतुओंके और उत्सवोंके अनुसार वाद्य-वादनके साथ ही राग-रागिनियोंके कीर्तन होते हैं।

शृंगार—ऋतुओंके अनुसार प्रभुको शृंगार धारण कराये जाते हैं।

जैसे—चैत्र-वैशाखमें—खुलेबन्धके चाकदार, घेरदार काछनी, पिछोड़ा आदि।

ज्येष्ठ-आषाढमें—आडबन्ध, पडदना, धोती, सूथन, पटका, मल्लकाछ, काछनी, पिछोड़ा आदि।

श्रावण-भाद्रपद—चाकदार पिछोड़ा, धोती, मल्लकाछ, काछनी।

आश्विन-कार्तिक—चाकदार घेरदार पिछोड़ा, धोती मल्लकाछ, काछनी।

मार्गशीष-पौष—चाकदार घेरदार।

माघ-फाल्गुन—चाकदार घेरदार काछनी आदि मस्तकके शृंगार कुल्हटिपारा, फेटा, ग्वालपगा, खिड़कीकी पाग, गोलपाग, दुसाला आदि। सेहरा, टिपारेका जोड़, कुल्हेके जोड़, कलंगी, जामा, काकतरा, टोपी, मुकुट, किरीट।

श्रीअंगमें—हस्त-चरणमें सभी प्रकारके रत्नोंके मोती, मीना आदिके आभरण धारण कराये जाते हैं।

ग्रीष्ममें श्रीकृष्णके समक्ष फुहारे, शीतकालमें अँगीठीकी व्यवस्था रहती है।

सेवाविधि—

ब्राह्ममुहूर्तमें सेवक शय्यात्यागके अनन्तर श्रीमदाचार्यचरण, श्रीविट्ठलनाथजी, सातों बालकों, सातों स्वरूपोंकी, श्रीनाथजी, श्रीयमुनाजी, श्रीस्वामिनीजीकी वन्दना करता है। भ्रमरगीतके छः श्लोकों—**'एताः परम्'** से प्रारम्भकर फिर देहकृत्यके लिये पृथ्वी-प्रार्थना, दन्तधावनके लिये वनस्पतियोंसे प्रार्थना, स्नानके लिये यमुना एवं अन्य तीर्थोंकी अवना-प्रार्थना करके दण्डाकार तिलक, द्वादश तिलकधारण, चरणामृतपान करता है।

प्रातः शंखनाद-घंटानादके समय शंख-घण्टाकी प्रार्थना, भगवत्-मन्दिर-प्रार्थना, सोहनी-प्रार्थना, सिंहा-स्तरण-प्रार्थना, भगवत्प्रार्थना, स्वरूपोंकी प्रार्थना, सिंहासनपर विराजमान करनेके अनन्तर प्रभु-प्रार्थना। **'यमुनाष्टक'** पाठ करते हुए जलकी झारी भरकर यथास्थान पधराना, मुखवस्त्र, वेणु, सिंहासन आदिकी प्रार्थना। मंगलभोग समर्पण करते हुए प्रार्थना। फिर समयपर आचमन, मुखवस्त्रसे मुखप्रोंछन, ताम्बूलसमर्पण, दर्शन खोलकर आरती करते हुए विज्ञापन। दर्शनानन्तर छोटे स्वरूपके स्नान, बड़े स्वरूपके अंगप्रोंछन करते प्रार्थना, श्रृंगार—ऋतुके अनुसार श्रृंगार होनेपर वेणुधारण, दर्पण-अवलोकन। गोपीवल्लभभोग, दर्शन खुलनेके समय राजभोगका धूप-दीप, राजभोगसमर्पण, तुलसीसमर्पण, वेणुवेत्र-धारण, आरसी दिखाकर आरती। श्रीमत्प्रभुको, स्वामिनीजीको, महाप्रभुजीको विज्ञप्ति, निकुंजगमन, विज्ञापन। सायं शंखनाद-घण्टानादसे प्रभुजागरण-उत्थापन-भोगसमर्पण। अनन्तर सन्ध्याभोग। फिर वेणुवेत्रधारण, आरती। शयनभोग घैया, शयनभोगका समय होनेपर मुखप्रक्षालन, ताम्बूल-समर्पण, वंशीधारण, शयन-आरती। फिर शय्यापर पौढ़ाना। यथासमय जलकी झारी भरना। इस सेवाके साथ पादुकाजीकी सेवा एवं अन्य छोटे स्वरूपोंकी भी सेवा की जाती है। सेवाके भावनात्मक होनेके कारण प्रत्येक वस्तुकी श्लोकबद्ध प्रार्थना की जाती है। चारों आरती श्लोकबद्ध आर्याओंसे होती हैं तथा प्रत्येक दर्शनमें कीर्तनोंकी मुख्यता रहती है। सेवाके लिये अलग विभाग (गृह) रहते हैं, जहाँ सेवा सिद्ध होती है। सेवाके प्रत्येक पदार्थ तबतक प्रकाशमें नहीं लाये जाते, जबतक कि प्रभुको वे समर्पण नहीं कर दिये जाते हैं। यहाँके दर्शन अधिक समयतक इसलिये खुले नहीं रहते कि कहीं सुकुमार बालक गुपालको किसीकी नजर न लग जाय। अतः नन्दरानी शीघ्र ही उन्हें भीतर ले लेती हैं। साथ ही प्रभुके सुखका ध्यान भी विशेषरूपसे रखा जाता है। दर्शनोंके लिये भक्तोंकी उत्कण्ठा बढ़े, यह भी एक कारण है। सेवाके क्रमके अनुसार दर्शन खोलने या बन्द करनेकी व्यवस्था है।

'चरणनकी बलिहारी'

(पं० श्रीकृष्णगोपालाचार्यजी)

राधे जू! चरणन की बलिहारी॥
जेहि पद रज ब्रह्मादिक तरसत सो पद सेव तिहारी॥ राधे जू०॥
जिन्ह पदपद्म निकसि सुरसरिता, सीस धरी त्रिपुरारी॥ राधे जू०॥
ते पद कंज फिरत प्रेमाबस, बृन्दा विपिन बिहारी॥ राधे जू०॥
जे पद जोग ध्यान जप दुर्लभ, श्रीपति रमा सम्हारी॥ राधे जू०॥
सेवाकुंज चरन चापत सो, बनि 'गोपाल' पुजारी॥ राधे जू०॥

अष्टछापमें श्रीराधा

(पं० श्रीगोकुलानन्दजी तैलंग, साहित्यरत्न)

वात्सल्य, सख्य और शृंगारकी रस-त्रिपुटीका प्रशस्त आधार लेकर अष्टछापके भक्तहृदय महाकवियोंने जिस महाभावकी लोक-मंगलकारिणी प्रतिष्ठा भक्ति-काव्य-जगत्‌में की है, उसकी मूल प्रेरिका एवं विधायिका शक्ति हमारी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा हैं। प्रेम-लक्षणा भक्ति 'गोपी-भाव' की रागभूमिसे अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित होकर उस रस-त्रिपुटीकी विविध भाव-व्यंजनाओंकी क्रम-कोटियोंको पार करती हुई, जिस रस-सिद्धिके चरम उत्कर्षमें परिणत होती है, वही 'महाभाव' है, 'राधा-भाव' है। राधा मानों महारसकी प्रतीक, महाभावकी अभिव्यंजना ही है। वह रसकी अन्त:स्रोत भी है, रसकी अतल महानिधि भी। समग्र शक्तियाँ उसकी इसी रसनिधितामें अन्तर्हित हैं। रसकी एक स्निग्ध मर्यादाके प्रतिष्ठापनके लिये ही इस भूतलपर उसका अवतरण है। नन्ददास उसके आविर्भावका यही लक्ष्य मानते हैं—

श्रीबृषभानु नृपति के आँगन बाजति आजु बधाई।
कीरतिदे रानी सुखसानी सुता सुलच्छिन जाई॥
सक्ति सबै दासी हैं जाकी श्रीहु तैं अधिक सुहाई।
निरबधि नेह अवधि रसमूरति प्रगटी सब सुखदाई॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद आनँद उर न समाई।
'नंददास' प्रभु पलना पौढ़े किलकत कुँवर कन्हाई॥

आजके उल्लास-विलासकी क्या सीमा? वृषभानुरायजीका राज-प्रांगण आज विश्वकी समग्र सम्पदाओं, विभूतियोंका उद्‌गम-स्थल बन रहा है। निखिल ऋद्धि-सिद्धि-शक्तियाँ जिसकी सहचरी-अनुचरी हैं, जो महाशक्ति आदि-शक्तिके रूपमें उन्हें श्री-शोभा-सामर्थ्यके कुछ कणोंका दान करके अधिकाधिक समृद्ध करती है, उसके प्रादुर्भावसे भला, किसको प्रसन्नता न होगी? सिद्धि-साधनके धनी, तप:पूत ब्रह्म-सनक-नारदादि भी आज व्यापक राधा-शक्तिको व्यक्तरूपमें पाकर निस्सीम हर्षका अनुभव कर रहे हैं। उस लीला-शक्तिके समुदित होनेपर विविध हास-विलास, क्रीड़ाओंके दर्शन जो उन्हें करनेको मिलेंगे। फिर सर्वोपरि सुखद घटना तो आज यह है कि ***'निरवधि नेह अवधि रस-मूरति'*** राधाका प्राकट्य हुआ है, वह राधा, जो स्वयं 'रसेश्वरी' 'रासेश्वरी' हैं, साक्षात् रसाधिपति श्रीकृष्णकी रस-लीलाओंमें चिर-सहचरी, उनकी नियामिका, उनकी सर्वस्व-प्राणाधिका हैं। इसीलिये तो वृषभानु-भवनकी मंगल बधाइयोंको सुनकर बालकृष्ण कुँवर कन्हाई भी नन्द-सदनमें पालनेमें पौढ़े हुए किलक रहे हैं। वह रस-रूपिणी राधा कन्हैयाके साथ अनुपल उदीयमान नव-नव-रस-लीलाओंके द्वारा जगत्‌में निरवधि नेहकी मर्यादा स्थापित करेगी। 'प्रीतिकी रीति' कोई राधासे जाकर सीखे।

राधाके स्वरूपकी यही पृष्ठभूमि है, जिसपर नन्दालय, व्रज-गोष्ठ और निकुंजकी अनगिनत रस-लीलाओंका विकास हुआ है। अपने हृदयके इसी अन्त:सौन्दर्यसे मुग्ध श्यामसुन्दरकी वह प्रियतमा बन पायी है। फिर उसमें बाह्य अंग-अंग-विलसित रूप-लावण्यकी मोहिनीका अनुपम संयोग; क्यों न वे उसके चिर स्नेहानुबन्धमें आबद्ध हो जायँ। छीतस्वामीके शब्दोंमें देखिये—

राधिका स्यामसुँदर कौं प्यारी।
नखसिख अंग अनूप बिराजित कोटि चंद दुति वारी॥
इक छिनु संग न छाँड़त मोहन निरखि निरखि बलिहारी।
'छीतस्वामि' गिरिधर बस जाके सो वृषभानुदुलारी॥

नख-सिख अंगोंमें बिखरती-निखरती उनकी अनंग-सुषमाकी माधुरीको अनुपल अपलक नयनोंसे वे पान करते हैं। कोटि-कोटि सुधांशुकी रूप-रश्मियोंकी सजल डोरियोंने मानों उनके हृदयको बाँध लिया है। एक क्षणका वियोग भी जिन्हें असह्य है, उन गिरिधरके प्रति राधाकी प्रीतिका क्या नाप-तोल? यह है श्रीराधाके रूपका जादू। रस और रूप जब एक स्थानपर आ सिमटते हैं, तो प्रेम किस परमावधिको पा लेता है, यह श्रीराधा-कृष्णके मधुर-मिलनके ऐसे प्रसंगोंमें स्पष्ट होता है।

फिर हमारे भक्त-हृदय, रस-सिद्ध कवीश्वरोंने—श्यामा-श्यामकी व्रज-लीलाओंके गायक-विधायक अन्तरंग अष्ट-सखाओंने इस रूप-रस-तत्त्वके साथ मान-दानकी मधुर-काव्य-कल्पनाका सुन्दर संयोग किया है, जिसके आधारपर उन्होंने रस-परिपाक एवं प्रीति-विधानके परमोज्ज्वल चित्र उपस्थित किये हैं। चतुर्भुजदासकी काव्य-तूलिकाका एक चित्रण देखिये—

रस ही में बस कीन्हे कुँवर कन्हाई।
रसिक गोपाल रसिक रस रिझवति।
रस ही में तासों रिस तजि री माई।
पिय कौं प्रेम रिस सों न होइ रसीली राधे।
रस ही में बचन स्त्रवन सुखदाई।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर रस बस भए तासौं
कुरस कत मिलि रहै हिरदै लपटाई॥

यहाँ थोड़े-से शब्दोंमें रस-रीतिका कितना सुन्दर विश्लेषण किया गया है। 'रसिक गोपाल और रसीली राधे' का यह प्रतीकात्मक चित्रण है।

'रस' में 'रिस' को 'कुरस' माना गया है, जो प्रिया-प्रियतमके प्रेममें बाधक है। फिर 'रसिक गोपाल' को रिझानेके लिये 'रसीली राधे' को तो यह सर्वथा त्याज्य है। 'कुँवर कन्हाई' तो रसके ही वशवर्ती हैं। रस ही तो रसनाका भी विषय है और वही श्रवणोंको भी प्रिय है। इस तथ्यको इस पदमें भलीभाँति समझाया गया है। मानापनोदनकी दिशामें प्रयत्नशील सखी राधा-कृष्णके परस्पर अनुरागका अंकन करती हुई राधाके रस-रूपके आकर्षण और उनके प्रेमकी विजयका भी मोहक रेखा-चित्र खींच रही है।

इसी चित्रको यदि एक दूसरे दृष्टिबिन्दुसे देखें तो इसका दार्शनिक पक्ष भी स्पष्ट झलक जाता है। गोपाल एवं राधाको यदि ब्रह्म और जीव-स्थानीय मान लें तो राधाका मान और 'रिस' उनके गर्व एवं अहंकारका सूचक है, जिसके रहते हुए उनका 'महामिलन' अथवा महाभाव होनेमें बाधा है। 'कुरस' के निरसनसे ही उनकी द्वैत-स्थिति अद्वैत एवं एकात्मभावमें परिणत हो सकती है, जो एकमात्र जीवनका लक्ष्य तथा रसकी परमावधि है। इस 'अहं' की निवृत्ति 'सर्वस्व-समर्पण' की कोटिमें ही सम्भव है। सखी गुरु-स्थानीय माध्यमरूप

होकर इसके लिये प्रयत्नशील है। काव्यके मानदण्डसे, कवि इसी प्रसंगको नायक-नायिकाके बीच 'मान' का रूपक लेकर उपस्थित हुआ है। इसीको 'प्रपत्ति' कहिये, इसीको 'ब्रह्मसम्बन्ध' कहिये—यही 'पुष्टिमार्ग' है, 'भक्तिमार्ग' है, और यही 'द्वैत' और 'अद्वैत' सिद्धि है।

किन्तु सभी स्थितियोंमें कविने यहाँ राधाके रसाधिपत्य, रस-स्वरूपतापर प्रकाश डाला है। भक्त और भगवान्‌के बीच रस या भावकी महिमा और उनकी प्रेम-वश्यताका निदर्शन ही राधाके इस प्रेम-व्यापारका प्रयोजन सिद्ध होता है। श्यामसुन्दर वृषभानुनन्दिनीकी रूप-मोहिनीसे आसक्त होकर उसके भोले भावोंके ग्राहक-रूपमें उसके कृपा-कटाक्षकी किस दैन्यकी सीमातक मधुर याचना करते हैं, यह गोविन्दस्वामी और भी विशद रूपमें चित्रित करते हैं—

कृपा अवलोकनि दान दै री महादान बृषभानुदुलारी।
तृषित लोचन चकोर मेरे तुव बदन इंदु किरनि पान दै री॥
सब बिधि सुघर सुजान सुंदरी सुनि लै बिनती कान दै री।
'गोविंद' प्रभु पिय चरन परसि कह्यौ जाचक कौं तुव मान दै री॥

प्रिया-प्रियतममें एकात्म-भावकी यह परम कोटि

है। रसेश श्रीकृष्ण अपनी प्रेयसी राधाको स्वयंसे भी अधिक रस-दानमें समर्थ मानकर आज उससे 'महादान' की भीख माँग रहे हैं। उनके रूप-रसके प्यासे लोचन, एक बार, केवल एक बार प्रियाके कृपावलोकनकी माँग कर रहे हैं। चन्द्रानना, मृगनयनी राधा ही उनके लोचन-चकोरोंकी तृषा बुझा सकती हैं। मुख-विधुसे पल-पल निर्झरित पीयूष-रश्मियोंके एक कणका रस-दान ही उनका 'महादान' है। आँखोंकी भाव-भीनी, रस-भीगी कोरोंसे ही तो अन्तरतमकी समग्र राग-वृत्तियाँ सिमटकर, आकुंचित होकर प्रियतमकी हृदय-गुहासे निस्सृत भावधाराओंके साथ एकीभूत होती हैं। फिर राधा तो परम नागरी, सुजान सुन्दरी ठहरी। उसका एक कटाक्ष-निक्षेप ही अन्तरके चिर-संचित अनुराग-परागको बिखेरकर प्रियतम नन्दनन्दनको धन्य-धन्य कर देगा। इसीलिये वे आज परम मानवती रूप-गुण-गर्विता श्रीवृषभानुजाको अपनी विनती सुन लेनेको उद्‌बोधित कर रहे हैं। वह भी चरण पकड़कर, सामान्य रूपसे नहीं। 'मान' और 'दान' का कितना सुन्दर समन्वय है!

महाभावकी सिद्धिके लिये राधाके रूप-रसकी प्रशस्ति इससे और अधिक क्या हो सकती है? यहाँ प्रेमकी इन अटपटी साँकरी गलियोंमें एककी स्थिति ही सम्भव है, 'या में दो न समाय' पर लक्ष्य करते हुए श्यामसुन्दर अपने अस्तित्वको ही राधाके चरणोंमें विलय कर रहे हैं। प्रेमपत्तन तो एक निराली पण्य-वीथी है, जहाँ खोने-पानेका लेखा-जोखा नहीं होता। प्रेम, अलौकिक उत्कृष्ट प्रेम तो त्याग और बलिदानका पाठ पढ़ाता है, यहाँ तो देना-ही-देना है, उसीमें वह सब कुछ पा लेता है। राधा भी उसी प्रेमकी प्रतीक है। प्रकटमें उसकी 'मान' की चेष्टाएँ, वस्तुत: उसी सर्वस्व-दानका प्रच्छन्न रूप हैं, रसके उद्दीपन, उसके चरम परिपाकका यह तो सूचनमात्र है। अन्यथा यह कैसे सम्भव है कि रस-नायक नन्दनन्दन, रसिकशिरोमणि परम नागर होकर, राधाके प्रति अपनेको विलय कर दें। हृदय तो हृदयका साक्षी है, उसीके अनुरूप उसकी प्रतिक्रिया होती है।

स्वानुभव और आत्मानन्दमें लीन हमारे अष्ट-छापके रस-लुब्ध कवियोंने 'राधा-तत्त्व' का कितना लोक-पावन स्वरूप हमारे समक्ष रखा है, यह देखते ही बनता है।

अष्टछाप-काव्यमें राधाके रस-विहारके भी स्थान-स्थानपर बड़े मनोरम चित्र उतारे गये हैं। उसे 'रति-रस-केलि' में परम दक्ष माना गया है। वह जहाँ पावन प्रेमकी आदर्श है, रस-मर्यादाकी निर्मात्री है, वहाँ रति-रसकी केलि-कलामें भी निपुण, पूर्ण पारंगता है। कुम्भनदासके शब्दोंमें—

रसिकिनी रस में रहति गड़ी।
कनक बेलि बृषभानुनंदिनी स्याम तमाल चढ़ी॥
बिहरत लाल संग राधा के कौनै भाँति गढ़ी।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर संग रति रस केलि पढ़ी॥

रस ही उसका उपजीवन है। रसमें सर्वदा आकण्ठ मग्न राधाको रस और रसेश्वरको छोड़कर और कुछ वांछनीय भी नहीं। वह रसकी अधिकारिणी भी तो है। इसीलिये रसराज शृंगारके अधिष्ठाता नन्दनन्दन श्रीकृष्ण भी उसीके साथ रस-क्रीड़ा करनेमें अपने रसराजत्वकी चरितार्थता मानते हैं। उसमें ऐसी न जाने कौन-सी चातुरी, कला और रमणीयता है, जिसके कारण लाल गिरिधर, सकल-कला-प्रवीण श्यामसुन्दर उसके प्रेम-पाशमें बँधे हुए हैं। वह 'कौनै भाँति गढ़ी', इस रहस्यको कोई समझ नहीं पाया। लाल गिरिधरके चित्तपर वह ऐसी चढ़ी हुई है, जैसे श्याम तमालका आश्रय लेकर कनक-बेलि उससे लिपटकर रह गयी हो। 'कनक-बेलि' और 'स्याम-तमाल' के इस सहज अंग-संगमें उनके परस्पर रूपाकर्षण, तादात्म्य और एकरसताका भी कविने कितना सांकेतिक निर्वचन कर दिया है। आखिर दोनों एक ही प्रेम-चटसारके सहपाठी हैं, दोनोंने मिलकर ही तो 'रति-रस' और 'केलि-कला' प्रवीणता प्राप्त की है। राधाके कमनीय कलेवर, रूप-लावण्य और उसके साथ श्यामसुन्दरमें उसके एकरस तादात्म्यको कृष्णदासने और भी स्निग्ध रूपमें चित्रित किया है।

देखौ माई, मानौं कसौटी कसी।
कनक बेलि बृषभानुनंदिनी गिरिधर उर जु बसी॥
मानौं स्याम तमाल कलेवर सुंदर अँग मालती घुसी।
चंचलता तजि कै सौदामिनि जलधर अंग बसी॥
तेरौ बदन सुढार सुधानिधि बिधि कौनै भाँति गसी।
'कृष्णदास' सुमेरु सिंधु तैं सुरसरि धरनि धँसी॥

'स्याम-तमाल' पर विलसित होनेके पहले 'कनक-बेलि' को कसौटीपर कसना ही चाहिये। यह तो सुवर्णकी अग्नि-परीक्षा है, उसमें किसी प्रकारकी न्यूनता 'गिरिधर' उरमें बसनेके लिये उसे अयोग्य सिद्ध कर देगी। उसे रसराज श्रीकृष्ण-सरीखे एक बहुत बड़े पारखीके हाथमें जाना है। रसिक-जनोंने राधाको कसौटीपर खरा पाया है, पूरे सौ टंच, बावन तोला पाव रत्ती नपी-तुली। यह उसके अन्तः और बाह्य सौन्दर्यकी परिपूर्णता है। फिर वह केवल 'सुवर्ण' ही नहीं है, सोनेमें सुगन्ध भी, 'सोनेमें सुहागा' भी इसे कह सकते हैं। कनक-बेलि राधामें यह सुगन्ध, सुहागा या सौभाग्य उसमें अन्तरका स्निग्ध अनुराग-पराग ही है, जो 'स्याम-तमाल' को भी रस-भीनी मालतीकी मादकता-मृदुतासे सराबोर किये है। मालतीकी उपमा देकर कविने राधाके रूप-माधुर्यको और भी निखार दिया है। कलित-कोमल-कलेवरा, गौरवर्णा, अमल-धवल-कान्तिमाना राधा इस उपमानके सर्वथा उपयुक्त है। प्रियतमके प्रति अनुराग-परागकी लालिमाके संयोगसे ही मानों वह 'कनक-बेलि' की कमनीयता पा गयी है। इन्हीं गुणोंके कारण वह 'स्याम-तमाल' पर सुखेन विश्राम पा रही है। लता और वृक्षका चिर साहचर्य प्रकृतिका सहज धर्म ही जो ठहरा।

राधा-कृष्णके अभेद, उनकी तद्रूप-तल्लीनता और नित्य-संयोग, नित्य-विहारको कवियोंने विभिन्न रूपकोंमें बाँधा है। यहाँ मेघ और विद्युत्का संयोग परिदर्शनीय है। विद्युल्लता राधा सजल-नील-जलद घनश्यामके अंगोंमें किस अचंचल भावसे विराजित है। रसावेश, भावातिरेक तथा भाव-शबलतामें प्रियतम-प्रियाके मधुर-मिलनकी मादक मोह-बेलाके बीच यह अचंचलता, स्थिरता स्वाभाविक ही है। यह महाभावकी वह अचिन्त्य परमावधि है, जहाँ आत्म-विस्मृति, आत्म-विभोरताके बीच दो हृदय द्वित्वसे एकत्वकी स्थितिमें आ जाते हैं। फिर यहाँ तो श्यामा-श्याममें चिर-पुरातन स्नेहानुबन्ध है। वे तो 'एक प्राण दो देह' माने गये हैं। 'सौदामिनी' और 'जलधर' की एक-रस-रूपताका यहाँ इसीलिये तो आरोप किया गया है। विद्युत्का मेघमें विलय, रस-कोटिमें एक उत्कृष्ट समर्पणकी कल्पना है। इसी समर्पणकी भावनाको कविने आगे चलकर, राधाके मुखको सुधानिधिका उपमान देते हुए, उसके अनुरूप ही उसके हृदयकी रस-धाराको लोक-पावनी, पुण्योज्ज्वल सुरसरिकी धारा मानकर और भी विशद किया है। सुमेरु और सिन्धुसे गंगाका अवतरण और उसका अवनितलमें समा जाना—श्यामसुन्दरके प्रति राधाके सर्वस्व एकात्म-भावका ही प्रतिमान है। विधाताकी रचनासे अतीत महिमामयी राधाका कवि और किन शब्दोंमें निर्वचन करे ? उसके रूप-रसका प्रतिरूप खोज लानेमें कविको आज मानों अवनि-अम्बर—धरती-आकाश एक करना पड़ रहा है।

यह है, राधा-कृष्णकी एकनिष्ठता। ऐसी स्थितिमें उनके बिलगावकी कल्पना भी सम्भव नहीं। किन्तु कवि अपनी काव्य-कल्पनाकी ऊँची उड़ानोंके साथ प्रिया-प्रियतमके बीच मान, महामान-सरीखी संयोजना करता है। स्वयं प्रियतम-प्रिया अभिन्न, एक-रस-रूप होते हुए भी, कुछ क्षणोंके लिये कृत्रिम मानकी नाट्य-योजना करनेमें एक विलक्षण रस, आनन्दका अनुभव करते हैं। काव्य और शृंगारकी परिधियोंमें पूर्ण रस-परिपाकके लिये, चरम भाव-व्यंजनाके लिये, ऐसा होना आवश्यक भी है। यह तो एक प्रकारसे 'प्रेम-परीक्षा' है, एक रस-विनोद है। मान तो रस-दानकी पूर्वपीठिका, भूमिका है। कवियोंने राधाके मान अथवा वियोगके अनेक दृश्य अपने काव्य-कौशलसे खचित किये हैं। संयोग-शृंगार तो भरपूर वर्णित किया ही गया है, अष्टछापके महानुभावोंने विप्रयोग-शृंगारके चित्रणमें भी कोई कमी नहीं रखी है। राधाकी वियोग-विगलित दशा और व्यथा-कथाकी कुछ रेखाएँ भी परमानन्ददासकी वाणीमें देखिये—

अनमनी बैठीए रहै।
अंतरगत की बिथा मोहिनी काहू सौं न कहै॥
सूखौ बदन अधर कुम्हलाने नैननि नीर बहै।
रजनी निंदा करत चंद्र की अलकावली दहै॥
तुम्हरे बिरह बियोग राधिका बासर घाम सहै।
बेगि मिलहु 'परमानँद' स्वामी दूती बचन कहै॥

आज वह अनमनी-सी है—मनसे वंचित, ठगी और छली हुई। हृदयकी व्यथा व्यक्त करते नहीं

बनती। मनकी चिन्तन और तर्ककी शक्ति मानों विलुप्त हो गयी है। अब हृदयकी चेतनामात्र है, जो अनुभूतितक ही सीमित है, अभिव्यक्तिमें पंगु है, फिर व्यथाका ढिंढोरा नहीं पीटा जाता। चुपचाप, लबोंपर 'उफ' लाये बिना सारी चोट सहकर रह जाती है। प्रीति तो परम गोपनीय तत्त्वरूप जो ठहरी। प्रीतिकी व्यथा वह व्यथा नहीं, जो पीड़ा दे, जलन दे। उच्चकोटिमें पहुँचकर तो वह सारी पीड़ा भी रसमयी हो जाती है—सब कुछ मधुर, आस्वाद्य हो जाता है। वह भी तो अपने 'मधुर प्रिय' की ही दी हुई है, अत: वह भी मधुरतम है। इसीलिये 'शिकवा-शिकायत' करके वह प्रेमको कलंकित नहीं करना चाहती। 'काहू सौं न कहै' का यही रहस्य है। फिर भी हृदयमें अनुभाव छिपाये नहीं छिपते। चित्तकी उन्मनता, वाणीका मौन, अन्तर्व्यथाका गोपन, मुखकी विवर्णता या शुष्कता, अधरोंका कुम्हला जाना, नेत्रोंसे अश्रु-प्रवाह, चन्द्रकी सुधा-शीतल ज्योत्स्नाकी भी निन्दा अथवा उसमें अरुचि, अलकावलियोंका दाह, दिवसके उत्तापका सहन आदि ऐसी चेष्टाएँ तथा गतिविधियाँ हैं, जो उसके अन्त:क्षोभ और अन्तर्द्वन्द्वकी वेदनाको स्पष्ट व्यक्त करती हैं। प्रियतमके मधुर-मिलनके बिना यह सारी स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी। 'बेगि मिलहु' ही इस समग्र रोगका समुचित उपचार है।

कितना अनुराग है श्यामसुन्दरके प्रति! कैसा सजीव अंकन कविने राधाका किया है। फिर भला, अपनी प्राणेश्वरीकी पीड़ाको वे निवृत्त क्यों न करेंगे? दोनों ही एक-दूसरेके हृदयके पारखी हैं—रस, रसनागरी राधाका अलौकिक प्रेम, उसके रूप-रसकी मोहिनी बरबस कन्हैयाको उसकी ओर खींच लेती है। सूरदास एक ही पदमें युगल-रस-विग्रह दम्पतीके स्वरूपका निदर्शन कर देते हैं—

नागरता की रासि किसोरी।
नव नागर कुल मूल साँवरौ बरबस कियौ चितै मुख मोरी॥
रूप रुचिर अँग अंग माधुरी बिनु भूषन भूषित ब्रजगोरी।
छिन छिन कुसल सुगंध अंगमें कोक रभस रस सिंधु झकोरी॥
चंचल रसिक मधुप मोहन मन राखे कनक कमल कुच कोरी।
प्रीतम नैन जुगल खंजन खग बाँधे बिबिध निबंधनि डोरी॥
अवली उदर नाभि सरसी में मनहुँ कछुक मादक मधुरौ री।
'सूरदास' प्रीतम सुंदरबर सींव सुदृढ़ निगमनि की तोरी॥

'नागरताकी रासि किसोरी' राधाके स्वरूपके लिये एक सूत्र है और 'राखे कनक कमल कुच कोरी' तथा 'सींव सुदृढ़ निगमनि की तोरी' में उसकी व्याख्या। नवनागर, कुल-मूल श्यामसुन्दरको जिसने अपनी रसीली चितवनमात्रसे नेहकी डोरीसे बाँध लिया, उसकी नागरताका क्या बखान किया जाय? इस नागरताके साथ अंग-अंग-विलसित रूप-माधुरीका अपूर्व संयोग, बस, यही तो उसका अलंकार है, जिससे वह ब्रजकी गोरी ग्वालिनी आभूषणके बिना भी सुविभूषित है। रस-सिन्धु जैसे पवन-वेगसे, मलय-सुवासित समीरके झकोरोंसे हिल्लोलित-कल्लोलित हो रहा हो, ऐसे उसके रूप-यौवनका रस-सागर मानों लहरा रहा है। फिर क्यों न मनमोहनका मधुप-मन रसमत्त होकर पागल हो उठे? किन्तु उस भावोन्मत्तको भी जो अचंचलकर, अपने हिरण्य-उरोज-पद्मके स्निग्ध परिमलमें समेटकर, सम्पुटित कर ले, यही उसकी नागरता है। उसने रसेश प्रियतमके मनको ही बन्दी नहीं बना लिया, वह तो उन्मुक्त भाव-लोकमें उड़ानें भरनेवाले नयन-खंजन-खग-युग्मको भी अपनी मोहिनीसे भाव-बिजड़ित करनेमें समर्थ है अपने विविध रस-कलाके निबन्धोंकी डोरमें। न जाने ऐसी कौन-सी मादक-माधुरी उसमें है, जिसके कारण महारसके अधिष्ठाता नन्दनन्दन समस्त लोक-मर्यादा, लोक-वेदके विधि-निषेधोंका भी अतिक्रमण कर गये और उस परम नागरीके साथ मिलकर उन्होंने ऐसे 'महाभाव' की प्रतिष्ठा की, जो युग-युग, चिरन्तन कालतक रसकाव्यके स्रष्टा-द्रष्टाओंके लिये आदर्श ही नहीं, साधना-आराधनाका प्रतिमान बना रहेगा।

ऐसी है हमारे रस-काव्य विधायक-गायक परम भक्तहृदय अष्टछापके कवियोंकी राधा—रसराजकी परम प्रेयसी नागरी राधा—भक्तों, कवियों, रसिकोंकी ध्येय-गेय आराध्या-साध्या राधा!!

सूरदासकी राधा

(श्रीगौरीशंकरजी श्रीवास्तव, एम०ए०, साहित्यरत्न, शिक्षाशास्त्री)

हिन्दी साहित्यके भक्तिकालीन कवियोंमें महात्मा सूरदासका नाम अत्यन्त श्रद्धा, भक्ति और आदरके साथ लिया जाता है। कृष्णभक्तिशाखाके अष्टछाप कवियोंमें महाकवि सूरदासका स्थान सर्वोपरि है। आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्लके शब्दोंमें 'आचार्योंकी छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्णकी प्रेमलीलाका कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदासकी वीणाकी थी।'

अपनी नवीन उद्भावनाओं, कोमल कल्पनाओं और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण व्यंजनाओंके कारण आज महाकवि सूरदास हिन्दी साहित्यके सर्वोच्च आसनपर आरूढ़ हैं। परंतु हिन्दी साहित्यको सूरदासकी जो सबसे बड़ी देन है, वह है उनकी 'राधा'।

अपने अमर ग्रन्थ 'सूरसागर' में सूरदासजीने श्रीराधाके लौकिक और अलौकिक—दोनों रूपोंका वर्णन किया है। दूसरे शब्दोंमें राधाकी अवतारणामें महाकविने उभय पक्षोंपर ध्यान दिया है। पहला तत्त्व-निरूपण और दूसरा लीला-वर्णन।

राधाके विषयमें सूरदासका कथन है कि राधा प्रकृति हैं और श्रीकृष्ण पुरुष हैं। दोनों एक ही हैं। उनमें जो भेद बतलाया गया है, वह शब्दोंका भेद है, वास्तविक नहीं। राधा-कृष्णके विकासमें सांख्यके प्रकृति-पुरुषकी मान्यताका सूरने स्पष्ट समर्थन किया है। जैसे गुण गुणीसे अलग नहीं होता, उसी प्रकार सीता-राम, राधा-कृष्ण, प्रकृति-पुरुषका वह सम्बन्ध कोई नवीन नहीं है, परंतु व्रजमें बसकर इसको भुलाया जा चुका है—

१. ब्रजहिं बसैं आपुहिं बिसरायौ।
प्रकृति-पुरुष एकै करि जानहु, बातनि भेद करायौ॥
२. प्रकृति-पुरुष नारी मैं वे पति काहे भूल गयी।

डॉक्टर मुंशीरामजी शर्माने 'सूर-सौरभ'में राधा-कृष्णके स्वरूपकी व्याख्या करते हुए उन्हें सांख्यके प्रकृति-पुरुष, वेदान्तके माया-ब्रह्म, तन्त्रके शक्ति-शिव और वैष्णवोंके श्री-विष्णु या लक्ष्मी-नारायणके रूपमें देखनेका प्रयास किया है। उनके अनुसार तात्त्विक रूपमें सभी एक हैं; भेद केवल दृष्टिका है।

इस प्रकार सूरकी राधाका ठीक वही स्थान है, जो तुलसीकी सीताका है। सीताकी तरह ही राधा भी जगत्-जननी हैं, क्लेशहारिणी हैं।

वस्तुत: ब्रह्मकी एक ही शक्तिके सीता और राधा—दो भिन्न-भिन्न नाम हैं। एक ही शक्तिके दो भिन्न-भिन्न रूप होनेके कारण सूरदासजीने राधा-लक्ष्मी और राधा-सीतामें किसी प्रकारका अन्तर नहीं माना है। अवतारवादकी दृष्टिसे जिस प्रकार राम और कृष्णमें अभिन्नता है, उसी प्रकार सीता और राधामें भी—

समुझि री नाहिंन नई सगाई।
सुनु राधिके तोहिं माधव सों प्रीति सदा चलि आई॥

× × × ×

प्रकृति-पुरुष, श्रीपति, सीतापति अनुक्रम कथा सुनाई।
सूर इती रस-रीति स्याम सों तैं ब्रज बसि बिसराई॥

राधा-तत्त्वका विवेचन करते हुए सूरदासजीका कथन है कि राधा जगत्के नायक जगदीशकी प्यारी हैं, जगज्जननी तथा जगत्की स्वामिनी हैं। गोपाललालके साथ उनका विहार वृन्दावनमें नित्य ही चलता रहता है—अविरल गतिसे, जो कभी अन्तको नहीं पाता। श्रीराधा अशरणको शरण देनेवाली हैं, संसारके भयको दूर करनेवाली हैं, भक्तोंकी रक्षिका हैं तथा मंगलदात्री हैं। रसना एक है, सौ करोड़ नहीं हैं कि श्रीराधाकी अपार शोभाका यथावत् वर्णन कर सके। श्रीराधाके माध्यमसे श्रीकृष्णकी भक्ति सुलभ है। अत: भक्तकवि सूरदासजी श्रीकृष्णभक्तिकी प्राप्तिके लिये श्रीराधाजीसे प्रार्थना करते हैं—

जगनायक जगदीसपियारी, जगतजननि जगरानी।
नित बिहार गोपाललाल-सँग बृंदाबन रजधानी॥
अगतिनकी गति, भक्तनकी पति, श्रीराधापद मंगलदानी।

असरनसरनी, भवभयहरनी, बेद-पुरान बखानी॥
रसना एक नहीं सतकोटिक, सोभा अमित अपारी।
कृष्णभक्ति दीजै श्रीराधे 'सूरदास' बलिहारी॥

(सूरसागर, दशमस्कन्ध)

इस प्रकार महाकवि सूरदासने राधा-तत्त्वका निरूपण करते हुए राधाजीको आदिशक्ति, मूलप्रकृति जगन्माताके रूपमें चित्रित किया है।

लीला-वर्णनके अन्तर्गत सूरदासने संयोग-पक्ष और वियोग-पक्ष—दोनोंपर अपनी लेखनी चलायी है। उन्होंने श्रीराधिकाके चित्रणमें भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनके प्रति उनके विमल स्नेह तथा उनके वियोगमें अरुन्तुद विरहके वर्णनमें अपनी निर्मल प्रतिभाका विकास दिखलाया है। सूरके सामने राधा-कृष्णके लीला-प्रसंगका एक व्यापक क्षेत्र खुला था, जिसका कोना-कोना उन्होंने अपने प्रातिभ चक्षुओंसे निरखा था। परिणामस्वरूप विविध दशाओंमें राधारानीके मनोभावोंका—स्नेहकी विभिन्न भावना-भूमियोंका जितना सुचारु, सरस तथा सुरस वर्णन सूरने प्रस्तुत किया है, उतना हिन्दी-साहित्यका कोई भी कवि न कर सका। इसलिये डॉक्टर श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदीने लिखा है कि 'सूरदासने राधिकाके जिस रूपका चित्रण किया है, उसकी तुलना शायद ही किसी अन्य भक्तके चित्रणसे की जा सके। चिर साहचर्य और बालसख्यकी भूमिकाके ऊपर प्रतिष्ठित वे राधिका अपना उपमान स्वयं ही हैं।'

राधा और कृष्णके प्रेमका आरम्भ सूरदासने रूपमें आकर्षणसे ही किया है। यथा—

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
गये स्याम रबितनयाके तट अंग लसति चंदन की खोरी॥
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन बिसाल भाल दिये रोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी॥

यह संयोग शृंगारका प्रारम्भ है। आगे यह संयोग अधिक प्रगाढ़ होता जायगा। तभी तो वह अवस्था आयेगी, जिसे वियोग कहते हैं। कृष्ण और राधाका परस्पर परिचय होता है—

बूझत स्याम कौन तू गोरी?
'कहाँ रहति, का की तू बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी॥'
'काहे को हम ब्रज तन आवति? खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनति रहति स्त्रवनन नँद-ढोटा, करत रहत माखन-दधि चोरी॥'
'तुम्हरो कहा चोरि हम लै हैं? खेलन चलौ संग मिलि जोरी।'
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बातन भुरइ राधिका भोरी॥

इस खेल-ही-खेलमें इतनी बड़ी बात पैदा हो गयी, जिसे 'प्रेम' कहते हैं।

सूरका संयोग-वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है। प्रेम संगीतमय जीवनकी एक गहरी धारा है, जिसमें अवगाहन करनेवालेको दिव्य माधुर्यके अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं दिखायी पड़ता। राधा-कृष्णके रंग-रहस्यके इतने प्रकारके चित्र सामने आते हैं कि सूरका हृदय प्रेमकी नाना उमंगोंका अक्षय भण्डार प्रतीत होता है।

राधा और कृष्णका साथ अब तो गाय चराते समय वनमें भी हो जाता है। राधा कृष्णके घर भी आती हैं और यशोदामैया उनके ऊपर सन्देह करके उन्हें आनेसे बरजती हैं—

'बार-बार तू ह्यां जनि आवै।'

इसके उत्तरमें राधिकाद्वारा कृष्णकी रतिका कितना उत्कृष्ट अंकन सूरदासने किया है—

मैं कहा करौं सुतहि नहिं बरजति घर तें मोहिं बुलावै॥
मों सौं कहत तोहिं बिनु देखें रहत न मेरो प्रान।
छोह लगत मोकों सुनि बानी महरि! तिहारी आन॥

कितना सुन्दर और पूर्ण चित्रण किया है सूरदासजी ने, जिसमें आलम्बन और उद्दीपन दोनों पक्षोंका कितना स्वाभाविक वर्णन है।

एक दिन ऐसा भी आता है, जब माता यशोदा राधिकाजीका परिचय पूछती हैं—***'नामु कहा है तेरौ प्यारी?'*** और फिर परिचय पाकर वह राधाजीको सँवारती हैं। तत्पश्चात् श्रीकृष्णके साथ खेलनेकी अनुमति दे देती हैं। इस प्रकार बाल्यकालसे ही राधा-कृष्णका प्रेम सहज-स्वाभाविक रूपमें विकसित होता है—दोनोंके मनमें एक-दूसरेके लिये उत्सुकता

बनी रहती है—

राधा बिनय करत मन ही मन
सुनहु नाथ अंतर के यामी।
मातु-पिता कुल कानहिं मानत
तुमहिं न जानत हैं जगस्वामी॥

वस्तुतः यह कामना किसी विलासवतीकी नहीं है, यह भक्तकी कामना है। यह ऐकान्तिक नित्य प्रेम है, आकस्मिक नहीं और यह दीर्घकालके साहचर्यसे उत्पन्न हुआ है। भवभूतिने राम और सीताके प्रेममें दीर्घ साहचर्यजनित इसी गाढ़ताका दर्शन पाया था।

सूरने राधाको लेकर कई मौलिक उद्भावनाएँ की हैं, जो न भागवतमें हैं, न पूर्ववर्ती कवियोंमें। इनमें प्रमुख है—रासके अवसरपर राधा-कृष्णके विवाहका वर्णन। महाकवि सूरने रासमें श्रीकृष्णके साथ राधाजीका विवाह विधिवत् सम्पन्न करा दिया है, जिससे किसी प्रकारकी विरुद्ध टीका-टिप्पणीके लिये तनिक भी अवकाश न रह जाय। उनका कथन है कि श्रीकृष्णको पति बनानेकी भव्य भावनाकी सिद्धिके निमित्त ही गोपियोंने माता कात्यायनीका व्रत किया था और रासके रूपमें उसी व्रतकी सिद्धि सर्वथा लक्षित होती है। अतः सूरदासने राधाका परम स्वकीयाके रूपमें चित्रणकर उन्हें पूर्णतया गीतिकाव्यात्मक पात्र बना दिया है। वह न केवल स्वकीया है, वरं उनका प्रेम चिरसाहचर्यजनित है।

सूरदासने राधाका चित्रण कृष्णकी आह्लादिनी-शक्तिके रूपमें किया है। इसलिये जब कभी युगलमूर्तिका मिलन होता है—सारी वनस्थली चकित होकर निर्निमेष भावसे शोभाके इस अपार सागरको देखा करती है और इस दिव्य-मिलन संगीतको गाते सूरदास जैसे रुकना ही नहीं जानते।

वियोगमें तपकर ही प्रेमका वास्तविक स्वरूप निखरता है। प्रेमके इसी पक्षको प्रत्यक्ष करनेके लिये ही श्रीराधा और गोपियोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी वियोग-लीला हुई।

महाकवि सूरदासके राधा-विरहमें इतनी स्वाभाविकता है कि हृदयपर उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। उसमें किसी प्रकारकी कृत्रिमताकी गन्ध भी नहीं है। श्रीकृष्णके मथुरा चले जानेपर राधाजीकी विचित्र दशा हो गयी है। प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रकी विरह-व्यथाने उन्हें अत्यन्त विकल बना दिया है। अपना मन बहलानेके लिये वे प्रायः वीणाके तारोंपर अपने प्राणधन, परम प्रियतम श्रीकृष्णचन्द्रके गुणोंका गान करती रहती हैं और एक दिन तो विचित्र घटना होती है। रातमें जब वे वीणा लेकर बैठती हैं तो वीणाके स्वरसे मोहित होकर चन्द्रमाके रथका हिरन अड़ जाता है और इस प्रकार चन्द्रमाके रुक जानेसे रात और भी बढ़ जाती है। इसपर घबराकर श्रीराधाजी सिंहका चित्र बनाने लगती हैं, जिससे मृग डरकर भाग जाय। सूरकी यह उद्भावना सचमुच बड़ी ही अनूठी है।

राधाजीके दुःसह विरहको देखकर प्रकृति भी अत्यन्त दुखित हो उठी है। कमनीय यमुना विरहके कारण काली पड़ गयी है। परंतु राधा पूछती हैं कि मथुराकी प्रकृति वृन्दावनसे भिन्न है क्या? उधर मेघका गरजना, बिजलीका कौंधना, दादुरका बोलना—पावसमें शृंगारके प्रकृत उद्दीपन विद्यमान नहीं हैं क्या? जिससे श्रीकृष्णका हृदय इस विरहमें भी पीड़ित नहीं होता और न वे हमसे मिलनेका ही प्रयास करते हैं—***'किधौं घन गरजत नहिं उन देसनि'*** पद द्रष्टव्य है।

'जब तैं बिछुरैं कुंजबिहारी' (पद ३८७५)-में कृष्णके वियोगमें राधाकी दीन दशाका बड़ा ही मार्मिक वर्णन सूरने किया है। भारतीय प्रेम-पद्धतिके समग्र प्रतीकोंका उपयोग यहाँ किया गया है।

व्रजमें उद्धवके आगमनपर, उनके ज्ञानोपदेशके समय प्रायः सभी गोपिकाएँ उद्धवकी नीरस ज्ञानचर्चाको सुनकर उन्हें बुरा-भला कहती हैं, कहीं-कहीं श्रीकृष्णको भी खरी-खोटी सुनाती हैं, परंतु श्रीराधाको हम ऐसा करते हुए नहीं पाते। सूरदासने राधाको इस प्रसंगमें न लाकर असीम मर्यादा एवं अपनी काव्यकलाका बड़ा ही सुन्दर परिचय दिया है। राधा स्वकीया जो ठहरीं। वह

अन्य गोपियोंकी भाँति अपने प्रियतमकी निष्ठुरताकी चर्चा परपुरुषसे, भले ही वह प्रियका सखा ही क्यों न हो, कैसे करतीं और सच पूछिये तो संसारकी किसी भाषामें वह शक्ति भी है क्या, जो उस महा-वियोगिनीकी असीम वेदनाका यथावत् चित्रण कर सके? नहीं, कदापि नहीं। इसलिये उस तपस्विनीके दर्शनमात्रसे ब्रह्मज्ञानी उद्धवके हृदयपर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ता है कि वे अपनी अक्षय ज्ञानरूपी सम्पत्तिको श्रीराधाचरणोंमें समर्पितकर सच्चे मन, वचन और कर्मसे पूरे भक्त बन जाते हैं।

सूरदासजीने भी राधा तथा गोपियोंका श्रीकृष्णचन्द्रसे कुरुक्षेत्रके तीर्थमें मिलन कराया है। इतने दिनोंके दीर्घ प्रवास तथा तीव्र विरहके बाद इस मिलनमें कितना सुख है, कितना आकर्षण है, इसका वर्णन किन शब्दोंमें किया जाय? यह सम्मेलन श्रीकृष्णकी दो प्रियतमाओं—राधा और रुक्मिणीका प्रथम समागम है। फलतः, दोनोंका कौतुक शान्त होना स्वाभाविक है, परंतु राधाकी लालसा कृष्णके दर्शनकी ही है। कौतुक और जिज्ञासाका उदय रुक्मिणीजीके हृदयमें ही जगता है। वे श्रीकृष्णसे पूछती हैं—'इन गोपियोंमें तुम्हारे बालापनकी जोड़ी राधा कौन-सी है?'—इसके उत्तरमें श्रीकृष्णचन्द्रका उत्तर अनुरागसे भरा हुआ है। यह पूरा प्रसंग राधाका प्रथमतः रुक्मिणीसे और तदनन्तर श्रीकृष्णसे मिलन बड़ा ही सरस तथा मर्मस्पर्शी है—

बूझति हैं रुक्मिनि पिय इनमें को वृषभानुकिसोरी।
नैकु हमैं दिखरावहु अपनी बालापन की जोरी॥
परम चतुर जिन्ह कीन्हें मोहन, अल्प बैस ही थोरी।
बारे तैं जिनि इहै पढ़ाये, बुधि-बल-कल बिधि चोरी॥
जाके गुन गनि ग्रंथित माला, कबहुँ न उर तैं छोरी।
मनसा सुमिरन, रूप ध्यान उर, दृष्टि न इत-उत मोरी॥
वह लखि जुबति-बृंदमें ठाढ़ी नीलबसन तनुगोरी।
सूरदास मेरो मन वाकौ, चितवन बंक हर्यौ री॥

(पद ४९०४)

रुक्मिणी तथा राधाकी भेंटका वर्णन सूरदासने इन सरस शब्दोंमें किया है—

रुक्मिनि राधा ऐसे भेंटीं।
जैसे बहुत दिनन की बिछुरीं एक बाप की बेटीं॥
एक सुभाउ एक बय दोऊ, दोऊ हरि कौं प्यारी।
एक प्रान मन एक दुहुँन कौ, तनु करि दीसति न्यारी॥
निज मंदिर लै गयीं रुक्मिनी, पहुनाई बिधि ठानी।
सूरदास प्रभु तहँ पग धारे, जहाँ दोऊ ठकुरानी॥

(पद ४९०९)

माधवके साथ श्रीराधाका मिलन बड़ा ही संयत, हृदयावर्जक तथा मनोमोहक है। सूरदासने इस अवसरपर अपनी विमल प्रतिभाका विलास दिखलाया है—

राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव राधा, कीट भृंग गति ह्वै जु गई॥
माधव राधा के रँग राँचे, राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरंतर, रसना करि सो कहि न गई॥
बिहँसि कह्यौ हम तुम नहिं अंतर, यह कहिकै उन ब्रज पठई।
सूरदास प्रभु राधा-माधव ब्रज बिहार नित नई नई॥

(पद ४९१०)

राधा-माधवके मिलनकी यही अन्तिम झाँकी है। दोनोंके नित्य-निरन्तर विद्यमान प्रेमका वर्णन रसनाके वशकी बात नहीं। राधा-माधवमें कोई अन्तर नहीं। दोनोंका व्रजविहार नित्य नूतन है।

इस प्रकार सूरदासने श्रीराधाका चरित्र-चित्रण ऐसे सुन्दर ढंगसे किया है, जिसमें हमें सच्ची प्रेमिकाका उज्ज्वल चरित्र मिलता है, जो विरहकी असह्य ज्वालामें जलती है, पर उफ्तक नहीं करती, जिसका त्याग हिमाद्रिसे भी उच्च है, परंतु नम्रताके कारण झुका हुआ; जिसकी कर्तव्य-भावना प्रस्तरसे भी अधिक कठोर है और हृदय नवनीतवत् कोमल, जिसे माखनप्रिय नवनीत-चोर श्रीकृष्णने हँसते-खेलते ही चुरा लिया। वास्तवमें सूरकी राधा एक ऐसी देन है, जिसको भुलाया नहीं जा सकता।

गौडीय दर्शनमें श्रीराधा

(त्रिदण्डी स्वामी श्रीनिष्किञ्चनजी महाराज)

राधाकृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी भक्तिरस्मा-
देकात्मानावपि भुवि पुरा देहभेदं गतौ तौ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद् द्वयं चैक्यमाप्तं
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम्।

वर्तमान युगमें जिन्होंने बंग-देशमें गंगाका स्रोत लानेवाले भगीरथकी भाँति आविर्भूत होकर राधामाधव-भक्तिरसधाराको स्रोतस्वती बना दिया था, उन श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने मुझ अल्पज्ञकी समझमें आ जाय, इस रीतिसे उपर्युक्त श्लोककी व्याख्या की थी—

'राधा-कृष्णकी प्रणयविकृतिरूप ह्लादिनी शक्तिके रूपमें राधाकृष्ण स्वरूपत: एकात्मक होकर भी विलास-तत्त्वकी नित्यताके लिये राधा और कृष्ण दो स्वरूपोंमें नित्य विराजमान हैं। वे ही दो तत्त्व सम्प्रति एक ही स्वरूपमें, चैतन्यतत्त्वके रूपमें प्रकट हैं। अतएव राधाके भाव और द्युतिके द्वारा आच्छादित उस गौररूपमें प्रकट कृष्णस्वरूपको मैं प्रणाम करता हूँ।'

श्रीचैतन्यचरितामृतकार कृष्णदास कविराज गोस्वामी इसकी व्याख्यामें श्रीराधाके स्वरूपका इस प्रकार वर्णन करते हैं।

राधिका हयेन कृष्णेर प्रणयविकार।
स्वरूपशक्ति ह्लादिनी नाम याँहार॥
ह्लादिनी कराय कृष्णे आनन्दास्वादन।
राधा पूर्ण शक्ति, कृष्ण पूर्ण शक्तिमान्॥
दुइ वस्तु भेद नाहि शास्त्र परमाण।
राधा कृष्ण ऐछे सदा एकइ स्वरूप॥
लीला-रस आस्वादिते धरे दुइ रूप।
प्रेम भक्ति सिखाइते आपनि अवतरि॥
राधा भाव कान्ति दुइ अङ्गीकार करि।
श्रीकृष्णचैतन्यरूपे कैल अवतार॥

राधाकृष्णमें अभेद है, केवल रस-आस्वादनके लिये ही दो रूप हैं। राधाके भाव और कान्तिको लेकर श्री-कृष्ण ही अभिन्नरूपसे श्रीगौर बनकर अवतीर्ण हुए हैं।

श्रीश्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेवके दासोंके लिये श्रीश्रीराधाकी सेवा ही सर्वथा वाञ्छनीय है। उसके ऊपर और कुछ नहीं है। वे अकेले श्रीकृष्णके उपासक नहीं हैं। इसीलिये वे श्रीकृष्णको वृन्दावनसे बाहर एक क्षणके लिये भी नहीं रखना चाहते। वे श्रीकृष्णके विषयमें कहते हैं—**'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।'** वे श्रीकृष्णको क्षणभरके लिये भी श्रीराधाके सम्पर्कसे पृथक् नहीं देखना चाहते। मथुरा या द्वारकाके श्रीकृष्णसे उनका कोई प्रयोजन नहीं है। वे श्रीराधासे पृथक् श्रीकृष्णको देखनेकी इच्छा ही नहीं करते और इसीलिये अकेले कृष्णके उपासकोंसे भी दूर ही रहना चाहते हैं।

यदि कोई यह सोचे कि 'राधा-कृष्णके भजनकी क्या आवश्यकता है? अकेले श्रीकृष्ण-भजनसे ही प्रेमका प्रयोजन सिद्ध हो जायेगा। श्रीकृष्ण जब सर्वेश्वरेश्वर हैं, तब उनकी सेवासे ही हमें मंगलकी प्राप्ति जायेगी। उनके साथ राधाके संयोगकी क्या आवश्यकता?' तो ऐसा विचार गौड़ीय वैष्णवकी दृष्टिमें भ्रमात्मक और विशेष अपराधजनक है। श्रीराधाके साथ न रहनेपर श्रीकृष्ण किसीकी पूजा ग्रहण ही नहीं करेंगे और श्रीराधारानीके प्रति अवज्ञासूचक किसी भी भावको श्रीकृष्ण सहन नहीं कर सकेंगे। इस अपराधके फलस्वरूप हम मायासिन्धुके अतल जलमें डूब जायँगे और हमारे उद्धारकी आशा निर्मूल हो जायगी। अत: राधा-रस-सुधा-निधिमें ही अवगाहन करना ही पड़ेगा। इसीलिये साधकोंको 'आशाबन्ध, समुत्कण्ठा, नाम-गानमें सदा रुचि' के साथ भजन करते हुए आगे बढ़ना पड़ेगा। राधारानीकी अवहेलना करके श्रीकृष्णसेवाकी दुराशा रखना तो केवल व्यर्थतामें परिणत होगा। चैतन्यदेवने जीवोंके लिये राधा-कृष्णभजनका मार्ग सुगम करनेके निमित्त ही स्वयं राधाभावसे विभावित होकर अवतार लिया और परम अमन्दोदय दयाका आदर्श स्थापित किया। उनके पार्षद भक्तोंके आचरणसे भी यही स्पष्टरूपसे दिखायी देता है। श्रील रघुनाथदास गोस्वामीपादके विचार देखिये—

अनादृत्योद्गीतामपि मुनिगणैर्वैणिकमुखैः
प्रवीणां गान्धर्वामपि च निगमैस्तत्प्रियतमाम्।

य एकं गोविन्दं भजति कपटी दाम्भिकतया
तदभ्यर्णे शीर्णे क्षणमपि न यामि व्रतमिदम्॥

'जिन श्रीराधाकी गुणावलिका नारदादि प्रधान मुनियोंने गान किया है, वेदने जिनको 'गोविन्द-प्रियतमा' बतलाया है—जैसे ऋक्‌परिशिष्टमें है—'**राधया माधवो देवो माधवेन च राधिका**', ब्रह्मवैवर्तपुराणमें है—'**श्रुतिभिः कीर्तिता तेन परमानन्दरूपिणी।**'—उन सर्वश्रेष्ठा श्रीगान्धर्विका श्रीराधारानीका अनादर करके जो कपटी दाम्भिकताके वशमें होकर केवल गोविन्दका भजन करता है, उसके अति जुगुप्सित संगमें मैं एक क्षण भी न जाऊँ, यह मेरा व्रत है।'

उनकी स्तवावलीका अनुसरण करते हुए श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने गाया है—

राधिका चरणपद्म, सकल श्रेयेर सद्म, यतने ये नाहि आराधिल।
राधापदाङ्कित धाम, वृन्दावन यार नाम, ताहा ये ना आश्रय करिल॥
राधिकाभाव गम्भीर चित्त येवा महावीर-गण सङ्ग ना कैल जीवने।
केमने से श्यामानन्द-रस-सिन्धु-स्नानानन्द लभिबे बुझ ह एक मने।

ठाकुरने और भी गाया है—

राधा भजने यदि मति नाहि भेला। कृष्ण भजन तव अकारणे गेला॥
केवल माधव पूज्ये सो अज्ञानी। राधा अनादर करइ अभिमानी॥
कबँहि नाहि करबि ता कर सङ्ग। चित्ते इच्छसि यदि व्रज-रस-रङ्ग॥

श्रीश्रीबिल्वमंगल ठाकुरके श्रीकृष्णकर्णामृतके अनुवादकी भूमिकामें श्रील यदुनन्दन ठाकुरने गाया है—

हेन राधा पाद-पद्म करि अनादर।
गोविन्द भजने यार वाञ्छा निरन्तर॥
हेन राधा नाहि, भजे कृष्णे करे रति।
सेइ त कपटी दम्भी अति मूढ़ मति॥

गौड़ीय विचारके अति सम्मानित आचार्य श्रील नरोत्तम ठाकुरने भी गाया है—

जय जय राधा नाम, वृन्दावन याँर धाम, कृष्णसुख विलासीदेर निधि।
हेन राधा-गुणगान ना शुनिल मोर कान, वञ्चित करिल मोरे विधि॥
तार भक्त सङ्गे सदा रासलीला-प्रेमकथा ये करे से पाय घनश्याम।
इहाते विमुख एइ, तार कभु सिद्धि नाइ, नाहि ये न शुनि तार नाम॥

श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामीकी तो सम्पूर्ण रचना ही श्रीश्रीराधारानीके दास्यकी कामनासे परिपूर्ण है। उनके श्रीराधिकाष्टकके प्रत्येक श्लोकका अन्तिम चरण इसी कामनाकी अभिव्यक्ति है—

—स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु?

'विलापकुसुमाञ्जलि' के शताधिक श्लोकोंमें उन्होंने यही प्रार्थना की है।

तवैवास्मि तवैवास्मि न जीवामि त्वया विना।
इति विज्ञाय देवि त्वं नय मां चरणान्तिकम्॥
आशाभरैरमृतसिन्धुमयैः कथंचित्
कालो मयातिगमितः किल साम्प्रतं हि।
त्वं चेत् कृपां मयि विधास्यसि नैव किं मे
प्राणैर्व्रजेन च वरोरु वकारिणापि॥

'हे देवि राधिके! मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हारा हूँ; तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रहूँगा। यह जानकर तुम मुझे अपने चरणोंके समीप स्थान दो। हे वरोरु राधे! मैं सम्प्रति तुम्हारे सेवामृत-सिन्धुमें निमज्जित होनेके लिये गम्भीर आशासे किसी भी प्रकार अत्यन्त कष्टसे काल-यापन कर रहा हूँ। तुम यदि मुझपर कृपा न करो तो फिर इन प्राणोंसे या व्रजवाससे, यहाँतक कि श्रीकृष्णसे ही मेरा क्या प्रयोजन है?'

श्रीचैतन्यचरितामृतमें कृष्णदास गोस्वामीने कहा है—

कृष्णकान्तागण देखि त्रिविध प्रकार।
एकल लक्ष्मीगण, पूरे महिषीगण आर।
व्रजाङ्गनारूप आर कान्तागण सार।
श्रीराधिका हइते कान्तागणेर विस्तार॥
अवतारी कृष्ण जैछे करे अवतार।
अंशिनी राधा हइते तिन गणेर विस्तार॥

नित्यगोलोक-वृन्दावनधाममें नित्य 'गोविन्दानन्दिनी सर्वकान्ताशिरोमणि' श्रीमती राधाके ही अवतार लक्ष्मीगण वैकुण्ठमें और महिषीगण द्वारकामें हैं और नित्य वृन्दावनमें गोपीगण उनकी कायव्यूह हैं।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें आदिलीलाके चतुर्थ अध्यायमें आया है—

ह्लादिनीर सार 'प्रेम', प्रेम-सार 'भाव'।
भावेर परम काष्ठा नाम 'महाभाव'॥
महाभावस्वरूपा श्रीराधा ठकुरानी।
सर्वगुणखनि कृष्णकान्ता-शिरोमणि॥

ऐसे ही मध्यलीलाके अष्टम अध्यायमें है—

सेइ महाभाव हय चिन्तामणि सार।
कृष्णवाञ्छा पूर्ण करे एइ कार्य तार॥
महाभाव-चिन्तामणि राधार स्वरूप।
ललितादि सखी तार कायव्यूह रूप॥

× × ×

यार सौभाग्यगुण वाञ्छे सत्यभामा।
यार ठाँइ कलाविलास सिखे व्रजरामा॥
यार सौन्दर्यादि वाञ्छे लक्ष्मी पार्वती।
यार पतिव्रता धर्म वाञ्छे अरुन्धती॥
यार सद्‌गुण गणने कृष्ण ना पाय पार।
तार गुण गणिबे केमने जीव छार॥

रघुनाथदास गोस्वामी अपनी 'मनश्शिक्षा' के दसवें श्लोकमें यही कहते हैं—

रतिं गौरीलीले अपि तपति सौन्दर्यकिरणैः
शचीलक्ष्मीसत्याः परिभवति सौभाग्यवलनैः।
वशीकारैश्चन्द्रावलिमुखनवीनव्रजसतीः
क्षिपत्याराद्या तां हरिदयितराधां भज मनः॥

सौन्दर्य, सौभाग्य और मनोहारित्वमें सभी उनकी अपेक्षा न्यून हैं। इस विषयमें श्रीराधा-सुधानिधिमें कहा गया है—

यो ब्रह्मरुद्रशुकनारदभीष्ममुख्यै-
रालक्षितो न सहसा पुरुषस्य तस्य।
सद्योवशीकरणचूर्णमनन्तशक्तिं
तं राधिकाचरणरेणुमनुस्मरामि॥

सर्वोच्च देव और भगवद्भक्तशिरोमणिगण जिनको सहज ही देख नहीं पाते, वे ही पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण श्रीराधाके वशीकरणसे मुग्ध हैं। श्रीरूपगोस्वामीप्रभुके 'विदग्धमाधव' नाटक (५। १८)-में श्रीकृष्ण सम्पूर्ण त्रिलोकीको राधामय देखते हैं—

राधा पुरः स्फुरति पश्चिमतश्च राधा
राधाधिसव्यमिह दक्षिणतश्च राधा।
राधा खलु क्षितितले गगने च राधा
राधामयी मम बभूव कुतस्त्रिलोकी॥

गौड़ीय साहित्यमें श्रीराधाके माहात्म्यकी समालोचना अति गम्भीर और प्रचुर है। विशेष जाननेके लिये श्रील रघुनाथदास गोस्वामीकी स्तवावली, विशेषतः 'प्रेमाम्भोज-मकरन्द-स्तव' और 'विलापकुसुमाञ्जलि', श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वतीका 'राधारस-सुधानिधि', कविराज गोस्वामी प्रभुके 'श्रीचैतन्यचरितामृत' और गोविन्दलीलामृत' आदि ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहिये। श्रीमद्‌भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद लिखते हैं—'विष्णुपुराणमें भगवान्‌की तीन प्रकारकी शक्तियाँ बतलायी गयी हैं, उनमें जो शक्ति भगवान्‌का आनन्दविधान करती है, वह न तो सांख्यके 'जडानन्द' और न निर्विशेष विचारके केवल 'चिदेकानन्द' के सदृश ही है। ह्लादिनी शक्ति ही भगवान्‌को आनन्द प्रदान करती है। वे ही राधा हैं।'

श्रील प्रभुपादने अन्यत्र कहा है—'यद्यपि श्रीकृष्ण विषयतत्त्व हैं तथापि वे आश्रयके ही विषय हैं। जड़ जगत्‌में पुरुष और स्त्रीमें जैसा पार्थक्य है, ऊँच-नीच भाव है, परस्पर भेद है; श्रीमती राधिका और श्रीकृष्णमें वैसा भेद नहीं हैं। श्रीकृष्णकी अपेक्षा वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा अश्रेष्ठा नहीं हैं। श्रीकृष्ण ही 'आस्वादक' और 'आस्वादित' रूपसे नित्य दो रूप धारण किये हुए हैं।

अब उपसंहारमें ठाकुर श्रील श्रीभक्तिविनोदका यह गीत पढ़िये—

छोड़त धन-जन, कलत्र-सुत-मित, छोड़त करम गेयान।
राधापदपङ्कज मधुरत सेवन भकतिविनोद परमाण।

और श्रील नरोत्तम ठाकुरने गाया है—

राधिका चरण रेणु, भूषण करिया तनु
अनायासे पावै गिरिधारी।
राधिका-चरणाश्रय, करे येइ महाशय,
तारे मुञि जाउँ बलिहारी॥

इसे गाते हुए श्रीराधाकुण्ड-निवासकी योग्यता प्राप्त करके निरन्तर श्रीश्रीराधारानीकी दासतामें रहकर जीवनके वे शेष कुछ दिन बितानेका सौभाग्य प्राप्त करना क्या मेरे जैसे 'कपटी दम्भी' के लिये सम्भव होगा? हा राधारानी! अभी इसे अपने श्रीचरणमें स्थान दो।

क्रन्दामि राधे तव पादपद्मे दास्येऽथ दास्यास्तव मां नियुङ्क्ष्व।
त्वत्कुण्डवासं च विधेहि मह्यं निष्किंचनं मां हि दयस्व देवि॥
जय राधे जय राधे जय राधे कलुषं मे धुनु देवि ह्यन्तरस्थम्।
सरसं कृष्णरसं प्रेम-सुदीप्तं हृदये मे भर नित्यं भर नित्यम्॥

श्रीहित राधावल्लभीय सम्प्रदायमें श्रीराधा

(श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदायाचार्य श्रीहितसुकुमारीलालजी गोस्वामी)

श्रीराधाके स्वरूप हमें भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्राप्त होते हैं। आगम, तन्त्र आदि साहित्यमें श्रीराधाको प्रकृतिरूपा, आदिशक्तिरूपा, कृष्णात्मा, कृष्णप्रिया, कृष्णशक्ति, आह्लादिनी शक्ति, गोलोकविहारिणी, वृषभानुनंदिनी आदि कहा गया है। पुराणोंमें गोलोकवासिनी राधाके विषयमें उनके ऐश्वर्य तथा माधुर्यका विशद वर्णन एवं उनके प्रेमकी अतिशय आसक्ति, चाह, चटपटीके आदर्श जहाँ प्राप्त हैं, वहींपर काम, क्रोध, ईर्ष्या आदि रूपमें लीलाका भी कुछ वर्णन मिलता है।

इस प्रकारके श्रीराधाके पौराणिक स्वरूपका आश्रय लेकर श्रीजयदेवकविने गीतगोविन्दमें श्रीराधाकी नित्य प्रेमकेलिका गानकर उसे सबका गेय विषय बनाया। तदनन्तर श्रीविद्यापति, श्रीचण्डीदास आदि कवियोंने भी विभिन्न लोकभाषाओंमें श्रीराधाके अद्भुत प्रेम और रूपका गानकर उन्हें सर्वसाधारण जन-समुदायतक पहुँचाया। फिर वैष्णव-सम्प्रदायके कुछ आचार्योंने श्रीराधाका श्रीकृष्णकी स्वकीया तथा परकीयाके रूपमें वर्णनकर शृंगार-रसकी परिपुष्टि मानी है। इस प्रकार उनके मतानुसार श्रीकृष्ण परमाराध्य हैं और श्रीराधा उनकी आराधिका हैं।

श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदायमें श्रीराधा परमाराध्या इष्ट हैं और श्रीराधाचरणरतिकी प्रधानता होनेसे श्रीनाभाजीने भक्तमालके छप्पयमें श्रीहिताचार्य महाप्रभुको ***'राधाचरण प्रधान हृदय अति सुदृढ़ उपासी'*** कहा है। इस सम्प्रदायके मतानुसार श्रीराधा विषय और श्रीकृष्ण आश्रय हैं अर्थात् श्रीराधा श्रीकृष्णकी आराधिका न होकर परमाराध्या हैं। गोस्वामी श्रीहितहरिवंशचन्द्र महाप्रभुने कहा है—'जिन श्रीराधाका स्वयं श्रीहरि प्रेमपूर्वक श्रवण करते हैं, जप करते हैं एवं सखियोंके मध्य आनन्दपूर्वक जिनका गुणगान करते हैं तथा प्रेमाश्रुपूर्ण मुखसे जिनका नामोच्चारण करते रहते हैं, वे अमृतरूपा श्रीराधा मेरा जीवन हैं—

प्रेम्णाऽऽकर्णयते जपत्यथ मुदा गायत्यथालिष्वयं
जल्पत्यश्रुमुखो हरिस्तदमृतं राधेति मे जीवनम्॥
(रा०सु०नि० ९६)

कालिन्दीतटकुञ्जमंदिरगतो योगीन्द्रवद् यत्पद-
ज्योतिर्ध्यानपरः सदा जपति यां प्रेमाश्रुपूर्णो हरिः।
केनाप्यद्भुतमुल्लसद्रतिरसानन्देन सम्मोहिता
सा राधेति सदा हृदि स्फुरतु मे विद्या परा द्व्यक्षरा॥
(रा०सु०नि० ९५)

इसी प्रकार श्रीचतुरासीजीमें भी लिखा है—

जपत हरि बिबस तव नाम प्रतिपद बिमल।
मनसि तव ध्यान तें निमिष नहीं टरिबौ॥
(चतुरासीजी ८३)

तदनुसार श्रीकृष्ण श्रीराधाकी आराधना करते हुए किस प्रकार अधीन रहकर सुखानुभव करते हैं। इसको श्रीव्यासजी अपने पदमें वर्णन करते हैं—

चाँपत चरन मोहन लाल।
पलँग पौढ़ीं कुँवरि राधा नागरी नव बाल॥
लेत कर धरि परसि नैननि हरषि लावत भाल।
लाइ राखत हृदै सौं तब गनत भाग बिसाल॥
देखि पिय आधीनता भइँ कृपासिंधु दयाल।
'ब्यास' स्वामिनि लिए भुज भरि अति प्रबीन कृपाल॥
(व्यासवाणी)

श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदायमें श्रीहिताचार्य महाप्रभुने जो श्रीराधाका स्वरूप वर्णन किया है, वह पुराणादि स्थलोंमें वर्णित श्रीराधाके स्वरूपसे बिलकुल विलक्षण है। श्रीराधा और श्रीकृष्ण एक हितरसके दो स्वरूप हैं। उनमें पारस्परिक कोई भेद नहीं है। वे श्रीवृन्दावनमें नित्य निभृत-निकुंज-विहारमें उन्मत्त रहनेवाले एक ही प्रेमरस-समुद्रकी जलतरंगके समान एक हैं। चतुरासीजीमें लिखा है—

जय श्रीहितहरिवंश हंस हंसिनी साँवल गौर कहौ
कौन करै जल तरंगनि न्यारे।

श्रीध्रुवदासजीने प्रिया-प्रियतमको एक, पर रसके हित दो-देह कहा है—

एक रंग रुचि एक बय एकै भाँति सनेह।
एकै सील सुभाव मृदु रस के हित दो देह॥

श्रीराधासुधानिधिमें श्रीहिताचार्यपादने श्रीराधाके स्वरूपका वर्णन करते हुए उन्हें प्रीतिकी मूर्ति (हितका स्वरूप) बतलाया है—

प्रीतिरिव मूर्तिमती रससिन्धोः सारसम्पदिव विमला।
वैदग्धीनां हृदयं काचन वृन्दावनाधिकारिणी जयति॥

(रा०सु०नि० १९९)

और—

पूर्णानुरागरसमूर्ति तडिल्लताभं
ज्योतिः परं भगवतो रतिमद्रहस्यम्।
यत्प्रादुरस्ति कृपया वृषभानुगेहे
स्यात्किंकरीभवितुमेव ममाभिलाषः॥

(रा०सु०नि ४०)

अर्थात् पूर्ण अनुराग रसकी मूर्ति, विद्युल्लताके समान जिनकी ज्योति (प्रकाश) है और भगवान्‌के रतिमद-रहस्यसे भी जिनका रहस्य परे है, जो वृषभानुके घर प्रकट हुई हैं, उनकी मैं किंकरी होनेकी अभिलाषा करता हूँ।

इस प्रकार पूर्णानुराग-रसमूर्तिमती हितस्वरूपा जैसे श्रीराधा हैं, उसी तरह श्रीकृष्ण भी हितस्वरूप हैं, अतः हितके दोनों स्वरूप श्रीराधाकृष्ण देखनेमें जैसे पृथक् हैं, वैसे ही एकरस हैं। वे अति प्रेमासक्त होनेके कारण कभी पृथक् और कभी एक हो जाते हैं; क्योंकि हितका यह स्वरूप ही है कि हित (प्रेम) अकेले नहीं हो सकता। इसलिये हितके ही ये दो रूप श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण हैं। फिर वे दोनों अति प्रेमाधिक्यकी अवस्थामें पृथक् रह भी नहीं सकते। इससे वे पुनः हितरूप एकस्वरूप हो जाते हैं (इसलिये श्रीराधावल्लभ-सम्प्रदायमें श्रीराधावल्लभलालका एक-स्वरूप और श्रीप्रियाजीकी गद्दी स्थापित है)। वे दोनों परस्परमें कभी प्रिया-प्रियतम और प्रियतम-प्रिया बनते रहते हैं और हितकी ही अंश तत्सुखसुखी, सखियोंको प्रेमानन्दकी वर्षाद्वारा आनन्द-प्लावित करते हैं। जैसा कि ध्रुवदासजीकी इन पंक्तियोंसे स्पष्ट है—

प्रेम रासि दोउ रसिक बर, एक बैस रस एक।
निमिष न छूटत अंग अँग, यहै दुहुँन कै टेक॥
अद्‌भुत रुचि सखि प्रेम की, सहज परसपर होइ।
जैसे एकहि रंग सौं, भरिये सीसी दोइ॥
स्याम रंग स्यामा रँगी, स्यामा के रँग स्याम।
एक प्रान तन मन सहज, कहिबे कौं दोउ नाम॥
कबहुँ लाड़िली होत पिय, लाल प्रिया ह्वै जात।
नहिं जानत यह प्रेमरस, निसि दिन कहाँ बिहात॥

(ध्रुवदासजी-रंगविहार)

एवं—

एकै प्रेमी एकरस राधाबल्लभ आहिं।
भूलि कहै कोउ और ठाँ झूँठौ जानौ ताहि॥

(श्रीध्रुवदासजी)

इस प्रकार एक हितके ही दो स्वरूप और श्रीराधा तथा श्रीकृष्णके मिलकर एक ही स्वरूप (हितमय) ही होनेपर भी सब सखियोंको युगल-केलिका आस्वादन होता रहे, इसलिये दोनोंके गौर और श्यामवर्ण भेद हुए। श्रीलाड़िलीदासजीके शब्दोंमें देखिये—

गौर स्याम सीसीन में भर्‌यौ नेह-रस सार।
पिबत पिबावत परसपर कोउ न मानत हार॥

(सुधर्मबोधिनी)

श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदायमें श्रीराधाका हितमय प्रेम-हितरूपी अमृतका जो माधुर्य रूप और रसमय नित्य किशोर-स्वरूप श्रीहिताचार्य महाप्रभुपादने रखा है, वह न तो किसी प्रकार शास्त्रोंके गतिगम्य है और न देव-ऋषि-मुनियोंके ध्यानगम्य है, वह तो केवल वृन्दावनमें—वृन्दावन-रसके द्वारा ही गोचर हो सकता है—

यद् वृन्दावनमात्रगोचरमहो यन्न श्रुतीकं शिरोऽ-
प्यारोढुं क्षमते न यच्छिवशुकादीनां तु यद् ध्यानगम्।
यत्प्रेमामृतमाधुरीरसमयं यन्नित्यकैशोरकं
तद्रूपं परिवेष्टुमेव नयनं लोलायमानं मम॥

(रा०सु०नि० ७६)

वह न केवल देवताओंसे अगम्य है अपितु भगवान्‌के उच्चकोटिके भक्त प्रह्लाद-अम्बरीषादि, मुक्त सनक-जनक-शुकदेव-वामदेवादि और सुहृद् अर्जुन-श्रुतदेव-सुदामा-अक्रूरादिकी गतिसे भी अत्यन्त दूर है—

देवानामथ भक्तमुक्तसुहृदामत्यन्तदूरं च यत्
प्रेमानन्दरसं महासुखकरं चोच्चारितं प्रेमतः।

(रा०सु०नि० ९६)

और उनकी चरणरज भी ब्रह्मादिको दुष्प्राप्य है।

'ब्रह्मेश्वरादिसुदुरूहपदारविन्द'....'

(रा०सु०नि० २)

वह हितस्वरूपा श्रीराधा प्रेमराज्यकी राजा हैं और उस व्रजके अणुसमान कणकी तुलना गोलोकादि नहीं कर पाते। इस बातको एक महात्मा 'रज' श्यामसुन्दरके वचनोंमें कहते हैं—

प्रेम राज को राजा राधे प्रीति प्रेम रस जाने।
जिनके चरन पलोटन हित हम बहुतक करें बहाने॥
गोलोकहु नहिं समता पावत प्रिय ब्रज के अनु कन की।
जहँ से देव अदेवहु जाँचत लहहिं मोच्छ निज मन की॥
जहाँ ते प्रेम भर्‌यो मम हिय में कैसें ताहि बिसारौं।
त्रिभुवन सहित और निज बैभव निज कर ब्रज पर वारौं॥

उन श्रीराधाकी चरणरति प्राप्त करनेके लिये हित-साम्राज्यमें आकर उनके नित्य निभृत-निकुंज-केलिकी दासी अर्थात् तत्सुखसुखित्व-सखीभाव व अनन्यनिष्ठ होना परमावश्यक है। श्रीआचार्यपाद कहते हैं कि जो श्रीराधाके दासीभावको बिना मनमें धारण किये श्रीकृष्ण-मिलनकी आशासे बहुतसे प्रयत्न करते हैं, वे अँधियारी अमावस्याकी रात्रिमें पूर्णचन्द्रको देखनेके व्यर्थ परिश्रमको ही प्राप्त करते हैं और श्यामसुन्दरकी रति-प्रवाह-नित्यकेलिकी जो लहरी, उसकी बीजस्वरूपा श्रीराधाके स्वरूपको नहीं पहचानते, वे अमृतके महासमुद्रको प्राप्त करके भी उसकी एक बूँद भी नहीं पा सकते।

राधादास्यमपास्य यः प्रयतते गोविन्दसङ्गाशया
सोऽयं पूर्णसुधारुचेः परिचयं राकां विना काङ्क्षति।
किं च श्यामरतिप्रवाहलहरीबीजं न ये तां विदु-
स्ते प्राप्यापि महामृताम्बुधिमहो बिन्दुं परं प्राप्नुयुः॥

(रा०सु०नि० ७९)

अनन्य उत्कट व्रतधारी श्रीहितप्रभुपादका निम्नांकित दोहा; उनकी अनन्य निष्ठा श्रीराधाजीके प्रति जैसी थी, उसके लिये प्रसिद्ध है—

रसना कटौ जु अनरटौ, निरखि अनफुटौ नैन।
श्रवन फुटौ जो अनसुनौ, बिन राधा जस बैन॥

(स्फुटवाणी)

अनन्यनिष्ठाके साथ एकबारके श्रीराधा-नामोच्चारणकी महिमा भी देखिये—

गिनत बनै ना अघ अगनित अपार सोऊ,
एक बार राधा नाम मुख सौं उचारै जो।
सोचत हिय बार बार मोहन मन अति उदार,
याकौं कहा दीजै याकी पटतर अनुसारै को॥
प्यारी नाम अमृत रस प्यारौ सुनि बिबस होत,
धन्य धन्य सोई अति हित सौं पुकारै हो।
ताकी महिमा की सीम परस सकै जो कौन,
ललित लड़ैती पद सेवा उर धारै सो॥

(श्रीरा०सु०नि० श्लोक १५४ का गोस्वामी श्रीकिशोरीलालजी अधिकारीकृत पद्यानुवाद)

श्रीराधादास्यको ही सर्वस्व मान गोस्वामी श्रीकृष्ण-चन्द्र महाप्रभुने उपसुधानिधिमें श्रीराधाचरणारविन्दके प्रति अपनी अनन्य निष्ठा इस प्रकार दिखलायी है—

सर्वे धर्मा ममाधर्माः साधु सर्वमसाधु मे।
न यत्र लभ्यते राधे त्वत्पदाम्बुजमाधुरी॥

(उपसुधानिधि)

श्रीराधारानीने श्रीहिताचार्यको श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदायका मन्त्र प्रदान किया था। इससे वे उनकी गुरुरूपा एवं सम्प्रदायकी आचार्य हैं। अतः जैसे प्रत्येक सम्प्रदाय अपने प्रवर्तकके नामसे प्रचलित है; उदाहरणार्थ रामानुज, मध्व, निम्बार्क आदि; वैसे ही इस सम्प्रदायकी आदिकर्ता श्रीराधाके होनेसे यह श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदायके नामसे प्रसिद्ध है। श्रीहिताचार्यने श्रीराधावल्लभजीके स्वरूपके साथ श्रीराधाकी प्रतिमा न रखकर उनकी गादी (गद्दी) स्थापितकर गादीसेवाका विधान कर दिया।

यहाँ श्रीराधाका एक अत्यनुपम स्वरूप और भी माना गया है; जिसका विशद वर्णन सम्प्रदायके वाणी-ग्रन्थोंमें है, उसका यहाँ संक्षेपमें दिग्दर्शन कराते हैं। जब नित्य-निकुंज हितमहलसे श्रीहितप्रभुने अवतार लेकर भूमण्डलपर अपनी स्वामिनी आराध्या श्रीराधाका परम अलौकिक अकथनीय रूप तथा नित्य-विहारका यशोगानकर उनका दिव्य स्वरूप सबके समक्ष प्रकट किया एवं सर्वात्मना उनको लाड़ लड़ाया, तब हितस्वामिनी श्रीराधा हितकी अत्यन्त आसक्तिवश हो अपने हृदयमें उमड़ते हुए उनके प्रति स्नेहाति-प्रवाहको

न रोक सकनेके कारण श्रीहितके स्वरूप और यशका गान करके चित्तमें हितके उफनते प्रबल उद्‌गारोंको हलका करनेके निमित्त सेवकरूपमें अपनेको छिपानेका प्रयत्न करते हुए पृथ्वीतलमें प्रकट हुईं। जैसा कि श्रीप्रियादासजी श्रीसेवकजीकी बधाईमें लिखते हैं—

हित के हित अवतार छैलि ललकत लियौ।
श्रीहरिबंस को नेह रुक्यौ न पलट्यौ दियौ॥
सेवकता में भुलाइ छिपै निज रूप कौं।
प्रियादासिनु हित मर्म समुझ्यौ सरूप कौं॥

(सेवकचरित्र)

और '''''पचि न सक्यौ यह भाव हिये कौ गोरी सेवक ह्वै भाख्यौ'''' '

तथा

'''''हितराधा मधि नेह तैं हो उपज्यौ सेवक नाम'''' '

इस प्रकार हितकी स्वामिनी हितकी सेवक बन करके भी सेवकके रूपमें अपनेको छिपा न सकीं। उनकी वाणीद्वारा श्रीवनचन्द्र महाप्रभुने उनको पहचान लिया, ***'हित औ राधा बिन को यौं बोलै बलि बनचंद्र बखानी''' ।'*** इस प्रकार श्रीहितप्रभुने श्रीराधाके अनिर्वचनीय स्वरूपको और श्रीराधाने श्रीहितके दिव्य स्वरूपको प्रकट किया। इस सम्प्रदायमें ये श्रीराधा श्रीसेवकरूपसे शिष्य भी हैं।

श्रीमद्राधासुधानिधिके 'रसकुल्या' टीकाकार श्रीहरिलाल व्यासजी श्रीराधाका स्वरूप बतलाते हुए और श्रीहिताचार्यपादकी वन्दना करते हुए लिखते हैं—

राधैवेष्टं सम्प्रदायैककर्ता-
चार्यो राधा मन्त्रदः सद्‌गुरुश्च।
मन्त्रो राधा यस्य सर्वात्मनैवं
वन्दे राधापादपद्मप्रधानम्॥

अर्थात् जिनकी श्रीराधा ही इष्ट हैं, सम्प्रदायकी आदिकर्ता तथा आचार्य हैं और मन्त्रदाता सद्‌गुरु हैं तथा वे ही मन्त्र हैं। इस प्रकार सर्वात्मना श्रीराधाके पादपद्म-प्रधान जो श्रीहितहरिवंशचन्द्र महाप्रभु हैं, उनके लिये मेरा नमस्कार है।

आचार्यपाद श्रीहितहरिवंशचन्द्र महाप्रभुने श्रीप्रियाजीकी बधाईका पद इस प्रकार लिखा है—

चलौ वृषभानु गोप के द्वार।
जन्म लियौ मोहन हित स्यामा आनँदनिधि सुकुमार॥
गावत जुवति मुदित मिलि मंगल उच्च मधुर धुनि भार।
बिबिध कुसुम किसलय कोमल दल सोभित बंदनवार॥
बिदित बेद बिधि बिहित बिप्रवर करि स्वस्तिनु उच्चार।
मृदुल मृदंग मुरज भेरी डफ दिवि-दुंदुभि रवकार॥
मागध सूत बंदि चारन जस कहत पुकार पुकार।
हाटक हीर चीर पाटंबर देत सम्हार सम्हार॥
चंदन सकल धेनु तन मंडित चले जु ग्वाल सिँगार।
जय श्रीहित हरिबंस दुग्ध दधि छिरकत मध्य हरिद्रागार॥

इसमें आनन्दनिधि सुकुमारी जो श्यामा हैं, उन्होंने मोहनके हित जन्म लिया है। इससे सब वृषभानुके द्वारपर चलो, यहाँ 'श्यामा' पदसे आपने अपनी इष्ट श्रीराधाके नित्य किशोरीस्वरूपका द्योतन किया है, क्योंकि श्यामा षोडशवर्षीयाको कहते हैं।

अब श्रीराधावल्लभजीके मंदिरमें श्रीराधाष्टमीके दिन जन्मोत्सवपर समाजमें गाये जानेवाले पदोंका उद्धरण देते हैं—

प्रगटी श्रीवृषभान गोप के सोभा की निधि आई री।
धन्यभाग कीरतिदा रानी जिन यह कन्या जाई री॥
सुनतहि धाईं सखीं सहेलीं मनवांछित फल पाई री।
हाथनि कंचन थार बिराजत मंगल गावत आई री॥
महारानी कीरति आदर दै.............................

(श्रीकमलनैनजी महाराज)

नवल नृपति वृषभानुराइ कैं बाजत आजु बधाई री''''

(श्रीकमलनैनजी)

भादौं सुदि आठैं उजियारी।
श्रीवृषभानुगोप कें मंदिर प्रगटीं राधा प्यारी॥

(श्रीदामोदरहितजी)

कुँवरि किसोरी जनमत हीं ब्रजजन फूले तन-मन माई।
श्रीबरसाने गोपराज कैं बाजत सुनी है बधाई॥
रानी जगजानी श्रीकीरति भाग भरी छबि छाई।
रूप प्रेम रस अवधि ललित मुख सुख निधि कन्या जाई॥
सदन सदन आनँद महा मंगल सोभा कही न जाई।
नर नारी हरषे सब ऐसैं मनौं रंक निधि पाई॥

(श्रीदामोदरहितजी)

रंग बरसै री हेली कीरति महल में, जस दरसै री हेली रस की चहलमें।
आजु ब्रज फूल्यौ सबै रावल बिनोद सुहावनौ।
उदौ सूरजबंस कौ नंदराई मन कौ भावनौ॥ १॥
सुकृत फूल्यौ री हेली श्रीमहीभान कौ।
आनँद झूल्यौ री हेली श्रुतिनु बखान कौ॥"

(श्रीसहचरिसुखजी)

आजु प्रगटी श्री बृषभानु भवन में श्रीबृंदाबन रानी।
रसिक निहित रस सागर नागरि ब्रजघरु करी रवानी॥
सत चित आनँद लली ललावन यह मति बिरले जानी।
नित्य बिहार प्रगट करिबे कौं प्रगटे आनँददानी॥

(श्रीप्रेमदासजी)

श्रीवृषभानु नृपति के आँगन बाजति आजु बधाई।
कीरतिदे रानी सुखसानी सुता सुलच्छिन जाई॥
सक्ति सबै दासी हैं जाकी श्रीहु तैं अधिक सुहाई।
निरवधि नेह अवधि रसमूरति प्रगटी सब सुखदाई॥
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद आनँद उर न समाई।
'नंददास' प्रभु पलना पौढ़े किलकत कुँवर कन्हाई॥

(श्रीनंददासजी)

रतन जटित चौकी पर बैठी लाड़ति कीरति ललित लली है।
त्रिभुवन भाग्यभरी को ऐसी रस मयंक की उगन थली है॥
बदन बिलोकि करज चटकावति सुकृत अवधि के फलन फली है।
बृंदाबन हित रूप जासु कैं श्रीहूँ की स्वामिनि दूध पली है॥

(चाचा श्रीवृन्दावनदासजी)

श्रीराधाके दर्शनके लिये सदाशिवके आगमन-पर—

अरी मेरी वारी राधा या जोगिया कौं देखत तुरत डरैगी।
अंग भसम बाघंबर धारैं व्याल गरैं लख को धौं री धीर धरैगी॥
गदगद गावै अलख मनावै बिनु परचे को प्रतीति करैगी।
बृंदाबन हित रूप दरस चाहत गोप कन्या कैसे तू रावल फिरि जाहु कोऊ लरैगी॥

(चाचा श्रीवृन्दावनदासजी)

अरी माई मेरौ बचन सुनि भागिनु पूरी और कछू नहीं लैहौं।
जननी जनक प्रताप बढ़ावन जनमी अतिलड़ीं याकौ रूप गुन गैहौं॥
लटा छुवाइ चरन कन्या के जंत्र यहै जु अमर करि जैहौं।
बृंदाबन हित रूप सत्य मन क्रम बच करि कैं हरखि आसिखा दैहौं॥

(चाचा श्रीवृन्दावनदासजी)

आजु बधाई है बरसाने,
कुँवरि किसोरी जनम लियौ सब लोक बजे सहदानै।
कहत नंद वृषभानराय सौं और बात को जानै॥
आजु भैया ब्रजबासी हम सब तेरे ही हाथ बिकानै।
या कन्या के आगें कोटिक बेटन को अवमानै।
तेरे भलैं भलौ सबहिनु कौ आनँद कौन बखानै॥
छैल छबीले ग्वाल रँगीले हरद दही लपटानै।
भूषन बसन बिबिधि पहिरें तन गनत न राजा रानै॥
नाचत गावत प्रमुदित ह्वै नर नारिनु को पहिचानै।
व्यास रसिक तन मन फूले हैं नीरस सबै खिसानै॥

(श्रीव्यासजी)

जब कृष्ण किन्नरी बने

किसी समय मानिनी श्रीराधिकाका मान भंग नहीं हो रहा था। ललिता, विशाखादि सखियोंने भी बहुत चेष्टाएँ कीं, किंतु मान और भी अधिक बढ़ता गया। अन्तमें सखियोंके परामर्शसे श्रीकृष्ण श्यामरी सखी बनकर वीणा बजाते हुए यहाँ आये। श्रीराधाजी श्यामरी सखीका अद्भुत रूप तथा वीणाकी स्वरलहरियोंपर उतार-चढ़ावके साथ मूर्छना आदि रागोंसे अलंकृत गायन सुनकर ठगी-सी रह गयीं। उन्होंने पूछा—'सखी! तुम्हारा नाम क्या है? और तुम्हारा निवास-स्थान कहाँ है?' सखी बने हुए कृष्णने उत्तर दिया—'मेरा नाम श्यामरी है। मैं स्वर्गकी किन्नरी हूँ।' श्रीराधाजी श्यामरी किन्नरीका वीणावाद्य एवं सुललित संगीत सुनकर अत्यन्त विह्वल हो गयीं और अपने गलेसे रत्नोंका हार श्यामरी किन्नरीके गलेमें अर्पण करनेके लिये प्रस्तुत हुईं, किंतु श्यामरी किन्नरीने हाथ जोड़कर उनके श्रीचरणोंमें निवेदन किया कि आप कृपा करके अपना मानरूपी रत्न मुझे प्रदान करें। इतना सुनते ही श्रीराधाजी समझ गयीं कि ये मेरे प्रियतम मुझसे मानरत्न माँग रहे हैं। फिर तो प्रसन्न होकर वे उनसे मिलीं। सखियाँ भी उनका परस्पर मिलन कराकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं।

हरिदासीसम्प्रदायमें युगल-उपासना

(श्रीगोपालशरणजी शर्मा)

रसिकचक्रचूडामणि श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज श्रीराधाकृष्णके युगल स्वरूपकी उपासनाके परम रसिकाचार्य हैं। श्रीस्वामी हरिराम व्यासजी उन्हें अद्‌भुत रसिक बताते हुए कहते हैं कि ऐसा रसिक जो सदैव श्यामा-कुंजबिहारीकी आराधनामें रत रहता है, जिसे जीवित रहते हुए भी अपने देहका भान नहीं है, जिसने सभी रागोंको त्याग दिया है, ऐसा परम रसिक उपासक न अभीतक कोई इस भू-मण्डलपर एवं आकाशमें हुआ है, न होगा—

अनन्य नृपति श्रीस्वामी हरिदास।
कुंजबिहारी सेये बिनु जिन छिन न करी काहू की आस॥
सेवा सावधान अति जान सुघर गावत दिन रस रास।
ऐसो रसिक भयौ नहिं ह्वैहै भू-मण्डल आकास॥

(भक्तकवि व्यासजी पद—१२)

स्वामी हरिराम व्यास रसिकाचार्य स्वामी हरिदासजीको 'अनन्यनृपति' कहकर सम्बोधित करते हैं। 'अनन्य' शब्दसे तात्पर्य है कि जब प्रेमीको अपने प्रियतमके सिवा कुछ और देखनेका समय नहीं मिलता, वह श्रवणोंसे केवल अपने प्रियतमका गुणगान सुनना चाहता है। उसकी समस्त इन्द्रियाँ अपने प्रियतमके साथ ही एकमेव होकर रहती हैं, उसीको अनन्यता कहते हैं।

स्वामी हरिदासजी महाराजने श्रीराधामाधवके युगल स्वरूपको निहारनेका एक अलग ही मार्ग सुझाया है। श्रीस्वामीजीने जिस रसमयी नित्यविहारोपासनाका सिद्धान्त प्रतिपादित किया, वह अनुपम एवं अलौकिक है। प्रेमकी गति अद्‌भुत होती है, और सच्चे प्रेमकी तो अत्यन्त अद्भुत। उसमें अपने शरीरके सारे सुख और स्वार्थ विस्मृत हो जाते हैं। प्रियतमको जो-जो बातें रुचती-सुहाती हैं, वही बातें प्रेमीको भी भाती हैं। लौकिक प्रेममें जहाँ प्रेमी अपना सुख चाहता है, प्रेमिका अपना रस, वहाँ प्रेम कभी स्थायी नहीं हो सकता। स्वामी हरिदासजीकी उपासना तत्सुखमयी है। श्रीराधाका समस्त लीलाविलास प्रियतमके लिये है, और श्रीकुंजबिहारी भी वही करते हैं, जिससे राधाको सुख प्राप्त हो। श्रीश्यामा-कुंजबिहारीका युगल स्वरूप एक प्राण दो देहके समान है। श्रीराधा-माधवकी समस्त केलि-क्रीडाएँ सहचरियोंको प्रसन्नता प्रदान करती हैं एवं प्रिया-प्रियतमका सुख ही सखियोंका सुख है। स्वामी हरिदासजी सखीरूपमें युगल स्वरूपकी उपासनामें निरन्तर रहकर नित्य विहारकी केलियोंको निहारते हैं। स्वामी हरिदासजीकी रसोपासनामें विशुद्ध प्रेमके चार प्रकाश हैं। एक श्रीधाम वृन्दावन, दूसरी सखी, तीसरे स्वयं श्रीकुंजबिहारी और चौथी श्रीमाधवकी आराधिका श्रीप्रिया जी। श्यामा-श्यामकी सहज जोड़ीका न आदि है न अन्त। उनका संयोग घन-दामिनीकी तरह है, जिसमें कभी वियोगकी स्थिति नहीं आती। नित्य वृन्दावनमें उनकी सहचरियोंके साथ होनेवाली दिव्यतम लीलाओंका वर्णन करते हुए रसिकाचार्य स्वामी हरिदासजी कहते हैं—

माई री सहज जोरी प्रगट भई जु,
रंग की गौर स्याम घन दामिनि जैसे।
प्रथम हूँ हुती, अबहूँ, आगेहूँ रहिहै,
न टरिहै तैसे॥

(केलिमाल)

स्वामी श्रीहरिदासजीकी रसोपासना-पद्धतिका संकेत उनकी रचना केलिमालमें प्राप्त होता है। 'केलिमाल' में ११० पदोंका संग्रह है, जो विभिन्न राग-रागिनियोंमें निबद्ध हैं।

श्रीस्वामी हरिदासजीकी तत्सुखी उपासना अद्वितीय एवं विशुद्ध प्रेममयी है। यह भक्ति मधुररससे भी ऊपर महामधुररससारस्वरूपिणी है।

जिस प्रकार आममें-से छिलका, गुठली आदिको अलगकर रस निकाल लिया जाता है, उसी प्रकार रसिक-शिरोमणि स्वामी हरिदासजीने अपनी प्रेमोपासनासे कर्म, ज्ञान आदि तत्त्वोंको अलग कर दिया है। उन्होंने उस शुद्ध रसको भी छानकर उसमेंसे ब्रह्मके अवतारवाद आदि निमित्तोंको अलगकर प्रेमका अति विशुद्धतम रूप अनुगतोंको सुलभ कराया।

श्रीस्वामी हरिदासजी श्रीश्यामा-कुंजबिहारीके नित्य-

विहारके सतत अवलोकनमें सदा निमग्न रहते हैं। यही उनकी आराधना, उपासना है। स्वामी हरिदासजी श्रीराधारानीकी अनन्य सहचरी श्रीललिता सखीके अवतार हैं। अपनी दिव्य देहसे वे श्रीराधा-माधवकी दिव्य नित्य केलिमें ललितास्वरूपमें विद्यमान रहकर श्रीश्यामा-कुंजबिहारीको नव-नव लाड़ लड़ाते हैं। स्वामी हरिदासजीके उपास्ययुगल नित्यविहारी श्रीश्यामा-श्याम श्रीवृन्दावनकी नित्य निकुंजमें सदा प्रेम-केलिमें निमग्न रहते हैं।

श्रीराधा-माधवकी नित्य विहारलीलाका यह रस परम विशुद्ध उज्ज्वल रस है। जो इसके पूर्व न तो कहीं अन्यत्र देखा गया है और न सुना गया। स्वामी हरिदासजीकी रसोपासना '***ललिता सखी उपासना ज्यों सिंहनि कौ छीर***' जैसी है। जिस प्रकार सिंहनीका दूध या तो उसके शावकके उदरमें रह सकता है या स्वर्णपात्रमें। अन्य किसी पात्रमें वह टिक नहीं सकता। कथनका अभिप्राय यह है कि इस युगलस्वरूपकी नित्य विहार-लीलाका जो रस है, वह उसी साधकके चित्तमें अवस्थित हो सकता है; जो अपने हृदयको वासनाओंसे विरक्तकर रसमयी साधनाके सोपानपर चढ़कर अपनी कायाको इस विशुद्धिमय रसको ग्रहण करनेयोग्य बना चुका है। ऐसे साधकके हृदयमें ही नित्य विहारका यह रस किलोल कर सकता है। जब स्वामीजीके उपास्यका स्वरूप ही ऐसा है, तब उपासकको भी वैसा ही बनना पड़ेगा—

इनके मल मैथुन कछु नाहीं।
ये दिव्य देह विहरत वन माहीं॥

अनन्य भावके बिना उपासकको श्रीकुंजबिहारी-बिहारिणी एवं श्रीस्वामीजी अपना नहीं मानते, इसलिये साधकको नित्य केलिरसके भावको आत्मसात् करना चाहिये। नित्य केलिके भावका दृढ़ प्रण ही उसकी सच्ची अनन्यता है।

अनन्य सवै अनुकूल हमें,
प्रतिकूल न जात सलिल हू सह्यौ।

इसी बातको समझाते हुए स्वामीजी कहते हैं—

लोग तो भूलैं भलैं भूलैं,
तुम जिनि भूलौ मालाधारी।
अपुनौ पति छाँड़ि औरनि सौं रति,
ज्यौं दारिन में दारी॥

हरिदासी रसोपासनाके उपासक युगल-स्वरूपको भी स्वामी श्रीहरिदासके बिना नहीं स्वीकारते। उनकी दृष्टिसे युगलका विशुद्ध नित्य लीलास्वरूप श्रीस्वामीजीके बिना नहीं है। इसलिये स्वामी बिहारिनिदेवजी कहते हैं—

श्रीबिहारिनिदासि श्रीहरिदासीके सँग,
देख दुहुनि सचु पाऊँ॥

विशुद्ध प्रेमविलासके अद्भुत रसमें पगे, श्रीस्वामी हरिदासजीने श्रीश्यामा-कुंजबिहारीकी सहज प्रणयी जोड़ीको अंकमें लिये नित्य निकुंजमन्दिरसे इस धराधामपर आकर रसिक जनोंको नित्य वृन्दावनवास तथा श्रीयुगलका ललित लीलाविलास सहज ही सुलभ कराया।

महल ते प्रकटे श्रीहरिदास।
सुख, सागर, नागर, रस-भीने अद्भुत प्रेम विलास॥
सहज सनेह प्रीतम आनन्द निधि, गौर-स्याम लिये पास।
ललित केलि रसिकन कौ दीनी, निजु वृन्दावन-वास॥

श्रीस्वामी हरिदासजीने अपनी अनुपम रसोपासनाको प्रकटकर उपासकोंको युगल-उपासनाका विधि-निषेधसे अन्य एक अलग मार्ग दिखलाया। जिस युगल स्वरूपके दर्शन ब्रह्मा एवं महादेव-जैसे परम वैष्णवके लिये भी दुर्लभ हैं, उसके परमाद्भुत नित्य विहारका श्रीस्वामीजी निरन्तर अवलोकन करते हैं। युगल स्वरूपकी उपासनामें श्रीलालजीसे ज्यादा श्रीप्रियाजीकी उपासनापर बल दिया है। जब नित्यविहारिणी श्रीश्यामाजी सहचरीरूपमें उपासनारत साधकको अपना लेती हैं, तब श्रीकुंजबिहारी भी स्वत: ही उस साधकको अपना लेते हैं। इस प्रकार रसिकोपासनाका साधक श्रीयुगलकी नयी-नयी प्रेमतरंगोंसे समुल्लसित अपने मनचाहे सुखको अनायास ही प्राप्त कर लेता है—

जब प्रिया मानै अपन्यौं, तब लाल रहैं अधीन।
मन इच्छित सुख कौ लहै, छिन-छिन प्रीति नवीन॥

विश्नोईसम्प्रदायके सन्त कवियोंकी रचनाओंमें श्रीराधामाधव

(श्रीविनोद जम्भदासजी कड़वासरा)

राधामाधवकी लीलाओंसे आप्लावित रचनाएँ भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्त, मत, पंथ, सम्प्रदायके साहित्यमें मिल जायँगी। कोई भी क्षेत्र इनसे अछूता नहीं है, यहाँतक कि निर्गुण-निराकार उपासनाके पक्षधर सम्प्रदायोंके कवियोंने भी इस रस-रसीले सरोवरमें चुपकेसे अथवा चौड़ेमें डुबकी लगायी है। जब विदेहराज जनकके सामने अतुलित सौन्दर्यराशिके प्रतिमान श्रीरामजी आते हैं तो वे अपनी देहकी सुधबुध भूल जाते हैं और अपलक रामजीको निहारने लगते हैं। **'मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्'** इस मधुरातिमधुर तत्त्वकी यही विशेषता है कि इसके सम्पर्कमें आनेपर इस रसधारामें बड़े-बड़े ज्ञानी और निर्गुण-निराकारके उपासक भी बह जाते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दीके भक्ति-आन्दोलनकी उर्वरा शक्तिने भारतवर्षकी पुण्य वसुन्धरापर अनेक दिव्य सन्तोंको उत्पन्न किया, जिनमें सगुणोपासक भी थे और निर्गुणोपासक भी। उस समय राजपूतानेके मारवाड़में पैदा हुए श्रीजंभेश्वरभगवान् अपर नाम श्रीजाम्भोजीने विश्नोईसम्प्रदायकी नींव रखी। किसीने इस पंथकी उपासनापद्धतिको निर्गुण माना तो किसीने निर्गुणोन्मुख सगुण, परंतु इतना निश्चित है कि इस सम्प्रदायमें परवर्ती कालमें श्रीकृष्णभक्तिसे सम्बन्धित काफी साहित्य रचा गया। श्रीजाम्भोजीकी 'सबदवाणी' और सम्प्रदायके संत-कवियोंके साहित्यको 'जाम्भाणी साहित्य' कहते हैं। उनका जन्मस्थान पीपासर ग्राम और ज्ञानोपदेशस्थली 'समराथल' नामक टीला है, जिनका वर्णन आगे कवियोंकी रचनाओंमें है। श्रीजाम्भोजी अपनी 'सबदवाणी' के प्रथम सबदमें कहते हैं—'तत महारस वाणी।' परमात्मा महान् आनन्दका भण्डार है, तो स्वाभाविक है कि इसके सम्पर्कमें आनेवाला और इसे अनुभव करनेवाला भी इसका रसास्वादन करेगा। असलमें यही 'महारास' है। यह कलुषित वासनाका खेल नहीं है। पलभरके लिये विचार करें कि जो परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना करता है, उसके लिये भला किसी वस्तुकी प्राप्तिकी कामना रह सकती है?

वे सबदवाणीके एक अन्य सबद 'शुक्ल हंस' में श्रीकृष्णकी निर्दोषताके पक्षधरके रूपमें कहते हैं—***'सौलै सहंस नवरंग गोपी। भोलम भालम टोलम टालम। छोलम छालम। सहजै राखीलो म्हे कन्हड़ बालो आप जती।'***

दिव्य रंग-रूप और गुणोंको धारण करनेवाली, सरलहृदया सोलह हजार स्त्रियोंसे विवाह करनेके बाद भी श्रीकृष्ण बालयोगी ही हैं।

अपनी सबदवाणीमें अनेक जगह श्रीजाम्भोजीने श्रीकृष्णावतारकी लीलाओंका सहर्ष स्मरण किया है। इस सम्प्रदायके संत-कवियोंने अपनी रचनाओंमें निश्चयपूर्वक कहा है कि श्रीजाम्भोजी श्रीकृष्णके अवतार हैं—

समराथल अवतार गोवल रमंतो डावड़ो।
कृष्ण सही करतार नँदघर हो तो छावड़ो॥
सही विसवा बीस साँचो गुरु समराथले।
कान्ह कँवर नँदलाल कृपाकर आयो भले॥

(हरजी वणियाल)

बाबै आप लियो अवतार श्याम समराथल आवियो।

(कैसोजी)

...तुम ही ब्रजपति नंद कँवारा।
आज समराथल आए हो स्वामी
नवखंड पृथ्वी खेल पसारा॥

(माखणजी)

कृष्ण चरित कलियुग हुवो सुणीयो चौचक सार।
कलियुग कृष्ण पधारे संता कारण साँभलो।
प्रहलाद के कवल कारण कृष्ण आयो कलयुगे।

(कैसोजी)

कलिमाँ तो काज उतावला नै हरखि जै कृष्ण आवियौ।

(कुलचन्दजी)

लोहट है नंदराय जसोदा हंसा भई।
मरुथल है बिरज भोम पीपासर बिरज है सही॥

पीपासर बिरज है सही नै वचन के प्रतिपाल।
किसन कवल के कारणै गुरु जम्भ लियो अवतार॥

(साहबरामजी राहड़)

इन साखियोंकी पंक्तियोंके अलावा आलमजीकी साखी—'***पतवो लिखदे जीहो***"।' रायचंदजीकी साखी—'***कांय सखी तेरो***"।' कील्हजी और लालजीके 'बारहमासो' आदि साखियाँ एवं पदमभक्तकृत '***क्रिसनजी रो व्यावलो***', रामललाजीका 'रुक्मिणीमंगल' आदि रचनाएँ पूरी तरह कृष्णचरित्रको समर्पित हैं। कैसोदासजी गोदाराकृत—'**कथा भींव दुसासणी**', '**कथा सुरगारोहणी**', '**कथा बहसोवंणी**' में आंशिकरूपमें कृष्णचरित्र आया है परंतु मूलमें वही है।

श्रीजाम्भोजीके एक हजुरी कवि हुए कील्हजी (विक्रम सम्वत १५००-१५६०)। उनके द्वारा रचित साखी 'बारामासौ' में प्रत्येक मासके विभिन्न कार्योंको लक्षित करके उन महीनोंमें होनेवाले प्रकृतिके बदलावके साथ अपने मनोभावोंको जोड़कर, गोपियाँ कैसे अपने प्रियतमके वियोगमें व्याकुल होकर विरह-वेदना व्यक्त करती हैं। अपने शरीरकी सुधबुध भूल चुकी, विक्षिप्त-सी होकर वे कृष्णको पुकार रही हैं। कविने उस वियोगजन्य पीड़ाको स्वयंके हृदयमें अनुभव किया और गोपीभावसे उसके अन्तर्मनसे कारुणिक भावोंका झरना बह चला। कविके शब्दोंमें सँजोये उन भावोंको पढ़कर पाठक भावविह्वल हुए बिना नहीं रह सकता। मूल रचनामें ४२ दोहे हैं, जिनमेंसे प्रस्तुत दोहे अतिमार्मिक बन पड़े हैं—

जे हू जाणूँ" कान्ह दिसावर जाय।
काठ चन्दण रै पींजरै मेल्हूं आयं छिपाय॥
हाथ झड़ेलो सिर मुकुट उँतावलो फिराय।
गोपिया मने बधावणाँ रही मन अणराय॥
नारद पूछै जोयसी दोय दिन कितरा मास।
काल्हे श्रीरंग बीछड़्या मो मन बरस पचास॥
नारद जोतिष बाँचियो, साँसे पड़्यो शरीर।
आँसू नाखै मोर ज्यूं, नैणे निरझर नीर॥
ऊँचै मगरै धन चरै, सरवरि बोल्या हंस।
गोपी करै बधावणा जाणै कान्ह बजायो बंस॥
एकज काली काँबली एक अँधारी रात।
कान्ह गुमायो गोपियाँ, बीजल खिवै झबाक॥
उमाहो बण कोयला, उमाहो वणराय।
उमाहो कदे न चूकही श्रीरंग तणा पसाय॥
एक गोवल रे डाँडले, लख आवै लख जाय।
एक न आयो कान्हजी, रह्यो दिसावर छाय॥

'गोपियाँ कहती हैं कि अगर हमें पता होता कि कान्हा परदेश चला जायगा तो हम उसे चन्दनकी लकड़ीसे बने पिंजरेमें बन्द कर लेतीं। वे श्रीकृष्णके स्वरूपका ध्यान करती हुई अपने मनको धीरज देनेका प्रयास कर रही हैं, परंतु मन मानता नहीं है। वे नारदजीसे पूछती हैं कि वे अपने ज्योतिषकी गणना करके बतायें कि दो दिनमें कितने महीने होते हैं? श्रीकृष्ण तो कल ही गये हैं परंतु हमें ऐसा लगता है जैसे पचास वर्ष बीत गये हैं। नारदजी ज्योतिष-शास्त्र पढ़ते हैं, परंतु गोपियोंका तो ध्यान कहीं और ही है, वे लम्बी-लम्बी साँसें ले रही हैं, मोरकी तरह वे आँसू गिरा रही हैं, उनकी आँखें झरना बनी हुई हैं। ऊँची पहाड़ीपर गायें चर रही हैं, तालाबमें हंस कलरव कर रहे हैं, एक क्षणके लिये गोपियोंके मनमें आनन्द उमड़ता है। उन्हें ऐसा लगता है कि जैसे आसपास कहीं कान्हा बाँसुरी बजा रहा है, लेकिन तत्क्षण उन्हें यह एहसास होता है कि नहीं यह उनका भ्रम है और वे पुनः विरहमें डूब जाती हैं। एक तो वह काली कमली ओढ़े हुए था और ऊपरसे अँधेरी रात थी, जितनी देर बादलोंमें बिजली चमकती है, इतनी ही देरमें गोपियोंने कान्हाको गवाँ दिया। वृन्दावनके वृक्षों, लता-पताओं और उन कुंजोंमें निवास करनेवाले कोयल आदि पक्षियोंको भी श्रीकृष्णके प्रति अत्यधिक प्रेमके कारण असहनीय पीड़ाका अनुभव हो रहा है, उनका यह प्रेम व्यर्थ नहीं जायगा, एक दिन श्रीकृष्णको वापस लौटकर आना पड़ेगा, परंतु ऐसा कहते-कहते उनका धैर्य जवाब देता-सा प्रतीत होता है। वे पुनः विलाप करती हुई जहाँसे श्रीकृष्ण गये थे, उस मार्गपर आकर खड़ी हो जाती हैं और कहती हैं कि इस मार्गपर लाखों लोग

आते-जाते हैं, परंतु एकबार जानेके बाद हमारा कान्हा अबतक वापस नहीं आया।'

कविके द्वारा वर्णित बारह मासोंका विवरण अत्यन्त कारुणिक है, परंतु विस्तारभयके कारण रचनाका मूलभाव समझमें आ जाय, इस उद्देश्यसे केवल तीन मासोंकी पंक्तियाँ दी जा रही हैं—

सावण मास सुहावणो, जे घर धीणो होय।
धीणो वाज सुहावणो जे घर कान्हड़ होय॥
सावण असलाँ सालणो बीजल बूँद सुचाल।
राहि दिये सनेसड़ा घर आवो गोपाल॥
घन गरजै दावण खिंचै बोलै चातग मोर।
गोपी गिरधर कद मिले नागर नंदकिशोर॥
घन गरजै दावण खिंचै चातग मने उदास।
सर छलिया सरिता बहै मनाँ न पूरी आस॥

सावनका महीना तभी प्रिय लगता है जब घरमें दूध, दही, माखन हो और यह सब भी तभी अच्छा लगेगा, जब घरमें कान्हा हो, नहीं तो सावन पीड़ित ही करेगा, चमकती बिजली और शीतल बूँदें भी मुझे सुहाती नहीं हैं। गोपियाँ मथुराकी ओर जानेवाले राहगीरोंसे कान्हाको घर वापस आनेका सन्देश देनेके लिये कहती हैं। मेघ गरज रहे हैं, बिजली चमक रही है, मोर-पपीहा बोल रहे हैं, परंतु गोपीको यह सब आकर्षित नहीं करता; उसे तो एक ही लगन है कि गिरधर कब मिलेंगे। जिस प्रकार स्वातीनक्षत्रमें बरसनेवाली बूँदोंके बिना गरजते मेघ, चमकती बिजली, बहती नदियाँ, भरे हुए तालाब चातकके किसी कामके नहीं हैं।

पोह पहाऊ ऊगवै निलखणिया कुण धीर।
गोवल गयो न बाहड़ै सोहदल केरो बीर॥
खड़ी उड़ीकूं पंथसिरी नैणे मूक्यो नीर।
विरह वियापे हे सखी छीजै सकल शरीर॥

पौषके महीनेकी लम्बी रातें उसको याद करते-करते बीत जाती हैं, धीरज कौन बँधाये? सुभद्राका भाई एक बार जानेके बाद अबतक वापस नहीं आया है। मैं मार्गमें खड़ी उसका इन्तजार कर रही हूँ, रो-रोकर मेरे नेत्रोंके आँसू खत्म हो गये हैं। हे सखी! मेरे पूरे शरीरमें विरहकी वेदना व्याप्त हो गयी है, यह जल रहा है।

जेठ तपै लू खलहलै पूरहा सूर तपाय।
श्रीरंग आवत जो कहे जे नर लाख लहाय॥
लाख देउँ पाँये पड़ूँ, कराँ इधक ही सेव।
मन रा मनोहर जो हुवै घरे पधारै देव॥

एक तो विरहकी अग्नि, ऊपरसे ज्येष्ठ मास तप रहा है, लू चल रही है, प्रचण्ड वेगसे सूरज आग बरसा रहा है, ऐसेमें 'श्रीकृष्ण आ रहे हैं'—ऐसा समाचार कोई मुझे सुना दे तो मैं उसे लाख बधाई दूँगी, उसकी चरणवन्दना करूँगी और उसकी भरपूर सेवा करूँगी। मनचाहा तो तब हो, जब कान्हा घर आये।

'असरा मां वासो हुवो'—मथुरामें जाकर उसने असुरोंका संग कर लिया, तभी तो उसकी मति बदल गयी है। वह हमें भूल गया है।

जाम्भाणीसाहित्यके एक कवि उदोजी अडिंग (सम्वत् १८१८-१९५३) एक दिन खेतोंकी तरफ जा रहे थे, फाल्गुनका महीना था, गाँवके बाहर तालाबपर स्त्रियाँ इकट्ठी होकर फाल्गुनके अश्लील गीत गा रही थीं, इन्होंने उन स्त्रियोंको ऐसे गीत गानेसे रोका और कहा कि आपको शृंगार-रसके गीत गाने हैं तो राधाकृष्णके गीत गाओ, तब उन्होंने कहा कि हमें तो यही गीत आते हैं, अगर आपको राधाकृष्णके गीत आते हैं तो हमें सुनाओ। तब इन्होंने वहीं बैठकर तत्काल स्फुरित भावसे उत्पन्न एक गीत गाया, विश्नोई सम्प्रदायमें इसे 'लूर' के नामसे जाना जाता है, यह इतना लोकप्रिय हुआ कि दो सौ साल बीतनेके बाद आज भी स्त्रियाँ फाल्गुनमें इसे बड़े चावसे गाती हैं, सम्प्रदायमें रात्रि-जागरणमें गायक कलाकार इसे गाकर ही अपने कार्यक्रमकी पूर्णता मानते हैं।

कविका पद द्रष्टव्य है—

गिरधर गोकळ आव गोपी सनेसो मोकळै।
मोह दरसण को चाव प्रेम पियारा काँनजी॥
(थारै) माथै मुकट सुढाळ केसर तिलक जु हद बण्यो।
मोहन नैण बिसाल सुन्दर वदन सुहावणौ॥
गूगर बारे केस कानाँ कुंडल झळक रये।
ओही मनोहर वेस म्हारै मन मैं रम रह्यो॥
गळ वैजंती माळ पीतांबर कट काछणी।

हाथ लकुटिया लाल साँम सलूँणा साँवरा॥
गावै छतीसूँ राग गिरधर मुरली मोहनी।
मोहे सुर नर नाग गोपी मोहे गुवाळिया॥
वै दिन काँन चितार महीड़ो मो पै माँगता।
अब तम गए विसार मथुरा मैं महाराज वणे॥
चेरी कंस की दासि भली बसाई भावनी।
वा सँग कियौ निवास सैंस सहेली छाड़ कै॥
थाँनै झूरै जसोदा माय राधा पलक न वीसरै।
ललता जीव ललचाय दरसण कारण दूबळी॥
थाँनै झूरै बिरज की नार घर घर झूरै गुवाळिया।
गउ तिण तज्यौ मुरार बछड़ा खीर न पीवही॥
ऊदो कहै कर जोड़ काँय बिसारी कानड़वा।
म्हारी अरज सुणौ रणछोड़ दरस दया कर दीजियै॥

श्रीकृष्णके गोकुलसे जानेके बाद गोपियाँ अति व्याकुल रहती हैं, पुनः दर्शनके लिये वे किसीके द्वारा कान्हाको सन्देश भेजनेकी प्रार्थना करती हैं। वे उनके मनमोहन रूपको याद करते हुए विभिन्न अंगोंकी कान्ति और वस्त्राभूषणोंका वर्णन करती हैं। वे उनकी मुरलीकी धुनका स्मरण करती हुई कहती हैं कि किस प्रकार वह मुरली छत्तीस राग गाती थी और मनुष्य, देवता, नाग, गोपी, ग्वाल सभीका मन मोह लेती थी। अरे कान्हा! तुम उन दिनोंको याद करो, जब मुझसे माँगकर दही लेते थे, अब तुम मथुरामें जाकर महाराज बन गये हो। हजारों सहेलियोंको छोड़कर तुम उस कंसकी दासी कूबड़ीके संग रहने लगे हो। यहाँ तुम्हारे वियोगमें माता यशोदा बेसुध पड़ी हैं, राधा तो पलभरके लिये भी तुम्हारा विस्मरण नहीं करती। ललिता आदि सखियाँ कृशकाय हो गयी हैं। व्रजकी तमाम नारियाँ और गोप-ग्वाल तुम्हें याद कर-करके आँसू बहा रहे हैं। गायोंने घास खाना और बछड़ोंने दूध पीना छोड़ दिया है। कान्हा! कोई कारण तो बता, किस अपराधके कारण हमारा परित्याग किया है? हे रणछोड़! हमारी अरज सुनो, हम दीनोंपर दया करके दर्शन दे दो।

जाम्भाणी कवि रायचन्दजी राधारानीके बेहद विरही भावको शब्द प्रदान करते हुए कहते हैं कि 'यह विरहाग्निमें जलता पपीहा बोलकर जलेपर नमक डाल रहा है, अब यह विरह अपार हो गया है और सहन नहीं होता, कान्हा अब तुम जहाँ भी हो, हमें वहीं ले चलो।'

आवो श्रीरंग ले चलो हमको अधिक तरसै जीवड़ो।
दाझाँ ऊपर लूण लावै पीव पीव करतो पपीहड़ो॥

श्रीराधामाधव-तत्त्वालोक

(श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल, एम० ए०, बी०एड०)

राधा तत्त्व बड़ा अद्‌भुत है, कैसे समझा जाय।
कितना ही शब्दोंमें बाँधो, न्याय नहीं हो पाय॥
फिर भी प्रेमी हृदयों से कुछ भाव छलक ही जायँ।
राधाजी से क्षमा माँग हम उनको ही दुहरायँ॥
राधा-माधव एक तत्त्व हैं, जैसे सूरज-धूप।
लीलारस बरसाने को ही धर लेते दो रूप॥
कृष्ण स्वयं की रूप-सुधा का पान नहीं कर पायँ।
इसी हेतु राधा प्रकटें, निर्मल दर्पण बन जायँ॥
श्याम-मेघ से निकली विद्युत् श्याम-मेघ दिखलायँ।
श्याम से प्रकटीं श्यामा वैसे श्याम-रूप दरसायँ॥
राधा ही हैं कृष्ण-आत्मा कृष्ण प्रेमका धाम।
इसीलिये तो कहलाते हैं कृष्ण आत्माराम॥
एक-दूसरे के ही सुख में निज सुख हुआ विलीन।
खुद को भी सुख देते जिससे प्रियतम हों सुखलीन॥
कहने को ही 'निज-पर' लेकिन नहीं द्वैत का नाम।
कभी श्याम बन जाते राधा, राधा बनतीं श्याम॥
दोनों इतने घुले-मिले लगता संयोग वियोग।
विरही बनकर व्याकुल होते, बड़ा विलक्षण रोग॥
किंतु रोग ऐसा जिस पर न्योछावर शत-शत भोग।
ऐसी प्रेमलगन क्या समझें, भोगमग्न हम लोग॥
ऐसे पावन दिव्य प्रेमकी बूँद एक जो पाय।
उसको कुछ भी करना-पाना शेष नहीं रह जाय॥

लोक-साहित्यके अजिरमें श्रीराधा-माधव

(डॉ० श्रीकृष्णमणिजी चतुर्वेदी 'मैत्रेय')

अखिल-ब्रह्माण्ड-नायक श्रीकृष्णकी लीला अपार एवं अनन्त है। भक्तजन उनके चरितका वर्णन करके अपने जीवनको धन्य बनाते हैं। भगवान्‌का गुणानुवाद जहाँ संस्कृत एवं हिन्दी साहित्यमें हुआ है, वहीं लोकसाहित्यमें भी हुआ है। प्रकृतिद्वारा उद्भूत 'लोक-साहित्य' में श्रीराधा-माधवका वर्णन सोहर, विवाहगीत, फगुआ एवं कजरीमें हुआ है।

पं० रामनरेश त्रिपाठीने लिखा है—'ग्रामगीत प्रकृतिके उद्गार हैं।....' प्रकृति जब तरंगमें आती है तब वह गान करती है। उसके गीतोंमें हृदयका इतिहास इस प्रकार व्याप्त रहता है, जैसे प्रेममें आकर्षण, श्रद्धामें विश्वास और करुणामें कोमलता।'

मेरी दृष्टि लोक-साहित्यके एक सोहरपर पड़ी, जिसके भावोंका यथेष्ट साम्य गर्गसंहिताके वर्णनोंके साथ है। श्रीराधाजी अनमने भावसे यशोदाजीके आँगनमें खड़ी होती है; यशोदाजीको लगा कि राधाकी उदासीके पीछे नटखट माधवका कोई-न-कोई हाथ है। जननीके अधरपर मुसकान थिरक गयी। सोहरमें राधाका कोठेसे उतरना, फिर आँगनमें अनमनी होकर खड़ी होना सूक्ष्म तथ्यको इंगित करता है। सबसे बड़ी बात यह है कि यशोदाजी उन्हें बहू कहकर सम्बोधित करती हैं—

कोठवा से उतरीं राधिका,
अँगनवा म ठाढ़ भई हो।
रामा हँसि-हँसि पूँछहि यशोदा,
काहें बहू अनमनि हो॥

सोहरकी अगली पंक्तियोंमें भी राधा-कृष्णको आधार बनाकर लोकमानसके भावोंका सरस चित्रण किया गया है—

काह कहौं मोरी सासू!
कहत मोहें लाज लागइ हो।
सासु! आजु महल मा चोरी भई,
तो तिलरी चोराइ गई हो॥
तोरि डारौ हाथे क हँथेहरा,
गोड़े कै गोड़ाहर हो।
बहुआ ओढ़ि लेहु नित कै दुपट्टा,
त मुरली चोराइ लावउ हो॥
तोरि डारीं हाथ कै हँथेहरा,
गोड़े कै गोड़ाहर हो।
ओढ़ि लिहिन नित कै दुपट्टा,
त मुरली चुराइ लाइन हो॥
बनवा से आवँइ कन्हैया,
अँगनवा म ठाढ़ भये हो।
रामा हँसि-हँसि पूँछहिं यशोदा,
काहे का बेटा अनमन हो॥
काह कहौं मोरी मइया!
कहत मोहें लाज लागइ हो।
आज वृन्दावन चोरी भईं,
त मुरली चोराय गईं हो॥
अस जनि जानो राधिका!
मुरलिया मोरी बाँस कइ हो।
राधा! मुरली में बसे मोर प्रान,
मुरलिया हमरी दै देव हो॥
अस जिन जान्या कन्हैया!
तिलरिया मोरी लाह कै हो।
कान्हा! तिलरी में लागे हीरा लाल,
तिलरिया हमरे बाप कै हो॥

(कविता-कौमुदी भाग-३)

श्रीराधा बेहिचक 'सासु' शब्दका प्रयोग करके अधिकारपूर्वक यशोदाजीको तिलरी (तीन लड़ोंवाला हार)-की चोरीकी घटनासे अवगत कराती हैं। मैयाने तिलरीकी चोरी सुनकर झट बहूका पक्ष ले लिया। नारीमनकी बात समझते उन्हें देर नहीं लगी। यहाँ यशोदाजीका मनोविज्ञान कार्यरत हुआ और राधाद्वारा नाम न लिये जानेपर भी वे समझ गयीं कि यह काम वही कर सकता है, जो संकोचसे परे है। माताने राधाजीको परामर्श दिया—'बहू! हाथ-पैरका कड़ा तोड़ डालो और दुपट्टा ओढ़कर तुम भी मुरली चुरा लाओ, फिर देखा जायगा।'

राधाजी मुरली चुरानेमें सफल हो गयीं। फिर अनमनने भावसे कन्हैया भी माताके समक्ष अपनी बात रखने पहुँच जाते हैं। इतनेमें उनकी दृष्टि राधाजीपर पड़ गयी। माधवने जब मुरलीमें अपने प्राण बसनेकी बात कही तो राधाने भी उत्तर दिया कि 'तिलरी मेरे बाप की है, जिसमें हीरा और लाल जड़ा है।' भाव यह कि इस हाथ दो, उस हाथ लो।

गर्गसंहितामें राधा-माधवकी कुछ ऐसी ही ललित क्रीडाका वर्णन प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण राधाके साथ जल-विहार कर रहे हैं। कृष्ण राधाका खेल-खेलमें कमल छीन लेते हैं तो राधा भी उनकी वंशी छीन लेती हैं। विवश कृष्ण जब राधाको कमल दे देते हैं, तो राधा भी उन्हें वंशी वापस कर देती हैं, तदनन्तर यमुनातटपर पुनः लीला-विहार होने लगता है।

पं० रामनरेश त्रिपाठीके अनुसार 'लोकसाहित्यका जन्मस्थान गाँव है, जिसकी वाणीमें मस्तिष्क नहीं, हृदय है।' व्रजमण्डलकी होली अत्यन्त प्रसिद्ध है। श्रीराधाजी होलीके रंगमें रँगकर आनन्दानुभूति करती हैं। एक फगुआमें श्रीकृष्णके साथ वृषभानुकिशोरीका वर्णन कुछ इस प्रकारसे हुआ है—

रितुराज वसंतल गोरी,
खेलत वृषभानु किसोरी स्याम सँग होरी।
जुटा अहै सगरउ बरसाना, सुनै क आये सँवरिया कै गाना,
मोहन फाग रचेउ री।
बँसिया मा राग फाग अनुसारत, मधुर सुरन से विकल करि डारत,
भरि अबीर गुलालन झोरी।
स्याम सँग होरी॥

इस प्रकार गाँवोंमें लोग लोक-साहित्यके द्वारा श्रीहरिका गुणानुवाद करके जहाँ एक ओर लोकसाहित्यको संरक्षित करते हैं, वहीं अपनी वाणीको भी धन्य बनाते हैं।

फागोत्सवमें श्रीराधामाधव

(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी)

श्रीराधा और श्रीकृष्णके प्रेमके अद्वितीय आकर्षणका वर्णन अनेक संतों एवं कवियोंने अपने फागके पदोंमें किया है। फागके सुरीले रसिया, भजन, लोकगीत और कीर्तनोंकी स्वरलहरियाँ फागुन मासमें सर्वत्र गूँजती रहती हैं, जिससे जीवनमें आनन्दका संचार होता है। आइये हम भी होलीके रसिया बनकर राधाकृष्णके संग रंगोंकी पिचकारी, अबीर, गुलाल एवं फूलोंकी वर्षाद्वारा इस रंगरंगीले त्योहारका आनन्द लें।

हाँ कृष्णजी खेलें होरी, इतरायें वृषभानु किशोरी रे॥
माधव रंग राधे पर डारे, तक तक के पिचकारी मारे।
गहरी घोट गुलाल, कुमकुमा केशर घोरी रे॥
ताल मृदंग झाँझ ढप बाजे, स्वर समाज मिल घन ज्यूँ गाजे।
ऐसी घटा निहारी सखि आई दौड़ी दौड़ी रे॥
तबहिं श्याम सब सखा बुलाये, विविध भाँति पकवान मँगाये।
मन चित से रहे बाँट कृष्ण जी भर भर झोरी रे॥
लीला पुरुषोत्तम गिरधारी, भक्त हेतु प्रगटे अवतारी।
सोलह कलावतार सँग सोहे राधे प्यारी रे॥

इसी प्रकार एक अन्य पदमें श्रीराधामाधवके परस्पर फाग खेलनेका जीवन्त चित्रण किया गया है—

राधा माधव फाग मनावैं, जमनाजी के पार।
सजनी बलिहारी है॥
कलशन केशर घोरी है संग मणों ही रोरी है।
नाचत गावत टोरी है, आज बिरज में होरी है।
नन्दगाँव के ग्वाले सँग में, बरसाने की नार॥
ढप ढोलक सारंगी बाजे, सँग बाजे मिरदंग जी।
साँवरिया की बजे बँसुरिया राधे जू को चंग जी।
कहीं नूपुर कहीं कँगना खनकै, कहीं पायल झनकार॥
देख सखिन सँग आवत राधा, भाज्यो नन्द को लाला है।
कहीं गिरायो मोर मुकुट और कहीं बैजन्ती माला है।
बड़े जतन से पकड़ श्याम को, दियो है घेरा डार॥
चुनरिया उढ़ाय लाल को अपनी ओर मिलायो है।
नकबेसर गल माय कंचुकी, कजरा नैन लगायो है।
ग्यारा माह तैने की मनमानी, फागुन मास हमार॥
मनमोहन सिर धरी चन्द्रिका, मुकुट धर्‌यो गोरी के।
गुलचा दे दे कहे सखी अब, देख मजा चितचौरीके।
अब ते अब तोरी साँवरिया प्यारी जू रखवार॥

सावनके लोकगीतोंमें राधा-माधवकी मनोरम झाँकी

(श्रीनागेश्वर सिंहजी 'शशीन्द्र')

सावनके आते ही गाँवोंमें वृक्षोंपर झूले सज जाते हैं। घर-घरमें झूले पड़ जाते हैं। आम्रवनोंमें कजलीकी स्वर-लहरी लहराने लगती है। वहाँ झूलेपर ही राधा-कृष्णके प्रीतिभावमें निमग्न ग्रामबालाएँ झूलनेकी तैयारी करती हैं। वहाँ झूला झूलते समय कृषककिशोरियाँ गाती हैं—

झूला झूलत श्याम किशोरी, झूला लगी कदम्बकी डारी
हरित सुरेशम डोरी, झूला झूलत श्याम किशोरी
अगल बगल सब सखियाँ झुलावें, झूमि झूमि झुकि पेंग लगावें
गावत राग मलार एक सँग, ब्रजमंडल की गोरी

इस तरह अन्य स्थानोंपर भी झूले लगते हैं और ग्रामबालाएँ बड़ी प्रसन्नतासे झूला झूलती हैं। वहाँ एक ही साथ सब मिलकर गाती हैं—

ओही कुंज बनवाँमें कदम्बकी डरिया रामा
झोंकेदार झमकेला हिलोरवा हे हरी
एक ओर बैठी वृषभान किशोरी रामा
एक ओर नन्दकिशोरवा हे हरी
ललिता बिसाखा दोनों पेंगवा चलावें रामा
धरि धरि रेशम की डोरिया हे हरी
मन्द मन्द गावें अति रस पावें रामा
चारों ओर बोले बनमोरवा हे हरी
कृष्ण कन्हैया प्रीतम प्यारा रामा
देखि देखि जियरा हरसे हे हरी

फिर उस कृष्ण कन्हैयाके झूलेकी झाँकीमें अन्तरकी स्वरलहरी सुनकर अन्य ग्रामबालाएँ भी गाने लगती हैं—

कदम्बकी डारी जहाँ पीले फूल फूली रामा
हरि हरि झूलत झूला कृष्ण प्यारी हे हरी
कोयल किलकारी भरे मोरनी पुकारी भरे
हरि हरि पैंजनी बजावे राधा प्यारी हे हरी
सुरुख किनारीदार सारी की बिहारी रामा
हरि हरि झूलत लटकि लटकारी हे हरी

सावनकी लहर और झूलेकी झमकका आनन्द साथ-साथ चलता है। फिर झूलेकी पेंग तेज होते ही सब मिलकर कृष्णसे कहती हैं—

झूला धीरेसे झुलाव बनवारी हे साँवलिया
एक ओर झूलें कृष्ण, एक ओर राधाप्यारी हे साँवलिया
जोरसे झुलावें झुलही न पावे, लटके कदमवाकी डारी हे साँवलिया
झूला धीरेसे झुलाव बनवारी हे साँवलिया

कृष्णके साथ झूला झूलते समय किशोरियाँ इतनी तन्मय हो जाती हैं कि उन्हें अपना पता भी नहीं रहता। उनकी चुनरी हवासे खेलने-सी लगती है। वैसे अवसरकी यह कजरी कितनी अच्छी लगती है—

हरि सँग डारि डारि गलबहियाँ, झूलत बरसाने की नारी
प्रेमानन्द मगन मतवारी, सुधि बुधि तन मन की बिसारी

इस तरह सावन मस्ती लुटाता है और श्याम रंग ग्राम-घरमें बिखेरता है। झूले और कजलीका रसरंग गाँव-गाँवको ब्रजका गाँव बना देता है। भला ऐसे सावनमें गाँवोंकी किशोरियाँ कृष्ण और राधाके रंगमें सराबोर हो नहीं झूलें तो झूले कौन?

भोजपुरी गीतोंमें राधा-माधव

(आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य, एम०ए०, पी-एच०डी०)

वैदिक सूक्तोंके गरिमामय हिमालयोपम उद्गमसे लेकर लोकगीतोंके महासागरतक भारतीय भावधाराका जो अविच्छिन्न प्रवाह मिलता है; वह श्रीराधामाधवकी प्रेम-माधुरीसे सरस है। श्रीराधामाधवकी प्रेम-माधुरीमें डूबे हुए भक्तोंकी रसमयी भावनाएँ भोजपुरी गीतोंमें भी प्रस्फुटित हुई हैं।

भोजपुरीक्षेत्रमें सन्तानके जन्मपर श्रीकृष्ण-जन्मके समान आनन्द मनाया जाता है और निम्नलिखित सोहर-गीत गाया जाता है। इसमें भाव यह है कि गोकुलमें श्रीमाधवका जन्म हुआ है। यशोदाके परिजन बधावा लेकर आते हैं और उनसे नेग माँगते हैं। यशोदा उन्हें नेग देनेका वचन देती हैं और परिजन शिशुको आशीष देते हुए लौट जाते हैं—

जसुदाजीके भये नन्दलाल बधावा लाई मालिनियाँ।
तेलिन लाई तेल, तमोलिन रे बीड़वा
वही रे गले कै हार ले आई पटहारिनियाँ।
तेलिन माँगे पीयरी रे तमोलिन रे चुनरी
वही रे जखिन रंग चीर दैबे रे पटहारिनियाँ।
तेलिन देत असीस तमोलिन घर को चली
जुग जुग जीये तेरो लाल कहत पटहारिनियाँ।

गोपियोंको कन्हैयाकी बाललीलाएँ यद्यपि काफी रसभरी लगती थीं, परंतु कभी-कभी नटखट नन्दलालकी शरारतोंसे उन्हें परेशानी भी होने लगती थी। वे खीझ उठती थीं। जिसकी शिकायत वे यशोदा मैयासे करतीं। बिरहाशैलीका यह भोजपुरीगीत देखें—

बरजा यसोदा मैया अपने ललनवाँ के,
रोके लैं जमुनवाँ के घाट
घरवाँ ऊ लउकैं जैसे नान्हे क गदेलवा,
बहरे हो जालैं बटमार·····

× × ×

ओही बृंदावनवाँ में पाकल मकोइया, राधा तोरैं डरिया मरोरि
एकहू मकोइया राधा तोरही न पवलीं कान्हा देहलैं डरिया झकझोर।

श्रीराधामाधव और उनकी विहार-स्थली वृन्दावनके प्रति भी गीतकारोंका प्रचुर आदरभाव रहा है।

एक भक्तका मन वृन्दावनमें ऐसा रम गया है कि वहाँसे हटनेका नाम ही नहीं लेता। चैतीरागमें रचे निम्नलिखित गीतका सौंदर्य देखें—

एही ठैयाँ मनवा हेरैलैं हे रामा
जात रही मैं जमुना किनरवाँ, लखि मौं तन मुसुकैलों हो रामा।
औचक आइ कढ़ी एहि मग ते, हाय हिया बिंध गैलो, हो रामा।
'मोहिनी' पिय नैना मा नयनन बरबस आनि समैलों, हो रामा।

श्रीराधामाधवके संयोगशृंगारका वर्णन करनेके साथ ही गीतोंमें इनके विरहका वर्णन भी किया गया है। विरहकी यह अवस्था श्रीमाधवके मथुरा-गमनसे उपजती है। यहाँ राधाके बजाय गोपियाँ ही मुखर हुई हैं।

गोपियाँ मेघोंको दूत (भाई) बनाकर उनसे श्रीकृष्णको (जल्दी लौट आनेहेतु) संदेश भेजती हैं कि यदि चिट्ठी नहीं भेज सकते तो हमारे लिये मौतको ही भेज दीजिये। इस गीतमें कालिदासके मेघदूतकी छाया दिखायी देती है—

पुरुब से आवै ला पच्छिम देस जइबा हो बिरन बदरा,
मोरा लेहले जा सनेसवा बिरन बदरा।
निठुर कन्हाई मोसे नेहिया लगाइ के,
मथुरा में बसलैं बिरज बिसराइ के,
गाय गोप गोपी मर जइहैं घबराय के,
बिरन बदरा
जिया एक सौ कलेसवा बिरन बदरा।·····
दयाधाम दया हम पै एतनै देखाय दा,
पतिया न भेजा त मउतियै पठाय दा।
मंगल बदन आपन फिरसे देखाय दा,
बिरन बदरा।

भगवान् श्रीकृष्ण और द्रौपदीमें परस्पर भ्रातृ-भगिनीभाव पुराणोंमें प्रसिद्ध है। जनश्रुति है कि शिशुपालवधके समय सुदर्शनचक्रसे श्रीकृष्णकी अँगुली कट जानेपर द्रौपदीने अपनी साड़ीका पल्लू फाड़कर

उनकी अँगुलीमें पट्टी बाँधी थी। उस कर्जको उतारनेके लिये श्रीकृष्णने कौरवोंकी सभामें द्रौपदीकी साड़ी बढ़ायी। इस पौराणिक आख्यानको लौकिक रीति-रिवाजोंसे अनुस्यूत करके कवि मंगलने अपने गीतमें इस प्रकार प्रस्तुत किया है, जिसे पढ़-सुनकर भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तवत्सलतामें आस्था सहज ही दृढ़ हो जाती है—

खींच ले तूँ पपिया बदनियाँ ते सरिया,
जाने मत द्रौपदी डेराय जइहैं,
मोर बिरना बिपतिया में आय जइहैं।
मोर बिरना बिपतिया में..........
जानै मत पाँचो पति जुअवाँ में हारि के,
जाइके बइठ गइलैं मन आपन मारिके,
तोर कुल अभिमनवाँ मिटाय जइहैं।
मोर बिरना बिपतिया में..........
खींच खींच खींच तोर हाथ थकि जाई,
तन न उघार होई सरियै देखायी,
लाख थान सरिया ओढ़ाय जइहैं।
मोर बिरना बिपतिया में..........
गज कै पुकार सब लोगन के याद बा,
ई तऽ उनके खास बहिनी के फरियाद बा,
मोरे राखी के करज ऊ चुकाय जइहैं।
मोर बिरना बिपतिया में..........
करुण पुकार पर ई द्वारका न दूर बा,
बीरन अस नाही कोई दुनिया में सूर बा,
कइसे आपन बिरद भुलाय जइहैं।
मोर बिरना बिपतिया में..........
नीच देखऽ ऊपराँ तऽ आय गइलैं भइया,
जोर अजमाव हउवैं कुँवर कन्हैया,
मोर मंगल पिरितिया निबाहि जइहैं।
मोर बिरना बिपतिया में..........

भोजपुरी गीतोंके ये गायक राधामाधवकी भवसागरसे पार उतारनेकी क्षमतासे भी अवगत हैं। तभी तो वे अपनेको भवसागरसे पार उतार देनेहेतु राधामाधवसे विनय करते हैं—

नइया ले आवा जाईं पार हे बिहारीजी!
नइया ले आवा जाईं पार,
सँगवा के सब सखी पार उतर गइलीं
हम त डूबी ला मझधार हे बिहारीजी,
नइया ले आवा जाईं पार हे बिहारीजी!
गजके उबरला औ ग्रहवा के तरला,
आइल बाटीं बेरियाँ हमार हे बिहारीजी,
नइया ले आवा जाईं पार हे बिहारीजी!
होई साँची प्रेम जो राधे सँग अइबा,
छाँड़ि के गरुड़वा के साथ हे बिहारीजी,
नइया ले आवा जाईं पार हे बिहारीजी!

राधामाधवकी विहार-लीलाको शतकोटि नमन।

माधव जब राधासे हारे

किसी समय श्रीराधाजीने ललिता आदि सखियोंसे यह परामर्श किया कि कृष्ण शारीरिक शक्तिमें हम लोगोंसे अधिक बलवान् होनेके कारण शारीरिक शक्तिवाली क्रीड़ाओंमें हमें पराजित कर देते हैं। तुम लोग बुद्धिसे सम्बन्धित एक ऐसी क्रीड़ाका अविष्कार करो, जिसमें हम कृष्णको सरलतासे पराजित कर सकें। ललिता सखीने श्रीराधाजीको पासाक्रीड़ाके द्वारा कृष्णको हरानेका परामर्श दिया। परामर्शके पश्चात् सखियोंने कृष्णको पासाक्रीड़ाके लिये चुनौती दे दी। खेल आरम्भ होते ही श्रीराधाजीने सहजरूपमें ही श्रीकृष्णको पराजितकर बाजीमें रखी हुई उनकी वंशी जीत ली। पास ही बैठे मधुमंगलने खिन्न होकर कहा—'कन्हैया! गोपियोंने अभी तुम्हारी वंशी ले ली, फिर ये तुम्हारा सर्वस्व हरण कर लेंगी।' तुम गोचारणमें ही प्रवीण हो। गौओंको चराओ। तुम्हें इस प्रकार पराजित होता देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है। ऐसा कहकर हँसने लगा। कृष्णने उसे वाचाल ब्राह्मण कहा और डाट-डपटकर चुप रहनेके लिये कहकर स्वयं मुसकराने लगे। [प्रेषक—श्रीरामजी शास्त्री]

निमाड़ी लोकगीतोंमें श्रीराधामाधव

(डॉ० श्रीमती सुमनजी चौरे, एम०ए०, पी-एच०डी०)

अध्यात्म हमारी लोकसंस्कृतिका मूल आधार है। व्यक्तिके अचेतन मनमें ईश्वरकी एक अदृश्य छवि सदा विद्यमान रहती है। अवसर पाकर यह छवि मूर्त हो उठती है, कभी भक्तिके रूपमें, तो कभी पूजाके रूपमें और कभी कण्ठनिर्गत शब्दोंके रूपमें। भारतीय लोकने अपने आराध्यसे कभी कुछ माँगा है तो सिर्फ देवका सान्निध्य ही माँगा और माँगा है सुख, शान्ति और आनन्द।

निमाड़ मध्यप्रदेशका वह क्षेत्र है, जो नर्मदाके तटपर बसा है। यहाँके लोकजीवनमें कृष्ण और राम ऐसे बसे हैं, जैसे अपने घरके आँगनमें खेलते, रमते और दुलराते बाल-गोपाल।

यहाँका लोक जीवनमें आनन्द खोजता नहीं, तलाशता नहीं, वह जानता है, आनन्द तो उसकी अपनी आत्मामें बसा है। वह अपने नित्यकर्ममें ही आनन्द गूँथ लेता है। हल चलाते-चलाते या गाय चराते-चराते वह गाने लगता है—

तू काँ छेऽ कृष्ण मुरारी, गौ रक्षा करणऽवाला
तुखऽ ग्वाला ढूँढी रह्या रेऽ
तुखऽ गौवा ढूँढी रहीजऽ रेऽ
तुखऽ ढूँढऽ रहीजऽ राधा प्यारीऽ
गौ रक्षा करणऽवाला

हे कृष्णमुरारी! तू कहाँ है? हे गौओंकी रक्षा करने वाले, तुझे कहाँ खोजें? तुझे ग्वाल-बाल ढूँढ़ रहे हैं, गौएँ ढूँढ़ रही हैं। हे कृष्ण! तुझे प्यारी राधा भी खोज रही है, हे गोरक्षा करनेवाले·····।

लोक सदैव कृष्णकी श्याम-सलोनी मोहिनी छविको राधामें देखना चाहता है और राधाका आह्लादित रूप कृष्णमें देखना चाहता है। यही कारण है कि निमाड़में कृष्णजन्मके लोकगीत हों या भक्तिभावके गीत हों, हर पदमें राधाप्यारी होती ही हैं। कृष्णको गोदमें निहारते, आँगनमें खिलाते समय भी राधाकी उपस्थित सदा रहती ही है। एक निमाड़ी गीत—

म्हाराऽ बाळऽ मुकुन्दाजीऽ, म्हारा घरऽ रमुआ आवजोजीऽ
म्हारा बालऽ मुकुन्दा जीऽ
म्हारा घरऽ नित-नित आवजो जीऽ
झगो सिवाडुँ, टोपी सिवाडुँऽ अरु लगई देऊँ फुन्दा जीऽ
म्हाराऽ मनऽ मंऽ असी आवऽ
अपणाऽ हाथ पेरई देऊँ जीऽ
लड्डू बँधाडुँऽ पेड़ाऽ बँधाडुँऽ अरु बणई देऊँ सीरो जीऽ
म्हाराऽ मनऽ मंऽ असी आवऽ
माखन मिसरी खवै देऊँ जीऽ
ग्वाल बुलई देऊँ, गोपऽ बुलई देऊँ अरु बुलई लेऊँ राधाजीऽ
म्हाराऽ मनऽ मंऽ असी आवऽ
अपणा साथऽ नचई देऊँ जीऽ

हे बालमुकुन्दजी! तुम मेरे घर खेलने आओ। हे बालमुकुन्दजी! तुम मेरे घर नित्य-नित्य आओ। मैं तुम्हारे लिये झगा सिल दूँगी, टोपी सिल दूँगी, उसमें फुन्दा लगा दूँगी। मेरा मन ऐसा कहता है कि मैं अपने ही हाथोंसे आपको झगा भी पहना दूँगी। मैं आपके लिये लड्डू बाँध दूँगी, पेड़ा बना दूँगी, कहो तो सीरा बना दूँगी। मेरा मन तो ऐसा करता है कि मैं आपको माखन-मिसरी अपने हाथोंसे खिला दूँ। हे मुकुन्दजी! तुम्हारे साथ खेलनेके लिये, ग्वाल-बाल, गोप-गोपियाँ बुला दूँगी और साथ ही राधारानीको भी बुला दूँगी। मेरा मन ऐसा करता है कि मैं तुम्हें अपने साथ नचा भी लूँ। तुम मेरे घर नित्य खेलने आते रहना।

निमाड़में कृष्णभक्तिके लोकगीत बड़ी संख्यामें मिलते हैं। बालरूपमें कृष्णकी सलोनी छविके, उनके रुदनके और झूलनेके बहुतसे गीत हैं। यह एक मधुर भाव है कि बालरूपमें राधाका सान्निध्य कृष्ण माँगते हैं और माता मुदित मनसे यह गीत गाती हैं—

कान्हऽ म्हारो झुलणियों सोऽ झूलऽ
कान्हऽ म्हारो झुलणियों सोऽ झूलऽ
कि कान्हऽ म्हारो टपऽ टपऽ आँसू गाळऽ
कि कान्हऽ तुखऽ माखणऽ मिसरी दई देऊँ
कि कान्हऽ तुखऽ मुरली गावड़ी दई देऊँ
कि कान्हऽ म्हारो नई रेऽ मानऽ नई रेऽ

कि कान्हऽ तुखऽ राधा प्यारी दई देऊँ
कि कान्हऽ म्हारो खदऽ खदऽ फुलड़ा फेकऽ
कि कान्हऽ म्हारो झुलणियों सो झूलऽ

कान्हा झूलेमें झूल रहे हैं। मैं उन्हें मना रही हूँ, झुला रही हूँ, फिर भी उनकी आँखोंसे टप-टप आँसू गिर रहे हैं। हे कान्हा! मैं तुझे माखन-मिसरी खिला दूँ। तुझे गौएँ, ग्वाल-बाल सब साथ खेलने बुला दूँ। फिर भी कान्हा रो ही रहा है। हे कान्हा! हे कृष्ण! मैं तेरे लिये राधाप्यारीको बुला लेती हूँ। राधाका नाम सुनते ही कान्हाके ओठोंसे फूल झड़ने लगे। वे खिलखिला उठे।

निमाड़ी लोकगीतोंमें एक भाव यह भी आता है कि कृष्ण अपनी प्रिया राधाजीके साथ हमपर कृपा करें, हमारा जीवन सार्थक करें। गीत है—

भजऽ राधा-माधवऽ हरि गोविन्दऽजीऽ
राधा-माधवऽजीऽ भली बणी रेऽ थारी जोड़ी
होऽ म्हारा नयणा सुफलऽ हुआ माधवऽजीऽ
राधा-माधवऽजीऽ भली करूँ रेऽ थारी सेवा
हो म्हारा हाथऽ सफल हुया माधवऽजीऽ
राधा-माधवऽजीऽ जपूँ थारा नावऽ की मालाऽ
होऽ म्हारो हिरदो निरमल हुयो माधवजीऽ
राधा-माधवऽजीऽ आई थारी शरण मंऽ
होऽ म्हारी जिनगी सफल हुई माधवऽजीऽ

हे मन! तू राधा-माधवके नामका स्मरण कर, उनका नाम भज। हे राधा-माधव! आपकी जोड़ी बड़ी दिव्य छविवाली है। उसके दर्शनमात्रसे मेरे नेत्र सफल हो गये हैं। हे राधा-माधव! मैं तेरी सेवा करूँ, जिससे मेरे हाथोंका होना सफल हो जाय। हे राधा-माधव! मैं तेरे नामका जप करूँ, जिससे मेरा हृदय निर्मल हो जाय। हे राधा-माधव! मैं तेरी शरणमें आयी हूँ, जिससे मेरा जीवन सफल हो जाय। मैं तेरा स्मरण करती हूँ।

निमाड़ी लोकगीतोंमें भक्तिकी सहज भावनाका निरूपण हुआ है। यही कारण है कि इन गीतोंमें आत्मरस एवं ईश्वरको पानेकी एक ललक और उसकी मोहन माधुरी होती है। लोकको ईश्वरप्राप्तिके लिये न कोई जप-तप, न कोई व्रत-हठ, न कोई विराग-संन्यास ही अपेक्षित है, वह तो परमात्माको, बालकृष्णको ऐसे बुलाता है, जैसे अपने आँगनमें खेलते अपने लालको बुला रहा हो। और सचमें ईश्वर प्राप्त भी इसी भावसे होता है। निमाड़में एक कहावत है—'***भगवान् भावका भूक्या छे***' अर्थात् भगवान् भावके भूखे हैं।

श्रीजीकी कृपादृष्टि

यल्लक्ष्मीशुकनारदादिपरमाश्चर्यानुरागोत्सवैः प्राप्तं त्वत्कृपयैव हि व्रजभृतां तत्तत्किशोरीगणैः।
तत्कैङ्कर्यमनुक्षणाद्भुतरसं प्राप्तुं धृताशे मयि श्रीराधे नवकुञ्जनागरि कृपादृष्टिं कदा दास्यसि॥
यस्याः स्फूर्जत्पदनखमणिज्योतिरेकच्छटायाः सान्द्रप्रेमामृतरसमहासिन्धुकोटिर्विलासः।
सा चेद्राधा रचयति कृपादृष्टिपातं कदाचिन्मुक्तिस्तुच्छीभवति बहुशः प्राकृताप्राकृतश्रीः॥

(श्रीराधासुधानिधि ८५, १३६)

हे नवकुंजनागरि! लक्ष्मी, शुक, नारदादिने अपने परमाश्चर्यमय अनुरागरूप उत्सवोंद्वारा जिसे प्राप्त किया, किंतु व्रजवासिनी (ललिता, विशाखादि) अष्टसखियाँ आपकी कृपासे ही जिसे पा गयीं, उसी प्रतिक्षण अद्भुत रसकी वृद्धि करनेवाले कैंकर्यका मैं भी प्रत्याशी हूँ। हे श्रीराधे! मुझपर आप अपनी वह कृपा-दृष्टि कब करेंगी? जिनके चरण-कमलोंके मणि-सदृश नखोंकी झिलमिलाती ज्योतिकी लेशमात्र छटाके विलाससे घनीभूत प्रेमामृत-रसके करोड़ों महासिन्धु उच्छलित होते रहते हैं, वे श्रीराधाजी यदि किसी समय किसीकी ओर अपनी कृपा-दृष्टिसे अवलोकन कर लेती हैं तो उसके लिये मुक्ति तथा प्राकृता (स्वर्णरजतादिरूपा) और अप्राकृता (ब्रह्मविद्यादिरूपा) श्री—लक्ष्मी बहुधा तुच्छातितुच्छ हो जाती है।

श्रीराधा-माधवके प्रेमप्रसंग—हिमाचलके संग

(श्रीश्यामलालजी डोगरा)

श्रीराधा-माधवके स्वरूपनिरूपणमें निरत कवियों, चित्रकारों और महाशालीन भक्तजनोंके अनुपम भक्तिभावसे भावित रचनाओंका संग्रह सदियोंसे उत्तरोत्तर समृद्ध हो रहा है। बंगभूमिसे लेकर देश-विदेशतकके गण्यमान्य साहित्य-भण्डारमें सादर गृहीत श्रीजयदेवकी मनोहारी अमर भक्तिरचना '**गीतगोविन्दम्**' की सुरीली धुन आज भी जनमानसमें गूँज रही है। श्रीराधामाधवकी यमुनातटपर हुई रहस्य-क्रीडाओंसे उल्लसित इस काव्यकी झंकार अन्तिम पदपर्यन्त मनको बलवद् आकर्षित करती है—

'राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः'

संस्कृत काव्यकी अक्षुण्ण धारामें तथा प्राकृत और आधुनिककालकी भाषाओंकी गद्य-पद्यमयी रचनाओंमें भी श्रीराधा-माधवका भावपूर्ण चित्रण होता रहा है। इनमेंसे एक उदाहरण हिमाचल प्रदेशकी कवयित्री मीनाक्षी शर्माके हिमाचली कृष्णकाव्यका है, जिसमें श्रीराधा-माधवकी स्तुति इस प्रकार की गयी है—

भजो गोविन्द राधे श्री भगवान्
बंसरी सुणी राधा छम छम रोई
नैणा भरी रोई ऐ
× × ×
मन हरि से लगाओ राधिके
× × ×
मेरी राधा गोरी चाँद चकोरी है।

हिमाचल प्रदेशके पर्वतोंकी धार-धारपर बदलती बोलीमें श्रीराधा-माधवके अनेक रूप अनेक विधामें सुगम-सुलभ होते हैं।

यहाँ रासलीलाकी परिपाटीपर स्वाँग या जगराता (जागरण)-का आयोजन खुले आँगनमें किया जाता है। इसमें राधा-कृष्णकी लीलासे सम्बन्धित गीत गाये जाते हैं। मधुर धुनवाली बोलीमें निबद्ध ये गीत अतीव आह्लादक प्रतीत होते हैं। इन गीतोंमें राधा-कृष्णके बीच होनेवाली अठखेलियोंका हास्य-लास्यपूर्ण रूप चित्रित हुआ है।

देवभूमि हिमाचल प्रदेशकी विविध बोलियोंके लोकगीतोंमें जनमानसका भगवत्प्रेम विविध रूपोंमें वर्णित है। लम्बी तानमें गाये जानेवाले लोकगीतोंमें 'हसणू खेलणू' जन्मगीतोंसे लेकर विभिन्न संस्कारोंके गीतोंमें श्रीराधा-माधवके लीलामाधुर्यकी अद्भुत छटा पायी जाती है। इसका वर्णन यहाँके लोकसाहित्यके ग्रन्थोंमें सुलभ है।

देवभाषा संस्कृतमें तो राधामाधव-भक्तिकी धारा अक्षुण्णरूपसे बह ही रही है, हिमाचल प्रदेशके विद्वानोंने भी इस सतत-वाहिनी धारामें सहभागिता निभायी है। मौलिक रचनाओंके साथ-साथ संस्कृतमें विविध भाषाओंके गद्य-पद्य-अनुवाद आदिके प्रणयनमें भी यहाँके कवियोंने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

यहाँके कृतिकार भूदेव दीक्षितजीकी एक महनीय कृति 'आनन्दकन्दकाव्यम्' है, जो बिहारीसतसईपर आधारित है। श्रीभूदेवजीका जीवन श्रीराधामाधवकी लीलाओंकी संगीतमयतासे अनुगुंजित रहा है। वे अपने काव्यके एक श्लोक (३३९)-में वर्णन करते हैं कि राधा और माधव चन्द्र-ज्योत्स्नामें विहार कर रहे हैं। उस समय उनकी छवि आपसमें मिलकर एक हो गयी है और वे पृथक्-पृथक् प्रतीत ही नहीं हो रहे हैं—

मिलिता छाया ज्योत्स्नायां न गात्रं लक्ष्यते द्वयोः।
राधाहर्योर्हि संगेन वीथ्यां चलितयोस्तयोः॥

हिमाचल प्रदेशमें पहाड़ी चित्रकलाके पोषक महाराजा संसारचन्दकी नगरी सुजानपुरके भव्य मुरलीमनोहरमन्दिरमें पर्वतीय शैलीमें श्रीराधाकृष्णजीकी मानवाकार मूर्ति विराजित है। इसके अतिरिक्त हिमाचल प्रदेशमें श्रीराधा-माधव-भक्ति-परम्पराके वाहक और भी अनेक भव्य प्राचीन तथा अर्वाचीन मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। हिमाचल प्रदेशके केन्द्रीय संग्रहालयमें अवस्थित काष्ठ-पाषाण-ताम्र-कांस्य आदिकी प्रतिमाओंके माध्यमसे प्राचीन और अर्वाचीन कलाकी विविध शैलियोंका मनोहारी दर्शन होता है। श्रीराधा-माधवके विख्यात मन्दिरों—श्रीमुरलीमनोहर मन्दिर सुजानपुर

टीहरा, श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर आलमपुर, काँगड़ा चनौर, डाड़ासीवा, श्रीहरिहर मन्दिर चम्बा आदिमें उनकी भव्य प्रतिमाएँ शोभित हैं। हिमाचल प्रदेशके शिल्पी कलाकारोंने श्रीराधा-माधवकी पाषाण-कांस्य-ताम्र-काष्ठ-आदिसे भव्य प्रतिमाओंका निर्माण किया है, इतना ही नहीं, अपितु यहाँ भित्तिचित्र, रूमाल, वस्त्र, आभूषण आदिपर भी राधा-माधवके चित्र अंकित किये जाते रहे हैं।

अठारहवीं सदीके आरम्भमें चित्रकार पण्डित सेऊ तथा इनके पुत्र नैनसुख और मानककी चित्रशैली विश्व-विख्यात हुई है। इनके चित्र जर्मनी, इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि देशोंके संग्रहालयोंमें प्रदर्शित हैं। यहाँकी काँगड़ा-चित्रशैलीके विविध चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली, कोलकाता, जम्मू, शिमला आदिमें अनुसन्धाताओं और कलाविज्ञोंके लिये स्रोतरूपमें विद्यमान हैं। हिमाचल प्रदेशके राज्य गुलेर तथा सुजानपुरमें महाराजा संसारचन्दके आश्रयमें अनेक चित्रकारोंने रंगभरी तूलिकाओंसे मन्दिरस्तम्भ, राजप्रासाद, यज्ञवेदियों तथा ग्रन्थोंके पन्नोंपर राधा-माधवपरक चित्रकलाकी अमिट छाप छोड़ी है।

श्रीराधा-माधवका सजीव माना जानेवाला लीला-चित्रण अधिकांशमें श्रीमद्भागवतमहापुराण, गीतगोविन्दकाव्य तथा बिहारीसतसई आदिपर आधारित है। विषय-प्रधानतामें लालसा, उद्वेग, चिन्ता, विलास, हाव-भाव, ऋतुदर्शन, नवरस तथा विशेषत: वीर और शृंगारके रोचक प्रसंग चित्रित हैं। इस पारम्परिक चित्रकलामें अनेक नवोदित चित्रकारोंने भी ख्याति प्राप्त की है और वे सतत इस कलाका अभिवर्धन कर रहे हैं। इस कलाके प्रमुख चित्रकारोंके नाम हैं—बुझरू, शालग्राम, कृष्णकुमार, रोशनलाल, नारायण, कवि हरनामदास आदि। इनके पास सुरक्षित कृतियाँ इस समय राष्ट्रीय संग्रहालयकी धरोहर बन गयी हैं। अब भी पर्व-उत्सव-विवाह-जन्मदिन आदिकी शुभ वेलामें दीवार, तोरणद्वार, स्तम्भ, तुलसी-मण्डप आदिमें श्रीगणेश, सूर्य-चन्द्रके साथ-साथ राधा-माधव-लीलाका भी अंकन इस परम्परागत चित्र-शैलीमें होता है।

श्रीराधा-माधव-यात्रा-प्रसंग

धार्मिक यात्राओंमें श्रीराधा-माधवके स्तुतिपरक लोकगीतोंसे पर्वतधरा गूँज उठती है। उदाहरणस्वरूप भाद्रपदमासमें श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीसे लेकर श्रीराधाष्टमी-पर्यन्त चम्बा जनपदमें श्रीमणिमहेशकी यात्रा सम्पन्न होती है। जिसमें दुर्गम हिमखण्ड पार करके दूर-दूरसे आये श्रद्धालु श्रीमणिमहेशके पवित्र हिमशीतल सरोवरमें स्नानकर पुण्यार्जन करते हैं।

इस अवसरपर यह हिमाचली प्रार्थना गायी जाती है—

राधी राधा माधव स्नेही
जागत जुआण सियाण देही
काज सुआरे सभदे अदेही
दुखड़ा होयां न कदेही
नाम सिमरन करो अजेही—

नर कौन? तौन, जौन 'राधे-राधे' नाम रटै

(भक्त श्रीहठीजी)

कोऊ उमाराज, रमाराज, जमाराज कोऊ,
कोऊ रामचंद सुखकंद नाम नाधे मैं।
कोऊ ध्यावै गनपति, फनपति, सुरपति,
कोऊ देव ध्याय फल लेत पल आधे मैं॥
'हठी'को अधार निराधार की अधार तुही,
जप तप जोग जग्य कछुवै न साधे मैं।
कटै कोटि बाधे मुनि धरत समाधे ऐसे,
राधे पद रावरे सदा ही अवराधे मैं॥

गिरि कीजै गोधन, मयूर नव कुंजन को,
पसु कीजै महाराज नंद के बगर कौ।
नर कौन? तौन, जौन 'राधे-राधे' नाम रटै,
तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर कौ॥
इतने पै जोई कछु कीजिए कुँवर कान्ह,
राखिए न आन फेर 'हठी' के झगर कौ।
गोपी पद पंकज पराग कीजै महाराज!
तृन कीजै रावरेई गोकुलनगर कौ॥

मिथिलामें श्रीराधाकृष्ण-भक्ति

(प्रो० श्रीजयमन्तजी मिश्र, एम० ए०, व्याकरण-साहित्याचार्य)

मिथिलाका प्राचीन इतिहास इस बातका साक्षी है कि निमिसे लेकर बहुलाश्वपर्यन्त जनकवंशमें जितने महाराज हुए हैं, वे सभी गृहस्थ होकर भी आत्मविद्याविशारद एवं योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रसादसे सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे सर्वथा विनिर्मुक्त हुए हैं। (श्रीमद्भा० ९।१३।१—२७) जनक-याज्ञवल्क्यके संवादरूपमें जो ब्रह्मविद्याका सूक्ष्म विवेचन मिथिलामें हुआ है, वह उपनिषद्के मर्मज्ञोंसे छिपा नहीं है। तभी तो महर्षि शुक-जैसे ब्रह्मज्ञानी भी आत्मज्ञानोपदेशके लिये जनकके यहाँ आते थे। जनककी आत्मविद्याकी देदीप्यमान ज्योति चारों ओर इस तरह फैल गयी थी कि ब्रह्मविद्याके जिज्ञासु चारों ओरसे उनके पास दौड़े आते थे, इससे यह स्पष्ट है कि आरम्भमें मिथिला ब्रह्मविद्याकी केन्द्र-भूमि रही है।

श्रीकृष्ण-भक्तिकी उत्पत्ति आत्मज्ञानीके सरस मानसमें ही हुई है, यह निर्विवाद है। शंकराचार्य-जैसे ब्रह्मज्ञानी भी **'सच्चिन्मयो नीलिमा'** के लिये ही अन्तमें बेचैन दीख पड़ते हैं। इसलिये ब्रह्मज्ञानके लिये अत्यन्त उर्वरा सिद्ध होनेवाली मिथिलाकी भूमिमें श्रीकृष्णभक्तिका जन्म स्वाभाविक ही है।

मिथिलामें जो भक्तोंकी प्राचीन परम्परा है, उसपर दृष्टिपात करनेसे यह स्पष्ट होता है कि वहाँ श्रीकृष्णभक्तिकी धारा अविच्छिन्न रूपसे प्रवाहित होती चली आ रही है। श्रीराधा-कृष्णके परम उपासक भक्त-शिरोमणि महाकवि विद्यापतिके सम्प्रदायमें अनेक संत-महात्मा मिथिलामें प्रादुर्भूत हुए हैं। यहाँ विद्यापतिकी मान्यताके सम्बन्धमें कुछ निवेदन करना अप्रासंगिक नहीं होगा। कुछ लोगोंकी अब भी यह भ्रान्त धारणा है कि 'विद्यापति शैव थे न कि वैष्णव। विद्यापति-पदावलीमें वर्णित पद प्राकृत नायक-नायिकाकी ओर ही संकेत करते हैं, न कि अप्राकृत श्रीराधा-कृष्ण-युगलकी ओर।' उन महानुभावोंसे मेरा सविनय निवेदन है कि वे कृपया पदावलीके उपक्रम, उपसंहार एवं अभ्यास आदिवाले पदोंपर ध्यान दें और पदावलीके तात्पर्यका निर्णय करें। पदावलीका उपक्रम निम्नलिखित पदसे होता है—

नन्दक नन्दन कदमक तरु तर धिरे धिरे मुरलि बजाव।
..बन्दह नन्द किसोरा॥

इसका उपसंहार होता है अधोलिखित पदोंमें—

'माधव हम परिनाम निरासा।
तुहुँ जगतारन दीन दयामय अतय तोहर बिसवासा।
..
आदि अनादि नाथ कहाओसि अब तारभ भार तोहारा॥'
'माधव बहुत मिनति करि तोय।
दय तुलसी तिल देह समर्पिनु दय जनि छाढ़बि मोय॥'

पदावलीके लगभग २१९ पदोंमें १२१ पद तो परम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण तथा परमाह्लादिनी परमा रमा श्रीराधासे सम्बद्ध हैं। अवशिष्ट पदोंको भी तन्मध्यपतित-न्यायसे ही श्रीराधा-कृष्ण-युगलपरत्वेन ही लेना चाहिये। जब उपक्रमोपसंहार आदिसे श्रीकृष्ण-युगल ही विद्यापतिके आराध्य होते हैं, तब उनको 'शैव' कहना कहाँतक उचित है—यह विज्ञ समालोचक ही समझ सकते हैं। वे तो श्रीकृष्णके मधुरभावके सच्चे उपासक थे। और इस भावके उपासकके गुरु तो भगवान् शंकर ही होते हैं। अतः विद्यापतिकी गुरुभक्ति भी स्वाभाविक ही है। बात सच्ची तो यह है कि सच्चे भक्तके लिये सब बराबर ही होते हैं। इसीलिये भक्त-शिरोमणि विद्यापतिने भी कहा है—

भल हरि भल हर भल तुअ कला।

इसी परम्परामें गोविन्द-गीतावलीके रचयिता परम वैष्णव गोविन्ददास झा आते हैं। इनका भी विद्यापतिके सम्बन्धमें यही सिद्धान्त है। इनके अतिरिक्त रोहिणीदत्त गोस्वामी, लक्ष्मीनाथ गोस्वामी, कमलादत्त गोस्वामी आदिके पद तो श्रीकृष्णमय ही हैं।

मिथिलामें प्रचलित तिरहुत, मलार, बटगवनी, चौमासा, छमासा, बारहमासा, उदासी और गीतोंपर विचार करनेसे तो श्रीकृष्ण-भक्तिकी प्रधानता व्यक्त हो जाती है। इन गीतोंमें श्रीराधा-कृष्णका प्रेममय वर्णन है, जिसका आज भी मिथिलाके प्रत्येक घरमें शुभ अवसरोंपर मैथिल-ललनाओंके सुमधुर कण्ठोंसे गान होता है। इति शम्।

बंगालके कृष्णभक्त मुसलिम कवि

(डॉ० श्रीरामशंकरजी द्विवेदी)

चैतन्यदेवके प्रभावसे भक्ति और हरिकीर्तनका प्रचार तो हुआ ही, देशका मानसिक और सांस्कृतिक उत्थान भी हुआ। उन्होंने बिना किसी भेद-भावके सभीको हरिनामका उपदेश दिया। चैतन्यदेव चाहते थे कि जनसामान्यको ईश्वराभिमुख करके उसके जीवन-मननका स्तर बढ़ा दिया जाय। समाज और संसारमें जो दुर्गतिशील हैं, बिना दोषके समाज-संस्कृतिसे बहिष्कृत हैं, वे भी कृष्णके जीव हैं, उनकी देह भी कृष्णका मन्दिर है। उनमें यह विश्वास और बोध जगाकर उन्हें श्रेष्ठ मनुष्योंकी महफिलमें समान आसनका अधिकारी बनाया जाय।

उनके व्यक्तित्व और आध्यात्मिकताने सभी लोगोंके चित्तको द्रवीभूत कर दिया था। उनके प्रेम और उनकी कृष्णभक्तिका प्रभाव हिन्दू-मुसलमान सबपर समानरूपसे पड़ा था। इसका प्रमाण है मुसलिम वैष्णव कवियोंद्वारा रचित बांग्ला वैष्णव पदावली। इस काव्यको रचनेवाले मुसलिम कवि एक-दो नहीं थे, इनकी संख्या तो सौ से भी अधिक थी।

बंगालके मुसलमान कवियोंमें किन्हींने ब्रजलीलामाधुर्यसे मुग्ध होकर अथवा किन्हींने पूरी तरह वैष्णव-भावसे अनुप्राणित होकर पदावली-साहित्यकी रचना की है। इनके द्वारा रचित पदसाहित्य ऐकान्तिकरूपसे ही खाँटी वैष्णव कविता है। अगर इन पदोंका इनके नामको छोड़कर पाठ किया जाय, तो वे किसी निष्ठावान् वैष्णव भक्तद्वारा रचित पद प्रतीत होंगे। इनमें शुरूसे आखिरतक राधाकृष्णकी लीला ही वर्णित की गयी है।

इन मुसलिम कवियोंको पद-रचनाकी प्रेरणा चैतन्यदेवद्वारा प्रचारित प्रेमधर्मसे मिली थी। महाप्रभु चैतन्यके युगमें जब प्रेमकी बाढ़से पूरा बंगाल प्लावित हो गया था, तब मुसलमानोंके घर-आँगनमें भी वह प्रवेश कर गया था। उस समय केवल बंगालमें ही नहीं, सुदूर अराकानके मगदेशमें भी चैतन्यदेवकी खोल-करताल बज उठी थी। वैष्णव भक्तोंकी पदावलीके सुरने, जहाँ भी बंगभाषा-भाषी थे, वहाँ ही उनके कानमें झंकृत होकर उन्हें आकृष्ट कर लिया था।

मुसलिम कवियोंद्वारा रचित वैष्णव पदावली तीन प्रकारकी है—विशुद्ध कृष्णभावापन्न, चैतन्यमहाप्रभुके प्रति निवेदित और सूफीप्रेमभावापन्न। सूफीप्रेमसे भक्तिकी जो पदावली रची गयी है, उसमें भी राधाकृष्णके रूपकका सहारा लिया गया है, जिससे कृष्णप्रेमका प्रभाव विदित होता है। कुछ मुसलिम कवियोंने तो सीधे-सीधे, अकपटभावसे कृष्णके चरणोंमें शरणागति चाही है। जैसे—

सैयद अकबर अली—ये श्रीहट्ट जिलेके गुधराइल परगनाके महमूदपुर गाँवके निवासी थे। इनके द्वारा रचित निम्न पदमें राधाकी मर्मवेदना फूटी पड़ रही है। बिना एकात्मताके यह भावप्रस्फुटन सम्भव नहीं है—

आमार प्राण कान्दे श्याम बन्धुयार लागिया।
नूतन पिरीते छेल दिल लगाइया।
सामकालार पिरीते मरे, रइते न दिल घरे।
ओ आमार प्रेम जरे अंग जाय जे ज्वलिया॥
छावाल अकबर अली वले, पिरीते मोर अंग ज्वले।
ओ वन्दे प्राणे माइल स्वप्ने जे देखा दिया।

अलाउल्—मध्ययुगके बांग्लासाहित्यमें जिन मुसलिम कवियोंने काव्य और पदरचना करके ख्याति प्राप्त की थी, उनमें कवि अलाउल्ने विशेष स्थान प्राप्त किया है। ये फरीदपुर जिलेके फतेहाबाद परगनाके जलालपुर नामक गाँवके रहनेवाले थे। इनका एक वैशिष्ट्य हिन्दीकवि मलिकमुहम्मद जायसीके पद-मावतका बांग्ला अनुवाद भी है। यह इनका स्वतन्त्र अनुवाद है। इसमें इन्होंने हिन्दू पौराणिक गाथाओंके अतिरिक्त रामायण, महाभारत और वैष्णव साहित्यसे कई नूतन उपादान लेकर संयोजित कर दिये हैं। अलाउल् जयदेव और विद्यापतिसे प्रभावित थे। इन्हें संस्कृतके साथ हिन्दीका भी अच्छा ज्ञान था। एक अभिसारका पद द्रष्टव्य है—

ननदिनी रस-विनोदिनी। ओ तोर बोल सहिताम नारि॥
घरेर घरणी जगत्-मोहिनी प्रत्यूषे यमुनाए गेलि।
वेला अवशेष निशि परिवेश किसे विलम्ब करिली?

राधा उत्तर देती है—

प्रत्यूषे वेहाने कमल देखिया, पुष्प तूलिवारे गेलूम।
वेला उदने कमल मुदने, भ्रमर दंशने मैलूम॥
आरति मागने अलाउल भणे, जगत्-मोहिनी रामा॥

उमरअली—यह भी श्रीहट्टके कवि थे। इनके एक पदसे भगवत्प्रेमकी व्याकुलता व्यञ्जित हो रही है—

आमि तोमार लागि होइलाम घरेर बार।
प्रेम सायरे धाइलाम गो पाड़ि, ना जानि साँतार॥
यदि डूबे आमार तरी किवा आमि डूबिया मरि गो।
एगो रइबे कलंक खूटा नामेते तोमार॥
करछि मेला वृन्दावन, पाइबार आशा दरशन गो।
एगो देखाइया गोरांग रूप वाञ्छा पूराइओ आमार।
के याय गया काशी, केह पाय घरे वसि गो।
एगो आमार भाग्ये ना होल प्रेमेर बेहार॥
उम्मर पागले कय सुनछी तुमि दयामय गो।
एगो दया तरि शीघ्र करि एखोन मोरे कर पार॥
आमि तोमार लागि होइलाम घरेर बार॥

कबीर—सन्त कबीरके अलावा ये एक दूसरे भक्त कवि हुए हैं। इन्होंने बांग्लामें वैष्णव पदावलीकी रचना की है। इनका परिचय अज्ञात है। रास-लीलाका इनका एक पद अत्यन्त प्रसिद्ध है—

बरज किशोरी फागु खेलत रंगे।
चूया चंदन अबीर गुलाब
देयत श्यामेर अंगे॥
फागू हाते करि फिरत श्रीहरि
फिरि फिरि बोलत राई।
ललिता एका सखी फागु हाते करि
देयत कानू नयान।
वृखभानु किशोरी दुहूँ बाहु धरि
मारत श्याम बयान॥

एक और कवि हुए हैं, जिनका नाम है कबीर शेख। इनका भी परिचय अज्ञात है। ये सुलतान नुसरत शाहके समकालीन थे। इन्होंने श्रीराधाका रूपवर्णन किया है—

एके अपरूप रूपे रमणी धनि धनि।
चलिते पेखल गजराज गमनी धनि धनि॥

नशीर मामूद—इनका एक पद वैष्णवदासद्वारा संकलित 'पदकल्पतरु' में मिलता है। इनका परिचय भी अज्ञात है। इनका जो पद मिला है, वह गोचारणलीलाका है। पद भाव-रससे पूर्ण है। श्रीकृष्ण और बलराम मुरली बजाते हुए गायोंके साथ खेल रहे हैं। श्रीदाम, सुदाम आदि सखागण उनके साथ हैं। यमुनातटपर धवली, साँवली आदि गायोंको पुकारते-पुकारते श्रीकृष्ण चले जा रहे हैं और वंशी बजा रहे हैं—

धेनु संगे गोठ रंगे
खेलत राम सुन्दर श्याम।
पाँचनि काचनि वेत्र वेणु
मुरली आलापि गान री।
प्रियदाम सुदाम श्रीदाम मेलि,
तरणि-तनया-तीरे केलि;
चारु चन्द्र गुंजा हार
वदने मदन भाणरी॥
आगम-निगम-वेद सार
लीला जे करत गोठ बिहार
नशीर मामूद करत आश
चरणे शरण दानरी।

लाल मामूद—यह मैंमनसिंह जिलेके एक गाँवके रहनेवाले थे। चैतन्य-लीलाके ग्रन्थोंका पाठ करके ये वैष्णवधर्मके प्रति आकर्षित हुए। ये अपनी कुटियाके निकट नदीतटपर एक वृक्षके पास तुलसीचौरा बनाकर वहीं पूजा-अर्चना किया करते थे। इसी तुलसीचौराके पास बैठकर प्रतिदिन शाम-सबेरे खोल-करताल लेकर कीर्तन किया करते थे। लाल मामूद (महमूद)-का एक पद मिला है, जिसमें नाम-माहात्म्यके साथ उदार आध्यात्मिकता—दोनोंकी उपलब्धि होती है—

प्रभो विश्वमूलाधार।
अनन्त नाम धर तुमि तोमार होय अनन्त आकार।

केह तोमार बोले काली केह बोले वनमाली।
तुमि दया करे घूचाओ नाथ मनेर अन्धकार।
हिन्दू किम्बा मुसलमान तोमार पक्षे सबई समान।
आपन सन्तान जातिर कि विचार॥
भक्त सकल जातिर श्रेष्ठ चण्डाल कि चामार।
जन्म निया मुसलमाने वंचित होव श्रीचरणे
आमि मने भावि ना एकबार।
(एवार) लाल मामूदे हरेकृष्ण नाम करेछे सार॥

एक और मुसलिम वैष्णव कवि सैयद मुर्तजाके नामसे २८ पद प्राप्त हुए हैं। ये मुर्शिदाबादके निवासी थे। इनका आत्मनिवेदनका निम्न पद द्रष्टव्य है—

श्याम बन्धु आमार परानं तुमि।
कोन शुभ दिने देखा तोमा सने
पाशरिते नारि आमि॥
सैयद मुर्तजा भणे कानुर चरणे
निवेदन शुन हरि।

इनके अन्य पदोंमें श्रीकृष्णका रूप-वर्णन, मान, भाव-मिलन आदि मिलता है। वैष्णव पदावलीका मुख्य रस श्रीकृष्णका लीला-रस है। इस लीलामें वंशीकी धुनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। मुसलिम कवियोंने भी वंशीपर कई पदोंकी रचना की है—

बनमाली श्याम तोमार मुरली जग-प्राण॥
सुनि मुरलीर ध्वनि भ्रम याण देव मुनि।
त्रिभुवन होए जर जर।
जाति धर्म कुल नीति तेजि बन्धु सब पति
नित्य सुने मुरलीर गीति।
गृहवासे किवा साध वंशी मोर प्राणनाथ
गुरु पदे अली राजा कय॥

चाँद काजीने भी लिखा है—

चाँद काजी वले वंशी सूने झूरे मरि।
जीमू ना जीमू ना आमि ना देखिले हरि॥

रहीमुद्दीन नामक एक कविका कहना है—

कौन नाम जपे गो श्याम बन्धेर वांशी
जात की गो प्राण-सजनी।
वांशीर नामे जादूर फाँसी आमार निल गो पराणी।

एक अन्य वैष्णव कवि सर्फतुल्लाका कहना है—

ओ मन! देखरे, सतत मुरली फूँके के।
नदिया किनारे कदम्ब शिसड़े
शुन मुरलीर स्वरे।
हाराई ए ज्ञान छटफट करे प्राण
रहिते ना पारि घरे।

जिस विशेषताके कारण वैष्णव पदावलीका महत्त्व है, वे सारे लक्षण मुसलिम कवियोंद्वारा रचित वैष्णव पदावलीमें मिलते हैं। वही राधा-कृष्णका प्रेम, वही गोचारण-लीला, वही मुरलीधुन, वही आत्मनिवेदन, वही दैन्यभाव, वही नामकीर्तनके प्रति निष्ठा, वही समर्पण; ये सब भाव उनमें विद्यमान होनेके कारण ही 'पदकल्पतरु' में मुसलिम कवियोंके पदोंको अबाध रूपसे संकलित किया गया है।

यहाँ यह विचारणीय है कि चैतन्यमहाप्रभुका लक्ष्य जन-जनको प्रेम और नाम-संकीर्तनकी दीक्षा देना था। उनका उद्देश्य कोई औपचारिक, मिशनरियों-जैसा प्रचार-कार्य नहीं था, फिर भी राधाकृष्णप्रेमकी बाढ़ और महाप्रभुके व्यक्तित्वने मुसलिम कवियोंको भी प्रभावित किया और उन्हें भी भक्तिकी एक शाखा मधुराभक्तिमें दीक्षित कर दिया। इसका उद्देश्य एकमात्र वैष्णवभक्ति था।

इन मुसलिम कवियोंद्वारा रचित वैष्णव पदावलीका एक वैशिष्ट्य इस साहित्यकी भाषा है, जो बांग्ला और ब्रजबुलि (ब्रजबोली) है। ब्रजबुलिमें रचना करनेके कारण इनके पदोंमें अपने-आप राधाकृष्णकी प्रेमलीलाका शृंगारिक और रहस्यवादी भाव प्रस्फुटित हो गया। कविके रूपमें इनमेंसे कई मुसलिम कवियोंको श्रेष्ठ रचनाकारके रूपमें स्वीकार किया गया है।

यह आश्चर्यकी बात है कि बांग्लाकी वैष्णव पदावलीने किस प्रकार एकेश्वरवादी मुसलिमसमुदायके एक बड़े वर्गको अपने प्रेमपाशमें निबद्धकर हिन्दूधर्मकी उदारता और उसके मंगलकारी रूपको प्रतिष्ठित किया।

कवीन्द्र रवीन्द्रकी रचनाओंमें श्रीराधा-कृष्ण-प्रसंग

(सुश्री जयन्तीजी भट्टाचार्य, एम० ए०)

कवीन्द्र रवीन्द्र और उनकी रचनाओंका परिचय देना अनावश्यक है। वे तो विश्व-विश्रुत हैं ही; यहाँ उनके द्वारा रचित श्रीकृष्णविषयक कविता और गीतोंकी चर्चा की जायगी। यद्यपि ये सभी धर्मोंके प्रति सहिष्णु थे, परंतु यहाँ श्रीकृष्ण-विषयक कविता ही आलोचनीय है।

'क्षणिक' काव्यके अन्तर्गत 'जन्मान्तर' नामक कवितामें कवीन्द्रका उद्‌गार देखनेयोग्य है—

आमि छेड़ेइ दिते राजि सुसभ्यतार आलोक,
आमि चाइना होते नववङ्गे नवयुगेर चालक।
नाइवा गेलाम विलायत नाइवा पेलाम राजार खेताब,
पर जन्मे होते पारि येन व्रजेर राखाल बालक॥

'मैं सुसभ्यताका आलोक छोड़ सकता हूँ, मैं नये युगका नेता अथवा कर्णधार भी बनना नहीं चाहता; मुझे विलायत भी नहीं जाना है और न मैं राजाकी उपाधिका ही अभिलाषी हूँ, मैं तो सिर्फ इतना ही चाहता हूँ कि अगले जन्ममें व्रजधाममें गोपबालक बनूँ।'

कविने जिस युगमें जन्म ग्रहण किया था, वह जमाना अँगरेजी-शिक्षाका था। लोग विलायत जाना और स्वर्गमें जाना बराबर समझते थे। अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा आचार-व्यवहारका ही बोलबाला था। उस समयकी तथाकथित सभी बातोंको कविने ठुकरा दिया है और एकमात्र यही अभिलाषा व्यक्त की है कि 'मैं व्रजधाममें राखाल (गोप)-बालक बनूँ।'

बचपनसे कवि वृन्दावनविहारीकी लीलामें रुचि रखते थे। उसकी झलक कविद्वारा रचित 'भानुसिंह ठाकुरकी पदावली' है, जो कि कविने छद्मनामसे लिखी थी। वह भी बहुत प्रसिद्ध तथा हृदयग्राही है। यद्यपि कविने इन पदोंमें विद्यापति तथा चण्डीदासकी भाषाका अनुकरण किया है, फिर भी 'रवीन्द्र' की विशेषता अलग ही है। श्यामकी वंशी बज उठी और सखियाँ एक-दूसरेको बुलाने लगीं :—

गहन कुसुम माझे मृदुल मधुर वंशी बाजे,
बिसरी त्रास लोक-लाज सजनी आओ आओ लो।

सखियोंसहित श्रीराधाको बुलानेके लिये श्रीकृष्णने वंशी बजायी थी। सखियाँ आ गयीं। श्रीकृष्ण भी कुंजमें पधारे हैं। तब सखियाँ कह रही हैं—

सजनी सजनी राधिका लो देख अवहुँ चाहिया।
मृदुल गमन श्याम आवैं मृदुल गान गाहिया॥

वे और सखियोंको भी श्रीगोविन्द-दर्शनके लिये बुलाने लगीं :—

आओ आओ सजनीवृन्द देख सखी श्रीगोविन्द।
श्यामको पदारविन्द 'भानुसिंह' वन्दिध्वे॥

× × ×

आज बहुत दुर्योग है। प्रकृतिने प्रचण्ड रूप धारण किया है। श्रीराधा सखियोंसे कहती हैं—

श्रावन गगने थोर घन घटा निशिथ यामिनी रे;
कुंज पथे सखी कैसे जाओव अबला कामिनी रे।
कह रे सजनी ए दुर्योगे कुंजे निरदय कान,
दारुण वांशि काहे बजावत सकरुण राधा नाम॥

फिर भी श्रीराधा जानेकी तैयारियाँ करने लगीं और चम्पकमालासे बोलीं—'सखी मेरा श्रृंगार कर दे।'

मोति महारे वेश बना दे सिंथि लगा दे भाले।
उरहि विलुण्ठित लोल चिकुर मम बाँध चम्पकमाले॥

साज-श्रृंगार हो गया। सब जानेको उद्यत हुईं। इस अवसरपर कवीन्द्र क्या कहते हैं। देखिये—

गहन वनमें न जाओ बाला नवल किशोर के पास।
गरजे घन घन बहु डर पाओव कहे 'भानु' तव दास॥

मिलन हुआ। अब विरहका वर्णन देखिये। एक सखी आकर अचानक कहने लगी—

सुन लो सुन लो बालिका राख कुसुम मालिका।
कुंजे कुंजे केलु सखी श्यामचन्द नाहिरे॥

× × ×

जब सखियोंको पता चला कि श्यामचन्द्र कुंजमें नहीं हैं तो उन लोगोंका क्या हाल हुआ? कवीन्द्रके शब्दोंमें—

शशी सनाथ यामिनी विरह विधुर कामिनी,

कुसुम हार वाहिल भार हृदयदार दाहिछे।
अधर उठइ काँपिया सखी करे कर यापिया,
कुंज भवने पापिया काहे गीत गाहिछे?
मृदु समीर संचले हरयि शिथिल अंचले,
बाल हृदय चंचले कानन पथ चाहि रे,
कुंज पाने चाहिया अश्रु भारे भरिया,
'भानु' गाहे शून्य कुंज श्यामचन्द नाहि रे·····॥

इस प्रकार सखीगण तथा श्रीराधा श्रीकृष्णविरहमें अत्यन्त कातर हैं, वे कहती हैं—'श्रीकृष्ण तो हमें भूल गये, पर मृत्यु हमें न भूले।' वे मृत्युका सादर आह्वान करती हैं—

मरण रे श्याम तोहारइ नाम चिरविसरल जब निरदय माधव,
तुँ हुँ न भइवि वाम आकुल राधा-रिझ अति जरजर,
झरइ नयन दउ अनुखन झर झर, तुँ हुँ मम माधव, तुँ हुँ मम दोसर,
तुँ हुँ मम ताप घुचाओ मरण रे तु आओ रे आओ॥

वे अकेली ही मरण-अभिसारमें जायँगी। मरण तो उनका प्रियतम है, उससे क्या डर है? 'बाधाओ! मुझे राह दिखाओ।'

एकलि जाओव तुझ अभिसारे, याको पिया तुँ हुँ कि भय ताहारें,
भय बाधा सब अभयमूर्त्ति धरि पंथ दिखायव मोय॥

राधाकी इस विह्वलतापर कविका हृदय उन्हें झिड़कियाँ सुनाकर उन्हें मृत्युके पथपर जानेसे रोकता है—

'भानुसिंह' कहे छिये छिये राधा चंचल हृदय तोहारि।
माधव पहु मम पिय ल मरण से अब तुँ हुँ देख विचारि॥

'भानुसिंहपदावली' कविने अपने बाल्यकालमें लिखी थी। कविरचित 'जीवन-स्मृति' में इन रचनाओंको लिखनेका इतिहास मिलता है। बचपनसे ही 'वैष्णवपदावली' कविको बहुत अच्छी लगती थी। उसका प्रभाव इन पदावलियोंमें प्रत्यक्ष लक्षित होता है। बंगालमें इन पदावलियोंका बहुल प्रचार है। नृत्यके साथ-साथ इन्हें गाया जाता है। यह व्रजबोलीमिश्रित भाषामें होनेके कारण सभीके लिये बोधगम्य भी है। पदावली सरस तथा हृदयग्राही है।

'जयति श्रीराधिके!'

जयति श्रीराधिके! सकल सुखसाधिके, तरुनि-मनि नित्त-नव-तनु-किसोरी।
कृष्ण-तनु-लीन घन-रूपकी चातकी, कृष्ण-मुख-हिमकिरनकी चकोरी।
कृष्ण-दृग-भृंग-बिस्राम-हित पद्मिनी, कृष्ण-दृग-मृगज-बंधन-सुडोरी॥
कृष्ण-अनुराग-मकरंदकी मधुकरी, कृष्ण-गुन-गान-रस-सिंधु-बोरी।
और आश्चर्य कहुँ मैं न देख्यौ सुन्यौ, चतुर चौसठ कला तदपि भोरी॥
बिमुख पर-चित्ततें, चित्त जाको सदा, करत निज नाहकी चित्त-चोरी।
प्रकृति यह 'गदाधर' कहत कैसे बनै, अमित महिमा इतै बुद्धि थोरी॥

—श्रीगदाधरभट्ट

हे राधारानी! आपकी जय हो ! आप समस्त सुखोंकी साधिका, युवतीशिरोमणि एवं नित्य नूतन किशोरवयस्का हैं। श्रीकृष्णरूपी नीलघनके रूपसौन्दर्यामृतका नित्य पान करनेवाली आप चातकी हैं तथा श्रीकृष्णके मुखचन्द्रकी आप चकोरी हैं। श्रीकृष्णके भ्रमरवत् नेत्रोंके विश्रामके लिये आप कमलिनी और उनके मृगवत् चपल नेत्रोंको बाँधनेके लिये सुदृढ़ डोरी हैं। श्रीकृष्णके अनुरागरूप मकरन्दके पानहेतु आप भ्रमरी हैं तथा श्रीकृष्णगुण-गानरूप रस-सागरमें निरंतर निमग्न रहती हैं। ऐसा आश्चर्य न तो कभी देखा गया, न सुना गया कि चौंसठ कलाओंमें निपुण होते हुए भी आप प्रकृतिकी अत्यन्त भोली-भाली हैं। पर-चित्तसे सदा विमुख रहकर अपने स्वामी श्रीश्यामसुन्दरके चित्तको प्रतिपल चुरानेमें आप अत्यन्त प्रवीण हैं—सदा इसी कार्यमें संलग्न रहती हैं। श्रीगदाधरजी कहते हैं—हे श्रीराधास्वामिनी! मैं प्राकृत वाणीसे आपकी अप्राकृत महिमाके वर्णनमें कैसे समर्थ हो सकता हूँ। आपके गुण अनन्त-अपार हैं तथा मेरी लौकिक बुद्धि सीमित है।

श्रीश्रीमाँ आनन्दमयी और श्रीराधामाधव

[राधापुकार-छलियाका प्रकाश]

(ब्रह्मचारिणी सुश्रीगुणीताजी, विद्यावारिधि)

बात १९५२ की है। हिमाचलप्रदेशके अन्तर्गत बघाटराज्य अवस्थित है। बघाटनरेश श्रीमन्त राजा दुर्गासिंहजी श्रीश्रीमाँ आनन्दमयीके अनन्य भक्त थे। श्रीश्रीमाँ महाराज दुर्गासिंहजीको 'योगीराज' एवं 'योगी भाई' के नामसे पुकारा करती थीं।

एक नीतिपरायण, प्रजावत्सल, सदाचारसम्पन्न, धार्मिक विचारधारासे ओत-प्रोत, सच्चरित्रवान् राजाके रूपमें उनकी छवि प्रजाके दिलमें बसी हुई थी। महारानी श्रीमती शशिप्रभादेवी पूर्णरूपेण पतिकी अनुगामिनी थीं। श्रीश्रीमाँके युगल चरणकमलोंमें राजदम्पतीका अत्यन्त अनुराग था।

एक दिन रानीसाहिबा अपने योगीतुल्य पतिदेवसे अपनी मनोभिलाषा व्यक्त करती हुई बोलीं—'महाराज! क्यों न शिमलाके इस मनोरम निर्जन प्रदेशमें पर्वतीय क्षेत्रके मनोहर प्राकृतिक परिसरमें श्रीश्रीमाँके वासोपयोगी सर्वसुविधासम्पन्न एक भव्य कुटीरका निर्माणकर श्रीश्रीमाँको पधारनेके लिये सादर आमन्त्रित किया जाय?'

सहधर्मिणीका यह प्रस्ताव तो महाराजके मनोनुकूल ही था, अत: शीघ्र ही उक्त प्रस्तावपर वे सहमत हो गये।

इधर विधाताको कुछ और ही मंजूर था। महारानी शशिप्रभादेवी सामान्य शारीरिक अस्वस्थताके कारण स्वर्ग सिधार गयी।

राजाने अवश्यम्भावीको स्वीकार करते हुए महारानीकी अधूरी अभिलाषाको साकाररूप प्रदान करवाया। आगेका प्रसंग श्रीश्रीमाँकी नित्यसेवासंगिनी आदरणीया गुरुप्रिया दीदीने सोलनकी 'राधा-पुकार' की घटनाको अपनी दैनन्दिनीमें जिस प्रकार लिपिबद्ध किया है, उसी प्रकार यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

सोलनके राजा श्रीयुत दुर्गासिंहने शिमलामें एक नया मकान बनवाया था। माँको उन्होंने आदरसहित उसी मकानमें ठहराया। एक दिन सुबह ७ अथवा ८ बजेका समय था, माँ अर्धशायित-अवस्थामें थीं। पासके कमरेसे मुझे कुछ गानेकी ध्वनि सुनायी पड़ी, मैं झट वहाँ पहुँची, देखा माँ अपने भावमें स्थित हैं। माँ न जाने किस अपूर्व भाव तथा अवर्णनीय मधुर स्वरसे उक्त पदोंको गा रही थीं—

आओ मेरे सलोना छलिया रे! वनमाली रे।
आओ मेरे सलोना छलिया रे! वनवारी रे॥

मैं उस हृदयस्पर्शी सुरको सुनते-सुनते रोमांचित एवं मन्त्रमुग्ध हो गयी। आँखोंमें आँसू आ गये। सुर और भावके कारण वह स्थान एक अलौकिकतासे व्याप्त था, जिसका वर्णन शब्दोंसे सम्भव नहीं। कुछ देरके बाद माँने संकेतसे आश्रमके गायक ब्रह्मचारी विभु (ब्रह्मानन्द)-को बुलवाया। माँ उस समय बात नहीं कर रही थीं, नेत्र अर्धनिमीलित थे, श्रीमान् विभुके आनेपर माँने उसे सुरको पकड़ रखनेके लिये संकेत किया, साथ ही यह भी समझा दिया कि इसी समय सुरको पकड़ न रखनेसे फिर पकड़ा नहीं जा सकेगा। माने कि यह सुर किसीका विशेष प्रकाश है। शायद वह चला जाय, इसीलिये मानों उसको आदर और आग्रहसे ग्रहण करनेके लिये संकेत किया। विभु बहुत आग्रहसे उस दैवी सुरको पकड़नेकी चेष्टा करने लगा और सुर एवं पदोंको विशेष भावसे उसने पकड़ भी लिया। बादमें माँने उसको कहा था—'तुम एकान्तमें बैठकर कभी-कभी उक्त पदोंको गानेकी कोशिश करना।'

फिर ऐसा देखा जाता कि जब कभी वह सत्संग आदिके अवसरपर भक्त-समुदायमें माँकी उपस्थितिमें भी उन पदोंको गाने लगता तो ठीकसे गा नहीं पाता, न जाने कैसा विलक्षण भाव आ जाता। आँखोंमें आँसू आ जाते। गला रुँध जाता, भीतरसे काँपते हुए रुलाई आ जाती।

इस प्रसंगमें एक बार माँने कहा था—'जब पद और ध्वनि (कीर्तन) स्वयं प्रकाशित (स्फुरित) होता है; तब जल जैसे बरफ-सा (स्तम्भित) हो जाता है, वैसे ही इन शब्द, ताल, लय, सुर और भावसे भावित श्रीराधा-विग्रह स्वयं ही साधकके मानसमें आकुल आप्लुत-स्वरूपमें

जाग्रत् हो जाता है।'

उक्त पदके भाव, स्वर तथा व्याकुलताको देखते हुए श्रीश्रीमाँके श्रीमुखसे इसका नाम 'राधापुकार' रखा गया।

× × ×

'राधा-पुकार' के अनन्तर सन् १९६४ में 'आनन्द-छलिया' का प्रकाश होता है।

ग्वालियरकी राजमाता विजयाराजे सिंधियाके मनमें एकबार उनके द्वारा निर्मित मन्दिरमें एक सुन्दर श्रीकृष्ण-मूर्तिकी स्थापनाकी आकांक्षा हुई, इसी दौरान वे श्रीश्रीमाँके वृन्दावनवाले आश्रममें आयीं, वहाँ मन्दिरमें महाप्रभु श्रीगौरांग तथा नित्यानन्दकी मूर्तिका दर्शन करके वह अत्यन्त प्रभावित हुईं। पूछनेपर उनको पता चला कि इन सजीव मूर्तियोंके कारीगर श्रीनिताईचन्द्र पाल हैं। संयोगसे वे वृन्दावनके आश्रममें ही थे। राजमाताने श्रीनिताईचन्द्र पालसे एक अति सुन्दर कृष्णमूर्ति तैयार करनेका आग्रह किया। शिल्पी निताईचन्द्र पालने अपनी पसन्दके अनुसार एक अतीव सुन्दर कृष्णमूर्तिका निर्माणकर यथासमय राजमाताको भेज दिया। साधारणत: श्रीकृष्णके वामपदके ऊपर दाहिना पद रहता है, परंतु इस मूर्तिमें वैसा नहीं बनाया गया था, दाहिना चरण तो स्वाभाविक मुद्रामें था, पर बाँया चरण सीधा था एवं वे अँगूठेसे मानो कुछ कुरेद-सा रहे हैं, श्रीचरणोंकी भंगिमा अत्यन्त मनमोहक थी, साधारणत: कृष्णमूर्तिकी चरणभंगिमासे इस मूर्तिकी चरणभंगिमामें पार्थक्य होनेके कारण महान् आनन्दका अनुभव होनेपर भी राजमाताने इस मूर्तिको अपने मन्दिरमें स्थापित न करते हुए राजमहलमें ही एक कक्षमें रख दिया।

कुछ समयके बाद राजमातापर क्रमशः नाना विपत्तियाँ आने लगीं। राजमाता सोचने लगीं, लगता है कि ठाकुरजी राजमहलसे जानेके लिये ऐसी छलना कर रहे हैं, राजमाताने ठाकुरजीका नाम छलिया रख दिया, छलियाकी प्रेरणासे ही राजमाताके मनमें श्रीश्रीमाँको यह मूर्ति प्रदान करनेकी तीव्र इच्छा हुई, उन्होंने इस विग्रहको एक सुन्दर पेटीमें भली-भाँति रखकर माँके निकट वृन्दावन-आश्रममें भेज दिया। पेटीके पहुँचनेपर माँने कहा—'जिसने मूर्ति भेजी है, वह ही आकर इस पेटीको खोलेगी।'

सन् १९६४ की शारदीया दुर्गापूजा श्रीश्रीमाँकी उपस्थितिमें वृन्दावन-आश्रममें हो रही थी, राजमाता विजयाराजे सिंधिया माँके पास वृन्दावन आयीं। उन्होंने बक्सा खोलकर वह मूर्ति श्रीश्रीमाँको देते हुए कहा—'इस छलियाने तो नाकोंदम कर दिया है। इस छलियाको आपको ही देती हूँ।' श्रीश्रीमाँने ये 'छलिया' नाम पहली बार योगीभाईद्वारा निर्मित शिमलाके मनोरम कुटीरमें दिव्य स्वरसे अभूतपूर्व भावसे दैवी विरहिणीके हृदयकी पुकार 'आओ मेरे सलोना छलिया बनवारी रे,'—इस गीतमें सुना था और आज पतिविरहमें शोकसंतप्त राजमाताके मुखसे सुना। 'छलिया' नाम प्राय: सर्वसाधारणमें सुना नहीं जाता, यह तो अत्यन्त दुलार एवं प्रेमकी पुकार है।

सन् १९९६ की जन्माष्टमीके अवसरपर वृन्दावनवाले आश्रमके नवनिर्मित मन्दिरमें श्रीश्रीमाँके सान्निध्य एवं संत-महापुरुषोंकी उपस्थितिमें आनन्द-स्वरूप आनन्द छलिया आनन्दमयी रासरसेश्वरी श्रीकिशोरीजीके श्रीविग्रहके साथ प्रतिष्ठित हुए।

श्रीधामवृन्दावनमें 'छलिया मंदिर' के नामसे प्रसिद्ध इस मन्दिरमें 'आनन्दछलिया' के दर्शनमात्रसे ही दर्शनार्थियोंकी अन्तरात्मा गुदगुदाने लगती है, काश! छलिया एक बार हमारी गोदमें आ जाय।

राधावश्य माधवको प्रणाम

(महामहोपाध्याय डॉ० कैलाशनाथजी द्विवेदी, पी-एच० डी०, डी० लिट्०)

करीरकुञ्जेषु विहारशालिनौ व्रजाङ्गनाभिः सह रासकेलिषु।
राधावशौ प्रेमवशादचंचलौ व्रजेशपादौ शिरसा नमाम्यहम्॥

करील-कुंजोंमें विहार करनेवाले, व्रजबालाओंके साथ रासलीलामें राधाके वशीभूत, उनके प्रेमसे अचंचल श्रीकृष्ण-चरणोंको मैं मस्तक नवाकर प्रणाम करता हूँ।

गोपांगनाओंके कृपापात्र श्रीउद्धवजी

उद्धवजी साक्षात् देवगुरु बृहस्पतिके शिष्य थे। इनका शरीर श्रीकृष्णके समान ही श्यामवर्णका था और नेत्र कमलके समान सुन्दर थे। ये नीति और तत्त्व-ज्ञानकी मूर्ति थे। मथुरा आनेपर कृष्णने इन्हें अपना अन्तरंग सखा तथा मन्त्री बना लिया। भगवान्ने अपना सन्देश पहुँचाने तथा गोपियोंको सान्त्वना देनेके लिये इनको व्रज भेजा। वस्तुत: भक्तवत्सल प्रभु अपने प्रिय भक्त उद्धवजीको व्रजवासियोंके लोकोत्तर प्रेमका दर्शन कराना चाहते थे। उद्धवके व्रज पहुँचनेपर नन्दबाबाने इनका बड़े स्नेहसे सत्कार किया। एकान्त मिलनेपर गोपियोंने घेरकर इनसे कृष्णका समाचार पूछा। उद्धवने कहा—'व्रजदेवियो! भगवान् श्रीकृष्ण तो सर्वव्यापी हैं। वे तुम्हारे हृदयमें तथा समस्त जड़-चेतनमें व्याप्त हैं। उनसे तुम्हारा वियोग कभी हो नहीं सकता। उनमें भगवद्बुद्धि करके तुम सर्वत्र उनको ही देखो।'

गोपियाँ रो पड़ीं। उनके नेत्र वारिपरिप्लावित हो गये। उन्होंने कहा—'उद्धवजी! आप ठीक कहते हैं। हमें भी सर्वत्र मोर-मुकुटधारी ही दीखते हैं। यमुना-पुलिनमें, वृक्षोंमें, लताओंमें, कुंजोंमें—सर्वत्र वे ही कमललोचन दिखायी पड़ते हैं। उनकी वह श्याममूर्ति हृदयसे एक क्षणको भी हटती नहीं।'

उद्धवजीमें जो तनिक-सा तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिका गर्व था, वह व्रजके इस अलौकिक प्रेमको देखकर गल गया। वे कहने लगे—'मैं तो इन गोपियोंकी चरण-रजकी वन्दना करता हूँ, जिनके द्वारा गायी गयी श्रीहरिकथा तीनों लोकोंको पवित्र करती है। पृथ्वीपर जन्म लेना तो इन गोपियोंका ही सार्थक है; क्योंकि भव-भयभीत मुनिगण भी जिनकी इच्छा करते हैं, उन निखिलात्मा श्रीनन्दनन्दनमें इनका दृढ़ अनुराग है। श्रुति जिनका अबतक अन्वेषण ही करती है, उन्हींको इन लोगोंने स्वजनोंकी आसक्ति एवं लौकिक मर्यादाका मोह छोड़कर प्राप्त कर लिया है। अत: मेरी तो यही लालसा है कि मैं वृन्दावनमें कोई भी लता, तृण आदि हो जाऊँ, जिससे इनकी पदधूलि मुझे मिलती रहे।'

उद्धवजी व्रजके प्रेम-रससे आप्लुत होकर नाचने लगे तथा भावमग्न होकर श्रीकृष्ण-प्रेमरसमें तल्लीन हो गये। यह महाभाव लेकर ही वे लौटे। भगवान्के साथ वे द्वारका गये। द्वारकामें श्यामसुन्दर इन्हें सदा साथ रखते थे और राज्यकार्योंमें इनसे सम्मति लिया करते थे। जब द्वारकामें अपशकुन होने लगे, तब उद्धवजीने पहले भगवान्के स्वधाम पधारनेका अनुमान कर लिया। भगवान्के चरणोंमें इन्होंने प्रार्थना की—'प्रभो! मैं तो आपका दास हूँ। आपका उच्छिष्ट प्रसाद, आपके उतारे वस्त्राभरण ही मैंने सदा उपयोगमें लिये हैं। आप मेरा त्याग न करें। मुझे भी आप अपने साथ ही अपने धाम ले चलें।' भगवान्ने उद्धवजीको आश्वासन देकर तत्त्वज्ञानका उपदेश किया और बदरिकाश्रम जाकर रहनेकी आज्ञा दी।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा था—'उद्धव ही मेरे इस लोकसे चले जानेपर मेरे ज्ञानकी रक्षा करेंगे। वे गुणोंमें मुझसे तनिक भी कम नहीं हैं। अतएव अधिकारियोंको उपदेश करनेके लिये ये यहाँ रहें।'

भगवान्के स्वधाम पधारनेपर उद्धवजी द्वारकासे बदरिकाश्रम चले। मार्गमें विदुरजीसे उनकी भेंट हुई। भगवान्के आज्ञानुसार वे अपने एक स्थूलरूपसे तो बदरिकाश्रम चले गये और दूसरे सूक्ष्मरूपसे व्रजमें गोवर्धनके पास लता-वृक्षोंमें छिपकर निवास करने लगे। महर्षि शाण्डिल्यके उपदेशसे वज्रनाभने जब

गोवर्धनके समीप कीर्तन किया, तब उद्धवजी लता-कुंजोंसे प्रकट हो गये। उन्होंने एक महीनेतक वज्र तथा श्रीकृष्णकी रानियोंको श्रीमद्भागवत सुनाया और अपने साथ वे उन्हें नित्यव्रजभूमिमें ले गये। श्रीभगवान्ने स्वयं भक्तोंकी प्रशंसा करते हुए उद्धवसे कहा था—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥

'उद्धवजी! मुझे आप-जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रिय हैं, उतने ब्रह्माजी, शंकरजी, बलरामजी, लक्ष्मीजी भी प्रिय नहीं हैं। अधिक क्या, मेरा आत्मा भी मुझे उतना प्रिय नहीं है।'

'यदि मानो राधे सुता काहे रहो उदास'

बरसानेमें एक सेठजी रहते थे। उनके कई कारोबार थे, तीन बेटे, तीन बहुएँ थी, सब-के-सब आज्ञाकारी थे, लेकिन सेठजीके बेटी नहीं थी, यही अभाव उन्हें खलता था। यह चिन्ता सन्तोंके दर्शनसे कम हुई। सन्त बोले मनमें जो अभाव हो, उसपर भगवान्‌का भाव स्थापित कर लो।

सुनो सेठ तुमकू मिल्यो बरसानेका वास,
यदि मानो राधे सुता काहे रहो उदास।

सेठजीने राधारानीका एक चित्र मँगवाया और अपने घरमें लगाकर उसे पुत्रीभावसे रखते। रोज सुबह उठकर राधे-राधे कहते, भोग लगाते और दुकानसे लौटकर राधे-राधे कहकर सोते।

तीन बहू बेटे हैं घरमें, सुख सुविधा है पूरी।
संपति भरी भवन में रहती, नहीं कोई मजबूरी॥
कृष्ण कृपा से जीवन पथ पे आती न कोई बाधा।
मैं हूँ पिता बहुत बड़भागी, बेटी है मेरी राधा॥

एक दिन एक मनिहारी चूड़ी पहनाने सेठके अहातेमें आयी और चूड़ी पहननेकी गुहार लगायी। तीनों बहुएँ बारी-बारीसे चूड़ी पहनकर चली गयीं। फिर एक हाथ और बढ़ा तो मनिहारिनने सोचा कि कोई रिश्तेदार आयी होगी, उसने चूड़ी पहनायी और चली गयी।

सेठजीकी दुकानपर पहुँचकर उसने पैसे माँगे और कहा कि इस बार पैसे पहलेसे ज्यादा चाहिये। सेठजी बोले कि क्या चूड़ी मँहगी हो गयी है? मनिहारिन बोली, 'नहीं, सेठजी! आज मैं चार लोगोंको चूड़ी पहनाकर आ रही हूँ।' सेठजीने कहा कि तीन बहुओंके अलावा चौथा कौन है? झूठ मत बोल, यह ले तीनका पैसा। मनिहारिन बेचारी तीनका पैसा लेकर चली गयी।

सेठजीने घरपर पूछा कि चौथा कौन था जिसने चूड़ी पहनी है? बहुएँ बोली कि हम तीनके अलावा तो कोई भी नहीं था। रातको सोनेसे पहले सेठजी पुत्री राधारानीको स्मरण करके सो गये। नींदमें राधाजी प्रकट हुईं, सेठजी बोले—'बेटी बहुत उदास हो, क्या बात है?

बृषभानुदुलारी बोलीं—

तनया बनायो तात, नात ना निभायो है...
चूड़ी पहनि लीनी मैं, जानि पितु गेह किंतु,
आप मनिहारिन को मोल ना चुकायो है।
तीन बहू याद किन्तु बेटी नहीं याद रही,
नैनन श्रीराधिका के नीर भरि आयो है॥
कैसी भई दूरी कहो कौन मजबूरी हाय,
आज चार चूड़ी काज मोहि बिसरायो है???

सेठजीकी नींद टूट गयी, पर नीर नहीं टूटा, रोते रहे, सबेरा हुआ, स्नान-ध्यान करके मनिहारिनके घर पहुँच गये। मनिहारिन देखकर चकित हुई।

सेठजी आँखोंमें आँसू लिये बोले—

धन धन भाग तेरो मनिहारी...
तोसे बड़भागी नहिं कोई, संत महंत पुजारी,
धन धन भाग तेरो मनिहारी...।
मैंने मानी सुता किन्तु निज नैनन नहीं निहारी,
चूड़ी पहन गयीं तेरे हाथन ते श्री बृषभानु दुलारी॥
धन धन भाग तेरो मनिहारी...
बेटी की चूड़ी पहिराई लेहु, जाऊँ तेरी बलिहारी,
हाथ जोड़ बिनती करूँ, क्षमियो चूक हमारी।
जुगल नयन जल ते भरे मुख ते कहे न बोल,
मनिहारिन के पाँय पड़ि लगे चुकावन मोल॥

मनिहारिन सोचने लगी—

जब तोहि मिलो अमोल धन। अब काहे माँगत मोल॥
ऐ मन मेरे प्रेमसे श्रीराधे राधे बोल।

राधे-राधे जय श्रीकृष्ण!

राजर्षि सुयज्ञकी राधा-माधव-भक्ति

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके अनुसार स्वायम्भुव मनुके वंशमें उत्पन्न महाराज सुयज्ञ सप्तद्वीपवती वसुन्धराके एकच्छत्र चक्रवर्ती सम्राट् थे। वे महाभागवत ध्रुवके पुत्र थे और उन्हींकी भाँति भगवान् नारायणके अनन्य भक्त थे। उन्होंने पुष्करतीर्थमें एक हजार राजसूय-यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। यद्यपि महाराज सुयज्ञका नाम उत्कल था, परंतु उन सुन्दर यज्ञोंको देखकर ब्रह्माजीने देवसभामें राजा उत्कलका नाम सुयज्ञ रख दिया।

पृथ्वीपर सर्वप्रथम श्रीराधिकाजीके पूजनका सौभाग्य महाराज सुयज्ञको ही प्राप्त हुआ। उन्हें तृतीय आवरणका पूजक कहा जाता है। उनसे पूर्व प्रथम आवरणमें स्वयं परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णने गोलोकमें राधाजीका पूजन किया था। तत्पश्चात् द्वितीय आवरणमें ब्रह्माजी, भगवान् शंकर, अनन्त, वासुकि, सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, रुद्रगण, मनु और मुनीन्द्रोंने अपने-अपने लोकोंमें उनकी पूजा की थी।

एक दिनकी बात है, महाराज सुयज्ञ यज्ञ सम्पन्नकर अपनी राजसभामें रत्नेन्द्रसारसे निर्मित रमणीय रत्नसिंहासनपर आसीन थे। उनकी सभामें वसु, वासव, चन्द्रमा, इन्द्र आदित्यगण आदि बड़े-बड़े देवता विराजमान थे। नारद, पुलह, पुलस्त्य, प्रचेता, भृगु, अंगिरा, मरीचि, कश्यप, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नर-नारायण आदि ऋषिगण, पितर और दिक्पाल भी वहाँ उपस्थित थे। उसी समय सुतपा नामवाले एक ब्राह्मणश्रेष्ठ वहाँ पधारे, वे विश्वरूप त्रिशिराके पौत्र थे। भगवान् शंकर उनके गुरु तथा परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण उनके इष्टदेव थे।

वे ब्राह्मणदेवता रूखे शरीरवाले और मलिन वस्त्र पहने हुए थे। उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूखे थे। यद्यपि वे ब्रह्मतेजसे सम्पन्न थे, परंतु अपने-आपको छिपाये हुए-से थे। उन्हें देखकर राजाके सभासद् मुसकराने लगे। राजाने भी सिंहासनपर बैठे-बैठे ही उन्हें प्रणाम किया, अपने स्थानसे वे उठे नहीं। सभासदों और राजाद्वारा अपनी अवहेलना होते देखकर वे ब्राह्मणश्रेष्ठ सुतपा क्रोधपूर्वक राजाको शाप देते हुए बोले—'ओ पामर! तू इस राज्यसे दूर चला जा, श्रीहीन हो जा तथा शीघ्र ही गलित कुष्ठसे युक्त, बुद्धिहीन और उपद्रवोंसे ग्रस्त हो जा।'

यह कहकर गूढ़ रूपवाले वे ब्राह्मणदेवता ब्रह्मतेजसे उद्भासित होते हुए चल दिये। राजा उन ब्राह्मणश्रेष्ठको प्रणामकर भयसे कातर हो रोने लगे। उस समय वहाँ उपस्थित सनत्कुमार, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, प्रचेता आदि श्रेष्ठ मुनियोंने उन ब्राह्मणदेवतासे राजाको क्षमा करनेका अनुरोध किया, परंतु वे पुनः राजभवन नहीं लौटे। तब राजा सुयज्ञके धर्मात्मा पुरोहित वसिष्ठने उन्हें उन ब्राह्मणदेवताके पास भेजा। राजा सुयज्ञ वसिष्ठजीकी आज्ञाके अनुसार वहाँ गये, जहाँ ब्राह्मणश्रेष्ठ सुतपा स्थित थे और वहाँ जाकर उनके दोनों चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े। यह देख सुतपा क्रोधका त्यागकर मुसकराने लगे और उन कृपामूर्तिने राजाको आशीर्वाद दिया तथा हँसते हुए कहा—'सुयज्ञ! मैंने तुमपर अनुग्रह किया है, तुम्हें शाप नहीं दिया है। तुम एक भयानक गहरे भवसागरमें गिर रहे थे। मैंने तुम्हारा उद्धार किया है। राधावल्लभ श्रीकृष्ण मुझे सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य और सामीप्य नामक मोक्ष देते हैं, परंतु मैं उनकी कल्याणमयी सेवाके सिवा दूसरी कोई

वस्तु नहीं लेता। ब्रह्मत्व और अमरत्वको भी मैं जलमें दिखायी देनेवाले प्रतिबिम्बकी भाँति मिथ्या मानता हूँ। नरेश्वर! भक्तिके अतिरिक्त सब कुछ मिथ्या भ्रममात्र है, नश्वर है। इन्द्र, मनु अथवा सूर्यका पद भी जलमें खींची गयी रेखाके समान मिथ्या है, फिर राजाके पदकी क्या गणना!'

'राजन्! निकलो इस घरसे। दे दो राज्य अपने पुत्रको। अपनी साध्वी पत्नीकी रक्षाका भार बेटेको सौंपकर शीघ्र ही वनको चलो। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सब कुछ मिथ्या ही है। जो सबके ईश्वर हैं, उन परमात्मा राधावल्लभ श्रीकृष्णका भजन करो।'

सुयज्ञ बोले—प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हो गया, जीवन सार्थक हो गया। मेरे लिये आपका शाप भक्तिका कारण होनेसे वरदान बन गया; क्योंकि समस्त मंगलोंका भी मंगल करनेवाली हरिभक्ति परम दुर्लभ है। परंतु हे मुने! आपके शापसे इस समय मैं गलित कुष्ठका रोगी हो गया हूँ। अपवित्र हूँ और तपके अधिकारसे वंचित हूँ। ऐसी दशामें मैं कैसे तपस्या करूँ?

सुतपाने कहा—ब्राह्मण मनुष्यके रूपमें साक्षात् देवाधिदेव जनार्दन हैं। पृथ्वीपर जो-जो तीर्थ हैं, वे सब ब्राह्मणके चरणोंमें हैं। ब्राह्मणका चरणोदक पापों और रोगोंका विनाश करनेवाला है। मैं एक वर्ष बाद पुनः आऊँगा, तबतक तुम चरणोदकका पान नित्य करते रहना। यह कहकर सुतपा अपने घर चले गये और राजा नित्य भक्तिभावसे ब्राह्मणोंके चरणोदकका पान करने लगे।

वर्ष बीतते-बीतते राजा रोग-व्याधिसे मुक्त हो गये, तब मुनिश्रेष्ठ सुतपा वहाँ पुनः आये। राजा ने परम आदरपूर्वक उनका सत्कारकर पूछा—'हे विप्र! हे मुने! मैं किसका भजन करूँ? किसकी आराधनासे मैं शीघ्र गोलोककी प्राप्ति कर लूँगा?'

राजाके ऐसा कहनेपर उन ब्राह्मणशिरोमणिने राजेन्द्र सुयज्ञसे कहा—'महाराज! श्रीकृष्णकी सेवासे उनके लोकको तुम बहुत जन्मोंमें प्राप्त करोगे, अतः उनके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी परात्परस्वरूपा श्रीराधाका भजन करो। वे कृपामयी हैं। उनके प्रसादसे साधक शीघ्र ही उनके धामको प्राप्त कर लेता है'—ऐसा कहकर मुनिने उन्हें श्रीराधाजीके षडक्षरमन्त्र—'**ॐ राधायै स्वाहा**' का उपदेश दिया। साथ ही रासमण्डलमें रासेश्वरके साथ विराजित रासेश्वरी श्रीराधाजीका सामवेदोक्त ध्यान, स्तोत्र और कवच भी उन्हें बताया।

राजाने राज्य पुत्रको देकर घरका त्याग कर दिया तथा पुष्करमें जाकर सौ दिव्य वर्षोंतक दुष्कर तपस्या की। तब उन्हें आकाशमें रथपर बैठी हुई परमेश्वरी श्रीराधाजीके दर्शन हुए। उनके दर्शनमात्रसे राजाके सारे पाप-ताप दूर हो गये। उन्होंने मनुष्य-देहको त्याग दिया और दिव्य रूप धारण कर लिया। देवी राधा उस रत्नेन्द्र-निर्मित विमानद्वारा राजाको साथ ले गोलोकमें चली गयीं। वहाँ उन्होंने रत्नसिंहासनपर विराजमान; रत्नोंके हार, किरीट तथा रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित; अग्निशुद्ध, अत्यन्त निर्मल, चिन्मय पीताम्बर धारण किये हुए गोलोकाधिपति भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका दर्शन किया। वे किशोर गोपबालकके रूपमें दिखायी दे रहे थे। उनकी कान्ति नूतन जलधरके समान श्याम थी। नेत्र श्वेतकमल के समान थे। शरत्-पूर्णिमाके चन्द्रमण्डलको तिरस्कृत करनेवाला उनका मुखमण्डल मन्द हास्यसे सुशोभित था। मनोहर आकृतिवाला उनका द्विभुज स्वरूप था। उन्होंने अपने हाथमें मुरली ले रखी थी। उनके बारह प्रिय सखा ग्वाल-बाल सफेद चँवर लिये उनकी सेवा कर रहे थे। अपने आराध्यकी ऐसी मनोहर झाँकीका दर्शनकर राजा सुयज्ञ तुरन्त रथसे उतर पड़े और नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए पुलकित शरीरसे भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया। तब परमात्मा श्रीकृष्णने राजाको अपना दासत्व, आशीर्वाद एवं अविचल भक्ति प्रदान की। तदनन्तर श्रीराधाजी रथसे उतरकर श्रीकृष्णके वक्षमें विराजमान हो गयीं।

इस प्रकार श्रीराधाजीकी कृपाने राजा सुयज्ञको श्रीकृष्णकी प्राप्ति करा दी, जो पितामह ब्रह्मा और भगवान् शिवके लिये भी परम दुर्लभ है।

[श्रीजयदीप सिंह]

मुनिश्रेष्ठ अष्टावक्र देवलपर राधाकृष्णकी कृपा

गोपियोंके साथ रासक्रीड़ा सम्पन्नकर भगवान् श्रीकृष्ण राधाजीसहित वहाँसे अन्तर्धान हो केतकीवनके निकट एक विशाल वट-वृक्षके नीचे आ बैठे और श्रीराधाजीको पुरातन एवं अद्भुत रहस्यसे भरी कथाएँ सुनाने लगे। उसी समय ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान एक मुनिश्रेष्ठ उनके सम्मुख आ उपस्थित हुए। उनका शरीर काला था, सारे अंग टेढ़े-मेढ़े थे, वे नाटे और दिगम्बर थे। उनके नख, मूँछ और दाढ़ीके बाल बढ़े हुए थे। उन तेजस्वी और परम शान्त मुनिने भक्तिभावसे दोनों हाथ

जोड़कर युगलमूर्ति राधामाधवको प्रणाम किया। उन्हें देख राधाजी हँसने लगीं, तब माधवने उन्हें ऐसा करनेसे रोका और उन महात्मा मुनीन्द्रके प्रभावका वर्णन किया।

मुनिवर अष्टावक्रने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की और उनके चरण-कमलोंमें प्रणिपात किया, फिर श्रीराधा-माधवके सामने ही उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। उस समय उनके शरीरसे प्रज्वलित अग्निशिखाके सदृश उनका तेज ऊपर उठा और सात ताड़के बराबर ऊँचा उठकर भगवान्‌की प्रदक्षिणाकर उनके चरणोंमें विलीन हो गया।

मुनिके प्राणहीन शरीरको देखकर भगवान् श्रीकृष्णके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। उन्होंने चन्दन-काष्ठकी चिता बनाकर उसपर मुनिका शव स्थापितकर उसका दाह-संस्कार किया। उस समय आकाशमें देवता दुन्दुभियाँ बजाने लगे और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। उसी समय रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित, मनके समान तीव्रगामी और वस्त्रों एवं पुष्पहारोंसे अलंकृत एक सुन्दर विमान गोलोकसे उतरा। उसमेंसे श्रीकृष्णके समान वेशभूषावाले पार्षद उतरे। उन्होंने भगवान् श्रीराधामाधव और सूक्ष्म देहधारी मुनि अष्टावक्रको शीश झुकाया और उन मुनीन्द्रको लेकर गोलोकधामको चले गये। यह देख वृन्दावनविनोदिनी भगवती राधाजीको महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—हे नाथ! ये मुनि कौन थे? इनके विषयमें मुझे शीघ्र ही विस्तारपूर्वक बताइये।

राधिकाजीका यह वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने हँसते हुए कहा—प्रिये! इन मुनिका नाम देवल है। ये ब्रह्माजीके पुत्र प्रचेताके पौत्र हैं। मुनिश्रेष्ठ असित इनके पिता हैं। मुनिवर असितने पुत्रप्राप्तिकी कामनासे दीर्घ कालतक भगवान् शंकरकी आराधना की थी, इससे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने असितको तुम्हारा षोडशाक्षरमन्त्र, स्तोत्र, पूजाविधि, परम अद्भुत 'संसार-विजय' नामक कवच तथा पुरश्चरणका उपदेश दिया। साथ ही यह भी कहा कि 'इस मन्त्रकी इष्टदेवी तुम्हें वर देनेके लिये प्रत्यक्ष दर्शन देंगी।'

तदनन्तर मुनिवर असितने सौ वर्षोंतक उस उत्कृष्ट मन्त्रका जप किया। तब तुमने ही मुनिको प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्हें वर दिया—'वत्स! तुम्हें निश्चय ही महाज्ञानी पुत्रकी प्राप्ति होगी।'

हे राधिके! इस प्रकार ये मुनि तुम्हारे ही वरसे उत्पन्न थे। प्रारम्भमें ये कामदेवके समान सुन्दर थे। मुनिवर देवल मेरे भक्त एवं जितेन्द्रिय थे। इन्होंने गन्धमादनपर्वतकी गुफामें बैठकर एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक तपस्या की थी। एक दिन रम्भा नामक अप्सरा उधर आ निकली। कन्दर्पसदृश सुन्दर इन मुनिवरको देखकर उसने इनसे मिलनेकी प्रार्थना की, परंतु इन्होंने उसे स्वीकार न करते हुए कहा—'रम्भे! मैं तपस्वी ब्राह्मण हूँ, निष्काम और वृद्ध हूँ, मुझसे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? हे माँ! तुम सुन्दरी हो; अतः किसी उत्तम वेशभूषावाले सुन्दर तरुण पुरुषकी खोज करो।'

इनकी यह बात सुनकर रम्भाको क्रोध आ गया

और उस पुंश्चलीने रोषपूर्वक शाप दे दिया कि हे कुटिल-हृदय ब्राह्मण! तेरे सारे अवयव टेढ़े-मेढ़े हो जायँ। तेरा शरीर काजलके समान काला तथा रूप-यौवनसे शून्य हो जाय। आकार अत्यन्त विकृत और तीनों लोकोंमें निन्दित हो और तेरा पुरातन तप अवश्य ही शीघ्र नष्ट हो जाय।

यह शाप प्राप्त होनेपर इन मुनि देवलने शोकवश एक अग्निकुण्ड तैयार किया और अपने प्राण त्याग देनेको उद्यत हो गये। तब मैंने उन मुनिश्रेष्ठको दर्शन देकर इन्हें आश्वासन दिया। मेरे कहनेसे इन्होंने मलयाचलकी कन्दरामें आकर साठ हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। प्रिये! आज तपस्या पूर्ण होनेपर ये मेरे लिये ही मन्दराचलकी कन्दरा छोड़कर यहाँ आये थे और मैंने इन्हें अपनेमें मिला लिया; क्योंकि प्रलयकाल आनेपर भी—सब कुछ नष्ट हो जानेपर भी मेरे भक्तका नाश नहीं होता।

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ देवलको प्राण-प्रयाणकालमें सुरमुनि दुर्लभ श्रीराधामाधवके दर्शन हुए और उन्हें गोलोकधामकी प्राप्ति हुई।

एक सत्य घटना—

‘वह ह्याँ पै दान लेय है’

श्रीजीकी कृपा हुई और मुझे चौदह वर्षोंके बाद पुनः श्रीव्रज-दर्शनकी आज्ञा मिली। मैं वृन्दावन होता हुआ श्रीलाड़िलीजीके बरसाने पहुँचा। संध्या-समय साँकरी-खोर गया। सुन्दर लता-पताओंसे आच्छादित दो छोटी-छोटी पहाड़ियोंके बीच केवल एक ही मनुष्यके चलनेयोग्य—सँकरी गलीके पुण्यदर्शन हुए। यहींपर मनमोहन नटनागर ब्रज-बालाओंको रोककर दहीका दान लेते और प्रेमका झगड़ा किया करते थे। एक वृक्षके नीचे पत्थरपर दही गिरनेके चिह्न देखकर मैं सोचने लगा कि यहाँपर दही कैसे गिरा? इसी बातपर विचार करता हुआ गह्वर-वन होकर वापस आया। दूसरे दिन प्रातःकाल फिर वहीं गया। देखा कि एक वृद्धा ग्वालिनीमाई साधारण घाघरा-ओढ़नी पहने और माथेपर दो दहेड़ियाँ रखे चमोली गाँवकी ओरसे आयी। वृक्षके नीचे खड़ी होकर दहेड़ीसे एक कटोरी दही निकालकर पत्थरपर डाल दिया। मैंने उससे पूछा और जो कुछ उसने कहा उसको ज्यों-का-त्यों लिखनेका प्रयत्न करता हूँ—

मैं—‘माई! तूने वहाँ दही क्यों गिराया?’

वृद्धा—‘मैंने वाके लिये दही दै दीनो है। वह ह्याँ पै दान लेय है—दान!!’

मैं—‘क्या वह दान लेकर तुम्हारा दही खाता है?’

वृद्धा—‘च्यों नायँ! बराबर तो वाको दर्शन होय नायँ। याही गैल मैं दह्यो ले जायो करती हो। एक बार एक छोटो-सो छोरा—दसेक बरस कों—मोयँ याई ठाँ रोक्यो! कह्यो कि ‘तूँ मेरो दान दै के जा।’ मैंने कह्यो—मैं तोयँ दान दूँगी। जब तूनें गूजरीन ते दान लीनों है तो मैं च्यों न दूँगी! चल, परें तें चल, में दऊँ हूँ’’।’

वाने कह्यो—‘डोकरी! तूँ भग जायगी!! मोयँ ना देयगी!!!’—ऐसो कह, वा पत्थरपर बैठ बंसी बजान लग्यो! मैंने एक बेली दही निकारि कह्यौ—‘लै अपनो दान।’

‘‘वाने बंसी कूँ बगल में दाब लीनी— दोनों हाथन कूँ या तरियाँ सूँ जोरकें दोना बनायो—वामें दह्यो ले, चाटते-चाटते वा गैल सूँ ऊपर चल्यो गयो। जब सों मैं वाकूँ यहाँ दान दै जाय करूँ हूँ। या वाई कूँ दान दीनों है! वाई कूँ!!’’

इस सीधी-सादी वृद्धा ग्वालिनीकी बातें इतनी मधुर, स्वाभाविक और भावपूर्ण तथा सचाईसे ओत-प्रोत थीं कि मेरा हृदय प्रेम और आनन्दसे भर गया। जब उसने ‘पत्थर’ की ओर अपनी अँगुलीसे निर्देश किया तथा दोनों दहेड़ियोंको सिरपर रखे-रखे अपनी दोनों अँगुलियोंको जोड़कर दोनाका आकार बनाया और ऊपरकी ओर उसके दही चाटते-चाटते चले जानेका मार्ग दिखलाया तो मेरे हृदयका आनन्द रुक नहीं सका! प्रेम अश्रुके रूपमें नेत्रोंसे बरस पड़ा। मैं उस प्रेममयी बड़भागिनके दोनों चरणोंको पकड़कर प्रेम-जलसे धोने लगा। उसकी आँखोंमें भी जल भर आया। उसकी चरण-धूलि लेकर मैंने अपनेको कृतकृत्य माना। श्रीजीकी कृपाका अनुभव हुआ। ब्रजवासियोंका कथन सत्य है कि ‘मेरो लाला, ब्रज तें कहूँ बाहर नहीं गयो है।’ आज भी ये ब्रजवासिनें धन्य हैं, जो उस नटनागरकी लीलाका प्रत्यक्ष अनुभव करती हैं! [‘प्रेमभिखारी’]

श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु

श्रीचैतन्यमहाप्रभुका प्राकट्य शक-संवत् १४०७ की फाल्गुन शुक्ला १५ को दिनके समय सिंहलग्नमें पश्चिमी बंगालके नवद्वीप नामक ग्राममें हुआ था। इनके पिताका नाम जगन्नाथमिश्र और माताका नाम शचीदेवी था। ये भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे। इन्हें लोग श्रीकृष्णका अवतार मानते हैं। बंगालके वैष्णव तो इन्हें साक्षात् पूर्णब्रह्म ही मानते हैं। इनके जीवनके अन्तिम १२ वर्ष राधाभावमें ही बीते। उन दिनों इनके अन्दर महाभावके सारे लक्षण प्रकट हुए थे। जिस समय ये श्रीकृष्णके विरहमें उन्मत्त होकर रोने और चीखने लगते थे, उस समय पत्थरका हृदय भी पिघल जाता था। इनके व्यक्तित्वका लोगोंपर ऐसा विलक्षण प्रभाव पड़ा कि श्रीवासुदेव सार्वभौम और प्रकाशानन्द सरस्वती-जैसे अद्वैतवेदान्ती भी इनके थोड़ी देरके संगसे श्रीकृष्णप्रेमी बन गये। यही नहीं, इनके विरोधी भी इनके भक्त बन गये और जगाई-मधाई-जैसे महादुराचारी भी सन्त बन गये। नौरोजी नामका डाकू इनके संकीर्तनकी ध्वनि और इनका उपदेश सुनकर अपने दल-बलसहित भगवद्भक्त बन गया। नवद्वीपके काजीने कुछ लोगोंके भड़कानेमें आकर एक संकीर्तनकर्ताका ढोल फोड़ दिया, स्वप्नमें उसे नृसिंहभगवान्के क्रोधित स्वरूपके दर्शन हुए, जिससे घबराकर उसने चैतन्यमहाप्रभुसे क्षमा माँगी और संकीर्तनका विरोध करना छोड़ दिया। कई बड़े-बड़े संन्यासी भी इनके अनुयायी हो गये।

इनका प्रधान उद्देश्य यद्यपि भगवद्भक्ति और भगवन्नामका प्रचार करना और जगत्में प्रेम और शान्तिका साम्राज्य स्थापित करना था, तथापि इन्होंने दूसरे धर्मों और दूसरे साधनोंकी कभी निन्दा नहीं की। इनके भक्ति-सिद्धान्तमें द्वैत और अद्वैतका बड़ा सुन्दर समन्वय हुआ है। इन्होंने कलिमलग्रसित जीवोंके उद्धारके लिये भगवन्नामके जप और कीर्तनको ही मुख्य और सरल उपाय माना है। इनकी दक्षिण-यात्रामें गोदावरीके तटपर इनका इनके शिष्य राय रामानन्दके साथ बड़ा विलक्षण संवाद हुआ, जिसमें इन्होंने राधाभावको सबसे ऊँचा भाव बतलाया।

श्रीचैतन्य भगवन्नामके बड़े ही रसिक, अनुभवी और प्रेमी थे। इन्होंने बतलाया है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

—'यह महामन्त्र सबसे अधिक लाभकारी और भगवत्प्रेमको बढ़ानेवाला है। भगवन्नामका बिना श्रद्धाके उच्चारण करनेसे भी मनुष्य संसारके दुःखोंसे छूटकर भगवान्के परम धामका अधिकारी बन जाता है।'

महाप्रभुने हमें यह बताया है कि भक्तोंको भगवन्नामके उच्चारणके साथ दैवीसम्पत्तिका भी अर्जन करना चाहिये। श्रीचैतन्यमहाप्रभु आचरणकी पवित्रतापर बहुत जोर देते थे। उन्होंने अपने संन्यासी शिष्योंके लिये यह नियम बना दिया था कि कोई स्त्रीसे बाततक न करे। एक बार इनके शिष्य छोटे हरिदासने माधवी नामकी एक वृद्धा स्त्रीसे बात कर ली थी, जो स्वयं महाप्रभुकी भक्त थी। केवल इस अपराधके लिये उन्होंने हरिदासका सदाके लिये परित्याग कर दिया, यद्यपि उनका चरित्र सर्वथा निर्दोष था।

श्रीचैतन्यमहाप्रभु चौबीस वर्षकी अवस्थातक गृहस्थाश्रममें रहे। इनका नाम 'निमाई' पण्डित था, ये न्यायके बड़े पण्डित थे। इन्होंने न्यायशास्त्रपर एक अपूर्व ग्रन्थ लिखा था, जिसे देखकर इनके एक मित्रकी आँखोंमें आँसू आ गये; क्योंकि उन्हें यह भय हुआ कि इनके ग्रन्थके प्रकाशमें आनेपर उनके ग्रन्थका आदर कम हो जायगा। इसपर श्रीचैतन्यने अपने ग्रन्थको गंगाजीमें बहा दिया। कैसा अपूर्व त्याग है! पहली पत्नी लक्ष्मीदेवीका देहान्त हो जानेके बाद इन्होंने दूसरा विवाह श्रीविष्णुप्रियाजीके साथ किया था। परंतु कहते हैं, इनका अपनी पत्नीके प्रति सदा पवित्र भाव रहा। चौबीस वर्षकी अवस्थामें इन्होंने केशव भारती नामक संन्यासी महात्मासे संन्यासकी दीक्षा ग्रहण की। इन्होंने संन्यास इसलिये नहीं लिया कि भगवत्प्राप्तिके लिये संन्यास लेना अनिवार्य है; इनका उद्देश्य तो काशी आदि तीर्थोंके संन्यासियोंको भक्तिमार्गमें लगाना था। बिना पूर्ण वैराग्य हुए ये किसीको संन्यासकी दीक्षा नहीं देते थे। इसीलिये इन्होंने पहली बार अपने शिष्य रघुनाथदासको संन्यास लेनेसे मना किया था।

इनके जीवनमें अनेक अलौकिक घटनाएँ हुईं, जो किसी मनुष्यके लिये सम्भव नहीं और जिनसे इनका ईश्वरत्व प्रकट होता है। इन्होंने एक बार श्रीअद्वैतप्रभुको विश्वरूपका दर्शन कराया था तथा नित्यानन्दप्रभुको एक बार शंख, चक्र, गदा, पद्म, शार्ङ्गधनुष तथा मुरली लिये हुए षड्भुज नारायणके रूपमें, दूसरी बार दो हाथोंमें मुरली और दो हाथोंमें शंख-चक्र लिये हुए चतुर्भुजरूपमें और तीसरी बार द्विभुज श्रीकृष्णके रूपमें दर्शन दिया था। इनकी माता शचीदेवीने इनके अभिन्नहृदय श्रीनित्यानन्द प्रभु और इनको बलराम और श्रीकृष्णके रूपमें देखा था। गोदावरीके तटपर राय रामानन्दके सामने ये रसराज (श्रीकृष्ण) और महाभाव (श्रीराधा)-के युगलरूपमें प्रकट हुए, जिसे देखकर राय रामानन्द अपने शरीरको नहीं सम्हाल सके और मूर्छित होकर गिर पड़े। अपने जीवनके शेष भागमें, जब ये नीलाचलमें रहते थे, एक बार ये बन्द कमरेमेंसे बाहर निकल आये थे। उस समय इनके शरीरके जोड़ खुल गये, जिससे इनके अवयव बहुत लम्बे हो गये। एक दिन इनके अवयव कछुएके अवयवोंकी भाँति सिकुड़ गये और ये मिट्टीके लोंदेके समान पृथ्वीपर पड़े रहे। इनके जीवनमें कई चमत्कार सामान्य रूपसे भी दृष्टिगोचर होते थे। उदाहरणत: श्रीचैतन्यचरितामृतमें लिखा है कि इन्होंने कई कोढ़ियों और अन्य असाध्य रोगोंसे पीड़ित रोगियोंको रोगमुक्त कर दिया। दक्षिणमें जब ये अपने भक्त नरहरि सरकार ठाकुरके गाँव श्रीखण्डमें पहुँचे, तब नित्यानन्दप्रभुको मधुकी आवश्यकता हुई। इन्होंने उस समय एक सरोवरके जलको शहदके रूपमें पलट दिया, जिससे आजतक वह तालाब मधुपुष्करिणीके नामसे विख्यात है।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ही अत्यन्त सुन्दर, परम महान् श्रीगौरचन्द्रके रूपमें अवतरित हुए तथा संन्यास लेनेके उपरान्त 'श्रीकृष्णचैतन्य' इस नामसे जगत्में विख्यात हुए। श्रीमहाप्रभुजीके अवतारके पूर्व सम्पूर्ण गौड़देशके लोग भक्तिका लेशमात्र भी नहीं जानते थे, परंतु श्रीमहाप्रभुजीने 'हरिबोल, हरिबोल' की मंगलमय नामध्वनि सुनाकर सबको प्रेमसागरमें डुबा दिया। आपके एक-एक पार्षद वैष्णवशिरोमणि एवं जगत्के अनेक प्राणियोंका उद्धार करनेमें समर्थ हुए।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके अन्तिम बारह वर्ष कृष्णविरहमें दिव्योन्मादकी स्थितिमें बीते। आप पुरीके गम्भीरामन्दिरमें प्राय: भावावेशमें रोते-बिलखते रहते। अन्तमें शक संवत् १४५५ में आषाढ़मासमें एक दिन दिनके तीसरे पहरमें आप दौड़ते हुए सीधे श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें प्रवेश कर गये और महाप्रभु महाप्रभुमें ही लीन हो गये।

राधामय माधवकी साकार प्रतिमा—श्रीगौरांग

(श्रीअनन्तकुमारजी 'पाषाण')

राधाजीका महाप्रणय कल्पनातीत है नर-मनको।
वह एक अनवरत ज्वाला है करता विदग्ध तन-जीवनको॥
उससे विदग्ध हो गौर अंग श्रीमती श्याम दिखने लगतीं।
फिर ध्यान श्यामका करनेसे कर्पूर सदृश जलने लगतीं॥
लगतीं तमालका वृक्ष कभी, फिर द्रवित कभी विद्युत लगतीं।
अप्लुत भावों वाली राधा भी कभी-कभी अच्युत लगतीं॥
श्रीकृष्ण-रूपका आस्वादन श्रीकृष्ण नहीं कर सकते हैं।
बस इसीलिये राधा बननेको कृष्ण तरसते रहते हैं॥
कहते हैं एक समय राधाके निकट कृष्ण थे प्रणय-लीन।
सहसा ही देखी निज तनकी वह श्याम-प्रभा होती विलीन॥
अति गौर हो गयी देह तभी घबरा कर वह बोले सहसा।
अति दूर गौरलीला है जब तब यह विचित्र क्यों हुई दशा!॥
बोलीं राधा नटखटपनसे—वह रूप देखना था मनको!।
अब मेरा लेकर वर्ण करोगे आयोजित तुम कीर्तनको॥
प्रति दिवस-निशा, प्रति घड़ी याम, अविराम यही क्रम था प्रभुका,
नासिका रगड़ प्राचीरोंसे कहते थे—'द्वार नहीं बनता!'
बारह वर्षों तक यों प्रभुने श्रीमती-विरह प्राकट्य किया
वह हृदय-विदारक है इतना, मैं और नहीं अब लिख सकता॥
है कृष्ण नाम ही शास्त्र-मर्म, है कृष्ण नाम ही धर्म-सार।
है वही साधना, वही साध्य, उपचार और पूजा-प्रकार॥
उठ गयी हाट, रह गयी बाट, आनन्द नामका है अशेष।
बस गौर-गौर रटते-रटते हो जायें अब ये प्राण शेष॥

['श्रीगौरांग' महाकाव्यका अंश]

गौड़ीय वैष्णव षड्-गोस्वामीगण

चैतन्य महाप्रभुके षड् गोस्वामी बहुत प्रसिद्ध हैं। सच पूछिये तो इन महापुरुषोंने ही गौड़ीय सम्प्रदायकी नींव डाली और इन्होंने ही उसे पाल-पोषकर संसार-व्यापी सम्प्रदाय बनाया। इन छहों महात्माओंने ब्रज-साहित्य तथा ब्रजकी बड़ी भारी उन्नति की, ब्रजके लुप्त तीर्थोंका पुनरुद्धार किया, त्यागका आदर्श स्थापित किया, सच्चे वैष्णवका कर्तव्य बताया, अमानी और दम्भरहित होकर इन्होंने जीवनपर्यन्त कृष्ण-कीर्तन करते हुए ही अपना समय बिताया। ब्रजका बच्चा-बच्चा इन गोस्वामियोंके नामसे परिचित है। इनके पधारनेके पूर्व वृन्दावन सचमुच वन ही था, दस-बीस भक्त और पण्डोंके अतिरिक्त सर्वत्र जंगल-ही-जंगल था। इनके प्रभावसे जंगलमें मंगल हो गया। सैकड़ों भव्य और दर्शनीय मन्दिर बन गये। सारांश यह कि वृन्दावनकी उन्नतिमें इन गोस्वामी महात्माओंका बहुत बड़ा हाथ है। इनके नाम क्रमशः रूप, सनातन, जीव, रघुनाथ भट्ट, रघुनाथदास और गोपाल भट्ट हैं। हम यहाँपर इन छहों गोस्वामियोंका प्रेमी पाठकोंको संक्षेपमें परिचय कराना चाहते हैं।

(१) गोस्वामी श्रीरूपजी—रूप, सनातन और बल्लभ ये तीन सगे भाई थे। वैष्णव होनेके पूर्व इन तीनों भाइयोंका नाम क्रमशः सन्तोष, अमर और अनूप था। ये भरद्वाजगोत्रज यजुर्वेदीय कर्नाटक ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज कर्नाटकदेशसे चलकर नैहाटीमें आकर बसे थे। इनके पूज्य पिता श्रीकुमारदेवजी जातिच्युत होनेके कारण नैहाटीको छोड़ फतेहाबाद जि० जैसोरमें आकर रहने लगे। थोड़े दिनोंके पश्चात् इन्होंने गौड़नगरके पास मधाईपुरके एक ब्राह्मणकी कन्यासे विवाह कर लिया और उसीके गर्भसे उक्त तीनों स्वनामधन्य पुत्र उत्पन्न हुए। सनातनका जन्म १४८८ई०में और रूपका १४८९ ई०में हुआ। संस्कृत और फारसीमें प्रवीण होनेपर दोनों भाई गौड़देशके बादशाह हुसेनशाहके यहाँ नौकर हुए और अपनी योग्यता एवं बुद्धिचातुर्यके कारण क्रमशः उन्नति करते हुए दोनों भाई राज-मन्त्रीके पदतक पहुँचे। जातिच्युत होनेके कारण इनका अपनी जातिके लोगोंके साथ बहुत अधिक संसर्ग नहीं था। इधर-उधर सदा मुसलमानोंकी संगतिमें रहनेके कारण इनका आचार-विचार, खान-पान सब मुसलमानोंका-सा हो गया था।

महाप्रभु जब वृन्दावन जा रहे थे, तब ये दोनों भाई रामकेली ग्रामके समीप उनसे आकर मिले और उनसे अपने उद्धारका उपाय पूछा। महाप्रभुने इन्हें हरिनामका उपदेश दिया और कहते हैं तभी उन्होंने इनका नाम रूप और सनातन रख दिया। तबसे ये हरिनाम-स्मरण और कृष्ण-कीर्तन करने लगे। उनका मन सांसारिक विषयोंसे ऐसा उचट गया कि रूप तो घर चले गये और सनातन राजधानीको लौट आये।

रूपने घरमें आकर अपनी सम्पत्तिका बँटवारा किया। कुछ द्रव्य तो इन्होंने अपने भतीजे जीव (बल्लभके पुत्र)-के निर्वाहके लिये अलग कर दिया और कुछ अपने परिवारके लिये रखकर शेष ब्राह्मणों और वैष्णवोंके लिये दान कर दिया। दस हजार रुपया सनातनके नाम एक दूकानदारके यहाँ जमा करके आप महाप्रभुकी तलाशमें अपने छोटे भाई अनूपके साथ घरसे चल पड़े। उन दिनों महाप्रभु ब्रजकी यात्रा समाप्त करके प्रयागमें ठहरे हुए थे। ये उनकी खोज करते हुए प्रयागमें पहुँचे और वहाँ इन्होंने महाप्रभुके दर्शन किये। महाप्रभुने इन्हें दस दिन अपने पास रखकर भक्तितत्त्व और वैष्णवोंका कर्तव्य समझा दिया और इन्हें आज्ञा दी कि वृन्दावनमें जाकर लुप्तप्राय तीर्थोंका उद्धार करो।

महाप्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य करके ये दोनों भाई

वृन्दावन चले गये। मथुरामें इनकी भूतपूर्व गौड़ेश्वर सुबुद्धिरायसे भेंट हुई। ये अपने एक भृत्य हुसेनशाहके षड्यन्त्रसे राजच्युत किये गये और हुसेनशाह गौड़ देशका बादशाह बन बैठा। उसने अपनी स्त्रीके आग्रहसे अपने लोटेका पानी इनके मुँहमें डाल दिया। पण्डितोंने इसका प्रायश्चित्त गरम घी पीकर प्राणत्यागका विधान बताया। बेचारे इतना कठिन प्रायश्चित्त करनेमें असमर्थ होकर इधर-उधर भटकते रहे। काशीजीमें जब महाप्रभुका आगमन हुआ तब ये उनके शरणापन्न हुए, और उन्होंने ब्रजमें रहकर कृष्ण नामका संकीर्तन करनेका उपदेश देकर इन्हें ब्रजमें भेज दिया। तबसे ये ब्रजमें ही रहकर कृष्ण-गुणगान करते और जो अभ्यागत बंगाली ब्रजमें आते, उनका यथायोग्य सेवा-सत्कार भी किया करते। रूप और अनूप पहले-पहल इनके ही अतिथि हुए। इनके ही साथ इन दोनों भाइयोंने बारहों वनोंकी यात्रा भी की।

कुछ दिन ब्रजमें रहकर ये दोनों भाई सनातनकी खोज करते हुए अपने गाँवमें आये। गाँवमें आनेपर इनके छोटे भाई अनूपका देहान्त हो गया। वहाँ सनातनका कुछ भी पता न चला तो आप महाप्रभुके पास जगन्नाथजी चले गये। वहाँ अपने भाईका समाचार पाकर ये महाप्रभुके ही पास रहने लगे। महाप्रभुके पास ये दस महीनेतक रहे। फिर उनकी ही आज्ञासे आप फिर वृन्दावन चले गये और अन्ततक वहीं रहे।

इन्होंने वृन्दावनमें रहकर भक्ति-सम्बन्धी बहुतसे ग्रन्थोंकी रचना की। इनमेंसे कुछके नाम ये हैं— हरिभक्ति-रसामृतसिन्धु, मथुरा-माहात्म्य, पद्यावली, हंसदूत, प्रेमेन्दुसागर, ललितमाधव, विदग्धमाधव आदि।

(२) गोस्वामी श्रीसनातनजी—महाप्रभुके दर्शनोंके पश्चात् सनातन गौड़देशको लौटकर गये तो सही किंतु दरबारमें नहीं गये। उन्होंने कहला भेजा कि हम बीमार हैं, किंतु बादशाहको यथार्थ बात मालूम करनेमें देर नहीं हुई। इन्हें दरबारमें बुला भेजा। पूछनेपर इन्होंने कह दिया—'हमारा मन अब राजकाजमें नहीं लगता। हमें तो अब कृष्णके बिना सम्पूर्ण जगत् सूना-सूना प्रतीत होता है। अब हमें छुट्टी दीजिये और हमारे स्थानपर किसी दूसरे कार्य-कुशल मन्त्रीकी नियुक्ति कर दीजिये।' किंतु बादशाह ऐसे सुयोग्य मन्त्रीको सहजमें ही छोड़नेवाला नहीं था। उसने इन्हें डरा-धमकाकर काम करनेके लिये कहा। किंतु इस प्रकार कितने दिन कार्य चल सकता है। एक कहावत है—*'मारकूटकर महरापर बिठा भी दोगे तो होकरा तो नहीं दिला सकते।'* खेतके मचानपर बैठा सकते हो, किंतु जबतक कि चिल्ला-चिल्लाकर जानवरोंको न भगावेंगे, तबतक खेतकी रक्षा थोड़े ही होगी। फल यही हुआ कि सनातनजी जान-बूझकर अपने काममें लापरवाही करने लगे। बादशाहने अप्रसन्न होकर इन्हें कैद कर लिया।

कैदमें पहुँचकर इनकी बेचैनी और भी अधिक बढ़ गयी। सोचने लगे, 'एक बार किसी प्रकार कारावाससे बाहर हो जायँ, तब तो बेड़ा पार ही है। महाप्रभुके दर्शनोंसे अपनेको पवित्र बना लें।' किसी प्रकार बन्धनसे मुक्त होनेकी आशा न देखकर इन्होंने जेलके दरोगाको अपनी ओर मिलाया। उससे इन्होंने कहा—'देखो भाई! मैंने तुम्हारे साथ कितने अहसान किये हैं, तुम यदि मुझे किसी प्रकार इस कारागारसे मुक्त कर सको तो मैं तुम्हारा बड़ा ऋणी रहूँगा।' साथ ही इन्होंने उसे रुपयेका भी लोभ दिया। रूप दस हजार रुपये इनके नामसे जमा कर ही गये थे। उन रुपयोंको देकर ये कारागारसे मुक्त हुए और अपने एक ईशान नामक भृत्यके साथ मुसलमान दरवेशका भेष बनाकर चल पड़े। इनके भृत्य ईशानने वस्त्रोंमें कुछ मुहरें छिपा रखी थीं, इससे रास्तेमें इन्हें डाकुओंका भय हुआ। मालूम पड़नेपर इन्होंने सब-की-सब मुहरें एक आदमीको दिलवा दीं। रास्तेमें इन्हें बड़े-बड़े कष्ट झेलने पड़े। ये बादशाहके भयके कारण जंगलोंमें होकर आये थे।

जंगलोंको पार करके इन्होंने ईशानको विदा किया और आप अकेले ही चल पड़े हाजीपुरमें आनेपर इन्हें इनके बहनोई श्रीकान्तजी मिले। उन्होंने जब इन्हें फटे वस्त्रों और दरवेशके वेषमें देखा तब वे अवाक् रह गये। उन्होंने इनसे कुछ काल ठहरने तथा अच्छे नवीन वस्त्र धारण करनेको बहुत कहा, किंतु इन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। उनके बहुत आग्रह करनेपर शीतसे बचनेके निमित्त एक बढ़िया लाल कम्बल ले लिया।

दूसरे दिन ये महाप्रभुके दर्शनोंकी इच्छासे 'गौराचाँद'

'गौराचाँद' रटते हुए आगे चले और कई दिन चलकर काशीजीमें महाप्रभुसे इनकी भेंट हो गयी। महाप्रभुने देखते ही इन्हें छातीसे लगा लिया। तब इनका विधिवत् मुण्डन-संस्कार तथा प्रायश्चित्त कराया और दो महीने-तक अपने पास रखकर भक्तितत्त्व तथा वैष्णव आचार-विचारोंकी शिक्षा देते रहे। काशीमें ये भिक्षान्नसे ही निर्वाह करते थे। महाप्रभुने इनके बढ़िया लाल कम्बलको देखकर कहा था कि अभी मन्त्रीपनेकी बू नहीं गयी है। यह सुनकर इन्होंने तुरंत ही अपना नवीन कम्बल एक अभ्यागतको दे डाला और उसके बदलेमें उससे उसका पुराना कम्बल ले लिया।

दो महीने महाप्रभुके साथ रहकर और उनकी ही आज्ञासे ये वृन्दावन गये। वहाँ दो महीनेतक ये ब्रजके तीर्थोंकी यात्रा करते रहे। इनके पहुँचनेके पूर्व ही इनके भाई रूप इन्हें ढूँढ़नेके लिये ब्रज छोड़कर चले गये थे। अतः ये भी फिर महाप्रभुके पास जगन्नाथजीको रवाना हुए। रास्तेमें इन्हें कुष्ठरोग हो गया था, अतः ये प्रभुके पास जानेमें डरते थे। पुरीमें ये महाप्रभुके स्थानपर न जाकर (यवन) हरिदासके स्थानपर ठहरे। थोड़ी ही देरमें नित्यके अनुसार महाप्रभु भी हरिदासके स्थानपर आ पहुँचे। वहाँपर सनातनको देखकर वे इन्हें अंकमें लगानेके लिये दौड़े। किंतु ये पीछे हट गये और मना करने लगे, 'प्रभु! इस पापीको स्पर्श न कीजिये।' किंतु वे भला कब मानने वाले थे, उन्होंने इन्हें छातीसे लगा लिया। महाप्रभुके शरीरमें भी पीव लग गया।

ये वहीं महाप्रभुके पास रहने लगे। महाप्रभु इन्हें छातीसे लगाकर मिलते थे, इस कारण इन्हें बड़ा क्लेश होता था। इन्होंने यही सोचा कि ऐसे जीवनसे तो मरना ही अच्छा। यह सोचकर इन्होंने समुद्रमें डूबकर आत्मघात करनेका निश्चय किया। महाप्रभुसे सनातनके मनकी बात छिपी न रह सकी। उन्होंने इनसे कहा—'क्यों सनातन! आत्मघातसे क्या हो जायगा—दुःखोंसे तो छूटनेके नहीं, एक और पाप लग जायगा यह कहकर प्रभुने इन्हें छातीसे लगा लिया। उसी दिन उनका कुष्ठ चला गया।

ये एक वर्षतक पुरीमें प्रभुके साथ रहे। तदनन्तर उनकी आज्ञासे वृन्दावन चले गये और अन्ततक वहीं रहकर भजन-कीर्तन तथा ग्रन्थप्रणयन करते रहे। ये बड़े त्यागी और तपोनिष्ठ महात्मा हुए हैं। व्रजमें इनका अच्छा प्रभाव था। इनके बनाये हुए बहुतसे ग्रन्थ हैं। उनमेंसे कुछके नाम ये हैं—बृहद् भागवतामृत, लीलास्तव, गीतावली, हरि-भक्तिविलास, सिद्धान्त-सार।

(३) गोस्वामी श्रीजीवजी—श्रीजीवजी रूप-सनातनके छोटे भाई अनूपके पुत्र थे। इनके पिता पहले ही स्वर्गवासी हो चुके थे। दोनों चाचा गृहस्थाश्रमको त्यागकर वृन्दावनवासी बन चुके थे, फिर भला ये क्यों पीछे पड़ने लगे। अतः ये भी घर-बार त्यागकर श्रीनित्यानन्दजीकी आज्ञा लेकर वृन्दावनकी ओर चल पड़े। वहाँ जाकर इन्होंने सनातनजीसे मन्त्र-दीक्षा ली और वहीं रहकर भजन-कीर्तन तथा शास्त्र-चिन्तन करने लगे। ये अच्छे विद्वान् थे, अतः इनका प्रभाव वहाँकी पण्डित-मण्डलीके ऊपर अच्छा था, बहुतसे राजे-महाराजे भी इन्हें मानते थे। कहते हैं कि गोविन्दजीका मन्दिर महाराज मानसिंहजीने इन्हींकी आज्ञासे बनवाया था।

ये महाप्रभुकी मृत्युके अनन्तर वृन्दावन गये थे। वृन्दावनमें ये यमुनाजीके तटपर एकान्तमें रहते थे। कहते हैं कि एक बार ये बहुत बढ़िया पाटम्बर ओढ़े जा रहे थे, इसपर सनातनजीने इन्हें ताना देते हुए कहा था कि वैष्णव होकर तुम्हें ऐसा श्रृंगार अच्छा नहीं लगता। यह सुनकर इन्होंने उस वस्त्रको तुरंत किसी अभ्यागतको दे डाला। इनके सम्बन्धमें एक कथा और कही जाती है। वह इस प्रकार है—

एक बार एक दिग्विजयी पण्डित दिग्विजयकी इच्छासे वृन्दावनमें शास्त्रार्थ करनेके लिये आया। रूप और सनातन दोनों ही भाइयोंने उससे बिना शास्त्रार्थ किये ही उसे विजय-पत्र लिख दिया। वह दिग्विजयी पण्डित इस पत्रको लेकर जीव गोस्वामीके पास उनसे हस्ताक्षर करानेके लिये गया। इनसे अपने गुरुका इस प्रकार अपमान न सहा गया और उन्होंने उस पण्डितसे शास्त्रार्थ किया। पण्डित पराजित हुआ। यह सुनकर रूप तथा सनातनने कहा—'जीव! अभी तुम अमानी और परम सहिष्णु वैष्णव बननेके योग्य नहीं हो।' उस पण्डितको तुमने अमानी होकर सम्मान प्रदान न करके शास्त्रार्थमें पराजित करके क्या पा लिया?

कुछ भी हो, इस बातसे इन गोस्वामियोंके अमानी और परम सहिष्णु होनेका पता लगता है।

जीव गोस्वामी गण्यमान्य पण्डित और मार्मिक विद्वान् समझे जाते थे। उस समयके सभी लेखक इनके पास अपने ग्रन्थोंपर हस्ताक्षर करानेके लिये जाया करते थे। इनके बनाये हुए कुछ ग्रन्थोंके नाम ये हैं—भागवत-षट्सन्दर्भ, वैष्णवतोषिणी, लघुतोषिणी, गोपालचम्पू।

(४) गोस्वामी श्रीरघुनाथभट्टजी—तपनमिश्र नामके एक बंगाली ब्राह्मण थे। महाप्रभुके गृहस्थाश्रम-कालमें इन्होंने उनका दर्शन किया था और उन्हींकी आज्ञासे ये सपरिवार काशीमें आकर निवास करने लगे थे। महाप्रभु ब्रज जाते हुए इन्हीं तपनमिश्रके अतिथि हुए थे। गोस्वामी रघुनाथभट्ट इन्हीं तपनमिश्रके पुत्र थे। इन्होंने युवावस्थामें ही नीलाचलमें जाकर प्रभुके दर्शन किये थे। इनकी इच्छा सदा प्रभुके साथ रहनेकी थी, किंतु माता-पिताकी सेवा-शुश्रूषाके निमित्त इन्हें प्रभुने पुनः काशीजी ही भेज दिया। इन्होंने प्रभुकी आज्ञासे विवाह नहीं किया था और सदा पठन-पाठनमें ही लगे रहते थे।

माता-पिताका स्वर्गवास होनेपर ये पुरीमें पुनः प्रभुके पास गये और उनकी सेवामें आठ मासतक रहकर बराबर सत्शास्त्रोंके अध्ययन और प्रभुके सदुपदेशोंसे लाभ उठाते रहे। अन्तमें प्रभुकी आज्ञासे ही ये वृन्दावनमें जाकर निवास करने लगे। ये गान-विद्यामें प्रवीण थे, इनका कण्ठ कोकिलकी भाँति कमनीय और सुरीला था। श्रीमद्भागवतकी कथा ये बड़े ही सुरसे कहते थे। ये सदा गोस्वामी श्रीरूपजीकी सभामें भागवतकी कथा कहा करते थे। ब्रजमें इनका प्रभाव अच्छा रहा, दूर-दूरसे लोग इनकी कथा श्रवण करनेके लिये आते थे।

(५) गोस्वामी श्रीरघुनाथदासजी—अम्बुया परगना वर्तमान हुगली जिलेमें एक कृष्णपुर नामका ग्राम है। रघुनाथदासजीके पूर्वज इसी गाँवके रहनेवाले एक प्रतिष्ठित कुलके कायस्थ थे। इनके पिता गोवर्धनदासजी मजूमदार सात ग्रामोंके मालिक तथा उधरके बड़े जमींदार थे। उनकी आय उस समय बारह लाखके लगभग थी। रघुनाथदास बाल्यकालसे ही बड़े सुशील, नम्र और मितभाषी थे। प्रायः धनवानोंके बालक उद्धत, अभिमानी तथा घमण्डी होते हैं, किंतु रघुनाथदास ठीक इसके विपरीत आचरणवाले थे। ये रामचन्द्रपुरमें अपने कुल-पुरोहित बलराममिश्रके यहाँ पढ़नेके लिये जाया करते थे। उन दिनों (यवन) हरिदासजी वहाँके मुसलमान शासकके अत्याचारोंसे दुखी होकर आचार्यके घरमें ही रहकर हरिनामका जप किया करते थे। सब लोग तो उनसे घृणा किया करते थे, किंतु रघुनाथदासजी उनका बड़ा आदर करते थे और उनके पास जाकर उनसे प्रेमपूर्वक वार्तालाप तथा उनके साथ नाम-स्मरण किया करते थे। उनके संसर्गसे इन्हें भी राम-नामका रंग चढ़ने लगा। यह देखकर जमींदार महाशयने इन्हें वहाँसे हटानेका उद्योग किया, हरिदासजी उस स्थानको छोड़कर गंगाजीके तटपर अद्वैतानन्दजीके आश्रममें रहने लगे।

इधर रघुनाथजीको घर-बार कुछ भी अच्छा न लगा। यह देखकर इनके पिताने इन्हें गृहस्थीके कामोंमें लगाया, किंतु काम कौन करे। चित्त जब संसारमें हो, तभी तो सांसारिक कार्य हो सकते हैं। यहाँ चित्त तो चितचोरने चुरा लिया। जिस किसी प्रकार ये काम-काज करने लगे। उन दिनों नित्यानन्दजी महाप्रभुकी आज्ञासे नगर-नगर संकीर्तन करते हुए फिरते थे, ये भी उनके पास गये और उनसे नाम-माहात्म्य तथा गौरांगकी महिमा श्रवण की।

एक दिन रात्रिमें ये चुपकेसे घरसे निकलकर वनों और जंगलोंको पार करते हुए पन्द्रह दिनमें प्रभुके पास पुरी पहुँचे। रास्तेमें इन्हें ग्यारह दिन कुछ भी खानेको नहीं मिला। केवल तीन दिन कुछ थोड़ा-बहुत खानेको मिला। प्रभुने देखते ही इन्हें छातीसे लगा लिया और अपने पास ही रखा। दो-तीन दिनतक तो ये प्रभुके पास प्रसाद पाते रहे, किंतु अन्तमें इन्होंने सोचा—'इस प्रकार प्रसादका दुरुपयोग करना ठीक नहीं है।' यह सोचकर पहले तो ये मन्दिरमें खाने लगे, फिर दुकानोंसे भिक्षा माँगकर निर्वाह करने लगे। अन्तमें भिक्षावृत्तिको भी छोड़कर ये दुकानोंके गले-सड़े अन्नको खाकर निर्वाह करने लगे। प्रभुसे

यह बात छिपी नहीं थी, एक दिन ये उसी गले-सड़े अन्नको खा रहे थे कि प्रभु वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने कहा—'क्यों रघुनाथ! ऐसे अच्छे पदार्थको अकेले-ही-अकेले खा रहे हो। हमें इसमेंसे नहीं दोगे?' यह कहकर प्रभु इनके अन्नको लेकर खाने लगे। ये बार-बार कहते—'प्रभु, यह आपके योग्य नहीं है।' परंतु वे क्यों मानने लगे? अन्तमें इन्हें प्रभु अपने यहाँ ले आये और अपने पास ही रखा।

खबर होनेपर घरसे आदमी इन्हें लौटानेके लिये आये, किंतु इन्होंने जाना स्वीकार नहीं किया, तबसे अन्ततक ये प्रभुके ही पास रहे। प्रभुके तिरोभाव होनेपर ये व्रजमें चले आये और वहीं रहकर—'राधे-राधे' रटते हुए रास-विलासका आनन्द लूटते रहे।

(६) गोस्वामी श्रीगोपालभट्टजी—गोपालभट्टजी दाक्षिणात्य ब्राह्मण श्रीवेंकटके पुत्र थे। जब गौरांग दक्षिणकी यात्राको गये थे, तभी इन्होंने प्रभुके दर्शन किये थे। जब इनके माता-पिता परलोकगामी हुए तब ये सीधे वृन्दावन चले गये और वहीं जाकर रहने लगे।

ये बड़े विचारवान् और परमनिष्ठावाले वैष्णव थे, इन्होंने 'हरि-भक्ति-विलास' नामक ग्रन्थकी रचना की।

इन सभी गोस्वामियोंने मस्तिष्कके ज्ञानद्वारा कृष्णतत्त्वको समझानेमें बड़ा ही प्रशंसनीय कार्य किया। यद्यपि ये व्रजमें महाप्रभुकी आज्ञासे आये थे, किंतु इनकी शैलीमें और महाप्रभुकी शैलीमें आकाश-पातालका अन्तर था। महाप्रभु थे हृदय-प्रधान, वे परम भावुकतामें आकर कार्य करते थे। वे अपनी अनुभूतिद्वारा लोगोंको भक्ति-तत्त्व समझाते थे। ये सभी महात्मागण विचार-प्रधान थे। इन्होंने भक्ति-प्रचारमें तर्कको भी आश्रय दिया था। इनकी परिपाटी सुगम तथा सर्व-जन-ग्राही थी, इन्होंने चैतन्य-चरित्रोंका प्रचार तथा प्रसार न करके कृष्ण-चरित्रोंका ही आश्रय ग्रहण किया और यह इन्होंने उचित ही किया। समयकी गति विचित्र है, थोड़े ही दिनमें क्या-से-क्या हो गया। अस्तु, अन्तमें यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका स्मरण करते हुए हम इन महात्माओंके संक्षिप्त चरित्रको समाप्त करते हैं।—श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

निकुंजलीला के अनन्य रसिकभक्त नागाजी

पयगाँवके चतुरानागाजी व्रजमें एक अतिप्रसिद्ध भावुक भक्त हो गये हैं। वे आनन्दमग्नावस्थामें नित्य व्रजपरिक्रमा किया करते थे। एक दिन उनकी जटा कदम्बखण्डीकी एक झाड़ीमें उलझ गयी। बहुत प्रयत्न किया, पर नहीं सुलझी, तब आपने निश्चय किया—'जिसने उलझायी है, अब वही आकर सुलझायेगा।' वहाँ गौओंको चराने आनेवाले ग्वालबालों तथा अन्यान्य लोगोंने बहुत प्रार्थना की—'बाबा, हम सुलझा दें।' पर आपने किसीकी न सुनी, अटल निश्चय किया—'बस, अब तो वही आयेगा, तभी सुलझेगी।' आप इसी प्रणयकोप अथवा भावावेशमें बहुत समयतक उसी तरह खड़े रहे। नागाजीकी प्रतिज्ञासे श्रीश्यामसुन्दर अधीर हो उठे। वे आये और नागाजीकी जटा अपने कोमल करोंसे सुलझानेको ज्यों ही उद्यत हुए, नागाजीने रोक दिया। कहा—'पहले आप अपना परिचय दीजिये, आप कौनसे कृष्ण हैं—व्रजके, वनके या निकुंजके? हम तो निकुंजके उपासक हैं।' श्रीप्रभुने कहा—'बाबा, मैं वही हूँ, जाकी तुम उपासना करो हो।' नागाजीने कहा—'कैसे विश्वास हो? इसका प्रमाण कौन दे?' श्रीप्रभुने कहा—'जैसे तुमकूँ विश्वास हो, सोई करो।' नागाजीने कहा—'यदि हमारी श्रीस्वामिनीजू आकर कहें कि हाँ, ये निकुंजके ही श्याम हैं, तब हम मानें।' इतनेमें श्रीव्रजेश्वरी वृषभानुनन्दिनी श्रीस्वामिनीजू भी पधारीं और उन्होंने नागाजीको विश्वास दिलाया कि ये ही नित्यनिकुंज-मन्दिरस्थ श्रीश्यामसुन्दर हैं, तब अनुमति मिलनेपर बड़ी उत्सुकतासे श्रीप्रभुने चार हाथ लगाकर नागाजीकी जटा सुलझायी। —श्रीकरपात्रीस्वामीद्वारा प्रवचनमें प्रकाशित

श्रीहितहरिवंश महाप्रभु

श्रीराधामाधव

स्वामी श्रीहरिदासजी
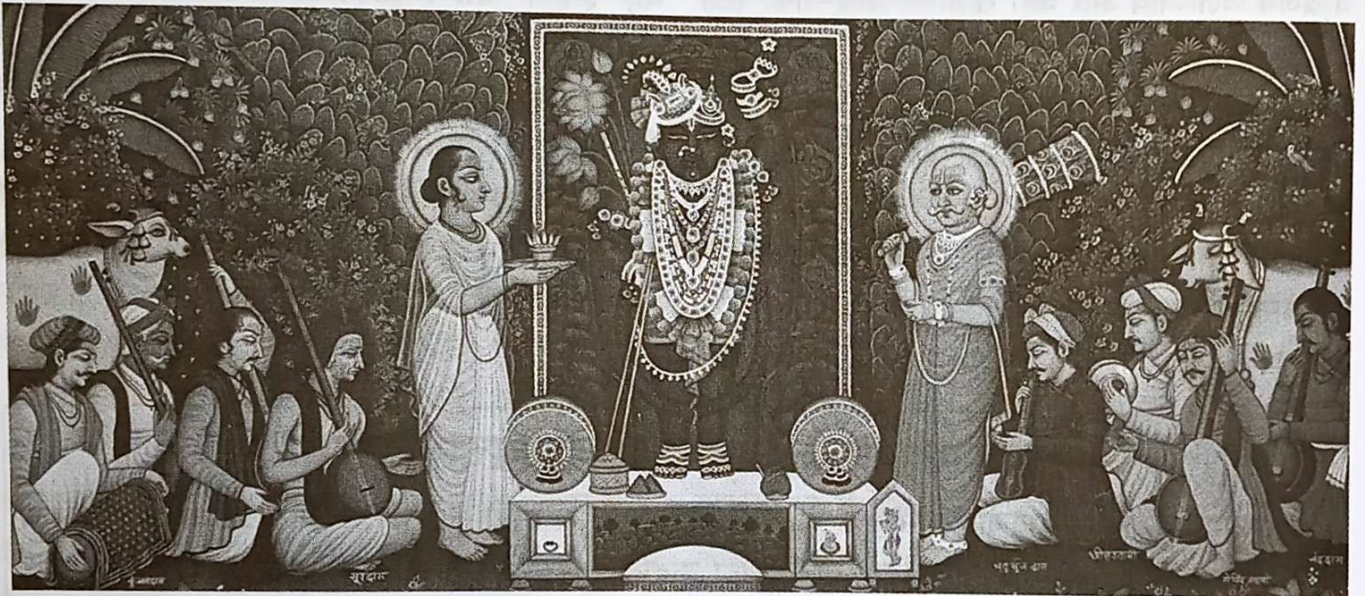
महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य, गो० श्रीविट्ठलनाथजी एवं अष्टछापके भक्तकवि

श्रीनिम्बार्काचार्यजी

भक्त श्रीनरसी मेहता

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य

महाप्रभु वल्लभाचार्य और अष्टछापके भक्त कवि

महाप्रभु वल्लभाचार्य

मध्यकालमें कृष्णभक्तिके प्रचार-प्रसारमें वल्लभ-सम्प्रदाय और उसके अष्टछापके कवियोंने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। वल्लभसम्प्रदायके प्रधान आचार्य और संस्थापक महाप्रभु वल्लभाचार्यजी थे। इन्होंने सन् १५१९ ई० के लगभग अपने मतका प्रधान केन्द्र श्रीनाथजीके मन्दिरको बनाया। वल्लभाचार्य मूलत: दक्षिणसे थे और राजा कृष्णदेव रायके दरबारमें शास्त्रार्थद्वारा विभिन्न विद्वानोंको पराजितकर 'महाप्रभु'की पदवीसे विभूषित हुए थे। दर्शनके क्षेत्रमें उनका मत शुद्धाद्वैतवादके नामसे प्रचलित हुआ। उनका जन्म संवत् १५३५ विक्रमी, वैशाख कृष्ण एकादशीको रायपुरके निकट चम्पारण्यमें विष्णुस्वामी-मतावलम्बी भक्त श्रीलक्ष्मणभट्टके यहाँ हुआ। इनकी माँका नाम 'इलम्मागारु' था। इनका विवाह श्रीदेवभट्टजीकी कन्या महालक्ष्मीसे हुआ। महालक्ष्मीसे इन्हें दो पुत्र हुए—गोपीनाथ और विट्ठलनाथ।

आचार्य वल्लभने श्रीकृष्णको ही परमपिता परमेश्वर माना। वे नित्य, स्वतन्त्र और सर्वज्ञ हैं। सर्वत्र व्याप्त तथा नाशरहित हैं। वे पारमार्थिक सगुण रूपमें लीलाएँ करते हैं। उनकी लीलाएँ अप्राकृत हैं; जो उन्हींके समान हैं। श्रीकृष्णमें ही तीनों गुण सत्-चित्-आनन्दकी व्याप्ति है, भगवती श्रीराधाजी इनकी आह्लादिनी शक्ति हैं, जो शाश्वत हैं। अत: जीवको उन्हींकी अनुकम्पा या अनुग्रह प्राप्त करनेका सुझाव दिया, जिसके लिये उन्होंने पुष्टिको आवश्यक बताया। वैसे तो वल्लभाचार्यने कई ग्रन्थ लिखे, जिनमें पूर्वमीमांसा भाष्य, उत्तरमीमांसापर अणुभाष्य, श्रीमद्भागवतकी सुबोधिनी-टीका, तत्त्वदीप-निबन्ध, पुरुषोत्तमसहस्रनाम, शृंगाररसमण्डन, विद्वन्मण्डन आदि मुख्य हैं। परंतु उनके शुद्धाद्वैतवादका प्रतिपादक ब्रह्म-सूत्रका 'अणुभाष्य' ही है।

अष्टछापके कवि

अष्टछापके कवियोंमेंसे चार सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास तथा कृष्णदास वल्लभाचार्यजीके तथा बाकी चार गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास और नन्ददास वल्लभाचार्यजीके कनिष्ठ पुत्र विट्ठलनाथके शिष्य थे। सन् १५६५ई०में विट्ठलनाथजीने उन भक्त कवियोंको अष्टसखा या अष्टछापकी संज्ञा दी, जो श्रीनाथजीकी सेवाके आठ प्रहरोंके लिये नियुक्त किये गये थे। ये आठ प्रहर हैं—शृंगार, मंगलाचरण, ग्वाल, राजयोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या-आरती तथा शयन। इन्हीं आठ प्रहरोंकी सेवाके लिये मन्दिर-प्रांगणमें ये भक्त कवि पदोंको गाया करते थे। इनके पदोंसे भक्ति और साहित्यकी ऐसी स्वर्णिम लहर उठी, जिससे हिन्दी साहित्यका सम्पूर्ण मध्यकाल भीग गया। इन कवियोंका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. कुम्भनदास

हरिरायकृत भावप्रकाशके अनुसार कुम्भनदासजीका जन्म गोवर्धनके निकट जमुनावतो ग्राममें संवत् १५२५ विक्रमी कार्तिक कृष्ण एकादशीको हुआ। ये अष्टसखाओंमें आयुकी दृष्टिसे सबसे बड़े थे। इनके सात पुत्र थे, जिनमें सबसे छोटे चतुर्भुजदास थे। चतुर्भुजदास बादमें विट्ठलनाथसे दीक्षा लेकर पुष्टिमार्गमें प्रवृत्त हुए।

कुम्भनदासजी गोरवा क्षत्रिय थे और खेती करके अपनी आजीविका चलाते थे। धनका अभाव होनेपर भी उन्होंने कभी किसीके सामने हाथ नहीं पसारा। भगवद्भक्ति ही उनकी सम्पत्ति थी और श्रीनाथजी ही उनके धन थे। श्रीनाथजीके शृंगार और युगललीलासम्बन्धी पदोंकी रचनामें उनकी विशेष अभिरुचि थी। वृद्धावस्थामें भी वे नित्य जमुनावतोसे श्रीनाथजीके दर्शनके लिये गोवर्धन आया करते थे। महाप्रयाणके समय गोसाईं विट्ठलनाथजीने पूछा—'इस समय मन किस लीलामें लगा है?' कुम्भनदासजीने कहा—

लाल तेरी चितवन चितहि चुरावै।
नन्दग्राम बृषभानुपुरा बिच मारग चलन न पावै॥
हों भरिहों डरिहों नहिं काहू, ललिता दृगन चलावै।
कुम्भनदास प्रभु गोवर्धनधर धर्‌यौ सो क्यों न बतावै॥

संवत् १६३९ वि० में लगभग एक सौ तेरह वर्षकी

आयुमें उन्होंने महाप्रयाण किया। अन्त समयमें भी उन्होंने युगलस्वरूपका ही वर्णन किया और निम्नलिखित पदका गायन करते हुए निकुंज-लीलामें प्रवेश किया—

रसिकनी रस में रहत गड़ी।
कनक बेलि बृषभानुनंदिनी स्याम तमाल चढ़ी॥
बिहरत श्रीगिरिधरन लाल सँग, कोने पाठ पढ़ी।
'कुँभनदास' प्रभु गोवर्धनधर रति रस केलि बढ़ी॥

२. सूरदास

सूरदासजीका जन्म वैशाख शुक्ल पंचमी दिन मंगलवारको संवत् १५३५ वि०में रुनकता ग्राममें हुआ। ये कृष्णके अनन्य भक्त थे। इनके द्वारा रचित तीन ग्रन्थ मिलते हैं—सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य-लहरी। सूरसारावलीमें लम्बे फगुआ (होली) गीत हैं। साहित्य-लहरीमें ११८ दृष्टकूट पद हैं, जिनका विषय नायिकाभेद है। जो सम्भवत: कृष्णदासजीके आग्रहके उपरान्त लिखा गया। परंतु इनकी प्रसिद्धिका मूल भागवत-पुराणका आधार लिये हुए बृहद् ग्रन्थ सूरसागर ही है। इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका अत्यन्त हृदयहारी चित्रण है।

कृष्णकी बाल-लीलाओंके पदोंको देखकर नहीं लगता कि सूरदास जन्मान्ध थे। ब्रज और अवध प्रदेशमें प्रचलित लोककथाके अनुसार श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी अन्यके रूपको न देखनेकी इच्छासे ही उन्होंने अपनी आँखें स्वयं फोड़ ली थीं।

संवत् १६२० वि० में लगभग ८५ वर्षकी अवस्थामें मथुराके पारसौली ग्राममें सूरदासजीका गोलोकवास हुआ। अन्तिम समयमें गोसाईं विट्ठलनाथजीके चित्तवृत्तिके विषयमें पूछनेपर उन्होंने कहा कि 'मैं राधारानीकी वन्दना करता हूँ, जिनसे नन्दनन्दन प्रेम करते हैं।' उस समय सूरदासजीने श्रीराधामाधवकी रसमयी छविका ध्यान किया और यह पद गाकर सदाके लिये ध्यानस्थ हो गये—

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते॥
चलि चलि जात निकट स्त्रवननि के, उलटि पलटि ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ जाते॥

३. परमानन्ददास

इनका जन्म सं० १५५० वि०में कन्नौजके एक गरीब ब्राह्मण-परिवारमें हुआ। इन्होंने वल्लभाचार्यजीसे अरैल (प्रयाग)-में सं० १५७६ वि० में दीक्षा ली। ब्रह्मचर्यका आजीवन पालन करते हुए श्रीकृष्णके माधुर्यपक्ष और बाल-लीलाओंका गान किया। वल्लभाचार्यजी भी इनके पदोंके प्रशंसक थे। इनके कई ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें परमानन्दके पद, परमानन्दसागर महत्त्वपूर्ण हैं।

सं० १६४१ वि० में भाद्रपद कृष्ण नवमीको उन्होंने गोलोक प्राप्त किया। वे उस समय सुरभी-कुण्डपर थे। मध्याह्नका समय था। गोसाईं विट्ठलनाथ उनके अन्तसमयमें उपस्थित थे। परमानन्दका मन युगलस्वरूपकी माधुरीमें संलग्न था। उन्होंने गोसाईंजीके सामने निवेदन किया—

राधे बैठी तिलक सँवारति।
मृगनैनी कुसुमायुध कर धरि नंद सुवनको रूप बिचारति॥
दर्पन हाथ सिंगार बनावति, बासर जुग सम टारति।
अंतर प्रीति स्यामसुंदर सों हरि सँग केलि सँभारति॥
बासर गत रजनी ब्रज आवत मिलत गोबर्धन प्यारी।
'परमानँद' स्वामी के संग मुदित भई ब्रजनारी॥

इस प्रकार श्रीराधाकृष्णकी रूप-सुधाका चिन्तन करते हुए उन्होंने अपनी गोलोक-यात्रा सम्पन्न की।

४. कृष्णदास

इनका जन्म गुजरात राज्यके चिलोतरा ग्राममें हुआ था। सं० १५६६ वि०के लगभग मथुरामें वल्लभाचार्यजीने इन्हें दीक्षा दी। अपनी प्रशासनिक रुचिके कारण ही ये श्रीनाथजीके मन्दिरके अधिकारी पदपर विभूषित हुए थे। कहते हैं कि वल्लभाचार्यजीकी मृत्युके बाद उनके पौत्र पुरुषोत्तमको गद्दीपर बिठानेके लिये इन्होंने विट्ठलनाथजीसे विवाद भी कर लिया था। मन्दिरके वैभव और ऐश्वर्यकी वृद्धिमें इनका महत्त्वपूर्ण योगदान था। इनका गोलोकवास लगभग संवत् १६६५ वि० में हुआ। कहते हैं, अन्त समयमें उन्होंने यह पद गाया था—

मो मन गिरिधर-छबि पै अटक्यो।
ललित त्रिभंग चाल पै चलिकै, चिबुक चारु गढ़ि ठटक्यो॥
सजल स्याम घन बरन लीन है, फिरि चित अनत न भटक्यो।
कृष्णदास किये प्रान निछावर, यह तन जग सिर पटक्यो॥

५. नन्ददास

अनुश्रुतिके अनुसार ये गोस्वामी तुलसीदासके चचेरे भाई थे। इनका जन्म सं० १५९०वि० में तथा मृत्यु सं० १६३९ वि०में हुई। तुलसीदास और नन्ददास दोनोंने प्रारम्भमें नृसिंह पण्डितसे शिक्षा ग्रहण की। पंडित नृसिंह रामोपासक थे, अतः प्रारम्भमें इनकी रुचि रामभक्तिकी ओर थी। किंतु एक दिन द्वारिका जाते हुए मार्गमें इनकी मुलाकात विट्ठलनाथजीसे हुई और वहीं इन्होंने पुष्टिमार्गकी दीक्षा ली। इन्होंने कुल १५ ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें अनेकार्थमंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, प्रेम-बारहखड़ी, श्याम-सगाई, सुदामा-चरित्र, रुक्मिणी-मंगल, भँवरगीत, रासपंचाध्यायी, सिद्धान्तपंचाध्यायी, दशमस्कन्धभाषा, गोवर्धनलीला, पदावली प्रमुख हैं। इन्होंने अपने शुद्धाद्वैत-सम्बन्धी विचारोंको अनेकार्थमंजरीमें संकलित किया है। किंतु लौकिक-पारलौकिक प्रेम एवं भाषा-सौष्ठवकी दृष्टिसे इनकी श्रेष्ठ कृति रासपंचाध्यायी है। रासपंचाध्यायी भागवतमें दशम स्कन्धके २९वें-से ३३वें अध्यायोंका सम्मिलित नाम है। जो मूलतः रोला छन्द में है। रासपंचाध्यायीमें 'मुरली-वर्णन' द्रष्टव्य है—

तब लीनी कर-कमल जोग माया सी मुरली।
अघटित घटना चतुर बहुरि अधरासव जुर ली॥
जाको धुनि तें अगम निगम प्रगटे बड़ नागर।
नाद ब्रह्म की जननि मोहिनी सब सुख सागर॥
नागर नवल किसोर कान्ह कल-गान कियो अस।
वाम विलोचन बालन को मन हरन होइ जस॥

६. गोविन्दस्वामी

इनका जन्म सं० १५६२ वि०में भरतपुर राज्यमें हुआ। कहते हैं तानसेनको पद-गायनकी शिक्षा गोविन्दस्वामीने ही दी थी। इनकी कविताएँ मुख्यतः राधा-कृष्णकी शृंगारिक लीलाओंसे सम्बन्धित हैं। कुछ पद बाललीला-विषयक भी हैं। इनके लगभग ६०० पदोंका संकलन 'गोविन्दस्वामीके पद' शीर्षकसे प्रकाशित है।

गोविन्दस्वामीने गोवर्धनमें एक कन्दराके निकट संवत् १६४२ वि० में लीला-प्रवेश किया। उन्होंने आजीवन श्रीराधा-कृष्णकी शृंगार-लीलाके पद गाये, भगवान्‌को अपने संगीत और काव्य-कलासे रिझाया। राधा-कृष्णकी होली-क्रीडासे सम्बन्धित इनका एक पद द्रष्टव्य है—

विराजत स्याम मनोहर प्यारो॥
प्रभु तिहूँ लोक उजियारो॥
सरस बसन्त समें बन सोभा श्री व्रजराज विराजें॥
सुर नर मुनि सब कौतुक भूलें देखि मदन कुल लाजें॥
रंग सुरंग कुसुम नाना रँग सोभा कहत न आवें॥
नवल किशोर और नवल किशोरी राग रागिनी गावें॥
चोवा चंदन अगर कुमकुमा उड़त गुलाल अबीर॥
छिरकत केशरि नव वंशीवट कालिंदी के तीर॥
ताल मृदंग उचंग मुरज डफ ढोल भेरि सहनाई॥
अद्‌भुत चरित रच्यो ब्रजभूषन शोभा बरनि न जाई॥

७. छीतस्वामी

ये मथुराके ब्राह्मण और राजा बीरबलके पुरोहित थे। गोस्वामी विट्ठलनाथजीकी चमत्कारपूर्ण दिव्य शक्तिसे प्रभावित होकर इन्होंने सं० १५९२ वि०के लगभग उनसे दीक्षा ली। ये मूलतः अपने पदोंमें भक्तिभावकी ही अभिव्यक्ति किया करते थे। इनका यह पद बड़ा ही प्रसिद्ध है—

ऐहो बिधना! तो पै अँचरा पसार माँगौं।
जनम-जनम दीजो मोहि याही ब्रज वसिबौ॥

८. चतुर्भुजदास

कुम्भनदासजीके सात पुत्रोंमें चतुर्भुजदासजी सबसे छोटे थे। परम्परागत खेती-बाड़ीसे अलग संगीत-काव्य और भजन-कीर्तनकी ओर ही इनकी रुचि थी। इनको गानविद्या स्वयं इनके पिता कुम्भनदासजीने दी थी। इनके पदोंमें शृंगारकी अद्भुत छटा है, जो इनके द्वारा रचित ग्रन्थों चतुर्भुज-कीर्तन, कीर्तनावली और दानलीलामें संगृहीत हैं। राधा-कृष्णके झूला झूलनेसे सम्बन्धित इनका एक पद द्रष्टव्य है—

हिंडौरें माई झूलत गिरिबरधारी!
बाम भाग वृषभानुनंदिनी, पहरै कुसुंभी सारी॥
ब्रज जुबती चहुँ दिसि तैं ठाढ़ी, निरखत तन मन वारी।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन लाल सँग, बाढ़्यौ रँग अतिभारी॥

[श्रीआनन्दकुमार शुक्ला]

श्रीहितहरिवंशजी गोस्वामी

रसिकभक्तशिरोमणि गोस्वामी श्रीहितहरिवंशचन्द्र महाप्रभुजीका जन्म मथुराके निकट बादग्राममें वि० संवत् १५५९ वैशाख शुक्ला एकादशीको हुआ था। इनके पिताका नाम श्रीव्यासमिश्रजी और माताका श्रीतारादेवी था। व्यासमिश्रजी नौ भाई थे, जिनमें सबसे बड़े श्रीकेशवदासजी तो संन्यास ग्रहण कर चुके थे। उनके संन्यासाश्रमका नाम श्रीनृसिंहाश्रमजी था। शेष आठ भाइयोंके केवल यही एक व्यास-कुलदीपक थे, इसलिये ये सभीको प्राणोंसे बढ़कर प्रिय थे और इसीसे इनका लालन-पालन भी बड़े लाड़-चावसे हुआ था। ये बड़े ही सुन्दर थे और शिशुकालमें ही 'राधा' नामके बड़े प्रेमी थे। 'राधा' सुनते ही ये बड़े जोरसे किलकारी मारकर हँसने लगते थे। कहते हैं कि छः महीनेकी अवस्थामें ही इन्होंने पलनेपर पौढ़े हुए 'श्रीराधा-सुधानिधि' स्तवका गान किया था, जिसे आपके ताऊ स्वामी श्रीनृसिंहाश्रमजीने लिपिबद्ध कर लिया था।

इनके बालपनकी कुछ बातें बड़ी ही विलक्षण हैं, जिनसे इनकी महत्ताका कुछ अनुमान होता है। एक दिन ये अपने कुछ साथी बालसखाओंके साथ बगीचेमें खेल रहे थे। वहाँ इन्होंने दो गौर-श्याम बालकोंको श्रीराधा-मोहनके रूपमें सुसज्जित किया। फिर कुछ देर बाद दोनोंके शृंगार बदलकर श्रीराधाको श्रीमोहन और श्रीमोहनको श्रीराधाके रूपमें परिणत कर दिया और इस प्रकार वेश-भूषा बदलनेका खेल खेलने लगे।

प्रातःकालका समय था। इनके पिता श्रीव्यासजी अपने सेव्य श्रीराधाकान्तजीका शृंगार करके मुग्ध होकर युगलछविके दर्शन कर रहे थे। उसी समय आकस्मिक परिवर्तन देखकर वे चौंक पड़े। उन्होंने श्रीविग्रहोंमें श्रीराधाके रूपमें श्रीकृष्णको और श्रीकृष्णके रूपमें राधाजीको देखा। सोचा, वृद्धावस्थाके कारण स्मृति नष्ट हो जानेसे शृंगार धरानेमें भूल हो गयी है। क्षमा-याचना करके उन्होंने शृंगारको सुधारा। परंतु तुरंत ही अपने-आप वह शृंगार भी बदलने लगा। तब घबराकर व्यासजी बाहर निकले। सहसा उनकी दृष्टि बागकी ओर गयी, देखा—हरिवंश अपने सखाओंके साथ खेल-खेलमें वही स्वरूप-परिवर्तन कर रहा है। उन्होंने सोचा इसकी सच्ची भावनाका ही यह फल है। निश्चय ही यह कोई असाधारण महापुरुष है।

एक बार श्रीव्यासजीने अपने सेव्य श्रीठाकुरजीके सामने लड्डूका भोग रखा; इतनेमें ही देखते हैं कि लड्डुओंके साथ फल-दलोंसे भरे बहुत-से दोने थालमें रखे हैं। इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उस दिनकी बात याद आ गयी। पूजनके बाद इन्होंने बाहर जाकर देखा तो पता लगा कि हरिवंशजीने बगीचेमें दो वृक्षोंको नीले-पीले पुष्पोंकी मालाओंसे सजाकर युगल-किशोरकी भावनासे उनके सामने फल-दलका भोग रखा है। इस घटनाका भी व्यासजीपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

एक बार श्रीहरिवंशजी खेल-ही-खेलमें बगीचेके पुराने सूखे कुएँमें सहसा कूद पड़े। इससे श्रीव्यासजी, माता और कुटुम्बके लोगोंको तो अपार दुःख हुआ ही, सारे नगरनिवासी व्याकुल हो उठे। व्यासजी तो शोकाकुल होकर कुएँमें कूदनेको तैयार हो गये। लोगोंने जबरदस्ती उन्हें पकड़कर रखा। कुछ ही क्षणोंके पश्चात् लोगोंने देखा, कुएँमें एक दिव्य प्रकाश फैल गया है और श्रीहरिवंशजी श्रीश्यामसुन्दरके मंजुल श्रीविग्रहको अपने नन्हे-नन्हे कोमल करकमलोंसे सम्हाले हुए अपने-आप कुएँसे ऊपर उठते चले आ रहे हैं। इस प्रकार आप ऊपर पहुँच गये और पहुँचनेके साथ ही कुआँ निर्मल जलसे भर गया। माता-पिता तथा अन्य सब लोग आनन्द-सागरमें डुबकियाँ लगाने लगे। श्रीहरिवंशजी जिन भगवान् श्यामसुन्दरके मधुर मनोहर श्रीविग्रहको लेकर ऊपर आये थे, उस श्रीविग्रहकी शोभाश्री अतुलनीय थी। उसके एक-एक अंगसे मानो सौन्दर्य-माधुर्यका निर्झर बह रहा था। सब लोग उसका दर्शन करके निहाल हो गये। तदनन्तर श्रीठाकुरजीको राजमहलमें लाया गया और बड़े समारोहसे उनकी प्रतिष्ठा की गयी। श्रीहरिवंशजीने उनका परम रसमय नामकरण किया—श्रीनवरंगीलालजी। अब श्रीहरिवंशजी निरन्तर अपने

श्रीनवरंगीलालजीकी पूजा-सेवामें निमग्न रहने लगे। इस समय इनकी अवस्था पाँच वर्षकी थी।

इसके कुछ ही दिनों बाद इनकी अतुलनीय प्रेममयी सेवासे विमुग्ध होकर साक्षात् रासेश्वरी नित्य-निकुंजेश्वरी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाजीने इन्हें दर्शन दिये, अपनी रस-भावनापूर्ण सेवा-पद्धतिका उपदेश किया और मन्त्रदान करके इन्हें शिष्यरूपमें स्वीकार किया।

आठ वर्षकी अवस्थामें आपका उपनयनसंस्कार हुआ और सोलह वर्षकी अवस्थामें श्रीरुक्मिणीदेवीसे आपका विवाह हो गया। पिता-माताके गोलोकवासी हो जानेके बाद आप सब कुछ त्यागकर श्रीवृन्दावनके लिये विदा हो गये। श्रीनवरंगीलालजीकी सेवा भी आपने अपने पुत्रोंको सौंप दी।

देववनसे आप चिड़यावल आये। यहाँ आत्मदेव नामक एक भक्त ब्राह्मणके घर ठाकुरजी श्रीराधावल्लभजी विराजमान थे। आत्मदेवजीको स्वप्नादेश हुआ कि तुम्हारी जो दोनों पुत्रियाँ (श्रीकृष्णदासी और मनोहरी) हैं, उनका हितहरिवंशजीसे विवाह कर दो और दहेजरूपमें मुझे दे देना। यदि वे विवाहके लिये न मानें तो उन्हें मेरी आज्ञा बता देना, तब वे प्रस्तुत हो जायँगे। आत्मदेवजीने ऐसा ही किया और उसीके अनुसार श्रीराधावल्लभजी महाराजको हरिवंशजी वृन्दावन ले आये।

वृन्दावनमें मदन-टेर नामक स्थानमें श्रीराधा-वल्लभजीने प्रथम निवास किया। इसके पश्चात् इन्होंने भ्रमण करके श्रीवृन्दावनके दर्शन किये और प्राचीन एवं गुप्त सेवाकुंज, रासमण्डल, वंशीवट एवं मानसरोवर नामक चार पुण्यस्थलोंको प्रकट किया। तदनन्तर आप सेवाकुंजके समीप ही कुटियामें रहने लगे तथा श्रीराधावल्लभजीका प्रथम प्रतिष्ठा-उत्सव इसी स्थानपर हुआ।

श्रीराधावल्लभजीकी आज्ञासे श्रीहितहरिवंशजीने श्रीश्यामाश्याम युगल-सरकारकी निकुंजलीलाका क्रिया और काव्यद्वारा प्रचार-प्रसार किया।

स्वामी श्रीहरिदासजीसे आपका अभिन्न प्रेमका सम्बन्ध था और ओरछेके राजपुरोहित एवं गुरु प्रसिद्ध भक्त श्रीहरिरामजी व्यासने भी आकर श्रीहिताचार्य प्रभुजीसे ही दीक्षा ग्रहण की थी। 'श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्' के निर्माता महाप्रभु श्रीचैतन्यके प्रसिद्ध भक्त स्वामी श्रीप्रबोधानन्दजीकी भी आपके प्रति बड़ी निष्ठा और प्रीति थी।

श्रीभगवान्‌की सेवामें किस प्रकार अपनेको लगाये रखकर कैसे अपने हाथों सारी सेवा करनी चाहिये, इसकी सुन्दर शिक्षा श्रीहितहरिवंश प्रभुजीके जीवनकी एक घटनासे मिलती है। श्रीहितहरिवंशजी एक दिन मानसरोवरपर अपने कोमल करकमलोंसे सूखी लकड़ियाँ तोड़ रहे थे। इसी समय आपके प्रिय शिष्य दीवान श्रीनाहरमलजी दर्शनार्थ वहाँ आ पहुँचे। नाहरमलजीने प्रभुको लकड़ियाँ तोड़ते देख दुखी होकर कहा—'प्रभो! आप स्वयं लकड़ी तोड़नेका इतना बड़ा कष्ट क्यों उठा रहे हैं, यह काम तो किसी कहारसे भी कराया जा सकता है।····यदि ऐसा ही है तो फिर हम सेवकोंका तो जीवन ही व्यर्थ है।'

नाहरमलके आन्तरिक प्रेमसे तो प्रभुका मन प्रसन्न था, परंतु सेवाकी महत्ता बतलानेके लिये उन्होंने कठोर स्वरमें कहा—'नाहरमल! तुम-जैसे राजसी पुरुषोंको धनका बड़ा मद रहता है, तभी तो तुम श्रीठाकुरजीकी सेवा कहारोंके द्वारा करवानेकी बात कहते हो। तुम्हारी इस भेद-बुद्धिसे मुझे बड़ा कष्ट हुआ।' कहते हैं कि श्रीहितहरिवंश प्रभुजीने उनको अपने पास आनेतकसे रोक दिया। आखिर जब नाहरमलजीने दुखी होकर अनशन किया—पूरे तीन दिन बीत गये, तब वे कृपा करके नाहरमलजीके पास गये और प्रेमपूर्ण शब्दोंमें बोले—'भैया! प्रभुसेवाका स्वरूप बड़ा विलक्षण है। प्रभुसेवामें हेयोपादेय बुद्धि करनेसे जीवका अकल्याण हो जाता है। ऐसा विरोधी भाव मनमें नहीं लाना चाहिये। प्रभुसेवा ही जीवका एकमात्र धर्म है। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम अन्न-जल ग्रहण करो।' यों कहकर उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे प्रसाद दिया और भरपेट भोजन कराया।

श्रीहितहरिवंशजी महाराज राधावल्लभ-सम्प्रदायके मेरुदण्ड हैं, इन्हें श्रीकृष्णकी वंशीका अवतार माना जाता है। अड़तालीस वर्षोंतक इस धराधामको पावन करनेके पश्चात् सं० १६०९ वि० की शारदीय पूर्णिमाके दिन आपने निकुंजलीलामें प्रवेश किया।

गोस्वामी हितहरिवंश-रचित दो हिन्दी ग्रन्थ 'हित चौरासी' और 'स्फुट वाणी' तथा दो संस्कृत ग्रन्थ 'राधासुधानिधि' एवं 'यमुनाष्टक' प्राप्त होते हैं। राधाजीकी स्तुतिमें रचित उनका यह पद द्रष्टव्य है—

ब्रज नव तरुनि कदम्ब मुकुटमनि स्यामा आजु बनी।
नख सिख लौं अँग-अँग माधुरी मोहे स्याम धनी॥
यौं राजत कबरी गूथित कच कनक कंज बदनी।
चिकुर चंद्रकनि बीच अरध बिधु मानौ ग्रसत फनी॥
(जै श्री) हित हरिवंश प्रशंसित स्यामा कीरति बिसद घनी।
गावत श्रवननि सुनत सुखाकर बिस्व दुरित दवनी॥

श्रीहित ध्रुवदासजी

श्रीध्रुवदासजीके घरका क्या नाम था, कुछ पता नहीं। इनके पूर्व-संस्कारोंने इनमें केवल पाँच वर्षकी ही अवस्थामें उत्कट वैराग्य और प्रभु-प्रेमकी लगन उत्पन्न कर दी थी। बालकभक्त ध्रुवने भी पाँच वर्षमें अपनेमें यह लगन पायी थी। इस साम्यके कारण इन्हें लोग ध्रुवदास कहने लगे।

श्रीध्रुवदासजीके पिता श्यामदासजी कायस्थ देववन (सहारनपुर)-के निवासी थे। इनके यहाँ कई पीढ़ियोंसे भक्ति चली आ रही थी। इसलिये इनमें भी वही संस्कार प्रकट हुए। बालक ध्रुवदासके बाबा श्रीबीठलदासजी बड़े गुरुभक्त थे, जिन्होंने अपने गुरुदेव श्रीहितहरिवंशचन्द्र महाप्रभुके वियोगमें अपने प्राणतक विसर्जन कर दिये।

श्रीध्रुवदासजीका जन्म लगभग सम्वत् १६४० के समीपका माना जाता है। ये पाँच वर्षकी अवस्थामें गृह-त्याग करके श्रीवन आ गये और इन्होंने दस वर्षकी अवस्थामें ही प्रभुप्राप्ति कर ली।

इन्होंने बचपनमें ही वैष्णवी दीक्षा ले ली थी। इनके गुरुदेव श्रीगोपीनाथजी महाराज गोस्वामी श्रीहितहरिवंशचन्द्र महाप्रभुके तृतीय पुत्र थे। श्रीध्रुवदासजी बड़े एकान्त-प्रेमी भक्त थे। ये अपनी सरस वन-विहारकी भावनाओंमें तल्लीन हुए श्रीवनकी बीहड़ वनस्थलीमें पड़े रहते थे। इनका सरस हृदय कवित्वशक्तिसे पूर्ण था। ये मेधावी, सुशील और नम्र थे। बाल्यकालमें ही इन्होंने विद्याध्ययन किया, फिर जीवनभर उसकी सरस साधनामें लगे रहे।

श्रीध्रुवदासजीके मनमें युगल-किशोरकी ललित क्रीड़ाओंके वर्णन करनेकी बड़ी अभिलाषा थी; किंतु संतोंके संकोच और अपने प्रभुके भयसे वे ऐसा कर नहीं पाते थे। एक बार चरित्र-लेखनकी उत्कट लालसाने इन्हें विवश कर दिया, जिससे ये वृन्दावन गोविन्दघाटके महारासमण्डलपर श्रीप्रियाजीकी आज्ञा प्राप्त करनेके लिये जा पड़े। लगातार तीन दिन, तीन रात बिना अन्न-जल लिये पड़े रहे। इनकी इस रुचि और लगनसे प्रसन्न होकर प्रेम-मूर्ति स्वामिनी श्रीराधाजीने चौथे दिन अर्ध-रात्रिको दर्शन दिया और इनके सिरपर अपने सुकोमल चरणोंका स्पर्श कराके आशिष और आज्ञा दी कि तुम हमारी ललित क्रीड़ाओंका वर्णन करो। तुम्हारे द्वारा वर्णन किये गये लीला-चरित्र प्रेमी रसिक संतोंको सुखदायी ही होंगे।

श्रीस्वामिनीजीकी आज्ञा पाकर प्रसन्नमनसे श्रीहित ध्रुवदासजीने श्रीराधा-वल्लभलालकी ललित केलिकलाओंका वर्णन किया। इन्होंने बयालीस ग्रन्थोंमें युगलकिशोरके रस, भाव, लीला, स्वरूप, तत्त्व, धाम, केलि आदि अनेक विषयोंका वर्णन किया है। इन सब ग्रन्थोंका संकलितरूप 'बयालीस-लीला' के नामसे प्रसिद्ध है, जिसका प्रचार श्रीध्रुवदासजीके जीवनकालमें ही दूर-दूरतक हो गया था।

श्रीहित ध्रुवदासजीकी श्रीवृन्दावनधाममें अनन्य निष्ठा थी। ये जीवनभर श्रीवनको छोड़कर अन्यत्र कहीं गये ही नहीं। नम्र और सहिष्णु तो इतने थे कि यदि कोई गलत बात कहकर भी इन्हें कुछ अनुचित कह देता, तो भी ये उसका और उसकी बातका कोई प्रतीकार न करते—सब सह लेते थे। इनके जीवनकी कई घटनाएँ इसकी साक्षी हैं।

अन्तमें लगभग सं० १७०० वि० के समीप आप श्रीवन गोविन्दघाट रास-मण्डलपर श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभुके समाधि-स्थलके पास एक तमालके तरुमें सदेह लीन हो गये। वह तमाल आज भी सैकड़ों वर्षोंके बाद महात्मा श्रीहित ध्रुवदासजीकी पावन स्मृति करा रहा है। चाचा श्रीहित वृन्दावनदासके शब्दोंमें—

बलि जाऊँ देस कुल धामकी जहँ ध्रुवदास सो औतर्‌यौ।

स्वामी श्रीहरिदासजी

लगभग साढ़े पाँच सौ साल पहलेकी बात है, वृन्दावनसे आधे कोसकी दूरीपर राजपुर गाँवमें सं० १५३७ वि० के लगभग स्वामी हरिदासजीका जन्म हुआ। उनके पिताका नाम गंगाधर और माताका चित्रादेवी था। वे ब्राह्मण थे। बाल्यावस्थासे ही उन्हें भगवान्की लीलाके अनुकरणके प्रति प्रेम था और वे खेलमें भी विहारीजीकी सेवायुक्त क्रीड़ामें ही तत्पर रहते थे। माता-पिता भगवान्के सीधे-सादे भक्त थे, हरिदासके चरित्र-विकासपर उनके सम्पर्क एवं संग तथा शिक्षा-दीक्षा और रीति-नीतिका विशेष प्रभाव पड़ा। हरिदासका मन घर-गृहस्थीमें बहुत ही कम लगता था, वे उपवनोंमें, सर-सरिताके तटपर और एकान्त स्थानोंमें विचरण किया करते थे। एक दिन अवसर पाकर पचीस वर्षकी अवस्थामें एक विरक्त वैष्णवकी तरह वे घरसे अचानक निकल पड़े। वे घरसे सीधे वृन्दावन आये, अपने उपास्यदेवता विहारीजीके दर्शन किये और उन्हींके शरणागत होकर निधिवनमें रहने लगे। आशुधीरजी उनके दीक्षा-गुरु थे। धीरे-धीरे उनकी त्याग-भावना, नि:स्पृहता, रसोपासना और संगीतदक्षताकी प्रसिद्धि चारों ओर भक्त, सन्त तथा संगीतज्ञ-मण्डलीमें व्याप्त हो गयी और उनके शिष्योंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ने लगी।

भावावेशमें सदा उनकी सहज समाधि-सी लगी रहती थी। प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्णके सौन्दर्य और माधुर्यके महासागरमें वे रात-दिन डूबे रहते थे। उनका वही अचल धन था। उन्होंने बड़ी सरलतासे भगवान्का स्तवन करते हुए कहा—'हरि! तुम जिस तरह हमें रखना चाहते हो, उसी तरह रहनेमें हमें सन्तोष है।' उनका पूर्ण विश्वास था कि सब कुछ विहारी-विहारिनिजीकी कृपासे ही होता है। हरिदास निम्बार्क-सम्प्रदायके सन्त आशुधीरजीके शिष्य थे। स्वामी हरिदासजीकी उपासना सखीभावकी और भक्ति शृंगारमूलक रासेश्वरकी सौन्दर्य-निष्ठाकी प्रतीक थी। उनके सिद्धान्तसे भोक्ता केवल भगवान् हैं और समस्त चराचर उनका भोग्य है। उनकी कुटीके सामने दर्शनके लिये बड़े-बड़े राजा-महाराजाओंकी भीड़ लगी रहती थी, पर उन्होंने कभी किसीकी मुँहदेखी नहीं की। करका करवा ही उनका एकमात्र सामान था।

एक बार एक भक्तने स्वामीजीको अत्यन्त मूल्यवान् इत्र भेंट किया। वे भगवती यमुनाकी रेतीमें बैठे हुए थे। वसन्त-ऋतुका यौवन अपनी पराकाष्ठापर था। वृन्दावनके मन्दिरोंमें धमारकी धूम थी। रसिक हरिदासका मन डोल उठा। उनके प्राणप्रिय रासविहारी और उनकी रासेश्वरी श्रीराधारानीकी कृपादृष्टिकी मनोरम दिव्यता उनके नयनोंमें समा गयी, वृन्दावनकी चिन्मयताकी आरसीमें अपने उपास्यकी झाँकी करके वे ध्यानस्थ हो गये। उन्हें तनिक भी बाह्य ज्ञान नहीं था, वे मानस-जगत्की सीमामें भगवदीय कान्तिका दर्शन करने लगे। भगवान् राधारमण रंगोत्सवमें प्रमत्त होकर राधारानीके अंग-अंगको करमें कनक-पिचकारी लेकर सराबोर कर रहे थे। ललिता, विशाखा आदि सखियाँ रासेश्वरीकी ओरसे नन्दनन्दनपर गुलाल और अबीर फेंक रही थीं, यमुना-जल रंगसे लाल हो चला था, बालुकाओंमें गुलाल और बुक्केके कण चमक रहे थे। भगवान् होली खेल रहे थे। हरिदासके प्राणोंमें रंगीन चेतनाएँ लहराने लगीं। नन्दनन्दनके हाथकी पिचकारी छूट ही तो गयी, हरिदासके तन-मन भगवान्के रंगमें शीतल हो गये, उनका अन्तर्देश गहगहे रंगमें सराबोर था। भगवान्ने भक्तको ललकारा। हरिदासने भगवान्के पीताम्बरपर इत्रकी शीशी उड़ेल दी। इत्रकी शीशी जिसने भेंट की थी, वह तो उनके इस चरित्रसे आश्चर्यचकित हो गया। जिस वस्तुको उसने इतने प्रेमसे प्रदान किया था, उसे उन्होंने रेतीमें छिड़ककर अपार आनन्दका अनुभव किया। रसिक हरिदासकी आँखें खुलीं, उन्होंने उस व्यक्तिकी मानसिक वेदनाकी बात जान ली और शिष्योंके साथ श्रीबिहारीजीके दर्शनके लिये भेजा। उस व्यक्तिने बिहारीजीका वस्त्र इत्रसे सराबोर देखा और देखा, पूरा मन्दिर विलक्षण सुगन्धसे परिपूर्ण था। वह बहुत लज्जित हुआ; पर भगवान्ने उसकी परम प्यारी भेंट स्वीकार कर ली, यह सोचकर

उसने अपने सौभाग्यकी सराहना की।

एक बार एक धनी तथा कुलीन व्यक्तिने हरिदासजीसे दीक्षित होनेकी इच्छा प्रकट की और उन्हें पारस भेंटस्वरूप दिया। हरिदासने पारसको पत्थर कहकर यमुनाजीमें फेंक दिया और उसे शिष्य बना लिया।

अपने दरबारी गायक भक्तवर तानसेनसे एक बार सम्राट् अकबरने पूछा था—'क्या तुमसे बढ़कर भी कोई गानेवाले व्यक्ति हैं?' तानसेनने विनम्रतापूर्वक स्वामी हरिदासजीका नाम लिया। अकबरने उन्हें राजसभामें आमन्त्रित करना चाहा; पर तानसेनने निवेदन किया कि निधिवन छोड़कर वे कहीं आते-जाते नहीं। निधिवन जानेका निश्चय हुआ। हरिदासजी तानसेनके संगीतगुरु थे, उनके सामने जानेमें तानसेनके लिये कुछ भी अड़चन नहीं थी। रही अकबरकी बात, सो उन्होंने वेष बदलकर एक साधारण नागरिकके रूपमें उनका दर्शन किया। तानसेनने जान-बूझकर एक गीत गलत रागमें गाया। स्वामी हरिदासने उसे परिमार्जित और शुद्ध करके कोकिलकण्ठसे जब अलाप भरना आरम्भ किया, तब सम्राट् अकबरने संगीतकी दिव्यताका अनुभव किया। तानसेनने कहा—'स्वामीजी सम्राटोंके सम्राट् भगवान् श्रीकृष्णके गायक हैं।'

स्वामी हरिदासजी निम्बार्क-सम्प्रदायके अन्तर्गत 'टट्टी-संस्थान' के संस्थापक थे। इनके सम्प्रदायको 'सखी सम्प्रदाय' एवं 'हरिदासी सम्प्रदाय' के नामसे भी जाना जाता है। संवत् १६३१ वि० तक वे निधिवनमें विद्यमान थे। वृन्दावनकी नित्य नवीन भगवल्लीलामयी चिन्मयताके सौन्दर्यमें उनकी रसोपासनाने विशेष अभिवृद्धि की। रासलीला-विषयक स्वामीजीका एक पद द्रष्टव्य है—

सुनि धुनि, मुरली बन बाजै, हरि रास रच्यौ।
कुंज-कुंज द्रुम बेलि प्रफुल्लित,
मंडल कंचन मनिनि खच्यौ॥
नृत्तत जुगलकिशोर जुवति जन,
मन मिलि राग केदारौ मच्यौ।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजबिहारी,
नीके री आजु प्यारौ लाल नच्यौ॥

श्रीविट्ठलविपुलदेव

श्रीविट्ठलविपुलदेवजीका जन्म मार्गशीर्ष शु० ५, सं० १५३२ वि० को हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीगुरुजनजी और माताका नाम कौशल्या देवी था। महात्मा विट्ठलविपुलदेव बड़े भगवद्भक्त और रसिक थे। उनके नेत्र, कान और अधर आदि भगवान्‌की रूप-रस-माधुरीसे सदा संप्लावित रहते थे। वे रसिकराज स्वामी हरिदासजीके शिष्य थे, समकालीन थे। उनकी अनन्य गुरुनिष्ठा थी। स्वामीजीके वे विशेष कृपापात्र थे।

विट्ठलविपुलदेव हरिदासजीके ममेरे भाई थे। उनसे अवस्थामें कई वर्ष बड़े थे। वे कभी-कभी हरिदासजीके साथ उनकी बाल्यावस्थाके समय भगवल्लीलानुकरणमें सम्मिलित हो जाया करते थे, उनके संस्कार पहलेसे ही पवित्र और शुद्ध थे। तीस वर्षकी अवस्थामें विट्ठलविपुलदेव वृन्दावन गये, उन्हें कुंज-कुंजमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलामाधुरीकी सरस अनुभूति होने लगी। साथ-ही-साथ स्वामी हरिदासके सम्पर्क और सत्संगका भी उनपर विशेष प्रभाव पड़ा। अपने गुरु आशुधीरजी महाराजकी आज्ञासे हरिदासजीने उन्हें दीक्षित कर लिया। वे उनकी कृपासे वृन्दावनके मुख्य रसिकोंमें गिने जाने लगे और 'रस-सागर' नामसे प्रसिद्ध हो गये। वे परमोत्कृष्ट त्यागी और सुदृढ़ रसोपासक थे। श्रीविट्ठल विपुलदेवजीके कुल चालीस पद ही प्राप्त होते हैं, परंतु इतने ही पद उन्हें रससिद्ध सन्त कवि सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त हैं। उन्होंने अपनी रचनाओंमें रासेश्वरी श्रीराधाजी और रासेश्वर श्रीकृष्णको बादल और बिजलीकी भाँति अभिन्न दिखाया है, फिर भी वृन्दावनीय उपासनामें राधाजीको वृन्दावन राज्यकी महारानी और कृष्णको उनके अधीन माना है—

हमारैं माई, स्यामा जू कौ राज।
जाके अधीन सदाई साँवरौ,
या ब्रज कौ सिरताज॥

यह जोरी अविचल वृन्दावन, नाहिं आन सौ काज।
श्रीबीठलविपुल बिहारिनि के बल, दिन जलधर संग गाज॥

श्रीधाम वृन्दावनके प्रति उनका विशेष आकर्षण था, जो उनके काव्यमें भी परिलक्षित होता है—

नीके द्रुम फूले, फूल, सुभग कालिंदी कूल,
इन्द्र-धनुष राजैं स्याम घटनि में।
नीके गृह-लता-कुंज, नीकी आली, अलि गुंज,
नीकौ राग रमि रह्यौ, पिकनि की रटनि में।
नीकी गति मंद-मंद, बिहारी आनंद कंद,
नीकौ भेद बन्यौ अरुनपीत पटनि में।
श्रीबीठल बिपुल रंग, ललिता के फूल अंग,
मिले तैं देखौंगो नैन, नीकी बिधि छटनि में।

दीक्षित होनेके बाद उन्होंने वृन्दावनको ही अपना स्थायी निवासस्थान चुना। सं० १६३१ में स्वामी हरिदासके नित्यधाम पधारनेपर सन्तों और महन्तोंने उन्हें उनकी गद्दी सौंपी, बड़े आग्रह और अनुनय-विनयके बाद उन्होंने उत्तराधिकारी होना स्वीकार किया। गुरुविरहके दुःखसे कातर होकर उन्होंने आँखोंमें पट्टी बाँध ली थी। जिन नेत्रोंने रसिकराजेश्वर हरिदासके दिव्य अंगोंका माधुर्य-पान किया था, उनसे संसारका दर्शन करना उनके लिये सर्वथा असह्य था।

वे बड़े भावुक और सहृदय थे। एक बार वृन्दावनकी सन्त-मण्डलीने रासलीलाका आयोजन किया। सर्वसम्मतिसे महात्मा विट्ठलविपुलदेवको बुलानेका निश्चय किया गया। रसिकप्रवर व्यासजीके विशेष आग्रहपर वे रास-दर्शनके लिये उपस्थित हुए। उनके नेत्रोंसे अश्रुओंकी धारा बह रही थी, शरीर वशमें नहीं था, रास आरम्भ हुआ। प्रिया-प्रियतमकी अद्भुत पदनूपुरध्वनिपर उनका मन नाच उठा। दिव्य-दर्शनके लिये उनके हृदयमें तीव्र लालसा जाग उठी। विलम्ब असह्य हो गया। भगवान्‌से भक्तकी विरह-पीड़ा न सही गयी। उनकी आह्लादिनी शक्ति रसमयी रासस्थित श्रीरासेश्वरीने कहा—'मेरे दर्शन करो! मैं राधा हूँ।' नित्यकेलिके साहचर्य-रसके स्मरणमात्रने भावावेशमें उन्हें दर्शनके लिये विवश किया। उन्होंने पट्टी हटा दी। नेत्रोंने रासरसिक-शेखर नन्दनन्दन और राधारानीका रूप देखा। वे खुले तो खुले ही रह गये, पट्टी अपने स्थानपर पड़ी रह गयी। विट्ठलविपुलदेवने रासस्थ भगवान् और उनकी भगवत्ता-स्वरूपा साक्षात् राधारानीके दर्शन किये। उनके अधरोंपर स्फुरण था—'हे रासेश्वरी! तुम करुणा करके मुझे अपनी नित्यलीलामें स्थान दो। अब मेरे प्राण संसारमें नहीं रहना चाहते हैं।' बस, वे नित्यलीलामें सदाके लिये सम्मिलित हो गये। उनकी रसोपासनाने पूर्ण सिद्धि अपनायी। वे भगवान्‌के रासरसके सच्चे अधिकारी थे, रसिक सन्त और विरक्त महात्मा थे। भगवान्‌ने उन्हें अपना लिया, कितना बड़ा सौभाग्य था उनका!

श्रीहृषीकेश देवाचार्यजी

श्रीहृषीकेश देवाचार्यजी महाराज श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायानुयायी वैष्णव सन्त थे। आप श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी महाराजके द्वादश प्रधान शिष्योंमेंसे एक थे। श्रीवृन्दावनधाम आपकी साधना-स्थली थी। आप श्रीप्रिया-प्रियतमजीकी मानसी सेवा करते थे और सदा उनके ही ध्यानमें मग्न रहते थे।

अपनी मानसी सेवामें प्रिया-प्रियतमके स्वरूपका वर्णन करते हुए श्रीहृषीकेश देवाचार्यजी कहते हैं—

मन मन्दिर में राधा मोहन।
नित्य किसोर किसोरी दोऊ करत विहार निरन्तर निसि दिन।
दिव्य धाम व्रज मण्डल सगरौ झगरौ नहिं पैठत तहँ नैकुन।
ता मधि राजत परम मनोहर सूछिम ते सूछिम वृन्दावन।
नव निकुंज नव लता भवन में अष्ट कमल दल मृदुल सिंहासन।
प्रमुदित राजत जुगल चन्द तहँ सेवत ललितादिक ललना गन।
सेवा सौंज सँवारि लिये कर अरपित करि निज निज तन मन धन।
हृषीकेश निरखत अति हरषत निवछावर बलि जाउँ छिनहि छिन॥

श्रीगदाधरभट्टजी

श्रीगदाधरभट्टजी आन्ध्रप्रदेशके वैल्लनाटीय तैलंग ब्राह्मण थे। श्रीजीवगोस्वामीजीकी प्रेरणासे वे वृन्दावनमें आकर श्रीरघुनाथभट्टजीके अनुगत शिष्य हो गये थे। श्रीगदाधरभट्टजी जब अपनी जन्मभूमि—घरमें ही रहते थे, उस समय उन्होंने ***'सखी, हौं स्याम रंग रँगी'*** यह पद बनाया। श्रीजीवगोस्वामीजीने श्रीवृन्दावनमें किसीको गाते हुए उक्त पदको सुना तो उनका मन विभोर हो गया। उन्होंने शीघ्र ही एक पत्र लिखकर दो सन्तोंको श्रीगदाधरभट्टजीके पास भेजा। पत्रमें लिखा था कि—'बिना (रँगनेके स्थान)-के आपके ऊपर रंग कैसे चढ़ गया, मुझे यह सोच-विचारकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा है!' प्रेमसे ओत-प्रोत पत्रको लेकर दोनों सन्त श्रीभट्टजीके गाँवमें पहुँचे। उस समय परमरसिक सन्त श्रीभट्टजी गाँवके बाहर एक कुएँपर बैठे दातौन कर रहे थे। सन्तोंने श्रीभट्टजीसे ही पूछा—'यहाँ श्रीगदाधरभट्टजी कहाँ निवास करते हैं?' उत्तरमें श्रीभट्टजीने उन दोनों सन्तोंसे पूछा—'आप लोग किस स्थानमें रहते हैं?' सन्तोंने उत्तर दिया—'श्रीवृन्दावनधाममें।' यह सुनते ही श्रीभट्टजी मूर्च्छित होकर कुएँसे नीचे भूमिपर गिर पड़े। उस समय ऐसा लग रहा था कि मानो इनके प्राणोंने भगवत्प्राप्ति कर ली।

श्रीगदाधरभट्टजीकी मूर्च्छा देखकर पत्र लेकर आनेवाले साधुओंको किसी ग्रामवासीने बताया कि 'श्रीगदाधरभट्टजी ये ही हैं।' आश्चर्य करते हुए प्रेमके साथ तब उन साधुओंने श्रीभट्टजीके कानमें कहा कि 'हम आपके लिये श्रीवृन्दावनसे श्रीजीवगोस्वामीजीका पत्र लाये हैं।' यह सुनकर इनकी मूर्च्छा दूर हो गयी और उठकर बैठ गये। साधुओंने पत्र दिया, आपने उसे लेकर सिरसे लगाया और पढ़कर उसी क्षण उन साधुओंके साथ चल दिये और शीघ्र ही श्रीवृन्दावन आकर सर्वप्रथम श्रीजीवगोस्वामीजीसे मिले। मिलन-सुखसे आँखोंमें आनन्दके आँसू भर गये। शरीरकी सुधि-बुधि भूल गये। तत्पश्चात् धैर्य धारणकर वही पद गाया—

सखी, हौं स्याम रंग रँगी।
देखि बिकाइ गई वह मूरति सूरति माहिं पगी॥
संग हुतौ अपनौ सपनौं सौ सोइ रही रस खोइ।
जागेहुँ आगें दृष्टि परे सखि नेकु न न्यारौं होइ॥
एक जु मेरी अँखियन में निसिद्योस रह्यो करि मौन।
गाय चरावन जात सुन्यौ सखि! सो धौं कन्हैया कौन॥
कासों कहौं कौन पतियावै, कौन करे बकवाद।
कैसें के कहि जात गदाधर गूँगे कौ गुड़स्वाद॥

श्रीवृन्दावनमें निवास करते हुए आपने श्रीजीवगोस्वामीसे अनेक भक्तिशास्त्रोंका अध्ययन और सन्तोंके साथ सत्संग किया। श्रीकृष्णकी कथाओंके रसकी उमंग आपके अंग-अंगमें भर गयी। भावमें विभोर होकर आप नित्य श्रीमद्भागवतकी कथा कहने लगे।

श्रीगदाधरभट्टजीकी कथाकी प्रशंसा सुनकर व्रजभूमिसे बाहर किसी स्थानके एक महन्तजी भी कथा सुनने आये। लोगोंने उन्हें सम्मानपूर्वक आगे बैठाया। कथा होने लगी तो महन्तजीने देखा कि कथा सुनकर सभी सन्तोंके नेत्रोंसे आँसू बह रहे हैं। अब महन्तजी सोचने लगे कि मेरी आँखोंमें आँसू क्यों नहीं आते? वे शोक-समुद्रमें मग्न हो गये। सोचते-सोचते उन्हें एक उपाय सूझा। दूसरे दिन जब ये कथा सुनने आये तो पिसी लाल मिर्च छिपाकर लाये और कथा सुनते हुए उन्होंने अपनी आँखोंमें मिर्च लगा ली। इस बातको किसी सन्तने जान लिया और कथाके समाप्त होनेपर श्रीगदाधरभट्टजीको बता दिया। जब सभी श्रोता चले गये, तब श्रीभट्टजी महन्तजीको छातीसे लगाकर मिले और रोते हुए पुकारकर बोले—मेरे मनमें यदि ऐसी रोनेकी तीव्र इच्छा प्रकट हो जाती तो मेरा जन्म सफल हो जाता। इस प्रकार कहते-कहते आपके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। उससे महन्तजी भीग गये और उनके हृदयमें भी प्रेम प्रकट हो गया।

श्रीगदाधरभट्टजी श्रीमद्भागवतके मर्मज्ञ विद्वान् थे, अत: सेवा-भक्तिका प्रभाव जैसा भागवतमें कहा गया है, उसे भलीभाँति जानते थे। इसलिये भक्त-भगवन्तकी सेवा-टहल नित्य आप अपने हाथोंसे ही करते थे। एक दिन आप मन्दिरमें चौका लगा रहे थे। उसी समय कोई धनी-मानी आपका शिष्य बहुत-सी भेंट

लेकर दर्शन करने आया। श्रीभट्टजीके एक शिष्यने दूरसे देखकर आपसे कहा—'महाराजजी! आप शीघ्र हाथ धोकर अपने आसनपर बैठ जाइये। भक्त भेंट लेकर आ रहा है।' यह सुनकर आप उसके ऊपर नाराज हो गये। पुनः समझाया कि 'भगवत्-सेवामें ही हमें रुचि है, अतः सेवाको त्यागकर भेंट लेनेके लिये गद्दीपर नहीं बैठ सकते हैं। कोई श्रद्धालु आता है, तो उसे आने दो। मुझे प्रभुकी सेवामें लगा देखकर वह भी भगवत्सेवाके लिये प्रेरित होगा।'

इस प्रकार जीवनभर भगवत्सेवा, श्रीमद्भागवतप्रवचन एवं सन्तोंका सत्कार करते हुए श्रीगदाधरभट्टजी वृन्दावनधाममें ही रहे। अन्तमें उनका पार्थिव शरीर उसी नित्यधामकी पावन रजमें एक हो गया और उन्होंने अपने श्यामसुन्दरका शाश्वत सान्निध्य प्राप्त कर लिया।

श्रीहरिव्यासदेवजी

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायमें परम वैष्णव आचार्य श्रीहरिव्यासदेवजी बहुत ऊँचे सन्त हो गये हैं। आपका जन्म गौड़ ब्राह्मणकुलमें हुआ था। आपने श्रीभट्टजीसे दीक्षा ली थी। पहली बार जब आप दीक्षाके लिये श्रीगुरुचरणोंमें गये, उस समय श्रीभट्टजी गोवर्धनमें वास कर रहे थे और युगलसरकार श्रीप्रिया-प्रीतमको गोदमें बिठाकर लाड़ लड़ा रहे थे। श्रीभट्टजीने पूछा—'हरिव्यास! हमारे अंगमें कौन विराजते हैं?' हरिव्यासजी बोले, 'महाराज! कोई नहीं।' इसपर श्रीभट्टजीने कहा—'अभी तुम शिष्य होनेयोग्य नहीं हो, अभी बारह वर्षतक श्रीगोवर्धनकी परिक्रमा करो।' गुरु-आज्ञा प्राप्तकर आपने बारह वर्षतक परिक्रमा की। तत्पश्चात् फिर गुरुसमीप आये। गुरुदेवने फिर वही प्रश्न किया और इसपर उन्होंने वही पुराना उत्तर दिया। पुनः बारह वर्ष श्रीगोवर्धनकी परिक्रमा करनेकी आज्ञा हुई। आज्ञा शिरोधार्यकर श्रीहरिव्यासदेवने पुनः बारह वर्षतक परिक्रमा की। तदुपरान्त गुरु-आश्रममें आये और आचार्यकी गोदमें प्रिया-प्रियतमको देखकर कृतकृत्य हो चरणोंमें लोट गये। अब इन्हें योग्य जान आचार्यने दीक्षा दी।

गुरुदेव श्रीभट्टजीके आज्ञानुसार आपने 'युगलशतक' पर संस्कृतमें भाष्य लिखा। स्वामीजीने संस्कृतमें कई मूलग्रन्थ भी लिखे। इनमें 'प्रसन्नभाष्य' मुख्य है। 'दशश्लोकी' के अन्यान्य भाष्योंसे इसमें विशेषता यह है कि वेदके तत्त्वनिरूपणके अतिरिक्त उपासनापर काफी जोर दिया गया है। व्रजभाषामें 'युगल-शतक' नामक पुस्तकमें आपके सौ दोहे और सौ गेय 'पद' संगृहीत हैं, जो मिठासमें अपना जोड़ नहीं रखते। ऊपर दोहेमें जो बात संक्षेपमें कही है, वही नीचे 'पद' में विस्तारसे कही गयी है। इस सम्प्रदायमें 'युगलशतक' पहली ही हिन्दी-रचना है, शायद इसीसे इसे आदिवाणी कहते हैं और ये ही सर्वप्रथम उत्तरभारतीय सम्प्रदायाचार्य हैं। इनसे पहलेके सभी आचार्य शायद दाक्षिणात्य थे। स्वामीजी इस सम्प्रदायमें उस शाखाके प्रवर्तक हैं, जिसे 'रसिकसम्प्रदाय' कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके शृंगारी रूपकी उपासना ही इनका सर्वस्व है। श्रीहरिव्यासदेवजीका इतना प्रभाव हुआ कि श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायकी इस शाखाके सन्तोंको तबसे लोग 'हरिव्यासी' ही कहने लगे। वैष्णवोंके चारों सम्प्रदायोंमें इस सम्प्रदायके सन्त अब भी 'हरिव्यासी' ही कहलाते हैं।

श्रीहरिव्यासदेवजीका एक पद द्रष्टव्य है, जिसमें उन्होंने श्रीराधिकाजीकी वन्दना की है—

जयति जय राधिका रसिक रसमंजरी
रसिक सिरमौर मोहन विराजैं।
रसिकिनी रहसि रसधाम वृन्दाविपिन
रसिक रस रसी सहचरि समाजैं॥
रसिक रस प्रेम सिंगार रंग रँगि रहे
रूप आगार सुख साज साजै।
मधुर माधुर्य सौन्दर्यता वर्य पर
कोटि ऐश्वर्य की कला लाजै॥
चातिकी कृष्ण की स्वाति की वारिदा
वारिधा रूप-गुन-गर्विता जै।
मदन मदमोचिनी रोचिनी रति कला
रतन मनि कुण्डला जगमगा जै॥

श्रीरसिकमुरारिजी

श्रीरसिकमुरारिजीका जन्म उड़ीसाके मल्लभूमि जिलेके रोहिणीनगरमें शक सं० १५१२ में कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको प्रातःकालकी मंगल वेलामें हुआ था। आपके पिता श्रीअच्युतपटनायक जमींदार होते हुए भी बड़े भगवद्भक्त थे तथा माता भवानीदेवी पतिव्रता सद्गृहिणी थीं। आपका नामकरण करते समय पण्डितोंने ज्योतिष-गणनाके आधारपर आपका नाम 'रसिक' रखा और महापुरुषके लक्षण बताये, परंतु आपके पिताजी आपका नाम 'मुरारि' रखना चाहते थे; अतः दोनों नाम मिलाकर आपका नाम 'रसिकमुरारि' रखा गया। अन्नप्राशनके अवसरपर प्रवृत्ति-परीक्षणहेतु रखे गये द्रव्योंपर जब हाथ रखना हुआ तो आपने ग्रन्थरत्न श्रीमद्भागवतपर अपना हाथ रखा। उसी समय उपस्थित जनों और कुटुम्बियोंको यह दृढ़ निश्चय हो गया कि यह बालक परम भागवत और महान् भगवद्भक्त होगा। बाल्यकालसे ही आपका सन्तोंके प्रति सहज आकर्षण था। उनकी 'जय जगदीश' की ध्वनि सुनते ही आप-अपने नन्हें-नन्हें हाथोंमें जो कुछ मिलता, भरकर लाते और भिक्षा देते। बड़े होनेपर भी अध्ययनकालमें आप पढ़ाईके साथ-साथ बच्चोंको लेकर नगर-कीर्तन करते। एक बार आपके यहाँ श्रीमद्भागवतका सप्ताहपाठ चल रहा था, जब उसमें गोपीगीतका प्रसंग आया तो आप मूर्च्छित हो गये। श्रीमद्भागवत-ग्रन्थपर आपका विशेष अनुराग था, अतः आपने पिताकी अनुमति लेकर पं० श्रीजगन्नाथाचार्यजीसे श्रीधरीटीकासहित श्रीमद्भागवतका अध्ययन किया। आप श्रीगौरांग महाप्रभुसे विशेष प्रभावित थे, अतः चाहते थे कि किसी गौरांगपार्षदसे मुझे दीक्षा प्राप्त हो जाय। कहते हैं कि आपकी इस अदम्य उत्कण्ठा और भक्ति-भावको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा कि तुम धारेन्दा चले जाओ, वहाँ तुम्हें मेरे भक्त श्रीश्यामानन्दजी मिलेंगे, तुम उनका आश्रय ग्रहण करो, इससे तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण हो जायँगे। प्रभुके आज्ञानुसार आपने श्रीश्यामानन्दजीके दर्शन किये और उनसे श्रीयुगल-मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त की। उन्होंने आपका नाम रखा 'रसिकानन्द'। उन्हींसे आपको व्रजतत्त्व और सम्प्रदाय-रहस्यका ज्ञान हुआ। श्रीगुरुदेवजीके साथ आपने व्रजके तीर्थोंकी यात्राकर उनके तात्त्विक दर्शन किये। तत्पश्चात् उन्हींके साथ आप उत्कलदेश चले गये, वहाँ अनेक विमुखोंको भक्त बनाया और अन्तिम समयतक भगवान् श्रीजगन्नाथजीकी सेवामें रत रहे।

श्रीनरसीजी मेहता

भक्तवर श्रीनरसीजी गुजरात प्रान्तके जूनागढ़ नगरके निवासी थे। इनके पिताका नाम कृष्णदामोदर और माताका नाम दयाकुँवरि था। पाँच वर्षकी अवस्थामें आपके पिता-माताका स्वर्गवास हो गया था। घरमें एक भाई वंशीधर और भाभी दुरितगौरी थीं। भाभी अति ही क्रोधी स्वभावकी थीं। किसी दिन आप इधर-उधर घूम-फिरकर आये और भाभीसे पीनेके लिये जल माँगा। वे मन-ही-मन जल-भुन गयीं और बोलीं—'तुम बड़ी भारी कमाई करके आये हो न? इसीलिये तुम्हें जल पिलाये बिना कैसे काम बनेगा? अपने-आप जल लाकर पियो।' भाभीने जब इस प्रकारका जवाब दिया तो घोर अपमानका अनुभव करके श्रीनरसीजी बिना जल पिये ही घरसे निकल चले और जंगलमें जाकर एक शिवजीके मन्दिरपर पड़ गये। मानो आपने शिवकी शरणमें जाकर अपना दुःख निवेदन किया और स्थिरचित्तसे आपने शिवका ध्यान किया।

श्रीशंकरजीके मन्दिरपर बिना कुछ खाये-पीये पड़े-पड़े सात दिन बीत गये। तब श्रीशिवजीने विचार किया कि यदि कोई आदमी किसी क्षुद्र या गरीबके द्वारपर जाकर पड़ जाता है, तो वह भी उसकी खबर लेता है, दुःख-दर्दकी पूछताछ करता है। फिर मैं तो देवाधिदेव महादेव हूँ। मुझे इसकी खबर लेनी चाहिये। ऐसा विचारकर भगवान् शंकरजीने प्रथम तो श्रीनरसीजीकी भूख-प्यासको सर्वथा दूर कर दिया। उसके बाद साक्षात्

प्रकट होकर दर्शन देकर बोले—'वत्स! वर माँग लो।' श्रीनरसीजीने कहा—'प्रभो! मैं वर माँगना नहीं जानता हूँ। फिर भी यदि आप देना चाहते हैं तो सोच-समझकर वह वस्तु दीजिये, जो आपको सबसे अधिक प्यारी है।' यह सुनकर श्रीशंकरजी सोच-विचारमें पड़ गये कि जो मेरी प्रिय वस्तु है, उसका रहस्य तो मैं अपनी प्राणप्रिया श्रीपार्वतीजीसे भी कहनेमें डरता हूँ और वेद 'नेति-नेति' कहकर उसका वर्णन करते हैं।

अब यदि कदाचित् इसे अपनी प्रिय वस्तु नहीं देता हूँ तो मेरा 'वर माँगो' यह बोलना झूठा पड़ जायगा। ऐसा विचारकर श्रीशंकरजीने उन्हें अपना-सा श्रीकृष्ण-प्रेम प्रदान किया और श्रीनरसीजीको सुन्दर सखीस्वरूप प्रदानकर स्वयं भी त्रिलोचना सखीरूप धारणकर साथ-साथ नित्य श्रीवृन्दावनधाममें आये। वहाँ अनेक प्रकारकी दिव्य बहुमूल्यवान् मणियोंसे जड़े हुए रासमण्डलपर अगणित व्रजगोपियोंके मध्य श्रीराधाश्यामसुन्दरका दिव्य-दर्शन शिवजीने श्रीनरसीजीको कराया।

श्रीनरसीजीने देखा कि स्वर्णमय रासमण्डल रंग-बिरंगे हीरोंसे जड़ा हुआ है, व्रजगोपियोंके मध्य प्रिया-प्रियतम दोनों विचित्र गतियोंमें नृत्य कर रहे हैं। गान-तानकी अद्भुत ध्वनि छायी हुई है। लालजी ताली बजाकर ताल लगा रहे हैं और नृत्य एवं रागकी सुन्दर गति ले रहे हैं। ग्रीवा (गर्दन)-का झुकना और हिलना, अँगुलियोंको मोड़कर मुद्राएँ बनाना अत्यन्त मनमोहक था। श्रीमुखसे निकलता हुआ गायनका मधुर स्वर सुनकर कानोंको तृप्ति होती थी। मृदंग और मुँहचंग आदि बाजे गायनके साथ-साथ बज रहे थे। नृत्य करते हुए प्रिया-प्रियतमके प्रत्येक अंगमें शोभाकी जो लहरें उठ रही थीं, वे मानो परिकर-प्रेमियोंको नवीन प्रेम-जीवन प्रदान कर रही थीं।

श्रीशंकरजीने श्रीनरसीअलीको मशाल दिखलानेकी सेवा प्रदान की। यह प्रिया-प्रियतमकी शोभा-सुन्दरताको देखकर निहाल हो गयी। इसी बीच नन्दलालजीकी दृष्टि इनके ऊपर पड़ी तो आपने जान लिया कि यह तो कोई नयी सखी आज रासमें आयी है। श्रीठाकुरजीने अनुमान करके जान लिया कि यह शिवजीकी रंगीली सहचरी है। श्रीशंकरजीने मीठी मुसकान और नेत्रोंके संकेतसे जनाया कि ये मेरे साथ आयी हैं, आप कृपया अपने परिकरोंमें सम्मिलित कर लें। रास-विलासका दर्शन कराकर श्रीशिवजी चाहते थे कि अब मैं यहाँसे इन्हें ले जाऊँ, परंतु श्रीनरसीअलीजी चाहती थीं कि मैं अपने प्राणोंको न्यौछावर कर दूँ। तब श्रीठाकुरजीने कुछ समीप आकर श्रीनरसीजीको समझाया कि तुम यहाँसे जाओ और मेरे इस विहारीरूपका सर्वदा ध्यान करते रहना। जब जहाँ तुम मेरा स्मरण करोगी, तब तहाँ ही प्रकट होकर मैं तुम्हें दर्शन दूँगा। साथ ही भगवान्ने कीर्तन करनेके लिये करताल प्रदान किया। श्रीरासविहारीजीकी आज्ञा मानकर आँख बन्द करनेपर श्रीनरसीजी अपने ग्रामको वापस लौट आये और अलग निवास बनाकर भजन करने लगे। परंतु पुनः रासविहार-लीलाके दर्शन करनेकी चटपटी इनके मनमें लगी ही रहती थी।

कुछ दिन बाद एक ब्राह्मणकी पुत्री माणिकगौरीसे आपका व्याह हो गया। उससे दो पुत्रियाँ (कुँवरबाई, रतनबाई) और एक पुत्र (शामलदास) हुआ। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी आपने संसारमें श्रीहरिभक्तिका खूब प्रचार-प्रसार किया। बहुतसे सन्त-महात्मा आपके यहाँ नित्य ही आते-जाते रहते थे। उनकी सद्भावपूर्वक सेवा करके आप उन्हें अपार सुख प्रदान करते थे। नित्य हरिनाम-लीलाओंका संकीर्तन करते हुए आप भक्त-भगवन्तको प्रसन्न करते थे। श्रीठाकुरजीको पधराकर उनकी नित्य-नियमसे वैष्णवविधिके अनुसार सेवा करते थे। श्रीनरसीजीके ऐसे पवित्र आचरणोंसे इनकी महिमा बढ़ी, इससे जितने विप्रजातिके लोग थे, उन्होंने अपने मनमें बड़ा द्वेष माना और क्रोधवश अनेक प्रकारके उपद्रव करके श्रीनरसीजीके भजनमें बाधा करने लगे; क्योंकि नरसीका भजन-कीर्तन उन्हें उपद्रव-सा प्रतीत हो रहा था। वे अपने मनमें जरा भी विचार नहीं करते थे कि नरसीजी भक्त हैं। इधर परम विवेकी श्रीनरसीजी श्रीश्यामसुन्दरकी रूपमाधुरीके सागरमें निरन्तर डूबे रहते थे।

श्रीब्रजबल्लभभट्टजी

भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त श्रीब्रजबल्लभजी भट्ट श्रीनारायणभट्टजीके समकालीन सन्त थे। आपने श्रीनारायणभट्टजीके रास-प्रचार-कार्यमें अपूर्व सहयोग किया। एक बार आप रासलीलाके प्रसंगमें श्रीललिता सखीका स्वरूप धारणकर श्रीप्रिया-प्रियतमको रिझानेके लिये राधा-माधव युगलसरकारके गुणोंका गान करते हुए रसमय नृत्य कर रहे थे, अचानक आपके पेटमें असह्य पीड़ा होने लगी, रंगमें भंग हो गया। आप रासमण्डलसे श्रृंगारघरमें चले आये और 'हा कृष्ण', 'हा कृष्ण' पुकारते हुए पीड़ासे व्याकुल होकर लेट गये। आपको अपने पेट-दर्दसे अधिक पीड़ा इस बातसे थी कि मैं श्रीप्रिया-प्रियतमकी यथोचित सेवा नहीं कर सका। सर्वान्तर्यामी भक्तवत्सल भगवान्ने उनके अन्तर्मनकी बात जान ली और तत्काल आपका वेष धारणकर रासमण्डलमें विराजमान श्रीराधा-कृष्णस्वरूपके आगे पूर्ववत् नृत्य करने लगे। उस समय रासमण्डलमें ऐसा आनन्द छाया कि सभी लोग चित्रलिखितसे हो गये, सबका शरीर पुलकायमान हो गया तथा सबके नेत्र प्रेमाश्रुओंसे छलछला उठे। उधर एक सेवक श्रीब्रजबल्लभजीको दवा देकर रासमण्डलमें आया तो देखा कि वे यहाँ नृत्य कर रहे हैं। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, वह पुनः श्रृंगारघरमें आया तो देखा श्रीब्रजबल्लभजी पीड़ासे कराह रहे हैं और 'हा कृष्ण', 'हा कृष्ण' पुकार रहे हैं। यहाँसे जब वह पुनः रासमण्डलमें गया तो देखा कि वहाँ तो ब्रजबल्लभजी प्रेमोल्लासमें आनन्दमग्न हो नृत्य कर रहे हैं। दोनों जगह वह आपको देखकर आश्चर्यचकित हो गया, सहसा तो उसे अपनी आँखोंपर विश्वास ही नहीं हो रहा था, फिर वह श्रृंगारघरमें आया और आपसे रासमण्डलमें हो रहे अद्भुत नृत्यका समाचार बताया। आपने किसी प्रकार पीड़ाको दबाकर धैर्य धारण किया और रासमण्डलमें आये और वहाँका दृश्य देखा तो आपकी भी आँखें फटीकी फटी रह गयीं; परंतु इस रहस्यको समझनेमें आपको देर न लगी कि स्वयं प्रभु ही मेरा रूप धारणकर नृत्य कर रहे हैं। प्रभुकी इस कृपावत्सलताको देख आप आनन्दाधिक्यमें मूर्च्छित हो गये। दूसरे दिन जब चैतन्य हुए तो आपने इस रहस्यका उद्घाटन किया।

बाबा श्रीमाधवदासजी [अलीमाधुरी]

बाबा माधवदासजी वृन्दावनमें टोपीवाली कुंजके महात्मा श्रीकल्याणदासजीके दीक्षित शिष्य थे। गुरुदेवने आपको अलीमाधुरी नाम देकर मानसी सेवाका रहस्य समझाया। साधना और अभ्यासके द्वारा मानसी सेवा करते-करते श्रीराधामाधवकी अभिनव लीलाओंकी मनोहारी झाँकियोंके प्रत्यक्ष दर्शन आपको होने लगे। इसी क्रममें गह्वरवन (बरसाने)-में एक दिन आप एकान्तमें शिलापर बैठे हुए थे, कि आपको भावनामें श्रीश्यामाश्यामकी लीलाओंका दर्शन होने लगा। आपने देखा कि श्यामाश्याम फूल चुन रहे हैं। फिर श्यामसुन्दरने एक माला बनाकर प्रियाजीके गलेमें पहना दी। इसके बाद किशोरीजीने भी एक बड़ी ही सुन्दर माला बनाकर प्रियतमके गलेमें धारण करा दी। उसी समय अलीमाधुरीजीने भावनामें आकर प्रिया-प्रियतमको पानकी सुन्दर गिलौरियाँ बनाकर अर्पित की। प्रसन्न होकर प्रियाजीने अपने गलेसे माला उतारकर अपनी प्रियसखी अलीमाधुरीके गलेमें डाल दी। जब बाबाका ध्यान भंग हुआ तो क्या देखते हैं कि गलेमें चमेलीके पुष्पोंकी माला पड़ी हुई है।

श्रीलोकनाथ गोस्वामी

बंगालके जैसोर जिलेमें तालखड़ी नामका एक छोटा-सा मामूली गाँव है। लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व इस गाँवमें एक बहुत ही सम्भ्रान्त कुलके पद्मनाभ चक्रवर्ती नामक ब्राह्मण रहते थे। इनकी पत्नीका नाम था सीतादेवी। इस धर्मप्राण ब्राह्मण-दम्पतीका एकमात्र पुत्र था लोकनाथ। घरमें वैष्णव-उपासना परम्परासे चली आ रही थी। स्वयं पद्मनाभ चक्रवर्ती श्रीअद्वैतप्रभुके शिष्य थे और सदा उन्हींकी सेवा-शुश्रूषामें लगे रहते थे। इन सब कारणोंसे लोकनाथको बहुत ही दिव्य संस्कार प्राप्त हुए।

प्रेमावतार महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवका नाम और यश बंगालके कोने-कोनेमें शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी तरह बढ़ रहा था। लोकनाथके कानोंतक भी यह बात पहुँची और वे उनके दर्शनोंके लिये तड़फड़ाने लगे। उनका मन किसी भी वस्तुमें नहीं लगता। माता-पिताको भय था कि महाप्रभुके संगमें पड़ जानेपर यह लड़का बेहाथ हो जायगा, अतः उन्होंने बहुत प्रयत्न किया कि वह घरमें ही रहे, किंतु लोकनाथ नहीं रुके, और एक दिन रात्रिमें चुपचाप चल पड़े।

रातभर लोकनाथ चलते रहे। दूसरे दिन सन्ध्यासमय वे नवद्वीप पहुँचे। नवद्वीप पहुँचनेपर देखा कि महाप्रभु एक उच्च आसनपर विराजमान हैं और श्रीवासादि भक्तोंकी टोली उन्हें चारों ओरसे घेरे हुए है। लोकनाथकी वाणी मूक थी। दृष्टि गड़ी सो गड़ ही गयी। एकटक महाप्रभुकी ओर देखते ही रह गये। आँगनमें प्रतिमाकी तरह खड़े इस सुकुमार बालकपर महाप्रभुकी दृष्टि गयी। वे दौड़े—दोनों बाँहें फैलाये और लोकनाथको उन्होंने अपनी भुजाओंके पाशमें बाँध लिया। भावावेशसे वे प्रभुके वक्ष:स्थलपर मूर्छित हो गये। लोकनाथको कुछ पता नहीं। चेतना आनेपर लोकनाथ अब पहलेके लोकनाथ नहीं रहे। उनके रोम-रोमसे कृष्ण-कृष्णकी मधुर ध्वनि आ रही थी। उनका अंग-अंग हरि-हरि पुकार रहा था। प्राण-प्राणसे प्रभुकी प्रीति छलक रही थी।

लगातार पाँच दिनोंतक वे इस अपूर्व पागलपनमें रहे। छठे दिन महाप्रभुने लोकनाथको वृन्दावन जानेका आदेश दिया। वे कहने लगे—'भाई! वृक्षोंके नीचे जहाँ स्थान पाओ, वहीं पड़ रहो। आसपाससे मधुकरी माँग लाओ और ओढ़नेके लिये चिथड़ोंकी गुदड़ी बना लो। श्रीयमुनाजीका जल भरपेट पीओ। सम्मानको कराल विष समझो एवं नीचोंके द्वारा अपमानको अमृत। श्रीराधा-माधवका भजन करो। किंतु मित्र! वृन्दावनको मत छोड़ना।'

महाप्रभुकी आज्ञाको लोकनाथ टाल नहीं सके और रोते-रोते उनसे विदा हुए। इनके साथ गदाधर पण्डितके शिष्य भूगर्भ भी तैयार हो गये।

श्रीलोकनाथजी श्रीमहाप्रभु कृष्णचैतन्यजीके एक पार्षद थे, इनकी श्रीराधाकृष्णके प्रति अहर्निश एकरस प्रीति थी। रसरूप श्रीमद्भागवत-महापुराणका गान, कीर्तन, पारायण इनको प्राणके समान प्रिय था। ये इसमें अत्यन्त सुख मानते थे और कहा करते थे कि जो कोई भी श्रीमद्भागवतका गान करते हैं, वे मेरे मित्र हैं। इस रसभावनामें प्रवीण श्रीलोकनाथजी मार्गमें जाते हुए एक महानुभावको श्रीमद्भागवतका पाठ करते हुए देखकर उनके चरणोंपर पड़ गये।

वृन्दावनकी दशा उन दिनों विचित्र थी। घने जंगलों एवं भूमिशायी अस्त-व्यस्त खँडहरोंके सिवा वहाँ कुछ भी नहीं था। वृन्दावनके निवासी भी उस पावन भूमिके महत्त्वको भुला बैठे थे। उन्हें वहाँ न तो चीरघाट मिला न वंशीवट; न निधिवन, न भाण्डीर-वन, न श्याम और राधाकुण्ड ही। क्या करें, कहाँ जायँ, पता लगायें तो कैसे? अन्ततोगत्वा निराश हो सर्वतोभावसे वे श्रीराधारानीकी शरण होकर ***'गोविन्द-गोविन्द हरे मुरारे, राधाकृष्ण, गोपीकृष्ण, श्रीकृष्ण प्यारे'*** का कीर्तन करने लगे। सहसा एक दिन उन्हें चीरघाटका पता लग गया। ये वहाँ अत्यन्त प्रेमावेशका जीवन बिताने लगे। लोगोंमें इनकी प्रसिद्धि भी हुई, लोगोंने इनके लिये कुटिया भी बनानी चाही। परंतु इनके लिये तो निश्चय किया हुआ था कि रहना किसी पेड़के नीचे ही। यदृच्छासे जो कुछ मिल

जाता, उसीसे पेट भरते और यमुनाका जल पीकर मस्त रहते।

कुछ दिनों पश्चात् लोकनाथने महाप्रभुके संन्यासकी बात सुनी। साथमें यह भी सुना कि वे दक्षिण भारतमें तीर्थयात्राके लिये गये हैं। ये अत्यन्त उत्कण्ठावश इनसे मिलने दक्षिण भारत पहुँचे तो वहाँ पता चला कि वे वृन्दावनके लिये चल पड़े। ये वृन्दावन पहुँचे तो पुनः पता चला कि वे वृन्दावनसे पुरीके लिये चल पड़े। लोकनाथका हृदय बैठ गया। परंतु स्वप्नमें श्रीमहाप्रभुने इन्हें समझाया कि 'तुम निराश मत होओ, मैं अब राहका भिखारी हूँ। तुम मुझे इस वेषमें देखकर बहुत दुःख पाते, इसीलिये मैं तुमसे नहीं मिला।'

अब लोकनाथ और भूगर्भने चीरघाटपर अपना डेरा जमा लिया और अन्तकालतक वे वहीं बने रहे। रात-दिन कृष्ण-कृष्णकी रट लगाये रहते और रातको बस एक-दो घण्टे सो लेते। न कभी किसीसे मिलते, न बात करते। लोकनाथने अपने शेष जीवनके दिन वृन्दावनमें भगवान्‌के भजनका आश्रय लेकर एक आदर्श प्रेमी एवं आदर्श विरहीके रूपमें व्यतीत किये।

'श्रीचैतन्य-चरितामृत'के रचयिता श्रीकृष्णदास कविराज अपने ग्रन्थके प्रणयनके पूर्व लोकनाथ गोस्वामीके चरणोंमें आशीर्वाद लेने आये। लोकनाथने उसके लिये सहर्ष हाँ भरी, परंतु अपनी एक शर्त रखी—वह यह कि इस ग्रन्थमें उनकी कहीं भी न तो चर्चा आये, न उनसे महाप्रभुके सम्बन्धकी ही बात लिखी जाय।

इतनी मूक और निरीह उपासना थी लोकनाथ-गोस्वामीकी!

श्रीललितकिशोरीजी और श्रीललितमाधुरीजी

लखनऊमें उन दिनों नवाबोंका बोलबाला था। वहीं साह गोविन्दलालजीका परिवार जौहरियोंमें मुख्य था। गोविन्दलालकी दूसरी स्त्रीसे साह कुन्दनलाल और साह फुन्दनलाल हुए। दोनों भाइयोंमें प्रगाढ़ प्रेम था। भारतेन्दुजीके शब्दोंमें तो यह 'राम-लखनकी जोड़ी' थी। पारिवारिक कलहके कारण दोनों भाई सम्वत् १९१३ वि० में लखनऊ छोड़कर वृन्दावन चले गये। वृन्दावन उन दिनों प्रेमी भक्तोंका अखाड़ा हो रहा था। साह कुन्दनलाल 'श्रीललितकिशोरी' की छापसे और साह फुन्दनलालजी 'श्रीललितमाधुरी' के नामसे भगवान्‌की प्रेम-लीलाओंका गुणगान करने लगे। इनके द्वारा रचे गये पद दस हजारसे कम न होंगे। सम्वत् १९१७ वि० में इन्होंने संगमरमरका एक अति विचित्र मन्दिर बनवाना आरम्भ किया और सं० १९२५ वि० में उस मन्दिरमें श्रीठाकुरजी पधराये गये। इस मन्दिरका नाम 'ललितनिकुंज' रखा गया। इस प्रसिद्ध मन्दिरको साहजीका मन्दिर तथा टेढ़े खम्भोंवाला मन्दिर आदि नामोंसे भी जाना जाता है। श्रीललितकिशोरीजी कार्तिक शुक्ल २, सम्वत् १९३० वि० को सशरीर श्रीवृन्दावनरजमें लीन हो गये। इन्होंने 'रासविलास', 'अष्टयाम' और 'समयप्रबन्ध' सम्बन्धी बड़े ही मधुर और प्रेमपूर्ण पद रचे हैं।

अपने बड़े भाईके गोलोकवासी हो चुकनेपर श्रीललितमाधुरीने जितने पद रचे हैं, उन सबमें अपने नामको न रखकर ललितकिशोरीकी ही छाप दी है। इनकी भ्रातृभक्ति और हरिभक्ति धन्य है। श्रीललित-किशोरीजीकी अलमस्तीका मजा भी उनका अपना है—

जमुना पुलिन कुंज गहबर की कोकिल ह्वै द्रुम कूक मचाऊँ।
पद पंकज प्रिय लाल मधुप ह्वै मधुरे मधुरे गूँज सुनाऊँ॥
कूकर ह्वै बन बीथिन डोलौं, बचे सीथ रसिकन के खाऊँ।
ललितकिसोरी आस यहै मम, ब्रज रज तजि छिन अनत न जाऊँ॥

श्रीललितमाधुरीने वृन्दावनके दिव्य आनन्दको किस उल्लासके साथ गाया है!—

देखौ बलि बृंदाबन आनंद।
नवल सरद निसि नव बसंत रितु, नवल सु राका चंद॥
नवल मोर पिक कीर कोकिला, कूजत नवल मलिंद।
रटत श्री राधे राधे माधव, मारुत सीतल मंद॥
नवल किसोर उमंगन खेलत, नवल रास रस कंद।
ललितमाधुरी रसिक दोउ बर, निरतत दियें कर फंद॥

रासलीलानुकरणके प्रथम आयोजक श्रीघमण्डीजी

श्रीयुगलकिशोर श्यामाश्यामके अनन्य भक्त परम वैष्णव सन्त श्रीघमण्डीजी महाराजका जन्म राजस्थानके जयपुर राज्यान्तर्गत टोड़ाभीमके सन्निकट दूबरदू नामक ग्राममें हुआ था। छोटी अवस्थामें ही आपने निम्बार्क-सम्प्रदायके आचार्य श्रीहरिव्यासदेवजीसे शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर ली और भगवद्भजनमें लग गये। श्रीगुरुदेवजीने आपका नाम श्रीउद्धवदेवजी रखा। आप अपने परमाराध्य श्रीयुगलकिशोरजीपर गर्व करते थे और पाखण्डियों तथा भगवद्विमुखोंको कुछ भी नहीं गिनते थे, अतः वे लोग आपको घमण्डीजी कहने लगे और सन्त-समाजमें आपकी 'श्रीउद्धवघमण्डदेवाचार्यजी' के नामसे प्रतिष्ठा हो गयी। आपके जीवनका अधिकांश समय व्रजमें ही बीता, वहीं करहला ग्राममें रहते हुए आप श्रीराधामाधवजीकी भक्तिपूर्ण सेवा किया करते थे। कहते हैं कि आपकी भक्तिसे प्रसन्न होकर श्रीप्रियाप्रियतम युगलकिशोरने आपको दर्शन दिये साथ ही श्रीठाकुरजीने अपना मुकुट और श्रीराधाजीने अपनी चन्द्रिका भी इन्हें दी। श्रीराधाजीने आपसे कहा कि व्रजवासी ब्राह्मण बालकोंको मेरा और मेरी सखियोंका प्रतिरूप बनाकर रासलीलाका अनुकरण कराओ। तबसे लेकर आजतक उस ग्राममें और व्रजके अन्य क्षेत्रोंमें भी रासलीलानुकरणकी परम्परा चली आ रही है। करहला ग्राममें श्रीठाकुरजीके मुकुट और श्रीराधाजीकी चन्द्रिकाके आज भी दर्शन होते हैं, जो श्रीघमण्डीजी महाराजपर उनके आराध्यदेवकी कृपाके साक्षात् प्रतीक हैं।

भक्त नागरीदासजी

राजस्थानमें सलेमाबादसे डेढ़ योजन दक्षिणपूर्वमें कृष्णगढ़ राज्य था। श्रीनागरीदासजी वहींके महाराज राजसिंहके सुपुत्र थे। इनका प्रारम्भिक नाम राजकुमार सावंतसिंह था। इनका जन्म पौष कृष्ण द्वादशी सं० १७५६ को हुआ था। कुलपरम्पराके अनुसार तत्कालीन श्रीनिम्बार्क-पीठाधिपति श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजीद्वारा इन्हें दीक्षा-संस्कार दिलाया गया। इनका विवाह भानगढ़-नरेश श्रीयशवन्तसिंहजीकी राजकुमारीसे हुआ, जिनसे राजकुमार सरदारसिंहका जन्म हुआ।

महाराज राजसिंहका सं० १८०४ में स्वर्गवास हो जानेपर इन्हें राज्यका उत्तराधिकारी बनाया गया, परंतु इनके छोटे भाई बहादुरसिंहने इनके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। महाराज सावंतसिंह बड़े वीर और पराक्रमी थे, उन्होंने उस विद्रोहको दबाकर सिंहासनपर अधिकार तो कर लिया परंतु इस गृहकलह और रक्तपातसे इनका भक्तहृदय खिन्न हो उठा और अपने पुत्र सरदारसिंहको राज्यभार सौंपकर गुरुदेव श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजीके परामर्शसे वृन्दावनधामको प्रस्थान कर दिया। वहीं उच्चकोटिके संत श्रीमोहनदेवजीसे विरक्त वेष ले लिया। इनकी वृन्दावनधामके प्रति अनन्य निष्ठा थी। यहाँ आकर इन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि अब इन्हें श्रीश्यामा-श्यामके दर्शन अवश्य होंगे। यह भाव इनके एक पदसे प्रकट होता है—

अब तो यहै बात मन मानी।
छाँड़ौं नहीं स्याम-स्यामा की वृन्दावन रजधानी॥
हरि भक्तनि मैं रक्तति ह्वैं हौं निन्दा मुख अभिमानी।
नागरिया नागर कर गहिहैं, रहिहैं जक्त कहानी॥

विक्रम संवत् १८२१ भाद्र शुक्ल पंचमीको ६४ वर्षकी अवस्थामें इन्होंने अपने पांचभौतिक शरीरका परित्यागकर श्रीश्यामा-श्यामकी नित्य निकुंजलीलामें प्रवेश किया। व्रजप्रेम, श्रीकृष्णप्रेम और श्रीराधामाधवकी लीलासे सम्बन्धित मनोरथमंजरी, रसिकरत्नावली, विहारचन्द्रिका, निकुंजविलास आदि अनेक ग्रन्थोंकी इन्होंने रचना की।

श्रीखड्गसेनजी कायस्थ

ग्वालियर-निवासी खड्गसेनका उल्लेख 'भक्तमाल' और 'रसिक-अनन्यमाल' में मिलता है, जिनके आधारपर कुछ विद्वान् दोनों खड्गसेनको भिन्न मानते हैं, जबकि दोनोंमें कायस्थकुलोत्पन्न और भक्त होनेकी समानता है। वस्तुतः उक्त दोनों ग्रन्थोंमें वर्णित खड्गसेन एक ही हैं।

मिश्रबन्धुओंने इनका जन्म सं० १६६० (१६०३ ई०) एवं रचनाकाल सं० १६८५ (१६२८ ई०) माना है, पर किसी प्रामाणिक साक्ष्यके बिना यह अनुमानमात्र है। इनकी 'दानलीला' का रचनाकाल १६२८ ई० है। अतः यही इनका उपस्थिति-काल माना जा सकता है। कहते हैं, खड्गसेनजीने नीचे लिखे पदको गाते-गाते अपना शरीर प्रभुपर निछावर किया था—

द्वै गोपिन बिच-बिच नँदलाला।
करत नृत्य संगीत भेद गति गुंजनि गरब मराला॥
फहरत अंचल चंचल कुंडल, थहरत है उरमाला।
मध्य रली मुरली मोहन धुनि, गान बितान छयौ तिहि काला॥
चलिय झमकि झंकार बलय मिलि, नूपुर किंकिनि जाला।
देव बिमाननि कौतुक मोहे, लखि भौ मदन, बिहाला।
खड्गसेन प्रभु रैन सरद की, बाढ़ी रंग रसाला॥

इससे खड्गसेनके भक्तिमय जीवनके साथ ही उनके देहावसान-विषयक कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं। भक्तमालमें आये छप्पयकी पंक्ति '**तनु त्यागो मंडल सरद**' से रासमण्डलके आनन्दमें मग्न होकर इनके गोलोकवासी होनेका पता चलता है। नागरीदासजीकी 'पदप्रसंगमाला' से इस तथ्यका समर्थन होता है—***'एक समै सरदकी पूरनमासी कौं रासमंडल चौंतरापर रासमें एक पद बनावत हुते, सो जब भोग दै चुके, तब अपनेई पद पै रीझ प्रेम विवस ह्वै देह छोड़ दई।'***

भक्तवर खड्गसेनजी ग्वालियरमें निवास करते थे। आप रासके समाज अर्थात् रासलीलाके आयोजन यथासमय करते ही रहते थे। एक बार शरत्पूर्णिमाकी रात्रिमें महारास हो रहा था। उस दिन उनके ऊपर प्रेमका बड़ा भारी गाढ़ा रंग चढ़ गया। वह भावावेश बढ़ता ही गया, आँखोंमें रासविहारिणी-बिहारीजीकी सुन्दर छवि निरन्तर समाती ही चली गयी। '**तत्-थेई**' कहकर नृत्य और गान करती हुई प्रिया-प्रियतमकी सुन्दर जोड़ीको आपने अपलक नेत्रोंसे भलीभाँति निहारा और उसी समय मानसिक भावनासे नश्वर शरीरको त्यागकर युगलकिशोरकी नित्यलीलामें पहुँच गये। इस प्रकार श्रीखड्गसेनजीने अपार दिव्य-सुखका अनुभवकर तथा लीलाबिहारीकी छविपर रीझकर अपने शरीरको न्यौछावर कर दिया। प्रेम ही सत्य है, यह और उसके निभानेकी रीतिको आपने प्रत्यक्ष दिखला दिया। रास-रसके प्रेमी-भावुकोंने जब आपका प्रकट-प्रेम देखा तो उनके मन भी रास-रसमें सराबोर हो गये। अनन्य भक्तोंको उनका इस प्रकार प्रेम करना और शरीर त्यागना बहुत प्रिय लगा।

साम्प्रदायिक स्रोतोंके अनुसार ये भानुगढ़के राजा माधोसिंहके दीवान थे। एक दिन इनके यहाँ वृन्दावनके एक रसिक सन्त पधारे। उन्होंने इनको श्रीहित धर्मका उपदेश दिया। रसिक सन्तसे इष्ट और धामका रहस्य सुनकर इन्होंने श्रीराधावल्लभलालके चरणोंमें अपनेको अर्पित कर दिया और वृन्दावन आकर श्रीहिताचार्यसे दीक्षा ले ली। श्रीश्रीजीकी शरण ग्रहण करते ही गृहस्थी एवं जगत्के प्रति इनका दृष्टिकोण एकदम बदल गया। श्रीश्यामा-श्यामका अनुपम रूप-माधुर्य इनके नेत्रोंमें झलक उठा एवं दसों दिशाएँ आनन्दसे पूरित हो गयीं। ये अधिक-से-अधिक समय नामवाणीके गानमें लगाने लगे। इनका यश चारों ओर फैल गया और दूर-दूरसे साधु-सन्त आकर इनका सत्संग प्राप्त करने लगे। उनकी सेवा-शुश्रूषामें ये मुक्त हस्तसे व्यय करने लगे।

खड्गसेनने अपना शेष जीवन सत्संगमें ही व्यतीत किया। चौथी अवस्था आनेपर इनकी बुद्धि एवं शारीरिक बल सवाये-से हो गये थे। ये श्रीराधावल्लभलालकी रसात्मिका सेवामें कालयापन करने लगे। इनका महाप्रयाण आराध्यकी भावसेवा करते समय ही हुआ।

श्रीहरिराम व्यासजी

श्रीहरिराम व्यासजी ओरछानरेश महाराज मधुकरशाहजीके राजगुरु थे। सम्प्रदाय-ग्रन्थोंमें आपको विशाखा सखीका अवतार माना जाता है। आपका जन्म ओरछामें मार्गशीर्ष कृष्ण ५, सं० १५६७ वि० को हुआ था। आपके पिताका नाम श्रीसुमोखनजी शुक्ल और माताका नाम पद्मावती देवी था। आप वेदशास्त्रपुराणादिके पारंगत विद्वान् थे और आपको श्रीसरस्वतीजीकी सिद्धि थी। आप शास्त्रार्थमें दिग्विजय करते हुए काशी आये और वहाँके पण्डितोंसे शास्त्रार्थ किया। आपके अलौकिक पाण्डित्यके समक्ष उन सबको पराजयका मुँह देखना पड़ा। अन्तमें सभी पण्डित भगवान् विश्वनाथजीकी शरणमें गये और उनसे काशीपुरीकी मर्यादाकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की। ब्राह्मणोंकी प्रार्थना स्वीकारकर भगवान् विश्वनाथ साधुका वेष धारणकर सायंकाल श्रीव्यासजीके पास गये और बोले—'मैंने आपकी विद्वत्ताके विषयमें बहुत सुना है, अतः अपनी एक जिज्ञासाका समाधान करानेके लिये आपके पास आया हूँ, आप कृपा करके उसका समाधान कर दें तो बहुत अच्छा होगा।' आपने जिज्ञासा व्यक्त करनेको कहा। अनुमति मिलनेपर साधुवेशधारी श्रीविश्वनाथजीने पूछा—'विद्याका फल क्या है?' आपने उत्तर दिया—'विवेककी प्राप्ति।' शिवजीने पुनः प्रश्न किया—'क्या आपने विद्या पढ़कर विवेक प्राप्त कर लिया है? क्या विद्याका फल शास्त्रार्थ करके साधु-ब्राह्मणोंको हराना, उन्हें अपमानित करना ही है? आप तो भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिय सखी श्रीविशाखाजीके अवतार हैं, आपको तो भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भजन करके अपना जीवन सफल करना चाहिये, आप इन व्यर्थके विवादोंमें क्यों फँसे हैं?'

साधुवेशधारी भगवान् विश्वनाथजीके इस प्रबोधनसे आपके ज्ञान-चक्षु खुल गये और आप दिग्विजयका विचार त्यागकर तत्काल घर लौट आये और वैष्णवी दीक्षा लेनेका विचार करने लगे, परंतु यह समझमें नहीं आ रहा था कि गुरु किसे बनायें। भगवत्कृपासे इसी बीच श्रीवृन्दावनसे श्रीहितहरिवंश महाप्रभुजीके कृपापात्र श्रीनवलदासजी महाराज विचरण करते हुए ओरछा आये और आपके अतिथि हुए। उनसे श्रीहितहरिवंश महाप्रभुजीके बारे सुनकर आप बहुत प्रभावित हुए और मन-ही-मन उन्हें ही गुरु बनानेका निश्चय कर लिया। अब आपका मन घरपर न लगता और श्रीवृन्दावनके कुंजोंके दर्शनकी लालसा दिनोंदिन बढ़ती गयी। एक दिन आपने घर-द्वार सब कुछ छोड़कर श्रीवृन्दावनधामकी राह ली और श्रीनवलदासजीके पास पहुँच गये तथा उनके माध्यमसे श्रीहितहरिवंश महाप्रभुके चरणोंमें जा पहुँचे। आपको अधिकारी जानकर महाप्रभुने सम्प्रदायकी दीक्षा दी और श्रीयुगलकिशोरकी उपासनाका रहस्य समझाया।

आपके वृन्दावन चले आनेपर आपके घर-परिवारके लोग आपको वापस बुलाने आ गये और किसी भी प्रकार पीछा ही नहीं छोड़ रहे थे। परिवारीजनोंके साथ विचार-विमर्शमें उस दिन बहुत समय बीत गया, अतः आप सन्तोंकी सीथ-प्रसादी भी न पा सके थे। आपकी भगवत्प्रसादमें अनन्य निष्ठा थी, प्रसाद न पानेके कारण आपको बहुत ही पश्चात्ताप हो रहा था।

जब परिवारके लोग आपको वापस घर लानेमें सफल नहीं हुए तो स्वयं ओरछानरेश महाराज मधुकरशाहजी इन्हें लिवाने आये। महाराज सीधे आपके गुरु श्रीहितहरिवंश महाप्रभुसे मिले और उनसे निवेदन किया कि हमारे गुरुदेव श्रीव्यासजी यदि यहाँ रहते हैं तो केवल आत्मश्रेयका सम्पादन करेंगे और यदि ओरछामें विराजते हैं तो इनके साथ-साथ सम्पूर्ण देशवासियोंका कल्याण होगा; अतः आप कृपा करके इन्हें आज्ञा दीजिये कि ये वहीं चलकर स्वयं भक्ति-साधन करते हुए अपने सदुपदेशोंसे लोकका भी कल्याण करें। श्रीहरिवंशजीने महाराजके निवेदनपर हामी भर ली। जब इस बातका ज्ञान श्रीव्यासजी महाराजको हुआ तो वे श्रीधामवृन्दावनके वियोगमें व्याकुल हो गये और वहाँके सभी वृक्षों और लताओंसे लिपट-लिपटकर

करुण विलाप करने लगे। आपकी इस प्रेम-विह्वलताका ज्ञान होनेपर श्रीहितमहाप्रभुजी बड़े प्रसन्न हुए और आपको बुलवाकर आशीर्वाद दिया कि 'तुम अविचल श्रीवृन्दावनवास करोगे।' श्रीमधुकरशाहजी महाराज भी इनकी वृन्दावन-निष्ठा देखकर दोनों महापुरुषोंका चरण वन्दनकर ओरछा वापस लौट आये। जब आपके पत्नी-पुत्रोंको यह विश्वास हो गया कि अब आप ओरछा नहीं आयेंगे, तो वे लोग स्वयं ही वृन्दावन आ गये और श्रीहितहरिवंश महाप्रभुकी आज्ञासे वहीं रहकर सन्त-भगवन्तकी सेवा करने लगे। यहाँतक कि आपकी धर्मपत्नीने तो अपने आभूषणतक बेचकर सन्तसेवामें लगा दिये। आपके तीन पुत्रोंमें सबसे छोटे श्रीकिशोरदासजी श्रीस्वामी हरिदासजी महाराजके कृपापात्र थे। आपकी पुत्री भी परम भगवद्भक्ता थी, विवाह होनेके बावजूद भी उन्होंने श्रीवृन्दावनधाममें वास करने और भगवत्सेवा करनेको लौकिक सुखोंसे श्रेयस्कर माना और आजीवन इसी व्रतमें सन्नद्ध रहीं।

आपका श्रीवृन्दावनधामके प्रति अनन्यप्रेम था, अतः आपने स्वयं तो आजीवन वृन्दावनवास किया ही, दूसरोंको भी श्रीवृन्दावनवासकी प्रेरणा की। एक बारकी बात है, एक सन्त तीर्थयात्रा करते हुए श्रीधाम वृन्दावन आये और आपके पास ठहरे। उन सन्त भगवान्की कीर्तन-शैली ऐसी अद्भुत थी कि मानो आनन्दकी रस-धारा बरस रही हो, उस रसधारमें सिक्त होकर आपका मन उस आनन्दको छोड़नेके लिये तैयार नहीं था। आपकी इच्छा थी कि ऐसे सन्तको तो श्रीधाम वृन्दावनमें ही वास करते हुए अपने गायनसे श्रीठाकुरजीकी सेवाकर अपना जीवन सफल करना चाहिये, अतः आपने उन्हें आग्रहपूर्वक रोक लिया, परंतु तीर्थ-पर्यटनकी इच्छासे निकले सन्त महानुभाव अधिक समयतक रुकनेके लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने अपना ठाकुर बटुआ माँगा और चलनेके लिये प्रतिबद्ध हो गये। जब आपको लगा कि ये सन्त महोदय रुक सकेंगे नहीं, चले ही जायँगे तो आपने उनके ठाकुर बटुएसे श्रीठाकुरजीको तो निकाल लिया और कुंजसे एक चिड़िया पकड़कर उसमें रख दिया और उन्हें दे दिया। उन्होंने आगे जाकर स्नान आदिसे निवृत्त होकर श्रीठाकुरजीकी सेवा करनेके लिये जैसे ही ठाकुर बटुआ खोला, वैसे ही उसमें बन्द चिड़िया फुर्रसे श्रीवृन्दावनकी ओर उड़ चली। सन्तजीने यह कौतुक देखा तो उन्हें लगा कि श्रीठाकुरजी वृन्दावनसे नहीं जाना चाहते, इसीलिये वे चिड़िया बनकर पुनः वृन्दावन लौट गये। अब उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि मैंने इतने बड़े सन्त महापुरुषका आग्रह नहीं माना, जरूर मुझसे भगवदपराध हो गया, अतः मुझे भी वृन्दावन लौट चलना चाहिये। यह सोचकर वे पुनः आपके पास लौट आये। आपने भी उन्हें हृदयसे स्वीकार कर लिया। जब सन्त महानुभावने वृन्दावनवासका संकल्प ले लिया तो आपने उनको रोकनेके लिये किये गये इस प्रयासको उनसे बता दिया। इस प्रकार आपकी वृन्दावनके प्रति अनन्य निष्ठाके दर्शन होते हैं। आप कहा करते थे—

किशोरी तेरे चरनन की रज पाऊँ।
बैठि रहौं कुंजन के कोने स्याम राधिका गाऊँ॥
या रज शिव सनकादिकलोचन सो रज सीस चढ़ाऊँ।
व्यास स्वामिनि की छवि निरखत विमल विमल जस गाऊँ॥

एकबार आप श्रीठाकुरजीका शृंगार कर रहे थे। श्रीठाकुरजीके सिरपर पाग बाँध रहे थे, परंतु वह अत्यन्त चिकनी होनेके कारण सिरसे बार-बार फिसल-फिसल जाती थी। जब कई बार बाँधनेपर भी ठीकसे नहीं बँधी तो आपने झुँझलाकर कहा—अजी! देखो, या तो मुझसे अच्छी तरहसे पाग बँधा लीजिये या फिर मेरा बाँधना आपको पसन्द नहीं हो तो स्वयं ही बढ़िया-से-बढ़िया बाँध लीजिये। यह कहकर आप शृंगार छोड़कर कुंजोंमें जाकर कीर्तन करने लगे। तब श्रीठाकुरजीने ही पाग बाँध ली। किसीने आपसे आकर कहा कि आज तो आपने श्रीठाकुरजीको बढ़िया पाग बाँधी है। यह सुनकर आपको श्रीठाकुरजीकी याद आयी तो तुरंत ही आकर देखा। सचमुच बहुत बढ़िया पाग बँधी थी। तब मुसकराकर बोले—'अहो! जब आप

स्वयं इतनी बढ़िया पाग बाँधना जानते हैं तो मेरे द्वारा बाँधी पाग आपको कैसे पसन्द आ सकती है।'

एक बार शरत्पूर्णिमाकी प्रकाशमयी रात्रिके समय श्रीप्रियाप्रियतमने रास रचाया। नृत्यके प्रसंगमें जब श्रीप्रियाजीने भावावेशमें आकर गति ली तो रासमण्डलमें मानो बिजली-सी चमक गयी तथा रासमण्डलमें परम शोभा छा गयी। तबतक श्रीप्रियाजीके पाँवका नूपुर टूट गया, उसके घुँघरू बिखर गये। यह देखकर रसिकोंका मन बेचैन हो गया, परंतु उसी क्षण श्रीव्यासजीने नूपुरको पुनः पूर्ववत् पोहकर बड़ी सावधानीपूर्वक श्रीप्रियाजीके श्रीचरणोंमें बाँध दिया, जिससे नृत्यमें कोई भी व्यवधान नहीं आने पाया।

श्रीव्यासजीके तीन पुत्र थे। इन्होंने अपने पुत्रोंमें अपनी सम्पत्तिका बँटवारा नितान्त ही नवीन ढंगसे किया। एक हिस्सेमें तो श्रीठाकुरजीकी सेवा-पूजाको रखा, दूसरे हिस्सेमें धन इत्यादि और तीसरे हिस्सेमें श्याम-बंदनी और छापको रखा। आपने तीनों पुत्रोंको छूट दे दी कि वे स्वेच्छानुसार जो चाहें, ले लें। तब ज्येष्ठ पुत्र श्रीरासदासने धन लिया, मँझले पुत्र श्रीविलासदासने श्रीठाकुर युगलकिशोरजीकी सेवा ली और तीसरे पुत्र श्रीकिशोरदासजीने श्याम-बंदनी और छाप ली एवं तुरंत ही उन्होंने ललाटपर तिलक कर लिया तथा गलेमें माला धारण कर ली। श्रीव्यासजीके अनुरोधपर श्रीस्वामी हरिदासजीने श्रीकिशोरदासजीको छाप दी, अपना शिष्य बनाया। एक दिन श्रीस्वामीजीके आदेशसे श्रीकिशोरदासजी कुछ रात रहते ही श्रीयमुनाजीसे जल लेने गये तो वहाँ उन्होंने श्रीयमुनापुलिनपर श्रीप्रियाप्रियतमका दिव्य रास देखा। भावकी उमंगमें श्रीकिशोरदासजीने उसी समय स्वरचित एक पद गाया। जिसे ललिता आदि सखियोंने तत्काल सीख लिया और फिर जब भावनामें श्रीस्वामी हरिदासजी रास-क्रीड़ाका ध्यान कर रहे थे तो रासमें वही पद श्रीललिता आदि सखियोंको गाते हुए सुना, जिसे सुनकर श्रीस्वामी हरिदासजीका मन हर गया।

भक्त श्रीहरिराम व्यासजीका महाप्रयाण कब हुआ, यह निश्चित नहीं है। अधिकांश विद्वानोंने इसे १६५० से १६५५ संवत्‌के मध्य माना है। इनके पदोंका संकलन 'व्यासवाणी' नामसे प्रकाशित है। यह भक्तिभावनाका उन्मेष करनेवाली प्रौढ़ रचना है। इनके पदोंका मुख्य रस भक्तिरस है। राधाजीकी भक्तिसे सम्बन्धित इनका यह पद द्रष्टव्य है—

रसिक अनन्य हमारी जाति।
कुलदेवी राधा बरसानौ, खेरो ब्रजवासिन सों पाँति॥
गोत गोपाल जनेऊ माला, सिखा सिखंडि हरिमंदिर भाल।
हरि गुनगान वेदधुनि सुनियत, मंजु पखावज कुश करताल॥
सखा यमुन हरिलीला षटकर्म, प्रसाद प्रान धन रास।
सेवा विधि निषेध जड़ संगति, वृत्ति सदा वृन्दावन वास॥
समृति भागवत कृष्ण नाम, संध्या तर्पन गायत्री जाप।
बंसी ऋषि यजमान कल्पतरु, व्यास न देत असीस सराप॥

माधुर्य-उल्लास

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैर्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः॥

राधा! इस समय आकाशमें काले-काले बादल घिरे हुए हैं, श्यामल सघन तमालवृक्षोंके कारण वृन्दावनके परिसरमें अँधेरा-सा छाया हुआ है, रात्रि होनेवाली है और इस [कृष्ण]-को भय भी लग रहा है, इसलिये [पुत्री!] तुम्हीं इसको [मेरे] घरतक पहुँचा दो। नन्दजीके इस प्रकारसे कहनेपर मार्गमें स्थित वृक्षों-कुंजोंके बीचसे गुजरते हुए श्रीराधा-माधवकी एकान्त-यमुनापुलिनपर होनेवाली ललित लीलाएँ विजयशालिनी हैं। (श्रीजयदेवकृत गीतगोविन्द, मंगलाचरण)

कृष्णदिवाने रसखानजी

हमारे बाँकेबिहारी कोई-न-कोई अहैतुकी लीला करते ही रहते हैं। उनकी मायाका कोई पार नहीं पा सकता। न जाने कब किसपर रीझ जायँ! न जाने कब किस जीवपर कृपा हो जाय! बुलानेपर तो वे कभी आते नहीं, चाहे सिर पटक-पटककर मर जाय। न तपसे मिलते हैं, न जपसे, न ध्यानसे। यदि इन्हें इस प्रकार मिलना हो तो योगी, यति, ऋषि ध्यान करते रहते हैं, परंतु ये उनकी ओर देखतेतक नहीं। जब कृपा करते हैं तो अचानक करते हैं।

कृष्णके दीवाने रसखानजी एक मुसलमान थे। एक बारकी घटना है, वे अपने उस्तादके साथ मक्का-मदीना जा रहे थे। उनके उस्तादने कहा—'देखो, रास्तेमें हिन्दुओंका तीर्थ वृन्दावन आयेगा, वहाँ एक काला नाग रहता है। तू आगे-पीछे मत देखना; नहीं तो वह तुझे डँस लेगा, तू मेरे पीछे-पीछे चला आ। अपने दायें-बायें भी मत देखना वरना जब मौका देखेगा, तुझे डँस लेगा।'

बस, रसखानजीके मनमें एक उत्कण्ठा-सी जाग गयी कि क्या मुझे वहाँ काला नाग दिखायी देगा? वे यही सोचते जा रहे थे, उनकी लौ लग गयी हमारे श्रीबाँके-बिहारीसे, फिर क्या था! जैसे ही आप श्रीवृन्दावन आये, उस्तादने पुन: कहा—'रसखान! अब सावधानीसे चलना, यह हिन्दुओंका तीर्थ है। यहीं वह काला नाग रहता है।'

उस्तादका इतना कहना था कि हमारे लीलाधारीने अपनी लीला आरम्भ कर दी। कभी दायें, कभी बायें मीठी-मीठी बाँसुरीकी धुन बजानी शुरू कर दी। दूसरी ओर नूपुरकी मधुर झंकार होने लगी—सुनकर बेचारे रसखानजी मुग्ध हो गये। दोनों ओर मधुर तान तथा झंकार सुनकर बौरा-से गये। उनसे दायें-बायें देखे बिना न रहा गया। अन्तमें जब यमुनाके किनारे पहुँचे तो एक ओर देख ही तो लिया। वहाँ प्रियाजीके साथ श्रीबाँकेबिहारीजीकी सुन्दर छविके दर्शन किये और मोहित हो गये। भूल गये अपने उस्तादको और निहारते ही रहे उस प्यारी छविको। अपनी सुध-बुध खो बैठे, अपना ध्यान ही न रहा कि मैं कहाँ हूँ; वहीं ब्रजरजमें लोट-पोट हो गये। उनके मुखसे झाग निकल रहा था, वे तो ढूँढ़ रहे थे उस मनोहर छविको, पर अबतक तो प्रभुजी अन्तर्धान हो चुके थे।

थोड़ी दूर जाकर उस्तादने पीछे मुड़कर देखा, रसखान दिखायी नहीं दिये; वे वापस आये। रसखानकी दशा देखकर समझ गये, इसे वही काला नाग डँस गया है। अब यह हमारे मतलबका नहीं रहा। उस्ताद आगे बढ़ गये।

रसखानजीको जब होश आया, वे वही प्यारी मनमोहक छवि ढूँढ़ रहे थे अपने चारों ओर। सबसे पूछा, वह साँवरा-सलोना, मोहनी मूर्तिवाला अपनी बेगमके साथ कहाँ रहता है? कोई तो बता दो। किसीने बिहारीजीके मन्दिरका पता बता दिया। वे वहाँ गये। किसीने अन्दर जाने नहीं दिया, तीन दिनतक भूखे-प्यासे वहीं पड़े रहे। तीसरे दिन बिहारीजी अपना प्रिय दूध-भात चाँदीके कटोरेमें लेकर आये और अपने हाथसे खिलाया।

प्रात:काल लोगोंने देखा कटोरा पासमें पड़ा है। रसखानजीके मुखपर दूध-भात लगा हुआ है। कटोरेपर बिहारीजी लिखा है। रसखानजीको उठाया, लोग उनकी

चरणरज माथेपर लगाने लगे। वे गली-गली गाते फिरते—
'बंसी बजाके, सूरत दिखाके क्यों कर लिया किनारा'''।'
आज भी रसखानजीकी मजारपर बहुत-से लोग जाकर उनके दिव्य कृष्णप्रेमकी याद करते हैं। [श्रीमती भगवतीजी गोयल]

माधवको मन देनेवाले—रहीम

भगवान् श्रीराधामाधवकी भुवनपावनी, चित्ताह्लादिनी मधुर लीलाओंने अनेक यवनभक्तोंका भी मानस आकृष्ट किया है। इन भक्तोंमें अकबरके नवरत्नोंमें परिगणित अब्दुर्रहीम खानखानाका विशिष्ट स्थान है। रहीमने जीवनकी प्रिय-अप्रिय दोनों ही परिस्थितियोंको अत्यन्त निकटसे देखा था। अनुश्रुतियोंसे ज्ञात होता है कि अनेक बार विषम परिस्थितियोंमें श्रीनन्दनन्दनके अनुग्रहने इनकी प्राणरक्षा की थी। श्रीराधा एवं श्रीकृष्णकी सरस लीलाओंसे सम्बन्धित रहीमके अनेक दोहे, पद, बरवै, सोरठे एवं श्लोक प्रसिद्ध हैं। एक श्लोकमें रहीम कहते हैं कि माधव! लक्ष्मी आपकी सहधर्मिणी हैं, रत्नाकर आपका गृह है, आप स्वयं जगत्पति हैं; मैं आपको क्या अर्पित करूँ? परंतु आपका मन श्रीराधाने हरण कर लिया है, अतः आपके पास मन नहीं है, इसलिये मैं आपको अपना मन अर्पित करता हूँ, कृपया इसे ग्रहण कर लीजिये—

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
राधागृहीतमनसे मनसे च तुभ्यं
दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण॥

रहीमकी भक्तिभावनाको ज्ञापित करनेवाला यह बरवै पद्य भी अवलोकनीय है—

सुमिरौं मन दृढ़ करिकै नन्दकुमार।
जे वृषभानुकुवँरि कै प्रान अधार॥

श्रीकृष्णकी रूपमाधुरीका सरस चित्रण करनेवाला रहीमका यह पद नितान्त मर्मस्पर्शी और रसिकोंका कण्ठहार है—

कमलदल-नैननिकी उनमानि।
बिसरति नाहिं सखी, मो मनतें मन्द मन्द मुसकानि॥
यह दसननि-दुति चपलाहूते, महाचपल चमकानि।
वसुधाकी बस करी मधुरता, सुधा-पगी बतरानि॥
चढ़ी रहै चित उर बिसाल की, मुकुत-माल थहरानि।
नृत्य-समय पीताम्बरहूकी, फहरि-फहरि फहरानि॥
अनुदिन श्रीवृन्दावन ब्रजतें, आवन, आवन जानि।
अब 'रहीम' चिततें न टरति है, सकल श्याम की बानि॥

मधुर-विनोद

एक मुसलमान भक्त थे। उनका नाम था अहमदशाह। उन्हें प्रायः भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन होते रहते थे। अहमदशाहसे वे विनोद भी किया करते थे। एक दिन अहमदशाह एक बड़ी लम्बी टोपी पहनकर बैठे हुए थे। भगवान्‌को हँसी सूझी। वे उनके पास प्रकट होकर बोले—'अहमद! मेरे हाथ अपनी टोपी बेचोगे क्या?' अहमद श्रीकृष्णकी बात सुनकर प्रेमसे भर गये, पर उन्हें भी विनोद सूझा। वे बोले—'चलो हटो, दाम देनेके लिये तो कुछ है नहीं और आये हैं टोपी खरीदने!'

भगवान्—'नहीं जी! मेरे पास बहुत कुछ है!'

अहमद—'बहुत कुछ क्या है, लोक-परलोकको समस्त सम्पत्ति ही तो तुम्हारे पास है, पर वह लेकर मैं क्या करूँगा?

भगवान्—'देखो अहमद! यदि तुम इस प्रकार मेरी उपेक्षा करोगे तो मैं संसारमें तुम्हारा मूल्य घटा दूँगा। इसीलिये तो तुम्हें लोग पूछते हैं, तुम्हारा आदर करते हैं कि तुम भक्त हो और मैं भक्तके हृदयमें निवास करता हूँ। किंतु अब मैं कह दूँगा कि अहमद मेरी हँसी उड़ाता है, उसका आदर तुमलोग मत करना। फिर संसारका कोई व्यक्ति तुम्हें नहीं पूछेगा।' अब तो अहमद भी बड़े तपाकसे बोले—'अजी! मुझे क्या डर दिखाते हो! तुम यदि मेरा मूल्य घटा दोगे तो तुम्हारा मूल्य मैं भी घटा दूँगा। मैं सबसे कह दूँगा कि भगवान् बहुत सस्ते मिल सकते हैं, वे सर्वत्र रहते हैं, सबके हृदयमें निवास करते हैं। जो कोई उन्हें अपने हृदयमें झाँककर देखना चाहेगा, उसे वे वहीं मिल सकते हैं, कहीं जानेकी जरूरत नहीं। फिर तुम्हारा आदर भी घट जायगा।'

भगवान् हँसे और बोले—'अच्छा भैया! न तुम चलाओ मेरी, न मैं चलाऊँ तेरी!'

ये अहमद निरन्तर भगवान्‌के ध्यानमें ही तल्लीन रहा करते थे।

श्रीराधा-माधवके यवन भक्त श्रीसनमसाहब

भक्त श्रीसनमजीका पूरा नाम था—मोहम्मद याकूब साहब। आपका जन्म सन् १८८३ ई० के लगभग अलवरमें हुआ था। इनके पिता अजमेरके सरकारी अस्पतालके प्रधान चिकित्सक थे। इनकी माँ एक पठानकी पुत्री थीं, फिर भी पूर्वजन्मके संस्कारवश उन्हें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकृत श्रीरामचरितमानस पढ़ने और गानेका शौक था। श्रीरामजीकी कृपासे उन्हें श्रीरामचरितमानसके मूल ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायणको पढ़नेकी इच्छा हुई, किंतु परदेमें रहनेके कारण बाहर जाना नहीं हो सका, तो उन्होंने एक पण्डितजीको घर बुलवाकर रामायण सुननेकी इच्छा व्यक्त की किंतु उसमें भी सफलता नहीं मिली। तब माँने कहा—'बेटे, तुम संस्कृत पढ़ लो।' पर कोई पण्डित गोमांस तथा प्याज-लहसुन खानेवाले मुसलमानको संस्कृत पढ़ानेके लिये तैयार नहीं हुआ। तब माता-पुत्रने निश्चयपूर्वक मांस आदिका त्याग कर दिया। फिर माँके कहनेपर सनमसाहबने पं० गंगासहाय शर्मासे सारी बात बतायी और उनकी अनुमति मिलनेपर पण्डितजीसे संस्कृत पढ़ी। भागवतादि ग्रन्थोंके अध्ययनके पश्चात् उनका चित्त श्रीराधा-माधवके प्रति आकृष्ट हो गया और उन्होंने अपने सुहृद् भगवानदास भार्गवके माध्यमसे व्रजके एक सन्त श्रीसरसमाधुरी-शरणजीसे युगलमन्त्रकी दीक्षा प्राप्त की। यद्यपि दीक्षाके उपरान्त इनका नाम 'श्यामाशरण' हुआ फिर भी गुरुदेव इन्हें स्नेहवश 'सनम' कहते थे। सनमसाहबके भगवदनुराग तथा वैष्णवोचित वेशसे क्रुद्ध धर्मान्ध मुसलमानोंने इनका भाँति-भाँतिसे अपकार किया, किंतु सर्वत्र ये भगवत्कृपासे रक्षित होते रहे। इन्होंने निकुंजलीलाओंके माधुर्यसे ओत-प्रोत बहुत-से पदोंकी रचना की तथा राधासुधानिधि एवं मधुराष्टकका अँगरेजीमें अनुवाद किया। सरससागर, सरससद्गुरुविलास आदि इनके स्वप्रणीत ग्रन्थ हैं। इन्होंने हिन्दी, व्रजभाषा तथा अँगरेजीमें ग्रन्थोंका प्रणयन किया है। प्रसिद्ध कृष्णभक्त अँगरेज रोनाल्ड निक्सनने कृष्णप्रेमकी स्फूर्ति इन्हींसे प्राप्त की थी। श्रीमालवीयजी-जैसे प्रख्यात महापुरुषोंके साथ सनमसाहबका अतीव सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध था। इन्होंने अलवरमें श्रीकृष्ण लाइब्रेरीकी स्थापना की, जिसमें लगभग बारह सौ कृष्णभक्तिपरक ग्रन्थ संगृहीत हैं। ये राधाष्टमी आदिके अवसरपर उल्लासपूर्वक महोत्सवोंका आयोजन करते थे। सनम-साहबके भक्तिप्रवण चित्तमें समय-समयपर राधामाधवकी निकुंजलीलाओंकी स्फूर्ति होती रहती थी। उन्हें दो बार राधा-माधवका प्रत्यक्ष दर्शन भी हुआ था। वे चाहते थे कि राधा-माधवके श्रीचरणोंमें ही उनका देहपात हो; वैसा हुआ भी। १९४५ ई०में शरत्पूर्णिमाके दिन उनकी यह इच्छा पूर्ण हुई। वृन्दावनमें एक स्थानपर रासलीलामें सखियाँ गा रही थीं—

अनूपम माधुरी जोरी हमारे श्याम-श्यामाकी।
रसीली मदभरी अँखियाँ हमारे श्याम-श्यामाकी॥
कटीली भौंह अदा बाँकी सुघर सूरत मधुर बतियाँ।
लटक गरदनकी अनबँसिया हमारे श्याम-श्यामाकी॥

× × ×

नहीं कुछ लालसा धनकी नहीं निर्वानकी इच्छा।
सखी श्यामा मिले सेवा हमारे श्याम-श्यामाकी॥

उन्हीं सखियोंके साथ स्वर मिलाकर गाते-गाते सनमसाहबने श्यामा-श्यामके श्रीचरणोंमें सदाके लिये माथा टेक दिया। विस्मित-अवाक् दर्शकोंने इनके भक्तिभाव एवं सौभाग्यकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हुए प्रेमाश्रुपूरित नेत्रोंसे उन्हें अन्तिम विदा दी।

[डॉ० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी]

प्रतिज्ञा तव गोविन्द न मे भक्तः प्रणश्यति।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य प्राणान् संधारयाम्यहम्॥

'गोविन्द! आपकी यह प्रतिज्ञा है कि मेरे भक्तका पतन (विनाश) नहीं होता। मैं इसी बातको याद कर-करके प्राणोंको धारण कर रहा हूँ।'

राधाजीकी मुसलिम कारीगरपर कृपादृष्टि

भगवान् समस्त मनुष्योंपर समान कृपाका भाव रखते हुए प्रेम करते हैं। उनके यहाँ अमीर-गरीब, छोटे-बड़ेका कोई भेद नहीं है। राजा हो या रंक सभीको एक समान दृष्टिसे देखा जाता है। उनकी कृपादृष्टि धर्मके आधारपर भी कोई भेदभाव नहीं करती है; उनके लिये हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध सभी समान हैं—सभी उनकी अपनी संतान हैं। अनेक अंग्रेज और मुसलमान भक्तोंपर भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा की घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। यहाँ उनकी आह्लादिनी अन्तरंगा शक्ति जगज्जननी भगवती श्रीराधाजीकी वृन्दावनके एक मुसलिम कारीगरपर की गयी कृपादृष्टिसे सम्बन्धित एक सत्य घटना प्रस्तुत की जा रही है—

भगवान् श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाजीकी लीलाभूमि मथुरा-वृन्दावनमें हिन्दुओंके साथ-साथ मुसलिम भी बड़ी संख्यामें रहते हैं। अधिकतर मुसलिम ब्रजवासी होनेके नाते श्रीराधा-कृष्णके प्रति वैसा ही श्रद्धाभाव एवं अनन्य प्रेम रखते हैं, जैसा कि हिन्दूजन। वे हिन्दुओंसे 'जय श्रीकृष्ण' एवं 'राधे-राधे' कहकर दुआ-सलाम करते हैं तथा उनके साथ मैत्री एवं सद्भावपूर्ण व्यवहार करते हैं।

मथुरा-वृन्दावनक्षेत्रमें हजारोंकी संख्यामें श्रीराधा-कृष्णके छोटे-बड़े मन्दिर हैं। उनमें स्थित भगवान् श्रीकृष्ण एवं राधारानीकी मूर्तियोंको पहनायी जानेवाली सस्ती पोशाकें तो हिन्दू कारीगर सिलते हैं, लेकिन जरदोजी कलाके जरिये अत्यन्त महँगी पोशाकें अधिकतर मुसलमान कारीगर ही सिलते एवं तैयार करते हैं। यह उनका खानदानी पेशा है और इसे वे पूरी निष्ठा और भक्तिभावनासे करते हैं। भारत और यूरोपके ज्यादातर मन्दिरोंमें जानेवाली महँगी पोशाकें वृन्दावन एवं मथुराके मुसलिम कारीगरोंद्वारा ही तैयार की जाती हैं। पोशाकें सिलते समय कारीगर तनकी स्वच्छताका विशेष ख्याल रखते हैं। अच्छी तरह हाथ-पैर एवं मुँह धोकर पोशाकें सिलनेका कार्य शुरू करते हैं। उनके लिये राधा-कृष्णकी पोशाकें सिलना पेशामात्र नहीं, अपितु पवित्र कार्य है।

इन्हीं कारीगरोंमें एक हैं—इकराम कुरैशी। वृन्दावनमें मथुरा गेटपर रहनेवाले इकराम कुरैशी काफी लम्बे समयसे श्रीराधा-कृष्णकी महँगी पोशाकें (जो कि जरदोजी कलासे अलंकृत होती हैं) सिलनेका कार्य करते हैं। उनके दादा-परदादा भी यही काम करते थे। वे बताते हैं कि यह हमारा पुश्तैनी धन्धा है। हम तनकी स्वच्छताका ध्यान रखते हुए श्रद्धा-प्रेमके साथ स्वयं भी श्रीराधा-कृष्णकी पोशाकें सिलते हैं और अन्य कारीगरोंद्वारा भी तैयार करवाते हैं।

इकराम कुरैशीने स्वयंके साथ घटी श्रीराधारानीकी कृपासम्बन्धी एक दिव्य घटनाको भावुक एवं प्रेमसे गद्गद होकर बताया—

उनके अनुसार एक बार हमसे भगवान् श्रीकृष्णकी पोशाकें सिलनेमें कुछ कमी रह गयी। पोशाकोंके रंगोंपर भी मेरा ध्यान नहीं गया था। उसी रात्रिको श्रीराधारानीने मुझे स्वप्नमें दिव्य दर्शन देते हुए अत्यन्त विनम्रतापूर्वक मीठी बोलीमें समझाया कि कल सिली गयी पोशाकोंमें कुछ कमी रह गयी है, ऐसा नहीं होना चाहिये। उन्होंने मुझे पोशाकोंके रंग आदिके बारेमें भी बताया तथा और भी कई हिदायतें दीं। उसके बाद तो हम पोशाकोंके सम्बन्धमें और भी सतर्कता बरतने लगे।

इकराम कुरैशीने श्रीराधारानीकी अलौकिक झलकको याद करते हुए भावुक होकर बताया कि 'जिन श्रीराधारानीकी दिव्य कृपा प्राप्त करनेके लिये सन्त-महात्मा सैकड़ों वर्षोंतक, कई जन्मोंतक तपस्या एवं प्रतीक्षा करते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णकी परम आराध्या, व्रजकी महारानी श्रीराधारानीद्वारा अपने ऊपर हुई असीम कृपा एवं उनकी करुणाको यादकर आज भी मैं रोमांचित एवं भावविह्वल हो उठता हूँ।'

धन्य हैं इकराम कुरैशी, जिनका कर्मयोग श्रीराधारानीने स्वीकार किया और उन्हें दर्शन दिये!

—श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल

भक्तप्रवर श्रीराधिकादासजी महाराज

महात्मा पं० रामप्रसादजी अथवा श्रीराधिकादासजीने राजस्थान प्रदेशके झुंझुनू जिलान्तर्गत चिड़ावा नगरमें पण्डित लक्ष्मीरामजी मिश्रके घर संवत् १९३३ की माघ कृष्णा अष्टमी रविवारको जन्म ग्रहण किया था। आप जब केवल आठ वर्षके थे, तभीसे चिड़ावाके प्रसिद्ध मन्दिर श्रीकल्याणरायजीके नित्यप्रति दर्शन करनेको जाया करते और भगवान्‌से अनेक प्रार्थनाएँ किया करते थे। अन्तमें कहते—'हे कृपालु! सारे संसारका भला करके मेरा भी भला करना।'

आप उच्च कोटिके भक्त और श्रीभगवन्नामके बड़े रसिक थे। आपने भगवन्नाम, भगवद्भक्ति, भक्तमहिमा आदि विषयोंपर संस्कृतभजनरत्नावली, गंगाशतक, भाषाभजनरत्नावली, वैराग्यसुधाबिन्दु, भक्ति-सुधाबिन्दु, विज्ञानसुधाबिन्दु, हरिनामोपदेश, हरिजन-महिमोपदेश, भक्तनामावली, श्रीमत्सद्गुरुजीवनचरित्र, सिद्धान्तसुधाबिन्दु, भक्तमन्दाकिनी, श्रीमदाचार्यस्तुति, सिद्धान्तषट्पटी, विनयपद्यावली और श्रीकृष्णपरतत्त्व आदि ग्रन्थोंकी रचना की। इन पुस्तकोंके मनन करनेसे जीवका कल्याण हो सकता है। इन्हींकी कृपासे सेकसरिया संस्कृतपाठशाला चिड़ावामें संध्याको सदा हरि-नामसंकीर्तन हुआ करता है।

आप निम्बार्कसम्प्रदायके परमवैष्णव थे। भिन्न-भिन्न मतावलम्बियोंमें प्राय: परस्पर द्वेष रहा करता है, किंतु आप इस प्रवादके नितान्त अपवाद थे। आप वैष्णव होते हुए भी किसी अन्य देवताके प्रति न तो अश्रद्धा रखते थे और न किसी तरहकी विद्वेष-भावना ही आपके मनमें थी, प्रत्युत कहा करते कि **'सर्वदेवनमस्कार: केशवं प्रति गच्छति।'** धन्य है, सच्ची महानुभावता इसीका नाम है।

आपकी दिनचर्या बड़ी ही विचित्र थी। आप रात्रिके लगभग तीन बजे या कभी-कभी दो बजे ही उठ जाते और लघुशंका आदिसे निवृत्त हो हाथ-पैर धोकर भजन करने बैठ जाते थे। बादमें प्राय: दस बजे भजनसे उठकर शौचादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर फिर भजनमें बैठ जाते थे। इधर एक विद्यार्थी आपके नित्य-कर्मोंसे निवृत्त होनेके पहले ही लगभग दिनके तीन बजे श्रीगोपालजीका प्रसाद तैयार कर लिया करता था, तब आप अपना मौन तोड़ते थे और प्रसाद पाते थे। भजन-समयमें यदि कोई विशेष कार्य होता तो लिखकर या संस्कृतभाषामें बोलकर सम्पादन करते थे। आप नित्य एक लाख हरिनामके जप करनेका संकल्प करते थे। आपका यह भी एक दृढ़ नियम था कि श्रीभगवान्‌के अर्पण किये बिना जलतक ग्रहण नहीं करते थे और प्रसादके नामसे तो विषतकसे भी नहीं हिचकते थे।

आपकी भक्ति बहुत ही ऊँची थी। श्रीराधाकृष्णका नाम लेते ही आपकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आते थे। दीनताकी तो आप प्रतिमूर्ति ही थे। भगवान्‌का नाम लेनेवाला प्रत्येक व्यक्ति आपकी दृष्टिमें भक्त था। बड़े भारी विद्वान् और ब्राह्मण होनेपर भी आप भक्तमात्रकी चरणरजको ग्रहण करना चाहते थे। हृदय ऐसा सरल और शुद्ध था कि आपकी दृष्टिमें शायद ही किसीका दोष दीखता हो। आपमें दैवीसम्पत्तिका विशेष विकास था। श्रीराधेश्यामके नाम और लीलापर आप मुग्ध थे। परंतु भगवान्‌के किसी भी स्वरूपसे आपको अरुचि नहीं थी। कहा जाता है कि, एक बार कहीं श्रीरामलीला हो रही थी। आप भी वहाँ देखने पधारे। भगवान् श्रीराम, श्रीलक्ष्मण तथा माता सीताजीके स्वरूपोंको देखते ही आप प्रेमावेशमें बेसुध हो गये। आपने श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये। औरोंकी दृष्टिमें वे रामलीलाके एक बालक थे, परंतु आपकी दृष्टिमें साक्षात् भगवान् श्रीराम ही थे। आप स्तवन करने लगे। उस दिन रामलीला रुक गयी। परंतु असली रामलीला तो हो ही गयी। आपकी साधुता, श्रीकृष्णैकपरायणता, नामप्रेम, विनयका बर्ताव बहुत आदर्श था।

वैसे तो आप प्रतिवर्ष दो बार अर्थात् श्रावण और फाल्गुनमें वृन्दावन अवश्य जाया करते थे, किंतु श्रीवृन्दावनवाससे पूर्वके पाँच वर्षोंमें तो आपका ध्यान श्रीवृन्दावनकी ओर विशेष आकृष्ट हो गया था। इन दो वर्षोंमें आपको अपने शरीरपातकी शंका हो गयी थी।

अत: आपने निरन्तर श्रीवृन्दावनमें रहना ही निश्चय कर लिया था। सं० १९८९ के चैत्रमासमें आप रुग्ण हो गये। साधारण चिकित्सासे कुछ लाभ न हुआ।

आपका मन औषध ग्रहण करनेका कम था, परंतु कुछ संतों, श्रीमंतोंके विशेष आग्रह और भक्तोंके कहनेके अनुसार आपने औषधि लेनी आरम्भ की, पर ईश्वरेच्छा और ही थी। आपके रुग्ण होनेसे आपकी धर्मपत्नी, पुत्र तथा सेठ गोरखरामजी और द्वारकादासजी आपके पास वृन्दावन चले गये। आपकी सेवा करने लगे। आपके आज्ञानुसार वहाँपर महीनों पहले आठ पहरका हरिकीर्तन होने लगा। कलियुगमें भी सत्ययुगका-सा समय आ गया। आपने श्रीवृन्दावनवास होनेके पच्चीस दिन पहलेसे अखण्ड मौनव्रत धारण कर लिया था और श्रीराधेश्याम शब्दके अतिरिक्त अन्य समस्त शब्दोंका उच्चारण करना त्याग दिया था। मौनावस्थामें एक बार आपने स्लेटपर लिखा—'सात दिन रासलीला तथा सात दिन श्रीमद्भागवतकी कथा अच्छे सुयोग्य विद्वानोंसे होनी चाहिये।' महात्माजीके कथनानुसार सात दिन रासलीला हुई तथा सात दिन श्रीमद्भागवत निर्विघ्न पाठ भी हुआ। इस तरह सच्चे भक्तका जीवन व्यतीत करते हुए श्रीमहाराजका सं० १९८९ श्रावण शुक्ला त्रयोदशीको प्रात:काल नौ बजे श्रीवृन्दावनमें निकुञ्जवास हो गया। हमारी बाह्यदृष्टिमें सदाके लिये एक दुर्लभ महापुरुषका अभाव भी हो गया, पर उनकी कथा अमर हो गयी।

युगलसरकारके कृपापात्र स्वामी श्रीचरणदास

राधामाधवके अनन्य उपासक तथा शुकसम्प्रदायके प्रवर्तक महात्मा चरणदासजीका जन्म राजस्थान प्रदेशके अलवर राज्यके निकटवर्ती डहरा ग्राममें सं० १९६० की भाद्रपद शुक्ल तृतीयाको हुआ था। इनकी माताका नाम कुंजोरानी एवं पिताका नाम मुरलीधर था। कहते हैं कि इनके पूर्वपुरुष भक्तप्रवर शोभनने भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्तकर उनसे प्रार्थना की थी कि मेरे वंशमें भगवद्भक्ति सदा बनी रहे। इन्हीं महाभागके कुलकी आठवीं पीढ़ीमें श्रीचरणदासजीका प्रादुर्भाव हुआ। माता-पिताने इनका नाम रणजीतलाल रखा। इन्होंने पाँच वर्षकी अवस्थामें श्रीशुकदेवजीका अनुग्रह प्राप्त किया था। बाल्यकालसे ही इनमें भगवद्भक्तिके लक्षण प्रकट होने लगे थे। किशोरावस्थातक आते-आते ये भगवद्विरहमें व्याकुल हो उठे और उसी अवस्थामें अन्त: प्रेरणावश शुकताल जा पहुँचे। वहाँ शुकदेवजीने प्रकट होकर रणजीतलालको युगलमन्त्रकी दीक्षा देकर सनाथ किया और इनका नाम श्यामचरणदास रखा—***'श्यामचरण ही दास तुम्हारा नाम प्रकट कहै सब संसारा।'*** इनकी ही बादमें चरणदासके नामसे प्रसिद्धि हुई। शुकदेवजीके आज्ञानुसार किसी एकान्त-गुफामें इन्होंने दीर्घकालतक योगसाधना की और गुरुकी आज्ञासे राजोचित कार्योंका कुछ समयतक निर्वाह करके वैराग्यप्रेरित हो ये वृन्दावनकी ओर चल पड़े। वृन्दावनके सेवाकुंजमें पहुँचकर ये भाव-विभोर हो कह उठे—

सेव्य जहाँ श्रीराधिका सेवक श्रीनँदलाल।
याते नाम प्रसिद्ध जग सेवाकुंज रसाल॥

सेवाकुंजमें होनेवाली राधामाधवकी सरस रासलीलाओंके अवलोकनार्थ ये गुप्त रीतिसे तीन दिन-रात निराहार वहाँ पड़े रहे। इसपर भी जब चरणदासजीको दर्शन नहीं हुआ तब इनकी विरह-व्यथा असह्य हो उठी। भक्तकी व्यथासे द्रवित श्रीकृष्णने किशोरीजीसे निवेदन किया कि मेरा अनन्य भक्त दर्शन चाहता है। कृपामयी श्रीराधा प्रियतम श्रीकृष्णके साथ मध्यरात्रिमें चरणदासजीके समक्ष प्रकट हुईं—

अर्धनिशा बीती तबहिं प्रगटे प्यारी लाल।
गलबैयाँ दीने दोऊ मदन मनोहर लाल॥

भावविह्वल चरणदासजी युगलस्वरूपका दर्शनकर कृतकृत्य हो गये। भगवान्‌ने इनको नवधाभक्तिके प्रचार-प्रसारकी आज्ञा दी। राधामाधवकी नित्य सेवाकी कामनावाले चरणदासजीने आर्तस्वरमें निवेदन किया—प्रभो! मुझे दिव्य वृन्दावन तथा महारासको देखनेकी उत्कट लालसा है—

निज वृन्दावन मोहि दिखावो, तहाँ के रास विलास सुझावो।
जाकी लीला चित में धरिहूँ ताको ध्यान सुरति से करिहूँ॥
तन राखूँगो जग के माँहीं, मन राखूँ तुम चरणन पाहीं।
किरपा करि-करि ऐसी कीजे, यही चाह पूरी करि दीजे॥

भगवान्‌की अनुकम्पासे उन्होंने वह सब प्रत्यक्ष देखा और स्वयंको भी श्रीराधाकी सखीके रूपमें देखकर वे कृतार्थ हो गये—

चरणदास तहाँ अपन को, देखे सखी सरूप।
नव यौवन सुकुमार तन, नख सिख सुन्दर रूप॥

श्रीकृष्णने हँसकर इन्हें अपने निकट बुला लिया और इनका हाथ थामकर अपने दाईं ओर बिठा लिया—

पहले सखियन को निरत, दिखलायो श्रीनाथ।
फिर उतरे राधा ललन, उनहूँ को गहि हाथ॥

× × × ×

वाम अंग श्री राधिका, दहिने चरणहिदास।
मध्य बिहारी लाल जू, नृत्तत उमँगि हुलासि॥
चहूँ ओर आली नचत, मंडल गोल बनाय।
निरखत छवि रस माधुरी, हर्ष न हृदय समाय॥

भगवान्‌ने पूछा—'अब तो तुम प्रसन्न हो न?' चरणदासजीका सुख वर्णनातीत था। श्रीकृष्णने इन्हें भक्तिके प्रचारार्थ आदेश देकर नेत्र मूँदनेको कहा, इन्होंने नेत्र बन्द कर लिये। जब आज्ञा मिलनेपर इनके नेत्र खुले तो अपनेको वंशीवटके निकट एकाकी बैठा हुआ देखा। प्रभुके विरहको किसी प्रकार सहते हुए चरणदासजीने यावज्जीवन भगवदादेशका अनुपालन किया तथा मदान्ध विधर्मी शासकोंको अनुशासित कर लोककल्याण सम्पन्न किया। इन्होंने अनेक अधिकारियोंको परमार्थ-पथका पथिक बनाकर अन्तमें राधामाधवका नित्य दास्य प्राप्त किया।

नित्यनिकुंजलीलालीन श्रीगुरुछौनाजी

श्रीगुरुछौनाजी स्वामी श्रीचरणदासजीके प्रधान ५२ शिष्योंमें अन्यतम माने जाते हैं। इनका जन्म नीमराणा रियासतके 'देन्हावस' नामक गाँवमें चौहान क्षत्रियकुलमें वि०सं० १७७६ माघ शुक्ल चतुर्दशीको हुआ। इनके पिता दिल्लीमें फौजमें काम करते थे, अत: ये भी पिताके पास दिल्लीमें ही रहते थे। एक दिन ये घोड़ेपर चढ़कर स्वामी चरणदासजीके पास दर्शनार्थ आये। वार्तालाप प्रारम्भ हुआ। इसी प्रसंगमें छौनाजीमें भगवन्निष्ठाका आधान करनेके उद्देश्यसे स्वामी चरणदासजीने घोड़ेके मुँहसे राधा-कृष्णका नामोच्चारण करवाया, जिससे ये चमत्कृत होकर उनके शिष्य बन गये। छौनाजी नैष्ठिक बाल-ब्रह्मचारी विरक्त महात्मा थे। कुछ दिन साधनाभ्यासकर इन्होंने अनेक स्थानोंका भ्रमण किया। अंतत: अलवरके पास माचल गाँवमें रहते हुए वि०सं० १८३८में नित्य-निकुंजलीलालीन हो गये। वहाँ इनकी आज भी भव्य समाधि इनकी स्मृतिको सुरक्षित रखे हुए है। इनके राधामाधव-सम्बन्धी सुन्दर पदोंमें निकुंजरसविषयक एक पद द्रष्टव्य है—

सीस महल सोवत पिय प्यारी।
हिलमिल सखियाँ परम प्रीति सौं सुखद सेज निज करन सँवारी॥
आनन्द सौं पौढ़े दोउ ओढ़े, मृदुल पिताम्बर अति सुखकारी।
फूल पान जल झारी धरे जहाँ, अष्ट सुगंध महक मनहारी॥
सुख सोभा कछु कहत न आवै, मणि दीपन की अति उजियारी।
छौना सखि पदकमल पलोटै, धन्य भाग लखि हर्ष अपारी॥

इन्होंने कई गन्थोंका प्रणयन किया, जिनमें 'षट्रूपमुक्ति', 'दोहावली' तथा 'पदावली' विशेष प्रसिद्ध हुए। पदावली तथा दोहावली नामक ग्रन्थोंमें निकुंज-रसोपासना एवं राधामाधवकी सरस लीलाओंका निरूपण किया गया है। [श्रीब्रजेन्द्रकुमारजी सिंहल]

भक्त श्यामानन्द—जिन्हें राधारानीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया

सोलहवीं शताब्दी आधीसे अधिक बीत चुकी थी। बंगाल और उड़ीसाके अध्यात्मसिन्धुमें भगवान् श्रीचैतन्यकी भावतरंगोंके ज्वार-भाटे आ रहे थे। बर्दवानके अम्बिका-कालनाके गौर-मन्दिरमें आरतीके बाद आचार्य हृदयचैतन्य भगवान्‌की लीला-कथा कहनेमें लीन थे कि इसी समय एक नवयुवक आकर उनके चरणोंमें लोट गया। करुण-कातर स्वरमें बोला—'प्रभो! मेरा जीवन धन्य करें। मुझे दीक्षा देकर अपना शिष्य स्वीकार कर लें।'

हृदयचैतन्यने उसे बैठाकर उसके सिरपर प्रेमसे हाथ फेरा। स्नेहपूर्वक उससे पूछने लगे—'बेटा! तुम कौन हो? कहाँसे आ रहे हो? तुम्हारा परिचय क्या है?'

उत्तरमें उस नवयुवकने अपना परिचय बतलाया।

'बहुत दूर उड़ीसाके धरेंदापुरमें उसका निवास-स्थान है। उतनी दूरसे जंगल और पहाड़ोंमें भटकता हुआ, नदियोंको लाँघता हुआ, पैदल चला आ रहा हूँ आपके पास अम्बिका-कालनामें। आकांक्षा एकमात्र यही है कि आप मुझे अपने शिष्यके रूपमें स्वीकार कर लें—मुझे दीक्षा दे दें। फिर तो मेरा जीवन धन्य हो जायगा।' आचार्य हृदयचैतन्यने देखा कि दीर्घ-यात्राके फलस्वरूप युवकके पैर फट गये हैं, वहाँसे खून निकल रहा है। थकावटके कारण शरीर शिथिल, अवसन्न। दोनों आँखोंमें क्लान्ति भरी है और उसके भीतरसे भक्तिकी आकुलता झाँक रही है।

'बेटा! तुमने अपना नाम तो बतलाया नहीं।'

'नाम है मेरा दुखी!'

'दुखी!··· ऐसा न कहो बेटा, तुम दुखी नहीं।' आचार्य हृदयचैतन्यने कहा—'तुम्हें आश्रय मिलेगा, तुम्हें दीक्षा मिलेगी। इसी गौर-विग्रहके सामने मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा। अबसे तुम्हारा नाम होगा—'दुखी कृष्णदास।' विश्वास रखो, मैं तुम्हें जो कुछ दे सकता हूँ, दूँगा।'

और वह नवयुवक 'दुखी' से कृष्णदास कहलाया। दीक्षा मिल गयी।

चलने लगी एक क्रमसे गौड़ीय वैष्णव पंथकी साधना। दिन आने लगे, रात जाने लगी···।

इसी उम्रमें वह असाधारण था। उसने वैष्णव-शास्त्रोंका मन्थन किया था। विद्यामें कमी नहीं, बुद्धिमें कमी नहीं, निष्ठा और भक्तिमें कमी नहीं। उपयुक्त शिष्यको उपयुक्त गुरु मिले थे। बड़ी निष्ठा थी, बड़ी भक्ति थी। अपनी साधनामें वह तन्मय रहता।

जातिका वह गोप था। पिताका नाम था श्रीकृष्ण मंडल, माँ थी दुरिका। संतानें तो कई हुईं, मगर टिकी एक भी नहीं। जो जन्म लेते थे, अकाल ही काल-कवलित हो जाते थे। भगवान्‌का ऐसा कोप! क्या करें? पिता दुखी थे, माँ दुखी थी। ऐसे ही समयमें माँकी गोदमें एक बालक आया। दुखी माता-पिताने उसका भी नाम रख दिया 'दुखी'।

माँ-बाप चाहते थे कि बेटा विद्वान् बने, सुनाम अर्जन करे। दुखीको संस्कृत-टोलमें पढ़नेके लिये भेजा गया। वाह, क्या छात्र है! विचित्र थी उसकी मेधा। अद्भुत थी उसकी प्रतिभा! बड़ी शीघ्रताके साथ वह पाठ-पर-पाठ समाप्त करता गया। और थोड़े ही दिनोंमें शास्त्रके दुरूह ग्रन्थोंका अध्ययन-मनन करने लगा। किशोरावस्थासे ही मनमें वैराग्यने नीड़ बना लिया था। निताई-गौरांगके नाम उसके हृदयमें तरंगित होते रहते। संसारमें क्या रखा है? सब क्षणभंगुर। इसे पाया तो क्या पाया? पाना तो उसे है, जो अनश्वर है। लेना तो वह है, जो कभी नष्ट न हो। अगर वह गृह-त्याग न करे तो क्या करे? यहाँ मन नहीं लगता। हृदयचैतन्यका नाम वह बार-बार सुनता आ रहा है। वह उनके पास ही जायगा, उनसे ही दीक्षा लेगा।·····

और एक दिन वह घर-द्वार, माता-पिताका मोह त्यागकर चल पड़ा। वह चलता जा रहा है, चलता जा रहा है। बहुत दूर जाना है उसे। बर्दवानके अम्बिका-कालनामें जाना है। वहाँ गौर-विग्रहका मन्दिर है। वहीं हृदयचैतन्य रहते हैं। उनके चरणोंमें जाकर ही वह कृतार्थ होगा। वह चला जा रहा है, चला जा रहा है।·····

गौर-विग्रहकी सेवा-पूजामें दुखी कृष्णदास रम गये। वैष्णव आचार और निष्ठाकी तपस्या चलने लगी।

मूर्तिके स्नानके लिये बहुत दूर जाकर गंगाजल लाना पड़ता है। घड़ा भी बहुत बड़ा है। इतने बड़े घड़ेमें जल भरकर इतनी दूर लाना हो नहीं पाता, फिर भी कृष्णदास अपने काममें लगा हुआ है। घड़ेको ढोते-ढोते सिरमें बहुत बड़ा घाव हो गया है। अब असहनीय है। किसी तरह भी जल लाया नहीं जाता। फिर भी निष्ठा है। इस तनको क्या सोचे; वह गौर-विग्रहको सोचता है, उनकी पूजाके बारेमें सोचता है, उनकी सेवाके बारेमें सोचता है। कार्यक्रम उसी प्रकार चलता जा रहा है, घाव भी उसी प्रकार बढ़ता जा रहा है।

एक दिन आचार्यने स्नेहपूर्वक उसके सिरपर हाथ फेरा तो सिहर उठे, चकित रह गये। 'इतना बड़ा घाव? यह कैसे?'

'गुरुदेव! घड़ा भारी है और स्नान-आचमनके लिये गंगाजीका जल लाना आवश्यक है।'

'परंतु इतना बड़ा घाव होनेपर भी तुमने गंगाजल लाना छोड़ा नहीं?'

'गुरुदेव! यदि ऐसा करता तो भगवान्‌की सेवामें बाधा होती।'

शिष्यकी इस निष्ठाने गुरुको भी चकित-स्तम्भित कर दिया।

'बेटा! तुम्हारे आध्यात्मिक जीवनका भविष्य महान् है। तुम चले जाओ वृन्दावन। वहाँ श्रीजीव गोस्वामीके पास जाकर मेरा नाम लेना। मैं उन्हें पत्र भी दे रहा हूँ। वहाँ जाकर उनके आश्रयमें रहना और वैष्णव-शास्त्रोंका अध्ययन करना।'

हृदयचैतन्यने श्रीजीव गोस्वामीके नाम पत्र लिख दिया और उसे लेकर दुखी कृष्णदास चल पड़े। श्रीधाम, नवद्वीप, गया, काशी, प्रयाग और एक दिन वृन्दावनमें आ उपस्थित हुए। वहाँ जाकर उन्होंने रघुनाथ गोस्वामीका नाम सुना। सम्पूर्ण व्रजमण्डलमें रघुनाथ गोस्वामीका सुयश प्रकाशकी भाँति फैला हुआ था। प्रेम-भक्तिका ऐसा समर्थ साधक न देखा गया, न सुना गया। राधाकुण्डके किनारे उनकी कुटियामें भक्तोंकी भीड़ लगी रहती थी।

दुखी कृष्णदासको जाना था श्रीजीव गोस्वामीके पास; परंतु पहुँच गये वे रघुनाथ गोस्वामीकी कुटियामें। जाकर उन्हें प्रणाम किया।

रघुनाथदासने कहा—'बेटा! तुम्हें श्रीजीव गोस्वामीके पास जाना है। मेरे पास क्यों आये हो? जाकर उनकी शरण लो और शास्त्र तथा साधनामें मन लगाओ।'

रघुनाथदासने एक आदमीको साथ कर दिया। दुखी कृष्णदास श्रीजीव गोस्वामीकी कुटियापर पहुँचे। अपने गुरुका पत्र उन्हें दे दिया। श्रीजीव गोस्वामी मुसकराने लगे।

दुखी कृष्णदास वहाँ वर्षों रह गये। बीच-बीचमें जन्मभूमि उड़ीसा जाते रहते, वैष्णवधर्मका प्रचार करते रहते। सब होता; परंतु वृन्दावन गये बिना जी न मानता। उड़ीसासे घूम-फिरकर वे वृन्दावन पहुँच ही जाते, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णने विहार किया था, जहाँके चप्पे-चप्पेपर उनकी लीलाओंका मधुर इतिहास अंकित है।

उन्होंने वृन्दावनके निकुंज-मन्दिरमें झाड़ू देनेका काम ले लिया। रोज वहाँ झाड़ू लगाकर मन्दिर साफ करते और भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण करते हुए आनन्दमें मग्न रहते। मनमें एक आशा बलवती होती जा रही थी कि 'यहाँ रहकर क्या कभी राधा-गोविन्दकी निकुंज-लीला भी देख पाऊँगा?'

एक दिन····· प्रभात होनेहीवाला था। दुखी कृष्णदासकी नींद टूटी और वे अपने काममें लग गये। झाड़ू देते हुए सहसा उन्होंने देखा कि मन्दिरके बाहरी प्रांगणमें कोई चीज चमक रही है। समीप गये। देखा, वह सोनेका नूपुर था। उससे एक दिव्य छटा निकल रही है। उन्होंने उसे उठा लिया। सहसा उनका हृदय भी उसी दिव्य छटासे आलोकित हो उठा। 'अरे, बड़ा भाग्यशाली है तू कृष्णदास, तुझे राधाप्यारीके चरणोंका नूपुर मिल गया!···'

दुखी कृष्णदासकी आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। इसी समय एक अनुपम रूपवाली किशोरी वहाँ पहुँचती है और कृष्णदाससे पूछती है—'भैयाजी, तुम्हें एक सोनेका नूपुर मिला है?'

कृष्णदासने कहा—'हाँ, मिला तो है, किंतु वह है किसका?'

'एक राजकुमारी मेरी सखी है। वही मेरे साथ मन्दिरमें आयी थी। उसीका सोनेका नूपुर गिर गया। वह तरुणी है, राजकुमारी है, किसीके सामने नहीं आती। लानेके लिये मुझे भेजा है।'

दुखी कृष्णदासने युक्ति लगायी। बोले—'परंतु मैं यह कैसे जानूँ कि तुम सच कहती हो या नहीं? जिसका नूपुर है, उसीको बुला लाओ तो जानूँ। मैं स्वयं तुम्हारी सखीके चरणोंमें पहनाकर देखूँगा कि नूपुर उन्हें ठीक-ठीक आता है या नहीं। यह भी तो देख लेना होगा।'

'ऐसे नहीं दोगे?'

'कह तो दिया।'

किशोरीने देख लिया कि यह आदमी अपनी बातसे नहीं टलेगा। चली गयी राजकुमारीको बुलाने। थोड़ी देरके बाद ही मन्दिरके उस प्रांगणमें रूपमाधुर्यका आलोक जगमगा उठा। किशोरीको साथ लिये हुए वह तरुणी अपना नूपुर लेनेके लिये आयी थी।..... 'मैं सब जानता हूँ। मुझे छलो मत। तुम श्रीराधारानी हो, राधारानी! तुम नूपुरके उद्धारके लिये नहीं, इस अधम कृष्णदासके उद्धारके लिये आयी हो। मालूम है, मुझे मालूम है।' कृष्णदासका तन पुलकित, आँखोंसे अविरल अश्रुधारा, कण्ठ गद्‌गद। धन्य भाग्य, आज ब्राह्ममुहूर्तमें श्रीराधाजीके दर्शन हो गये।.....

फिर भी कृष्णदासने पूछा—'तुम दोनों सखियाँ निभृत रातमें मन्दिरमें आयी थीं क्यों?'

अमृतमें घुली हुई मीठी वाणी सुनायी पड़ी—'क्या आना और क्या जाना है वैष्णव! यह मेरा ही निकुंज मन्दिर है। तुम्हें जो जानना था, वह स्पष्ट बतला दिया। अब लाओ, मेरा नूपुर दे दो।'

मनका पर्दा खुलता जा रहा है। कृष्णदासको देहका भान नहीं। उनकी आँखोंसे अश्रुधारा बह रही है। अवाक् हैं वे, निष्पन्द हैं, चुप हैं।.....

'देखो वैष्णव! हठ न करो। प्रातः हो आया। मेरा नूपुर वापस करो।'

कृष्णदासने रोते-रोते कहा—'मैं सब जानता हूँ। कि तुम राधारानी हो। मुझपर कृपा करो। अपने वास्तविक रूपमें मुझे दर्शन दो।'

राधारानी बोलीं—'इन आँखोंसे तुम मेरा चिन्मय रूप नहीं देख सकोगे।'

मगर कृष्णदास कातर थे, रो रहे थे, बिलख रहे थे।

तब राधारानीकी सखी ललिताजीने कहा—'जब ऐसी बात है तो भक्तपर थोड़ी-सी कृपा और कर दो। इन्हें दर्शन करनेकी शक्ति भी दे दो।'

और क्षणमात्रमें ही सारा संसार बदल गया। दुखी कृष्णदासने क्या देखा, इसे कौन कह सकेगा और कौन जान सकेगा?

अपना रूप दिखलाकर राधारानीने कहा—'तुम्हारी भक्ति और निष्ठाने मुझे आकृष्ट किया है। मेरी कृपाका चिह्न तुम अपने मस्तकपर धारण कर लो।'

और राधारानीने अपना नूपुर दुखी कृष्णदासके मस्तकसे छुला दिया।

उसके बाद कहाँ राधारानी और कहाँ ललिता? दोनों अन्तर्धान हो गयीं। भक्त कृष्णदास सुध-बुध खोकर मूर्च्छित हो गये।

चेत होनेपर वे रोते हुए श्रीजीव गोस्वामीके पास पहुँचे।

सारा हाल कहा और फिर रोने लगे। राधारानीको देखा, उनकी सखी ललिताको देखा। राधारानीने कृपापूर्वक अपना दर्शन दिया, अपने स्वर्ण-नूपुरको मेरे मस्तकसे छुला दिया। यह देखिये, ललाटपर उसका चिह्न।

श्रीजीव गोस्वामीने कहा—'भाग्यवान् हो वत्स! तुम्हें राधारानीके दर्शन सुलभ हो गये। अब तुम्हें दुखी कृष्णदास कौन कहेगा? अबसे तुम गोस्वामी श्यामानन्द हो गये।'

और तबसे वे श्यामानन्द कहे जाने लगे। व्रजमण्डलमें धूम मच गयी। राधारानीने दुखी कृष्णदासको अपना दर्शन दिया, चिन्मय रूप दिखाया और अपने नूपुरका तिलक उसके ललाटपर लगा दिया। अब वे श्यामानन्द हैं। हर्षित होकर श्रीजीव गोस्वामीने उन्हें यह नाम दे दिया है।

बात दूर-दूरतक फैली। बंगालमें बैठे हुए आचार्य हृदयचैतन्यने भी सुना। सुना कि 'आपके शिष्यने आपका दिया हुआ नाम छोड़ दिया, आपका वैष्णवी तिलक छोड़ दिया। वह बिलकुल परिवर्तित है। उसने दूसरा गुरु भी कर लिया।'

क्रोध आना स्वाभाविक था। हृदयचैतन्यने श्रीजीव गोस्वामीको पत्र लिखा—'दुखी कृष्णदासको मेरे पास अविलम्ब वापस भेज दीजिये—तत्काल!' श्यामानन्द कालना आ गये। गुरुदेवने क्रुद्ध होकर पूछा—'क्यों रे, तेरी ऐसी स्पर्धा! तूने मेरा दिया हुआ नाम बदल दिया? तूने गौड़ीय वैष्णवका तिलक मिटा दिया? तेरा इतना साहस? बोल, जवाब दे?'

'गुरुदेव! यह आपकी कृपासे ही सम्भव हुआ?'

'कैसे?'

श्यामानन्दने सारा हाल बतलाया। अपनी सारी बात कह गये। मगर क्रोधके सामने क्या तर्क और क्या विवेक! हृदयचैतन्यने कहा—'छोड़-छोड़ यह अपना ढकोसला; रख अपना प्रपंच। मैंने जो तुझे नाम दिया है, उसे रख; फिरसे गौड़ीय वैष्णवोंका तिलक ललाटपर धारण कर। तू गुरुकी आज्ञा भी नहीं मानेगा?'

श्यामानन्दने कहा—'प्रभो! ललाटपर यह नवीन तिलक मुझे प्रसादमें मिला है। मैं इसे अपने हाथों नहीं मिटा सकता। मिटाना हो तो आप ही इसे अपने हाथसे मिटा दीजिये।' ठाकुर हृदयचैतन्यने अपने वस्त्रसे रगड़कर तिलकको मिटा देना चाहा। परंतु कहाँ? तिलक तो मिटता नहीं!'

गुरु मिटाते-मिटाते हार गये हैं, किंतु तिलक ज्यों-का-त्यों, जैसा-का-तैसा है। बार-बार मिटाना चाहते हैं, लेकिन नहीं मिट पाता। कौन कहता है कि यह तिलक साधारण है? सचमुच इसके ललाटका यह तिलक अलौकिक है, दिव्य है।

यह मिटनेवाला नहीं, मिटेगा भी नहीं!

गुरुने पुलकित होकर अपने शिष्यको गलेसे लगा लिया।

× × ×

इन्हीं श्यामानन्दके बारह शिष्योंने उड़ीसामें वैष्णवपंथकी बारह शाखाएँ चलायीं। स्वर्णरेखा नदीके तीर गोपीवल्लभपुरमें श्यामानन्दी-सम्प्रदायका प्रधान केन्द्र स्थापित हुआ। उड़ीसाकी संस्कृति और आध्यात्मिक विचारधारापर श्यामानन्दका प्रभाव उसी प्रकार अमिट है, जिस प्रकार श्रीराधारानीका दिया हुआ तिलक उनके ललाटपर अमिट था। [श्रीराधाकृष्णजी]

भक्तसे सम्मिलनके लिये लालायित भगवान् श्रीकृष्ण

परमभक्त मधुसूदन सरस्वतीने वृन्दावनमें जाकर भगवत्साक्षात्कारके लिये 'गोपालसहस्त्रनाम' के चार पुरश्चरण किये, पर उनको साक्षात्कार न हुआ, फिर काशीमें आये और यहाँपर श्रीकालभैरवका अनुष्ठान किया। उस अनुष्ठानपर श्रीभैरव प्रसन्न हुए। कहा—वर माँगो। इसपर मधुसूदन सरस्वतीने कृष्णसाक्षात्कार ही माँगा। भैरव कहते हैं कि वृन्दावन जाओ और वहाँ 'गोपालसहस्त्रनाम' का पुरश्चरण करो। मधुसूदन कहते हैं कि मैंने तो वहाँपर चार पुरश्चरण किये, पर साक्षात्कार नहीं हुआ। इसपर श्रीकालभैरवने पापोंके चार पहाड़ दिखलाये और कहा कि उन पुरश्चरणोंसे ये नष्ट हुए, अबकी बार साक्षात्कार होगा। मधुसूदन सरस्वती पुनः वृन्दावन गये, 'गोपालसहस्त्रनाम' का अनुष्ठान किया और तब भगवान्‌का प्राकट्य हुआ। जब श्रीश्यामसुन्दर सामने आकर खड़े हुए तो मधुसूदन सरस्वतीने चट अपना मुँह फेर लिया। जिधर-जिधर श्यामसुन्दर जाकर खड़े हों, उधर-उधरसे मधुसूदन अपना मुँह फेर लें। आखिर श्रीकृष्णचन्द्रने ही उन्हें मनाना शुरू किया। कहाँ यह स्थिति कि वह श्रीकृष्णके लिये लालायित और कहाँ यह कि अब श्रीकृष्ण ही उन्हें मनाते हैं।

इससे स्पष्ट है कि पहले भगवान्‌में स्वातन्त्र्य, फिर भक्तमें स्वातन्त्र्य; पहले भगवत्सम्मिलनके लिये भक्त लालायित, फिर भक्तसम्मिलनके लिये भगवान् लालायित। भगवान् कहते हैं कि भक्त मुझे अपने वशमें कर लेते हैं— वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥ (**श्रीमद्भा० ९।४।६६**)।—श्रीकरपात्रीस्वामी

निकुंजलीलालीन रसरसिक भक्त प्रेमनाथजी हकीम

निकुंजोपासक श्रीप्रेमनाथजी हकीम लाहौरके सोने-चाँदीके व्यापारी लाला संतरामजी खत्रीके सुपुत्र थे। इनका जन्म संवत् १९७१ में हुआ था। ये चार भाई थे। इनकी माता प्रेमकी मूर्ति थीं। वे परम भगवद्भक्ता थीं। वे अपने जीवनमें बार-बार वृन्दावन आया करती थीं। उनके भक्तिमय सात्त्विक जीवनका बालक प्रेमनाथपर अद्भुत प्रभाव पड़ा।

प्रेमनाथजीकी हिन्दीकी शिक्षा पर्याप्त थी। उर्दू भी वे जानते थे। अंग्रेजीमें उन्होंने मिडिलतक शिक्षा प्राप्त की थी। सोलह वर्षकी आयुमें ये लाहौरके लब्धप्रतिष्ठ हकीम काशीनाथजीके साथ काम करने लगे। इनकी बीसवीं वर्षगाँठ पूरी होते-होते काशीनाथजी हकीमका देहावसान हो गया। तबतक प्रेमनाथजीने गवर्नमेण्टसे हकीमीका प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लिया और काशीनाथजीकी ही दूकानमें अपना औषधालय खोल दिया। धीरे-धीरे इनका अनुभव बढ़ता गया और कुछ ही दिनोंमें इनकी अच्छे हकीमोंमें गणना होने लगी।

औषधालयके कार्यमें दत्त-चित्त रहनेके साथ ही ये सत्संग-पिपासु भी थे। जो महानुभाव मंगलमय भगवान्की ओर अग्रसर होना चाहते हैं, दयामय प्रभु उनका मार्गप्रदर्शन करते ही हैं। करुणामय जगदीश्वरकी कृपासे प्रेमनाथजीके हृदयपर भक्तिकी छाप पड़ गयी। ये राजा तेजसिंहके मन्दिरमें नियमितरूपसे कीर्तनके लिये जाने लगे। वे प्रतिदिन वहाँ दो-ढाई घंटेतक प्रेममग्न होकर भगवान्के नामका मधुर ध्वनिमें कीर्तन करते थे। लाहौरमें जहाँ-कहीं कीर्तनका आयोजन होता, हकीमजी अपना सारा कार्य छोड़कर वहाँ अवश्य उपस्थित होते।

हकीमजी गौरवर्णके अत्यन्त सुन्दर युवक थे। ये माथेपर वल्लभ-सम्प्रदायका तिलक और गलेमें तुलसीकी माला धारण करते थे। श्रीकृष्ण-लीलाके कितने ही पद इन्हें मुखस्थ थे। इनका मधुर पद-गायन सुनकर लोग आत्मविभोर हो जाते। इनकी लोकप्रियता एवं ख्याति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी।

भगवान्की दयासे इनका औषधालय भी अच्छी प्रकार चलने लगा। श्रीप्रेमनाथजी निर्धन एवं असहाय रोगियोंके साथ अत्यन्त स्नेहका व्यवहार करते थे एवं उन्हें नि:शुल्क औषध देते थे। कभी-कभी सर्वथा विवश रोगियोंको पथ्य आदि भी वे अपने ही पाससे दिया करते।

एक बार उनके पास एक अत्यन्त दीन रोगी आया। प्रेमनाथजीने उसे दूधके साथ लेनेके लिये दवा दी। रोगी दूधका नाम सुनते ही उदास हो गया, पर संकोचवश वह कुछ कह नहीं सका। घर जाकर उसने उधार दूध लिया। दवाके साथ दूध पी लेनेके बाद वह अँगोछेसे हाथ पोछने लगा, तो उसने देखा, अँगोछेके छोरमें एक रुपया बँधा था। रोगीको समझते देर नहीं लगी। वह तुरन्त प्रेमनाथजीके पास आया और उनकी दयालुताके लिये उनका आभार प्रकट करने लगा। दीन रोगीके अँगोछेमें वह रुपया प्रेमनाथजीने ही चुपकेसे बाँध दिया था।

संवत् १९९० में उन्नीस वर्षकी आयुमें श्रीप्रेमनाथजी सर्वप्रथम अपने पिताके साथ वृन्दावनधाम गये। वह भूमि इन्हें अत्यन्त प्यारी लगी। फिर तो आप वर्षमें दो-दो तीन-तीन बार वहाँ जाने लगे, व्रजभूमि और रासमें इनकी अटूट श्रद्धा हो गयी। अतएव निधिवनमें श्रीहरिदास स्वामीके समाधि-मन्दिरमें आपने श्रीबाँकेबिहारीजीके प्रधान सेवाधिकारीसे दीक्षा ले ली और आप प्रिया-प्रियतमके अनन्य भक्त हो गये।

व्रजवासियोंको आप अत्यन्त प्यार करते थे। कोई व्रजवासी लाहौर पहुँच जाता तो उससे अपने ही यहाँ ठहरनेका आग्रह करते और उसकी खूब सेवा करते। यदि उसकी कोई आवश्यकता होती तो अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार उसकी पूर्ति करते। इतनेपर भी कुछ कमी रह जाती तो अपने परिचितोंसे चन्दा इकट्ठा करके व्रजवासीको सन्तुष्ट करके ही लौटने देते।

वे व्रजवासियोंके भोलेपनसे अच्छी प्रकार परिचित थे। कोई व्रजवासी किसी बातपर इनसे नाराज हो जाता तो ये अत्यन्त अनुनय-विनयसे उसे प्रसन्न कर लेते। व्रजमें आप जब भी जाते, व्रजवासियोंके घर जाकर उनकी सूखी रोटियाँ और छाछ माँगकर प्रसादकी भाँति अत्यन्त आदर एवं श्रद्धापूर्वक खाते और बदलेमें कुछ-न-कुछ उसे

अवश्य देते। व्रजवासियोंकी ये खूब सेवा करते, किसी भी व्रजवासीसे मिलकर इन्हें लगता जैसे ये व्रज-प्राण श्रीकृष्णको ही पा गये हों। आपको श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमामें बड़ा सुख मिलता था। शरीरान्तके दो वर्ष पूर्व तो आपने श्रीगिरिराजजीकी डंडौती परिक्रमा की थी। वह परिक्रमा ग्यारह दिनोंमें एक रास-मण्डलीके साथ पूरी हुई थी। आपने व्रजकी ८४ कोसकी भी यात्रा की थी।

संवत् १९९३ से प्रेमनाथजीके पिता वृन्दावन-वास करने लगे और तब श्रीप्रेमनाथजीने श्रीतेजरामजीके मन्दिरमें जाना बन्द कर दिया। अब वे अपने औषधालयमें ही नित्य कीर्तन, सत्संग एवं कथा-वार्ता करने लगे।

श्रीप्रेमनाथजीकी धर्मपत्नी कृष्णा देवीका स्वभाव उनके सर्वथा अनुकूल था। प्रेमनाथजीकी एक कन्या थी, जिसका नाम चन्द्रावली था। उसका विवाह उन्होंने गुजरान-वाला जिलेके एक सम्भ्रान्त आस्तिक परिवारमें कर दिया।

लाहौरमें आप प्रायः कोई-न-कोई रासमण्डली बुलाया ही करते। आपकी सम्पूर्ण आय भजन-कीर्तन, व्रजवासियों एवं साधु-महात्माओंकी सेवा, रासलीला तथा व्रजधामकी यात्रामें ही व्यय होती।

आप सपत्नीक प्रतिदिन सूर्योदयके पूर्व श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवामें बैठ जाते और पूजा-आरतीके अनन्तर घंटों युगल-मन्त्रका जप करते रहते। इनके जीवनका कण-कण और प्रत्येक क्षण श्रीराधाकृष्णके भजन, स्मरण, चिन्तन, लीला-दर्शन एवं कथा-श्रवणमें व्यतीत होता। औषधालयका कार्य तो इनका व्यय चलानेके लिये निमित्तमात्र था, किंतु भगवत्कृपासे रोगियोंको इनकी औषध अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती थी।

श्रीनिहालचंदजीके मन्दिरमें रासलीलाका कार्यक्रम प्रायः चलता ही रहता था और उसका सारा व्यय हकीमजी ही वहन करते थे। एक बारकी बात है, वहाँ एक शूद्रा कुबड़ी रहती थी। रासलीलामें हकीमजीकी आज्ञासे वह कुब्जा बनी। ठाकुर बने हुए बालकमें भगवान्का आवेश हो गया, उसकी कटि सीधी हो गयी। अब तो उसके मनपर अद्भुत भगवत्प्रभाव पड़ा। वह अपने पति श्रीठाकुरदासजीके साथ वृन्दावन-वास करने लगी। वृन्दावनमें ही उसने शरीर-त्याग किया।

श्रीप्रेमनाथजीने शरीर-त्यागके तीन दिन पूर्व ही सबसे मिलना छोड़ दिया था। विशेष सत्संग-प्रेमी एवं भजनानन्दी सज्जनोंसे मिलनेमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी।

प्राण-त्यागसे कुछ समय पूर्व आपने महात्मा श्रीराधाचरणजी गोस्वामीका सत्संग-लाभ किया और अत्यन्त विनयपूर्वक उन्होंने कहा—'महाराजजी! मुझे भी वृन्दावन ले चलिये।'

गोस्वामीजीने बड़े प्रेमसे कहा—'अच्छे हो जाओ, फिर तुम्हें वृन्दावन ले चलूँगा।'

हकीमजी बोले—'महाराज! श्रीराधारानीकी कृपासे मैं आपके पहले ही श्रीधाम पहुँच जाऊँगा।'

मृत्युसे दो घंटे पूर्व उनके बहनोई मिलने आये। आपने उनके सामने धीरे-धीरे अत्यन्त शान्त मुद्रामें यह सवैया सुनाया—

सेस, महेस, गनेस, दिनेस, सुरेसहु जाहि निरंतर ध्यावैं।
जाहि अनादि, अनंत, अखंड, अछेद, अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद से सुक ब्यास रटैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

सवैया पूरा होते-होते उनके नेत्र झरने लगे। सिसकते हुए आपने एक पद और कहा—

ऐसे नहीं हम चाहनहारे, जो आज तुम्हें, कल और को चाहैं।
फेंक दें आँखें निकारिके दोऊ, जो दूसरि ओर मिलावैं निगाहैं॥
लाख मिलें तुम से बढ़के, तुमहीको चहैं, तुमहीको सराहैं।
प्रान रहैं जब लौं, तब लौं हम नेह कौ नातौ सदा ही निबाहैं॥

इसके अनन्तर आप मूर्च्छित होने लगे। 'राधे-राधे' रटते हुए आपने अपनी इह-जीवन-लीला समाप्त की। आपके आदेशानुसार आपका अस्थि-प्रवाह श्रीगिरि-राजजीकी मानसी-गंगामें किया गया।

भक्त श्रीप्रेमनाथजी इस धरतीपर केवल २८ वर्षतक रहे, किंतु इसी अल्पकालमें आपने दरिद्रनारायण एवं दरिद्र रोगियोंकी अद्भुत सेवा ही नहीं की, अपना जीवन इतना प्रभुप्रेममय बना लिया था कि उनके सम्पर्कमें आनेसे कितने ही जन भगवद्भजन एवं प्रभुचिन्तनमें लगकर अपने कल्याणका मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। [श्रीशिवकुमारजी केडिया]

श्रीराधामाधवके कृपा-कटाक्षसे धन्य स्वामी विवेकानन्द

सन् १८८७ में स्वामी विवेकानन्द कोलकातासे परिव्राजक संन्यासीके रूपमें उत्तर भारतके तीर्थोंकी यात्रापर निकल पड़े। वाराणसी और अयोध्याधामसे होते हुए वे अगस्तके प्रथम सप्ताहमें श्रीधाम वृन्दावन पहुँचे। वृन्दावनमें उन्होंने कालाबाबूके कुंजमें यमुनापुलिनपर स्थित बलरामबाड़ीमें निवास किया था। बलराम बाबू श्रीजगन्नाथजीके निष्ठावान् भक्त थे और उनकी बाड़ीमें भी राधा-कृष्णकी नित्य सेवापूजा होती थी। वृन्दावनके लीला-स्थलोंके दर्शनकर स्वामीजी श्रीराधा-माधवके भावमें खो गये। नित्यप्रति लीला-स्थलोंके दर्शन करते हुए वे दिन-रात राधा-माधवके भावमें तल्लीन रहते थे। यहाँतक कि उनको अपने शरीरको सँभालना भी कठिन हो गया। इस प्रकार वे १२ अगस्तसे २० अगस्ततक कालाबाबूके कुंजमें ही रहे। तदुपरान्त वे वृन्दावनसे बाहरके लीला-स्थलोंके दर्शनके लिये निकल पड़े।

गोवर्धन पहुँचकर स्वामीजीने निर्भरा भक्ति-साधनाका प्रण कर लिया। उन्होंने निश्चय किया कि वे अयाचक भावसे रहेंगे तथा यदृच्छया जो कुछ मिल जायगा, उसीसे क्षुधाशान्ति करेंगे। एक दिन उन्हें कुछ भी भिक्षा प्राप्त नहीं हुई और वे शारीरिक दुर्बलताका अनुभव करने लगे। भूखसे पीड़ित किंतु अयाचक व्रत। वे राधागोविन्दका नाम-स्मरण करते हुए विचरण कर रहे थे। अचानक उन्होंने पीछेसे एक आवाज सुनी—'हे साधू! हे साधू!!' परंतु स्वामीजीने पीछे मुड़कर नहीं देखा। जब उन्हें वह आवाज अपने निकट आती प्रतीत हुई तो वे आगेकी ओर दौड़ने लगे ताकि उन्हें कोई पकड़ न ले। स्वामीजीको आवाज जब एकदम पीछे सुनायी दी—'मैं तुम्हारे लिये कुछ खानेको लाया हूँ', तो वे और भी अधिक तेजीसे दौड़े। किंतु एक व्यक्ति उनके पास आ गया और उन्हें कुछ खाद्य पदार्थ देकर बिना कुछ बोले चुपचाप चला गया। आनन्दविह्वल हुए उस निर्जन प्रदेशमें गोविन्दकी करुणाका स्मरण करके उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलक आये।

गोवर्धनसे वे राधाकुण्डकी ओर बढ़े। यहाँ एक कौपीनको छोड़कर उनके अंगपर कोई वस्त्र नहीं था। अत: स्नानके पूर्व उन्होंने उस कौपीनको धोकर सूखनेके लिये डाल दिया और स्नान करने कुण्डमें उतर गये। स्नानके बाद कुण्डसे बाहर आये तो देखा कि वहाँ कौपीन नहीं है। इधर-उधर निगाह डाली तो देखते हैं कि वृक्षकी एक शाखापर लँगोटीको लिये एक बन्दर बैठा है। प्रयास करनेपर भी बन्दरसे वे अपना कौपीन न ले सके। ऐसी स्थितिमें राधारानीके प्रति अपना स्वाभिमानयुक्त रोष प्रकट करते हुए उन्होंने निर्णय कर लिया कि अपनी लज्जा रखनेके लिये वे इस घोर जंगलमें ही अपना प्राण त्याग देंगे। जब वे इस उद्देश्यसे जंगलकी ओर जाने लगे, उसी समय एक व्यक्ति एक नया गेरुवा वस्त्र और कुछ खाद्य पदार्थ लेकर आ गया और उसे ग्रहण करनेहेतु आग्रह करने लगा। स्वामीजीने श्रीराधाजीका उपहार मानकर उस अंगवस्त्रको स्वीकार कर लिया। उसके बाद वहाँसे चलकर अब वे कुण्डके पास आये तो देखते हैं कि कौपीन सुखानेके लिये जहाँ डाला था, वह वहीं वैसा ही रखा हुआ है। इस घटनासे उनका यह विश्वास दृढ़ हो गया कि भगवान्का वरदहस्त सदैव उनकी रक्षा कर रहा है। स्वामीजी श्रीराधाजीका कृपाकटाक्ष पाकर आह्लादित हो गये।

—स्वामी श्रीगम्भीरानन्दजी [प्रेषक—डॉ० श्रीसुरेशचन्द्रजी शर्मा]

श्रीराधा-माधवके परमभक्त भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
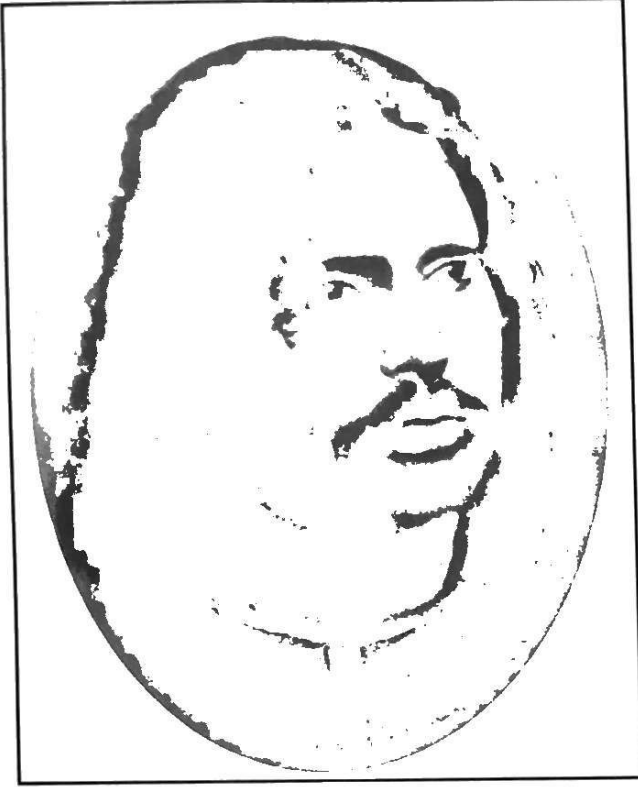
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र परम वैष्णव महाभागवत जयदेव, विरही चण्डीदास और प्रेमी विद्यापतिके नवीनतम समन्वय-संस्करण थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका जन्म ९ सितम्बर १८५० ई० को काशीके एक प्रसिद्ध वैष्णव-परिवारमें हुआ था। उनका कुल अत्यन्त समृद्ध और सुखी था। भारतेन्दुकी शिक्षा-दीक्षा उत्तम रीतिसे हुई थी। पाँच ही सालकी अवस्थामें उनकी माताका देहान्त हो गया, अतएव उनके पालन-पोषणका भार उनके पिता श्रीगिरिधरदासजीके कन्धोंपर आ पड़ा। भारतेन्दु बचपनसे ही पूर्वजन्मके शुभ संस्कारोंके फलस्वरूप कविसुलभ प्रतिभासे समलंकृत थे, बाल्यावस्थासे ही उनके हृदयमें ईश्वर-भक्तिकी निर्झरिणी प्रवाहित थी। उनके पिता स्वयं एक उच्च कोटिके कवि थे। उनके घरपर कवियोंका समागम होता रहता था। हरिश्चन्द्रजीके चरित्र-विकास, साहित्यिक अभिरुचि और भगवद्भक्तिपर इस वातावरणका बड़ा प्रभाव था। वे बाल्यकालसे ही कविता करने लग गये थे। एक बार कुछ कवि इनके पिता गिरिधरदासजीके पास बैठकर उनके 'कच्छप-कथामृत'के पहले पद *'करन चहत जस चारु, कछु कछुवा भगवान्‌को'* की व्याख्या कर रहे थे कि बीचमें ही हरिश्चन्द्रने कहा कि 'पिताजी! आप उन भगवान्‌का यश गाना चाहते हैं, जिनका आपने कुछ-कुछ स्पर्श किया है।' लोग उनकी इस व्याख्यासे आश्चर्यचकित हो उठे।

हरिश्चन्द्रजी दस ही वर्षके थे कि उनके पिता गोलोक चले गये। तेरह सालकी अवस्थामें उनका विवाह कर दिया गया। वे तो जन्मजात भागवत-रसिक थे, उनके गृहस्थाश्रमका आनन्द भी अद्वितीय ही था। वे बड़े उदार और विनम्र प्रकृतिके थे। लम्बा कद, छरहरा शरीर, सुडौल नासिका, जादूभरे नैन, कानोंतक लटकती घुँघराली लटें, ऊँचा ललाट, साँवले रंगका माधुर्य लोगोंको उनकी ओर अपने-आप आकृष्ट कर लेता था। उनके मित्र उनको कलियुगके कन्हैया कहा करते थे।

वे उन्नीसवीं सदीके हिन्दीके साहित्य-आत्मा थे, बीस-बाईस भाषाओंके पण्डित थे। उन्होंने राष्ट्रके साहित्यिक, सामाजिक और राजनैतिक उत्थानमें महान् योग देकर अपनी देशभक्तिका प्रकृष्ट परिचय दिया। हिन्दीकी राष्ट्रियताके आदि कलाकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। अनेक ग्रन्थों, नाटकों, काव्योंकी रचना करके उन्होंने हिन्दी साहित्यकी श्रीवृद्धि की। हिन्दी-जगत्‌ने उनकी सेवाओंके सम्मानार्थ उनको 'भारतेन्दु' की उपाधिसे विभूषितकर अपने आपको गौरवान्वित किया था। उनकी उदारता और दानशीलता तथा मधुर स्वभावकी गाथा विश्व-इतिहासकी एक रसमयी देन है। उन्होंने अनेक कवियों और विद्वानोंको पुरस्कृतकर अपनी दानशीलताका समय-समयपर परिचय दिया। गरीब, दुखी, अभावग्रस्त प्राणियोंका दुःख उनके अपने दुःखसे बढ़कर था और वे उनका दुःख दूर करने जाकर अपने लिये नये-नये दुःख मोल ले लेते थे और इसीमें सुखका अनुभव करते थे। *'सखा प्यारे कृष्णके, गुलाम राधा रानीके'* उक्तिको चरितार्थकर उन्होंने घोषणा की थी कि जिस लक्ष्मीने मेरे परिवारको खाया, उसे मैं खा डालूँगा। उन्होंने अपव्यय नहीं किया, साहित्य और काव्यके

प्रोत्साहनदाताके रूपमें एवं परदुःखकातर-उदारहृदय-महामनाके रूपमें उसका सदुपयोग किया। वे महान् गुणग्राही थे, उनकी सभामें कवियों और रसिकोंकी सदा भीड़ लगी रहती थी।

आर्थिक संकट उपस्थित होनेपर भी उनकी दानशीलताका भाव नीचे नहीं गिरा। उन्होंने भक्तसर्वस्व, प्रेममालिका, प्रेमसरोवर, प्रेमाश्रुवर्षण, प्रेमतरंग, उत्तरार्ध भक्तमाल, चन्द्रावली नाटिका, सत्यहरिश्चन्द्र, भारतदुर्दशा तथा अन्यान्य काव्य और नाटकोंकी रचना करके अपने साहित्यका विजयस्तम्भ स्थापित किया था।

भारतेन्दु बाबू श्रीवल्लभसम्प्रदायके दीक्षित वैष्णव थे। श्रीमद्वल्लभाचार्य और उनके पवित्र कुलके प्रति उनकी अडिग आस्था थी। रँगीले हरिश्चन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णको ही आजीवन अपना उपास्य माना। राधारानीकी चरण-शरणमें अपनी भक्ति-कल्पना हरी-भरी की। उन्होंने रास-रसिकेश्वर घनश्यामकी वन्दनामें कहा—

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर॥

भारतेन्दुकी कविता श्रीराधाकृष्णके चरणकमल-सुधा-रस-सागरकी कालिन्दी थी। वे क्रान्तद्रष्टा कवि थे; साहित्यके काव्यरूपको उन्होंने भक्तिके रस-मंचपर प्रतिष्ठित किया, यही उनकी भक्ति थी। उनकी विनम्रताने आत्मनिवेदनकी कसौटीपर अपने दोषकी परीक्षा की।

जगत जाल में नित बँध्यौ, पर्‌यो नारि के फंद।
मिथ्या अभिमानी पतित, झूठो कबि हरिचंद॥

उनकी भगवान् श्रीकृष्णके प्रति स्थायी अनन्यता और आस्था थी। आजीवन उनके लीला-गानसे अपनी मधुर रसवती वाणीको कृतार्थकर उन्होंने अपने आपको धन्य कर लिया। उनके नयनोंने सदा श्रीराधाकृष्णके प्रेम-मिलन-चित्रका दर्शन किया, कानोंने नूपुर-ध्वनि सुनी, रसनाने कहा—

मंगल महा जुगल रसकेलि।
जिन तृन करि जग सकल अमंगल पायन दीने पेलि॥
सुख समूह आनंद अखंडित भरि भरि धर्‌यो सकेलि।
'हरीचंद' जन रीझि भिंजायो रस समुद्र उर मेलि॥

कभी वे दाम्पत्यभावसे ओत-प्रोत होकर नन्दनन्दनका आवाहन करते थे और कभी उनकी निर्ममता और निष्ठुरतासे खीझकर उनको उलाहना देते थे; उनका भावुक मन श्रीराधाकृष्ण-प्रेमार्णवमें सदा डूबता-उतराता रहता था। उनका भजनानन्द प्रेममूलक था, वे केवल रसिक भक्त ही नहीं—ज्ञानी भी थे। पर उनके ज्ञानने सदा '**श्रीकृष्णः शरणं मम**' का ही जाप किया। उन्होंने समस्त जगत्‌में श्रीराधा-कृष्णकी सरस परिव्याप्ति पायी। उनकी वाणीने आत्मचेतनाके पक्षमें कहा—

हरीचंद एतेहू पै दरस दिखावै क्यों न,
तरसत रैनदिन प्यासे प्रानपातकी।
एरे ब्रजचंद! तेरे मुखकी चकोरी हूँ मैं
एरे घनस्याम तेरे रूप की हौं चातकी॥

उनकी रीझ-खीझ—सब कुछ भगवान् श्रीकृष्णसे ही थी। श्रीराधारानीसे वे एक सीधे-सादे सच्चे भक्तकी तरह दिन-रात कहा करते थे—

श्रीराधे मोहि अपनो कब करिहौ।
जुगल रूपरस अमित माधुरी कब इन नयननि भरिहौ॥

भारतेन्दुके अन्तिम दिन लौकिक दृष्टिसे संकटमय रहे। यद्यपि उनका बड़े-बड़े राजाओं और धनियोंसे मेल था, फिर भी अपने स्वाभिमानकी रक्षामें सदा तत्पर रहकर किसीकी भी आर्थिक सहायता उन्होंने स्वीकार नहीं की। अन्तिम दिनोंमें क्षयसे पीड़ित होनेपर उनकी शृंगारमूलक भक्तिने शान्तरसका वरण किया। अन्त समयमें राजा शिवप्रसादजी 'सितारे हिन्द' से, जो उनकी शय्याके पास ही थे, कहा—'बड़ी प्यास लगी है।' राजा साहबने चाँदीके कटोरेमें जल भरकर दिया। बाबू साहबकी आन्तरिक वेदनाने तड़पकर कहा—'पानी नहीं, घनानन्दका सवैया चाहिये।' राजा साहबने ***'तुम कौन-सी पाटी पढ़े हो, लला! मन लेहु पै देहु छँटाक नहीं'*** की सुधावाणीसे उनके अधरोंकी प्यास बुझायी। उन्होंने मृत्युशय्यापर भी अपनी श्रीकृष्णभक्ति और रसिकताका निर्वाह किया। ६ जनवरी सन् १८८५ ई० में उन्होंने लीलाधामकी यात्रा की।

'जीजी! राधेरानीने तेरे ही ताँईं भेजो है'

भगवान् अन्तर्यामी है। वे घट-घटवासी हैं। यद्यपि आजका विलासी मनुष्य इन बातोंपर विश्वास नहीं करता। यदि कोई कहता है कि भगवान्‌की कृपासे मेरा मनोरथ पूरा हुआ, मुझे अमुक वस्तु प्राप्त हुई, मेरा अमुक कार्य सिद्ध हुआ तो उसकी हँसी उड़ायी जाती है, वह मूर्ख कहलाता है। समाजका एक ऐसा वर्ग है, जो पश्चिमी सभ्यताका पुजारी है, होटलों, क्लबोंमें खाने-पीने तथा नाचनेवाला है। ये लोग क्या जानें कि भगवान् भी हैं! ये लोग अध्यात्मको क्या जानें! मन्दिर जाना, मूर्तिपूजा सब उनके लिये हास्यास्पद है। दूसरी ओर एक और भी वर्ग है, जो मन्दिर जाता है, धार्मिक स्थानोंमें, तीर्थोंमें जाता है, शास्त्रसम्मत बातोंपर विश्वास करता है और पूर्ण समर्पण करता है अपने इष्टदेवके प्रति। आज भी भगवान् उनसे दूर नहीं हैं। वे उनका मनोरथ पूर्ण करते हैं और उनके विश्वासको दृढ़ करते हैं।

ऐसी ही आश्चर्यचकित करनेवाली मेरे जीवनकी एक सच्ची घटना है। राधा-कृष्ण मेरे इष्टदेव हैं, मेरे सर्वस्व हैं। मैं इन्हें भाई एवं भाभी मानती हूँ। जबसे मेरे लौकिक भाईका देहान्त हुआ है, मैं वृन्दावनमें अनन्तश्रीविभूषित बिहारीजीको प्रतिवर्ष रक्षाबन्धनपर राखी भेजती हूँ, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे इसे सहर्ष स्वीकार करते हैं। इससे मुझे बहुत शान्ति एवं आनन्दका अनुभव होता है। मैं श्रीराधारानीको अपनी भाभीके रूपमें देखती हूँ।

श्रावणकी तीज थी। इसे हमारे समाजमें लड़कियोंका बहुत बड़ा त्यौहार माना जाता है। उस दिन न जाने क्यों मैं श्रीराधारानीको इस प्रकार उलाहना दे बैठी—'तुम मेरी कैसी भाभी हो, जो आजतक मुझे बरसाने भी न बुलाया? कल तीज है, तुम्हारे लिये कुछ असम्भव नहीं है। जबतक माँ तथा भाभी थीं, बुलाती थीं, नाना प्रकारके पकवान पूरी, कचौड़ी, कई प्रकारकी मिठाइयाँ इत्यादि बनाती थीं, बड़े प्रेमसे खिलाती थीं। आज मुझे कोई बुलानेवाला नहीं है; क्योंकि मेरे मायकेका परिवार समाप्तप्राय ही है।' रातका समय था, ऐसे ही ध्यान करते-करते, अपनेसे बात करते-करते न जाने मैं कब सो गयी।

दूसरे दिन प्रात:काल जिनके यहाँ मैं सत्संगमें जाती थी, उनका फोन आया, हम बरसाने जा रहे हैं। आज तीज है, वहाँ बड़ा उत्सव होता है, तुम्हें चलना है क्या? मैंने कहा—'हाँ, मैं भी चलूँगी।' मैं उन सबके साथ बसद्वारा बरसाने चली गयी। गर्मी बहुत थी, मुझे उच्च रक्तचाप रहता है। हमारे साथी लोग तो परिक्रमा लगाने चले गये, पर मैं उच्च रक्तचापके कारण अधिक चलने-फिरनेमें असमर्थ थी। अत: ऊपर मन्दिरमें जाकर श्रीजीके सामने दालानमें बैठ गयी। भीड़ बहुत थी, सारा आँगन खचाखच भरा था, खूब झूलेके गीत और मल्हारें गायी जा रही थीं। मैं एक ओर बैठी हुई थी, इतनेमें एक साँवला-सा लगभग १२ या १४ सालका लड़का अपने हाथमें बाँसकी एक टोकरी लेकर मेरे पास आया और बोला—**'ले, जीजी! तेरे काजे राधेरानीने भेजो है।'** मैं चुप बैठी रही, उसने फिर उसी प्रकार कहा। मैंने उससे कहा—'भैया! मैंने तो अभी राधारानीकी न्योछावर भी नहीं की है, किसी औरके लिये प्रसाद भेजा होगा।' इस बार उसने जरा जोर देकर कहा—**'ले, चौं नाय राधेरानीने तेरे ही ताँईं भेजो है।'** मैंने ले लिया। मैं उस लड़केके केवल चरण-दर्शन ही कर पायी, मुखारविन्दके दर्शनसे वंचित रह गयी। मेरे हाथमें टोकरी देकर वह चलता बना। जब टोकरीको देखा तो मैं दंग रह गयी, उसमें अनेक प्रकारके पकवान थे, जिनके नाम मैंने रातको लिये थे अपने मनमें। कोई चीज कम न थी बल्कि ज्यादा ही थी। मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा, आँखोंसे अश्रुपात हो रहा था। यह सब क्यों हो गया? मैं इस योग्य तो नहीं हूँ! मैंने क्यों अपने जरा-से सुखके लिये उन्हें कष्ट दिया? सोचा, वह लड़का और कोई नहीं, मेरा साँवला-सलोना अनन्तकोटि ब्रह्माण्डका रचयिता कृष्ण ही था।

उस टोकरीमेंसे एक-दो पदार्थ—पूरी-सब्जी, मिठाई, खाकर देखा तो उनका स्वाद अनुपम था, कोई उपमा नहीं दे सकती, स्वाद नहीं बता सकती, ऐसे जैसे गूँगेके लिये गुड़का स्वाद हो।

इतनेमें मेरे सब सत्संगी साथी आ गये, मेरे हाथमें

टोकरी देखकर बोले, देखो कितना प्रसाद लिये बैठी है। खूब रुपये चढ़ाये होंगे, इसीलिये इतना प्रसाद मिला है। पर वास्तविकता तो कुछ और ही थी। उन सबको भी उसमेंसे प्रसाद दिया, वह तो महाप्रसाद था। थोड़ा-सा घर भी ले आयी। किसीको कुछ बताया नहीं। वहाँसे आकर दो-तीन दिनतक बौराई-सी रही। मनमें विश्वास ही नहीं होता था कि यह सब क्या है, मेरा सपना तो नहीं है; लेकिन फिर राधेरानीकी करुणाका ख्यालकर सब कुछ सच्चा लगता है और मेरा मन विभोर-सा होकर नाच उठता है।

प्रत्येक वर्ष तीज आती है, मेरे मानसपटलपर उस घटनाका चित्र-सा खिंच जाता है। फिर सोचती हूँ, मेरे कारण श्रीराधारानीको भाभी बनना पड़ा और श्यामसुन्दरको भैया। [श्रीमती भगवतीजी गोयल]

राधामाधवकी सगाई और मुक्ताकी खेती

जब कृष्णने बाल्यावस्थाको पारकर किशोरावस्थामें प्रवेश किया, उस समय यशोदा मैया कृष्णकी सगाईके लिये चिन्ता करने लगीं। उनको वृषभानुमहाराजकी कन्या सर्वगुणसम्पन्ना किशोरी श्रीराधाजी बड़ी पसन्द थीं। यह बात कीर्तिदा रानीको मालूम हुई। उन्होंने अपनी बात वृषभानुजीसे कहकर विविध प्रकारके वस्त्र, अलंकार तथा प्रचुर मात्रामें मुक्ताओंको एक डलियामें भरकर नन्दभवन सगाईके लिये भेजा। व्रजराज नन्द एवं व्रजरानी यशोदा इसे देखकर बड़े प्रसन्न हुए, किंतु सिरपर हाथ रखकर यह सोचने लगे कि हमें भी बरसानामें इसके बदले सगाईके लिये इससे भी अधिक मुक्ताएँ भेजनी पड़ेंगी। किंतु घरमें उतनी मुक्ताएँ नहीं हैं। वे लोग इस प्रकार बहुत चिन्तित हो रहे थे। इतनेमें कृष्णने कहींसे घरमें प्रवेशकर माता-पिताको चिन्तित देख चिन्ताका कारण पूछा। मैयाने अपनी चिन्ताका कारण बतलाया। कृष्णने कहा—'कोई चिन्ताकी बात नहीं। मैं शीघ्र ही इसकी व्यवस्था करता हूँ।'

इसके पश्चात् कृष्णने अवसर पाकर उन मुक्ताओंको चुरा लिया और मिट्टी खोदकर उनको बो दिया तथा गायोंके दूधसे प्रतिदिन उन्हें सींचने लगे। इधर नन्दबाबा और मैया यशोदा मुक्ताओंको न देखकर और भी चिन्तित हो गये। उन्होंने कृष्णसे मुक्ताओंके सम्बन्धमें पूछा। कृष्णने कहा—'हाँ' मैंने उन मुक्ताओंकी खेती की है और उससे प्रचुर मुक्ताएँ निकलेंगी।' ऐसा सुनकर बाबा और मैयाने कहा—'अरे लाला! कहीं मुक्ताओंकी भी खेती होती है।' कृष्णने मुस्कराकर कहा—'हाँ! अवश्य होती है। कुछ दिनोंके उपरान्त मुक्ताएँ अंकुरित हुईं और उनसे हरे-हरे पौधे निकल आये। देखते-ही-देखते कुछ ही दिनोंमें उन पौधोंमें फल भी लग गये। इसके अनन्तर उन फलोंके पुष्ट और पक जानेपर उनमेंसे अलौकिक प्रभासे सम्पन्न लावण्ययुक्त उज्ज्वल मोती निकलने लगे। अब तो मुक्ताओंके ढेर लग गये। कृष्णने प्रचुर मुक्ताएँ मैयाको दीं। फिर तो मैयाने बड़ी-बड़ी सुन्दर तीन-चार डलियाँ भरकर मुक्ता, स्वर्णालंकार और वस्त्र बरसानेमें राधाजीकी सगाईके उपलक्ष्यमें भेज दिये।

इधर श्रीराधाजी एवं उनकी सखियोंको यह पता चला कि श्रीकृष्णने मुक्ताओंकी खेती की है और उससे मुक्ताएँ पैदा हो रही हैं। तो उन्होंने कृष्णसे कुछ मुक्ताएँ माँगीं। किंतु कृष्णने कोरा उत्तर दिया कि जब मैं मुक्ताओंको सींचनेके लिये तुमसे दूध माँगता था, तब तो तुम दूध देनेसे मना कर देती थी। मैं अपनी गौओंको इन मुक्ताओंके अलंकारोंसे सजाऊँगा, किंतु तुम्हें मुक्ताएँ नहीं दूँगा। इसपर गोपियोंने चिढ़कर एक दूसरी जगह अपने-अपने घरोंसे मुक्ताओंकी चोरीकर जमीन खोदकर उन मुक्ताओंको बीजके रूपमें बो दिया। फिर बहुत दिनों तक गौओंके दूधसे उन्हें सींचा। वे अंकुरित तो हुईं, किंतु उनसे मुक्ता-वृक्ष न होकर बिना फलवाले काँटोंसे भरे हुए पौधे निकले।

गोपियोंने निराश होकर पुनः कृष्णके पास जाकर सारा वृत्तान्त सुनाया। कृष्णने मुसकराकर कहा—'चलो! मैं स्वयं जाकर तुम्हारे मुक्तावाले खेतको देखूँगा।' कृष्णने वहाँ जाकर पुनः सारे मुक्ताके पौधोंको उखाड़कर उसमें पुनः अपनी पुष्ट मुक्ताओंको बो दिया और उसे गायोंके दूधसे सींचा। कुछ ही दिनोंमें उनमें भी मुक्ताएँ लगने लगीं। यह देखकर गोपियाँ भी प्रसन्न हो गयीं। [गर्गसंहिता]

'मेरे साँवरे! तेरी कृपा है'

वृंदावन शहरमें एक वैद्यजी थे, उनका मकान भी बहुत पुराना था। वयोवृद्ध वैद्यजी अपनी पत्नीको कहते कि 'जो तुम्हें चाहिये, एक चिट्ठीमें लिख दो।' दुकानपर आकर पहले वह चिट्ठी खोलते। सामानके भाव देखते, फिर कान्हासे प्रार्थना करते कि 'साँवरे! मैं केवल तेरी इजाजतसे तुझे छोड़कर यहाँ दुनियामें आ बैठा हूँ। तू मेरी आजकी व्यवस्था कर देगा, उसी समय यहाँसे उठ जाऊँगा' और फिर कभी सुबह साढ़े नौ, कभी दस बजे वे रोगियोंको दवा देकर वापस अपने गाँव चले जाते। यही उनकी दिनचर्या, यही उनकी जीवनचर्या और यही उनका व्यावसायिक सिद्धान्त था।

एक दिन वैद्यजीने दुकान खोली। फिर चिट्ठी खोली तो देखते ही रह गये। एक बार तो उनका मन भटक गया। उन्हें अपनी आँखोंके सामने तारे चमकते हुए नजर आ गये, लेकिन जल्द ही उन्होंने अपने मनपर काबू पा लिया। आटे, दाल, चावल आदिके बाद पत्नीने लिखा था, 'बेटीके दहेजका सामान लाना है, जी!' कुछ देर सोचते रहे, फिर बाकी चीजोंकी कीमत लिखनेके बाद दहेजके सामने लिखा 'यह काम मेरे कान्हाका है, कान्हा ही जाने।'

एक-दो मरीज आये थे। उन्हें वैद्यजी दवा दे ही रहे थे कि इसी दौरान एक बड़ी-सी कार उनकी दुकानके सामने आकर रुकी।

दोनों मरीज दवाई लेकर चले गये। वह साहब कारसे बाहर निकले और 'राधे-राधे' करके बेंचपर बैठ गये।

वैद्यजीने कहा कि 'अगर आपको अपने लिये दवा लेनी है, तो आपकी नाड़ी देख लूँ।' उस आदमीने कहा कि 'वैद्यजी! मुझे लगता है आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं १५-१६ साल बाद आपकी दुकानपर आया हूँ। आपको पिछली मुलाकातकी बात सुनाता हूँ, फिर शायद आपको सारी बात याद आ जायगी।'

वैद्यजी! मैं ५-६ सालसे इंग्लैंडमें रहता हूँ। इंग्लैंड जानेसे पहले मेरी शादी हो गयी थी, लेकिन बच्चा नहीं हुआ। यहाँ भी इलाज किया और इंग्लैंडमें भी करवाया, लेकिन हमारी किस्मतमें शायद बच्चा नहीं था। आपने कहा, 'मेरे भाई! अपने भगवान्‌से निराश न हो, याद रखो! उसके खजानेमें किसी चीजकी कोई कमी नहीं है। औलाद, माल, धन-दौलत, खुशी, गमी, जीवन-मृत्यु—सब कुछ उसीके हाथमें है। किसी वैद्यके हाथमें कुछ भी नहीं है। अगर औलाद होनी है तो मेरे साँवरेके आशीर्वादसे ही होनी है। औलाद देनी है तो उसे ही देनी है। मुझे याद है, आप बातें करते जा रहे थे और साथ-साथ पुड़िया भी बना रहे थे। फिर आपने मुझसे पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है? मैंने बताया कि मेरा नाम सतीश है। आपने एक लिफाफेपर कान्हा और दूसरेपर राधे लिखा। फिर दवा लेनेका तरीका बताया। लेकिन जब मैंने पूछा, 'कितने पैसे?'

आपने कहा—'बस ठीक है।' मैंने जोर डाला, तो आपने कहा कि 'आजका खाता बन्द हो गया है।'

मैंने कहा—'मुझे आपकी बात समझ नहीं आयी।' आपने कहा—'भाई! आजके घर-खर्चके लिये जितनी रकम मैंने कान्हाजीसे माँगी थी, वह साँवरेने मुझे दे दी है। अधिक पैसे मैं नहीं ले सकता।' मैं बहुत हैरान हुआ और शर्मिन्दा भी हुआ कि मेरे कितने घटिया विचार थे और यह वैद्य कितना महान् व्यक्ति है।

मैंने जब घर जाकर पत्नीको दवा दिखायी और सारी बात बतायी तो उसके मुँहसे निकला वे इंसान नहीं कोई फरिश्ता हैं और उनकी दी हुई दवा हमारी मनोकामना जरूर पूरी करेगी जी। वैद्यजी! आज मेरे घरमें तीन बच्चे हैं। हम पति-पत्नी हर समय आपके लिये दुआएँ करते हैं।

मैं जब भी वृन्दावन छुट्टीमें आया, कार उधर रोकी, लेकिन दुकानको बन्द पाया। कल दोपहर भी आया था, दुकान बन्द थी। एक आदमी पास ही खड़ा हुआ था। उसने कहा कि अगर आपको वैद्यजीसे मिलना है तो सुबह नौ बजे अवश्य पहुँच जायँ, वरना उनके मिलनेकी कोई गारंटी नहीं। इसलिए आज सवेरे-सवेरे आपके पास आया हूँ।

वैद्यजी! हमारा सारा परिवार इंग्लैंडमें बस चुका

है। केवल एक विधवा बहन अपनी बेटीके साथ वृंदावनमें रहती है।

हमारी भाँजीकी शादी इस महीनेकी २१ तारीखको होनी थी। इस भाँजीकी शादीका सारा खर्च मैंने अपने जिम्मे लिया था। दस दिन पहले इसी कारमें उसे मैंने पानीपत अपने रिश्तेदारोंके पास भेजा कि शादीके लिये जो चीज चाहे खरीद ले। उसे पानीपत जाते ही बुखार हो गया, लेकिन उसने किसीको नहीं बताया। बुखारकी दवा खाती रही और बाजारोंमें फिरती रही। बाजारमें फिरते-फिरते अचानक बेहोश होकर गिरी। उसे अस्पताल ले गये। वह बेचारी इस दुनियासे चली गयी। इसके मरते ही न जाने क्यों मुझे और मेरी पत्नीको आपकी बेटीका ख्याल आया। हमने और हमारे सभी परिवारने फैसला किया है कि हम अपनी भाँजीके सभी दहेजका साज-सामान आपके यहाँ पहुँचा देंगे। शादी जल्दी है तो इन्तजाम खुद करेंगे और अगर अभी कुछ देर है तो सभी खर्चोंके लिये पैसा आपको नकदी पहुँचा देंगे। आप कृपा करके मना मत करना।

अपना घर दिखा दें, ताकि सारा सामान वहाँ पहुँचाया जा सके। वैद्यजी हैरान-परेशान होकर बोले—'सतीशजी! आप जो कुछ कह रहे हैं, मुझे समझमें नहीं आ रहा, मेरा इतना मन नहीं है। मैंने तो आज सुबह जब पत्नीके हाथकी लिखी हुई चिट्ठी यहाँ आकर खोलकर देखी तो मिर्च-मसालाके बाद जब मैंने ये शब्द पढ़े—बेटीके दहेजका सामान, तो आपको पता है मैंने क्या लिखा? आप खुद यह चिट्ठी जरा देखें।' सतीशजी यह देखकर हैरान रह गये कि 'बेटीके दहेज' के सामने लिखा हुआ था 'यह काम कान्हाका है, कान्हा ही जाने।' 'सतीशजी! यकीन करो, आजतक कभी ऐसा नहीं हुआ था कि पत्नीने चिट्ठीपर बात लिखी हो और मेरे साँवरेने उसकी उसी दिन व्यवस्था न कर दी हो।' वैद्यजीने कहा। आपकी भाँजीकी मौतका मुझे सदमा है, अफसोस है, लेकिन मैं साँवरेकी कुदरतसे हैरान हूँ कि वह कैसे अपने काम दिखाता है! वैद्यजीने कहा—'जबसे होश सँभाला है, मैंने बस एक ही पाठ पढ़ा है। शुक्र है, मेरे साँवरे! तेरा शुक्र है।'

[प्रेषक—श्रीनन्दकिशोरजी मित्तल]

श्रीराधामाधव-प्रेमप्राप्तिके लिये श्रद्धा होनी चाहिये

एक राजकुमार था। उसके मनमें आया—कैसे भजन होता है, श्यामसुन्दरका प्रेम क्या वस्तु है, किससे जाकर पूछूँ, कौन बताये? इसी चिन्तामें वह सो गया। उसके घरमें एक ठाकुरजीका विग्रह था। उन्हींके विग्रहके सम्बन्धमें स्वप्न आरम्भ हुआ। स्वप्नमें उसने देखा कि वह विग्रह राधा-कृष्णके रूपमें बदल गया। वहाँ उसे साक्षात् श्रीराधा-कृष्ण दीखने लगे। सखियाँ भी दीखने लगीं। फिर श्रीकृष्णने अपनी बायीं ओर बैठी हुई एक सखीसे कहा—'प्रिये! इसे अपने समान बना लो।' वह गोपी आज्ञा पाकर आयी, राजकुमारके पास खड़ी हो गयी तथा अभेद भावसे राजकुमारका चिन्तन करने लगी। राजकुमारने देखा कि एक क्षणमें ही उसके सारे अंग बदल गये; उसके हाथ, पैर, सिर, मुँह, नाक—सब बदल गये और वह एक अत्यन्त सुन्दर गोपी बन गया। उसके बाद उस गोपीने इसे एक वीणा दे दी कि 'यह लो, श्यामसुन्दरको भजन सुनाओ।' उसने भजन सुनाना आरम्भ किया। भजन सुनानेपर श्यामसुन्दरने प्रसन्न होकर उसका आलिंगन किया, उसे हृदयसे लगा लिया। इसी समय राजकुमारकी नींद खुल गयी। राजकुमार रोने लग गया। निरन्तर एक महीनेतक रोता रहा। फिर उसने घर छोड़ दिया और वनमें जाकर कई कल्पोंतक युगलसरकारके मन्त्रका जप एवं युगल स्वरूपका ध्यान करता रहा। तब उसे सचमुच गोपीका देह प्राप्त हुआ और उसे भजन सुनानेकी वही सेवा मिली।

यों तो प्रेम कल्पोंकी साधनाके बाद कभी किसी बड़भागीको मिलता है, पर जब वह प्रेम मिलनेका उपक्रम होता है, तब एकाएक होता है। श्रद्धा होनी चाहिये। [पद्मपुराण]

'वृन्दावन वास पाइबे कौ बुलउआ'

(डॉ० श्रीराजेशजी शर्मा)

'बुलावा' शब्दका जगत्‌में बड़ा विस्तार है। ब्रजभाषामें इसे 'बुलउआ' कहते हैं। सांसारिक बन्धनोंमें बुलउआ कई तरहके हैं, जो अवसरविशेषपर इस आशयसे लगाये जाते हैं कि समाज एकत्र हो, लोग आयें और मनोरथ सफल हो जाय। पर इसके विपरीत इन बन्धनोंसे मुक्त होनेवाला एक बुलउआ और भी है, ***'वृन्दावन वास पाइबे कौ बुलउआ।'*** वृन्दावनी समाजमें इस बुलावेकी परम्परा बहुत पुरानी है। आज भी यहाँ किसी पुरुष या महिलाके पूर्णायु होनेपर व्यवहारीजनोंके घर मुख्य द्वारपर यह टेर दी जाती है¨ ***'फलाने नैं वृन्दावनवास पायौ है।'*** अर्थात् वृन्दावनमें निवास करते हुए परलोक-प्रस्थान किया है, फिर इसके बाद कौन-से वृन्दावनका वास? आवश्यकता इस पारम्परिक मर्मको समझनेकी है।

बात कोई एक या दो दिनकी नहीं, यह वृन्दावनमें सैकड़ों सालोंसे पल्लवित उस भावात्मक मान्यताका प्रतिफल है, जिसमें राधा-कृष्णके चिन्तनमें रचे-पगे विरक्त-गृहस्थ साधक यही चाहते हैं कि मैं मृत्युपर्यन्त ब्रज-वृन्दावनमें ही निवास करूँ। ब्रजभाषा साहित्यके इस पक्षकी अपनी विशेषता है। १६वीं सदीमें वृन्दावनी-उपासनाके साधक हरिराम व्यासजीकी वृन्दावनके प्रति चाहना देखिये—

किशोरी मोहि अपनौ करि लीजै।
और दिये कछु भावत नाँहि, श्री वृन्दावन दीजै॥
खग मृग पशु पंछी या वन के, चरन सरन रख लीजै।
व्यास स्वामिनी की छवि निरखत महल टहलनि कीजै॥

इस परम्परापर केन्द्रित प्रकाशित साहित्यके साथ ही इसका एक बड़ा पक्ष आज भी पाण्डुलिपियोंके रूपमें निम्बार्क, राधावल्लभ, गौड़ीय, हरिदासी, ललित एवं चरणदासी आदि वैष्णव सम्प्रदायोंके साहित्यमें अप्रकाशित ही बना हुआ है, जो वृन्दावनी-उपासनाके इस अनूठे वैशिष्ट्यसे जुड़ा स्वतन्त्र विषय है।

वास्तवमें मृत्युपर्यन्त वृन्दावन-निवाससे जुड़े इस पवित्र भावकी परिणति ही तो थी कि वृन्दावन भक्ति और भक्तोंकी राजधानी बन उठा। ब्रजकी लोकमान्यतामें मोक्षदायिनी मुक्ति भी स्वयंकी मुक्तिके लिये यहाँकी पावन रजको मस्तकपर धारण करनेहेतु लालायित दिखती है—

मुक्ति कहै गोपाल सौं मेरी मुक्ति बताय।
ब्रज रज उड़ि मस्तक लगै मुक्ति मुक्त होइ जाय॥

मोक्षप्रदायिनी मुक्ति ही नहीं, स्वयं भक्ति भी वृन्दावनकी पुण्य भूमिपर आकर निहाल हुई थी। श्रीमद्भागवतमें उल्लेख है कि भक्ति द्रविड़में जन्मी, पालन-पोषण कर्नाटकमें हुआ और गुर्जर आदि प्रदेशोंमें कालके प्रवाहसे जर्जर हो चली। यह वृन्दावनकी दिव्यताका प्रभाव ही है कि वृन्दावन-आगमनके साथ ही वह अपने पूर्ण स्वरूपको प्राप्तकर नृत्यरत हुई— **'धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च'** भक्तिका यह नर्तन ही तो यहाँ उपासनाकी विविधताओंको बतानेवाला है। साधकोंके लिये तो यहाँ आज भी युगल-सरकारका नित्य-रास है, तभी तो ये किसी भी कीमतपर इस दिव्य रास-स्थलीको नहीं छोड़ना चाहते। किसी भी परिस्थितिमें वृन्दावनवास न छूटे, यहाँके साधक इसके प्रति सचेष्ट रहते थे। राधावल्लभ-सम्प्रदायके वाणीकार ध्रुवदासजीने कहा भी है—

खण्ड-खण्ड ह्वै जाय तन अंग-अंग सत टूक।
वृन्दावन नहीं छाड़िवौ, छाड़िवौ है बड़ी चूक॥

वृन्दावनकी इन निकुंजोंका आकर्षण ही तो था कि १६वीं सदीमें ओरछा-दरबारके राजगुरु हरिराम व्यासजी वृन्दावन आनेको लालायित हो उठे—

हरि कब होंगे वनवासी।
कब मिलिहैं वे सखी-सहेली हरिवंशी-हरिदासी॥

यहाँ प्रिया-प्रियतमका नित्य रास है और नित्य बसंत। शुक-सम्प्रदायके प्रवर्तक आचार्य श्यामाचरणदासजीने अमर लोक-लीलामें लिखा है—

अखण्ड रास लीला अमर, नित वृंदावन धाम।
नित विहार जँह होत है चरन दास कौ वास॥

वास्तवमें वृन्दावनी-उपासनाके साधक इसी दिव्य वृन्दावनमें निवासके लिये ही यहाँ जीवनभर साधनारत रहकर उस दिनकी प्रतीक्षा करते हैं कि कब इनके युगल-सरकार उन्हें यह सौभाग्य प्रदान करेंगे। यही कारण है कि वृन्दावनकी कुंज-गलियोंमें भ्रमण करते समय पग-पगपर उन श्रद्धावान् सन्त-साधकों, रानी-राजमाताओं और राजा-महाराजाओंके समाधि-स्मारक दर्शित होते हैं, जो बस यही चाहते थे कि हम मृत्युपर्यन्त इसी दिव्य वृन्दावनमें रमे रहें। वृन्दावनी-उपासनामें निमग्न साधक तो यही कहते हैं कि उपासनाका यह मार्ग साधारण नहीं—ये सिंहनीके उस दूधकी तरह है, जिसे सिंहका शावक ही पचा सकता है या कि जो स्वर्णपात्रमें सुरक्षित रहता है—

ललिता सखी उपासना ज्यौं सिंहनी कौ छीर,
ज्यौं सिंहनी कौ छीर रहे कुंदन के बासन।
कैं बच्चा के पेट और घट करै विनासन।

निकुंज-सेवी श्रीबिट्ठलविपुलजीके निकुंज-प्रवेशका तो उपक्रम ही अद्भुत था। वे अपने गुरु स्वामी श्रीहरिदासजीके तिरोभावपर आँखें मूँद बैठ गये कि अब संसार व्यर्थ है। तीन दिवस गुजर गये, पर न तो आँखें खोलीं और न किया अन्न-जलका सेवन। इस परिस्थितिसे उबारनेके लिये, कि कैसे भी ध्यान तो बँटे, गुरु-भाइयोंने 'रासलीला' का आयोजन कराया। इसके बाद तो श्यामा-श्यामने जो लीला दिखायी, वह अद्भुत है। रास चल रहा था, सभी साधक बैठे थे, एकाएक श्यामाजूने विट्ठलविपुलजीका हाथ आँखोंके ऊपरसे हटा दिया। उन्होंने रासेश्वरी राधाके दर्शन किये और रासेश्वरी साधकको देखती रहीं, बस, यही क्षण था, सभी स्तब्ध और बिट्ठलविपुल प्रवेश पा गये, निधुवनकी उन निकुंजोंमें जो बिहारीजीके प्राकट्य और श्यामाजूकी अभिसार-स्थली हैं। भक्तोंके लीला-संवरणकी यह बातें भी अद्भुत हैं। साधनाका उच्च स्तर और अर्जित पुण्य ही उन्हें यह सामर्थ्य प्रदान करता है—

रास रस रसिकन सभा, मधि रूप राधा कर गह्यौ।
नमि सीस इष्ट निहारि नैंननि, थूल तन तजि भजि लह्यौ॥

वृन्दावनमें राधाबल्लभलालजूके वर्तमान मन्दिरके समीपस्थित अकबरकालीन पुराने राधावल्लभमन्दिरके निर्माणका उपक्रम बड़ा अनूठा है। भगवतमुदितजीकी पोथी 'रसिक-अनन्यमाल'में उल्लेख है कि गोस्वामी हितहरिवंश महाप्रभुके ज्येष्ठपुत्र वनचन्द्रजीके इस कथनसे, कि जो कोई मन्दिरका निर्माण करायेगा, वह एक सालके अन्दर प्रभुके धामको गमन करेगा। इस कारण कई राजे-रजवाड़े मृत्युके भयसे लौट गये। आखिरमें बादशाह अकबरके सेनापति तथा नवरत्नोंमें एक अब्दुर्रहीम खानखानाके दीवान सुन्दरदास कायस्थने इस बातको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकारा और मन्दिर-निर्माणका बीड़ा उठाया। वनचन्द्रजीकी आज्ञाको शिरोधार्यकर सुन्दरदासने बस यही निवेदन किया कि मैं श्रीजीके वर्षभरके उत्सवोंका आनन्द लेना चाहता हूँ। अतः आप मुझे श्रीजीके सामने ही निवास-स्थान देनेकी कृपा करें—

पाँच आरती सातों भोग। नैमित्तिक उत्सव कौ जोग॥
एक वरष करि कर तुम देखौं। भाग्य सुफल अपने करि लेखौं॥
अरु इक वचन आपु मुख भाखौ। सन्मुख स्थल करि मोहि राखौ॥

सुन्दरदासने श्रीजीके वर्षभरके उत्सवका आनन्द लिया और आखिरमें वह दिन भी आया, जिसकी बात एक वर्ष पूर्वसे तय थी कि नव मन्दिरमें श्रीजूके विराजमान होनेके एक वर्षके अन्दर ही मन्दिर-निर्माता श्रीजीके धामको गमन करेगा—

जब ठाकुर मंदिरहिं पधारैं। कर्ता मरै बरस मधि तारैं॥

सुन्दरदास तो आरम्भसे ही इस परमगतिके लिये लालायित थे। समय-चक्रमें एक वर्षकी अवधि कैसे गुजर गयी, पता ही न चला। उस दिन भी सुन्दरदासने प्रतिदिनकी तरह श्रीजीका चरणोदक लिया। मन्दिरमें समाजी हितचतुरासीजीके पद ***'बनी वृषभान नंदिनी आजु'*** का गान कर रहे थे। सुन्दरदास श्रीजीके समक्ष दण्डवत् करते हुए प्रभु-

लीलामें प्रविष्ट हुए—

तब पुनि वह वास दिन आयौ। नित विहार निजु धाम बुलायौ॥
बनी वृषभानु नंदिनी आज। यह पद गावत सकल समाज॥
हिय जुग ध्यान करत मुख गान। करि दण्डवत तजे निजु प्रान॥

याद आ रहा है महाप्रभु चैतन्यके परम प्रेमी हरिदास ठाकुरका वह हठ कि वृद्धावस्थामें स्वस्थ होते हुए भी महाप्रभुसे कहने लगे—प्रभु! नाम-जपका लक्ष्य पूरा नहीं हो पा रहा है और मैं अब जाना चाहता हूँ; क्योंकि आपका लीला-संवरण देखनेकी शक्ति मुझमें नहीं। प्रभुने समझाया भी अब उम्र बढ़ रही है, लक्ष्यको थोड़ा कम करो, पर हरिदास कहाँ माननेवाले थे? जिद कर बैठे, मेरी परम अभिलाषा है और इसे आपको पूरा करना ही होगा, मैं आपका दर्शन करते हुए लीला-संवरण करना चाहता हूँ। महाप्रभुने फिर समझाया—हरिदास! तुम्हारे बिना मैं कैसे रह पाऊँगा? लेकिन हरिदास ठाकुर तो अड़े थे, कहने लगे—प्रभु! अब और माया न दिखाओ, मुझपर कृपा करो—कीर्तन आरम्भ हुआ, स्वर-लहरियाँ तीव्र होती गयीं, सभी साधक कीर्तनमें निमग्न, इसी दौरान महाप्रभुका भावावेश बढ़ा और वे उच्च स्वरमें कीर्तन करते-करते नृत्य करने लगे। आनन्दसे परिपूर्ण हरिदास ठाकुरने सजल नेत्रोंसे प्रभुको देखते हुए कहा—हे प्रभु! मेरे सामने ही बैठ जाओ और उन्होंने नेत्रोंको स्थिर कर दिया श्रीकृष्णचैतन्यके मुख-मण्डलपर। बस, फिर क्या था! साधक और साध्य एक हो गये।

चैतन्य महाप्रभु, मीरा, कबीर और इसी क्रममें ऐसे महान् साधकोंके लीला-संवरणसे जुड़े प्रसंग भी दिव्य हैं। वृन्दावनका यशोदानन्दन-मन्दिर; विहार घाटका यह परिक्षेत्र तो उस चतुरानन नागा-जैसे साधककी भजन-स्थली है, जिसका ब्रजयात्राका नियम ही अनूठा था—

श्री गोविन्द देव जू कौ भोर ही दरस करि,
केशव सिंगार राजभोग नंदगाँव में।
गोवर्धन-राधाकुण्ड ह्वैके आवैं वृन्दावन,
मन में हुलास नित करें चार धाम में॥

इस क्रममें जब एकबार कदम्बखण्डीके पास इनकी जटाएँ हींसकी झाड़ियोंमें उलझ गयीं तो नागाजीने किसीका भी सहयोग लेनेसे मना कर दिया और तीन दिनोंतक भूखे-प्यासे खड़े प्रभुके चिन्तनमें बस यही कहते रहे—***जाने उरझाई हैं बोई सुरझायगौ***" आखिरमें जब ग्वालवेशमें भगवान् आये तो यह कहकर पहचाननेसे ही मना कर दिया कि मेरे प्रभु तो युगल-सरकार हैं। साधककी जिद थी, माननी पड़ी प्रभुको। यशोदानन्दन-मन्दिरके बिलकुल बगलमें ही तो है नागाजीकी समाधि, जहाँ महाराजजीकी पूर्ण श्रद्धा थी।

एक समय यशोदानन्दन-मन्दिरके गर्भगृहकी छत जब जीर्ण हो चली तो यहाँ दूलैरामजीकी परवर्ती पीढ़ीके साधक वहीं गर्भगृहके निकट इस भावसे शयन करने लगे—***'अकेले नाँय दबन दूँगो, मैं ऊ संग दबूंगौ।'***

वास्तवमें सेवाका संस्कार समझना है तो यशोदानन्दन-मन्दिर आना ही होगा। यहाँ प्रभुसे लाड़-दुलारके रूपमें वात्सल्य, जो कि सेवाके उपांगोंके रूपमें दर्शित हुआ है। वृन्दावनके विहारघाट परिक्षेत्रमें यह कुंज-उपासना उपासनाके धरातलपर पिछली कई पीढ़ियोंसे सेवामें लाड़-दुलारकी विविधताओंको बताती आयी है। कालान्तरमें वृन्दावन वनसे नगरीय संरचनाकी तरफ बढ़ा। बदलाव समयकी आवश्यकता भले ही रहा हो, लेकिन निकुंज-भावसे प्रेरित यहाँके साधकोंने कुंज-संस्कृतिको संरक्षित रखा और लगे रहे इस कुंजमें श्यामा-श्यामको लाड़ लड़ानेमें। उपासनाके इस धरातलको उसी पवित्र दृष्टिसे देखें तो आज भी वह वृन्दावन है, वह भाव भी है और वे साधक भी, जो वृन्दावनको इसी भावसे जीते हैं कि मृत्युके बाद भी हम इन्हीं निकुंजोंमें रमे रहें और रसपान करते रहें युगल-सरकारके नित्य विहारका। तभी तो सब जगमें अनूठा है—***'वृन्दावन वास पाइबे कौ बुलउआ।'***

श्रीराधामाधवतत्त्व—आध्यात्मिक दृष्टि

श्रीकृष्णकी रासलीला एवं उसका आध्यात्मिक रहस्य

(आचार्य श्रीरामगोपालजी गोस्वामी, एम० ए०, एल० टी०, साहित्यरत्न)

रासलीला एक दिव्य प्रेम-सुधा-रसका समुद्र है, उसकी दो धाराएँ हैं। दो ओरसे आती हैं, टकराती हैं और एक हो जाती हैं। पहली लहर दूसरी हो जाती है, दूसरी लहर पहली हो जाती है। इस प्रकार प्रेमी-प्रियतम, प्रियतम-प्रेमीके अन्यतम मिलनकी यह अनन्त धारा चलती रहती है। नया मिलन, नया रूप, नया रस, नयी प्यास और नयी तृप्ति—यही प्रेम-रसका अद्वैत स्वरूप है। इसीका नाम रास है।

गोपियाँ रसविशिष्ट प्रेमवृत्ति हैं। राधारानी मूर्तिमती ब्रह्मविद्या हैं, आराधना हैं, आराधिका हैं, आह्लादिनी शक्ति हैं। एक कृष्ण, एक वृत्तिकी अद्वैत-रसभावनासे ओतप्रोत हृदयके रंगमंचपर सन्धिस्थानीय श्याम-ब्रह्म और तदाकार-वृत्तियोंकी धाराके रूपमें गोपियोंका नृत्य ही रासलीला है।

रास—शास्त्रीय दृष्टि

शास्त्रीय दृष्टिसे देखें तो—'**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**' भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं, पूर्ण परब्रह्मके अवतार हैं और सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप हैं। सद्भावका प्रकाश उनके धर्माचरणमें, चिद्भावका प्रकाश उनकी निर्विकार अनुभूति एवं उपदेशोंमें तथा आनन्दभावका परिपूर्ण विकास उनकी रासलीलामें हुआ है। रासलीला एक आनन्द-प्रधान लीला है। वेदोंमें मधु, आनन्द, रस एवं सुखके नामसे उन्हींका वर्णन है।

रासमें साहित्य, संगीत और कला (नृत्य)-का समन्वय होता है। '**सत्यं शिवं सुन्दरम्**' की यही पहचान है। इस रासलीलामें काम अंशमात्र भी नहीं है। देव, गन्धर्व, किन्नर तथा नारद आदि भी आकाशसे एवं श्रीमहादेवजी स्वयं गोपी बनकर गोपीश्वर महादेवके रूपमें वंशीवटपर वृन्दावनमें रासलीलामें प्रवेशकर महारासको अपने तीनों नेत्रोंसे निहारा करते हैं। आज भी श्रीगोपीश्वर महादेवके रूपमें निहार रहे हैं।

आध्यात्मिक रहस्य

रासलीलाके प्रमुखतः तीन सिद्धान्त हैं—(१) रासलीलामें गोपीके शरीरके साथ कुछ लेना-देना नहीं है, (२) लौकिक काम नहीं है और (३) यह साधारण स्त्री-पुरुषका नहीं, जीव और ब्रह्मका मिलन है।

शुद्ध जीवका ब्रह्मके साथ विलास ही रास है। शुद्ध जीवका अर्थ है—मायाके आवरणसे रहित जीव। ऐसे जीवका ही ब्रह्मसे मिलन होता है। इसीलिये गोपियोंके साथ श्रीकृष्णने महारासके पूर्व 'चीरहरण'-लीला की थी। चीरहरणलीलामें जब बाह्यावरण उपाधि नष्ट हुई तो रासलीला हुई। जीव और ब्रह्मका तादात्म्य हुआ।

जिस प्रकार वस्त्र देह ढँकता है, उसी प्रकार वासना और अज्ञान आत्माको ढक देते हैं और परमात्माको दूर करते हैं। जबतक अज्ञान और वासनाका आच्छादन दूर नहीं हो जाता, तबतक शिवसे मिलन नहीं हो पाता। वस्त्रहरणलीला बुद्धिगत वासना, बुद्धिगत अज्ञानको उड़ा ले जानेकी लीला है। वासना और अज्ञानरूपी वस्त्र प्रभु-मिलनमें बाधक हैं। इन्द्रियोंके कामको हटाना सरल है, किंतु बुद्धिगत कामको निकाल बाहर करना बड़ा

कठिन है। श्रीकृष्णने गोपियोंके वासनारूपी आवरणको हटा दिया। शुद्ध-बुद्ध गोपियोंके साथ महारास किया।

श्रीधरस्वामीके अनुसार पंचाध्यायी रासलीला निवृत्तिधर्मका परम फल है। रासलीलाके पाँच अध्याय पंच प्राणोंके सूचक प्रतीत होते हैं। पंच प्राणोंका ईश्वरके साथ रमण ही 'रास' है।

वेणुगीतकी बाँसुरी तो केवल पशु-पक्षियोंको ही नहीं, सबको सुनायी देती है, किंतु रासलीलाकी बाँसुरी तो ईश्वर-मिलनातुर अधिकारी जीव गोपीको ही सुनायी देती है।

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।

रासलीला कोई साधारण स्त्रीकी नहीं, देह-मान भूली हुई, देहाध्याससे मुक्त स्त्रीकी कथा है। देहाध्यास नष्ट होनेपर प्रभुकी चिन्मयी लीलामें प्रवेश मिलता है।

अन्तर्मुख-दृष्टि करके जीव जब भगवान्के पास पहुँचता है, तब वे उससे पूछते हैं—'मेरे पास क्यों आया है?' गोपियोंसे भी पूछा—'अर्धरात्रिमें क्यों आयी हो?' पतिसेवा तथा संतानसेवा करो, रात्रिमें मिलन उचित नहीं। जीवको परमात्मा सहज नहीं मिलते हैं। जीवको भ्रान्ति होती है। संसारमें रत रहो, वहीं तुमको सुख मिलेगा। मैं सुख नहीं, केवल आनन्द ही दे सकता हूँ।

ब्रह्म जीवको संसारमें लौटाता है, प्रलोभन देता है, माया-जालमें फँसाता है। रासलीलाके रसिक-शिरोमणि नटवर नागर श्रीकृष्णके इतना कहनेपर गोपियाँ कहती हैं—

पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।३४)

'[हे गोविन्द!] हमारे पाँव आपके चरण-कमलोंको छोड़कर एक पग भी पीछे हटनेको तैयार नहीं हैं, हम व्रजको लौटें तो कैसे? और यदि हम लौटें भी तो मनके बिना वहाँ हम क्या करें? हमारा मन आपमें ही रमा हुआ है। हम भी आपके स्वरूपसे तदाकार होना चाहती हैं।'

प्रभुने सोचा कि इन गोपियोंका प्रेम सच्चा है। जीव शुद्ध भावसे मुझसे मिलने आया है तो उसे अपना लिया। श्रीकृष्णने एक साथ अनेक स्वरूप धारण किये। जितनी गोपियाँ थीं, उतने स्वरूप बना लिये और प्रत्येक गोपीके साथ एक-एक स्वरूप रखकर रासलीलाका आरम्भ किया।

हजारों जन्मोंका विरही जीव आज प्रभुके सम्मुख उपस्थित हो सका है, जीव आज ईश्वरमय हो गया। वे दोनों एक हो गये। इस मिलनसे जीव और ईश्वर दोनोंको अति आनन्द हुआ।

गोपियाँ श्रीकृष्णमय तथा भगवन्मय हो गयीं। वे सभी हाथोंसे हाथ मिलाकर नाचने लगीं। यह तो ब्रह्मसे जीवका मिलन हुआ है। इस प्रकार अद्वैतसिद्धान्तके आचार्य श्रीशुकदेवजीने रासलीलामें अद्वैतका वर्णन किया है।

महारास देखते-देखते श्रीब्रह्माजी सोचने लगे कि कृष्ण और गोपियाँ निष्काम तो हैं, फिर भी देहभान भूलकर इस प्रकार परायी नारीसे लीला करना शास्त्र-मर्यादाका उल्लंघन ही है। ब्रह्माजी सशंकित हुए। ब्रह्माजी यह नहीं जानते कि यह रासलीला धर्म नहीं, धर्मका फल है। श्रीकृष्णने एक और खेल रचा—

श्रीकृष्णने सभी गोपियोंको अपना स्वरूप दे दिया। अब तो सर्वत्र कृष्ण-ही-कृष्ण दिखायी दे रहे थे। गोपियाँ थीं ही नहीं। सभी पीताम्बरधारी कृष्ण हैं और एक-दूसरेसे रास खेल रहे हैं।

श्रीब्रह्माजीने मान लिया कि यह स्त्री-पुरुषका मिलन नहीं है। श्रीकृष्ण गोपीरूप हो गये हैं। ब्रह्माजीने श्रीकृष्णको साष्टांग प्रणाम किया।

यह विजातीय तत्त्वका—स्त्रीत्व और पुरुषत्वका

मिलन नहीं, अंश और अंशीका मिलन है। आज गोपियाँ श्रीकृष्णमय हो गयीं, प्रभुरूप बन गयीं। ब्रह्मरूप हो जानेके बाद जीवका स्वत्व कहाँ रहा?

रासलीला करनेका कारण

जब हम '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**' कहते हैं तब यह बात अपने-आप स्पष्ट हो जाती है कि कृष्ण कामी नहीं, भोगी नहीं, बल्कि निष्काम-कर्मके अधिष्ठाता एवं स्वयं योगेश्वर हैं। जिस प्रकार उन्होंने ब्रह्माजीका गर्व गो-वत्स-हरण-लीला करके, अग्निका गर्व दावानल-पान-लीला करके और इन्द्रका गर्व गोवर्धन-धारण-लीला करके नष्ट किया, उसी प्रकार उन्होंने रासलीला करके कामदेवका गर्व भी नष्ट किया।

रासलीला श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा और गोपियोंके साथ की गयी लीला है। उनका परस्पर अपूर्व मिलन है।

रासलीला श्रीकृष्णका श्रीकृष्णसे तथा जीवका ब्रह्मसे मिलन है। '**एकोऽहं बहु स्याम्**' में लीलाका आध्यात्मिक पर्यवसान है। ब्रह्म ही ऋषियोंसे, गोपियोंसे, आह्लादिनी शक्तिसे, राधा-गोपियोंसे एवं जीवधारियोंसे मिल रहा है।

उपर्युक्त लीला-प्रसंगोंमें यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रासलीला महालीला है, अद्वैतभावका व्यक्त स्वरूप है, अंशका अंशीमें परम मिलन है, भेदबुद्धिरूप लौकिक दृष्टिका निरसनकर अभेदबुद्धिरूप आध्यात्मिक यथार्थ तत्त्वका महिमामण्डित स्वरूप है। प्रेम, प्रेमी और प्रेमास्पदका अभिन्न प्रतिपादक है। अतः इस लीलाके रसांशका भी अनुभव हो जानेपर जीवको वह सायुज्य प्राप्त हो जाता है, जिसे जन्म-जन्मान्तरके प्रयाससे भी सिद्ध, मुनि, योगी और साधक प्राप्त नहीं कर पाते और अन्ततः इस रासलीलाके आनन्दातिरेकमें जीव शिव हो जाता है। यह तादात्म्य ही रासलीलाकी आध्यात्मिकता है, उसका रहस्य है।

श्रीकृष्णके 'माधव' नामका रहस्य

मा च ब्रह्मस्वरूपा या मूलप्रकृतिरीश्वरी।
नारायणीति विख्याता विष्णुमाया सनातनी॥
महालक्ष्मीस्वरूपा च वेदमाता सरस्वती।
राधा वसुन्धरा गंगा तासां स्वामी च माधवः॥

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, कृष्ण० १११। ४६-४७)

[श्रीराधाजी नन्द-यशोदासे कहती हैं—] जो ब्रह्मस्वरूपा 'मा' मूलप्रकृति, ईश्वरी, नारायणी, सनातनी, विष्णुमाया, महालक्ष्मीस्वरूपा, वेदमाता सरस्वती, राधा, वसुन्धरा और गंगा नामसे विख्यात हैं, उनके स्वामी (धव) को 'माधव' कहते हैं।

मौनाद् ध्यानाच्च योगाच्च विद्धि भारत माधवम्।
सर्वतत्त्वमयत्वाच्च मधुहा मधुसूदनः॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ७०। ४)

[संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं—] भारत! मौन, ध्यान और योगसे उनका बोध अथवा साक्षात्कार होता है; इसलिये आप उन्हें 'माधव' समझें। मधुशब्दसे प्रतिपादित पृथ्वी और सम्पूर्ण तत्त्वोंके उपादान एवं अधिष्ठान होनेके कारण मधुसूदन श्रीकृष्णको 'मधुहा' (भी) कहा गया है।

श्रीराधामाधवकी लीलाओंमें प्रेमरस और अनन्त प्रकाश

(बाबा श्रीदीनशरणदासजी)

वैष्णवाचार्य श्रीसनातनगोस्वामिकृत 'श्रीबृहद्-भागवतामृत' की टीकामें एवं कवि कर्णपूरकृत 'अलंकार-कौस्तुभ' में 'प्रेमरस' नामसे एक रसका उल्लेख पाया जाता है और वह शृङ्गाररससे भिन्न है। श्रीरूपगोस्वामी शृङ्गाररसको मधुररस एवं श्रीजीवगोस्वामी उज्ज्वलरस कहते हैं। कर्णपूरके मतमें श्रीराधाकृष्ण प्रेमरसके भी आलम्बनविभाव हैं और शृङ्गाररसके भी । प्रेमरसमें अंगसंग नहीं है, शृङ्गाररसमें है। प्रेमरसमें अंगसंग होनेपर शृंगाररससे भिन्न आख्या देनेका कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। श्रीराधा-कृष्णका अवलम्बन करनेके लिये तथा दोनों ही प्रकारके रसकी विद्यमानताके लिये प्रकाश-भेद स्वीकार करना अनिवार्य हो जाता है। श्रीरूपगोस्वामीकृत लघुभागवतामृतमें—'**सदानन्तैः प्रकाशैः स्वैर्लीलाभिश्च स दीव्यति।**'

श्रीराधा-माधवने अनन्त प्रकाशोंमें अनन्त प्रकारकी लीलाएँ कीं और कर रहे हैं। श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती भी 'श्रीवृन्दावनमहिमामृत' में लिखते हैं—

एकं वृन्दावनान्तर्विहरदथ
परं गोकुले प्राप्तयोगम्।
विच्छेद्यन्यत् तदेवं लसति बहुविधं
राधिकाकृष्णरूपम् ॥

श्रीराधाकृष्णके बहुत प्रकारके प्रकाश हैं—

(१) यमुनावेष्टित श्रीवृन्दावनमें मात्र सखी मंजरी-गणोंके साथ एक प्रकाश (इस प्रकाशमें पिता, माता, सखागण या गोचारणादि लीलाएँ नहीं हैं)।

(२) पिता, माता एवं सखागणोंके सहित नन्दग्राम, बरसाना एवं गोवर्धन इत्यादि स्थानोंमें गमनागमन, गोचारणादि लीलायुक्त एक प्रकाश।

(३) विच्छेदी अर्थात् विच्छेद या विरहलीलामय एक प्रकाश।

इस प्रकार बहुविध या असंख्य प्रकाशोंमें श्रीराधा-कृष्णकी प्रकट एवं अप्रकट बहुविध लीलाएँ हो रही हैं।

यह सर्ववादिसम्मत है कि जहाँ आलोक है, वहाँ अन्धकार हो नहीं सकता। सुतरां जहाँ 'प्रेम' है, वहाँ 'काम' रह नहीं सकता। कामगन्धहीन प्रेम-कथाकी भावना करनेसे सभीको आनन्द ही नही होता, अपितु चित्त शुद्ध या पवित्र हो जाता है।

श्रीरासलीलाकी फलश्रुतिमें है—'श्रद्धाके साथ उनका श्रवण करनेसे हृद्रोग—काम दूर हो जाता है'—

'हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः।'

ऐसा होनेपर भी, श्रीरासपंचाध्यायीका श्रवण-कीर्तन करके भी देखा है कि हृद्रोग—काम दूर नहीं होता है। इससे पता चलता है कि—यथार्थ श्रद्धाके सहित अनुशीलन ही नहीं किया गया है।

दुर्दैववश जिनको ऐसी श्रद्धा नहीं है, उनको तो साधन-भजन अपने अधिकारके अनुसार ही करना चाहिये।

भक्तिसन्दर्भमें श्रीजीवगोस्वामी कहते हैं—

'पौरुषविकारवदिन्द्रियै रहस्यलीला तु न उपास्या।'

'जिनकी इन्द्रियाँ चंचल हैं, उनको चाहिये कि श्रीराधाकृष्णकी रहस्यमयी लीलाओंका श्रवण-कीर्तनादि न करें।' प्रेमरस 'काम-गन्धहीन' है, इसलिये प्रेमरसमयी लीलाकी उपासना ही सर्वसाधारणके पक्षमें सर्वापेक्षा उपयोगी है। श्रीराधाकृष्णके अनन्त प्रकाश हैं। उनके मध्यमें किसी भी प्रकाशमें शुद्ध प्रेमलीला ही है, कामकी गन्धमात्र भी नहीं है। प्रेममें चित्त द्रवीभूत हो जाता है।

'**सम्यङ्मसृणितस्वान्तः**' (भ० र० सि० ४। १)

चित्त-द्रवका अनुभाव नयनद्रव या अश्रु है। सत्त्वोद्रेकके फलस्वरूप सात्त्विक विकाररूप अश्रुका उद्गम होता है। जिस क्षण आँखोंमें जल है, उस क्षण कामका विकार असम्भव माना जाता है।

धारा बाष्पमयी न याति विरतिं

(विदग्धमाधव ५। ३२)

श्रीकृष्ण-प्रेम प्राप्त हो जानेपर नयनधाराका विराम नहीं होता। श्रीजीवगोस्वामी लिखते हैं—**विदग्धानां यथा वनितानुरागास्वादने वाञ्छा न तथा तत्स्पर्शादावपि**'। जो स्पर्शवाञ्छाहीन रति है, उसीका नाम 'प्रेमरस' है।

अश्रुको ही उपचारतः प्रेम कहा गया है। प्रेममें चित्त सम्यक् मसृणित या द्रवीभूत होगा, स्नेह-भूमिकामें चित्तद्रवका ही विशेषत्व एवं विलक्षणत्व होता है।

'सान्तश्चित्तद्रवं कुर्वन् प्रेमा स्नेह इतीर्यते।'

(भ० र० सि० ३। २। ८४)

इसीलिये रुद्रटने अपने काव्यालंकारमें **'स्नेह- स्थायी भवेत् प्रेयान्'** कहा है। प्रेयोरस या प्रेमरसका स्थायी भाव स्नेह है। कवि कर्णपूर प्रेयोरसको प्रेमरस एवं स्नेहके स्थानपर स्थायी भाव चित्तद्रवको कहते हैं। प्रेमरसके कई उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

घनप्रणयनिर्झरप्रसरलब्धपूर्तेर्मनो-
ह्रदस्य परिवाहितामनुसरद्भिरश्रुप्लुतम्।
स्फुरत्तनुरुहांकुरैर्नवकदम्बजृम्भश्रियं
व्रजत् तदनिशं भजे व्रजनवीनयूनोर्युगम्॥

(स्तवमाला)

'जिनका मनोह्रद प्रणय-निर्झरके उच्छलनसे परिपूर्ण है एवं उसी ह्रदके प्रणालीस्वरूप अश्रुप्रवाहसे जिनके वस्त्र एवं अंगादि परिषिक्त हैं, व्रजके उन्हीं श्रीयुगलकिशोरका सर्वदा भजन करो।'

श्रीराधाकृष्ण गोस्वामीकी साधनदीपिकामें प्रेमरसमय योगपीठका वर्णन इस प्रकार है—

तरङ्गदङ्गया किल रङ्गदेव्या
सव्ये सुदेव्या च शनैरसव्ये।
श्लक्ष्णाऽभिमर्शेन विमृज्यमान-
स्वेदाश्रुधारौ सिचयाञ्चलेन॥

'योगपीठमें सिंहासनपर उपविष्ट श्रीराधाकृष्णके सहज-सात्त्विक विकार स्वेद एवं अश्रुधाराको दक्षिण पार्श्वमें स्थित रंगदेवी एवं वामपार्श्वमें स्थित सुदेवी अति संतर्पणपूर्वक वसनाञ्चलद्वारा मार्जन कर रही हैं'— यह भी प्रेमरसका उदाहरण है। अलंकारकौस्तुभमें आया है—

प्रेयांस्तेऽहं त्वमपि च मम प्रेयसीति प्रवाद-
स्त्वं मे प्राणा अहमपि तवास्मीति हन्त प्रलापाः।
त्वं मे ते स्यामहमिति च यत्तच्च नो साधु राधे
व्याहारे नो न हि समुचितो युष्मदस्मत्प्रयोगः॥

श्रीकृष्णकी उक्ति है—'राधे! मैं तुम्हारा प्रियतम और तुम मेरी प्रियतमा हो, यह तो प्रवादमात्र है। तुम मेरी और मैं तुम्हारा प्राण—इसको भी प्रलाप माना जाता है। तुम मेरी एवं मैं तुम्हारा—यह भी उत्तम नहीं। तुम्हारे मेरे कथा-प्रसंगमें 'तुम और मैं' शब्दका प्रयोग ही मैं अनुचित मानता हूँ।'

निर्मलचित्त प्रेमी भक्तको इस रसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। टीकामें श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती लिखते हैं—

आत्मनोर्द्विर्देहत्वे एतादृशप्रयोगः समुचितो भवति। अत्र तु श्यामपीतदेहयोर्द्वयोरेक एवात्मा। यथैकस्मात्कमलनालादुत्पन्नं नीलपीतकमलद्वयम्, तद्वदिति ज्ञेयम्।

इस स्थानमें श्याम एवं पीतवर्ण युगलकी जब एक ही आत्मा है, तब उनके मध्यमें तुम और मैं शब्दका प्रयोग असमीचीन है।

श्रीमद्भागवतकी 'चैतन्यमतमंजूषा' नाम्नी टीकामें श्रीनाथ चक्रवर्ती लिखते हैं—'वस्त्रहरण-लीलामें गोपियोंका अनूठा प्रेमरस अभिव्यक्त हुआ है। उसमें आलम्बन—श्रीकृष्ण, उद्दीपन—श्रीकृष्णकी परिहासोक्ति, अनुभाव—अन्योन्यप्रेक्षणादि और संचारी व्रीड़ादि हैं। इन सबसे पुष्ट प्रेमकाररूप स्थायी भाव रसताको प्राप्त होता है। इस स्थानपर कुमारीगणोंका प्रेमाख्य रस या प्रेमरस है, किंतु शृंगाररस नहीं है।'

कवि कर्णपूर जिस प्रकार चित्तद्रवातिशययुक्त प्रेमरूप स्थायी भावको ही 'चित्तद्रव' कहते हैं, उसी प्रकार श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीने भी ममत्वातिशयांकित प्रेमको ही ममतारूप स्थायी भाव कहा है।

अनन्यममता विष्णौ ममता प्रेमसंगता।
भक्तिरित्युच्यते भीष्मप्रह्लादोद्धवनारदैः॥

(भ० र० सि० १। ४। २३)

विष्णुमें अनन्यममतायुक्त ममतारूप भक्तिको ही प्रेम कहा जाता है।

उभे इदानीं उभयोस्तु चित्ते
कदुष्णनिःश्वासचरिष्णुकेन ।
एकीकरिष्यन्ननुरागशिल्पी
रागोष्मणैव द्रवतामनैषीत्॥

(रसार्णव-सुधाकर २। ११२)

'उस समय अनुरागशिल्पीने श्रीराधाकृष्णके चित्तको ईषत्-उष्णनि:श्वासयुक्त रागकी उष्णताद्वारा एकीभूत करनेके लिये सम्यक् रूपसे द्रवीभूत किया था।' यह भी प्रेमरसका दृष्टान्त है।

महात्मा शिशिरकुमार घोषकृत 'श्रीकालाचाँद गीता' ग्रन्थमें प्रेमरसका ही वर्णन है, शृंगाररसका नहीं।

श्रीमीराँबाईकी पदावलीमें भी प्रेमरसका ही उच्छलन है, शृंगाररसका नहीं।

भक्तिमती आण्डालके ग्रन्थों एवं शठकोपाचार्यकृत 'सह-स्रगीति' में भी प्रेमरसकी ही कथा है। श्रीचण्डीदासकी **'एकत्र थाकिब नाहि परसिब, भाविनी भावेर देहा।'**— इस पंक्तिसे भी प्रेमरस ही इंगित है—ऐसा स्वीकृत है।

आसामके श्रीमाधवदेवकृत 'वरगीत' में प्राप्त राधा-माधवकी लीलाकथा भी प्रेमरसात्मक ही है—

ज्योत्स्नाशीधुं हरिमुखविधोरप्यनल्पं पिबन्तौ
नान्तस्तृप्तिं तव कथमपि प्राप्नुतो दृक्चकोरौ।
आघूर्णन्तौ मदकलतया सुष्ठुमुग्धौ यदेतौ
भूयो भूयस्तमिह वमतो वाष्पपूरच्छलेन॥

श्रीकृष्णके मुखसौन्दर्यके दर्शनमें द्रुतचित्ता श्रीराधाके स्वेद प्रभृति सात्त्विक भावोंके उदित होनेपर भी उनमें अश्रु-प्रपातके ही अति उच्छलनको देखकर वृन्दा उनसे कहती हैं,—'हे राधे! श्रीहरिके मुखचन्द्रकी ज्योत्स्नासुधाको बहुत पान करनेपर भी तुम्हारे युगलनयन-चकोर मनसे कुछ भी तृप्तिबोध नहीं कर रहे हैं। इस कारण वे मत्ततावश घूर्णायमान हो-होकर वृन्दावनके निकुञ्जोंमें पुनः-पुनः इसी ज्योत्स्नामृतको अश्रुप्रवाहके छलसे वमन कर रहे हैं।' यह भी प्रेमरसका ही एक उदाहरण है।

गौड़ीय विद्वान् श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीने भी अपनी निकुंजविरुदावलिमें इसी प्रेमरसकी याचना की है—

श्रीकृष्णलीला हृदयं पुनातु मे
लीला च या प्रेमरसानुभाविनी।
रसश्च कान्तापरिशीलितोऽपि यः
कान्ता च या गोकुलयौवताग्रणी॥

(निकुंजविरुदावली)

'गोकुलयुवतीगणकी अग्रणी कान्ताशिरोमणी श्रीराधाके सहित श्रीकृष्णकी प्रेमरसमयी लीला हमलोगोंके चित्तको पवित्र करे।'

जगत्‌में इस परम पवित्र प्रेमरसका जितना अधिक प्रचार होगा, उतना ही जगत्‌का परम मंगल होगा, ऐसा मेरा सुदृढ़ विश्वास है।

षोडशनाम-महामन्त्रका 'राधामाधव' परक अर्थ

जो लोग केवल 'श्रीराधामाधव' नामका ही जप करना चाहते हैं, वे वही कर सकते हैं। यों तो 'हरे' 'कृष्ण' 'राम'—इनका भी अर्थ 'राधामाधवपरक' भी किया जाता है, अतएव राधा-माधव-भावसे भी षोडशनाम-महामन्त्र (हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥)**-का जप-कीर्तन हो सकता है। अर्थ यों है—**

'हरे'— हरति श्रीकृष्णमनः कृष्णाह्लादस्वरूपिणी। अतो हरेत्यनेनैव राधिका परिकीर्तिता॥

'जो श्रीकृष्णके मनको हरण करती हैं, वे 'हरा' हैं अर्थात् 'कृष्णमनोहरा' हैं। श्रीकृष्णाह्लाद-स्वरूपिणी वे श्रीराधिकाजी ही 'हरे' नामसे कही जाती हैं।'

'कृष्ण'—आनन्दैकसुखस्वामी श्यामः कमललोचनः। गोकुलानन्दनो नन्दः कृष्ण इत्यभिधीयते॥

'जो आनन्द एवं सुखके एकमात्र स्वामी हैं और जो गोकुलको आनन्द देनेवाले तथा स्वयं आनन्दरूप हैं, वे आनन्द-रस-लीला-विग्रह कमललोचन श्यामसुन्दर ही 'कृष्ण' नामसे कहे जाते हैं।'

'राम'—'रा' कारः श्रीमती राधा 'म' कारो मधुसूदनः। द्वयोर्विग्रहसंयोगाद् 'राम' नाम भवेत् किल॥

''रा' कार श्रीमती राधाका और 'म' कार मधुसूदन—कृष्णका वाचक है। इन दोनों स्वरूपोंके संयोगसे 'राम' नाम बनता है।'

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना
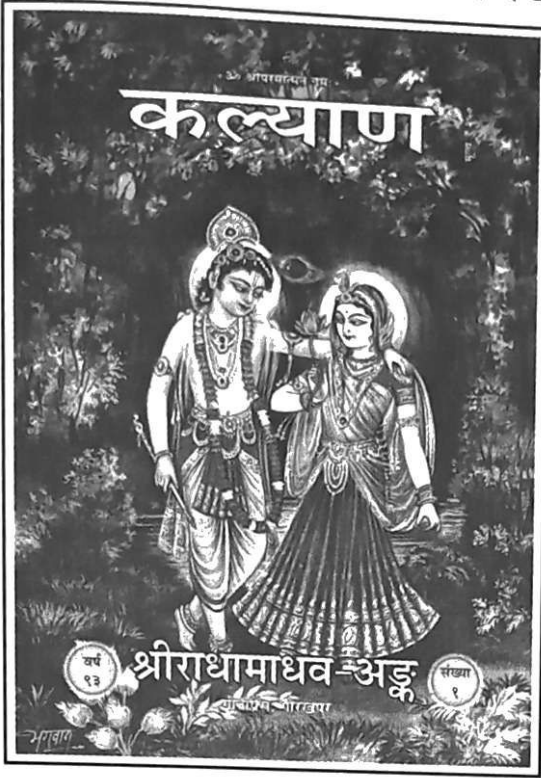
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

वसुदेवपुत्र, देवश्रेष्ठ, देवकी-आह्लादक, कंस-चाणूरका मर्दन करनेवाले जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णको प्रणति अर्पितकर श्रीराधा-माधवके मधुरातिमधुर चरितोंको प्रस्तुत करनेका प्रयास करते हैं।

भगवत्कृपासे इस वर्ष कल्याणका विशेषाङ्क **'श्रीराधामाधव-अङ्क'** पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है। कल्याणकी परम्परामें प्रतिवर्ष प्रकाशित विशेषांक तथा साधारण अंकोंमें यद्यपि भगवत्प्रेमसे सम्बन्धित चर्चा किसी-न-किसी रूपमें अवश्य होती रही है, परंतु सर्वांगीणरूपमें भगवत्प्रेमका दिग्दर्शन और उनके स्वरूपका निदर्शन 'श्रीराधा-माधव'के युगल स्वरूपमें हमें पूर्णरूपसे प्राप्त होता है।

वास्तवमें प्रेम भगवान्‌का साक्षात् स्वरूप है, जिसको विशुद्ध सच्चे प्रेमकी प्राप्ति हो गयी, उसने परमात्मा-प्रभुको प्राप्त कर लिया। श्रीराधा-माधव-भाव दिव्याति-दिव्य प्रेम-माधुर्य-सुधारसका अगाध, अनन्त, असीम महासमुद्र है। उसमें नित्य नयी-नयी अनन्त दिव्य अमृतमयी महातरंगें उठती रहती हैं। 'श्रीराधा' श्रीकृष्ण-स्वरूप हैं और 'श्रीकृष्ण'श्रीराधास्वरूप हैं। दोनों अनन्त कलाओंका साकाररूप हैं। ये दोनों स्वरूप शरीर और छायाके समान परस्पर भिन्न-अभिन्न हैं। वस्तुतः श्रीराधाके माधुर्यको केवल माधव जानते हैं और माधवके माधुर्यको केवल राधा जानती हैं। श्रीराधा-माधवका मधुरातिमधुर लीलारस-प्रवाह अनन्त रूपसे निरन्तर चलता रहता है। श्रीराधा-माधवकी निगूढ़ लीलाओंका—अन्तरंग लीलाओंका उन्हीं भक्तोंको दर्शन होता है, जो उनके विशेष अधिकारी हैं और जिनपर श्रीराधा-माधवकी विशेष कृपा होती है।

श्रीराधा-माधवकी कृपाका पूर्ण आश्रय लेकर भक्तोंकी इन्हीं सब माधुर्यपूर्ण रसधाराओंका परिकलनकर इस श्रीराधा-माधव विशेषांकको प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है। इसमें मुख्य रूपसे राधामाधवतत्त्व-विचार, श्रीराधा-माधवकी उपासनाके विविधरूप, भक्ति-जगत्‌के श्रीसर्वस्व श्रीराधामाधव, श्यामसुन्दर एवं श्रीराधाजीकी अन्तरंग एवं बाह्य लीला, लीलाके सहचर, वृन्दावन एवं मथुरा धाम तथा राधा-माधवके भक्तवृन्द आदि विषयोंका समावेश हुआ है।

'श्रीराधामाधव-अङ्क'के प्रकाशनका विचार तो बहुत पहलेसे मानस-पटलपर था, भक्तोंके सुझावके साथ पाठकोंका इस विषयपर अंक निकालनेका बार-बार आग्रह भी होता रहा है, किंतु बीचमें मूल पुराणोंके भाषानुवादके साथ प्रकाशनकी शृंखला चल रही थी, जिसमें विगत वर्षोंमें लिंगपुराण, श्रीमद्देवीभागवत तथा शिवपुराण आदि महापुराण विशेषांकके रूपमें प्रकाशित हुए, अब इस बार परमात्मप्रभुकी कृपासे **'श्रीराधामाधव-अङ्क'**के प्रकाशनकी विशेष प्रेरणा प्राप्त हुई है।

इस वर्ष 'श्रीराधामाधव' विशेषांकके लिये लेखक महानुभावोंने उत्साहपूर्वक जो सहयोग प्रदान किया है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। भगवत्कृपासे इतने लेख और

सामग्रियाँ प्राप्त हुईं कि उन सबको इस अंकमें समाहित करना सम्भव नहीं था, फिर भी विषयकी सर्वांगीणताको ध्यानमें रखते हुए अधिकतम सामग्रियोंका संयोजन करनेका विशेष प्रयत्न किया गया है।

कल्याणके आदिसम्पादक नित्यलीलालीन परमपूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार श्रीराधा-माधवके परम उपासक थे। उनका चिन्तन, मनन, ध्यान, निदिध्यासन—सब श्रीराधा-माधवपर केन्द्रित था। उन्हें राधा-माधव एवं गोपीप्रेमकी अन्तरंग लीलाओंकी अनुभूति एवं मानस-पटलपर दर्शन भी होते थे, जिसकी अभिव्यक्ति उनके द्वारा रचित साहित्यमें एवं पदोंमें प्रस्फुटित हुई है। इसके भी कुछ अंश यहाँ समायोजित हुए हैं। श्रीभाईजीके अन्तरंग गोलोकवासी श्रीराधाबाबाको भी श्रीराधा-माधवकी अन्तरंग लीलाओंका चिन्तन, मनन एवं दर्शन होता रहा है, उनके भावोंके भी कुछ अंश इसमें संकलित किये गये हैं।

उन लेखक महानुभावोंके हम अत्यधिक कृतज्ञ हैं, जिन्होंने कृपापूर्वक अपना अमूल्य समय लगाकर राधा-माधवसम्बन्धी सामग्रीको यहाँ प्रेषित करनेका कष्ट किया। हम उन सबकी सम्पूर्ण सामग्रीको इस विशेषाङ्कमें स्थान न दे सके, इसका हमें खेद है। इनमें से कुछ तो एक ही विषयपर अनेक लेख आनेसे न छप सके तथा कुछ अच्छे लेख विलम्बसे आये। इसके साथ ही कुछ लेख प्राचीन विद्वानोंके जो कल्याणके पुराने अंकोंमें प्रकाशित थे, उन्हें भी इसबार इसमें संकलित करनेका प्रयास किया गया। इन सब कारणोंसे स्थानाभावके कारण कई लेख नहीं दिये जा सके, यद्यपि इनमेंसे कुछ सामग्रीको आगेके साधारण अंकोंमें देनेका प्रयास अवश्य करेंगे।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्रहृदय संत-महात्माओंके श्रीचरणोंमें प्रणाम करते हैं, जिन्होंने विशेषांककी पूर्णतामें किंचित् भी योगदान किया है, भगवत्प्रेमके प्रचार-प्रसारमें वे ही निमित्त हैं; क्योंकि उन्हींकी सद्भावपूर्ण तथा उच्चविचारयुक्त भावनाओंसे 'कल्याण'को सदा शक्तिस्रोत प्राप्त होता रहता है। हम अपने विभागके तथा प्रेसके अपने उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको भी साधुवाद प्रदान करते हैं, जिनके स्नेहपूर्ण सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है। त्रुटियों एवं व्यवहारदोषके लिये हम आप सबसे क्षमा-प्रार्थी हैं।

वास्तवमें कल्याणका कार्य भगवान्का कार्य है। अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं, हम तो केवल निमित्तमात्र हैं। इस बार **'श्रीराधामाधव-अङ्क'**के सम्पादन कार्यके अन्तर्गत प्रेमास्पद प्रभुके सतत चिन्तन-मनन और सत्संगका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा, यह हमारे लिये विशेष महत्त्वकी बात रही। हमें आशा है कि इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहृदय प्रेमी-पाठकोंको भी यह सौभाग्य-लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

वास्तवमें श्रीराधा-माधवके चरण-कमलोंमें प्रेमकी सतत वृद्धिके लिये मन, वाणी और व्यवहारमें निष्काम भाव, अहिंसा, निरहंकारिता एवं अनन्यताका होना बहुत ही आवश्यक है। जहाँ स्वार्थ और अहंकार होता है, वहाँ प्रेम नहीं ठहर सकता। वस्तुतः भगवान्का वही प्रेमी और अनन्य भक्त है, जो सम्पूर्ण जगत्को साक्षात् राधा-माधवका स्वरूप समझकर सबके साथ प्रेम और समताका व्यवहार करता है।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये पुनः क्षमा-प्रार्थना करते हुए दीनवत्सल, अकारणकरुणावरुणालय प्रिया-प्रियतम राधा-माधव प्रभुसे यह प्रार्थना करते हैं, कि वे हमें तथा जगत्के सम्पूर्ण जीवोंको अपनी करुणाभरी कृपा प्रदान करें, जिससे सभी उन प्रेमास्पद प्रभुके प्रेमको प्राप्त करनेके अधिकारी बनकर जीवनके वास्तविक लक्ष्यको प्राप्त कर सकें।

—राधेश्याम खेमका

(सम्पादक)

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर-प्रकाशन

कोड

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-तत्त्व-विवेचनी—

- ■ 1 बृहदाकार
- ■ 2 ,, ग्रन्थाकार विशिष्ट संस्करण [बँगला, तमिल, ओड़िआ, कन्नड, अंग्रेजी, तेलुगु, गुजराती, मराठीमें भी]
- ■ 3 ,, साधारण संस्करण

गीता-साधक-संजीवनी—

- ■ 5 बृहदाकार, परिशिष्टसहित
- ■ 6 ,, ग्रन्थाकार, परिशिष्टसहित [मराठी, तमिल (दो खण्डोंमें), गुजराती, अंग्रेजी (दो खण्डोंमें), कन्नड (दो खण्डोंमें), बँगला, ओड़िआमें भी]
- ■ 8 **गीता-दर्पण**—(स्वामी श्रीरामसुखदासजीद्वारा) गीताके तत्त्वोंपर प्रकाश [मराठी, बँगला, ओड़िआमें भी]
- ■1562 **गीता-प्रबोधनी**—पुस्तकाकार [असमिया, बँगला, ओड़िआमें भी]
- ■1590 ,, पॉकेट, वि०सं०
- ■1796 **श्रीज्ञानेश्वरी**-हिन्दी भावानुवाद
- ■1958 **गीता-संग्रह**
- ■ 784 **ज्ञानेश्वरी गूढ़ार्थ-दीपिका** [मराठी]
- ■ 859 ,, मूल, मझला [मराठी]
- ■ 748 ,, मूल, गुटका [मराठी]
- ■ 10 **गीता-शांकर-भाष्य**
- ■ 581 **गीता-रामानुज-भाष्य**
- ■ 11 **गीता-चिन्तन**—(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गीता-विषयक लेखों, विचारों, पत्रों आदिका संग्रह)
- ■ 17 **गीता**—मूल, पदच्छेद, अन्वय, भाषा-टीका [गुजराती, बँगला, मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिलमें भी]

कोड

- ■1973 **गीता-पदच्छेद-अन्वय**—पॉकेट,वि०सं०
- ■ 16 **गीता**—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित, सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें (मराठी, गुजराती भी)
- ■1555 **गीता-माहात्म्य** (विशिष्ट सं०)
- ■ 19 **गीता**—केवल भाषा (तेलुगु, उर्दू, तमिलमें भी)
- ■ 18 **गीता**-भाषा-टीका, टिप्पणी-प्रधान विषय, मोटा टाइप [ओड़िआ, गुजराती, मराठी, मलयालममें भी]
- ■ 502 **गीता**-भाषा-टीका, (सजि०) [तेलुगु, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड़, तमिलमें भी]
- ■ 20 **गीता**-भाषा-टीका,पॉकेट साइज [अंग्रेजी, मराठी, बँगला, असमिया, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड, तेलुगु, तमिल, मलयालम भी]
- ■1566 **गीता**—भाषा-टीका, पॉकेट साइज, सजिल्द [गुजराती, बँगला, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]
- ■2025 **गीता**— हिन्दी, संस्कृत अजिल्द पाकेट
- ■ 21 **श्रीपञ्चरत्नगीता**—गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष (मोटे अक्षरोंमें) [ओड़िआमें भी]
- ■1628 ,, **(नित्यस्तुति एवं गजल-गीतासहित)** पॉकेट साइज
- ■ 22 **गीता**—मूल, मोटे अक्षरोंवाली [तेलुगु, गुजरातीमें भी]
- ■ 23 **गीता**—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित [कन्नड, तेलुगु, तमिल, मलयालम, ओड़िआमें भी]
- ■1602 **गीता**—भाषा-टीका सजिल्द (वि०सं०)—लघु आकार

कोड

- ■ 700 **गीता**—मूल, लघु आकार (ओड़िआ, बँगला, तेलुगुमें भी)
- ■1392 **गीता ताबीजी**—(सजिल्द) [गुजराती, बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी]
- ■ 566 **गीता**—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (१०० प्रति एक साथ)
- ▲ 388 **गीता-माधुर्य**-सरल प्रश्नोत्तर-शैलीमें (हिन्दी) [तमिल, मराठी, गुजराती, तेलुगु, नेपाली, बँगला, असमिया, कन्नड़, ओड़िआ, अंग्रेजीमें भी]
- ■1242 **पाण्डवगीता एवं हंसगीता**
- ■1431 **गीता-दैनन्दिनी**-पुस्तकाकार, वि०सं० (बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी)
- ■ 503 **गीता-दैनन्दिनी**—रोमन, पुस्तकाकार, प्लास्टिक जिल्द
- ■ 506 **गीता-दैनन्दिनी**-पाकेट
- ▲ 464 **गीता-ज्ञान-प्रवेशिका**
- ■2042 **गीता व्याकरण**—सजिल्द
- ■2099 **सरल गीता**—दो रंगोंमें (गुजराती, नेपाली, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजीमें भी

रामायण

- ■1389 **श्रीरामचरितमानस**—बृहदाकार (विशिष्ट संस्करण)
- ■ 80 ,, बृहदाकार (सामान्य संस्करण)
- ■1095 **श्रीरामचरितमानस**—ग्रन्थाकार (वि०सं०) [गुजरातीमें भी]
- ■ 81 ,, ग्रन्थाकार सचित्र, सटीक, मोटा टाइप, [ओड़िआ, बँगला, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी, नेपालीमें भी]
- ■1402 ,, सटीक, ग्रंथाकार
- ■2166 ,, सटीक, ग्रंथाकार (सामान्य संस्करण)

कोड

- ■ 790 **श्रीरामचरितमानस**—केवल हिन्दी, अनुवाद
- ■1563 ,, मझला, सटीक, वि० सं०
- ■ 82 ,, मझला साइज, सटीक सजिल्द [गुजराती, अंग्रेजी भी]
- ■1318 ,, रोमन, ग्रन्थाकार
- ■1617 ,, ,, मझला
- ■ 456 ,, अंग्रेजी अनुवादसहित
- ■1436 ,, मूलपाठ बृहदाकार
- ■ 83 ,, मूलपाठ, ग्रंथाकार [गुजराती, ओड़िआ भी]
- ■ 84 ,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी]
- ■ 85 ,, मूल, गुटका [,,]
- ■1544 ,, मूल गुटका (वि०सं०)

[श्रीरामचरितमानस—अलग-अलग काण्ड (सटीक)]

- ■ 94 **श्रीरामचरितमानस**-बालकाण्ड
- ■ 95 ,, अयोध्याकाण्ड
- ■ 98 ,, सुन्दरकाण्ड [कन्नड, तेलुगु, बँगला भी]
- ■1349 ,, सुन्दरकाण्ड सटीक मोटा टाइप (लाल अक्षरोंमें) (श्रीहनुमानचालीसासहित) [गुजरातीमें भी]
- ■ 101 ,, लंकाकाण्ड
- ■ 102 ,, उत्तरकाण्ड
- ■ 141 ,, अरण्य, किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड
- ■2107 ,, किष्किन्धाकाण्ड-सटीक, पॉकेट
- ■1583 ,, सुन्दरकाण्ड, (मूल) मोटा (आड़ी) रंगीन
- ■1919 ,, ,, रंगीन (वि० सं०)
- ■2130 ,, ,, सचित्र, मोटा टाइप
- ■ 99 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, गुटका [गुजराती भी]

☛ **भारतमें डाकखर्च, पैकिंग तथा फारवर्डिंगकी देय राशि:—**

साधारण डाकसे → भेजनेमें १०० ग्रामपर ₹१ एवं १०० ग्रामसे ऊपर प्रत्येक १०० ग्रामके लिये ₹१ अतिरिक्त। **रजिस्ट्रीके लिये** → ₹१७ अतिरिक्त। **वी०पी०पी०से** → मँगानेपर ₹२० से कम पर ₹४.५०, ₹२० से ऊपर ₹५० से नीचे ₹५.५०, ₹५० पर ₹२२ इसके अतिरिक्त प्रति १०० ग्रामके लिए ₹१ देय होगा। (साधारण डाक, रजिस्ट्री एवं वी०पी०पी० तीनों पैकेट का अधिकतम वजन ५ किलो) उपरोक्तके अतिरिक्त अनुमानित पैंकिंग खर्च पुस्तकोंके मूल्यका ५% देय होगा।

☛ पुस्तकोंके मूल्य एवं डाकदरमें परिवर्तन होनेपर परिवर्तित मूल्य/ डाकदर देय होगा।

☛ पुस्तक-विक्रेताओंके नियमोंकी पुस्तिका अलग है। विदेशोंमें निर्यातके अलग नियम हैं।

☛ ₹२००० से अधिककी पुस्तकें एक साथ लेनेपर १८% छूट (▲चिह्नवाली पुस्तकोंपर ३०%) छूट देय। (पैकिंग, रेल-भाड़ा आदि अतिरिक्त) स्टेशन-स्टाल एवं फुटकर पुस्तक-दूकानोंपर डिस्काउण्ट या अन्य कोई छूट देय नहीं है।

☛ जिन पुस्तकोंका मूल्य नहीं दर्शाया गया है वे पुनर्मुद्रणकी प्रक्रियामें हैं।

☛ गीताप्रेसके अनेक प्रकाशन gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कोड

■ 100 **श्रीरामचरितमानस**- सुन्दरकाण्ड मूल, मोटा टाइप [गुजराती, ओड़िआ, नेपाली भी]
■ 858 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, लघु आकार [गुजराती भी]
■1710 ,, किष्किन्धाकाण्ड

■ 86 **मानसपीयूष**- (श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार— श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड)
(अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)

■1907 **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण**— बृहदाकार, भाषा
■ 75, 76 **श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण**—सटीक, दो खण्डोंमें सेट [कन्नड़, गुजराती, तेलुगु भी]
■ 77 ,, —केवल भाषा
■ 583 ,, (मूलमात्रम्)
■1953 ,, सुन्दरकाण्ड—पुस्तकाकार मूलमात्रम् [तमिल भी]
■ 78 **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड**-मूल,गुटका
■1549 **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड**-सटीक [तमिल भी]
■ 452, 453 **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण** (अंग्रेजी अनुवादसहित दो खण्डोंमें सेट)
■1291 **श्रीमद्वाल्मीकिय रामायण कथा सुधा सागर**
■ 74 **अध्यात्मरामायण**—सटीक [तमिल, तेलुगु, कन्नड, मराठी भी]
■ 223 **मूल रामायण** [गुजराती, मराठी भी]
▲1654 **लवकुश-चरित्र**
▲ 401 **मानसमें नाम-वन्दना**
■ 103 **मानस-रहस्य**
■ 104 **मानस-शंका-समाधान**

अन्य तुलसीकृत साहित्य

■ 105 **विनयपत्रिका**—सरल भावार्थसहित
■1701 **विनयपत्रिका**, सजिल्द
■ 106 **गीतावली**—भावार्थसहित
■ 107 **दोहावली**— ,,
■ 108 **कवितावली**— ,,
■ 109 **रामाज्ञाप्रश्न**—भावार्थसहित
■ 110 **श्रीकृष्णगीतावली** ,,
■ 111 **जानकीमंगल**— ,,
■ 112 **हनुमानबाहुक**— ,,
■ 113 **पार्वतीमंगल**— ,,
■ 114 **वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण**

सूर-साहित्य

■ 555 **श्रीकृष्णमाधुरी**
■ 61 **सूर-विनय-पत्रिका**
■ 62 **श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी**
■ 735 **सूर-रामचरितावली**
■ 547 **विरह-पदावली**
■ 864 **अनुराग-पदावली**

पुराण, उपनिषद् आदि

■1930 **श्रीमद्भागवत-सुधासागर** (कन्नड़, तेलुगु, मराठी, गुजराती भी)
■1945 ,, (विशिष्ट संस्करण)
■ 25 **श्रीशुकसुधासागर**— बृहदाकार, बड़े टाइपमें
■1951 **श्रीमद्भागवतमहापुराण**-सटीक
■1952 बेड़िआ-दो खण्डोंमें सेट
■ 26, 27 **श्रीमद्भागवतमहापुराण**—सटीक, दो खण्डोंमें सेट [अंग्रेजी, तेलुगु, तमिल, ओड़िआ, गुजराती, मराठी, बँगला भी]
■ 564, 565 **श्रीमद्भागवतमहापुराण**—अंग्रेजी सेट दो खण्डोंमें
■ 29 ,,मूल मोटा टाइप [तेलुगु भी]
■ 124 ,, मूल मझला
■1855 ,, मूल गुटका-वि०सं०
■2009 **भागवत नवनीत** (संत श्रीडोगरेंजी महाराज) [गुजराती भी]
■ 571 **श्रीकृष्णलीलाचिन्तन**
■ 30 **श्रीप्रेम-सुधासागर**
■ 31 **भागवत एकादश स्कन्ध**
■1927 **जीवन-संजीवनी**

■ 728 **महाभारत**—हिन्दी टीकासहित, सजिल्द, सचित्र [छः खण्डोंमें] सेट
(अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)

■ 38 **महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण**—सटीक
■1589 ,, केवल हिन्दी [गुजराती भी]
■39, 511 **संक्षिप्त महाभारत**—केवल भाषा, सचित्र, सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें) [बँगला, गुजराती, तेलुगु भी]
■ 44 **संक्षिप्त पद्मपुराण**— सचित्र, सजिल्द [गुजराती भी]

■2020 **शिवमहापुराण मूलमात्रम्**
■1468 **सं० शिवपुराण** (वि० सं०)
■ 789 **सं० शिवपुराण**—मोटा टाइप [बँगला, तेलुगु, कन्नड़, तमिल, गुजराती भी]
■1133 **सं० देवीभागवत** [गुजराती, कन्नड़, तेलुगु भी]
■1770 **श्रीमद्देवीभागवत-मूल**

■ 48 **श्रीविष्णुपुराण**-सटीक [बँगला, गुजराती भी]

■1364 **श्रीविष्णुपुराण** (केवल हिन्दी)
■1183 **सं० नारदपुराण**
■ 279 **सं० स्कन्दपुराणाङ्क** [गुजराती भी]
■ 539 **सं.मार्कण्डेयपुराण** [गुजराती, तेलुगु भी]
■1111 **सं० ब्रह्मपुराण** [गुजराती भी]
■1113 **नरसिंहपुराणम्**—सटीक
■1189 **सं० गरुडपुराण** [गुजराती भी]
■1362 **अग्निपुराण** (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)
■1432 **वामनपुराण**—सटीक
■1985 **लिङ्गमहापुराण**—सटीक
■1897 **देवीभागवतमहापुराण**— सटीक, प्रथम खण्ड
■1898 **देवीभागवतमहापुराण**— सटीक, द्वितीय खण्ड
■ 557 **मत्स्यमहापुराण**—सटीक
■1610 **महाभागवत देवीपुराण**
■1361 **सं० श्रीवराहपुराण**
■ 584 **सं० भविष्यपुराण** [गुजराती भी]
■1131 **कूर्मपुराण**—सटीक
■ 631 **सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण** [गुजराती भी]
■ 47 **पातञ्जलयोग-प्रदीप**
■ 135 **पातञ्जलयोगदर्शन** [बँगला भी]
■ 517 **गर्गसंहिता**
■ 582 **छान्दोग्योपनिषद्** सानुवाद शांकरभाष्य
■ 577 **बृहदारण्यकोपनिषद्**—(,,)
■ 1421 **ईशादि नौ उपनिषद्**- (,,) एक ही जिल्दमें

■ 66 **ईशादि नौ उपनिषद्**— अन्वय-हिन्दी व्याख्या [बँगला भी]

■ 67 **ईशावास्योपनिषद्**-सानुवाद, शांकरभाष्य [तेलुगु, कन्नड भी]
■ 68 **केनोपनिषद्**-सानुवाद, शांकरभाष्य
■ 578 **कठोपनिषद्**— ,,
■ 69 **माण्डूक्योपनिषद्**— ,,
■ 513 **मुण्डकोपनिषद्**— ,,
■ 70 **प्रश्नोपनिषद्**— ,,
■ 71 **तैत्तिरीयोपनिषद्**— ,,
■ 72 **ऐतरेयोपनिषद्**— ,,
■ 73 **श्वेताश्वतरोपनिषद्**- ,,
■ 65 **वेदान्त-दर्शन**—हिन्दी व्याख्या-सहित, सजिल्द

भक्त-चरित्र

■2066 **श्रीभक्तमाल**
■ 40 **भक्त चरिताङ्क**-सचित्र, सजिल्द
■1771 **जैमिनीकृतमहाभारतमें भक्तोंकी गाथा**-सजिल्द
■ 51 **श्रीतुकाराम-चरित**

■ 121 **एकनाथ-चरित्र**
■ 53 **भागवतरत्न प्रह्लाद**
■ 123 **चैतन्य-चरितावली**
■ 751 **देवर्षि नारद**
■ 168 **भक्त नरसिंह मेहता** [मराठी, गुजराती भी]
■ 169 **भक्त बालक**-गोविन्द, मोहन आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड, मराठी भी]
■ 170 **भक्त नारी**— मीरा, शबरी आदिकी गाथा
■ 171 **भक्त पञ्चरत्न**—रघुनाथ, दामोदर आदिकी [तेलुगु भी]
■ 172 **आदर्श भक्त**—शिबि, रन्तिदेव आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड भी]
■ 175 **भक्त-कुसुम**—जगन्नाथ आदि छः भक्तगाथा
■ 173 **भक्त सप्तरत्न**-दामा, रघु आदिकी भक्तगाथा [गुजराती, कन्नड भी]
■ 174 **भक्त चन्द्रिका**—सखू, विट्ठल आदि छः भक्तगाथा [गुजराती, कन्नड, तेलुगु, मराठी, ओड़िआ भी]
■ 176 **प्रेमी भक्त**-बिल्वमंगल, जयदेव आदि [गुजराती भी]
■ 177 **प्राचीन भक्त**— मार्कण्डेय, उत्तंक आदि
■ 178 **भक्त सरोज**—गंगाधरदास, श्रीधर आदि [गुजराती भी]
■ 179 **भक्त सुमन**—नामदेव, राँका-बाँका आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]
■ 180 **भक्त सौरभ**—व्यासदास, प्रयागदास आदि
■ 181 **भक्त सुधाकर**—रामचन्द्र, लाखा आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]
■ 182 **भक्त महिलारत्न**—रानी रत्नावती, हरदेवी आदि [गुजराती भी]
■ 186 **सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र** [ओड़िआ, अंग्रेजी भी]
■ 183 **भक्त दिवाकर**—सुव्रत, वैश्वानर आदिकी भक्तगाथा
■ 184 **भक्त रत्नाकर**—माधवदास, विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा
■ 185 **भक्तराज हनुमान्**—हनुमान्‌जीका जीवनचरित्र [मराठी, अंग्रेजी, ओड़िआ, तमिल, तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी]
■ 187 **प्रेमी भक्त उद्धव** [तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ भी]

कोड

■ 188 **महात्मा विदुर** [गुजराती, तमिल, ओड़िआ भी]
■ 136 **विदुरनीति**—[नेपाली, अंग्रेजी, कन्नड़, तमिल, तेलुगु भी]
■ 138 **भीष्मपितामह** [तेलुगु भी]
■ 189 **भक्तराज ध्रुव** [तेलुगु भी]

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

■683 **तत्त्वचिन्तामणि** [गुजराती भी] (सभी खण्ड एक साथ)
■814 **साधन-कल्पतरु** (१३ महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)

▲2117 प्रेमके वशमें भगवान्
▲1876 एक महापुरुषके अनुभवकी बातें
▲2027 भगवत्प्राप्तिकी अमूल्य बातें
▲1944 परम सेवा
▲1597 चिन्ता-शोक कैसे मिटें ?
▲1631 भगवान् कैसे मिलें ?
▲1653 मनुष्य-जीवनका उद्देश्य
▲1681 भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं
▲1747 भगवत्प्राप्ति कैसे हो ?
▲1666 कल्याण कैसे हो ?
▲ 527 **प्रेमयोगका तत्त्व** [अंग्रेजी भी]
▲ 242 **महत्त्वपूर्ण शिक्षा**—[तेलुगु भी]
▲ 528 **ज्ञानयोगका तत्त्व** [अंग्रेजी भी]
▲ 266 **कर्मयोगका तत्त्व-I** (गुजराती भी)
▲ 267 **कर्मयोगका तत्त्व**—(भाग-२)
▲ 303 **प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय** [तमिल, गुजराती भी]
▲ 298 **भगवान्‌के स्वभावका रहस्य** [तमिल, गुजराती, मराठी भी]
▲ 243 **परम साधन**—भाग-१
▲ 244 ,, ,, —भाग-२
▲ 245 **आत्मोद्धारके साधन** (भाग-१)
▲ 335 **अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति**—(आत्मोद्धारके साधन भाग-२) [गुजराती भी]
▲ 579 **अमूल्य समयका सदुपयोग** [तेलुगु, गुजराती, मराठी, कन्नड़, ओड़िआ भी]
▲ 246 **मनुष्यका परम कर्तव्य** (भाग-१)
▲ 247 ,, ,, (भाग-२)
▲ 611 **इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति**
▲ 588 **अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति**
▲1015 **भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता**
▲1923 **भगवत्प्राप्तिके सुगम साधन**
▲1974 **व्यवहार सुधार और परमार्थ**
▲1296 **कर्णवासका सत्संग**
▲ 248 **कल्याणप्राप्तिके उपाय**-

कोड

(त०चि०म०भा०१) [बँगला भी]
▲ 249 **शीघ्र कल्याणके सोपान**-भाग-२, खण्ड-१ [गुजराती भी]
▲ 250 **ईश्वर और संसार**—भाग-२, (खण्ड-२)
▲1900 **निष्कामभावसे भगवत्प्राप्ति**
▲ 519 **अमूल्य शिक्षा**-भाग-३, (खण्ड-१)
▲ 253 **धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि**—भाग-३, (खण्ड-२)
▲ 251 **अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि**-भाग-४, (खण्ड-१)
▲ 252 **भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा**-भाग-४ (खण्ड-२)
▲ 254 **व्यवहारमें परमार्थकी कला**—त० चि० भाग-५,(खण्ड-१) [गुजराती भी]
▲ 255 **श्रद्धा-विश्वास और प्रेम**-गुजराती, भाग-५, (खण्ड-२) [गुजराती भी]
▲ 258 **तत्त्वचिन्तामणि**—भाग-६, (खण्ड-१)
▲ 257 **परमानन्दकी खेती**—भाग-६, (खण्ड-२)
▲ 260 **समता अमृत और विषमता विष**-भाग-७, (खण्ड-१)
▲ 259 **भक्ति-भक्त-भगवान्**-भाग-७, (खण्ड-२)
▲ 256 **आत्मोद्धारके सरल उपाय**
▲261 **भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान** [मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]
▲ 262 **रामायणके कुछ आदर्श पात्र** [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, ओड़िआ, नेपाली, तमिल, मराठी भी]
▲ 263 **महाभारतके कुछ आदर्श पात्र** [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड़, गुजराती, तमिल, मराठी भी]
▲ 264 **मनुष्य-जीवनकी सफलता**—भाग—१
▲ 265 **मनुष्य-जीवनकी सफलता**—भाग—२
▲ 268 **परमशान्तिका मार्ग**—भाग-१(गुजराती भी)
▲ 269 **परमशान्तिका मार्ग**-(भाग-२)
▲1792 **शान्तिका उपाय**
▲ 543 **परमार्थ-सूत्र-संग्रह** [ओड़िआ भी]
▲1530 **आनन्द कैसे मिले ?**
▲1837 **अनन्यभक्ति कैसे प्राप्त हो ?**
▲ 769 **साधन नवनीत** [गुजराती, ओड़िआ, कन्नड भी]

कोड

▲ 599 **हमारा आश्चर्य**
▲ 681 **रहस्यमय प्रवचन**
▲1021 **आध्यात्मिक प्रवचन** [गुजराती भी]
▲1324 **अमृत वचन** [बँगला भी]
▲1409 **भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय**
▲1433 **साधना पथ**
▲1483 **भगवत्पथ-दर्शन**
▲1493 **नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें**
▲1435 **आत्मकल्याणके विविध उपाय**
▲1529 **सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो ?**
▲1561 **दुःखोंका नाश कैसे हो ?**
▲1587 **जीवन-सुधारकी बातें**
▲1022 **निष्काम श्रद्धा और प्रेम** [ओड़िआ भी]
▲ 292 **नवधा भक्ति** [तेलुगु, मराठी, कन्नड भी]
▲ 274 **महत्त्वपूर्ण चेतावनी**
▲1871 **आवागमनसे मुक्ति**
▲ 273 **नल-दमयन्ती** [मराठी, तमिल, कन्नड, अंग्रेजी, बँगला, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी]
▲ 277 **उद्धार कैसे हो ?**—५१ पत्रोंका संग्रह [गुजराती, ओड़िआ, मराठी भी]
▲1856 **महात्माओंकी अहैतुकी दया**
▲1860 **भगवत्प्राप्तिकी युक्तियाँ**
▲1874 **महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी बातें**
▲1790 **जन्म-मरणसे छुटकारा**
▲ 278 **सच्ची सलाह**-८० पत्रोंका संग्रह
▲ 280 **साधनोपयोगी पत्र**
▲ 281 **शिक्षाप्रद पत्र**
▲ 282 **पारमार्थिक पत्र**
▲ 284 **अध्यात्मविषयक पत्र**
▲ 283 **शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ** [अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, मराठी, तेलुगु, ओड़िआ भी]
▲1120 **सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें**
▲ 680 **उपदेशप्रद कहानियाँ** [अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड, तेलुगु भी]
▲ 891 **प्रेममें विलक्षण एकता** [मराठी, गुजराती भी]
▲ 958 **मेरा अनुभव** [गुजराती, मराठी भी]
▲1283 **सत्संगकी मार्मिक बातें** [गुजराती भी]
▲1150 **साधनकी आवश्यकता** [मराठी भी]
▲1908 **प्रतिकूलतामें प्रसन्नता**
▲ 320 **वास्तविक त्याग**
▲1791 **त्यागकी महिमा**

कोड

▲ 285 **आदर्श भ्रातृप्रेम** [ओड़िआ भी]
▲ 286 **बालशिक्षा** [तेलुगु, कन्नड, ओडिआ, गुजराती भी]
▲ 287 **बालकोंके कर्तव्य** [ओड़िआ भी]
▲ 272 **स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा** [कन्नड, गुजराती भी]
▲ 290 **आदर्श नारी सुशीला** [बँगला, तेलुगु, तमिल, अंग्रेजी, ओड़िआ, गुजराती, मराठी भी]
▲ 291 **आदर्श देवियाँ** [ओड़िआ,अंग्रेजी भी]
▲ 300 **नारीधर्म**
▲ 293 **सच्चा सुख और.......** [गुजराती भी]
▲ 294 **संत-महिमा** [गुजराती, ओड़िआ भी]
▲ 295 **सत्संगकी कुछ सार बातें** [बँगला, तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी]
▲ 301 **भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म**
▲ 310 **सावित्री और सत्यवान्** [गुजराती, तमिल, तेलुगु, अंग्रेजी, बँगला, ओड़िआ, कन्नड, मराठी भी]
▲ 623 **धर्मके नामपर पाप** (गुजराती भी)
▲ 299 **श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश—ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप** [तेलुगु व अंग्रेजी भी]
▲ 304 **गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति**—गजल-गीतासहित [गुजराती, असमिया, बँगला, तमिल, मराठी भी]
▲ 297 **गीतोक्त संन्यास तथा निष्काम कर्मयोगका स्वरूप**
▲ 309 **भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय** [ओड़िआ भी]
▲ 311 **परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य** [ओड़िआ भी]
▲ 271 **भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो ?**
▲ 306 **धर्म क्या है ? भगवान् क्या हैं ?** [गुजराती, ओड़िआ व अंग्रेजी भी]
▲ 307 **भगवान्‌की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण)** [ओड़िआ, कन्नड, गुजराती भी]
▲ 316 **ईश्वर-साक्षात्कारके लिये और सत्यकी शरणसे मुक्ति**
▲ 314 **व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य** [गुजराती, मराठी भी]
■2058 **श्रीसेठजीके अन्तिम अमृतोपदेश** स्टीकर (१०० पन्नोंका पैकेटमें)

कोड

▲ 315 चेतावनी और सामयिक चेतावनी [गुजराती भी]
▲ 318 ईश्वर दयालु और न्यायकारी है और अवतारका सिद्धान्त [गुजराती, तेलुगु भी]
▲ 270 भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द एवं महात्मा किसे कहते हैं? (तेलुगु भी)
▲ 302 ध्यान और मानसिक पूजा [गुजराती भी]
▲ 326 प्रेमका सच्चा स्वरूप और शोकनाशके उपाय [ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी]

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

■ 820 भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार) सभी खण्ड एक साथ
■ 050 पदरत्नाकर
■ 049 श्रीराधा-माधव-चिन्तन
▲ 058 अमृत-कण
▲ 332 ईश्वरकी सत्ता और महत्ता
▲ 333 सुख-शान्तिका मार्ग
▲ 343 मधुर
▲ 056 मानव-जीवनका लक्ष्य
▲ 331 सुखी बननेके उपाय
▲ 334 व्यवहार और परमार्थ
▲ 514 दुःखमें भगवत्कृपा
▲ 386 सत्संग-सुधा
▲ 342 संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल [तमिल भी, तीन भागमें]
▲ 347 तुलसीदल
▲ 339 सत्संगके बिखरे मोती
▲ 349 भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति
▲ 350 साधकोंका सहारा
▲ 351 भगवच्चर्चा—(भाग-५)
▲ 352 पूर्ण समर्पण
▲ 353 लोक-परलोक-सुधार-I
▲ 354 आनन्दका स्वरूप
▲ 355 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
▲ 356 शान्ति कैसे मिले?
▲ 357 दुःख क्यों होते हैं?
▲ 348 नैवेद्य
▲ 337 दाम्पत्य-जीवनका आदर्श [गुजराती, तेलुगु भी]
▲ 336 नारीशिक्षा [गुजराती, कन्नड़ भी]
▲ 340 श्रीरामचिन्तन
▲ 338 श्रीभगवन्नाम-चिन्तन
▲ 345 भवरोगकी रामबाण दवा [ओड़िआ भी]
▲ 341 प्रेमदर्शन [तेलुगु, मराठी भी]

कोड

▲ 366 मानव-धर्म
▲ 358 कल्याण-कुंज (क० कुं० भाग-१)
▲ 359 भगवान्‌की पूजाके पुष्प—(क० कुं० भाग-२)
▲ 360 भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (क० कुं० भाग-३)
▲ 361 मानव-कल्याणके साधन (क० कुं० भाग-४)
▲ 362 दिव्य सुखकी सरिता—(क० कुं० भाग-५) [गुजराती भी]
▲ 363 सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ-(क० कुं० भाग-६)
▲ 364 परमार्थकी मन्दाकिनी—(क० कुं० भाग-७)
▲ 346 सुखी बनो
▲ 526 महाभाव-कल्लोलिनी
▲ 367 दैनिक कल्याण-सूत्र
▲ 369 गोपीप्रेम [अंग्रेजी भी]
▲ 370 श्रीभगवन्नाम [ओड़िआ भी]
▲ 368 प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष [ओड़िआ भी]
▲ 373 कल्याणकारी आचरण
▲ 374 साधन-पथ—सचित्र [गुजराती, तमिल भी]
▲ 375 वर्तमान शिक्षा
▲ 376 स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी
▲ 377 मनको वश करनेके कुछ उपाय [गुजराती भी]
▲ 378 आनन्दकी लहरें [बँगला, ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी]
▲ 379 गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य
▲ 381 दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य
▲ 382 सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन
▲ 344 उपनिषदोंके चौदह रत्न (नेपाली भी)
▲ 371 राधा-माधव-रससुधा-(षोडशगीत) सटीक
▲ 384 विवाहमें दहेज
▲ 809 दिव्य संदेश एवं मनुष्य सर्वप्रिय और जीवन कैसे बनें?

परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजीके कल्याणकारी साहित्य

■ 465 साधन-सुधा-सिन्धु [ओड़िआ, गुजराती भी]
▲1675 सागरके मोती
▲1598 सत्संगके फूल
▲1733 संत-समागम

कोड

▲1633 एक संतकी वसीयत [बँगला भी]
▲ 400 कल्याण-पथ
▲ 401 मानसमें नाम-वन्दना
▲ 605 जित देखूँ तित-तू [गुजराती, मराठी भी]
▲ 406 भगवत्प्राप्ति सहज है [अंग्रेजी भी]
▲ 535 सुन्दर समाजका निर्माण
▲1485 ज्ञानके दीप जले
▲1447 मानवमात्रके कल्याणके लिये (मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती, अंग्रेजी, नेपाली भी)
▲1175 प्रश्नोत्तर मणिमाला [बँगला, नेपाली, ओड़िआ, गुजराती भी]
▲1247 मेरे तो गिरधर गोपाल
▲ 403 जीवनका कर्तव्य [गुजराती भी]
▲ 436 कल्याणकारी प्रवचन [गुजराती, अंग्रेजी, बँगला, ओड़िआ भी]
▲ 821 किसान और गाय [तेलुगु भी]
▲1093 आदर्श कहानियाँ [ओड़िआ, बँगला भी]
▲ 407 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता [कन्नड, मराठी भी]
▲ 408 भगवान्‌से अपनापन [गुजराती, ओड़िआ भी]
▲ 861 सत्संग-मुक्ताहार [,,]
▲ 405 नित्ययोगकी प्राप्ति [ओड़िआ भी]
▲ 409 वास्तविक सुख [तमिल, ओड़िआ भी]
▲1308 प्रेरक कहानियाँ [बँगला, ओड़िआ भी]
▲1408 सब साधनोंका सार [बँगला भी]
▲ 411 साधन और साध्य [मराठी, बँगला, गुजराती भी]
▲ 412 तात्त्विक प्रवचन [मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती भी]
▲ 410 जीवनोपयोगी प्रवचन [अंग्रेजी भी]
▲ 414 तत्त्वज्ञान कैसे हो? एवं मुक्तिमें सबका समान अधिकार [बँगला, गुजराती भी]
▲ 822 अमृत-बिन्दु [बँगला, तमिल, ओड़िआ, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, कन्नड भी]
▲ 417 भगवन्नाम [मराठी, अंग्रेजी भी]
▲ 416 जीवनका सत्य [गुजराती, अंग्रेजी भी]
▲ 418 साधकोंके प्रति [बँगला, मराठी भी]
▲ 419 सत्संगकी विलक्षणता [गुजराती भी]

कोड

▲ 545 जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग [गुजराती भी]
♦ 420 मातृशक्तिका घोर अपमान [तमिल, बँगला, मराठी, गुजराती, ओड़िआ भी]
♦ 421 जिन खोजा तिन पाइयाँ [बँगला भी]
▲ 422 कर्मरहस्य [बँगला, तमिल, कन्नड, ओड़िआ भी]
▲ 424 वासुदेवः सर्वम् [मराठी, अंग्रेजी भी]
▲ 425 अच्छे बनो [अंग्रेजी, नेपाली भी]
▲ 426 सत्संगका प्रसाद [गुजराती भी]
▲1019 सत्यकी खोज [गुजराती, अंग्रेजी भी]
▲1479 साधनके दो प्रधान सूत्र [ओड़िआ, बँगला भी]
▲1035 सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण
▲1360 तू-ही-तू
▲1434 एक नयी बात
▲1440 परम पितासे प्रार्थना
▲1441 संसारका असर कैसे छूटे?
▲1176 शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता और..[बँगला भी]
▲ 431 स्वाधीन कैसे बनें? [अंग्रेजी भी]
▲ 702 यह विकास है या विनाश जरा सोचिये?
▲ 589 भगवान् और उनकी भक्ति [गुजराती, ओड़िआ भी]
▲ 617 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम [तमिल, बँगला, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, गुजराती, मराठी भी]
▲ 770 अमरताकी ओर [गुजराती भी]
▲ 445 हम ईश्वरको क्यों मानें? [बँगला भी]
▲ 745 भगवत्तत्त्व [गुजराती भी]
▲ 432 एकै साधे सब सधै [गुजराती, तमिल, तेलुगु भी]
▲ 434 शरणागति [तमिल, ओड़िआ, असमिया, नेपाली, तेलुगु, कन्नड़ भी]
▲ 427 गृहस्थमें कैसे रहें? [बँगला, मराठी, कन्नड, ओड़िआ, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु, गुजराती, असमिया, पंजाबी भी]
▲ 433 सहज साधना [गुजराती, बँगला, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी]
▲ 435 आवश्यक शिक्षा (सन्तानका कर्तव्य एवं आहारशुद्धि) [गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी, मराठी भी]

कोड

■1037 हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं स्टीकर(१०० पन्नोंका पैकेटमें)
■1012 पञ्चामृत स्टीकर
■1611 मैं भगवान्‌का अंश हूँ ,, ,,
■1612 सच्ची और पक्की बात ,, ,,
▲1072 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं? [गुजराती, ओड़िआ भी]
▲ 515 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन [गुजराती, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु भी]
▲ 438 दुर्गतिसे बचो [गुजराती, बँगला (गुरुतत्त्वसहित), मराठी भी]
▲ 439 महापापसे बचो [बँगला, तेलुगु, कन्नड, गुजराती, तमिल भी]
▲ 440 सच्चा गुरु कौन? [ओड़िआ भी]
▲ 444 नित्य-स्तुति और प्रार्थना [कन्नड़, तेलुगु भी]
▲ 729 सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण [गुजराती भी]
▲ 447 मूर्तिपूजा-नाम-जपकी महिमा [ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती भी]
▲ 632 सब जग ईश्वररूप है [ओड़िआ, गुजराती भी]

नित्य पाठ-साधन-भजन एवं कर्मकाण्ड-हेतु

■1593 अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश
■1928 त्रिपिण्डी श्राद्ध पद्धति
■1809 गया श्राद्ध पद्धति
■1895 जीवच्छ्राद्धपद्धति
■ 592 नित्यकर्म-पूजाप्रकाश [गुजराती, तेलुगु, नेपाली भी]
■1416 गरुडपुराण-सारोद्धार (सानुवाद)
■1627 रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद
■1417 शिवस्तोत्ररत्नाकर
■2024 गणेशस्तोत्ररत्नाकर
■1954 शिवस्मरण
■2127 शिव आराधना [पॉकेट साइज, बेड़िआ]
■1774 देवीस्तोत्ररत्नाकर
■1623 ललितासहस्त्रनामस्तोत्रम् [तमिल, तेलुगु, कन्नड़ भी]
■ 610 व्रतपरिचय
■1162 एकादशी-व्रतका माहात्म्य- [गुजराती भी]
■1136 वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य
■1588 माघमासका माहात्म्य
■1899 श्रावणमास-माहात्म्य (सानुवाद)
■1367 श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा

कोड

■ 052 स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद [तेलुगु, बँगला भी]
■1629 ,, ,, सजिल्द
■ 509 सूक्ति-सुधाकर
■2003 शक्तिपीठ दर्शन
■1567 दुर्गासप्तशती—मूल, मोटा, बेड़िया
■ 876 ,, मूल गुटका
■1346 ,, सानुवाद मोटा टाइप
■ 118 ,, सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी]
■ 489 ,, सानुवाद, सजिल्द [गुजराती भी]
■1281 ,, ,, (विशिष्ट सं०)
■ 866 ,, केवल हिन्दी
■1161 ,, केवल हिन्दी मोटा टाइप, सजिल्द
■ 819 श्रीविष्णुसहस्त्रनाम—शांकरभाष्य
■ 206 श्रीविष्णुसहस्त्रनाम—सटीक
■1801 श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्र—सटीक (पुस्तकाकार)
■ 226 श्रीविष्णुसहस्त्रनाम मूल, [मलयालम, तेलुगु, कन्नड़, तमिल, गुजराती भी]
■1872 श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रम्-लघु
■ 207 रामस्तवराज—(सटीक)
■ 211 आदित्यहृदयस्तोत्रम् (ओड़िआ, नेपाली भी)
■ 224 श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र [तेलुगु, ओड़िआ भी]
■2151 सचित्र रामरक्षास्तोत्रम्-बेड़िआ पुस्तकाकार
■ 231 रामरक्षास्तोत्रम्— पॉकेट साइज [तेलुगु, ओड़िआ, नेपाली, अंग्रेजी भी]

नामावलिसहितम्

■1594 सहस्त्रनामस्तोत्रसंग्रह
■2021 श्रीपुरुषोत्तमसहस्त्रनामस्तोत्रम्
■1599 श्रीशिवसहस्त्रनामस्तोत्रम् (गुजराती भी)
■1600 श्रीगणेशसहस्त्रनामस्तोत्रम्
■1601 श्रीहनुमत्सहस्त्रनामस्तोत्रम्
■1663 श्रीगायत्रीसहस्त्रनामस्तोत्रम्
■1664 श्रीगोपालसहस्त्रनामस्तोत्रम्
■1665 श्रीसूर्यसहस्त्रनामस्तोत्रम्
■1706 श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रम्
■1704 श्रीसीतासहस्त्रनामस्तोत्रम्
■1705 श्रीरामसहस्त्रनामस्तोत्रम्
■1707 श्रीलक्ष्मीसहस्त्रनामस्तोत्रम् (तेलुगु भी)
■1708 श्रीराधिकासहस्त्रनामस्तोत्रम्
■1709 श्रीगंगासहस्त्रनामस्तोत्रम्

■1862 श्रीगोपालसहस्त्रनामस्तोत्रम्-सटीक
■ 495 दत्तात्रेय-वज्रकवच—सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी]

कोड

■ 563 शिवमहिम्नस्तोत्र [तेलुगु भी]
■1748 संतानगोपालस्तोत्र
■1850 शतनामस्तोत्रसंग्रह
■1885 वैदिक सूक्त-संग्रह
■ 054 भजन-संग्रह
■1849 भजन-सुधा (पॉकिट साइज)
■1783 भजन-सुधा—पुस्तकाकार, सजिल्द
■ 229 श्रीनारायणकवच [ओड़िआ, नेपाली, तेलुगु भी]
■ 230 अमोघ शिवकवच [नेपाली भी]
■ 140 श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली
■ 142 चेतावनी-पद-संग्रह
■ 144 भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह
■1355 सचित्र-स्तुति-संग्रह
■1800 पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह
■1092 भागवत-स्तुति-संग्रह
■ 639 श्रीमन्नारायणीयम्-तमिल, तेलुगु भी
■1214 मानस-स्तुति-संग्रह
■1344 सचित्र-आरती-संग्रह
■1591 आरती-संग्रह—मोटा टाइप
■ 153 आरती-संग्रह—सामान्य टाइप
■1845 प्रमुख-आरतियाँ—पॉकेट
■ 208 सीतारामभजन
■ 221 हरेरामभजन-दो माला (गुटका)
▲ 385 नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र, सानुवाद [बँगला, तमिल भी]
■ 222 हरेरामभजन—१५ माला
■2153 भगवन्नाम माहात्म्य
■ 225 गजेन्द्रमोक्ष [तेलुगु, कन्नड़, नेपाली, ओड़िआ भी]
■1505 भीष्मस्तवराज
■ 699 गङ्गालहरी
■ 232 श्रीरामगीता
■1094 हनुमानचालीसा [नेपाली भी] हिन्दी भावार्थसहित
■2121 सचित्र हनुमानचालीसा—मोटा टाइप, बेड़िआ
■1979 हनुमानचालीसा—सचित्र,वि.सं. (पॉकिट साइज)
■1997 ,,—खड़िआ, लघु, वि.सं.
■1917 ,,—रंगीन, विशिष्ट सं० (पॉकिट साइज)
■ 227 ,, —(पॉकिट साइज) [गुजराती, असमिया, तमिल, बँगला, तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]
■ 695 हनुमानचालीसा—(लघु आकार) [गुजराती, अंग्रेजी, ओड़िआ भी]
■1525 हनुमानचालीसा—अति लघु आकार [गुजराती भी]
■ 228 शिवचालीसा—(असमिया भी)
■1185 शिवचालीसा—लघु आकार

कोड

■ 383 भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी....
■2120 सचित्र दुर्गा चालीसा एवं विन्ध्येश्वरी चालीसा (मोटा टाइप, बेड़िआ)
■ 851 दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा
■1033 ,, —लघु आकार
■1991 ,, —लाल-रंगमें (वि०सं०)
■1993 ,,—सचित्र (वि०सं०) पॉकिट साइज
■ 203 अपरोक्षानुभूति
■ 139 नित्यकर्म-प्रयोग
■1471 संध्या, संध्या-गायत्रीका..
■ 210 सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण.. मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी]
■ 236 साधकदैनन्दिनी
■ 614 सन्ध्या

बालोपयोगी पाठ्य पुस्तकें

■1992 हिन्दी-अंग्रेजी वर्णमाला रंगीन
■ 125 हिन्दी-बालपोथी, रंगीन-I
■ 212 ,, ,, भाग-२
■ 684 ,, ,, भाग-३
■ 764 ,, ,, भाग-४
■ 765 ,, ,, भाग-५
■1692 बालककी दिनचर्या रंगीन, ग्रन्थाकार
■1693 बालकोंकी सीख ,,
■1694 बालकके आचरण ,,
■1690 बालकके गुण ,,
■1689 आओ बच्चों तुम्हें बतायें ,,
■ 218 बाल-अमृत-वचन
■ 696 बाल-प्रश्नोत्तरी [गुजराती भी]
■ 213 बालकोंकी बोल-चाल
■1691 बालकोंकी बातें—रंगीन
■ 146 बड़ोंके जीवनसे शिक्षा [ओड़िआ भी]
■ 150 पिताकी सीख [गुजराती भी]
■1986 आदर्श-ऋषि-मुनि- ग्रन्थाकार, रंगीन
■2004 आदर्श चरितावली— ,, ,,
■2026 आदर्श संत— ,, ,,
■2028 आदर्श सुधारक— ,, ,,
■2019 आदर्श-देशभक्त- ,, ,,
■2022 आदर्श-सम्राट्- ,, ,,
■2067 आदर्श बाल कहानियाँ- ,, ,,
■2068 आदर्श बाल कथाएँ- ,, ,,
■2070 बालकोपयोगी कहानियाँ- ,, ,,
■2071 प्रेरक बाल कहानियाँ- ,, ,,
■2072 प्राचीन बाल कहानियाँ- ,, ,,
■2079 शिक्षाप्रद चरितावली- ,, ,,
■2080 शिक्षाप्रद बाल कहानियाँ- ,, ,,
■2081 कल्याणकारी बाल कहानियाँ,,

कोड

■ 116 लघुसिद्धान्तकौमुदी, सजिल्द
■1437 वीर बालक (रंगीन)
■1451 गुरु और माता-पिताके भक्त बालक (रंगीन)
■1450 सच्चे-ईमानदार बालक-रंगीन
■1449 दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ (रंगीन)
■1448 वीर बालिकाएँ (रंगीन)
■ 727 स्वास्थ्य, सम्मान और सुख

सर्वोपयोगी प्रकाशन

■2155 द्वादश ज्योतिर्लिंग
■2037 अध्यात्म पथ प्रदर्शक
■2047 भूले न भुलायें (ओड़िआ भी)
■2033 संस्कार-प्रकाश
■1673 सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ
■ 64 प्रेमयोग
■1982 भक्तिसुधा
■1595 साधकमें साधुता
■ 747 सप्तमहाव्रत
■ 698 मार्क्सवाद और रामराज्य
■1955 जीवनचर्या विज्ञान
■1657 भलेका फल भला
■1300 महाकुम्भपर्व
■ 542 ईश्वर
■ 57 मानसिक दक्षता
■ 59 जीवनमें नया प्रकाश
■ 60 आशाकी नयी किरणें
■ 119 अमृतके घूँट
■ 132 स्वर्णपथ
■ 55 महकते जीवनफूल

कोड

■1461 हम कैसे रहें ?
■ 774 कल्याणकारी दोहा-संग्रह
■ 387 प्रेम-सत्संग-सुधामाला
■ 668 प्रश्नोत्तरी
■ 501 उद्धव-सन्देश
■ 195 भगवान्पर विश्वास
■ 120 आनन्दमय जीवन (नेपाली भी)
■ 133 विवेक-चूडामणि [तेलुगु, बँगला भी]
■ 862 मुझे बचाओ, मेरा क्या कसूर ?
■ 131 सुखी जीवन
■ 122 एक लोटा पानी
▲ 701 गर्भपात उचित या...... [बँगला, मराठी, अंग्रेजी]
■ 888 परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ [बँगला भी]
■ 134 सती द्रौपदी
■1624 पौराणिक कथाएँ
■2002 आध्यात्मिक कहानियाँ
■1938 गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ
■1782 प्रेरणाप्रद कथाएँ
■1669 पौराणिक कहानियाँ
■ 137 उपयोगी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, कन्नड़, गुजराती, बँगला भी]
■ 164 भगवान्के सामने सच्चा सो सच्चा (पढ़ो, समझो और करो)
■ 159 आदर्श उपकार ,,
■ 160 कलेजेके अक्षर ,,
■ 161 हृदयकी आदर्श विशालता ,,
■ 162 उपकारका बदला ,,

कोड

■ 163 आदर्श मानव-हृदय (पढ़ो, समझो और करो)
■ 165 मानवताका पुजारी ,,
■ 166 परोपकार और सच्चाईका फल ,,
■ 510 असीम नीचता और असीम साधुता ,,
■ 157 सती सुकला
■ 147 चोखी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, गुजराती, मराठी भी]
■2002 आध्यात्मिक कहानियाँ
■ 129 एक महात्माका प्रसाद [गुजराती भी]
■1688 तीस रोचक कथाएँ
■ 151 सत्संगमाला एवं ज्ञानमणिमाला
■1922 गोरक्षा एवं गोसंवर्धन

रंगीन चित्रकथा

■1647 देवीभागवतकी प्रमुख कथाएँ
■1646 महाभारतके प्रमुख पात्र
■ 190 बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला
■ 868 भगवान् सूर्य (ग्रंथाकार)
■1156 एकादश रुद्र (शिव)
■1032 बालचित्र-रामायण-पुस्तकाकार
■ 869 कन्हैया [बँगला, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी]
■ 870 गोपाल [बँगला, तेलुगु, तमिल भी]
■ 871 मोहन [बँगला, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]
■ 872 श्रीकृष्ण [बँगला, तमिल, तेलुगु भी]
■1018 नवग्रह—चित्र एवं परिचय [बँगला भी]
■1016 रामलला [तेलुगु, अंग्रेजी भी]

कोड

■1116 राजा राम [तेलुगु भी]
■1017 श्रीराम
■1394 भगवान् श्रीराम (पुस्तकाकार)
■1418 श्रीकृष्णलीला-दर्शन ,,
■1278 दशमहाविद्या [बँगला भी]
■1343 हर-हर महादेव
■ 829 अष्टविनायक [ओड़िआ, मराठी, गुजराती भी]
■1794 सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र
■ 204 ॐ नमः शिवाय [बँगला, ओड़िआ, कन्नड भी]
■ 787 जय हनुमान [तेलुगु, ओड़िआ भी]
■ 779 दशावतार [बँगला भी]
■1215 प्रमुख देवता
■1216 प्रमुख देवियाँ
■1442 प्रमुख ऋषि-मुनि
■1443 रामायणके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी]
■1488 श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी]
■1537 श्रीमद्भागवतकी प्रमुख कथाएँ
■1538 महाभारतकी प्रमुख कथाएँ
■1420 पौराणिक देवियाँ
■1307 नवदुर्गा—पॉकेट साइज
■ 205 नवदुर्गा [तेलुगु, गुजराती, असमिया, कन्नड, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी]
■ 537 बाल-चित्रमय बुद्धलीला
■ 194 बाल-चित्रमय चैतन्यलीला [ओड़िआ, बँगला भी]
■ 651 गोसेवाके चमत्कार [तमिल भी]

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

■1184 श्रीकृष्णाङ्क
■ 41 शक्ति-अङ्क
■ 616 योगाङ्क
■ 604 साधनाङ्क
■1773 गो-अङ्क
■ 44 संक्षिप्त पद्मपुराण (गुजराती भी)
■ 539 संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण (गुजराती, तेलुगु भी)
■1111 संक्षिप्त ब्रह्मपुराण
■ 43 नारी-अङ्क
■ 659 उपनिषद्-अङ्क
■ 279 सं० स्कन्दपुराण (गुजराती भी)
■ 40 भक्त-चरिताङ्क
■1183 सं० नारदपुराण
■1132 धर्मशास्त्राङ्क
■ 667 संतवाणी-अङ्क

■ 587 सत्कथा-अङ्क
■ 636 तीर्थाङ्क
■ 574 संक्षिप्त योगवासिष्ठ (गुजराती भी)
■1133 सं० देवीभागवत-मोटा टाइप (गुजराती, कन्नड़, तेलुगु भी)
■ 789 सं० शिवपुराण-(बड़ा टाइप) ,,
■ 631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण
■ 572 परलोक-पुनर्जन्माङ्क
■1135 भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क
■ 517 गर्ग-संहिता
■1113 नरसिंहपुराणम्—सानुवाद
■1362 अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)
■1432 वामनपुराण
■ 627 संत अङ्क

■ 557 मत्स्यमहापुराण (सानुवाद)
■ 657 श्रीगणेश-अङ्क
■ 42 हनुमान-अङ्क
■1361 सं० श्रीवाराहपुराण
■ 791 सूर्याङ्क
■ 584 सं० भविष्यपुराण (गुजराती भी)
■ 586 शिवोपासनाङ्क
■ 653 गोसेवा-अङ्क
■1131 कूर्मपुराण
■1044 वेद-कथाङ्क
■1592 आरोग्य-अङ्क
■1189 सं० गरुडपुराण (गुजराती भी)
■1610 महाभागवत देवीपुराण
■ 518 हिन्दू संस्कृति अङ्क
■1793 श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध)
■1842 श्रीमद्देवीभागवताङ्क (उत्तरार्द्ध)

■1980 ज्योतिषतत्त्वाङ्क
■1985 लिङ्गमहापुराण—सटीक
▲1875 सेवा-अङ्क
■2035 गंगा-अङ्क
▲2125 श्रीशिवमहापुराणाङ्क (पूर्वार्ध)
▲2154 श्रीशिवमहापुराणाङ्क (उत्तरार्ध)
▲2100 कल्याण मासिक पत्रिका

Annual Issues of Kalyan-Kalpataru

▲ 1841 Jaiminīya Mahābhārata (Āśwamedhika Parva) (Part I)
▲ 1847 ,, ,, ,, (Part II)
▲ 2109 Morality Number
▲ 1971 Sādhanā Number
▲ 1972 Shiksha Number

कोड | कोड | कोड | कोड

अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन

मराठी

■1314 श्रीरामचरितमानस सटीक, मोटा टाइप
■1687 सुन्दरकाण्ड—सटीक
■1508 अध्यात्मरामायण
■ 784 ज्ञानेश्वरी गूढार्थ-दीपिका
■ 859 ज्ञानेश्वरी—मूल मझला
■ 2010 ज्ञानेश्वरी परायण प्रत
■ 748 ज्ञानेश्वरी—मूल गुटका
■1896 ज्ञानेश्वरी—माउली
■1808 श्रीतुकाराममहाराजांची गाथा
■1942 जगतगुरु तुकाराम
■1934 संतश्रेष्ठ एकनाथ
■1931 श्रीमुक्ताबाई चरित्र व गाथा
■1915 संतनामदेवांची अभंग गाथा
■1817 पाण्डव-प्रताप
■1950 हरिविजय
■1983 श्रीरामविजय
■2000 श्रीभक्तविजय
■1836 श्रीगुरुचरित्र
■1780 श्रीदासबोध, मझला साइज
■2061 श्रीमहाभारत कथा
■2062 श्रीसकलसंत गाथा
■2113 श्रीब्रह्मचैतन्यगोंदवलेकर महाराज
■2118 कौटुंबिक संस्कार कथा
■2115 कथा तुमच्या-आमच्या
■1844 ईशावास्योपनिषद
■2074 रामरक्षास्तोत्र
■1781 दासबोध (गद्यरूपान्तरासह)
■ 853 एकनाथी भागवत—मूल
■1678 श्रीमद्भागवतमहापुराण-सटीक-I
■1735 श्रीमद्भागवतमहापुराण-सटीक-II
■1776 श्रीमद्भागवतमहापुराण (केवल मराठी अनुवाद)
■ 7 गीता-साधक-संजीवनी टीका
■1304 गीता-तत्त्व-विवेचनी
■ 15 गीता-माहात्म्यसहित
■ 504 गीता-दर्पण
■2149 सरल गीता
■ 14 गीता—पदच्छेद
■1388 गीता-श्लोकार्थसहित (मोटा टाइप)
■1257 गीता—श्लोकार्थसहित
■1168 भक्त नरसिंह मेहता
■1913 संत श्रेष्ठ नामदेव
■1671 महाराष्ट्रातील निवडक....
▲ 429 गृहस्थमें कैसे रहें?
▲1703 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?
▲1387 प्रेममें विलक्षण एकता
■ 857 अष्ट विनायक (चित्रकथा)

▲ 391 गीतामाधुर्य
▲1099 अमूल्य समयका सदुपयोग
▲1335 रामायणके कुछ आदर्श पात्र
▲1155 उद्धार कैसे हो?
▲1716 भगवान् कैसे मिलें?
▲1719 चिन्ता,शोक कैसे मिटे?
▲1717 मनुष्य-जीवनका उद्देश्य
▲1074 आध्यात्मिक पत्रावली
▲1275 नवधा भक्ति
▲1386 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र
▲1340 अमृत-बिन्दु
▲1382 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ
■1818 उपयोगी कहानियाँ
▲1210 जित देखूँ तित-तू
▲1330 मेरा अनुभव
■1277 भक्त बालक
■1073 भक्त चन्द्रिका
■1383 भक्तराज हनुमान्
■1778 जीवनादर्श श्रीराम
▲ 886 साधकोंके प्रति
▲ 885 तात्त्विक प्रवचन
■1607 रुक्मिणी स्वयंवर
■1640 सार्थ मनाचे श्लोक
■1333 भगवान् श्रीकृष्ण
■1331 कृष्ण भक्त उद्धव
■1682 सार्थ सं० देवीपाठ
■1332 दत्तात्रेय-वज्रकवच
■1732 शिवलीलामृत
■1768 श्रीशिवलीलामृतांतील-अकरावा अध्याय
■1730 श्रीशिवमहिम्न:स्तोत्रम्
■1731 श्रीविष्णुसहस्रनामावलि:
■1729 श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्
■1670 मूल रामायण, पॉकेट साइज
■1679 मनाचे श्लोक, पॉकेट साइज
■1680 सार्थश्रीगणपत्यथर्वशीर्ष
■1683 सार्थ ज्ञानदेवी गीता
■1810 कन्हैया (चित्रकथा)
■1811 गोपाल (,,)
■1812 मोहन (,,)
■1813 श्रीकृष्ण (,,)
■1828 रामलला (,,)
■1829 श्रीराम (,,)
■1830 राजाराम (,,)
■1645 हरीपाठ (सार्थ सविवरण)
■ 855 हरीपाठ
■1169 चोखी कहानियाँ
▲ 385 नल-दमयंती
▲1384 सती सावित्री-कथा
■1814 सामाजिक संस्कार कथा
■1815 घराघरातील संस्कार कथा

▲ 880 साधन और साध्य
▲1006 वासुदेवः सर्वम्
▲1276 आदर्श नारी सुशीला
▲1334 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान
▲1749 श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश व ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप
▲ 899 देशकी वर्तमान दशा....
▲1339 कल्याणके तीन सुगम मार्ग और....
▲1428 आवश्यक शिक्षा
▲1341 सहज साधना
▲1711 शिखा (चोटी) धारण...
▲ 802 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला..
▲ 882 मातृशक्तिका घोर अपमान
▲ 883 मूर्तिपूजा
■1746 मनोबोधभक्तिसूत्र
▲ 884 सन्तानका कर्तव्य
▲1279 सत्संगकी कुछ सार बातें
▲1613 भगवान्के स्वभावका रहस्य
▲1642 प्रेमदर्शन
▲1641 साधनकी आवश्यकता
▲ 901 नाम-जपकी महिमा
▲ 900 दुर्गतिसे बचो
▲1171 गीता पढ़नेके लाभ
▲ 902 आहार-शुद्धि
▲1170 हमारा कर्तव्य
▲ 881 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता
▲ 898 भगवन्नाम
▲1578 मानवमात्रके कल्याणके लिये
■1779 भलेका फल भला

गुजराती

■2156 श्रीमद्भागवतमहापुराण-श्रीधरी टीका I
■2157 ,, ,, II
■2158 ,, ,, III
■2159 ,, ,, IV
■2160 ,, ,, V
■2161 श्रीभक्तमाल
■2164 सरल गीता
■2169 सं० ब्रह्मपुराण
■2165 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण
■2176 गो-अङ्क
■ 799 श्रीरामचरितमानस-ग्रन्थाकार
■1533 श्रीरामचरितमानस-(वि० सं०)
■2069 संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण
■2078 संक्षिप्त पद्मपुराण
■2073 संक्षिप्त भविष्यपुराण
■1981 संक्षिप्त गरुडपुराण
■2036 संक्षिप्त स्कन्दपुराण
■2006 श्रीविष्णुपुराण
■1939 वाल्मीकीयरामायण—सटीक-I

■1940 वाल्मीकीयरामायण—सटीक-II
■1943 गीता-माहात्म्य
■1552 भागवत—सटीक (खण्ड-१)
■1553 भागवत—सटीक (खण्ड-२)
■2031 भागवतनवनीत-श्रीडोंगरेजी महाराज
■1608 श्रीमद्भागवत-सुधासागर
■1326 सं० देवीभागवत
■1798 सं० महाभारत (खण्ड-१)
■1799 सं० महाभारत (खण्ड-२)
■1286 संक्षिप्त शिवपुराण
■1650 तत्त्वचिन्तामणि, ग्रन्थाकार
■1630 साधन-सुधा-सिन्धु
■ 467 गीता-साधक-संजीवनी
■1313 गीता-तत्त्व-विवेचनी
■ 785 श्रीरामचरितमानस-मझला, सटीक
■ 878 श्रीरामचरितमानस—मूल मझला
■ 879 ,, —मूल गुटका
■1430 ,, —मूल, मोटा टाइप
■1960 सं० योगवासिष्ठ
■1637 सुन्दरकाण्ड-सटीक, मोटा टाइप
■1365 नित्यकर्म-पूजाप्रकाश
■1565 गीता-मोटे अक्षरवाली—सजिल्द
■2023 जीवनचर्या-विज्ञान
▲1987 अच्छे बनो
▲1988 कल्याण कैसे हो?
■1668 एकादशीव्रतका माहात्म्य
■ 12 गीता-पदच्छेद
■1315 गीता—सटीक, मोटा टाइप
■1366 दुर्गासप्तशती—सटीक
■1634 दुर्गासप्तशती—सजिल्द
■1227 सचित्र आरतियाँ
■ 936 गीता छोटी—सटीक
■1034 गीता छोटी—सजिल्द
■1636 श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, मोटा टाइप
■1225 मोहन— (चित्रकथा)
■1224 कन्हैया—(,,)
■ 1228 नवदुर्गा—(,,)
■ 2123 श्रीप्रेम सुधा सागर
■2122 भजन सुधा
■2048 श्रीहरिवंशपुराण
■2132 गोरक्षा एवं गोसंवर्धन
■2131 सं० नारदपुराण
■2134 रामरक्षास्तोत्रम्
■2135 श्रीनारायण कवच
■ 948 सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा
■1085 भगवान् राम
■ 950 सुन्दरकाण्ड—मूल गुटका
■1199 सुन्दरकाण्ड—मूल लघु आकार
■1823 विनय-पत्रिका

कोड

■1226 अष्ट विनायक (चित्रकथा)
■ 613 भक्त नरसिंह मेहता
▲1518 भगवान्‌के स्वभावका रहस्य
▲1486 मानवमात्रके कल्याणके लिये
▲1164 शीघ्र कल्याणके सोपान
▲1146 श्रद्धा, विश्वास और प्रेम
▲1144 व्यवहारमें परमार्थकी कला
▲1062 नारीशिक्षा
▲1129 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति
■1400 पिताकी सीख
■1425 वीर बालिकाएँ
■1423 गुरु, माता-पिताके भक्त बालक
■1422 वीर बालक
■1424 दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ
■1258 आदर्श सम्राट्
▲1128 दाम्पत्य-जीवनका आदर्श
▲1061 साधन नवनीत
▲1520 कर्मयोगका तत्त्व (भाग—१)
▲1264 मेरा अनुभव
▲1046 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा
▲1211 जीवनका कर्तव्य
▲ 877 अनन्य भक्तिसे भगवत्प्राप्ति
▲ 818 उपदेशप्रद कहानियाँ
▲1265 आध्यात्मिक प्रवचन
▲1516 परमशान्तिका मार्ग (भाग-१)
▲1504 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय
■1212 एक महात्माका प्रसाद
▲1539 सत्संगकी मार्मिक बातें
▲1457 प्रेममें विलक्षण एकता
▲1655 प्रश्नोत्तर-मणिमाला

कोड

▲1503 भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें...
▲1325 सब जग ईश्वररूप है
▲1052 इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति
▲1878 जन्ममरणसे छुटकारा
■ 934 उपयोगी कहानियाँ
▲1067 दिव्य सुखकी सरिता
▲ 933 रामायणके कुछ आदर्श पात्र
▲1295 जित देखूँ तित-तू
▲ 943 गृहस्थमें कैसे रहें ?
▲1260 तत्त्वज्ञान कैसे हो ?
▲1263 साधन और साध्य
▲1294 भगवान् और उनकी भक्ति
▲ 932 अमूल्य समयका सदुपयोग
▲ 392 गीतामाधुर्य
▲1077 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ
▲ 940 अमृत-बिन्दु
▲ 931 उद्धार कैसे हो ?
▲ 894 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र
▲ 413 तात्त्विक प्रवचन
■ 895 भगवान् श्रीकृष्ण
▲1126 साधन -पथ
▲ 946 सत्संगका प्रसाद
▲ 942 जीवनका सत्य
▲1145 अमरताकी ओर
▲1066 भगवान्‌से अपनापन
■ 806 रामभक्त हनुमान्
▲1086 कल्याणकारी प्रवचन (भाग-२)
▲1287 सत्यकी खोज
▲1088 एकै साधे सब सधै
■1399 चोखी कहानियाँ
▲ 889 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान

कोड

▲1141 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?
▲1047 आदर्श नारी सुशीला
▲1059 नल-दमयन्ती
▲1045 बालशिक्षा
▲1063 सत्संगकी विलक्षणता
▲1165 सहज साधना
■1401 बालप्रश्नोत्तरी
▲ 893 सती सावित्री
▲1177 आवश्यक शिक्षा
■1867 स्वास्थ्य, सम्मान और सुख
▲1049 आनन्दकी लहरें
■ 937 विष्णुसहस्त्रनाम नामावली
■1941 श्रीशिवसहस्त्रनामस्तोत्र नामावली...
■1910 गजेन्द्रमोक्ष
■1909 आदित्यहृदयस्तोत्र
■1911 गोपालसहस्त्रनामस्तोत्र
▲1058 मनको वश करनेके उपाय..
▲1050 सच्चा सुख
▲1840 एक संतकी वसीयत
■ 828 हनुमानचालीसा
▲ 844 सत्संगकी कुछ सार बातें
▲1048 संत-महिमा
▲1179 दुर्गतिसे बचो
▲1178 सार-संग्रह, सत्संगके अमृत कण
▲1206 धर्म क्या है ? भगवान् क्या हैं ?
▲1500 सन्ध्या-गायत्रीका महत्त्व
▲1051 भगवान्‌की दया
■1198 हनुमानचालीसा—लघु आकार
■1649 हनुमानचालीसा- अति लघु आकार
▲1056 चेतावनी एवं सामयिक चेतावनी

कोड

▲1054 प्रेमका सच्चा स्वरूप और सत्यकी शरणसे मुक्ति
▲1053 अवतारका सिद्धान्त और ईश्वर..
▲1127 ध्यान और मानसिक पूजा
▲1148 महापापसे बचो

उर्दू

■ 1446 गीता—उर्दू
■ 2133 नगमा-ए-इलाही (गीता)

नेपाली

■ 1609 श्रीरामचरितमानस—सटीक
■ 2075 नित्यकर्म पूजाप्रकाश
■ 2162 श्रीमद्भगवद्गीता-पॉकेट साइज
■ 2163 सरल गीता
■ 2045 सुन्दरकाण्ड—सटीक
▲1621 मानवमात्रके कल्याणके लिये
■ 2046 हनुमानचालीसा—सटीक
▲2048 शरणागति
■2049 अमोघशिवकवच
■2050 नारायणकवच
■2051 गजेन्द्रमोक्ष
■2052 आदित्यहृदयस्तोत्र
■2053 रामरक्षास्तोत्र
■2055 रामायणके आदर्श पात्र
■2076 आनन्दमय जीवन
▲2077 असल बन (अच्छे बनो)
▲2094 गीता माधुर्य
▲2095 प्रश्नोत्तरमणिमाला
▲2096 उपनिषदोंके चौदह रत्न
▲2097 विदुरनीति

Our English Publications

■ 1318 Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text, Transliteration & English Translation)
■ 1617 Śrī Rāmacaritamānasa A Romanized Edition with English Translation
■ 456 Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text and English Translation)
■1550 Sunder Kand (Roman)
■ 452, 453 Śrīmad Vālmīki Rāmāyaṇa (With Sanskrit Text and English Translation) Set of 2 volumes
■ 564, 565 Śrīmad Bhāgavata (With Sanskrit Text and English Translation) Set
■ 1080, 1081 Śrīmad Bhagavadgītā Sādhaka-Sañjīvanī (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary) Set of 2 Volumes
■ 457 Śrīmad Bhagavadgītā Tattva-Vivecanī (By Jayadayal Goyandka) Detailed Commentary
■ 2152 Sarala Gita (Bound)
■ 455 Bhagavadgītā (With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size

■ 534 Bhagavadgītā (Bound)
■ 1658 Śrīmad Bhagavadgītā (Sanskrit text with hindi and English Translation)
■ 824 Songs from Bhartṛhari
▲ 783 Abortion Right or Wrong You Decide
■ 1491 Mohana (Picture Story)
■ 1643 Ramaraksastotram Sanskrit Text, English Translation)
■ 494 The Immanence of God (By Madan Mohan Malaviya)
■ 1528 Hanumāna Cālīsā (Roman) (Pocket Size)
■ 1638 „ Small size
■ 2152 Saral Gita (Bound)
■ 1492 Rāma Lalā (Picture Story)
■ 1445 Virtuous Children
■ 1545 Brave and Honest Children
■ 2001 Vidur Niti
■ 2059 Stories-that transform life
■ 2082 Bhaktraj Hanuman
■ 2083 Truth-Loving Harishchandra

By Jayadayal Goyandka

▲ 477 Gems of Truth [Vol. I]
▲ 478 „ „ [Vol. II]
▲ 479 Sure Steps to God-Realization
▲ 481 Way to Divine Bliss
▲ 482 What is Dharma? What is God?
▲ 2084 Savitri and Satyan

▲ 2085 An Ideal Woman Sushila
▲ 2063 Ideal Woman
▲ 2064 Nal Damayanti
▲ 480 Instructive Eleven Stories
▲ 1285 Moral Stories
▲ 1284 Some Ideal Characters of Rāmāyaṇa
▲ 1245 Some Exemplary Characters of the Mahābhārata
▲ 694 Dialogue with the Lord During Meditation
▲ 1125 Five Divine Abodes
▲ 520 Secret of Jñānayoga
▲ 521 „ „ Premayoga
▲ 522 „ „ Karmayoga
▲ 523 „ „ Bhaktiyoga
▲ 658 „ „ Gitā
▲ 1013 Gems of Satsaṅga
▲ 1501 Real Love

By Hanuman Prasad Poddar

▲ 484 Look Beyond the Veil
▲ 622 How to Attain Eternal Happiness ?
▲ 483 Turn to God
▲ 485 Path to Divinity
▲ 847 Gopis'Love for Śrī Kṛṣṇa
▲ 620 The Divine Name and Its Practice
▲ 486 Wavelets of Bliss & the Divine Message

By Swami Ramsukhdas

▲ 1470 For Salvation of Mankind
▲ 619 Ease in God-Realization
▲ 471 Benedictory Discourses
▲ 473 Art of Living
▲ 487 Gitā Mādhurya
▲ 1101 The Drops of Nectar (Amṛta Bindu)
▲1523 Is Salvation Not Possible without a Guru?
▲ 472 How to Lead A Household Life
▲ 570 Let Us Know the Truth
▲ 638 Sahaja Sādhanā
▲ 621 Invaluable Advice
▲ 474 Be Good
▲ 497 Truthfulness of Life
▲ 669 The Divine Name
▲ 476 How to be Self-Reliant
▲ 552 Way to Attain the Supreme Bliss

Special Editions

■ 1411 Gitā Roman (Sanskrit text, Transliteration & English Translation) Book Size
■ 1584 „ (Pocket Size)
■ 1407 The Drops of Nectar (By Swami Ramsukhdas)
■ 1406 Gitā Mādhurya („)
■ 1438 Discovery of Truth and Immortality (By Swami Ramsukhdas)
■ 1413 All is God („)
■ 1414 The Story of Mīrā Bāī (Bankey Behari)

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जन-जनको कल्याण-पथ (आत्मोद्धारके सुमार्ग)-पर अग्रसरित करनेकी प्रेरणा देना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम—भगवद्भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि प्रेरणाप्रद एवं कल्याण-मार्गमें सहायक अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख 'कल्याण' में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

१-'कल्याण' का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। **वर्षके मध्यमें बननेवाले ग्राहकोंको जनवरीका विशेषाङ्क एवं अन्य उपलब्ध मासिक अङ्क दिये जाते हैं।**

२-**वार्षिक सदस्यता-शुल्क**—भारतमें ₹२५०, विदेशमें हवाई डाकसे भेजनेके लिये US$ 50 (₹ ३०००) (चेक कलेक्शनके लिये US$ 6 अतिरिक्त)।

पंचवर्षीय शुल्क—भारतमें ₹१२५०, विदेशमें हवाई डाकसे भेजनेके लिये US$ 250 (₹१५०००) (चेक कलेक्शनके लिये US$ 6 अतिरिक्त)।

डाकखर्च आदिमें अप्रत्याशित वृद्धि होनेपर पंचवर्षीय ग्राहकोंद्वारा अतिरिक्त राशि भी देय हो सकती है।

३-समयसे सदस्यता-शुल्क प्राप्त न होनेपर आगामी वर्षका विशेषाङ्क वी०पी०पी०से भेजा जाता है। इसपर डाकशुल्कका ₹१० अतिरिक्त देय होता है।

४-जनवरीका विशेषाङ्क (वर्षका प्रथम अङ्क) रजिस्ट्री / वी०पी०पी०से तथा फरवरीसे दिसम्बरतकके अङ्क साधारण डाकसे भेजे जाते हैं।

५-वार्षिक शुल्क ₹२५० के अतिरिक्त ₹२०० भेजनेसे फरवरीसे दिसम्बरतकके अंक रजिस्टर्ड डाकसे भेजे जाते हैं।

६-पत्र-व्यवहारमें 'ग्राहक-संख्या' एवं मोबाइल नम्बर अवश्य लिखा जाना चाहिये और पता बदलनेकी सूचनामें **ग्राहक-संख्या, पिनकोडसहित पुराना और नया पता लिखना चाहिये।**

७-**'कल्याण' में व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी स्थितिमें प्रकाशित नहीं किये जाते।**

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)**